



परिक्करमा

श्री तारतम वाणी

# परिकरमा

अर्थ व भावार्थ

श्री राजन स्वामी एवं श्री सुशान्त निजानन्दी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

[www.spjin.org](http://www.spjin.org)

सर्वाधिकार सुरक्षित (चौपाई छोड़कर)

© २०११, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण — २०१९

## प्राक्कथन

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी के हृदय में ज्ञान के अनन्त सागर हैं। उनकी एक बूँद श्री महामति जी के धाम-हृदय में आयी, जो सागर का स्वरूप बन गयी। इसलिये कहा गया है कि "नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी रोसन", अर्थात् यह तारतम वाणी मारिफत के ज्ञान का सूर्य है। यह ब्रह्मवाणी सबके हृदय में ब्रह्मज्ञान का उजाला करती है।

"हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन अक्षरशः सत्य है। इस ब्रह्मवाणी की अलौकिक ज्योति सुन्दरसाथ के हृदय में माया का अन्धकार कदापि नहीं रहने देगी। इस तारतम वाणी की थोड़ी सी भी अमृतमयी बूँदों का रसास्वादन जीव के लिये परब्रह्म के साक्षात्कार

एवं अखण्ड मुक्ति का द्वार खोल देता है। अतः वैश्विक स्तर पर इस ब्रह्मवाणी का प्रसार करना हमारा कर्त्तव्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अवतरित इस ब्रह्मवाणी का टीका सरल भाषा में प्रस्तुत हो। यद्यपि वर्तमान में अनेक सम्माननीय मनीषियों की टीकायें प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी भी टीका हो, जो विश्लेषणात्मक हो, सन्दर्भ, भावार्थ, स्पष्टीकरण, एवं टिप्पणियों से युक्त हो।

मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये यह कदापि सम्भव नहीं था, किन्तु मेरे मन में अचानक ही यह विचार आया कि यदि सन्त कबीर जी और ज्ञानेश्वर जी अपने योग बल से भैंसे से वेद मन्त्रों का

उच्चारण करवा सकते हैं, तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मेरे से वाणी टीका की सेवा क्यों नहीं करवा सकते ? इसी आशा के साथ मैंने अक्षरातीत श्री जी के चरणों में अन्तरात्मा से प्रार्थना की।

धाम धनी श्री राज जी एवं सद्गुरु महाराज श्री रामरतन दास जी की मेहर की छाँव तले मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा ने मुझे इस कार्य में दृढ़तापूर्वक जुटे रहने के लिये प्रेरित किया। महात्मा सुशान्त जी चर्चनी के विशेषज्ञ हैं। इस टीका में उनका प्रमुख योगदान रहा है। धाम धनी से प्रार्थना है कि उनके ऊपर अपनी मेहर की वर्षा हमेशा करते रहें।

सभी सम्माननीय पूर्व टीकाकारों के प्रति श्रद्धा –  
सुमन समर्पित करते हुए मैं यह आशा करता हूँ कि यह  
टीका आपको रुचिकर लगेगी। सभी सुन्दरसाथ से  
निवेदन है कि इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधारकर मुझे  
भी सूचित करने की कृपा करें, जिससे मैं भी आपके  
अनमोल वचनों से लाभ उठा सकूँ एवं अपने को धन्य –  
धन्य कर सकूँ।

आप सबकी चरण-रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञान पीठ सरसावा

जिला सहारनपुर (उ.प्र)

## अनुक्रमणिका

अनुभूमिका	14
1 अब कहूं रे इस्क की बात (इस्क का प्रकरण)	19
2 ब्रह्मसृष्टि लीजियो (श्री धाम को बरनन मंगला चरन)	103
3 अब आओ रे इस्क भानूं हाम (और ढाल चली)	127
4 तुमको इस्क उपजावने (सूरत इस्क पैदा होने की)	346
5 वतन आपनो ब्रह्मसृष्ट को देऊं बताए (बन में सरूप सिनगार)	373
6 कतरे कई केलन के (जमुना जोए किनारे सात घाट)	421

7	सातो घाट बीच में (कुंज बन मंदिर)	460
8	अब कहूं मैं ताल की (हौज कौसर ताल जित जोए कौसर मिली)	503
9	बन्यो ताल के बीच में (टापू के बीच मोहोलात चौसठ पांखड़ी की)	576
10	और पीछल पाल तलाव के (फूलबाग)	611
11	ए जो बड़ा चबूतरा (लाल चबूतरा बड़े जानवरों के मुजरे की जगह)	631
12	फेर कहूं तले बन की	697
13	सुख लीजो मोमिनो (मोहोल पहाड़ पुखराजी)	716
14	मोहोल के तले ताल जो (ताल बंगले जोए मोहोलात)	778



15	किनारे मोहोल जोए के (जमुनाजी का मूलकुंड कठेड़ा चबूतरा ढांपी खुली सात घाट)	848
16	तुम देखो दिल में (पुल मोहोल दोऊ जवेर के)	870
17	पार जमुना जो बन (पार जोए के बन खूबी)	884
18	क्यों दियो रे बिछोहा दुलहा (परिकरमा बड़ी फिराक की)	899
19	भोम तले की बैठाए के (खिलवत से चांदनी ताँई)	932
20	दोऊ कमाड़ों की क्यों कहूं (अर्स आगूं खुली चांदनी)	948

21	और सुख सातों घाट के (सात घाट पुल हौज)	977
22	अब ताल पाल की क्यों कहूं (हौज कौसर)	992
23	सुख नेहेरों का अलेखे (नेहेरें मोहोलों में)	1007
24	पहाड़ मानिक मोहोल कई (मानिक पहाड़ के हिंडोले)	1018
25	बन छाया है मोहोल जो (बन के मोहोल नेहेरें)	1027
26	सुख क्यों कहूं पहाड़ पुखराज के (पुखराज से पाट घाट ताँई)	1036
27	एह निमूना ख्वाब का (पसु पंखियों की पातसाही)	1076

28	खावंद इनों में खेलहीं (पसु पंखियों का इस्क सनेह)	1123
29	अस्वारी पसु पंखियन पर (पसु पंखियों की अस्वारी)	1155
30	पेहेले किया बरनन अर्स का (तीन सरूपों की पेहेचान बल अर्स की तरफ का)	1215
31	बड़ा चौक सोभा लेत है (दसों भोम बरनन)	1290
32	गैब बातें बका अर्स की (बाब अर्स अजीम का मता जाहेर किया याने एक जवेर का अर्स)	1411
33	अब देखो अन्दर अर्स के (खिलवत में हांसी फरामोसी दई)	1474

34	बेवरा अगली भोम का (परिकरमा नजीक अर्स के)	1500
35	बड़ी रूह रूहें नूर में (नूर परिकरमा अंदर दस भोम)	1590
36	नूर तरफ पाट घाट नूर का (नूर परिकरमा अन्दर ताई)	1615
37	कहे आमर नूर अर्स का (भोम पेहेली नूर खिलवत)	1652
38	बरनन धाम को (धाम बरनन)	1746
39	प्रेम दिखाऊं तुमको साथजी (प्रेम को अंग बरनन)	1799
40	एक चित्रामन दिवालें बन (धाम की रामतें – चरचरी)	1857

41	एक अंग अभिलाखी देवें साखी (रामत दूसरी)	1865
42	कहियत नेहेचल नाम (बड़ी रामत)	1872
43	नूर कुंजी अगिन मुसाफ की (सागरों रांग मोहोलात मानिक पहाड़)	1894
44	साथजी देखो मोहोल मानिक (मोहोल मानिक पहाड़)	1949

## श्री कुलजम सरूप

निजनाम श्री जी साहिब जी, अनादि अछरातीत।  
सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहीत॥

## परिकरमा

किसी व्यक्ति या पूज्य स्थान को केन्द्र में रखकर उसके चारों ओर श्रद्धापूर्वक घूमना परिक्रमा करना कहा जाता है, किन्तु यह एक बाह्य प्रक्रिया है। अक्षरातीत का परम सत्य स्वरूप हृदय (मारिफत स्वरूप दिल) ही परमधाम के पच्चीस पक्षों के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। इस प्रकार, इन पक्षों की शोभा को अपनी आत्मिक दृष्टि से देखते हुए, धनी के प्रेम और आनन्द में डूबना ही परिक्रमा करना कहा गया है।

अक्षरातीत के हृदय (दिल) का प्रेम, सौन्दर्य,

आनन्द, एकत्व (वहदत), और मूल सम्बन्ध (निस्वत) आदि ही इन सभी पक्षों के रूप में लीला कर रहा है , इसलिये इनकी शोभा को देखने और डूबने का तात्पर्य श्री राज जी के हृदय में प्रवेश करना है, जो प्रेम और अध्यात्म का चरम बिन्दु है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि परमधाम के पच्चीस पक्षों के केन्द्र में श्री राज जी का दिल ही है।

## श्री किताब इलाही – दुलहिन अर्स अजीम की

परिक्रमा ग्रन्थ की यह वाणी परमधाम की अखण्ड वधू (सोहागिन, अँगना, दुल्हिन) के रूप में शोभायमान है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१— यह वाणी हमारी आत्मिक-दृष्टि को परमधाम के पच्चीस पक्षों में ले जाने वाली है , जिससे हमें अपने

परात्म स्वरूप का बोध होता है। अँगना भाव को जाग्रत करने के कारण यह वाणी भी उसी रूप में वर्णित की गयी है।

२- परमधाम के पच्चीस पक्षों का वर्णन करने वाली वाणी इस प्रकार का दृश्य उपस्थित कर देती है कि जैसे हम परमधाम में ही विचरण कर रहे हों। इस प्रकार शब्द रूप में होते हुए भी इसकी उपमा ब्रह्माँगना (दुल्हिन) के रूप में की गयी है।

३- श्री राज जी और श्यामा जी का दिल एक ही है। "दिल हक का और हादी का, ए दोऊ दिल है एक" (श्रृंगार ११/२४) तथा "अन्तर पट खोल देखिए, दोऊ आवत एक नजर" (सागर ६/३१) से यह स्पष्ट है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि युगल स्वरूप का हृदय (दिल) ही पच्चीस पक्षों के रूप में इस वाणी द्वारा



दृष्टिगोचर हो रहा है। सभी पक्ष किसी न किसी रूप में युगल स्वरूप को रिझाते हैं। इसलिये वाणी के रूप में अवतरित इस परिक्रमा को धाम की सुहागिन (दुल्हिन) के रूप में चित्रित किया गया है।

४- "ए रसना स्यामाजीय की, पिलावत रस रब्ब का" (बी. सा. ७१/१२)। श्यामा जी के हृदय का बहता हुआ रस ही परिक्रमा ग्रन्थ में अनुभूत होता है। माशूक आशिक का हृदय होता है, इसलिये भी इस वाणी को परमधाम की अखण्ड सोहागिन के रूप में दर्शाया गया है।

५- "आरती अंग चतुर्दश केरी, पांचों स्वरूप मिल एक भए री" के कथन में भी परिक्रमा को अक्षरातीत स्वरूप श्री जी का हृदय कहा गया है। वधू (सोहागिन, दुल्हिन, अँगना, अर्धांगिनी) अपने प्रियतम की हृदय स्वरूपा

होती है, इसलिए भी इस वाणी को इलाही दुल्हिन (अखण्ड प्रियतमा) के रूप में दर्शाया गया है।

परमधाम की सम्पूर्ण शोभा, माप, एवं लीला अनन्त है, शब्दातीत है, और मानवीय बुद्धि से परे है, किन्तु उसका वर्णन मानवीय धरातल पर इसलिये किया गया है, जिससे हम उसे आत्मसात् (हृदयंगम) कर सकें। श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर श्री राज जी ने यहाँ के शब्दों में परिक्रमा ग्रन्थ के रूप में परमधाम को वैसे ही दर्शाया है, जैसे गागर (घड़े) में सागर के जल को रखकर उसे सागर के रूप में प्रदर्शित किया जाता है, अथवा पर्वत को सरसों के एक दाने के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकरण प्रेम (इश्क) की पहचान के साथ ही प्रारम्भ होता है।

## इस्क का प्रकरण

अब कहूं रे इस्क की बात, इस्क सब्दातीत साख्यात।

जो कदी आवे मिने सब्द, तो चौदे तबक करे रद॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे साथ जी! अब मैं परमधाम के उस इश्क (अनन्य प्रेम) की बात कह रही हूँ, जो स्पष्ट रूप से शब्दों की परिधि से परे है। यदि, कदाचित्, प्रेम शब्दों के द्वारा कथन में आ जाये, तो चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता।

**भावार्थ-** संस्कृत में शुभारम्भ (मंगलाचरण) के रूप में जिस अथ् (इसके बाद) शब्द का प्रयोग होता है, वही इस चौपाई में "अब" के रूप में कथित है। इस प्रकार का कथन श्रीमुखवाणी में अनेक स्थानों पर किया गया है, जैसे-

"हवे पेहेला मोह जलनी कहूं बात" (रास १/१)

"अब सुनियो ब्रह्मसृष्टि विचार" (प्रकास हि. ३७/८)

"अब आओ रे इस्क भानूं हाम, देखूं वतन अपना निज धाम"

(परिक्रमा ३/१)

इसी प्रकार बीतक २/१ में भी "अब कहों फेर के, मूल मिलावे की बीतक" का कथन है।

इसका आशय यह है कि ग्रन्थकार द्वारा इसके पहले या तो प्रियतम परब्रह्म का ध्यान किया जा रहा था, या कुछ कहा जा रहा था। "अथ" (अब) के प्रयोग के साथ ही मंगलाचरण का भाव मान लिया जाता है।

इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब इश्क प्रत्यक्ष (स्पष्ट) रूप से शब्दातीत है, तो उसे महामति जी के द्वारा क्यों कहा जा रहा है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि

परमधाम, प्रेम, और परब्रह्म तीनों ही शब्दातीत हैं , त्रिगुणातीत हैं, और इस मायावी जगत् से सर्वथा परे हैं। अक्षरातीत के आवेश स्वरूप के बिना इस तीनों की व्याख्या कदापि सम्भव नहीं है। यही कारण है कि इस संसार का कोई भी प्राणी इन तीनों की वास्तविक विवेचना नहीं कर सका है। सभी को शब्दातीत कहकर ही मौन हो जाना पड़ा है। स्वयं परब्रह्म ही श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर कहला रहे हैं, इसलिये इस चौपाई में कहा गया है कि "अब कहीं रे इस्क की बात।"

जिस आत्मा के धाम हृदय से परमधाम का वर्णन होता है, उसके लिये इस ब्रह्माण्ड का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता, अर्थात् अध्यात्म के चरम शिखर पर पहुँचने के पश्चात् भले ही पञ्चभौतिक तन इस संसार में रहता है,

किन्तु आत्मिक दृष्टि परमधाम में ही विचरण करती है। परमधाम के जिस इश्क का वर्णन आज तक कोई कर नहीं सका है, यदि किसी के द्वारा शब्दों में उसका वर्णन होता है तो उसकी स्थिति उपरोक्त शोभा वाली होती है। इस चौपाई की दूसरी पंक्ति का यही आशय है।

**ब्रह्म इस्क एक संग, सो तो बसत वतन अभंग।**

**ब्रह्मसृष्टी ब्रह्म एक अंग, ए सदा आनंद अतिरंग॥२॥**

परब्रह्म और प्रेम (इश्क) दोनों ही अभिन्न हैं। हमेशा साथ-साथ ही रहते हैं और इनका मूल निवास अखण्ड परमधाम में है। धनी की अर्धांगिनी ब्रह्मात्मायें भी उनसे अभिन्न हैं और उन्हीं की अंगरूपा हैं। इनकी अक्षरातीत के साथ सर्वदा ही अनन्त प्रेम और आनन्द की लीला होती रहती है।

**भावार्थ-** जिस प्रकार शक्कर में मिठास और सूर्य में तेज का गुण स्वाभाविक है, उसी प्रकार अक्षरातीत परब्रह्म में प्रेम ओत-प्रोत है। प्रेम से अलग करके अक्षरातीत को देखा ही नहीं जा सकता। उनकी लीला को नारायण की लीला के समानान्तर नहीं माना जा सकता। प्रेम का यह अखण्ड स्वरूप वस्तुतः परमधाम में ही है। जिस प्रकार लहरों के रूप में सागर का ही जल क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियों के रूप में धनी के हृदय में प्रेम , आनन्द, और सौन्दर्य आदि गुणों की ही लीला होती है। इसी प्रकार अक्षरातीत और ब्रह्मसृष्टियों को कभी भी अलग स्वरूप वाला नहीं कहा जा सकता।

एते दिन गए कई बक, सो तो अपनी बुध माफक।

अब कथनी कथूं इस्क, जाथें छूट जाए सब सक॥३॥

आज दिन तक संसार के महापुरुष अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार प्रेम की निरर्थक (सारहीन) व्याख्या करते रहे हैं (बकते रहे हैं)। श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि अब मैं इश्क की विवेचना कर रही हूँ, जिससे सभी संशयों का निवारण हो जाये।

**भावार्थ-** तारतम वाणी के अवतरण से पूर्व नारद मुनि, मीराबाई, जायसी, सूरदास, रसखान, एवं सूफी फकीरों ने प्रेम (इश्क) की जो व्याख्या की है, वह स्वप्न की बुद्धि के द्वारा ही की गयी है। यद्यपि उन्होंने लक्ष्य तो परमधाम एवं परब्रह्म का लिया है, किन्तु उनकी अनुभूति का धरातल हृद का ब्रह्माण्ड (वैकुण्ठ, निराकार) ही रहा है। श्री महामति जी के कथन का आशय यह है कि अब परमधाम के प्रेम (इश्क) का वर्णन हो जाने से सभी संशय समाप्त हो जायेंगे।



वोए वोए इस्क न था एते दिन, कैयों ढूँढया गुन निरगुन।  
 धिक धिक पड़ो सो तन, जो तन इस्क बिन॥४॥

आज दिन तक इस सृष्टि में परमधाम के अनन्य प्रेम की सुगन्धि का अस्तित्व भी नहीं था। उस अद्वैत प्रेम को किसी ने साकार रूपों में खोजने का प्रयास किया, तो किसी ने निराकार में। अब ब्रह्मवाणी के अवतरण के पश्चात् भी जिसके हृदय में परमधाम का प्रेम नहीं बस पाता है, उसे धिक्कार है, धिक्कार है।

**भावार्थ-** परब्रह्म को निराकार, असीम, और इन्द्रियों से परे मानने वाले ऋषि, मुनियों, एवं योगियों ने निर्विकल्प समाधि द्वारा इश्क (प्रेम) को पाने का प्रयास किया है। इसी प्रकार भक्तों ने श्री राम, बाल कृष्ण, विष्णु, एवं शिव, आदि में सौन्दर्य, प्रेम आदि गुणों का भण्डार

मानकर नवधा भक्ति द्वारा प्रेम पाने का प्रयास किया है। सूफी फकीरों ने भी रात-रात भर बन्दगी (उपासना) करके इश्क को पाने की कोशिश की है। उन्होंने इश्क-ए-मजाजी (संसार के झूठे प्रेम) का आधार लेकर इश्क-ए-हकीकत (खुदाई इश्क) को पाना चाहा है, किन्तु तारतम ज्ञान न होने से वे सफल नहीं हो सके।

गुण से युक्त पदार्थों को सगुण कहते हैं और गुणहीन पदार्थों को निर्गुण कहते हैं। ब्रह्म में माया के गुण (सत्, रज, और तम) नहीं हैं तथा माया में ब्रह्म के गुण (सत्, चित्, तथा आनन्द) नहीं हैं। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ सगुण एवं निर्गुण होता है, किन्तु इस चौपाई में सगुण-निर्गुण का भाव साकार एवं निराकार से ही है।

इस्क नाहीं मिने सृष्ट सुपन, जो ढूंढ्या चौदे भवन।

इस्क धनिँ बताया, इस्क बिना पिउ न पाया॥५॥

इस स्वप्न के संसार में प्रेम नहीं है। संसार के लोग तो चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में ही इश्क को खोजा करते हैं। मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर स्वयं श्री राज जी ने इश्क (प्रेम) की पहचान दी है। इस इश्क को अपने हृदय-मन्दिर में बसाये बिना कोई भी प्रियतम अक्षरातीत को नहीं पा सकता।

**भावार्थ-** प्रेम परब्रह्म का अंग होने से मात्र परमधाम में है। यह संसार त्रिगुणात्मक है। तमोगुण मोह को उत्पन्न करता है, रजोगुण राग को, एवं सतोगुण स्नेह को। इनके परे अद्वैत प्रेम बेहद मण्डल में है तथा स्वलीला अद्वैत का अनन्य प्रेम (इश्क) मात्र परमधाम में ही है। उसे इस झूठे संसार में खोजना बहुत बड़ी भूल है।

इस्क है तित सदा अखंड, नहीं दुनियां बीच ब्रह्मांड।

और इस्क का नहीं निमूना, दूजा उपजे न होवे जूना॥६॥

एकमात्र परमधाम में ही अखण्ड प्रेम (इश्क) है। वह इश्क इस नश्वर संसार में नहीं है। इस संसार में उस इश्क की उपमा (नमूना, दृष्टान्त) किसी से भी नहीं दी जा सकती, क्योंकि इश्क (प्रेम) के अतिरिक्त अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है जो उत्पन्न न हो और पुराना (जीर्ण) भी न हो।

**भावार्थ-** इस भौतिक जगत में लौकिक सम्बन्ध अखण्ड नहीं होते। त्रिगुणात्मक भावों के होने से मोह, राग या स्नेह से आगे कोई भी प्राणी जा नहीं पाता। यही कारण है कि त्रिगुणातीत प्रेम (इश्क) की उपमा इस संसार में कहीं भी किसी से नहीं दी जा सकती। प्रेम की स्थिति परब्रह्म की ही तरह अखण्ड और एकरस होती है।

प्रेम न तो उत्पन्न होता है और न कभी नष्ट होता है (पुराना होता है), जबकि समय की परिस्थितियों वश स्नेह, राग, और मोह में परिवर्तन होता रहता है।

**इस्क है हमारी निसानी, बिना इस्क दुलहा मैं रानी।**

**इस्क बिना मैं भई वीरानी, बिना इस्क न सकी पेहेचानी॥७॥**

हम ब्रह्मसृष्टियों की पहचान ही इश्क (प्रेम) से है। यदि मेरे हृदय में अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत के लिये इश्क नहीं है, तो मेरा जीवन निरर्थक है अर्थात् मेरी कोई भी उपयोगिता नहीं है। इश्क के बिना मेरा हृदय सूना है (उजाड़, नीरस) है। इस खेल में भी मैं पहले अपने धनी को इसलिये पहचान नहीं सकी थी क्योंकि मेरे पास उस समय प्रेम नहीं था।

**भावार्थ— सामान्यतः यह कहना उचित नहीं है कि**

परमधाम में मात्र इश्क ही है, प्रेम नहीं; प्रेम तो बेहद मण्डल में है। इसका उत्तर यह है कि श्रीमुखवाणी में हिन्दी और फारसी शब्दों का प्रयोग कहीं-कहीं पर साथ-साथ किया गया है, जैसे-

इश्क प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक।

किरंतन १७/१६

आशा उमेद जे हुज्रतूं, सभ तूंही उपाइए।

सिन्धी ५/६२

उपरोक्त कथनों में इश्क और उमेद फारसी भाषा के शब्द हैं, तथा प्रेम और आशा हिन्दी और संस्कृत भाषा के हैं। इसी प्रकरण की चौपाई ३२-४० में परमधाम में प्रेम के होने का स्पष्ट वर्णन है। उसकी एक झलक इस प्रकार है-

याके प्रेमें के भूखन, याके प्रेमें के हैं तन।

याके प्रेमें के वस्तर, ए बसत प्रेम के घर॥

याके प्रेम सेज्या सिनगार, वाको वार न पाइए पार।

प्रेम अरस परस स्यामा स्याम, सैयां वतन धनी धाम॥

परिकरमा १/३३,३९

वृथा गए एते दिन, जो गए इस्क बिन।

मैं हुती पिया के चरन, मैं रहे ना सकी सरन॥८॥

इस संसार में आने पर धनी के इश्क के बिना जो भी समय बीता है, वह निरर्थक ही चला गया। परमधाम में धनी के चरणों में रहते हुए मैं सर्वदा ही उनके प्रेम में डूबी रहती थी, किन्तु इस मायावी जगत् में अब मेरे अन्दर इस्क नहीं रह गया है, जिससे ऐसा लगता है कि अब मैं उनके पास नहीं हूँ (शरण या सामीप्यता में नहीं हूँ)।

**भावार्थ-** यद्यपि आत्मा के धाम हृदय में प्रियतम अखण्ड रूप से विराजमान रहते हैं, किन्तु इश्क न होने से आत्मा को उसका बोध नहीं हो पाता। वह जीव भाव को प्राप्त होकर शरीर और संसार के मोह जाल से निकल नहीं पाती। इस चौपाई के चौथे चरण का यही आशय है।

**क्यों रह्या जीव बिना जीवन, क्यों न आया हो मरन।**

**अंग क्यों न लागी अगिन, याद आया न मूल वतन॥९॥**

यह गहन आश्चर्य का विषय है कि अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत के बिना मेरा जीव इस शरीर में अब तक कैसे (क्यों, किसलिये) रह गया? मेरा शरीर क्यों नहीं छूट गया? मेरे हृदय में विरह की अग्नि क्यों नहीं जली और मुझे अपने निजधाम की याद भी क्यों नहीं आयी?

**भावार्थ-** जीव जब ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जाग्रत होकर



अँगना भाव से धनी को रिझाने लगता है, तो वह भी धाम धनी को अपने जीवन का सर्वस्व मानने लगता है। इसलिये इस चौपाई में श्री राज जी को आत्मा एवं जीव दोनों के ही जीवन का आधार (जीवन, प्राणवल्लभ) कहा गया है।

**इस्क जाने सृष्ट ब्रह्म, जाके नजीक न काहूँ भरम।**

**जब इस्क रहया भराए, तब धाम हिरदे चढ़ आए॥१०॥**

इस्क (प्रेम) की वास्तविक पहचान ब्रह्मसृष्टियों को ही होती है। उनके हृदय में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहता है। जब आत्मा में इस्क का रस प्रवाहित होने लगता है, तो सम्पूर्ण परमधाम की शोभा धाम-हृदय में दृष्टिगोचर होने लगती है।

**भावार्थ—** इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि जब

आत्मा में श्री राज जी अखण्ड रूप से विराजमान हैं (हक नजीक सेहेरग से), तो उसमें इश्क भी अखण्ड रूप से क्यों नहीं प्रवाहित होता ? क्या इश्क के बिना धनी का स्वरूप विद्यमान रह सकता है?

इसका समाधान यह है कि परमधाम या परात्म में श्री राज जी और इश्क का स्वरूप अखण्ड रूप से विद्यमान तो है, किन्तु इस खेल में परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा जब जीव, शरीर, और संसार को देखने में मग्न है, तो स्वभावतः ही धनी और इश्क से सम्बन्ध टूटा हुआ प्रतीत होता है, किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं होता। यह स्थिति वैसे ही होती है, जैसे प्रतिबिम्ब के ऊपर धूल या धधकती अग्नि के ऊपर राख का जम जाना। आत्मा अपने जीव के काम, क्रोध आदि विकारों तथा दुखों की लीला में इतनी डूब जाती है कि उसे अपने निज स्वरूप

तथा इश्क का बोध ही नहीं हो पाता। जब जीव ब्रह्मवाणी के आधार पर चितवनि में डूबकर विरह की अग्नि में तड़पता है, तो आत्मा को अपने स्वरूप का भान होने लगता है और उसके ऊपर आवरण करने वाली लौकिक लीला रूपी धूल या राख हट जाती है। इस अवस्था में उसे यह अनुभूत होता है कि अब उसके धाम हृदय में प्रेम का रस प्रवाहित होने लगा है तथा सम्पूर्ण परमधाम सहित युगल स्वरूप भी विराजमान हो गये हैं।

**इस्क तो कहा सब्दातीत, जो पिउजी की इस्क सों प्रीत।**

**देखी इस्क की ऐसी रीत, बिना इस्क नहीं प्रतीत॥११॥**

श्री राज जी के रोम-रोम में इश्क (प्रेम) भरा हुआ है, इसलिये इश्क को शब्दों से परे कहा गया है। इश्क की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि बिना इश्क का रस पाये किसी को

धनी के ऊपर विश्वास नहीं आता।

**भावार्थ-** इश्क (प्रेम) में डूबे रहने को ही इश्क से प्रीति करना कहा गया है। पढ़े हुए ज्ञान के सम्बन्ध में कुछ संशय तो हो सकता है, किन्तु जब इश्क के द्वारा प्रियतम परब्रह्म या परमधाम का साक्षात्कार कर लिया जाता है तो किसी भी प्रकार का संशय नहीं रह जाता, क्योंकि आत्म-चक्षुओं से देखी हुई बात में भला संशय कहाँ से हो सकता है?

इस्क नेहेचे मिलावे पिउ, बिना इस्क न रहे याको जिउ।  
 ब्रह्मसृष्टि की एही पेहेचान, आतम इस्कै की गलतान॥१२॥  
 निश्चित रूप से इश्क प्रियतम से मिलन (दीदार) कराता है। इश्क का रस पा लेने के पश्चात् आत्मा का जीव भी बिना प्रेम (इश्क) के रह नहीं सकता। ब्रह्मसृष्टियों की

वास्तविक पहचान यही है कि उनकी आत्मा धनी के प्रेम में हमेशा डूबी (गलतान) रहती है।

**भावार्थ-** यद्यपि इश्क (प्रेम) आत्मा का लक्षण है और विरह जीव का, किन्तु आत्मा जब प्रेम के द्वारा प्रियतम परब्रह्म के दर्शन का आनन्द प्राप्त कर लेती है, तो जीव को भी उस आनन्द का कुछ अंश प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार आनन्द के संयोग से उसके हृदय में भी प्रेम का कुछ अंश प्रवाहित होने लगता है। परिणामस्वरूप विरह के बिना वह रह नहीं पाता। समस्त संसार उसे अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी प्रतीत होता है और धनी की शोभा में स्वयं को डुबोकर प्रेम का रस पाने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहा करता है। इस चौपाई के दूसरे चरण में इसी भाव को व्यक्त किया गया है कि आत्मा का जीव भी धनी के प्रेम के बिना नहीं रह सकता।

इस्क याही धनिँ बताया, इस्क याही सृष्टें गाया।

इस्क याही में समाया, इस्क याही सृष्टें चित ल्याया॥१३॥

श्री राज जी ने स्पष्ट रूप से यह बात बतायी है कि परमधाम का प्रेम (इश्क) इन ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही है। एकमात्र ये ब्रह्मसृष्टियाँ ही इश्क की वास्तविक विवेचना (गायन) कर सकती हैं। इश्क भी एकमात्र इन्हीं के हृदय में विद्यमान होता है। इन आत्माओं का चित्त (हृदय) ही धनी के प्रेम में आकर्षित होता है (लगता है)।

इस्क पिया को बतावे विलास, इस्क ले चले पिउ के पास।

इस्क मिने दरसन, इस्क होए न बिना सोहागिन॥१४॥

प्रेम धनी के आनन्द की पहचान कराता है। प्रेम ही आत्मा को प्रियतम की सान्निध्यता (निकटता) दिलाता है। प्रेम के द्वारा ही प्रियतम के स्वरूप का साक्षात्कार

होता है। ब्रह्मसृष्टियों के बिना अन्य किसी के भी पास प्रेम (इश्क) नहीं होता है।

**भावार्थ-** "विलास" का अर्थ होता है- विशेष रूप से सुशोभित होना अर्थात् प्रेम-आनन्द में विद्यमान होना। प्रेम में ही आनन्द निहित होता है। प्रेममयी लीला में उसका प्रकटीकरण ही "विलास" है।

इस्क ब्रह्मसृष्टी जाने, ब्रह्मसृष्ट एही बात माने।

खास रूहों का एही खान, इन अरवाहों का एही पान॥१५॥

प्रेम के स्वरूप की वास्तविक पहचान परमधाम की इन आत्माओं को ही होती है। एकमात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही प्रेम की राह अपना पाती हैं। प्रेम ही इनका भोजन है और प्रेम ही जल पीना है।

**भावार्थ-** प्रेम की राह अपनाना अर्थात् प्रियतम को

आत्मिक चक्षुओं से देखना एवं अपने हृदय-मन्दिर में बसाना भोजन करना है, तथा उनकी शोभा में स्वयं को डुबो देना जल पीना है। इसके बिना वास्तविक आहार (आत्मिक) नहीं माना जा सकता।

**पिया इस्क रस, ब्रह्मसृष्ट को अरस परस।**

**काहूं और न इस्क खोज, औरों जाए न उठाया बोझ॥१६॥**

प्रेम अक्षरातीत के हृदय का बहता हुआ रस है, जो ब्रह्मसृष्टियों में ओत - प्रोत रहता है। एकमात्र इन आत्माओं में ही प्रेम (इश्क) बसता है, इसलिये इनके अतिरिक्त अन्य कहीं पर भी इश्क खोजने की आवश्यकता नहीं है। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य किसी से भी प्रेम का बोझ नहीं उठाया जा सकता, अर्थात् इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रेम



की राह पर नहीं चल सकता।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह संशय होता है कि ओत-प्रोत (अरस-परस) का सिद्धान्त दो वस्तुओं में लागू होता है, जैसे जल और शक्कर आपस में ओत-प्रोत होते हैं, तो क्या स्वलीला अद्वैत परमधाम में भी दो भिन्न पदार्थ हैं जो परस्पर ओत-प्रोत (सराबोर) होंगे?

इसके समाधान में इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वलीला अद्वैत परमधाम में श्री राज जी का हृदय ही नूर के रूप में सर्वत्र लीला कर रहा है, जिससे प्रेम (इश्क), ज्ञान (इल्म), सौन्दर्य, आभा, एकत्व, आदि का प्रकटीकरण होता रहता है। सखियों के मूल तन नूरमयी हैं, जिनमें प्रेम, सौन्दर्य, एकत्व, आदि अनन्त गुण विद्यमान हैं। यह ऐसे ही घटित होता है जैसे सूर्य में तेज ओत-प्रोत है, अर्थात् तेज ही सूर्य के रूप में दृष्टिगोचर

होता है। सूर्य के तेज से ही ज्योति, प्रकाश, आदि का प्रकटीकरण होता है। इसी प्रकार प्रेम और नूर अभिन्न होते हुए भी लीला रूप में दो के रूप में ओत-प्रोत प्रतीत होते हैं।

**बात इस्क की है अति घन, पर पावे सोई सोहागिन।**

**ब्रह्मसृष्ट बिना न पावे, सनमंध बिना इस्क न आवे॥१७॥**

परमधाम के अनन्य प्रेम की बातें बहुत ही गहन हैं और इसे मात्र वे ही प्राप्त कर पाते हैं जिनके अन्दर परमधाम का अँकुर होता है। मूल सम्बन्ध के बिना किसी के भी अन्दर इस्क नहीं आ सकता और न ब्रह्मसृष्टियों के बिना अन्य कोई इस मार्ग पर चल ही पाता है (प्राप्त कर पाता है)।

**भावार्थ—** इस चौपाई के प्रथम चरण में कथित "घन"

शब्द का तात्पर्य है- अत्यधिक आनन्दमयी, रहस्यमयी, एवं हृदय की गहराइयों में अखण्ड रूप से प्रवेश करने वाली।

आनन्द का वह घनीभूत (जमा हुआ ठोस) रूप, जिसमें मात्र आनन्द ही आनन्द हो , आनन्द घन कहलाता है। परमधाम की आत्माओं के अतिरिक्त प्रेम के विशुद्ध मार्ग पर अन्य कोई भी यथार्थ रूप से चल नहीं पाता। जप, तप, पूजा, पाठ, स्वाध्याय, और योग-साधना का मार्ग सरल है और इस पर जीव सृष्टि आसानी से चल लेती है, किन्तु प्रेम-मार्ग पर वही चल पायेगा जिसने अपने अस्तित्व को मिटा दिया हो।

धनीजी को इस्क भावे, बिना इस्क न कछू सोहावे।

यों न कहियो कोई जन, धनी पाया इस्क बिन॥१८॥

प्रियतम अक्षरातीत को प्रेम बहुत ही प्यारा लगता है। उन्हें इश्क की लीला के अतिरिक्त अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता। ऐसी स्थिति में किसी को भी ऐसा नहीं कहना चाहिए कि मैंने बिना प्रेम के ही धाम धनी को पा लिया है।

**भावार्थ—** धाम धनी और इश्क का स्वरूप एक दूसरे से अभिन्न है। इसी तथ्य को लौकिक दृष्टि से लीला रूप में समझाने के लिये ही यह बात कही गयी है कि श्री राज जी को प्रेम के बिना अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इस चौपाई के प्रथम चरण का भी यही भाव समझना चाहिए। यहाँ यह भी निर्देश मिलता है कि बिना प्रेममयी चितवनि के श्री राज जी को नहीं पाया जा सकता।

इस्क बसे पिया के अंग, इस्क रहे पिउ के संग।

प्रेम बसत पिया के चित, इस्क अखंड हमेसा नित॥१९॥

प्रियतम श्री राज जी के अंग-अंग में इश्क का निवास है। दूसरे शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि श्री राज जी और प्रेम का एक दूसरे से अटूट (अखण्ड) साथ हैं। धनी के हृदय (चित्त) में मात्र प्रेम ही प्रेम की विद्यमानता रहती है। वस्तुतः परमधाम में इश्क तो सर्वदा ही अखण्ड रूप में दृष्टिगोचर होता है।

**भावार्थ-** जिस प्रकार फूल से निकलने वाली सुगन्धि को अलग करके वर्णित किया जाता है, जबकि वह उसका स्वाभाविक गुण है और उससे अभिन्न है। ठीक यही स्थिति श्री राज जी और इश्क के सम्बन्ध में है।

इस्क बतावे पार के पार, इस्क नेहेचल घर दातार।

इस्क होए न नया पुराना, नई ठौर न आवत आना॥२०॥

इश्क बेहद से भी परे परमधाम का मार्ग दर्शाता है। निश्चित रूप से यह अखण्ड परमधाम का साक्षात्कार कराने वाला है। उस अनादि परमधाम में न तो इश्क कभी उत्पन्न होता है और न कभी पुराना (जीर्ण) होता है। वहाँ का अखण्ड इश्क इस नश्वर जगत में न तो कभी आता है और न कभी भविष्य में आने वाला है।

**भावार्थ-** उत्पन्न होने वाली वस्तु का नष्ट होना स्वाभाविक है। परमधाम में न तो कोई वस्तु उत्पन्न होती है और न कभी नष्ट होती है, क्योंकि परमधाम की लीला में दिखाई पड़ने वाला प्रत्येक पदार्थ धनी का ही स्वरूप है और अनादि है।

इस चौपाई में जिस इश्क के इस नश्वर जगत में न

आने की बात कही गयी है, वह नूरमयी तनों में विद्यमान इश्क का विलास है। "इस्क प्रेम जब आइया, तब नेहचे मिलिए हक" (किरंतन १७/१६) तथा "ल्याओ प्यार करो दीदार" (सिनगार २५/३) से जिस प्रेम (इस्क) के इस संसार में आत्मा के धाम-हृदय में आने की बात कही गयी है, वह प्रेम रूपी सागर की एक छोटी सी लहर के समान है। यह मानवीय तन इससे अधिक इश्क को सहन नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में इसे इश्क का स्वाद (लज्जत) लेना भी कह सकते हैं।

इस्क साहेब सों नहीं अंतर, जो अरस-परस भीतर।

ए सुगम है सोहागिन, जाको अंकूर याही वतन॥२१॥

श्री राज जी के रोम-रोम में प्रेम (इस्क) इस प्रकार भीना हुआ (ओत-प्रोत) है कि यही कहना पड़ता है कि

इश्क और धाम धनी में किसी भी प्रकार का भेद (अन्तर) नहीं है। ब्रह्मसृष्टियों के मूल तन परमधाम में ही हैं, इसलिये धनी से मूल सम्बन्ध होने के कारण आत्माओं के लिये प्रेम की राह पर चलना बहुत सरल है, जबकि अन्य के लिये यह बहुत ही कठिन है।

**भावार्थ—** मोह (माया) से उत्पन्न होने वाले जीवों के लिये प्रेम की राह पर चल पाना असम्भव सा होता है, क्योंकि जीवों की इन्द्रियाँ, अन्तःकरण, और शरीर त्रिगुणात्मक होते हैं। यद्यपि इस मायावी जगत में आत्मायें भी जिन जीवों पर बैठी हैं, उनके तन, इन्द्रियाँ, तथा अन्तःकरण भी त्रिगुणात्मक ही होते हैं, किन्तु आत्माओं का परमधाम से मूल सम्बन्ध होता है, जिसके कारण उनके धाम-हृदय में प्रेम की अमृतमयी धारा प्रवाहित होती रहती है।



ए औरों नहीं दृष्ट, औरों छूटे न मोह अहं भ्रष्ट।

याको जाने ब्रह्मसृष्ट, जाको एही है इष्ट॥२२॥

ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य सृष्टियों (जीव और ईश्वरी) की दृष्टि में प्रेम होता ही नहीं, अर्थात् वे इस पर चलने का लक्ष्य ही नहीं रखती। जीव सृष्टि से तो मिथ्या मोह-अहंकार छूट ही नहीं पाता। इश्क की वास्तविक पहचान मात्र परमधाम की आत्माओं को ही होती है, क्योंकि ये ही प्रेम की यथार्थतः चाहत रखने वाली हैं।

**भावार्थ-** प्रेम के रस में डूबे बिना मोह-अहंकार पूर्ण रूप से नहीं छूट सकते। यद्यपि ईश्वरी सृष्टि ज्ञान दृष्टि से तो मोह-अहंकार को छोड़ देती है, किन्तु परमधाम के प्रेम रस से दूर होने के कारण वह आत्माओं की तरह माया को नहीं छोड़ पाती। शिव जी, विष्णु भगवान, आदि कहीं न कहीं मोह-अहंकार के जाल में फँस ही

चुके हैं।

इस्क की बात बड़ी रोसन, जासों सुख लेसी चौदे भवन।

सो भी सुख नेहेचल, इस्क दृष्टें न रहे जरा मैल॥२३॥

इश्क (प्रेम) की महिमा बहुत अधिक (अनन्त) है। इस इश्क के कारण ही चौदह लोक वाले इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणियों को बहिश्तों का अखण्ड सुख प्राप्त होगा। प्रेम की राह अपनाने पर तो हृदय में नाम मात्र का भी विकार नहीं रह सकता।

**भावार्थ-** यद्यपि "रोशन" शब्द का बाह्य अर्थ उजाला होता है, किन्तु यहाँ पर "रोसन" शब्द का भाव महिमावान (महिमा रूपी उजाले से भरपूर) होने से है।

परमधाम में होने वाले इश्क-रब्द के कारण ही ब्रज, रास, एवं जागनी के ब्रह्माण्ड की लीला हुई है। इसी

कारण ब्रह्मवाणी का अवतरण भी हुआ है, जिसे आत्मसात् करके प्रियतम अक्षरातीत पर समर्पण करने वाले जीव बेहद का सुख प्राप्त करेंगे। "पियाके विरह सों निरमल किए, पीछे अखंड सुख सबों को दिए" (प्रकास हि. ३७/११२) के कथन से यह स्पष्ट होता है कि जीव सृष्टि धनी के विरह से ही निर्मल होगी, उसके लिये यह (विरह) ही प्रेम है। ब्रह्मवाणी से परमधाम के प्रेम की पहचान करके उसका अंशमात्र भी (विरह) अपनाकर जीव सृष्टि स्वयं को निर्विकार कर सकती है।

**इस्क राखे नहीं संसार, इस्क अखंड घर दातार।**

**इस्क खोल देवे सब द्वार, पार के पार जो पार॥२४॥**

हृदय में धनी का प्रेम बस जाने पर यह झूठा संसार रहता ही नहीं है। यह प्रेम ही अखण्ड धाम का दर्शन

(प्राप्ति) कराने वाला है। निराकार के परे बेहद एवं उसके भी परे परमधाम तक के सभी बन्द दरवाजों को प्रियतम का प्रेम खोल देता है।

**भावार्थ-** "द्वार" शब्द का तात्पर्य मार्ग या साधन से है। इसी प्रकार द्वार के बन्द होने और खुल जाने का भाव यह है कि जिस प्रेम के न होने से कोई भी निराकार, बेहद या अक्षर के परे नहीं जा पाता था, प्रेम के द्वारा वह लक्ष्य अब सुलभ हो गया है।

इस्क घाए करे टूक टूक, अंग होए जाए सब भूक।  
लोहू मांस गया सब सूक, चित चल न सके कहूं चूक॥२५॥  
इश्क हृदय को घायल करके टुकड़े-टुकड़े कर देता है।  
इश्क (प्रेम) के जोश में सभी अंग धूल के समान होकर अस्तित्व विहीन हो जाते हैं। इस अवस्था में शरीर का

सम्पूर्ण रक्त और माँस भी सूख जाता है। चित्त तो भूलकर भी धनी के अतिरिक्त अन्य कहीं (माया में) नहीं जा पाता।

**भावार्थ-** इश्क के द्वारा हृदय के घायल होकर टुकड़े-टुकड़े होने का भाव है- प्रियतम के प्रति इस प्रकार समर्पित हो जाना कि अपना अस्तित्व न रह जाये। सभी अंगों का चूर्ण (चूरा) हो जाना भी यही भाव दर्शाता है। यद्यपि विरह की अवस्था में ही विशेष रूप से रक्त और माँस के सूखने का प्रसंग आता है, किन्तु प्रेम की गहन अवस्था में भी ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि उसमें शरीर और संसार की सुधि ही नहीं रहती।

इस्क आगूं न आवे माया, इस्कें पिंड ब्रह्मांड उड़ाया।

इस्कें अर्स वतन बताया, इस्कें सुख पेड़ का पाया॥२६॥

प्रेम के आगे माया नहीं ठहर सकती, अर्थात् हृदय में धनी का प्रेम बस जाने पर माया का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। प्रेम के रस में डूब जाने पर अपने शरीर और संसार के अस्तित्व का भान (आभास) ही नहीं होता। मात्र इश्क ही आत्माओं को निजधाम का दर्शन कराने वाला है। इसी से परमधाम का मूल सुख (आत्मिक आनन्द) भी प्राप्त होता है।

**कोई नहीं इस्क की जोड़, ना कोई बांधे इस्क सों होड़।  
इस्क सुध कोई न जाने, दुनी ख्वाब की कहा बखाने॥२७॥**

इश्क के बराबर कोई भी नहीं है, इसलिये किसी को भी इश्क से होड़ (प्रतिद्वन्दिता) नहीं रखनी चाहिए। जब प्रेम की वास्तविक सुधि पञ्चवासनाओं या ईश्वरी सृष्टियों को नहीं हो सकी है, तो भला सपने के जीव प्रेम के बारे में

क्या कह सकते हैं?

**भावार्थ-** यद्यपि श्रद्धा, समर्पण, सेवा, और ज्ञान आदि अध्यात्म जगत की अनमोल निधियाँ हैं, किन्तु इनमें से किसी की इश्क से तुलना नहीं की जा सकती। वस्तुतः प्रेम इतना महान है कि इन दिव्य निधियों से भी उपमा देने का प्रश्न नहीं होता।

इस्क आवे धनी का चाह्या, इस्क पिया जी ने सिखाया।  
 पिया इस्क सरूप बताया, इस्कें पिंड ही को पलटाया॥२८॥

इस संसार में परमधाम का प्रेम धाम धनी की इच्छा से ही किसी के अन्दर आता है। श्री राज जी ने तारतम वाणी के द्वारा आत्माओं को प्रेम की राह पर चलना सिखाया है। प्रियतम श्री राज जी तो प्रत्यक्ष रूप से प्रेम के स्वरूप ही हैं। हृदय में प्रेम आ जाने पर शरीर की

लीला बदल जाती है।

**भावार्थ-** जब तक हृदय में धनी का प्रेम नहीं आता , तब तक शरीर में स्थित अन्तःकरण और इन्द्रियों में माया की चाहत बनी रहती है, किन्तु प्रेम आते ही शरीर और संसार से दृष्टि हटकर परमधाम की ओर लग जाती है। इसे ही शरीर (पिण्ड) का पलटना अर्थात् प्रवृत्ति का बदल जाना कहते हैं।

**इस्क सोभा बड़ी है अत, इस्क दृष्टें न पाइए असत।**

**जो कदी पेड़ होवे असत, इस्क ताको भी करे सत॥२९॥**

इस प्रकार प्रेम की महिमा अनन्त (बहुत अधिक) है। हृदय में इस्क आ जाने पर उसकी दृष्टि में यह झूठा शरीर और संसार रहता ही नहीं है। यदि कदाचित् उसकी दृष्टि में मायावी जगत् रहता भी है, तो वह भी अखण्ड हो



जाता है।

**भावार्थ-** "पेड़" शब्द का तात्पर्य- कारण रूप माया से है। किरन्तन ग्रन्थ में अनेक प्रसंगों में इसे इस रूप में दर्शाया गया है-

असत आपे सो क्यों सतको पेखे, इन पर पेड़ न पाया।

किरन्तन २/४

पहले पेड़ देखो माया को, जाको न पाइए पार।

किरन्तन २७/३

ब्रह्मसृष्टियों की दृष्टि में जो भी पदार्थ आ जाता है, वह ब्रह्मलीला से जुड़ा होता है। इसलिये महाप्रलय के पश्चात् बेहद मण्डल में उसका अखण्ड होना स्वाभाविक ही है। यह प्रक्रिया वैसे ही है जैसे ब्रज लीला में भाग लेने वाले अघासुर, बकासुर जैसे राक्षस भी बेहद में अखण्ड हो गये।

इस्क की सोभा कहूं मैं केती, ए भी याही जुबां कहे एती।

याको जाने सृष्ट ब्रह्म, जाको इस्कै करम धरम॥३०॥

इश्क (प्रेम) की महिमा का मैं कितना वर्णन करूँ? इस संसार में यह बात भी मेरी यह जिह्वा ही कह पा रही है, अन्यथा अन्य किसी के लिये यह कदापि सम्भव नहीं है। इश्क के वास्तविक स्वरूप को मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, जिनका धर्म-कर्म सभी कुछ इश्कमयी है।

**भावार्थ-** श्री महामति जी के धाम-हृदय में प्रेम के सागर स्वयं अक्षरातीत श्री राज जी ही विराजमान हैं, इसलिए इश्क का इतना वर्णन सम्भव हो पा रहा है। संसार के अन्य प्राणी (ऋषि, मुनि, देवी, देवता, और सन्त-फकीर आदि) तो परमधाम के प्रेम के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकते।

इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "करम" (कर्म)

का तात्पर्य लीला से है और "धरम" (धर्म) का भाव ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में स्थित प्रेममयी स्वभाव से है। गुण और स्वभाव के आधार पर ही लीला (कर्म) का होना सम्भव है। यहाँ धर्म को लौकिक भावों में नहीं लेना चाहिए, बल्कि "धार्यते येन स धर्मः।" प्रेममयी गुण के कारण प्रेममयी स्वभाव का होना ही धर्म है, जिससे लीला (कर्म) का प्रकट होना (धारण किया जाना) सम्भव है।

**इस्क है याको आहार, और इस्कै याको वेहेवार।**

**इस्क है याकी दृष्ट, ए इस्कै की है सृष्ट॥३१॥**

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों का आहार और व्यवहार प्रेम (इश्क) का है। इनकी दृष्टि में मात्र प्रेम ही प्रेम बसा होता है, क्योंकि इनका सम्पूर्ण स्वरूप प्रेममयी है।

**भावार्थ-** जिस प्रकार आहार ग्रहण किये बिना जीवन का अस्तित्व सम्भव नहीं होता, उसी प्रकार प्रेम के बिना ब्रह्मसृष्टियों के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यही कारण है कि इस चौपाई के प्रथम चरण में प्रेम को ही परमधाम की आत्माओं का आहार कहा गया है।

व्यवहार का तात्पर्य परमधाम की सम्पूर्ण प्रेममयी लीला से है। परात्म के नख से शिख तक प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है, इसलिये इन्हें इश्क की सृष्टि कहा जाता है।

ए तो प्रेमें के हैं पात्र, याके प्रेमें है दिन रात्र।

याके प्रेमें के अंकूर, याके प्रेम अंग निज नूर॥३२॥

एकमात्र ये ब्रह्मसृष्टियाँ ही प्रेम की पात्र हैं। इनका दिन-रात्रि का सम्पूर्ण समय प्रेम में ही व्यतीत होता है। इनका

अँकुर भी प्रेम का ही है। इनके नूरमयी अंग-प्रत्यंग प्रेम-रस से भरपूर हैं।

**भावार्थ-** "पात्र" का तात्पर्य पात्रता (योग्यता) रखने वाले से है। एकमात्र ब्रह्मसृष्टियों में ही प्रेम भरा होता है, इसलिये इन्हें प्रेम के पात्र स्वरूप कहा गया है।

किसी बीज में सम्पूर्ण पौधा या वृक्ष विद्यमान होता है, अर्थात् बीज में पौधे का मारिफत (परमसत्य) स्वरूप छिपा रहता है, मारिफत से हकीकत (परमसत्य से सत्य) में रूपान्तरण ही अँकुरित होना कहलाता है। इस प्रकार "अँकूर" का तात्पर्य है- परात्म के धाम-हृदय में विद्यमान प्रेम का अंग-प्रत्यंग में झलकना तथा लीला में भाग लेना।

याके प्रेमें के भूखन, याके प्रेमें के हैं तन।

याके प्रेमें के वस्तर, ए बसत प्रेम के घर॥३३॥

इन ब्रह्मसृष्टियों के नूरमयी तन प्रेम के हैं। इनमें सुशोभित होने वाले चेतन स्वरूप वस्त्र एवं आभूषण भी प्रेम के ही हैं। इनका मूल घर परमधाम है, जहाँ प्रेम ही प्रेम की लीला है।

याके प्रेम श्रवन मुख बान, याको प्रेम सेवा प्रेम गान।

याको ग्यान भी प्रेम को मूल, याको चलन न होए प्रेम भूल॥३४॥

परमधाम में इन ब्रह्मसृष्टियों के द्वारा किसी बात को सुनने में भी प्रेम भरा होता है। जब ये अपने मुख से कुछ कहती हैं, तो उसमें भी प्रेम का रस टपकता है। इनके द्वारा धनी को रिझाने के लिये होने वाली सेवा एवं गायन में भी अखण्ड प्रेम का रस प्रवाहित होता रहता है। इनके

ज्ञान में भी मूल रूप से प्रेम विद्यमान होता है। इनके व्यवहार में भूलवश भी कभी प्रेम की अनुपस्थिति नहीं होती।

**भावार्थ-** "ए सब इच्छा सों मंगावें, पर सखियों को सेवा भावें।" (परिकरमा ३/२०२) के इस कथन से यह स्पष्ट है कि परमधाम में भी सेवा होती है, किन्तु वहाँ की सेवा संसार की सेवा से पूर्णतया अलग है। वहाँ की सेवा ब्रह्मानन्द लीला का अंग है तथा उस सेवा में वहदत (एकत्व), इश्क (प्रेम), तथा निस्वत (मूल सम्बन्ध) आदि का रस क्रीड़ा करता है।

इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब परमधाम में भी ज्ञान (इल्म) है, तो इश्क रब्द क्यों हुआ तथा इस खेल में आत्माओं को लाकर तारतम ज्ञान क्यों देना पड़ा?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों को २५ पक्षों एवं युगल स्वरूप को रिझाने की कला का ही ज्ञान है। परमधाम में एकदिली होने के कारण सबका इश्क समान है, इसलिये वहाँ पर निर्णय होने का प्रश्न ही नहीं था। "अक्षरातीत का मारिफत (परम सत्य) स्वरूप हृदय ही सभी रूपों में लीला कर रहा है", इस रहस्य को जानने के लिये आत्माओं का कालमाया के ऐसे ब्रह्माण्ड में आना जरूरी था, जहाँ इश्क का विलास न होने की स्थिति में तारतम वाणी के द्वारा उसकी तथा एकदिली की वास्तविक पहचान करायी जा सके।

याको प्रेमें सेहेज सुभाव, ए प्रेमें देखे दाव।

बिना प्रेम न कछुए पाइए, याके सब अंग प्रेम सोहाइए॥३५॥



इन ब्रह्मसृष्टियों का मूल स्वभाव प्रेम से भरपूर होता है। ये धाम धनी को अपने प्रेम से रिझाने के लिये अवसर खोजा करती हैं। इनके अन्दर प्रेम के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं है। इनके सभी अंगों में प्रेम की ही शोभा है।

**भावार्थ-** "सेहेज सुभाव" (सहज स्वभाव) का तात्पर्य है- वह मूल स्वभाव, जिसमें नाममात्र के लिये भी कृत्रिमता न हो।

जिस प्रकार नूर के अन्दर प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य आदि गुण विद्यमान होते हैं, उसी प्रकार वहदत के सिद्धान्त के अनुसार प्रेम में भी ज्ञान, सौन्दर्य, और एकत्व आदि की विद्यमानता होती है। परमधाम की यह विशेषता ही है कि वहाँ के एक फल में सभी फलों के गुण (रस आदि) विद्यमान होते हैं। इसी प्रकार प्रेम में भी सब कुछ विद्यमान हैं। यही कारण है कि इस चौपाई के तीसरे

चरण में यह बात कही गयी है कि सखियों के तनों में प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, अर्थात् प्रेम में सब कुछ (आनन्द, सौन्दर्य, ज्ञान आदि) विद्यमान है।

**याकी गत भांत सब प्रेम, याके प्रेमैं कुसलखेम।**

**याके प्रेम इंद्री अंग गुन, बुध प्रकृती नहीं प्रेम बिन॥३६॥**

इनकी सभी अवस्थाओं में केवल प्रेम ही प्रेम होता है। इनका कुशलक्षेम भी प्रेम का ही होता है। इनके गुण, अंग (हृदय), और इन्द्रियों में मात्र प्रेम ही प्रेम भरा होता है। इन आत्माओं की बुद्धि और प्रकृति में प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता।

**भावार्थ—** कुशलक्षेम का तात्पर्य है— इस पञ्चभूतात्मक जगत् में तीन गुण सत्त्व, रज, और तम होते हैं, जबकि परमधाम में तीन गुण सत्, चित्, और आनन्द हैं। सम्पूर्ण

परमधाम सच्चिदानन्दमयी है, जिसके कण-कण में प्रेम का स्वरूप लीला करता है।

याको प्रेमें को विस्तार, याको प्रेमें को आचार।

याके प्रेमें के तेज जोत, याके प्रेमें अंग उद्धोत॥३७॥

इन ब्रह्मसृष्टियों का नख से शिख तक का सम्पूर्ण स्वरूप (विस्तार) प्रेम का है। इनके प्रत्येक व्यवहार में प्रेम ही प्रेम झलकता है। इनके नूरी तन में दृष्टिगोचर होने वाले तेज और ज्योति में भी प्रेम की माधुर्यता के दर्शन होते हैं। इनके अंग-प्रत्यंग में प्रेम की आभा का अनुभव होता है अर्थात् प्रेम का मधुर रस प्रवाहित होता रहता है।

याको प्रेमें है रस रंग, याको प्रेम सबों में अभंग।

याको प्रेम सनेह सुख साज, याको प्रेम खेलन संग राज॥३८॥

इन ब्रह्मात्माओं के प्रेम में ही वास्तविक रस-रंग है। सभी लीलाओं में इनका अखण्ड प्रेम दृष्टिगोचर होता है। इनके प्रेम-स्नेह में ही सुख की सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान होती है। श्री राज जी के साथ होने वाली लीला (खेल) में इनका प्रेम प्रकट होता है।

**भावार्थ-** किसी द्रव्य का अनुभव में आने वाला सारभूत अंश रस कहलाता है और उससे प्राप्त होने वाला आनन्द रंग कहा जाता है। यद्यपि अक्षरातीत के हृदय से प्रवाहित होने वाले रस अनन्त हैं, किन्तु उन्हें संक्षेप में आठ भागों में बाँटा गया है जो आठ सागरों के रूप में जाने जाते हैं। भले ही इश्क (प्रेम) का सागर इन आठ सागरों में आता है, किन्तु प्रत्येक सागर में उसका स्वरूप विद्यमान है। इसी प्रकार प्रत्येक सागर में अन्य सातों सागर गुह्य (बातिनी) रूप से विद्यमान होते हैं। इनसे प्राप्त होने वाले

आनन्द को ही रस-रंग कहते हैं। जिस प्रकार, सूर्य के तेज से चन्द्रमा की चाँदनी का प्रकटीकरण माना जाता है, उसी प्रकार प्रेम से स्नेह का प्रकटीकरण होता है।

याके प्रेम सेज्या सिनगार, वाको वार न पाइए पार।

प्रेम अरस परस स्यामा स्याम, सैयां वतन धनी धाम॥३९॥

प्रेम ही इनकी सेज (शैय्या) है और प्रेम ही इनका शृंगार है। इस प्रेम का कोई भी अन्त नहीं पा सकता। प्रेम युगल स्वरूप श्री राज जी और श्यामा जी में ओत-प्रोत है। युगल स्वरूप का प्रेममयी धाम ही इन आत्माओं का भी निजधाम है।

**भावार्थ-** अपनी हृदय रूपी सेज पर ही प्रियतम को विराजमान किया जाता है। परमधाम की आत्माओं के हृदय में प्रेम ही प्रेम भरा होता है। वही प्रेम द्रवीभूत होकर

नख से शिख तक सम्पूर्ण श्रृंगार के रूप में दिखायी देता है। युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के सम्पूर्ण श्रृंगार में प्रेम ही प्रेम भरा है। योगमाया में प्रेम और परमधाम में केवल इश्क (प्रेम न होने) की बात कहना हास्यापद है। वस्तुतः प्रेम और इश्क में मात्र भाषा भेद है , इनमें रंचमात्र भी स्वरूपतः भेद नहीं है।

**प्रेम पिया जी के आउध, प्रेम स्यामा जी के अंग सुध।**

**ब्रह्मसृष्टी की एही विध, ए दूजे काहू ना दिध॥४०॥**

प्रेम ही प्रियतम का आयुध (हथियार, अस्त्र-शस्त्र) है। परमधाम का प्रेम ही श्यामा जी के अंगों की सुधि (पहचान, अनुभव) कराने वाला है। प्रेम की इस राह पर मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही चल पाती हैं। परमधाम का यह प्रेम अन्य किसी (ईश्वरी या जीव सृष्टि) को नहीं मिलता।

**भावार्थ-** माया के सभी आयुधों (हथियारों) को प्रियतम श्री राज जी के प्रेम के द्वारा नष्ट किया जा सकता है। जहाँ धनी का प्रेम होता है, वहाँ माया पास में भी नहीं फटकती। प्रेम को धनी का आयुध कहे जाने का यही कारण है।

प्रेम सेन्या है अति बड़ी, जब मूल आउध ले चढ़ी।  
 सो रहे न काहू की पकड़ी, यासो सके न कोई लड़ी॥४१॥

प्रेम की सेना बहुत बड़ी है। जब यह अपने समर्पण रूपी मूल आयुध के साथ माया के ऊपर आक्रमण कर देती है, तो माया की कोई भी शक्ति उसे हरा (पकड़) नहीं सकती। इससे लड़ने का सामर्थ्य माया की किसी भी शक्ति में नहीं है।

**भावार्थ-** तारतम वाणी के प्रकाश में अपनी "मैं" का

परित्याग करके जो धाम धनी को अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है और उनके प्रेम में डूब जाता है, उसके धाम हृदय में अक्षरातीत की शोभा अखण्ड रूप से विराजमान हो जाती है। उसके ऊपर माया के किसी भी आयुध (काम, क्रोध, लोभ आदि) का प्रभाव नहीं होता। इस सम्बन्ध में खिल्वत २/३० में कहा गया है—

मारया कहा काढ़या कहा, और कहा हो जुदा।

एही में खुदी टले, तब बाकी रह्या खुदा॥

प्रेम आप पर कोई ना लेखे, बिना धनी काहूं न देखे।

प्रेम राखे धनी को संग, अपनो भी न देखे अंग॥४२॥

प्रेम आत्मा के ऊपर माया के किसी भी प्रभाव को आने नहीं देता। वह धनी के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं देखता, अर्थात् हृदय में प्रेम आते ही श्री राज जी के



अतिरिक्त अन्य कुछ भी (शरीर, संसार) नहीं दिखायी देता है। प्रेम सदा ही अपने साथ प्रियतम अक्षरातीत को रखता है। ऐसी आत्मा को जीव का शरीर आदि भी नहीं दिखायी देता।

**भावार्थ-** इस चौपाई के प्रथम चरण में कथित "आप" का तात्पर्य "आत्मा" से है, क्योंकि इसी प्रकरण की चौपाई ४३ में कहा गया है कि "पिया बिना आपको भी उड़ावे।" स्पष्ट है कि यहाँ प्रेम के समाप्त होने का प्रसंग नहीं है, बल्कि आत्मा भावात्मक रूप से अपने शरीर को उड़ा देना चाहती है।

इस चौपाई के तीसरे चरण का भाव यह है कि जहाँ प्रेम होता है, वहीं पर प्रियतम अक्षरातीत का स्वरूप विद्यमान होता है। जिस आत्मा के धाम हृदय में प्रेम आ जाता है, उसे यह पञ्चभूतात्मक शरीर या संसार नहीं

दिखायी देता।

और सबन सों चित भंग, एक पिया जी सों रस रंग।

प्रेम पिया जी के अंग भावे, पिया बिना आपको भी उड़ावे॥४३॥

हृदय में प्रेम आते ही समस्त संसार और शरीर आदि से चित्त हट जाता है। वह एकमात्र धाम धनी के रस के आनन्द में ही डूब जाता है। श्री राज जी के दिल को प्रेम बहुत ही अच्छा लगता है। जब प्रियतम से मिलन नहीं होता, तो प्रेम के द्वारा आत्मा की स्थिति ऐसी बन जाती है कि वह स्वयं के अस्तित्व को भी मिटा देना चाहती है।

**भावार्थ**— इस चौपाई के चौथे चरण में आत्मा को उड़ाने का आशय भावात्मक है। इसे श्रीमुखवाणी किरंतन ८१/१२ के इस कथन से जोड़कर देखना उचित होगा— "एक गुन जो याद आवे, तबहीं उड़े अरवाए।"

जो कोई पिउ के अंग प्यारा, ताको निमख न करे प्रेम न्यारा।

प्रेम पिया को भावे सो करे, पिया के दिल की दिल धरे॥४४॥

प्रियतम के हृदय को जो सुन्दरसाथ प्यारा होता है, उसे प्रेम एक क्षण के लिये भी धनी से अलग नहीं करता। प्रेम वही करता है, जो श्री राज जी के दिल को अच्छा लगता है। प्रेम प्रियतम के हृदय की गुह्यतम बातों को भी आत्मा के धाम-हृदय में स्थापित कर देता है।

**भावार्थ-** अक्षरातीत वहदत की मारिफत के स्वरूप हैं। यद्यपि उनका प्रेम सबके लिये बराबर ही होता है, किन्तु "सब पर मेहेर मेहेबूब की, पर पावे करनी माफक" (किरंतन ७८/१३) के इस कथनानुसार धनी के प्रेम की पात्रता को कोई-कोई ही प्राप्त कर पाता है। श्री राज जी के हृदय का प्रेम जो आत्मा प्राप्त कर लेती है, वह आत्मिक रूप से क्षण भर के लिये भी अपने प्राण प्रियतम

से अलग नहीं हो पाती।

प्रेम आतम दृष्ट न छोड़े, प्रेम बाहेर दृष्ट न जोड़े।

प्रेम पिया के चितसों चित न मोड़े, प्रेम और सबन सों तोड़े॥४५॥

हृदय में प्रेम आ जाने पर आत्मिक दृष्टि कभी भी बन्द नहीं होती अर्थात् सर्वदा खुली ही रहती है। प्रेम के कारण आत्मिक दृष्टि इस बाह्य जगत में नहीं उलझती , बल्कि एकमात्र परमधाम की ओर ही बनी रहती है। प्रेम के कारण ही सभी सांसारिक सम्बन्धों से आत्मा का दिल टूट जाता है और केवल धाम धनी के दिल से ही जुड़ा रहता है।

पिया के दिल की दिल लेवे, रैन दिन पिया दिल सेवे।

पिया के दिल बिना सब जेहेर, औरों सों होए गयो सब वैर॥४६॥

श्री राज जी के हृदय की अत्यन्त गुह्यतम बातों को प्रेम ही आत्मा के दिल में लाता है। वह दिन-रात प्रियतम के दिल को रिझाता है। उसे संसार के सभी सम्बन्धी शत्रु के समान प्रतीत होते हैं। प्रेम की गहन स्थिति में आत्मा के हृदय की ऐसी अवस्था हो जाती है कि प्रियतम को रिझाने के अतिरिक्त अन्य सब कुछ विष के समान लगता है।

**भावार्थ-** "दिल की दिल लेना" एक मुहावरा है, जिसका तात्पर्य है माशूक के दिल की छिपी हुई बातों के रहस्य को अपने हृदय में आत्मसात् कर लेना। बिना प्रेम के यह कदापि सम्भव नहीं है। जब प्रियतम अक्षरातीत से गहन प्रेम की स्थिति हो जाती है, तो संसार के सभी सम्बन्धियों (माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी या मित्र) से लगाव हट जाता है। उस समय उनसे व्यर्थ की

सांसारिक बातें करना या उनसे मिलना-जुलना बहुत ही बुरा लगता है। इसे ही इस चौपाई के चौथे चरण में वैर भाव हो जाना कहा गया है।

पिया के दिल की सब जाने, पिया जी को दिल पेहेचाने।

अंग पिउजी के दिल आने, पिउ बिना आग जैसी कर माने॥४७॥

प्रेम के द्वारा ही धाम धनी के दिल की सभी बातों को जाना जाता है। श्री राज जी के हृदय की वास्तविक पहचान भी प्रेम के द्वारा ही सम्भव है। यह प्रेम ही है, जो आत्मा के धाम हृदय में प्रियतम के अंग-अंग की शोभा को बसा देता है। जब आत्मा के धाम-हृदय में प्रेम का रस प्रवाहित होने लगता है, तो यह सम्पूर्ण संसार अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी प्रतीत होता है।

प्रेम अंदर ऐसी भई, नींद माहें की उड़ कहूं गई।

गुन अंग इंद्री पख, पिया प्रेमें हुए सब लख॥४८॥

हृदय में प्रेम आ जाने पर ऐसा अनुभव होता है कि जैसे माया की नींद उड़ कर कहीं चली गयी है। प्रेम के द्वारा ही गुण, अन्तःकरण, इन्द्रियों, तथा पक्षों (स्वभावों) की वास्तविक पहचान हो पाती है, अर्थात् इन पर यथार्थ रूप से नियन्त्रण हो पाता है।

**भावार्थ-** प्रायः संसार के सभी प्राणी तीन गुण (सत्त्व, रज, तम), अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार), इन्द्रियों, एवं पक्षों (प्रवृत्ति एवं निवृत्ति) के बन्धन में फँसे रहते हैं। प्रियतम का प्रेम आ जाने पर इनके ऊपर पूर्णतया नियन्त्रण हो जाता है, अर्थात् माया के बन्धनों में फँसाने वाली इनकी शक्तियों की वास्तविक पहचान हो जाती है। इस अवस्था में आत्मा का हृदय सत्त्व, रज,

और तम से रहित त्रिगुणातीत मार्ग पर विचरण करने लगता है। जीव के मन, चित्त, बुद्धि, एवं अहंकार में भी मात्र प्रेम ही प्रेम बस जाता है। अन्तःकरण की प्रवृत्तियों— मनन, चिन्तन, विवेचना, एवं अहम्— में प्रेम एवं धनी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रहता। इन्द्रियाँ पूर्णतया निर्विकार हो जाती हैं। उसका हृदय भी राग एवं वैराग्य से परे प्रियतम के विशुद्ध प्रेम में डूब जाता है।

**सब देखे पिया दिल सामी, दिल देखे अंतरजामी।**

**पिउ के दिल की पेहेले आवे, पिया मुख थें केहेने न पावें॥४९॥**

सभी अँगनायें अपने धाम—हृदय में विराजमान प्रियतम अक्षरातीत को प्रत्यक्ष रूप से देखा करती हैं। वे प्रेम के द्वारा इस प्रकार अन्तर्यामी हो जाती हैं कि धाम धनी अपने मुख से कुछ भी कहें, इसके पहले ही वे उनके



दिल की सभी बातों को जान जाती हैं।

**भावार्थ-** "आंकड़ी अन्तर्यामी की, कबहुं न खोली किन्" (किरंतन ३४/२४) से स्पष्ट है कि अन्तर्यामी अक्षरातीत को ही कहा जाता है, किन्तु इस चौपाई में सखियों को भी अन्तर्यामी कहा गया है। प्रेम में एकरस हो जाने पर प्रिया-प्रियतम (माशूक-आशिक) में किसी प्रकार का भेद नहीं रह जाता। दोनों ही एक दूसरे के हृदय की बातों को जानने लगते हैं। वस्तुतः यह चौपाई परमधाम की लीला से सम्बन्धित है।

आतम एक हुई निसंक, ना रही जुदागी रंचक।

प्रेम दिल भर हुई दिल, पिया प्रेमे रहे हिल मिल॥५०॥

निश्चित रूप से आत्मा प्रेम में डूबकर प्रियतम से एकाकार हो जाती है। इस अवस्था में दोनों में थोड़ा सा

(नाम मात्र के लिये) भी वियोग नहीं रह जाता। वह अपने दिल में श्री राज जी का प्रेम भरकर एकदिली (वहदत) में स्थित हो जाती है। प्रेम के द्वारा ही दोनों का स्वरूप आपस में मिलकर एक स्वरूप में दृष्टिगोचर होता है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रेम के द्वारा प्रियतम के दीदार एवं मारिफत (परमसत्य) की अवस्था में पहुँचने का मनोहारी चित्रण किया गया है। यह उपलब्धि एकमात्र प्रेम के द्वारा ही सम्भव है।

प्रेम आप न देखे कित, दृष्ट पियाई देखे जित।

निज नजर प्रेम खोलत, जाग धाम देखावे सर्वत्र॥५१॥

हृदय में प्रेम आ जाने पर आत्मा को सर्वत्र प्रियतम का ही स्वरूप दिखायी पड़ता है। वह प्रेम में इतनी डूब जाती है कि उसे कहीं भी अपना स्वरूप नहीं दिखायी पड़ता ,

अर्थात् उसे अपने स्वरूप का आभास नहीं होता। प्रेम आत्मा की अन्तर्दृष्टि को खोल देता है तथा उसे जाग्रत करके सम्पूर्ण परमधाम का दर्शन कराता है।

**भावार्थ-** प्रेम में मग्न होकर आत्मा अपने स्वरूप को भूल जाती है तथा मात्र प्रियतम के ही स्वरूप में खो जाती है। इस चौपाई के प्रथम चरण में यही भाव प्रकट किया गया है। आत्म-जाग्रति एवं प्रियतम तथा परमधाम के दर्शन का एकमात्र साधन प्रेम ही है, अन्य कुछ भी नहीं। यहाँ प्रेम का तात्पर्य नाच-कूद नहीं, बल्कि युगल स्वरूप की शोभा में अपनी आत्मिक दृष्टि को डुबो देना है।

पिया प्रेमें सों पेहेचान, प्रेम धाम के देवे निसान।

प्रेम ऐसी भांत सुधारे, ठौर बैठे पार उतारे॥५२॥

श्री राज जी की वास्तविक पहचान प्रेम से ही होती है। प्रेम ही परमधाम के पच्चीस पक्षों का दर्शन (दीदार) कराता है। प्रेम आत्म-जाग्रति का पथ इस प्रकार तैयार कर देता है कि इस संसार में शरीर के रहते-रहते ही आत्मिक दृष्टि को भवसागर से पार करके परमधाम में पहुँचा देता है।

**भावार्थ-** यद्यपि ज्ञान के द्वारा धाम धनी को जाना तो जा सकता है, किन्तु बिना प्रेम के अनुभूतिजन्य वास्तविक पहचान नहीं हो सकती। सुरता जब माया से परे होने लगती है, तो इसे बोलचाल की भाषा में सुधरना कहते हैं। आत्मा का जीव की मायावी लीला को देखना ही बिगड़ना कहते हैं। कलस हि. १२/११ में इसे इन शब्दों में व्यक्त किया गया है-

तुम आइयां छल देखने, भिल गैया मांहें छल।

छल को छल ना लागहीं, ओ लहरी ओ जल॥

पंथ होवे कोट कल्प, प्रेम पोहोंचावे मिने पलक।

जब आत्म प्रेमसों लागी, दृष्ट अंतर तबहीं जागी॥५३॥

अध्यात्म के परम लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग, जो करोड़ों कल्पों में पूरा होने वाला होता है, वह प्रेम के द्वारा पल भर में ही प्राप्त हो जाता है। जब आत्मा में प्रेम की रसधारा प्रवाहित होने लगती है, तो उस समय उसकी अन्तर्दृष्टि खुल जाती है (जग जाती है)।

**भावार्थ-** एक कल्प में १४ मन्वन्तर अर्थात् ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष होते हैं। उसके अन्तर्गत १ हजार बार सतयुग, त्रेता, द्वापर, एवं कलियुग बीत जाते हैं।

संसार के कर्मकाण्डों, जप, तप, एवं नवधा भक्ति से

प्रियतम अक्षरातीत का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। करोड़ों कल्पों का कथन अतिशयोक्ति अलंकार में किया गया है। संसार में सभी प्रचलित कर्मकाण्ड एवं उपासना पद्धतियाँ स्वर्ग, वैकुण्ठ, और निराकार तक ही ले जाती हैं। विहङ्गम (सुरति-शब्द) योग के द्वारा बेहद में जाया जाता है, किन्तु अक्षरातीत एवं परमधाम के साक्षात्कार के लिये तारतम ज्ञान द्वारा धनी की प्रेममयी चितवनि में डूबने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। आत्मा के द्वारा जीव के ऊपर विराजमान होकर उसकी मायावी लीला को देखना बहिर्दृष्टि है तथा अपने धाम-हृदय में युगल स्वरूप सहित परमधाम को देखना उसकी अन्तर्दृष्टि है।

जब आया प्रेम सोहागी, तब मोह जल लेहेरां भागी।

जब उठे प्रेम के तरंग, ले करी स्याम के संग॥५४॥

जब हृदय में अँगना भाव का माधुर्य प्रेम आ जाता है, तब माया की लहरें भाग जाती हैं। इस प्रकार जब प्रेम की तरंगे लहराने लगती हैं, तो प्रियतम अक्षरातीत से मिलन हो जाता है।

**भावार्थ—** अन्धकार और प्रकाश में जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध माया और प्रेम में भी है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश के फैलते ही अन्धकार भाग जाता है, उसी प्रकार प्रेम के आते ही माया भाग जाती है (समाप्त हो जाती है)।

पेहेचान हुती न एते दिन, प्रेम नाहीं पिया सों भिन।

पिया प्रेम पेहेचान जो एक, भेली होसी सबों में विवेक॥५५॥

प्रेम और श्री राज जी के स्वरूप में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं है। आज दिन तक किसी को भी यह पहचान नहीं थी। अब तारतम वाणी के द्वारा सभी सुन्दरसाथ को यह संशय रहित यथार्थ (विवेकपूर्ण) पहचान हो जायेगी कि धाम धनी और प्रेम का स्वरूप एक ही है।

**भावार्थ-** जिस प्रकार फूल में सुगन्धि और शक्कर में मिठास ओत-प्रोत होती है, उसी प्रकार श्री राज जी और प्रेम का स्वरूप एक-दूसरे में इस प्रकार ओत-प्रोत होता है कि इन्हे दो कहा ही नहीं जा सकता।

नूर का अर्थ प्रेम भी होता है। श्री राजश्यामा जी एवं परमधाम का सम्पूर्ण स्वरूप नूरमयी है। इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम सहित युगल स्वरूप भी प्रेममयी ही हैं।



जब चढ़े प्रेम के रस, तब हुए धाम धनी बस।

जब उपजे प्रेम के तरंग, तब हुआ धाम धनी सों संग॥५६॥

जब आत्मा प्रियतम के प्रेम-रस में डूब जाती है, तब वह उन्हें अपने वश में भी कर लेती है। धाम धनी से मिलन तभी हो पाता है, जब हृदय में प्रेम की तरंगें (लहरें) हिलोरें मारने लगती हैं।

**भावार्थ-** श्री राज जी को वश में करने का तात्पर्य है- प्रेम के द्वारा धनी को इस प्रकार रिझा लेना (उनकी शोभा में डूब जाना) कि दोनों दिल अरस-परस (ओत-प्रोत) हो जायें। इस अवस्था में आत्मा की प्रत्येक इच्छा को धनी के द्वारा पूर्ण किया जाता है। किन्तु यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इस अवस्था में उस जाग्रत आत्मा की भी अपनी कोई व्यक्तिगत इच्छा नहीं रह जाती, क्योंकि उसका व्यक्तिगत अहम् धनी के प्रेम में

विलीन हो चुका होता है तथा उसकी प्रत्येक इच्छा धनी के दिल के द्वारा ही संचालित होती है। खिल्वत २/३० के शब्दों में इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

मारया कहया काढ़या कहया, और कहया हो जुदा।

एही मैं खुदी टले, तो बाकी रहया खुदा॥

**प्रेम नजरों जो कछू आया, ताको इतहीं अखंड पोहोंचाया।**

**प्रेम है बड़ो विस्तार, भवजल हुतो जो खार॥५७॥**

यदि हृदय में थोड़ा सा भी धनी के प्रति प्रेम आ जाये, तो इस संसार में रहते हुए ही प्रेम उसे अखण्ड धाम की अनुभूति करा देता है। प्रेम की महिमा का क्षेत्र अनन्त (बहुत अधिक) है। यह सारा ब्रह्माण्ड तो खारे जल के समान निरर्थक है।

**भावार्थ—** इस चौपाई के प्रथम चरण में कथित "जो

कछू" का तात्पर्य है- यदि किंचित मात्र (कुछ) भी।

खारा जल न तो पीने के योग्य होता है और न नहाने या कृषि कार्य के योग्य। उसी प्रकार यह स्वप्नवत् संसार भी प्रेम, शान्ति, और आनन्द की दृष्टि से निरर्थक है। इस चौपाई के चौथे चरण में संसार को खारे जल का सागर कहने का यही आशय है।

**सो मेट किया सुधा रस, सुख अखंड धनी को परस।**

**प्रेमं गम अगम की करी, सो सुध वैराट में विस्तरी॥५८॥**

किन्तु धनी के प्रेम ने उस खारेपन को समाप्त करके संसार को अपने अमृतमयी रस से ओत-प्रोत कर दिया और सुन्दरसाथ के हृदय में धनी के अखण्ड सुख को स्थापित कर दिया। प्रेम से ही उस अलभ्य (अगम्य) परमधाम की पहचान हुई, जो आज दिन तक नहीं हो

सकी थी। तारतम वाणी के ज्ञान से यह पहचान अब सारे संसार में फैल रही है।

**भावार्थ-** तारतम वाणी के प्रकाश में ही परमधाम , अपनी परात्म, तथा धनी के स्वरूप की वास्तविक पहचान होती है तथा प्रेम का रस प्रवाहित होता है। प्रेम के रस में डूबने पर प्रियतम के दीदार में जो रस (आनन्द) प्राप्त होता है, उसे ही इस चौपाई में "सुधा रस" अर्थात् अमृत-रस कहा गया है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर नश्वर संसार भी गरिमामयी हो जाता है, जिसे इस चौपाई के प्रथम चरण में सुधा रस से सराबोर कहने की बात की गयी है।

प्रेमें करी अलख की लख, त्रैलोकी की खोली चख।

तब छूट्या सबों से अभख, सब हुए स्याम सनमुख॥५९॥

जिस अक्षरातीत को आज दिन तक कोई भी जान नहीं सका था, प्रेम ने उनकी स्पष्ट पहचान करा दी है और तीनों लोकों (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) के प्राणियों की अन्तर्दृष्टि खोल दी है। इस प्रकार तारतम वाणी के प्रकाश में प्रेम भरी दृष्टि पाकर सभी ने न सेवन करने (न फँसने) योग्य इस संसार का परित्याग कर दिया और प्रियतम अक्षरातीत का दर्शन किया।

**भावार्थ—** आकाश, पाताल, और पृथ्वी के रूप में चौदह लोकों का विभाजन तीन लोकों में हो जाता है। भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जन लोक, तप लोक, तथा सत्यलोक सभी आकाश लोक में ही समाहित हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में— सत्व, रज, और तम से युक्त इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड को त्रिलोकी कहते हैं। वैदिक दृष्टि में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और द्युलोक ही तीन लोक हैं। तारतम

वाणी के प्रकाश में धनी के स्वरूप को जानकर, प्रेम के द्वारा ही अन्तर्दृष्टि खुल पाती है, और कर्म-फल-भोग के बन्धनों से छुटकारा सम्भव हो पाता है।

**जब प्रेम सबों अंग पिआ, अपना अनुभव कर लिया।**

**तब वार फेर जीव दिया, अब न्यारे न जीवन जिया॥६०॥**

जब सबके हृदय में प्रेम का निवास हो जाता है, तो उन्हें (सभी को) अपने "निजस्वरूप" का साक्षात्कार भी हो जाता है। ऐसी अवस्था में जीव अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है और उसके लिये प्रियतम से अलग होकर इस संसार में रह पाना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं हो पाता।

मूल अंग आया इस्क, दूजा देखे न बिना हक।

जब छूटे प्रेम के पूर, प्रगट्या निज वतनी सूर॥६१॥

जब परात्म के हृदय का प्रेम (इश्क) आत्मा के हृदय में आ जाता है, तो उस समय आत्मा को श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखायी नहीं देता। जब आत्मा के धाम हृदय में प्रेम के पूर बहने लगते हैं, तो धाम धनी का स्वरूप (परमधाम का सूर्य) हृदय में बस जाता है।

**भावार्थ-** परात्म के दिल में तो अथाह (लबालब) इश्क भरा ही हुआ है। जब आत्मा संसार और जीव के शरीर से अपनी दृष्टि हटाकर युगल स्वरूप को देखने के लिये मूल मिलावा की ओर अपनी दृष्टि करती है, तो उसके अन्दर प्रेम के पूर के पूर बहने लगते हैं। इसे ही चितवनि (प्रेममयी ध्यान) करना कहते हैं। मात्र इसी प्रक्रिया से ही प्रियतम का दीदार होता है। जिस प्रकार यहाँ के सूर्य

से समस्त संसार प्रकाशित होता है, उसी प्रकार समस्त परमधाम भी श्री राज जी के ही नूर से सुशोभित है, इसलिये धाम धनी को परमधाम का सूर्य कहते हैं।

**जब प्रेम हुआ झकझोल, तब अंतर पट दिए खोल।**

**जब चढ़े प्रेम के पुन्ज, निज नजरों आया निकुंज॥६२॥**

जब प्रेम अपने पूर्ण रंग (शबाब, यौवन) में होता है, तब आत्मिक दृष्टि खुल जाती है। जब हृदय में पूर के पूर प्रवाहित होते हैं, तो आत्मा को परमधाम के सुन्दर वनों की शोभा दृष्टिगोचर होने लगती है।

**भावार्थ—** आत्मा का स्वरूप परात्म का ही प्रतिबिम्बित स्वरूप है, जो इस पञ्चभौतिक शरीर और जीव से परे होता है। उसकी दृष्टि माया की लीला को देख रही है। जब वह माया से हटकर परमधाम को देखने लगे, तो इसे



अन्तर्दृष्टि का खुलना या अन्तर पट (पर्दा) का हटना कहते हैं। चौरस आकृति में आये हुए वनों की शोभा को कुञ्ज तथा गोलाकृति वाले वनों की शोभा को निकुञ्ज कहते हैं।

**जब प्रेम हुआ प्रघल, अंग आया धाम का बल।**

**तुम यों जिन जानो कोए, बिन सोहागिन प्रेम न होए॥६३॥**

जब हृदय में प्रेम का रस प्रवाहित होने लगता है, तब परमधाम की शक्ति भी आत्मा के धाम हृदय में आ जाती है। हे साथ जी! आप प्रेम को इस प्रकार से हल्के में नहीं लेना (नहीं समझना)। यह तो इतना अलौकिक है कि ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रेम की राह पर चल ही नहीं सकता।

**भावार्थ—** प्रेम आ जाने पर प्रियतम की छवि दिल में

बस जाती है, जिसके परिणामस्वरूप ज्ञान, धनी का जोश, आदेश (हुक्म), मूल सम्बन्ध के प्रति अटूट दृढ़ता, एवं एकत्व (वहदत) की अनुभूति आदि का सुख प्राप्त होने लगता है। इसे ही "धाम का बल" कहा गया है। हृदय में उत्पन्न होने वाली इच्छा अवश्य ही पूर्ण होती है। यही आदेश (हुक्म) की शक्ति का प्राप्त होना है।

**प्रेम खोल देवे सब द्वार, पारै के पार जो पार।**

**प्रेम धाम धनी को विचार, प्रेम सब अंगों सिरदार॥६४॥**

निराकार के परे बेहद है, उसके परे अक्षर है, तथा उससे भी परे अक्षरातीत है। इस प्रकार हृदय में प्रेम आ जाने पर निराकार, बेहद, और अक्षर से परे का मार्ग प्राप्त हो जाता है। धाम धनी के हृदय में मात्र प्रेम की ही बातें रहती हैं। उनके सभी अंगों में प्रेम की ही प्रधानता रहती

है।

**भावार्थ-** द्वार खोल देने का अर्थ है- अवरुद्ध (बन्द) मार्ग का प्रशस्त हो जाना (खुल जाना, गमन करने योग्य हो जाना, या प्राप्त कर लेना)। यद्यपि धनी के अंग-अंग में अनन्त सौन्दर्य, कान्ति, ओज, और कोमलता आदि गुण विद्यमान हैं, किन्तु इनमें प्रेम की विशिष्टता है, क्योंकि प्रत्येक अंग-प्रत्यंग के गुणों में भी प्रेम ही क्रीड़ा कर रहा है।

**इस्कै में पोहोंचाया, इस्कें धाम में ले बैठाया।**

**इस्कें अंतर आंखें खुलाई, धनी साथ मिलावा देखाई॥६५॥**

तारतम वाणी के प्रकाश ने परमधाम की आत्माओं को धनी की पहचान कराकर प्रेम (इश्क) के मार्ग पर चला दिया। इस प्रेम ने ही उन्हें परमधाम का दर्शन कराया,

जहाँ मूल मिलावा में सखियों सहित युगल स्वरूप विराजमान हैं। मात्र प्रेम के द्वारा ही आत्मिक दृष्टि खुलती है और संसार से परे निजधाम का दर्शन होता है।

**भावार्थ-** धाम में बैठाने का तात्पर्य है – धाम का साक्षात्कार कराना। ज्ञान (इल्म) ही प्रेम (इश्क) का प्राण है। तारतम वाणी के ज्ञान से ही माया, परमधाम, तथा अक्षरातीत की पहचान होती है, जिससे आत्मा संसार को छोड़कर धनी के प्रेम में डूबती है।

शरीर और जीव से परे आत्मा की दृष्टि ही अन्तर्दृष्टि है, जो मायावी खेल को देखने के कारण बन्द कही गयी है। परमधाम, युगल स्वरूप, तथा अपनी परात्म को मात्र अपनी आत्मिक दृष्टि से ही देखा जाता है, किन्तु यह तभी सम्भव है जब आत्मिक दृष्टि अपने जीव भाव का परित्याग कर शरीर और संसार को देखना छोड़ दे।

कहे महामत प्रेम समान, तुम दूजा जिन कोई जान।

ले उछरंग ते घर आए, पिया प्रेमें कंठ लगाए॥६६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! आप प्रेम (इश्क) के समान अन्य किसी को भी न समझो। इसी प्रेम के द्वारा ही हम आनन्दपूर्वक अपने निजधाम का साक्षात्कार कर सकते हैं, जहाँ प्रियतम हमें प्रेमपूर्वक गले लगाते हैं।

**भावार्थ—** यद्यपि श्री राज जी के स्वरूप में प्रेम के अतिरिक्त अनन्त सौन्दर्य, कोमलता, ज्ञान, आनन्द, एकत्व (वहदत), और शक्ति आदि बहुत से दिव्य गुण विद्यमान हैं तथा इस संसार में भी सेवा, समर्पण, अटूट श्रद्धा, शील, तथा ज्ञान आदि गुणों की अत्यधिक महत्ता है, तथापि प्रेम की स्थिति सबसे न्यारी है। बिना माधुर्य प्रेम के परमधाम का साक्षात्कार किसी भी स्थिति में

किसी के लिये भी सम्भव नहीं है, चाहे वह इस सृष्टि का सबसे बड़ा विद्वान, योगी, यति या तपस्वी क्यों न हो ? परमधाम की लीला प्रेममयी है, इसलिये वहाँ वहदत होते हुए भी प्रेम की विशिष्टता सर्वोपरि है। यही कारण है कि इस चौपाई में प्रेम को ही सर्वोपरि बताया गया है। इस चौपाई का कथन भूतकाल के लिये नहीं है, बल्कि यहाँ आत्मिक जागनी की वर्तमान अवस्था का मनोरम चित्रण किया गया है।

प्रकरण ॥१॥ चौपाई ॥६६॥

## श्री धाम को बरनन मंगला चरन – राग श्री धनाश्री

अब श्री महामति जी के धाम हृदय से परमधाम की शोभा का वर्णन होने जा रहा है। इसके पूर्व मंगलाचरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

**द्रष्टव्य**— अपने सम्पूर्ण अहम् (मैं) का परित्याग करने के पश्चात् ही हृदय (दिल) धाम (अर्थ) की शोभा को प्राप्त करता है। अक्षरातीत के युगल स्वरूप तथा परमधाम की शोभा सबका कल्याण (मंगल) करने वाली है। इस शोभा का वर्णन करने से पहले अपनी समर्पण भावना व्यक्त की जाती है, ताकि किसी भी प्रकार से "मैं" की ग्रन्थि न रह जाये। इसी को मंगलाचरण कहते हैं।

**ब्रह्मसृष्टी लीजियो, हारे सैयां ए है अपना जीवन।**

**सखी मेरी जो है मूल वतन, ब्रह्मसृष्टी लीजियो॥टेक॥१॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम के हे मेरे ब्रह्मसृष्टि सुन्दरसाथ जी! परमधाम ही हमारा मूल घर है। उसकी शोभा को अपने हृदय-मन्दिर में बसाइये। यही हमारा जीवन है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण का भाव है- परमधाम की शोभा को अपने हृदय में बसाना ही हमारी जीवन पद्धति है या यही हमारे जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है।

सास्त्र सब्द मात्र जो बानी, ताको कलस बानी सब्दातीत।  
ताको भी कलस हुआ अखंड को, तापर धजा धरुं तिनथें रहित॥२॥  
शास्त्रों की वाणी में केवल शब्द -मात्र है। उनके ऊपर कलश के रूप में बेहद की शब्दातीत वाणी का ज्ञान सुशोभित हो रहा है। उसके भी ऊपर कलश के रूप में



अखण्ड परमधाम का ज्ञान है। उसके ऊपर परमधाम की शोभा का गायन करने वाली शब्दातीत ध्वजा को मैं फहरा रही हूँ (लगा रही हूँ)।

**भावार्थ-** शास्त्रों में विद्यमान ज्ञान-राशि को शब्द-मात्र कहने का आशय यह है कि तारतम्य ज्ञान से रहित होने पर इनके द्वारा बेहद और परमधाम की अनुभूति नहीं हो पाती है। कलश के ऊपर कलश कहने का भाव बेहद से परे परमधाम की श्रेष्ठता को दर्शाना है। शब्दातीत ध्वजा परमधाम की अनन्त महिमा (शोभा) को प्रकट करने वाली है।

मगज वेद कतेब के, बंधे हुते जो वचन।

आदि करके अबलों, सखी कबहूँ न खोले किन॥३॥

हे साथ जी! चारों वेदों तथा तौरेत, इन्जील, जम्बूर,

और कुरआन के गुह्य रहस्य आज दिन तक छिपे (बँधे) पड़े थे। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब तक कभी भी किसी ने उन्हें स्पष्ट नहीं किया था।

**सुपन बुध बैकुंठ लो, या निरंजन निराकार।**

**सो क्यों सुन्य को उलंघ के, सखी मेरी क्यों कर लेवे पार॥४॥**

इस मायावी जगत की स्वप्नमयी बुद्धि से या तो वैकुण्ठ का वर्णन हो सकता है या निराकार-निरंजन का । इस प्रकार यह स्वप्नमयी बुद्धि निराकार को पार करके भला मेरी पहचान कैसे कर सकती है?

**भावार्थ-** "निराकार" का अर्थ होता है- आकृति या आकार से रहित। इसी प्रकार "निरंजन" से तात्पर्य है- अवयव से रहित होना। अवयवों के मेल से ही आकृति या आकार की रचना होती है। दूसरे शब्दों में, किसी

पदार्थ के अवयव की भी आकृति होती है, जिसे नेत्र या स्पर्श से अनुभव में लाया जा सकता है। इस प्रकार निराकार या निरञ्जन शब्द प्रकृति के अन्तिम सूक्ष्म रूपों— महत्तत्त्व, सात शून्य, और महाशून्य आदि को प्रकट करने के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं।

इस चौपाई के चौथे चरण में "सखी मेरी" का सम्बोधन है। इस प्रकार का कथन पहली चौपाई के तीसरे चरण में भी है, जो यह दर्शाता है कि परमधाम के स्वलीला अद्वैत की दृष्टि से देखने पर श्री इन्द्रावती जी और श्री राज जी में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। यही स्थिति अन्य ब्रह्मात्माओं के साथ भी है। "ब्रह्मसृष्टि कही वेद ने, ब्रह्म जैसी तदोगत" का भी यही आशय है।

सुपन बुध अटकल सों, वेद कतेब खोजे जिन।

मगज न पाया माहें का, बांधे माएने बारे तिन॥५॥

स्वप्न की बुद्धि अनुमान (अटकल) का ही ज्ञान देने वाली है। इसके सहारे जिन्होंने भी वेद-कतेब में परम सत्य को खोजने का प्रयास किया, वे सफल नहीं हो सके, क्योंकि वे धर्मग्रन्थों के बारह प्रकार के बाह्य अर्थों में ही फँस गये और आन्तरिक गुह्य अभिप्राय को नहीं जान सके।

**भावार्थ-** वैदिक शब्द "गो" के अनेकों अर्थ हैं, जैसे- पृथ्वी, गाय, सूर्य की किरण आदि। "गोमेध" का अर्थ वेदानुयायी जहाँ अग्नि में सुगन्धित पदार्थों का हवन करना मानते हैं, वही वाममार्गियों की दृष्टि में गोमेध का अर्थ गाय के माँस का हवन करना है। इसी प्रकार वे अश्वमेध का अर्थ घोड़ा मारकर उसके माँस का हवन

करना करते हैं, तो वैदिक लोग अश्वमेध का अर्थ राष्ट्र की सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था चलाना मानते हैं। लोग एक ही मन्त्र या शब्द की व्याख्या अलग-अलग प्रकार से करते हैं।

इसी प्रकार कुरआन के तीसरे पारे (आले इमरान) की आयत ६-७ में कहा गया है कि दो प्रकार के शब्द होते हैं- १. मुहकम (निश्चित अर्थ वाले), २. मुतसाहबा (अनिश्चित अर्थ वाले अर्थात् द्विअर्थी)। उदाहरणार्थ "तलाक" शब्द का अर्थ होता है सम्बन्ध-विच्छेद, किन्तु शिया, सुन्नी, या अहमदिया मत के लोग अलग-अलग प्रकार के भावों में इसका अर्थ करते हैं। इसका वास्तविक आशय श्रीजी ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार परमधाम की आत्माओं को इस मायावी संसार में आना पड़ा। वस्तुतः यही तलाक है। सूर तुल बकर में

बकरा का उच्चारण करके गाय का अर्थ किया जाता है, जबकि वहाँ सीधेपन से तात्पर्य है।

**साधू बोले इन जुबां, गावें शब्दातीत बेहद।**

**पर कहा करे बुध मोह की, आगे ना चले शब्द॥६॥**

इस संसार के साधु-महात्मा यहाँ की बोली में परमधाम को शब्दातीत और अनन्त (बेहद) कहकर वर्णन किया करते हैं, किन्तु उनके पास मोहतत्व (माया) की बुद्धि है, जिससे उनके शब्द निराकार से आगे जा ही नहीं पाते।

**भावार्थ-** इस संसार के मनीषीजन परमधाम को अनादि, अनन्त, अखण्ड, और अद्वितीय तो कहते हैं, किन्तु उसे इस क्षर जगत् में ही सूक्ष्म से सूक्ष्म कहकर वर्णित करते हैं। प्रकृति के सूक्ष्मतम् महाकारण रूप

निराकार से परे बेहद और परमधाम के अस्तित्व के बारे में सोच भी नहीं पाते।

**पांच तत्व मोह अहंकार, चौदे लोक त्रैगुन।**

**ए सुन्य द्वैत जो ले खड़ी, निराकार निरंजन॥७॥**

पाँच तत्व एवं त्रिगुणात्मक चौदह लोकों की उत्पत्ति मोहतत्व-अहंकार से ही हुई है। शून्य-निराकार-निरञ्जन तक माया का ही द्वैतमयी जगत है।

**भावार्थ-** जहाँ पर जीव एवं जगत की लीला है, उसे द्वैत, तथा जहाँ केवल ब्रह्म की ही लीला है, उसे अद्वैत कहते हैं। पाताल से लेकर वैकुण्ठ-निराकार तक केवल माया ही माया का पसारा है।

"सुन्य" का तात्पर्य सात शून्य (कारण) एवं महाशून्य (महाकारण रूप) दोनों से है। इनका रूप

निराकार-निर्गुण है।

**प्रकृती महाप्रले होवहीं, सब तत्व गुन निरगुन।**

**द्वैत उड़े कछू ना रहे, निराकार निरंजन सुन॥८॥**

जब महाप्रलय होता है, तो प्रकृति मण्डल के सभी साकार और निराकार पदार्थ एवं पाँचों तत्व भी लय को प्राप्त हो जाते हैं। इस सम्पूर्ण द्वैत जगत के लीन होने पर शून्य रूपी निराकार (निरञ्जन) का कोई भी अस्तित्व नहीं रहता।

**भावार्थ-** साकार पदार्थों में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध आदि का गुण होता है, किन्तु महत्तत्त्व, महाशून्य आदि में ये गुण नहीं होते। इसलिये, साकार पदार्थों को सगुण एवं निराकार को निर्गुण कहते हैं, यद्यपि प्रत्येक पदार्थ में सगुणता और निर्गुणता किसी न



किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहती है।

**बानी जो अद्वैत की, सो कहावे शब्दातीत।**

**सो जाग्रत बुध अद्वैत बिना, क्यों सुध पावे द्वैत॥९॥**

अद्वैत परमधाम की वाणी शब्दातीत कहलाती है। इस संसार का कोई भी प्राणी परमधाम की जाग्रत बुद्धि के ज्ञान के बिना अक्षरातीत की सुधि नहीं पा सकता।

**भावार्थ-** इस सृष्टि का बड़ा से बड़ा मनीषी भी तारतम ज्ञान के बिना सच्चिदानन्द परब्रह्म को नहीं जान सकता। इसलिए यह कथन प्रसिद्ध है कि "तारतम्येन जानाति सच्चिदानन्द लक्षणम्।" आगे की चौपाई में इसी तथ्य को स्पष्ट किया गया है।

**पैगंमर या तीर्थकर, कई हुए अवतार।**

**किन ब्रोध न मेट्यो विस्व को, किए नहीं निरविकार॥१०॥**

यद्यपि इस संसार में अनेक पैगम्बर , तीर्थकर, और अवतार हो चुके हैं, किन्तु वे न तो जगत् का आपसी विरोध समाप्त कर सके और न ही सबको विकारों से रहित कर सके।

**भावार्थ—** कतेब परम्परा के पैगम्बरों, जैन परम्परा के २४ तीर्थकरों, तथा सनातन हिन्दू परम्परा के २४ अवतारों के कथनों में भले ही मूलतः कोई भेद नहीं रहा है, किन्तु इनके अनुयायियों में घोर मतभेद है। भाषा और रहन-सहन की भिन्नता ने इन्हें कभी एक मंच पर नहीं आने दिया। हिन्दू मनीषियों ने जहाँ आस्तिकता की गंगा बहायी है, वही जैन मत के विद्वानों ने अनादि परब्रह्म के अस्तित्व को ही नकार दिया। यहाँ तक कि कुछ बौद्ध

मतावलम्बियों ने तो जीव (आत्मा) के अस्तित्व पर भी प्रश्न-चिन्ह खड़ा कर दिया है। जैन, बौद्ध, और सनातन हिन्दू की अहिंसावादी विचारधारा के विपरीत इस्लाम के मतानुयायी अपने मज़हब को फैलाने में हिंसा के प्रयोग को अनुचित नहीं मानते। इसका मूल कारण यह है कि तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण ये एक परब्रह्म की पहचान नहीं कर सके तथा काम, क्रोध, लोभ, अज्ञान (मोह), और अहंकार आदि विकारों से ग्रसित रहे।

एते दिन त्रैलोक में, हुती बुध सुपन।

सो बुध जी बुध जाग्रत ले, प्रगटे पुरी नौतन॥११॥

आज दिन तक इस ब्रह्माण्ड (त्रिलोक) में मात्र स्वप्न की बुद्धि थी। सबसे पहले सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी जाग्रत बुद्धि का ज्ञान लेकर नवतनपुरी में प्रकट हुए।

**भावार्थ-** चौदह लोकों को ही संक्षिप्त रूप में तीन लोक (पृथ्वी, स्वर्ग, और वैकुण्ठ) कहा जाता है। इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि यहाँ "बुध जी" किसको कहा गया है?

धनी जी मेरे ध्यान तुमारे, बैठे बुध जी बरस सहस्र चार।

किरन्तन ५३/१

जो नहीं विष्णु महाविष्णु को, बुध जी पोहोंचे तित।

मेरे हिरदे चरन धनी के, इने ए फल पाया इत॥

प्र. हि. २०/१५

बुध जी को असराफील, विजयाभिनन्द इमाम॥

खुलासा १२/५४

उपरोक्त कथनों में तो अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि (इस्राफील) को ही बुध जी कहा गया है, तो पुनः परिक्रमा की इस चौपाई में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी

को "बुध जी" क्यों कहा गया है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि तारतम वाणी में विशेष रूप से अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि को ही "बुध जी" कहा गया है, किन्तु कहीं-कहीं पर सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी एवं श्री प्राणनाथ जी को भी बुद्ध जी या विजयाभिनन्द बुद्ध जी कहा गया है, क्योंकि इन दोनों स्वरूपों में ही जाग्रत बुद्धि (इस्राफील) विद्यमान थी। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि "निष्कलंक" शब्द का प्रयोग मात्र श्री प्राणनाथ जी के लिये ही किया जाता है। श्रीमुखवाणी की ये चौपाइयाँ इस कथन को सार्थक करती हैं—

विजिया अभिनन्द बुध जी, और नेहकलंक अवतार।

वेदों कहा आखिर जमाने, एही हैं सिरदार॥

इस चौपाई में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को श्री

विजयाभिनन्द तथा श्री प्राणनाथ जी श्री विजयाभिनन्द  
बुद्ध निष्कलंक कहा गया है।

ऐसा समे जान आए बुध जी, कर कोट सूर समसेर।

किरंतन ५९/१

श्री विजयाभिनन्द की आरती, प्रेम मगन होए उतारती।

किरंतन ५६/१

इन चौपाइयों में श्री प्राणनाथजी को विजयाभिनन्द  
बुद्ध जी कहा गया है।

अब सो साहेब आइया, सब सृष्ट करी निरमल।

मोह अहंकार उड़ाए के, देसी सुख नेहेचल॥१२॥

अब वे अक्षरातीत मेरे धाम हृदय में आकर प्रकट हो गये  
हैं। उन्होंने सारी सृष्टि को निर्विकार (निर्मल) कर दिया

है। वे मोह-अहंकार को नष्ट करके सभी को अखण्ड सुख देंगे।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह संशय होता है कि वर्तमान समय में जब चारों ओर पाप ही पाप हो रहा है, तो सारी सृष्टि को निर्मल हुआ क्यों कहा गया है? इसके अतिरिक्त जिस मोह-अहंकार के नष्ट होने की बात की गयी है, वह समष्टिगत मोह-अहंकार है या मानव-हृदय में निवास करने वाला व्यष्टिगत मोह-अहंकार?

संक्षेप में इसका समाधान इस प्रकार है-

अनन्त लोक-लोकान्तरों का मूल यह मोहतत्त्व ही है, जो प्रकृति का सूक्ष्मतम् (महाकारण) स्वरूप है। इसी से अहंकार का प्रकटीकरण होता है। मोहतत्त्व का ही सूक्ष्म रूप महत्तत्त्व है, जिससे अन्तःकरण की उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी

है कि "महदाख्यं कार्यं तन्मनः" अर्थात् महत्तत्त्व से ही मन-बुद्धि आदि की उत्पत्ति होती है।

यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि बिना अन्तःकरण के जीव इस संसार में कोई भी कार्य नहीं कर सकता। यदि हृदय में ब्रह्मज्ञान का अमृत प्रवेश कर जाये तथा प्रेम की रसधारा भी बहने लगे, तो अन्तःकरण का अस्तित्व रहते हुए भी नहीं रहने के समान होता है। इसी को मोह-अहंकार का नाश होना कहते हैं। इसे इस दृष्टान्त से समझा जा सकता है—

जिस प्रकार, हमारे खाद्य-पदार्थों (फल, दूध आदि) में वायु, आकाश आदि तत्त्व विद्यमान होते हैं, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि हम आकाश को खा रहे हैं। भोज्य पदार्थों को ही खाने की बात करते हैं, जबकि सभी भोज्य पदार्थों में सत्व, रज, तम, अहंकार,



आकाश आदि विद्यमान अवश्य होते हैं क्योंकि ये सभी स्थूल पदार्थों के महाकारण रूप हैं। उसी प्रकार, अन्तःकरण में स्थित मोह-अहंकार का नाश होते ही निर्मलता (निर्विकारिता) की स्थिति प्राप्त हो जाती है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है। सम्पूर्ण सृष्टि को निर्मल करने का कथन लाक्षणिक है और यह महाप्रलय के पश्चात् ही यथार्थ रूप में चरितार्थ होगा।

**सो मगज माएने हुकमें, खोले हम सैयन।**

**सो कलाम जो हक के, सुख होसी उमत सबन॥१३॥**

अब धाम धनी ने अपने आदेश से सभी धर्मग्रन्थों के गुह्य अर्थों को हम आत्माओं से प्रकाशित कराया है। मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर उन्होंने जो ब्रह्मवाणी कही है, उससे सभी ब्रह्मसृष्टियों को आत्मिक सुख प्राप्त होगा।

रोसन किल्ली दई हमको, यों कर किया हुकम।

खोल दरवाजे पार के, इत बुलाए लीजो सृष्टब्रह्म॥१४॥

धाम धनी ने मेरे हृदय में तारतम ज्ञान का प्रकाश किया और मुझे आदेश दिया कि तू परमधाम के द्वार खोलकर ब्रह्मसृष्टियों को वहाँ ले चल।

**भावार्थ**— परमधाम के दरवाजे खोलने का तात्पर्य है— तारतम ज्ञान के प्रकाश और प्रेम के द्वारा परमधाम की अनुभूति का मार्ग प्रशस्त करना।

ब्रह्मसृष्टी जाहेर करुं, करसी लीला रोसन।

अखंड धनी इत आए के, किया जाहेर मूल वतन॥१५॥

अब मैं तारतम वाणी से ब्रह्मसृष्टियों को उजागर (जाहिर) करना चाहती हूँ, जो परमधाम की लीला को संसार में प्रकाशित करेंगी। धाम धनी ने इस संसार में

आकर हमें अपने मूल घर परमधाम की पहचान करा दी है।

तीन ब्रह्मांड जो अब रचे, ब्रह्मसृष्ट कारन।

आप आए तिन वास्ते, सखी पूरे मनोरथ तिन॥१६॥

हे साथ जी! मात्र आपकी इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही धाम धनी ने ब्रज, रास, एवं जागनी के इन तीन ब्रह्माण्डों की रचना की है। आपके लिये ही प्रियतम् अक्षरातीत ने इन तीनों ब्रह्माण्डों में स्वयं आकर लीला की है तथा आपकी इच्छाओं को पूर्ण किया है।

अखंड सुख सबन को, होसी चौदे तबक।

सो बरकत ब्रह्मसृष्ट की, पावें दीदार सब हक॥१७॥

अब ब्रह्मसृष्टियों की कृपा से चौदह लोकों के सभी

प्राणियों को बेहद मण्डल का अखण्ड सुख प्राप्त होगा  
तथा सबको सच्चिदानन्द परब्रह्म का दर्शन भी होगा।

**भावार्थ-** यह कथन योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही पूर्ण रूप  
से चरितार्थ होगा।

ख्वाब की अकल छोड़ के, कहूं अर्स के कलाम।

हक बका जाहेर करूं, अखंड सुख जे ठाम॥१८॥

अब मैं स्वप्न की बुद्धि से परे जाग्रत बुद्धि के द्वारा  
परमधाम की वाणी को कह रही हूँ। मैं अक्षरातीत और  
उस परमधाम को उजागर (प्रकाशित) करने जा रही हूँ,  
जो अखण्ड आनन्द का स्थान है।

दुनी द्वैत जुबां छोड़ के, कहूं जुबां अकल और।

कलाम कहूं अर्स अजीम के, महामत बैठे इन ठौर॥१९॥

इस नश्वर जगत् की वाणी को छोड़कर मैं परमधाम की जाग्रत बुद्धि और वाणी से वहाँ की शोभा का वर्णन कर रही हूँ। यद्यपि मैं इस समय इस संसार में ही हूँ, किन्तु मेरी बातें परमधाम की हैं।

**भावार्थ**— परमधाम की भाषा लौकिक शब्दों की परिधि से परे है, किन्तु वहाँ के भावों को यहाँ की भाषाओं के शब्दों में व्यक्त किया गया है। इसे ही परमधाम के वचन कहा गया है। "आगे तो नूर तजल्ला, तहां जुबां बोल है और" (सनंध ३९/४) का यह कथन भी इसी चौपाई के भावों को व्यक्त करता है।

ला मकान सुन्य निरगुन, छोड़ फना निरंजन।

छर अछर को छोड़ के, ए ताको मंगला चरन॥२०॥

यह मंगलाचरण मैंने उस परमधाम की शोभा एवं लीला

के वर्णन के सम्बन्ध में किया है, जो निराकार-निर्गुण (शून्य-निरंजन) सहित इस सम्पूर्ण क्षर ब्रह्माण्ड तथा अक्षर ब्रह्म के बेहद मण्डल से भी परे है।

**॥ मंगलाचरन तमाम ॥**

यह मंगला चरण सम्पूर्ण हुआ।

**प्रकरण ॥२॥ चौपाई ॥८६॥**

## और ढाल चली

श्री महामति जी की आत्मा इस नश्वर जगत् से परे उस अनादि परमधाम की शोभा एवं अद्वैत लीला का वर्णन करने जा रही हैं। इसे ही "और ढाल चली" कहकर प्रस्तुत किया गया है।

अब आओ रे इस्क भानूं हाम, देखूं वतन अपना निज धाम।  
करूं चरन तले विश्राम, विलसों पियाजी सों प्रेम काम॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे प्रेम (इश्क)! अब तू मेरे दिल में आ जा, जिससे मैं अपनी चाहना पूरी कर लूँ। मेरी यही इच्छा है कि मैं अपने मूल घर परमधाम को देख लूँ तथा अपने प्रियतम के चरण-कमलों के दर्शन में ही आनन्द प्राप्त करती रहूँ। मैं धनी से एकमात्र प्रेम की ही कामना करती हूँ और उसी के

आनन्द में डूबी रहना चाहती हूँ।

**भावार्थ-** प्रेमी या प्रेमास्पद (आशिक या माशूक) के द्वारा एकमात्र प्रेम की ही इच्छा करना "प्रेम काम" कहलाता है। इसी प्रकार आनन्द में आत्मा का डूब जाना "विश्राम" करना कहलाता है।

अब बानी अद्वैत मैं गाऊं, निज सरूप की नींद उड़ाऊं।

सब सैयों को भेली जगाऊं, पीछे अक्षर को भी उठाऊं॥२॥

अब मैं स्वलीला अद्वैत परमधाम की शोभा का वर्णन करना चाहती हूँ। इस वाणी को आत्मसात् करके मैं अपनी आत्मा के ऊपर छाये हुए माया के आवरण को हटाना चाहती हूँ। मेरी यह भी इच्छा है कि परमधाम की इस वाणी से सभी आत्माओं को जाग्रत कर दूँ। इसके पश्चात् मैं अक्षर ब्रह्म को भी जाग्रत करूँ।



**भावार्थ-** ब्रह्मवाणी का अवतरण इस संसार में हुआ है, इसलिये इस चौपाई में आत्माओं की ही जागनी का प्रसंग है, परात्म का नहीं। परात्म की जागनी तो धनी के आदेश से मूल मिलावा में एक साथ ही होगी। अक्षर ब्रह्म को परमधाम की लीला का बोध हो जाना ही अक्षर ब्रह्म की जागनी है। यह तथ्य श्रीमुखवाणी के इन कथनों से स्पष्ट होता है-

मेरी संगतें ऐसी सुधरी, बुध बड़ी हुई अछर।

तारतमें सब सुध परी, लीला अन्दर की पर॥

क. हि. २३/१०३

भगवान जी आए इत, जागवे को तत्पर।

हम उठसी भेले सबे, जब जासी हमारे घर॥

क. हि. २०/३४

जब प्रले प्रकृती होई, ना रहे अद्वैत बिना कोई।

एक अद्वैत मंडल इत, धनी अँगना के अंग नित॥३॥

जब महाप्रलय में प्रकृति का लय हो जाता है, तो अद्वैत मण्डल के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रहता। परमधाम स्वलीला अद्वैत की भूमिका है, जहाँ पर अक्षरातीत अपनी अंगरूपा आत्माओं के साथ अखण्ड रूप से लीला-विहार करते हैं।

**भावार्थ-** क्षर मण्डल को "द्वैत" कहते हैं, जिसमें स्वप्निक जीव और माया की लीला होती है। बेहद मण्डल को "अद्वैत" कहते हैं, जहाँ अक्षर ब्रह्म अपनी अखण्ड प्रकृति (योगमाया) के साथ लीला करते हैं। योगमाया ब्रह्म से अभिन्न स्वरूपा है, इसलिये इसे अद्वैत भूमिका कहते हैं। परमधाम को "स्वलीला अद्वैत" कहते हैं, जहाँ एकमात्र अक्षरातीत ही सभी रूपों में लीला कर

रहे हैं।

यद्यपि महाप्रलय में परमधाम के अतिरिक्त सम्पूर्ण बेहद मण्डल (अव्याकृत, सबलिक, केवल, और सत्स्वरूप) का भी अखण्ड रूप विद्यमान रहता है और अद्वैत ही कहा जाता है, फिर भी इस चौपाई में अद्वैत मण्डल का तात्पर्य परमधाम से है।

**अब याही रट लगाऊं, ए प्रेम सबों को पिलाऊं।**

**अब ऐसी छाक छकाऊं, अंग असलू इस्क बढ़ाऊं॥४॥**

अब मैं इस बात को बार-बार दुहरा रही हूँ कि मेरे मन में एकमात्र यही इच्छा है कि मैं परमधाम के प्रेम रस को सभी सुन्दरसाथ को पिलाऊँ और इन्हें इस प्रकार से तृप्त कर दूँ कि इनके हृदय में परमधाम का अखण्ड प्रेम पल-पल बढ़ता ही रहे।

**भावार्थ-** परात्म में वहदत (एकत्व) होने के कारण सबका इश्क (प्रेम) बराबर है, इसलिये यहाँ पर आत्मा के ही हृदय में प्रेम बढ़ने का प्रसंग है, परात्म में नहीं। "छक जाना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है पूर्णतया तृप्त हो जाना।

धनी धाम देखन की खांत, सो तो चुभ रही मेरे चित।

किन बिध बन मोहोल मंदिर, देखों धनी जी की लीला अंदर॥५॥

मेरे मन में बहुत पहले से ही यह इच्छा बनी रहती थी कि मैं अपने प्राणेश्वर के परमधाम को किस प्रकार देखूँ? मैं यह देखना चाहती थी कि परमधाम में वनों, महलों, तथा मन्दिरों की शोभा किस प्रकार की आयी है? मैं रंगमहल की प्रेममयी लीला को अच्छी तरह से देखना चाहती थी।

**द्रष्टव्य-** इस चौपाई में उस समय का प्रसंग है, जब श्री मिहिरराज जी सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारविन्द से चर्चा सुना करते थे और परमधाम के दर्शन के लिये कसनी (कठिन-साधना) के मार्ग पर चल पड़े थे।

विलास सरूप किन भांत, बिन देखे क्यों उपजे स्वांत।  
जल जिमी पसु पंखी थिर चर, सब ठौर और अछर॥६॥

मेरे मन में यह देखने की चाहना थी कि अनन्त प्रेम के आनन्द में डूबे रहने वाले श्री राजश्यामा जी तथा सखियों का स्वरूप कैसा है? उन्हें देखे बिना भला मेरे हृदय में शान्ति कहाँ से होने वाली थी? मैं निजधाम के नूरी जल, धरती, पशु-पक्षियों, तथा अक्षरधाम सहित सम्पूर्ण चर-अचर शोभा को देखना चाहती थी।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में मात्र लीला रूप

में समझने के लिये वहाँ के पदार्थों को स्थिर कहा गया है, अन्यथा वहाँ का कण-कण अक्षरातीत का ही स्वरूप है।

ए चेतन कहावे झूठी जिमी, सो सब जड़ तू जान।  
जो थिर कहावे अर्स में, सो चेतन सदा परवान॥

श्रृंगार १/६

सब सोभा देखों निज नजर, अपना वतन निज घर।

धनी केहे केहे चित चढ़ाई, पर नैनों अजूं न देखाई॥७॥

उस समय मेरे मन में यही इच्छा रहा करती थी कि मैं अपने मूल घर परमधाम की सम्पूर्ण शोभा को अपने आत्मिक चक्षुओं से देखूँ। श्री राज जी ने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के स्वरूप में निजधाम की शोभा का बारम्बार वर्णन करके मेरे हृदय में तो बसा दिया था,

किन्तु अपने आत्मिक नेत्रों से इस तरह गहन रूप में अब तक मैं नहीं देख पायी थी।

**भावार्थ-** वि.सं. १७०३ तक श्री मिहिरराज जी ने स्वयं को कठोर साधना के मार्ग पर चलाया। उसके पश्चात् १७०८ तक अरब रहे। चार वर्ष (२ वर्ष भाई के यहाँ और २ वर्ष कला जी के यहाँ) विरह में गुजरे। वि.सं. १७१२ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के पश्चात् युगल स्वरूप उनके धाम हृदय में विराजमान तो हो गये थे, किन्तु उन्हें इसका आभास नहीं था। वि.सं. १७१५ में हब्शा में जाने पर श्री मिहिरराज जी ने छः माह तक स्वयं को विरह की प्रचण्ड अग्नि में झोंक दिया, जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें युगल स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ तथा ब्रह्मवाणी का अवतरण एवं जागनी लीला प्रारम्भ हो गयी।

किन्तु, वि.सं. १७४० में श्री पद्मावती पुरी धाम में श्री जी के विराजमान हो जाने पर खिल्वत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार ग्रन्थ का अवतरण हुआ। इस समय ज्ञान का सूर्य मध्याह्न की अवस्था में चमक रहा था। सुन्दरसाथ में परमधाम की शोभा को विस्तृत रूप में आत्मसात् कराने के लिये स्वयं धाम धनी ने श्री महामति जी की आत्मा को प्रत्येक पक्ष का आत्म-चक्षुओं से स्पष्ट रूप से दर्शन कराया तथा सबकी आत्म-जाग्रति के लिये उनके मुखारविन्द से अवतरण भी कराया। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि स्वयं श्री महामति जी की आत्मा को परमधाम की जितनी विशद अनुभूति परिक्रमा ग्रन्थ के अवतरण के समय हुई, उतनी अब तक (१७१५-१७४० के बीच में) नहीं हो सकी थी। इस चौपाई के चौथे चरण "पर नैनों अजुं न देखाई" का यही भाव है।



तुम दई जो पिया मोहे निध, सो तो संगियों को कही सब विध।

और हिरदे जो मोहे चढ़ाई, सो भी देऊं इनों को द्रढ़ाई॥८॥

मेरे प्राण प्रियतम! आपने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर तारतम वाणी की जो अखण्ड सम्पदा (रास से लेकर खिलवत तक की वाणी) दी है, उसे मैंने हर प्रकार से सुन्दरसाथ से कहा है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के रूप में आपने परमधाम की जिस शोभा का ज्ञान मेरे धाम हृदय में अखण्ड कर दिया था, उसे भी मैं सुन्दरसाथ के हृदय में दृढ़तापूर्वक बिठा देना चाहती हूँ।

**भावार्थ**— इस चौपाई को पढ़कर बाह्य अर्थ लेने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारविन्द का सुना हुआ ज्ञान परिक्रमा ग्रन्थ में वर्णित हुआ है। इसी प्रकार की स्थिति परिक्रमा ३०/१ तथा कलस हि. १/२ में भी है—

पेहेले किया बरनन अर्स का, रुह अल्ला केहेल।

अब चितवन से केहेत हों, जो देत साहेदी अकल॥

परिकरमा ३०/१

रास कह्या कछु सुनके, अब तो मूल अंकूर।

कलस होत सबन को, नूर पर नूर सिर नूर॥

क. हि. १/१

यदि ऐसा मान लिया जाये, तब तो श्रीमुखवाणी को अक्षरातीत परब्रह्म की वाणी न कहकर सद्गुरु श्री देवचन्द्र या श्री मिहिरराज जी अथवा महामति की वाणी कहा जायेगा, जबकि तारतम वाणी का स्पष्ट कथन है कि यह मिहिरराज अथवा महामति की वाणी नहीं है—

आ वचन मेहराज प्रगट न थाय।

प्र. गु. ४/१४

ए वचन महामति से प्रगट न होय।

प्र. हि. ४/१४

मेरी बुधें लुगा न निकसे मुख, धनी जाहेर करें अखंड घर सुख।

प्र. हि. २९/७

श्री वाणी धनी अन्तरगत कही, कहने की सोभा कालबुत को भई।

किरंतन २९/५

महामति कहे सुनो साथ, देखो खोल बानी प्राणनाथ।

किरंतन ७६/२५

हिरदे बैठ केहेलाया रास, दोऊ फेरे के किए प्रकास।

प्र. हि. ४/१८

यदि रास की वाणी को श्री इन्द्रावती जी के धाम  
हृदय में बैठकर कहा गया है, तो उसे श्री देवचन्द्र जी के  
मुख से सुनकर कहा हुआ कैसे माना जा सकता है?

वस्तुतः तारतम वाणी श्री राज जी के आवेश से ही

अवतरित हुई है। जब श्री देवचन्द्र जी चर्चा करते थे, तो उस समय उनका शरीर केवल साधन मात्र ही था।

उनके तन से स्वयं श्री राज जी ही अपने आवेश स्वरूप से चर्चा करते थे। वही धाम धनी हब्शा में श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान होकर वाणी का अवतरण करने लगे। इस प्रकार तारतम वाणी के मूल में केवल श्री राज जी ही हैं। श्री देवचन्द्र जी, मिहिरराज जी, अथवा श्री श्यामाजी, या श्री इन्द्रावती जी केवल निमित्त मात्र हैं, मूलतः नहीं।

अब सुनियो साथ सुनाऊं, पीछे निज नैनों देख देखाऊं।  
जोत जवेर चबूतरे दोए, ताकी उपमा मुख न होए॥९॥  
हे साथ जी! अब आप सुनिये। मैं आपको परमधाम की शोभा एवं लीला का वर्णन सुनाती हूँ। इसके पश्चात् मैं

अपने आत्मिक नेत्रों से देखकर आपको दिखाऊँगी भी। रंगमहल के आगे नूरी ज्योति से भरपूर जवाहरातों के दो चबूतरे हैं, जिनकी सुन्दरता की किसी से भी तुलना (उपमा) इस मुख से नहीं की जा सकती।

**भावार्थ-** सुनने और देखने की प्रक्रिया में अन्तर होता है। इस चौपाई के पहले चरण में ज्ञान मूलक बात सुनने के सन्दर्भ में कहा गया है, जबकि दूसरे चरण में क्रिया मूलक (रहनी से सम्बन्धित) बात देखने के सन्दर्भ में कहा गया है। ज्ञान को आचरण में लाने पर ही लक्ष्य प्राप्त होता है।

श्री महामति जी द्वारा जिस अवस्था में परिक्रमा ग्रन्थ का अवतरण हुआ है, उसी अवस्था में श्री लालदास जी तथा श्री युगलदास जी आदि परमहंसों के द्वारा "चर्चनी" के रूप में परमधाम का वर्णन नहीं हुआ

है। श्री महामति जी के तन से स्वयं श्री राज जी ने अपने जोश एवं आवेश से परमधाम का वर्णन किया है। उस अवस्था में श्री महामति जी के जीव को कुछ भी पता नहीं रहता था कि मैं क्या बोल रहा हूँ? इसके विपरीत श्री लालदास जी एवं श्री युगलदास जी जैसे परमहंसों ने परमधाम की शोभा की जो आत्मिक अनुभूति की, उसे उनका जीव जितना अनुभव कर सका, उतना ही श्रीजी की मेहर की छाँव तले लेखनीबद्ध हो सका है। इस सम्बन्ध में परिक्रमा ग्रन्थ की ये चौपाइयाँ देखने योग्य हैं—

जब जानों करुं बरनन, तब ऐसा आवत दिल।

जब रुह साहेदी देत यों, इत ऐसा ही चाहिए मिसल॥

इन विध हुआ है अव्वल, दर्ई रुह साहेदी तेहेकीक।

जो कही बानी जोस में, सो साहेब दर्ई तौफीक॥

हकें दर्ई किताबें मेहर कर, जो जिस बखत दिल चाहे।

सोई आयत आवत गई, जो रूह देत गुहाए॥

अब जो केहेती हों अर्स की, सो दिल में यों आवत।

बिना देखे केहेत हों, जित रूह जो चाहत॥

परिकरमा ३०/२,३,४,११

द्वार आगे चबूतरे तीन, दोए दोए तरफ एक भिन।

दोनों पर नंगों के फूल, चित्त निरखे होत सनकूल॥१०॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने तीन चबूतरे दिखायी पड़ते हैं, जिनमें से दो चबूतरे मुख्य द्वार के दायें-बायें रंगमहल की दीवार से लगते हुए आये हैं। ये ४ मन्दिर के लम्बे और २ मन्दिर के चौड़े हैं। तीसरा चबूतरा चाँदनी चौक में है, जो ३३ मन्दिर का लम्बा और ३३ मन्दिर का चौड़ा है। मुख्य द्वार से लगते हुए जो दो चबूतरे हैं,

उन पर नगों के फूल बने हुए हैं, जिनको देखने पर हृदय (चित्त) आनन्द में भर जाता है।

**भावार्थ**— यद्यपि रंगमहल के सामने कुल चार चबूतरे हैं— दो रंगमहल की दीवार से लगते हुए तथा दो चाँदनी चौक में— किन्तु श्री मिहिरराज जी की परीक्षा लेने के लिये सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी तीन चबूतरों का ही वर्णन करते हैं। यहाँ पर उसी के अनुसार दर्शाया गया है—

धनिएं आगूं अर्स के, कहे तीन चबूतर।

दाहिने तरफ तले तीसरा, हरा दरखत तिन पर॥

चौथी तरफ नाहीं कह्या, सो मेरी परीछा लेन।

जाने मेरे इलम से रूह आपै, केहेसी आप मुख बैन॥

परिकरमा ३०/१६, १७



बेला कई रंगों कई नकस, देखो एक दूजी पे सरस।

ता बीच चरनी केती कई रंग, बेलां कटाव जड़ित कई नंग॥११॥

हे साथ जी! इन चबूतरों पर अनेक रंगों के अनेक प्रकार के बेल-बूटों की चित्रकारी है। आप इनकी अलौकिक शोभा को देखिए। सभी एक दूसरे से बढ़कर सुन्दर हैं। इन दोनों चबूतरों के मध्य मुख्य द्वार के सामने १०० सीढ़ियाँ और २० चाँदों की शोभा आयी है। इनमें भी अनेक रंगों के बेल-बूटों की चित्रकारी है, जिनमें बहुत से नूरी नग जड़े हुए हैं।

दोऊ तरफ किनारे कांगरी, कई भांत दोरी नंग जरी।

दाहिने हाथ भिन चबूतरा, ता बीच गली लगता तीसरा॥१२॥

इन सीढ़ियों के दोनों तरफ किनारे पर कमर भर ऊँची दीवार है, जिस पर अति सुन्दर काँगरी शोभा दे रही है।

इस काँगरी में सोने के तारों से जड़े हुए नगों की शोभा दृष्टिगोचर हो रही है। इन दोनों चबूतरों के मध्य, सीढ़ियों के सामने, चाँदनी चौक में जो रौंस (गली) आयी है, उसकी दाहिनी तरफ (रंगमहल से देखने पर) दक्षिण दिशा में एक और तीसरा चबूतरा है, जिस पर हरे रंग का वृक्ष सुशोभित हो रहा है।

**ऊपर दरखत छाया बराबर, सब रही चबूतरे भर।**

**चारों तरफों तीन तीन चरनी, किनारे की सोभा जाए न बरनी॥१३॥**

इस चबूतरे पर जो वृक्ष है, उसकी डालियाँ इस प्रकार चारों तरफ फैली हुई हैं कि उनकी छाया सम्पूर्ण चबूतरे पर समान रूप से हो रही है। इस चबूतरे की चारों दिशाओं के मध्य से ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। शेष जगह में चबूतरे की किनार पर चारों तरफ रत्नों से जड़ा हुआ

कठेड़ा (railing) जगमगा रहा है, जिसकी शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

उज्जल भोम को कहा कहूं तेज, जानो बीज चमके रेजा रेज।  
 ए जोत आसमान लों करत, जोत आसमान सामी लरत॥१४॥  
 चाँदनी चौक की उज्ज्वल धरती के तेज की शोभा का मैं  
 कहाँ तक वर्णन करूँ? ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के  
 कण-कण में बिजली (विद्युत) चमक रही है। इनसे  
 निकलने वाली ज्योति आकाश की तरफ जाती हुई  
 दिखायी दे रही है, जो सामने आकाश से निकल कर  
 आने वाली ज्योति से युद्ध करती हुई प्रतीत होती है।

सो परे बन पर झलकार, जोत बन की न देवे हार।  
 इन मंदिरों को जो उजास, सो तो मावत नहीं आकास॥१५॥

इस टकराहट से उत्पन्न ज्योति की झलकार वनों पर पड़ती है। जब यह ज्योति आकाश से नीचे की ओर आती है, तो वनों से उठने वाली ज्योति उससे टकरा जाती है। भला, वह उससे हार क्यों मान ले, क्योंकि तेज में वह उससे जरा भी कम नहीं है। यहाँ के मन्दिरों की नूरी आभा में इतना अधिक उजाला है कि वह आकाश में भी समा नहीं पाता अर्थात् अनन्त है।

**जोत तेज प्रकास जो नूर, सब ठौरों सीतल सत सूर।**  
**जोत रोसन भरयो आसमान, किरना सके न कोई काहूँ भान॥१६॥**  
 सम्पूर्ण परमधाम के मन्दिरों, धरती, एवं वनों में सर्वत्र नूरी ज्योति एवं तेज का ही प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। ऐसा लगता है, जैसे हर जगह शीतलता लिये हुए अखण्ड सूर्य उग आये हैं। धरती से लेकर आकाश तक सर्वत्र नूरी

ज्योति का प्रकाश फैला हुआ है। नूरी (शुक्रमयी) प्रकाश की किरणें अखण्ड हैं और आपस में टकराने पर भी एक दूसरे को नष्ट नहीं कर पातीं।

**भावार्थ-** सच्चिदानन्द परब्रह्म का स्वरूप नूरमयी है, जिसे वेदों में आदित्य वर्ण, भर्गः या शुक्र शब्द से सम्बोधित किया गया है। "नूर" शब्द अरबी भाषा का है।

ज्योति और तेज दोनों से ही प्रकाश निकलता है, किन्तु ज्योति को तेज का अल्पांश माना जाता है। जैसे सूर्य में तेज है, किन्तु चन्द्रमा में ज्योति है। इस नश्वर जगत् में सूर्यादि का तेज दाहकारक होता है, किन्तु परमधाम के एक कण के तेज में जहाँ करोड़ों सूर्यों का प्रकाश होता है, वहीं अरबों चन्द्रमा की शीतलता भी होती है। इस चौपाई के दूसरे चरण का यही भाव है।

सोभा क्यों कहूं या मुख बन, सो तो होए नहीं बरनन।

इत सब तत्वों की खुसबोए, सो इन जुबां बरनन क्यों होए॥१७॥

मैं इस मुख से निजधाम के वनों की अनुपम शोभा का वर्णन कैसे करूँ? इस शोभा का यथार्थ वर्णन हो पाना कदापि सम्भव नहीं है। यहाँ के प्रत्येक तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी) की सुगन्धि ऐसी है कि किसी भी प्रकार से इस जिह्वा से उसका कथन नहीं हो सकता।

इत जल वाए के चलत जो पूर, सो मैं क्या कहूं ताको नूर।

जल के जो उठत तरंग, ताकी किरना देखावे कई रंग॥१८॥

यहाँ (परमधाम) के उज्ज्वल जल में जिस प्रकार मनोहारी लहरें उठती हैं। शीतल, मन्द, तथा सुगन्धित हवा के झोंके चला करते हैं। उनकी शोभा का वर्णन मैं

कैसे करूँ? नूरी जल में जो तरंगें (लहरें) उठती हैं, उनकी किरणों में अनेक प्रकार के अति आकर्षक रंग दिखायी देते हैं।

**चांद सूरज धनी के हजूर, सो मैं क्या कहूं ताको नूर।**

**इत जमुना जी के सातों घाट, मध्य का जल जो बीच पाट॥१९॥**

परमधाम में नूर का चन्द्रमा है तथा नूर का ही सूर्य है। ये पल-पल धनी की सेवा में उपस्थित रहते हैं। इनकी शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ? यमुनाजी के किनारे सात घाट हैं— केल, लिबोई (नीबू), अनार, अमृत (आम), जाम्बू, नारंगी, और वट के घाट। सातों घाट के मध्य में, अमृत वन के सामने यमुना जी के जल पर, पाट (१६ थम्भों पर १५० मन्दिर की लम्बी-चौड़ी छत) की शोभा आयी है, जिसे पाट घाट कहते हैं।

**भावार्थ-** यद्यपि शोभा के रूप में सूर्य और चन्द्रमा आकाश में ही दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु लीला रूप में ऐसा प्रतीत होता है कि ये हमेशा ही धनी के पास रहते हैं, ताकि उन्हें रिझा सकें। इसे ही श्री राज जी के हजूर (उपस्थित) होना कहा गया है। वस्तुतः परमधाम की प्रत्येक वस्तु किसी न किसी रूप में युगल स्वरूप के प्रेम में डूबी रहती है।

**तापर दयोहरी एक, जल पर पाट कठेड़ा विसेक।**

**चारों थंभों के जो नंग, झलके माहें जल के तरंग॥२०॥**

इस पाट (छत) की किनार पर पुनः १२ थम्भ हैं, जिनकी छत पर एक गुम्मत (दयोहरी) विद्यमान है। जल के तरफ की तीनों दिशा (उत्तर, दक्षिण, तथा पूर्व) में इन थम्भों के मध्य अनेक रंगों से युक्त रत्नजड़ित कठेड़ा



शोभायमान है। इन थम्भों में से चारों कोनों के थम्भ नीलम के हैं। उत्तर दिशा के दो थम्भ पुखराज के हैं और पूर्व दिशा के दो थम्भ माणिक के हैं। इसी प्रकार दक्षिण दिशा के दो थम्भ हीरे के हैं और पश्चिम दिशा के दो थम्भ पाच के हैं। इनमें से पश्चिम दिशा के पाच के थम्भों को छोड़कर बाकी चार नगों (नीलम, पुखराज, माणिक, एवं हीरा) के थम्भ जल की तरंगों में झलकते रहते हैं (प्रतिबिम्बित होते हैं)।

आड़े ऊंचे याके तले, चार चार थंभ तीन तीन घड़नाले।

याकी जोत आकास न मावे, किरना फेर फेर जिमी पर आवे॥२१॥

ऊपर के बारह थम्भों के नीचे चार-चार थम्भों की चार हारें विद्यमान हैं, जिससे आड़े-खड़े तीन-तीन घड़नाले बन गये हैं। ऊपर के बारह थम्भों की छत के ऊपर देहुरी

तथा कठेड़े से उठने वाली ज्योति आकाश में नहीं समा पा रही है, अर्थात् सर्वत्र ज्योति ही ज्योति दिखायी पड़ रही है। इसकी किरणें आकाश से टकराकर बारम्बार धरती पर वापस आती हैं।

**भावार्थ—** आकाश सूक्ष्म होता है। उससे टकराकर किरणों का वापस धरती पर आने की बात मात्र शोभा को दर्शाना है। सर्वत्र प्रकाश करना किरणों का स्वाभाविक गुण है। यही दर्शाने के लिये आकाश एवं पृथ्वी पर किरणों की उपस्थिति का कथन किया गया है।

तिनथें तीन घाट तरफ बाएं, ताकी जुदी तीनो बनराए।  
 बन बड़ा इनथें भी बाएं, पिया सैयां खेलन कबूं कबूं जाएं॥२२॥  
 पाट घाट की बार्यीं ओर उत्तर दिशा में तीन घाट हैं,  
 जिनमें अलग-अलग तीन प्रकार के (केल, लिबोई, एवं

अनार) वन हैं। इनकी भी बायीं तरफ बड़ा वन (५ भूमिका ऊँचा मधुवन) है, जहाँ पर कभी-कभी श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ खेलने जाते हैं।

**लम्बी डारें ऊँचा बन, कई भांत हिंडोले झूलन।**

**तीन घाट कहे सो देखाऊं, सुनो तीनों बनों के नाऊं॥२३॥**

हे साथ जी! इन वनों के वृक्ष बहुत ही ऊँचे-ऊँचे हैं तथा उनकी डालियाँ भी लम्बी-लम्बी आयी हैं। डालियों की मेहराबों में अनेक प्रकार हिण्डोले (झूले) लटक रहे हैं। पाट घाट की बायीं ओर जो तीन घाट कहे गये हैं, मैं उन्हें आपको दर्शाती हूँ। सर्वप्रथम आप इनके नाम सुनिये।

**भावार्थ-** कुछ हिण्डोलों में बैठकर झूला जाता है, तो कुछ में लेटकर, और कुछ में खड़े होकर। इसी प्रकार

संख्या और ताली की दृष्टि से भी हिण्डोलों के कई भेद हैं। कहीं दो-दो सखियों के हिण्डोले हैं, तो माणिक पहाड़ में ऐसे-ऐसे भी हिण्डोले आये हैं जिनमें प्रत्येक में १२००० सखियों सहित युगल स्वरूप विराजमान होते हैं। सातवीं भूमिका में दो ताली वाले हिण्डोले हैं, तो आठवीं भूमिका में चार ताली वाले हिण्डोले आये हैं।

**केल लिबोई और अनार, और तीन बन दाहिनी किनार।  
बट नारंगी जांबू बनराए, पाट के घाट अमृत केहेलाए॥२४॥**

पाट घाट की बायीं ओर उत्तर दिशा में केल, नींबू, और अनार के तीन वन (उत्तर से दक्षिण की तरफ) आये हैं। इसी प्रकार पाट घाट की दायीं ओर दक्षिण दिशा में वट, नारंगी, और जाम्बू के तीन वन (दक्षिण से उत्तर की तरफ) आये हैं। इनके मध्य में अमृत वन के सामने पाट

घाट की शोभा आयी है।

जल पर डारें लगियां आए, दूजियां भोम तरफ सोभाए।  
 जमुना जी के दोऊ किनारे, बन जल पर लगी दोऊ हारें॥२५॥  
 इन सातों घाटों के वृक्षों की पहली हार की डालियाँ श्री  
 यमुना जी के जल चबूतरे तक झूल रही हैं (छाया कर  
 रही हैं) तथा जमीन की ओर भी झूलती हुई शोभा ले  
 रही हैं। इस प्रकार यमुना जी के जल के दोनों किनारों  
 पर वृक्षों की प्रथम एक-एक (कुल दो) हारों की शोभा  
 आयी है।

आधों आध हुइयां डारें, बन रंग सोभित दोऊ पारें।  
 आगे बन के जो मन्दिर, ताको बरनन करुं क्यों कर॥२६॥  
 इस प्रकार यमुना जी के किनारे के वृक्षों की आधी

डालियाँ जल की ओर तथा आधी डालियाँ जमीन की ओर शोभा ले रही हैं। यमुना जी के दोनों तरफ अनेक रंगों के वन शोभायमान हैं। नारंगी वन के आगे (दक्षिण में) कुञ्ज-निकुञ्ज वनों की शोभा है, जहाँ वृक्षों, फूलों, और पत्तियों के ही मन्दिर बने हैं। इनकी अनुपम शोभा का वर्णन यहाँ के शब्दों से भला मैं कैसे कर सकती हूँ?

**बेलां बन चढ़ियां इन सूल, हुई दिवालें पात फूल।**

**गिरद चारों तरफों फूले फूल रंग, जुदी हारें सोभा जिन संग॥२७॥**

इन वनों में अनेक प्रकार के रंगों वाले सुगन्धित फूलों की बेलें इस प्रकार चढ़ी हुई हैं कि उनकी दीवारें (मन्दिर) बन गयी हैं। इन मन्दिरों में चारों ओर अनेक रंगों के फूल खिले हुए हैं। अलग-अलग रंगों के फूल अलग-अलग हारों में शोभा दे रहे हैं। जहाँ जिस रंग की

शोभा होती है, वहाँ उसी रंग के फूल खिले हुए हैं।

इत लता चढ़ियां अति घन, ऊपर फूलों के फूले हैं बन।  
जानों जवेर रंग अनेक, कुंदन में जड़े विवेक॥२८॥

इन कुञ्ज-निकुञ्ज वनों में मन्दिरों के रूप में अनन्त लतायें चढ़ी हुई हैं। फूलों के वृक्षों के ऊपर फूलों की ही बेलें (लतायें) चढ़ी हुई हैं, जिनमें अनन्त प्रकार के फूल खिले हुए हैं। इन्हें देखने पर ऐसा लगता है, जैसे सोने में अनेक प्रकार के नग जड़े हुए हैं।

बीच जमुना जी के और मन्दिर, अतिबन सोभित बन के अंदर।  
कई सेज्या बनी फूल बन में, कई रंग हुए सघन में॥२९॥

यमुना जी और कुञ्ज-निकुञ्ज वन के मन्दिरों के बीच में बड़े बन की शोभा है। ये वन बट घाट के पश्चिम से शुरू

होकर कुञ्ज-निकुञ्ज वनों के अन्दर से होते हुए पश्चिम की ओर गये हैं। कुञ्ज-निकुञ्ज वनों में फूलों की ही अनेक प्रकार की शैय्यायें बनी हुई हैं। बड़े बन के वृक्ष बहुत ही घने हैं और अनेक प्रकार के रंगों से युक्त हैं। इनकी सुन्दरता अद्वितीय है।

**इत खेलत जुत्थ सैयन, सदा आनन्द इन वतन।**

**मिनें राज स्यामाजी दोए, सुख याही आतम सब कोए॥३०॥**

इन वनों में श्री राजश्यामा जी के साथ सखियों का समूह अनेक प्रकार की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करता है। इस परमधाम में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द अखण्ड रूप से विद्यमान है, जिसका रसास्वादन सभी आत्माएँ करती हैं।



पेड़ जुड़े जुड़े लम्बी डारी, छाया घाटी सोभे नीची सारी।

निकसी एक थें दूजी गली, सो तो तीसरी में जाए मिली॥३१॥

बड़े वन के सभी वृक्ष पंक्तिबद्ध रूप से समान अन्तराल पर विद्यमान हैं। इन वृक्षों के तने तो दूर-दूर हैं, किन्तु इनकी लम्बी-लम्बी डालियाँ ऊपर आपस में मिल गयी हैं। वृक्षों के फूलों तथा पत्तियों ने मिलकर रंग-बिरंगी चित्रकारी से युक्त सुन्दर चन्द्रवा रूपी छत की शोभा धारण कर रखी है। इस प्रकार नीचे बहुत ही घनी छाया हो रही है। पंक्तिबद्ध रूप से शोभायमान इन वृक्षों के मध्य (आड़ी-खड़ी) कई गलियाँ बन गयी हैं। इन गलियों में एक गली से चलते हुए दूसरी गली में पहुँच जाते हैं, तो दूसरी से चलते हुए तीसरी गली में पहुँच जाते हैं।

कई आवत बीच आड़ियां, कई सीधियां कई टेढ़ियां।

बन गलियों में बराबर, न कहूं अधिक न छेदर॥३२॥

इन वनों के मध्य कई गलियाँ आड़ी हैं, तो कई गलियाँ सीधी हैं, और कई गलियाँ तिरछी हैं। वृक्षों की डालियाँ इन सभी गलियों में समान रूप से छाया कर रही हैं। डालियों, फूलों, तथा पत्तियों से बनी हुई छत न तो कहीं ज्यादा घनी है और न कहीं छिद्र वाली, बल्कि सभी जगह समान शोभा आयी है।

ऊपर ढांपियां सारी सनन्ध, सोभा बनी जो दोरी बंध।

तले भोम नजर आवे जेती, उज्जल कहा कहूं जोत सुपेती॥३३॥

इस प्रकार पंक्तिबद्ध रूप से शोभायमान बड़ेवन के वृक्षों की डालियों ने आपस में मिलकर धरती को ऊपर से अच्छी तरह ढक लिया है। इन डालियों की छत के नीचे

जो भी भूमि नजर आ रही है, उसमें हीरे-मोतियों के समान जगमगाती हुई नूरमयी उज्ज्वल रेती बिछी हुई है। इससे निकलने वाली श्वेत रंग की तेजोमयी ज्योति की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ?

जिमी ऊपर तले जो रेती, जानों तितके बिछाए मोती।

कहूँ अति बारीक कहूँ छोटे, कहूँ बड़े बड़े रे मोटे॥३४॥

वृक्षों की छाँव तले धरती पर बिछी हुई रेती के ये कण ऐसे लगते हैं, जैसे यहाँ अति मनोहर मोती बिछाये गये हैं। मोती रूपी रेती के कण कहीं पर बहुत अधिक बारीक हैं, तो कहीं छोटे (मध्यम), और कहीं बड़े आकार के मोटे रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

कित जानों हीरा कनी, हर ठौर हर भांत घनी।

कित दोखूनी तीन चौखूनी, कित फिरती कहूं गोल बनी॥३५॥

तेजोमयी झलकार वाली यह रेती कहीं-कहीं पर हीरे के छोटे-छोटे टुकड़ों के समान सुशोभित हो रही है। इस प्रकार यहाँ सर्वत्र ही अनेक प्रकार की नूरी रेत घनी मात्रा में बिछी हुई है। कहीं पर रेत के कणों की आकृति दो कोने वाली है, तो कहीं पर तीन कोनों वाली, और कहीं पर चार कोनों वाली। कहीं पर रेत के कण बेलनाकार आये हैं, तो कहीं पर गोलाकार।

ए विध कहूं मैं केती, सो होए न याकी गिनती।

बन फूल फूले बहु रंग, झलूब रहे बोए सुगंध॥३६॥

इस प्रकार यहाँ की नूरमयी रेती की शोभा का वर्णन किस प्रकार करूँ? यहाँ अनेक प्रकार की आकृतियों की

रेती बिछी है, जिनकी गिनती कर पाना सम्भव नहीं है। इन वनों में अनेक रंगों के फूल खिले हुए हैं , जो वातावरण में चारों ओर सुगन्धि फैला रहे हैं।

**भावार्थ-** "सुगंध" और "बोए" शब्द समानार्थक हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि सुगन्धि शब्द जहाँ हिन्दी का है, वही बोए शब्द फारसी भाषा का है। यद्यपि परमधाम की वहदत (एकत्व) में सभी पदार्थों की सुगन्धि समान ही है, किन्तु लीला रूप में फूलों से सुगन्धि फैलने का वर्णन किया गया है।

एक खूबी और खुसबोए, याकी किन जुबां कहूं मैं दोए।

एक सुगंध दूजा नूर, रह्या सब ठौरों भर पूर॥३७॥

एक तो यहाँ के फूलों में अपरिमित सौन्दर्य है , दूसरा अलौकिक सुगन्धि है। इन दोनों विशेषताओं का मैं किस

जिह्वा से वर्णन करूँ? फूलों का सौन्दर्य और सुगन्धि दोनों ही परमधाम में सर्वत्र व्याप्त है।

तालाब जमुना जी के मध, बन के मंदिर या विध।

ए खेलन के सब ठौर, तलाब विध है और॥३८॥

हौज़ कौसर तालाब तथा यमुना जी के मध्य में वन के मन्दिरों (कुञ्ज-निकुञ्ज वनों) की शोभा है। ये सभी स्थान श्री राजश्यामा जी एवं सखियों की लीला-विहार के स्थान हैं। हौज़ कौसर ताल की शोभा तो कुछ और ही है।

**भावार्थ-** कुञ्ज-निकुञ्ज वन यमुना जी के पश्चिम से व नारंगी वन के दक्षिण से शुरू होकर, बट-पीपल की चौकी के दक्षिण से होते हुए, हौज़ कौसर तालाब की परिक्रमा लगाकर, पूर्व दिशा में अक्षरधाम के पूर्व तक गये

हैं।

यद्यपि परमधाम की वहदत में प्रत्येक वस्तु की शोभा समान ही होती है, किन्तु जिसकी शोभा का वर्णन किया जाता है, उसे अन्य सबसे अधिक सुन्दर कहा जाता है। इसी आधार पर इस चौपाई के चौथे चरण का भाव दर्शाया गया है।

**तलाब बनें लिया घर, ऊपर दयोहरियां चौफेर।**

**कई पावड़ियां जो किनारे, बड़ा चौक तले जाली बारे॥३९॥**

हौज़ कौसर ताल को चौरस पाल व ढलकती पाल पर आये हुए बड़े वन के वृक्षों ने चारों ओर से घेर रखा है। ताल के चारों ओर चौरस पाल पर अनेक देहुरियाँ (गुम्मत) शोभायमान हैं। चौरस पाल के किनारे अनेक सीढ़ियाँ (कटी पाल की) उतरी हैं। ताल की पूर्व दिशा में

१६ देहुरी के घाट के नीचे (प्रथम भूमिका में) बड़ा सा चौक (५ थम्भों की ७ हार) है, जिसकी पूर्वी और पश्चिमी किनारे के नीचे जालीदार दरवाजे (घड़नाले) हैं। यमुना जी का जल इन्हीं घड़नालों से होकर हौज़ कौसर ताल में प्रवेश करता है।

**द्रष्टव्य-** चौरस पाल का पहला हिस्सा जहाँ पर छत कटी हुई है, वहाँ पर दाएँ-बाएँ सीढ़ियाँ उतरी हैं, जिन्हें "कटीपाल" कहते हैं।

**बन लेवत सोभा पालें, कई हिंडोले लम्बी डालें।**

**घाट पाट दयोहरी कई रंग, जल सोभा लेत तरंग॥४०॥**

चौरस पाल व ढलकती पाल पर विद्यमान बड़े वन के वृक्ष बहुत ही सुन्दर लग रहे हैं। इनकी लम्बी डालियों की मेहराबों पर बहुत से हिण्डोले लटक रहे हैं। इन घाटों की



छतों पर अनेक रंगों की जगमगाती हुई देहुरियाँ शोभायमान हैं, जिनके रंग-बिरंगे प्रतिबिम्बों से जल की तरंगे भी जगमगाती हुई शोभा ले रही हैं।

गेहेरा अति सुन्दर जल, बीच में बन्यो है मोहोल।

जल ऊपर मोहोल जो छाजे, बीच बीच में बन विराजे॥४१॥

हौज़ कौसर तालाब बहुत लम्बा-चौड़ा और गहरा है। इसका जल अत्यन्त सुन्दर दिखायी पड़ रहा है। ताल के ठीक बीच में एक टापू महल शोभायमान हो रहा है। चारों तरफ जल से घिरा हुआ यह टापू महल बहुत ही सुन्दर लग रहा है। इसके चारों तरफ (गुर्जों के बीच-बीच में) सुन्दर बन सुशोभित हो रहे हैं।

जल मोहोल तले जो खलके, मंदिर कोट प्रकास मनी झलके।  
बन को झुण्ड पाल पर एक, तले सोभा अति विसेक॥४२॥

हौज़ कौसर ताल के जल की लहरें जब टापू महल की प्रथम भूमिका के गुर्जों और मन्दिरों से टकराती हैं, तो ऐसा लगता है कि जैसे करोड़ों मणियों का प्रकाश जगमगा उठा हो। हौज़ कौसर ताल की चौरस पाल पर पश्चिम दिशा में बहुत से वृक्षों का एक झुण्ड है, जिसे झुण्ड का घाट कहते हैं। इन वृक्षों के झुण्ड के नीचे २५० मन्दिर के लम्बे-चौड़े दो चबूतरे हैं, जिनकी शोभा बहुत ही विशेष प्रकार की है।

झुण्ड तले सोभा कही न जाए, धनी इत बिराजत आए।  
धनी बैठत साथ मिलाए, सब सिनगार साज कराए॥४३॥

वृक्षों के झुण्ड के नीचे दोनों चबूतरों की शोभा का वर्णन

कर पाना असम्भव सा लगता है। जब श्री राजश्यामा जी और सखियाँ हौज़ कौसर ताल में आते हैं, तब इस झुण्ड के घाट के चबूतरे पर अवश्य ही विराजमान होते हैं। हौज़ कौसर तालाब में जल क्रीड़ा करने के पश्चात् श्री राजश्यामा जी, सब सखियों को साथ में लेकर, इन चबूतरों पर विराजमान होते हैं और श्रृंगार करते हैं—

जब हक आवत ताल को, आए विराजत इत।

सो खेल जल का करके, ऊपर सौक को बैठत॥

परिकरमा ८/२९

इन ठौर सोभा जो अलेखे, चित सोई जाने जो देखे।

मध्य बन धाम के गिरदवाए, सोभा एक दूजी पे सिवाए॥४४॥

इस प्रकार हौज़ कौसर ताल की अपरम्पार शोभा है। इसे उसी का हृदय जान सकता है, जिसने चितवनि के

द्वारा अपनी आत्मिक दृष्टि से देखा हो। परमधाम के मध्य में रंगमहल है, जिसके चारों ओर घेरकर अनेकों प्रकार के वन आये हैं। इनमें प्रत्येक की शोभा एक से बढ़कर एक है।

**बट पीपल निकट बनराए, सो देखे न दृष्ट अघाए।**

**ज्यों ज्यों देखिए त्यों त्यों सोभाए, पेहेले थें पीछे अधिकाए॥४५॥**

रंगमहल से लगती हुई दक्षिण दिशा में वट व पीपल के वृक्ष आये हैं, जिनकी सुन्दरता को भले ही कितना भी क्यों न देखा जाये, किन्तु नेत्र तृप्त नहीं होते। उनकी शोभा को जैसे-जैसे अधिक ध्यान से देखते हैं, वैसे-वैसे उनकी शोभा पूर्व की अपेक्षा बाद में अधिक दिखायी देती है।

**भावार्थ—** किसी भी सुन्दर वस्तु को ऊपरी दृष्टि से

देखने पर वह कम सुन्दर दिखती है, किन्तु यदि उसके सौन्दर्य में डूबकर और अधिक गहराई में डूबने का प्रयास किया जाता है तो वह वस्तु पूर्व की अपेक्षा बाद में अधिक सुन्दर प्रतीत होती है। सौन्दर्य का सम्बन्ध दिल से होता है। किसी भी वस्तु की सुन्दरता तो हमेशा ही समान होती है, किन्तु हृदय के भावों के अनुसार वह कम या अधिक प्रतीत होती है। इस चौपाई की दूसरी पंक्ति में यही भाव दर्शाया गया है।

**फिरते बन धाम विराजे, ऊपर आए रह्या लग छाजे।**

**चारों तरफों फूले फूल बन, कई रंग सोभा अति घन॥४६॥**

रंगमहल के चारों ओर इसी प्रकार अनेक वन विद्यमान हैं। इनकी डालियाँ रंगमहल की प्रथम भूमिका के झरोखों और ऊपर की भूमिकाओं के छज्जों से आकर मिली हुई

हैं। इस प्रकार रंगमहल के चारों ओर के इन वनों में अनेक रंगों के सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हुए हैं, जिनकी शोभा अपरम्पार है।

**बरन्यो न जाए या मुख, चित्त में लिए होत है सुख।**

**बन में खेलें टोले टोले, मोर बांदर करत कलोले॥४७॥**

इस अलौकिक शोभा का वर्णन इस मुख से हो पाना सम्भव ही नहीं है। चितवनि द्वारा इसे अपने हृदय मन्दिर में बसा लेने पर अद्वितीय सुख का अनुभव होता है। बन्दर और मोर जैसे पशु-पक्षी वन में झुण्ड बनाकर तरह-तरह के खेल करते हैं और प्रेममयी लीलाओं में मग्न रहते हैं।

मिल मिल करें टहुंकार, मुख मीठी बानी पुकार।

बांदर ठेकों पर ठेक देत, टेढ़ी उलटी गुलाटें लेत॥४८॥

मोर आदि पक्षी अपने मुख से अति मीठी वाणी द्वारा प्रियतम को पुकारने जैसी मधुर ध्वनि करते हैं। बन्दर वृक्षों की डालियों पर उछलते-कूदते हैं तथा उल्टी-टेढ़ी कई प्रकार की कलाबाजियाँ खाते हैं।

**भावार्थ-** मोर आदि पक्षी प्रियतम के प्रति अपने प्रेम को जहाँ मीठी वाणी के द्वारा प्रकट करते हैं, वहीं बन्दर आदि जानवर उछलने-कूदने की लीलाओं से धनी को रिझाते हैं।

इस चौपाई के कथन को इस संसार के मोर और बन्दर की क्रियाओं से नहीं जोड़ना चाहिए। यह तो यहाँ के दृष्टान्तों द्वारा परमधाम की अनन्त प्रेममयी लीला को बुद्धि-ग्राह्य बनाने हेतु एक संकेत भर है।

तीतर लवा कोकिला चकोर, सब्द वाले सामी टकोर।

सुआ मैना करें चोपदारी, चातुरी इन आगे सब हारी॥४९॥

तीतर, लवा, कोयल, और चकोर जैसे पक्षी एक दूसरे की आवाज को सुनकर बहुत ही मीठी ध्वनि की गुंजार करने लगते हैं। तोता और मैना जैसे पक्षी सेवक की तरह धाम धनी की चोबदारी (सेवा) करते हैं। इनके बोलने की चतुराई की कोई भी उपमा नहीं हो सकती।

**भावार्थ-** जिस प्रकार किसी महाराजा के आगे-आगे छड़ीदार सेवक चलते हैं और उनसे बहुत आदरपूर्वक बातें करके उनके प्रति अपनी श्रद्धा दर्शाते हैं, उसी प्रकार तोता और मैना जैसे पक्षी धाम धनी से बहुत ही प्रेम भरी मीठी बातें करते हैं और सेवक की तरह उनके साथ रहकर उन्हें रिझाते हैं। वे इतनी चतुराई से श्री राज जी से बातें करते हैं कि इस संसार में उसकी उपमा दी



ही नहीं जा सकती।

सखियों के नाम ले ले बुलावें, धनीजी के आगे मुजरा करावें।  
 पंखी पिउ पिउ तुहीं तुहीं करें, कई बिध धनी को हिरदे धरें॥५०॥  
 तोता और मैना जैसे पक्षी सखियों के नाम ले-लेकर  
 बुलाते हैं तथा उन्हें धाम धनी के सम्मुख उपस्थित करते  
 हैं। पक्षियों के मुख से एकमात्र "पिया पिया, तू ही तू" की  
 मनभावनी ध्वनि ही निकलती रहती है। इस प्रकार  
 अनेक तरह की प्रेममयी लीलाओं से वे अपने हृदय में  
 धनी को बसाये रखते हैं।

**भावार्थ-** स्वलीला अद्वैत परमधाम की प्रेमलीला इतनी  
 विस्मयकारी है कि सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति तो इस पर  
 विश्वास ही नहीं कर सकता। इस प्रेम लीला में जहाँ  
 अक्षरातीत युगल स्वरूप के रूप में सिंहासन पर

विराजमान है, वहीं सखियों के रूप में भी वे स्वयं ही हैं। यहाँ तक कि पशु-पक्षियों के रूप में भी स्वयं श्री राज जी ही लीला कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का यह कथन देखने योग्य है—

खिलौने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।

एक जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए इतदाए॥

खुलासा १६/८४

किसी पूज्य या श्रेष्ठ व्यक्ति के सामने आकर उसका अभिवादन करना "मुजरा" कहलाता है। जब तोता और मैना आदि पक्षी चोबदार के रूप में अपनी मधुर वाणी से सखियों का नाम लेकर बुलाते हैं और सखियाँ आकर धनी का दीदार करती हैं, तो वह दृश्य बहुत ही मनमोहक होता है। पक्षियों द्वारा सखियों के नाम लेने से उनकी महिमा पर कोई असर नहीं पड़ता, बल्कि यह भी

प्रेममयी लीला का ही एक अंग है।

तिमरा भमरा स्वर साधें, गुंजे गान पियासों चित बांधे।

मृग कस्तूरियां घेरों घेर, करें सुगंध बन चौफेर॥५१॥

झींगुर और भौरों का चित्त (हृदय) भी प्रियतम से बँधा होता है। वे प्रियतम के प्रेम में सुन्दर स्वरों में गायन करते हैं। इनकी मधुर ध्वनि सम्पूर्ण परमधाम में गूँजती रहती है। वनों में सर्वत्र घूमते हुए कस्तूरी मृग दिखाई देते हैं, जिनकी सुगन्धि चारों ओर फैल रही होती है।

**भावार्थ-** परमधाम की प्रत्येक वस्तु सुगन्धिमयी है, किन्तु फूलों या कस्तूरी मृग से सुगन्धि फैलना मात्र लीला रूप में है।

हाथी बाघ चीते सियाहगोस, खेलें मिलें आतम नहीं रोस।

हंस गरुड़ पंखी कई जात, नाम लेऊं केते कै भांत॥५२॥

हाथी, बाघ, चीते, तथा सियाहगोश आदि सभी आपस में मिलकर प्रेमपूर्वक खेलते हैं। इनमें एक-दूसरे के प्रति कभी भी क्रोध नहीं होता। इसी प्रकार हंस, गरुड़, आदि अनेक जातियों के अनेक प्रकार के पक्षी भी आनन्दमयी क्रीड़ाएँ करते रहते हैं। मैं उनमें से कितनों के नाम बताऊँ?

**भावार्थ-** "सियाहगोश" फारसी भाषा का शब्द है। यह कुत्ते की आकृति का ऐसा जानवर है, जिससे सिंह भी डरता है। जब स्वलीलाअद्वैत परमधाम में श्री राज जी के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, तो यह स्पष्ट है कि इन हाथी, बाघ, आदि जानवरों के रूप में श्री राज का ही स्वरूप क्रीड़ा कर रहा है। ऐसी अवस्था में उनमें क्रोध

और हिंसा आदि मायावी विकारों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अनेक प्रकार के पक्षियों का तात्पर्य उनकी उपजातियों, रंग, तथा आकार के भेद से है।

**कई मुरग सुतर कुलंग, खेल करें लड़ाई अभंग।**

**सीनाकस गुलाटें खावें, कबूतर अपनी गत देखावें॥५३॥**

यहाँ अनेक (अनन्त) प्रकार के मुरगे, शुतुरमुर्ग, तथा कलिंग (कुलंग) आदि पक्षी हैं, जो हमेशा ही प्रेममयी लड़ाई का खेल करते रहते हैं। ये अपनी छाती फुलाकर आकाश में कलाबाजियाँ (गुलाटियाँ) खाते हैं। इसी प्रकार कबूतर भी अपनी अदाओं (कलाओं) से धनी को रिझाते हैं।

**भावार्थ—** जिस प्रकार घड़े में रखे हुए गंगाजल को गंगा कहकर संकेत करते हैं, उसी प्रकार यहाँ परमधाम की

अनन्त प्रेममयी लीला को संसार के पशु-पक्षियों की लौकिक लीलाओं के दृष्टांत से प्रस्तुत किया गया है। अनन्त को शब्दों में व्यक्त करने का और कोई साधन ही नहीं है।

**हरन सांम्हर पस्वाड़े पाड़े, खेलें सब कोई अपने अखाड़े।**

**मुजरे को दोऊ समें आवें, खेल सब कोई अपना देखावें॥५४॥**

हिरन, सांभर, पश्वाड़ा, तथा पाड़े आदि अपने-अपने अखाड़ों में तरह-तरह के खेल करते हैं। ये प्रातः-सायं दोनों समय धनी का दीदार करने के लिये आते हैं और अपने-अपने खेल दिखाकर धनी को रिझाते हैं।

**भावार्थ-** लाल चबूतरे के सामने ४१ वृक्षों की ४१ हारें हैं, जिनके बीच में ४० अखाड़ों की ४० हारें हैं। सभी पशु-पक्षी चाँदनी चौक में प्रातः छः बजे और सायंकाल

तीन बजे धनी का दीदार करते हैं। अनेकों जाति के जानवर यहाँ अपने-अपने अखाड़ों में खेल -तमाशे दिखाकर धनी को रिझाते हैं।

भैंस के छोटे बच्चे को पाड़ा कहते हैं। पश्चाड़ा भी तिब्बत के बर्फीले इलाकों में पाया जाता है। इसके बाल बहुत ही कोमल होते हैं तथा यह आकृति में याक से कुछ मिलता-जुलता है, किन्तु थोड़ा छोटा होता है।

**पसु पंखी अनेक हैं नाम, सोभे केसों पर चित्राम।**

**अति सुन्दर जोत अपार, याके खेल बोल मनुहार॥५५॥**

इस प्रकार इन वनों में अनन्त नाम के पशु-पक्षी हैं, जिनके बालों पर बहुत ही सुन्दर-सुन्दर चित्र सुशोभित हो रहे हैं। इनके शरीरों से अनन्त तेजोमयी और अति सुन्दर ज्योति निकलती रहती है। इनके खेल और वचन

मन को लुभाने वाले होते हैं।

जमुनाजी के जो पार, बन पसु पंखी याही प्रकार।

मोहोल सामे सोभे मोहोल, सो मैं क्यों कहूं या मुख कौल॥५६॥

यमुना जी के उस पार (पूर्व में) भी इसी प्रकार के सातों वन हैं तथा ऐसे ही अनन्त प्रकार के अति सुन्दर पशु-पक्षी हैं। रंगमहल के ठीक सामने (यमुना जी के उस पार) वैसा ही अक्षर धाम है, जो नौ भूमिका एवं दसवीं आकाशी वाला है। इस मुख से निकले हुए नश्वर शब्दों से भला मैं उसकी शोभा का वर्णन कैसे कर सकती हूँ?

दरवाजे सामी दरवाजे, नूर सामी नूर बिराजे।

नूर किरना उठें साम सामी, जोत रही सबों ठौर जामी॥५७॥

रंगमहल तथा अक्षर धाम के मुख्य दरवाजे आमने-



सामने हैं। इस प्रकार, दोनों महलों के नूर की अद्वितीय शोभा हो रही है। इन दोनों महलों की नूरी किरणें आमने-सामने उठ रही हैं और उनकी अलौकिक ज्योति सर्वत्र ही अति सुन्दर शोभा को धारण कर रही है।

**लीला दोऊ दोनों ठौर, भांत दोऊ पर नाहीं और।**

**फिरते अछर के जो बन, लीला एकै देखियत भिन॥५८॥**

अक्षरातीत की लीला यमुना जी के पश्चिम में स्थित रंगमहल में होती है, जबकि अक्षर ब्रह्म यमुना जी के पूर्व के रंगमहल (अक्षर धाम) में विराजमान रहते हैं। श्री राज जी की लीला प्रेम और आनन्द की होती है तथा अक्षर ब्रह्म मात्र सत्ता की लीला करते हैं। फिर भी, दोनों का स्वरूप एक ही है। अक्षर धाम के चारों ओर जो वन आये हैं, उनमें एक ही प्रकार (प्रेम और आनन्द) की लीला

होती है, भिन्न प्रकार की प्रतीत होती है।

**भावार्थ-** श्री राज जी सत्+चिद्+आनन्द के स्वरूप हैं। वे ही सत् अंग अक्षर ब्रह्म के रूप में अक्षर धाम में लीला कर रहे हैं, तो आनन्द अंग श्यामा जी के रूप में परमधाम के रंगमहल में प्रेम और आनन्द की लीला करते हैं। चिद्धन स्वरूप में वे स्वयं हैं, अर्थात् सत् और आनन्द दोनों ही चिद्धन स्वरूप के अंगरूप हैं।

परमधाम में श्री राजश्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, खूब खुशालियाँ, और पशु-पक्षी सभी किशोर रूप में ही हैं। अक्षर ब्रह्म को बाल स्वरूप एवं अक्षरातीत को किशोर स्वरूप कहना हास्यास्पद है। जब श्री राज जी का परम सत्य (मारिफत) स्वरूप हृदय ही सत्य (हकीकत) के रूप में अक्षर ब्रह्म के रूप में लीला करता है, तो दोनों को अलग-अलग स्वरूप वाला

कहना बहुत बड़ी भूल है। अक्षर ब्रह्म की अर्धांगिनी महालक्ष्मी को भी वही प्रेम और आनन्द प्राप्त होता है, जो श्यामा जी और सखियों को प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में परिकरमा १४ / ९१ का यह कथन देखने योग्य है—

जैसी साहेबी रूहन की, विध लखमी जी भी इन।

वाहेदत में ना तफावत, पर ए जाने रूहें अर्स तन॥

अक्षर ब्रह्म की सत्ता की अखण्ड लीला बेहद मण्डल में होती है। अक्षर धाम में तो मात्र उनका अखण्ड स्वरूप विराजमान रहता है। आठों सागर सहित सम्पूर्ण २५ पक्ष में श्री राजश्यामा जी और सखियों की ही प्रेममयी लीला होती है। बाह्य रूप से देखने पर तो ऐसा लगता है कि अक्षर धाम और उसके चारों ओर वनों में अलग प्रकार की लीला होती है, किन्तु तत्त्वतः ऐसा नहीं होता।

कई मिलावे सोहने, धनी सैयों के खेलौने।

पसु पंखी जुत्थ मिलत, आगे बड़े दरवाजे खेलत॥५९॥

पशु-पक्षियों के अनन्त यूथ (समूह) हैं, जो बहुत ही सुन्दर दिखायी देते हैं। ये श्री राजश्यामा जी और सखियों के खिलौने हैं। पशु-पक्षियों के ये सभी समूह मिलकर रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने चाँदनी चौक में तरह-तरह के खेल किया करते हैं।

दोऊ कमाड़ रंग दरपन, माहें झलकत सामी बन।

नंग बेनी पर देत देखाई, ए सोभा कही न जाई॥६०॥

रंग महल के मुख्य द्वार के दोनों पल्लों का रंग दर्पण के समान श्वेत है। इनमें सामने के वनों की सुन्दर शोभा झलकती रहती है। पल्लों की बेनी पर अति सुन्दर नग जड़े हुए हैं, जिनकी शोभा का वर्णन इस मुख से हो पाना

सम्भव नहीं है।

**भावार्थ-** दरवाजे की पट्टी को बेनी कहते हैं।

कई कटाव नकस जवेर, सोभित नंग चौक चौफेर।

फिरते द्वारने जो मनी, ताकी जोत प्रकास अति घनी॥६१॥

दरवाजे में चारों ओर जवाहरातों के बहुत से बेल-बूटे बने हैं तथा मनोरम चित्रकारी है। उनमें जड़े हुए नग बहुत ही सुशोभित हो रहे हैं। द्वार में चारों ओर मणियों का अद्भुत जड़ाव है, जिससे निकलने वाली ज्योति एवं प्रकाश की अत्यधिक शोभा हो रही है।

याके तीन तरफ जो दीवार, कई जवेर भोम रंग लाल।

गोख खिड़की जाली जवेर, कई जड़ाव दीवार चौक चौफेर॥६२॥

दरवाजे के तीन ओर (दायें, बायें, तथा ऊपर) लाल रंग की दीवार है, जिसमें अनेक प्रकार के जवाहरात जड़े हुए हैं। दीवार के साथ-साथ फर्श (सतह) का भी रंग लाल है। झरोखों, खिड़कियों, बाहरी हार मंदिरों की जालीदार दीवारों, तथा चारों ओर दीवारों के विभिन्न हिस्सों में अनेक प्रकार के नग जड़े हुए हैं।

गिरद झरोखे के थंभ फिरते, जुदी कई जिनसों जोत धरते।  
नव भोम रंग बरनन, तापर खुली चांदनी उठत किरन॥६३॥  
झरोखे की किनार पर, धाम दरवाजे के दायें-बायें पाँच-पाँच थम्भ (हीरा, माणिक, पुखराज, पाच, तथा नीलम) आये हैं। ये अलग-अलग प्रकार के नगों की ज्योति से युक्त हैं। प्रथम भूमिका से लेकर नवमी भूमिका तक इसी प्रकार के रंग का वर्णन हुआ है। इसके ऊपर

दसवीं चाँदनी (आकाशी) की शोभा आयी है, जहाँ से अनन्त नूरी किरणें आकाश में उठती रहती हैं।

**भावार्थ-** मुख्य द्वार के दायें-बायें जो दो चबूतरे (४ मन्दिर के लम्बे एवं २ मन्दिर के चौड़े) हैं, उनकी बाहरी एवं भीतरी किनार पर ५-५ थम्भ हैं। बाहरी किनार के थम्भों के मध्य कठेड़ा शोभायमान है। इसे ही झरोखा कहा गया है। इन्हें ही इस चौपाई के दूसरे चरण में अलग-अलग प्रकार के नगों (जुदी कई जिनसों) के कथन से वर्णित किया गया है। दसवीं चाँदनी तक इसी प्रकार नगों एवं रंगों के थम्भ आये हैं।

मंदिर याकी कांगरी करे जोत, जानो तहां की बीज उद्धोत।

दरवाजे में ठौर रसोई, जित बड़ा मिलावा नित होई॥६४॥

मन्दिरों के ऊपर अति सुन्दर काँगरी की शोभा आयी

है। इससे इतनी ज्योति निकल रही है कि जैसे वहाँ विद्युत चमक रही हो। धाम दरवाजे से अन्दर प्रवेश करने पर सामने ही (२८ थम्भ के चौक के आगे) रसोई की हवेली आती है, जहाँ नित्य प्रति ही सखियों का बहुत बड़ा समागम (मिलन) होता है।

**भावार्थ—** वहाँ भोजन करने के लिये प्रतिदिन सखियाँ एकत्रित होती हैं, इसलिये उसे "बड़ा मिलावे" की संज्ञा दी गयी है। यद्यपि स्वलीलाअद्वैत में कभी अलग होने या मिलने की बात मूलतः नहीं होती, किन्तु लीला रूप में ऐसा ही कहा जाता है।

**स्याम मंदिर रसोई होत जित, जोड़े सेत मंदिर है तित।**

**बन थें फिरें संज्ञा जब, इन मंदिरों आरोगें तब॥६५॥**

इस हवेली के ईशान कोने के मन्दिर से लगता हुआ



पश्चिम की तरफ पहला मन्दिर श्याम रंग का है, जहाँ पर रसोई तैयार होती है। दूसरा मन्दिर सीढ़ियों का है, तथा तीसरा मन्दिर श्वेत रंग का भण्डार का है। जब सन्ध्या समय वनों से लौटकर सखियाँ आती हैं, तो इस हवेली की दहलानों (मन्दिरों) के अन्दर भोजन करती हैं।

**भावार्थ—** परमधाम मन-बुद्धि की दौड़ से परे शब्दातीत है, किन्तु चितवनि के लिये यहाँ के भावों के अनुसार ही वहाँ की शोभा को अंशमात्र रूप में दर्शाया जा सका है। रसोईघर का श्याम रंग होना तथा भोज्य सामग्री को रखने के लिये भण्डार गृह का होना यहाँ के ही भावों से है। जहाँ का कण-कण ही ब्रह्म स्वरूप है, वहाँ इनकी आवश्यकता नहीं होती। यद्यपि हवेली की दहलानों में ही सखियाँ भोजन करती हैं, किन्तु इस चौपाई में उन्हें मन्दिर कहने का कारण यह है कि अन्य चौरस हवेलियों

में देहलानों की जगह मन्दिर ही आये हैं।

चरनी आगे मिलावा होत, जुत्थ लाडबाई धरे जोत।

साक बांदर जो ल्यावत, आगे सखियां सब समारत॥६६॥

सीढ़ियों वाले मन्दिर के आगे देहलानों में सभी सखियाँ एकत्र होती हैं। उस समय लाडबाई का समूह भोजन की तैयारी करता है। अन्न वन से बन्दर जो शाक आदि लाते हैं, उसे यहाँ लाकर सखियों को दे देते हैं, जिन्हें वे तैयार करती हैं (काटती हैं)।

**भावार्थ-** परमधाम में इच्छा मात्र से ही सब कुछ पल भर में हो जाता है। मात्र लीला को दर्शाने के लिये ही भोजन तैयार करने की बात कही गयी है।

**कई चौक चबूतरे अंदर, कई विध गलियां मंदिर।**

**कई जड़ाव दीवार द्वार जोत धरे, ए जुबां बरनन कैसे करे॥६७॥**

रंगमहल में अनेक चौक तथा चबूतरे हैं। अनेक प्रकार की गलियों तथा मन्दिरों की शोभा हो रही है। दीवारों तथा दरवाजों के ऊपर अनेक प्रकार के जगमगाते हुए नग जड़े हैं। मेरी यह जिह्वा इस शोभा का वर्णन कैसे कर सकती है?

**कई नकस पुतली चित्रामन, कई बेल पसु पंखी बन।**

**कंचन कड़े जंजीरां जड़ियां, कई झलके थंभ सीढ़ियां॥६८॥**

दीवारों पर अनेक प्रकार के बेल-बूटे तथा पुतलियों के चित्र बने हुए हैं। अनेक प्रकार की लताओं तथा वनों में विचरण करते हुए पशु-पक्षियों के भी चित्र हैं। यहाँ कई जगह हिण्डोलों में कञ्चन के कड़ों से युक्त जंजीरे हैं।

सीढ़ियों तथा थम्भों में भी अनेक नगों की चित्रकारी झलकती रहती हैं।

माहें वस्तां संदूक जोगवाई, सो तो अगनित देत देखाई।  
ताके खिल्ली किनारे भमरियां, ऊपर वस्तां अनेक बिध धरियां॥६९॥  
मन्दिरों के अन्दर रखने के सन्दूक आदि साधनों में अनन्त प्रकार की वस्तुएँ दिखायी दे रही हैं। छतों में जड़ी हुई कुण्डियों से गोल-गोल छींके (सीकें) लटक रहे हैं, जिनके ऊपर तरह-तरह की वस्तुएँ रखी हुई हैं।

ए मैं क्यों कर करूं बरनन, तुम लीजो कर चितवन।  
नव भोम सबों के मंदिर, देखो वस्तां अपनी चित धर॥७०॥  
हे साथ जी! मैं इस अलौकिक शोभा का वर्णन कैसे करूँ? आप चितवनि करके स्वयं ही देखिए। रंगमहल की

सभी नवों भूमिकाओं के मन्दिरों में आपकी ही वस्तुएँ रखी हुई हैं। उन्हें अपनी आत्मिक दृष्टि से देखिए और अपने हृदय मन्दिर में बसा लीजिए (अखण्ड कर लीजिए)।

**भावार्थ-** इस चौपाई में धाम धनी के द्वारा सुन्दरसाथ को चितवनि के द्वारा परमधाम को देखने का स्पष्ट निर्देश है।

सेज्या सबन के सिनगार, हिरदे लीजो कर निरधार।

सब जोगवाई है पूरन, कमी नहीं काहू में किन॥७१॥

रंगमहल के इन मन्दिरों में सभी सखियों की शय्याएँ एवं श्रृंगार की सम्पूर्ण सामग्री पूर्णातिपूर्ण है। कहीं भी रंच मात्र की भी कमी नहीं है। आप इस शोभा को अपने हृदय में निश्चित रूप से बसाइये।

**भावार्थ-** युगल स्वरूप तथा सखियों का स्वरूप सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। यद्यपि वहाँ श्रृंगार के प्रसाधनों की कोई आवश्यकता नहीं है, फिर भी लीला रूप में ऐसा वर्णित किया गया है।

हाँस विलास सनेह प्रेम प्रीत, सुख पिया जी को सब्दातीत।  
 डब्बे तबके सीसे सीकियां, कई देत देखाई लटकतियां॥७२॥

प्रियतम के प्रेम, प्रीति, और स्नेह के रस में डूबी हुई हँसी की लीलाओं का आनन्द अनन्त है। उसे शब्दों की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। प्रेममयी लीला के इन मन्दिरों में तरह-तरह के डिब्बे, थालियाँ, दर्पण, और लटकते हुए छींके दिखायी दे रहे हैं।

**भावार्थ-** तेज, ज्योति, और प्रकाश में जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध प्रेम, प्रीति, और स्नेह में होता है। परमधाम

की प्रीति एवं स्नेह तथा कालमाया के ब्रह्माण्ड की प्रीति और स्नेह में भेद होता है। जहाँ परमधाम की प्रीति एवं स्नेह त्रिगुणातीत होता है, वहीं कालमाया की प्रीति और स्नेह में सत्व, रज, तम का प्रभाव होता है।

**चौकियां माचियां सिंघासन, कई हिंडोले जंजीर कंचन।**

**कई बासन धात अनेक, कई बाजंत्र विविध विसेक॥७३॥**

मन्दिरों में अनेक प्रकार की चौकियाँ, पीढ़ियाँ, तथा सिंहासन रखे हुए हैं। कञ्चन (शुद्ध सोने) की जंजीरों में बहुत से झूले (हिण्डोले) लगे हुए हैं। अनेक प्रकार के धातुओं के बहुत से बर्तन हैं। विविध प्रकार की मोहक ध्वनि देने वाले विशेष प्रकार के अनेक (असंख्य) बाजे (वाद्य यन्त्र) हैं।

**भावार्थ—** भोजन की थाल आदि को रखने के लिये

चौकी का प्रयोग किया जाता है। माची पलंग की तरह बुनी जाती है और इसे मात्र बैठने के लिये ही प्रयोग में लाया जाता है। पूर्णातिपूर्ण-अनन्त परमधाम में दैनिक वस्तुओं की कोई कमी नहीं है, यही भाव दर्शाने के लिये इन चौपाइयों में लौकिक वस्तुओं की उपस्थिति दर्शायी गयी है। अगली चौपाई में भी यही भाव है।

कई झीले चाकले दुलीचे बिछोनें, कई बिध तलाई सिरानें।  
 कई रंग ओछाड़ गाल मसूरे, कई सिरख सोड़ मन पूरे॥७४॥  
 इन मन्दिरों में बहुत से गलीचे, आसनियाँ (गदियाँ), छोटे कालीन, और बिछौने हैं। अनेक प्रकार के गद्दे तथा तकिए हैं। ओढ़ने के लिये अनेक रंग की चादरें तथा गालों के नीचे रखे जाने वाले तकिए हैं। मन को आनन्दित करने वाली अनेक रजाइयाँ भी हैं, जो कोमल



रुई से भरी हुई हैं।

**भावार्थ-** बैठने के छोटे आसन को चाकला कहते हैं। इसी प्रकार अति कोमल छोटे कालीन को दुलीचा कहते हैं और बड़े कालीन को गलीचा।

सेज्या सिनगार के जो भवन, दोए दोए नव खण्ड सबन।  
दूजी भोम किनारे बाएं हाथ, कबूं कबूं सिनगार करें इत साथ॥७५॥  
रंगमहल की नवों भूमिकाओं में प्रत्येक सखी के लिये प्रत्येक भूमिका में दो-दो भवन हैं- एक शयन के लिये और एक श्रृंगार के लिये। दूसरी भूमिका में बायें हाथ (उत्तर दिशा) की किनार पर सुन्दरसाथ कभी-कभी भुलवनी की लीला करते हैं और खड़ोकली में स्नान करके बाहरी हार मन्दिरों में श्रृंगार करते हैं।

इत खड़ोकली जल हिलोले, धनी साथ झीलें-झकोलें।

इत सिनगार करके खेलें, ठौर जुदे जुदे जुत्थ मिलें॥७६॥

यहाँ पर दूसरी भूमिका में खड़ोकली है, जिसका जल हिलोरें मारता है। इसमें सुन्दरसाथ और राजश्यामा जी एक दूसरे के ऊपर जल उछाल कर स्नान करते हैं। यहीं पर (बाहरी हार मंदिरों में) श्रृंगार करते हैं तथा अलग-अलग यूथों (समूहों) में होकर भुलवनी के मन्दिरों में तरह-तरह के खेल करते हैं।

**भावार्थ-** परमधाम में स्नान करने और खेलने के सम्बन्ध में समय का कोई बन्धन नहीं है। कभी तो धाम धनी भुलवनी में खेलकर स्नान करते हैं, तो कभी स्नान करके भुलवनी में खेलते हैं। इस चौपाई में भुलवनी में ही खेलने का प्रसंग है, अन्य का नहीं।

साम सामें मन्दिरों के द्वार, नव भोम फिरती किनार।

ता बीच थंभों की दोए हार, कई रंग नंग तेज अपार॥७७॥

रंगमहल की नवों भूमिकाओं में बाहरी किनार पर चारों ओर घेरकर ६०००-६००० मन्दिरों की दो हारें शोभायमान हैं। इन दोनों हारों के मन्दिरों के दरवाजे आमने-सामने सुशोभित हो रहे हैं। मन्दिरों की इन दोनों हारों के मध्य में ६०००-६००० थम्भों की दो हारें भी विद्यमान हैं। इन थम्भों में अनेक रंगों के नग जड़े हैं, जिनसे अनन्त तेज निकल रहा है।

जेती मैं कही जोगवाई, सो देख देख आतम न अघाई।

या बाहेर या अंदर, सब एक रस मोहोल मन्दिर॥७८॥

अब तक मैंने परमधाम की जिस-जिस वस्तु की शोभा का वर्णन किया है, उसे बारम्बार देखने पर भी मेरी

आत्मा तृप्त नहीं हो पा रही है अर्थात् उसे देखने की इच्छा हमेशा बनी ही रहती है। परमधाम के महलों, मन्दिरों, या किसी भी वस्तु को चाहे अन्दर से देखा जाये या बाहर से, सबकी शोभा एक समान है।

**भावार्थ-** स्वलीला अद्वैत परमधाम में किसी की भी शोभा कम या अधिक नहीं हो सकती, अन्यथा वह दत्त (एकत्व) का सिद्धान्त ही झूठा हो जायेगा। परमधाम के प्रेम, सौन्दर्य, और आनन्द में कभी हास नहीं होता, इसलिये वहाँ की शोभा को देखने पर हमेशा देखने की इच्छा बनी रहती है, क्योंकि आत्मा उस आनन्द से स्वयं को कभी भी वंचित नहीं करना चाहती। इसके विपरीत, इस नश्वर जगत में किसी भी सुन्दर वस्तु को कुछ बार देख लेने पर उससे जी भर जाता है, क्योंकि यहाँ की प्रत्येक वस्तु का सौन्दर्य, प्रेम, और आनन्द

अल्पकालिक होता है।

केहेती हों करके हेत, सारे दिन की एह बिरत।

तुम लीजो दृढ़ कर चित्त, अपना जीवन है नित॥७९॥

हे साथ जी! परमधाम की यह सारे दिन की लीला है, जिसे मैं आपसे बहुत प्रेमपूर्वक कहती हूँ। इसे आप अपने हृदय में दृढ़तापूर्वक बसा लीजिए क्योंकि यही अपना अखण्ड (वास्तविक) जीवन है।

**भावार्थ-** संसार के झूठे क्रिया-कलापों से जो हमारी आयु और ऊर्जा क्षीण हो रही है, उससे हमारी आत्मा को कुछ भी लाभ होने वाला नहीं है। किन्तु यदि हम निजधाम की लीला में डूब जाते हैं, तो हम स्वयं को माया से अलग परमधाम में अनुभव करते हैं, जो हमारा वास्तविक जीवन है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही

आशय है।

## श्री धाम की आठ पोहोर की बीतक

अब परमधाम में होने वाली अष्ट प्रहर की लीला का वर्णन किया जा रहा है।

रंगमहल के १० मन्दिर के हाँस में प्रथम भूमिका में मुख्य द्वार के सामने २ मन्दिर का लम्बा-चौड़ा चौक है, जिसके दायें-बायें ४ मन्दिर के लम्बे और २ मन्दिर के चौड़े दो चबूतरे हैं। इन दोनों चबूतरों के ऊपर दूसरी भूमिका में ४ मन्दिर लम्बे और २ मन्दिर के चौड़े दो झरोखे सुशोभित हो रहे हैं। इन झरोखों और मध्य के चौक के ऊपर तीसरी भूमिका में १० मन्दिर की लम्बी और २ मन्दिर की चौड़ी पड़साल है। इसकी बाहरी व भीतरी किनार पर नीचे के चबूतरों के समान ही हीरा,

माणिक, पुखराज, पाच, तथा नीलवी के थम्भ आये हैं। पड़साल की बाहरी किनार पर तीन दिशाओं में थम्भों के मध्य कठेड़ा (railing) सुशोभित हो रहा है।

रंगमहल की प्रथम भूमिका में १० मन्दिर के हाँस में दरवाजे के मन्दिर के दायें-बायें ४-४ मन्दिर हैं। तीसरी भूमिका में दरवाजे के मन्दिर और दायें-बायें के एक-एक मन्दिर की जगह में ४ मन्दिर की लम्बी व १ मन्दिर की चौड़ी दहलान है, जिसके दायें-बायें (उत्तर, दक्षिण में) ३-३ मन्दिर हैं। इसमें दक्षिण दिशा का दूसरा मन्दिर नीले-पीले रंग का है। इस मन्दिर के एक तरफ का थम्भ तथा ऊपर की आधी मेहराब पुखराज के नग (पीले रंग) की है, तथा दूसरी तरफ के थम्भ व ऊपर की शेष आधी मेहराब पाच के नग (हरे रंग) की है। इससे हरे व पीले दोनों रंग की तेजोमयी किरणें इस मन्दिर की दीवार पर

झलक रही हैं। देहलान से लगकर पश्चिम दिशा में पहली गली में ४ मन्दिर लम्बा और एक मन्दिर चौड़ा कमर भर ऊँचा चबूतरा है। इस चबूतरे से २८ थम्भ के चौक में तथा उत्तर-दक्षिण दिशा में तीन-तीन सीढ़ियाँ उतरी हैं। पड़साल, दहलान, और चबूतरे की ऊँचाई एक समान है।

**तीजी भोम की जो पड़साल, ठौर बड़े दरवाजे विसाल।**

**धनी आवत हैं उठ प्रात, बन सींचत अमृत अघात॥८०॥**

तीसरी भूमिका की जो पड़साल है, यहाँ काफी लम्बी-चौड़ी जगह है। मुख्य द्वार के ऊपर की जगह में चार मन्दिर की दहलान है, जो बहुत ही विशाल द्वार के रूप में है। धाम धनी पाँचवी भूमिका से प्रातःकाल उठकर इसी पड़साल में महराबों के नीचे आकर खड़े हो जाते हैं



और अपनी प्रेमभरी अमृतमयी दृष्टि से वनों को सींचते हैं। सभी वन एवं पशु-पक्षी उनकी प्रेमभरी दृष्टि से आनन्दमग्न हो जाते हैं।

**पसु पंखी का मुजरा लेवें, सुख नजरों सबों को देवें।**

**पीछे बैठ करें सिनगार, सखियां करावें मनुहार॥८१॥**

श्री राज जी पशु-पक्षियों का अभिवादन स्वीकार करते हैं और अपनी प्रेमभरी दृष्टि से सबको सुख देते हैं। इसके पश्चात् दहलान में बैठाकर सखियाँ धनी का श्रृंगार कराती हैं। इस प्रकार सखियाँ अपने प्राणवल्लभ को रिझाती हैं।

**श्री स्यामाजी मन्दिर और, रंग आसमानी है वा ठौर।**

**चार चार सखियां सिनगार करावें, स्यामाजी श्री धनी जी के पासे आवें॥८२**

**दूसरी हार का पहला मन्दिर (२८ थम्भ के चौक की**

दक्षिण दिशा में) आसमानी रंग का है, जिसमें श्यामा जी का श्रृंगार होता है। चार सखियाँ श्री राज जी का और चार सखियाँ श्यामाजी का श्रृंगार कराती हैं। श्रृंगार सजकर श्यामा जी श्री राज जी के पास आती हैं।

**सोभा क्यों कर कहूँ या मुख, चित्त में लिए होत है सुख।  
चित दे दे समारत सेंथी, हेत कर कर बेनी गूँथी॥८३॥**

युगल स्वरूप की इस शोभा का वर्णन मैं इस मुख से कैसे करूँ? इस शोभा को अपने हृदय मन्दिर में बसा लेने पर आनन्द ही आनन्द प्राप्त होता है। सखियाँ बहुत ही ध्यानपूर्वक एक-दूसरे की माँग सँवारती हैं और अति प्यार से एक दूसरे की चोटी गूँथती हैं।

मिनोँ मिने सिनगार करावें, एक दूजी को भूखन पेहेरावें।  
 साथ सिनगार करके आवें, जैसा धनी जी के मन भावे॥८४॥

सभी सखियाँ आपस में एक दूसरे का श्रृंगार कराती हैं।  
 वे एक दूसरे को सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहनाती हैं।  
 प्रियतम श्री राज जी को जैसा श्रृंगार अच्छा लगता है,  
 वैसा ही श्रृंगार सजकर सखियाँ अपने प्राणवल्लभ के पास  
 जाती हैं।

सैयां लटकतियां करें चाल, ज्यों धनी मन होत रसाल।  
 सैयां आवत बोलें बानी, संग एक दूजी पे स्यानी॥८५॥

परमधाम की ये अंगनाएँ इस प्रकार प्रेमभरी मस्ती की  
 चाल से धनी के पास आती हैं कि वे अति प्रसन्न हो  
 जाएँ। सखियाँ प्रेम की लीला में बहुत ही चतुर हैं। वे  
 एक-दूसरे के साथ प्रेम की ही बातें करते हुए श्री राज

जी के पास आती हैं।

**भावार्थ-** यद्यपि नाराज और प्रसन्न होना मानवीय प्रवृत्ति है, किन्तु यहाँ लीला रूप में धाम धनी के प्रसन्न होने की बात कही गयी है। वस्तुतः आशिक (प्रेमी) अपने माशूक (प्रेमास्पद) को रिझाना चाहता है। यदि वह इसमें सफल हो जाता है, तो बोलचाल की भाषा में इसे "प्रसन्न करना" कहा जाता है। इस चौपाई में यही भाव व्यक्त किया गया है। रिझाने का तात्पर्य है - अपने अस्तित्व को मिटाकर अपने हृदय का सर्वस्व प्रेम अपने प्रेमास्पद के प्रति समर्पित कर देना।

सैयां आवत करें झनकार, पाए भूखन भोम ठमकार।

झलकतियां रे मलपतियां, रंग रस में चैन करतियां॥८६॥

सखियाँ जब श्री राज जी के पास आती हैं, तो धरती

पर उनके चरणों के पड़ने से पैरों के आभूषणों में झनकार होती है। उन सखियों की मुस्कराती हुई नूरी शोभा हमेशा ही झलकार करती है। प्रेम का रसपान करने वाली ये अँगनायें आनन्द के रंग में ही आराम (चैन) करने वाली हैं।

**भावार्थ—** ब्रह्मात्माओं के चरणों में झांझरी , घुंघरी, कांबी, कड़ला, अनवट, तथा बिछुआ के आभूषण जगमगा रहे हैं। जब उनके पैर धरती पर पड़ते हैं, तो इन आभूषणों से अति मोहक ध्वनि निकलती है , जिसे इस चौपाई में "झनकार" कहा गया है।

कंठ कंठ में बांहों धरतियां, चित्त एक दूजी को हरतियां।

सुन्दरियां रे सोभतियां, एक दूजी को हांस हंसतियां॥८७॥

ये सखियाँ एक-दूसरे के गले में बाँहें डालकर अन्य के

चित्त को सम्मोहित करती हुई अपने प्राणवल्लभ के पास आती हैं। ये सुन्दरता की प्रतिमूर्ति हैं। एक-दूसरे को हँसाती व हँसती हुई इन सखियों की विलक्षण शोभा हो रही है।

**कई फलंग दे उछलतियां, कई फूल लता जो फेरतियां।**

**कई हलके हलके हालतियां, कई मालतियां मचकतियां॥८८॥**

कई ब्रह्माँगनायें तो छलांग लगाकर उछलती हुई आती हैं। कई फूल या लिपटी हुई लता की तरह घुमरी (चक्कर) फिरती हुई आती हैं। कई तो हल्के-हल्के हिलती हुई आती हैं। कई सखियाँ धनी के पास प्रेम की मस्ती में मटकती हुई आती हैं।

**भावार्थ-** फूल की आकृति प्रायः गोल होती है। इसी प्रकार किसी वृक्ष या पौधे से लिपटने पर लता की भी

आकृति गोलाकार बन जाती है। इसलिये गोलाई में घूमने को फूल या लता से उपमा दी गयी है। शरीर को हल्के-हल्के हिलाते हुए चलना एक आकर्षक भंगिमा (अदा) है, जिसे इस चौपाई के तीसरे चरण में दर्शाया गया है। मचकते (मटकते) हुए चलना भी ऐसी ही अदा है।

कई आवत हैं ठेलतियां, जुत्थ जल लेहरां ज्यों लेवतियां।

कई आवें भमरी फिरतियां, एक दूजी पर गिरतियां॥८९॥

जिस प्रकार अथाह जलराशि में लहरें उठती रहती हैं, और एक-दूसरे को धकेलते हुए आगे बढ़ती जाती हैं, उसी प्रकार सखियों का समूह भी लहरों की तरह एक-दूसरे को धकेलते (ठेलते) हुए धनी के पास आता है। कई सखियाँ तो इतनी मस्ती में होती हैं कि वे गोलाई में घूमती हुई तथा एक-दूसरे के ऊपर गिरती हुई आती हैं।

कई सीधियां सलकतियां, कई विध आवें जो चलतियां।

सखी एक दूजी के आगे, आए आए के चरनों लागे।९०॥

कुछ सखियाँ तो प्रेम के आवेग में सीधी सरकती हुई ही धनी के पास पहुँचती हैं। इस प्रकार वे आनन्द के अतिरेक (अधिकता) में अनेक प्रकार से चलकर अपने प्राणप्रियतम के पास पहुँचती हैं। इस प्रकार वे क्रमशः एक-एक करके धनी के सम्मुख आती हैं और उनके चरणों में प्रणाम करती हैं।

**भावार्थ-** इस संसार की लौकिक मर्यादा में ही चरण छूने की परम्परा है, विशुद्ध प्रेम में नहीं। जब ब्रज लीला में राधा जी के द्वारा श्री कृष्ण जी के चरण छूकर प्रणाम करने का प्रसंग नहीं है, तो उस स्वलीलाअद्वैत परमधाम में यह कैसे सम्भव है? जिस परमधाम में "खाना दीदार इनका, यासों जीवें लेवें स्वांस " (सागर ५/९०) तथा



"खाना पीना खिन खिन लिया, प्यार अर्स रुहन। पल पल मासूक देखना, एही आहार आसिकन॥" (सिनगार ११/६) की स्थिति है, उस परमधाम में सखियों के द्वारा श्री राज जी के चरण छूकर प्रणाम करने का वर्णन मात्र लौकिक भावों के अनुसार ही है।

**इत बड़ा मिलावा होई, जुदी रहे न या समें कोई।**

**कोई छज्रों कोई जालिएं, कोई मोहोलों कोई मालिएं॥११॥**

तीसरी भूमिका की इस पड़साल में सखियों का अपार समूह एकत्रित होता है। कोई भी सखी इस समागम (मिलन) से अलग नहीं रह पाती है। कुछ अँगनायें रंगमहल के छज्रों से आती हैं, तो कुछ जालीदार झरोखों की दीवार वाले बाहरी हार मन्दिरों से, कुछ महलों से, और कुछ ऊपर की भूमिकाओं से निकलकर धनी के

पास आती हैं।

**भावार्थ-** रंगमहल के अन्दर अनेक महल हैं- जैसे चौरस और गोल हवेलियों के बाद आने वाले पञ्चमहल इत्यादि। इस चौपाई के अन्तिम चरण में "महल" से तात्पर्य इन्हीं भावों से है।

इत चार घड़ी लों बैठें, मेवा मिठाई आरोग के उठें।

दाहिनी तरफ दूजा जो मंदिर, आए बैठे ताके अंदर॥१२॥

इस पड़साल (पड़साल, दहलान व चबूतरे) में धाम धनी लगभग डेढ़ घण्टे तक बैठते हैं और प्रेमपूर्वक मेवे- मिठाइयों को ग्रहण करते हैं। इसके पश्चात् दायीं ओर (दक्षिण दिशा में) जो दूसरा मन्दिर है, उसमें आकर विराजमान हो जाते हैं।

**भावार्थ-** श्री राजश्यामा जी प्रातःकाल ६ बजे तीसरी

भूमिका की पड़साल में आते हैं। यहाँ पशु-पक्षियों को दर्शन देते हैं और श्रृंगार करके चबूतरे पर मेवा-मिठाई आरोगते हैं। इसके पश्चात् ७:३० बजे चबूतरे से उठकर नीले-पीले मन्दिर में प्रवेश करते हैं।

**नीला ने पीला रंग, ताकी उठत कई तरंग।**

**दोऊ रंगों की उठत झाँई, इन मंदिरों दिवालों के ताँई॥९३॥**

इस मन्दिर के एक तरफ का थम्भ तथा ऊपर की आधी मेहराब पुखराज के नग (पीले रंग) की है तथा दूसरी तरफ के थम्भ व ऊपर की शेष आधी मेहराब पाच के नग (हरे रंग) की है। इससे हरे व पीले दोनों रंग की तेजोमयी किरणें इस मन्दिर की दीवार पर झलक रही हैं। इन रंगों की असंख्यों प्रकार की तरंगें उठती हैं।

पैठते दाहिने हाथ जांही, सेज्या है या मंदिर मांहीं।

कई जिनस जड़ाव सिंघासन, राजस्यामाजी के दोऊ आसन॥१४॥

इस मन्दिर में प्रवेश करने पर अन्दर दाहिनी हाथ अनुपम सुख-शय्या है। इस मन्दिर के बाहर पड़साल में द्वारों के सामने सिंहासन रखा है, जिस पर युगल स्वरूप विराजमान होते हैं।

झरोखे को पीठ देवें, बैठे द्वार सनमुख लेवें।

संग सखियां केतिक विराजें, या समें श्री मंडल बाजे॥१५॥

युगल स्वरूप झरोखे को पीठ देकर द्वार के सामने मुख करके सिंहासन पर बैठते हैं। उनके पास कुछ सखियाँ भी बैठती हैं और धनी को रिझाने के लिये श्रीमण्डल वाद्य को बजाती हैं।

**भावार्थ-** नीले-पीले मन्दिर में पड़साल की ओर दो

दरवाजे आये हैं। उन दोनों दरवाजों की सीध में ही सिंहासन रखा हुआ है।

श्रीमण्डल एक प्रकार का वाद्य-यन्त्र है, जो सखियाँ बजाती हैं।

**नवरंगबाई जो बजावें, मुख बानी रसीली गावें।**

**इत बाजत बेन रसाल, बेनबाई गावें गुन लाल॥९६॥**

इस समय नवरंग बाई बहुत ही मोहक स्वरों में संगीत के वाद्य-यन्त्रों को बजाती हैं तथा अपने मुख से अति रसीली वाणी में गायन करती हैं। यहाँ पर बाँसुरी की अति मधुर ध्वनि गुञ्जित होती है, जिसमें बेनबाई प्रियतम के गुणों का गायन करती हैं।

**भावार्थ-** चौथी भूमिका में होने वाले नृत्य में नवरंग बाई का नाम आता है, किन्तु यहाँ पर गायन करने की लीला

में आया है। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि नृत्य की जो कला नवरंग बाई में है, वही कला परमधाम की सभी अँगनाओं में समान रूप से है। खेल में आने के दिन नवरंग बाई के नृत्य की बारी थी, इसलिये उनका नाम विशेष रूप से लिया जाता है। परमधाम एकत्व (वहदत) की भूमिका है, वहाँ पर सबके गुण समान हैं। इसी प्रकार लाडबाई आदि के गुण भी सभी सखियों में समान रूप से हैं।

**सखी एक निकसें एक पैठें, एक आवें उठें एक बैठें।**

**इन समें भगवान जी इत, दरसन को आवें नित॥९७॥**

इन सखियों में से कोई तो निकलकर बाहर जाती है और कोई बाहर (कहीं) से आकर इनमें सम्मिलित हो जाती है। एक आकर बैठ जाती है, तो एक उठकर खड़ी

हो जाती है। इसी समय अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत का दर्शन करने के लिये आते हैं। यह नित्य प्रति की लीला है।

**भावार्थ**— यहाँ उस समय की लीला का वर्णन है, जब कुछ सखियाँ वनों में जाने लगती हैं, तो कुछ रसोई की हवेली में, और कुछ धाम धनी को रिझाने लगती हैं। इसी समय अक्षर ब्रह्म महालक्ष्मी के साथ चाँदनी चौक में खड़े होकर श्री राज जी का दर्शन करते हैं—

इत चार घड़ी बीतत, पांचमी का अमल राह आसमान।

बैठे जोड़े सुखपाल में, लक्ष्मी और भगवान॥

सब सैन्या ले आवत, इत पावत सब दीदार।

इनों ऊपर मेहर नजर, करत परवरदिगार॥

महामति बड़ी वृत्त १९/२,४

झरोखे सामी नजर करें, परनाम करके पीछे फिरें।

इत और न दूजा कोए, सरूप एक है लीला दोए॥१८॥

जब अक्षर ब्रह्म झरोखे की ओर देखते हैं, तो श्री राज जी अपनी दृष्टि घुमाकर उन्हें दर्शन देते हैं। अक्षर ब्रह्म उन्हें प्रणाम करके वापस लौट आते हैं। इस परमधाम में अक्षरातीत के अतिरिक्त और कोई दूसरा है ही नहीं। वस्तुतः अक्षर और अक्षरातीत के रूप में एक ही स्वरूप लीला कर रहा है। केवल लीला में ही भिन्नता है।

**भावार्थ-** स्वलीलाअद्वैत परमधाम में सर्वत्र श्री राज जी ही किसी न किसी रूप में लीला कर रहे हैं। श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, खूब खुशालियाँ, तथा सभी पच्चीसों पक्ष उनके ही हृदय के (नूर के) प्रकट स्वरूप हैं। इस प्रकार अक्षर व अक्षरातीत में बाह्यतः लीला रूप में तो भेद किया जा सकता है, किन्तु



आन्तरिक रूप से नहीं। इस चौपाई से उस मान्यता का भी खण्डन होता है, जिसमें अक्षर ब्रह्म को बाल स्वरूप एवं अक्षरातीत को किशोर स्वरूप में दर्शाया जाता है। वास्तविकता यह है कि परमधाम में सभी (श्यामा जी, सखियों, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, खूबखुशालियों, एवं पशु-पक्षियों) का स्वरूप किशोरावस्था का ही है।

**भगवान जी खेलत बाल चरित्र, आप अपनी इच्छा सों प्रकृत।**

**कोट ब्रह्माण्ड नजरों में आवें, खिन में देखके पलमें उड़ावें॥९९॥**

अक्षर ब्रह्म बाल-स्वभाव की लीला करते हैं। वे इच्छा मात्र से अपनी प्रकृति द्वारा करोड़ों ब्रह्माण्डों को पल भर में सृजित (उत्पन्न) कर देते हैं और उन्हें देखकर क्षण भर में ही लय भी कर देते हैं।

**भावार्थ—** मूल अक्षर ब्रह्म की लीला बेहद मण्डल

(योगमाया के ब्रह्माण्ड) में होती है। यह योगमाया ही अक्षर ब्रह्म की पराप्रकृति (अखण्ड प्रकृति) है, किन्तु सृष्टि की उत्पत्ति और लय अपरा प्रकृति के अन्तर्गत होता है। अक्षर ब्रह्म के मन (अव्याकृत) का स्वाप्निक रूप ही आदिनारायण के रूप में अपने संकल्प (एकः अहं बहुस्याम) से असंख्य ब्रह्माण्डों का सृजन तथा लय करता है।

चेतन व अखण्ड ब्रह्म की लीला चैतन्य एवं अखण्ड ही होती है। इस नश्वर जगत् की सम्पूर्ण लीला आदिनारायण के ही निर्देश पर होती है। सत्स्वरूप की प्रकृति (माया) को सद्रूप माया, केवल ब्रह्म की प्रकृति को चिद्रूप माया, तथा अव्याकृत की माया को अव्यक्त माया कहते हैं। अक्षर ब्रह्म अक्षर धाम में विराजमान होकर मात्र इच्छा करते हैं और उनकी दृष्टि में असंख्य

ब्रह्माण्डों का उदय -अस्त होता रहता है, जिनका सम्पादन उनके अन्तःकरण की शक्तियाँ करती रहती हैं।

और एतो लीला किसोर, सैयां सुख लेवें अति जोर।

ए लीला सुख केता कहूं, याको पार परमान न लहूं॥१००॥

इस प्रकार, परमधाम की यह अति प्रेममयी (किशोर) लीला है। सखियाँ इस लीला का बहुत ही सुख लेती हैं। इस लीला के सुख का मैं कितना वर्णन करूँ? मैं किसी भी प्रमाण से इसकी सीमा (थाह) का कथन नहीं कर सकती।

सखियां केतिक बन में जावें, साक पान मेवा सब ल्यावें।

घड़ी चार खेल तित करें, दिन पोहोर चढ़ते आवें घरे॥१०१॥

इस समय कुछ सखियाँ वनों में जाती हैं, जहाँ से वे

तरह-तरह की शाक-सब्जियाँ तथा मेवे लाती हैं। वे वनों में चार घड़ी (डेढ़ घण्टे) तक अनेक प्रकार के खेल करती हैं तथा ९ बजे तक पुनः रंगमहल में वापस आ जाती हैं।

**भावार्थ-** एक प्रहर में ३ घण्टे या आठ घड़ी का समय होता है। प्रथम प्रहर ६ से ९ बजे तक होता है। एक घड़ी में साढ़े बाइस मिनट होते हैं।

**ए सब इच्छा सों मंगावें, पर सखियों को सेवा भावे।**

**सैयां सेवा करन बेल ल्यावें, लेवें एक दूजी पे छिनावें॥१०२॥**

यद्यपि सखियाँ इच्छा मात्र से ही सम्पूर्ण सामग्री पल भर में मँगा सकती हैं, किन्तु उन्हें अपने प्राण प्रियतम की सेवा करने में आनन्द आता है। धनी को अधिक देर तक रिझाने की भावना से वे सेवा कार्य को और अधिक

समय तक बढ़ाती जाती हैं। प्रेम की अधिकता के कारण वे दूसरों की सेवा को लेकर (छीनकर) स्वयं ही करना चाहती हैं।

**भावार्थ-** परमधाम की सेवा प्रेममयी है। वह कालमाया के ब्रह्माण्ड की तरह सत्ता के दबाव में या भय के साये में नहीं होती। सखियाँ संसार की तरह सेवा कार्य को बोझ नहीं मानतीं, बल्कि उनमें प्रियतम को रिझाने की इतनी तीव्र आकांक्षा होती है कि वे दूसरों की सेवा को लेकर स्वयं ही करना चाहती हैं और उसे धीरे-धीरे करती हैं, ताकि इसी बहाने अपने प्राणवल्लभ के प्रेम में वे डूबी रहें।

निकसते दाहिनी तरफ जो ठौर, सैयां आए बैठें चढ़ते दिन पोहोर।  
मिलावा होत दिवालों के आगे, सैयां पान बीड़ी वालने लागे॥१०३॥  
प्रहर भर दिन चढ़ने पर अर्थात् प्रातः ९ बजे सखियाँ

२८ थम्भों के चौक से होकर देहलान में होती हुई पड़साल में आती हैं और दाहिनी ओर दक्षिण दिशा के तीन मन्दिरों के सामने पड़साल में मिलकर बैठती हैं। सभी सखियाँ बहुत प्रेमपूर्वक पानों के बीड़े तैयार करती हैं।

मसाला समार समार के लेवें, सखी एक दूजी को देवें।

डेढ़ पोहोर चढ़ते दिन, बीड़ी वाली सैयां सबन॥१०४॥

सखियाँ पान के बीड़ों में तरह-तरह के सुगन्धित मसालों को लाकर डालती हैं तथा एक-दूसरे को रखने के लिये देती हैं। इस प्रकार, साढ़े दस बजे तक सखियाँ पान के सभी बीड़ों को तैयार कर देती हैं।

बीड़ियों की छाब लेकर, धरी पलंग तले चौकी पर।

श्री राज बैठे बातां करें, श्री श्यामा जी चित्त धरें॥१०५॥

नीले पीले मन्दिर में श्री राज जी के पलंग के नीचे चौकी रखी हुई है। सखियाँ पान के बीड़ों की टोकरियों को उस चौकी पर रख देती हैं। उस समय सिंहासन पर विराजमान श्री राज जी श्यामा जी से बहुत प्रेम भरी बातें कर रहे होते हैं और श्यामा जी उन्हें बहुत ही ध्यान से सुन रही होती हैं।

सैयां परसपर करें हाँस, लेवें धनीजी को विविध विलास।

घड़ी दो एक तापर भई, लाड़बाई आए यों कही॥१०६॥

इस समय सखियाँ आपस में हँसी करती हैं और अपने धाम धनी से तरह-तरह का आनन्द लेती हैं। ऐसा करते-करते जब लगभग एक-दो घड़ी (२२-४५

मिनट) बीत जाते हैं, तो लाडबाई जी आकर इस प्रकार कहती हैं।

श्री धनीजी की अग्या पाऊँ, तो या समें रसोई ले आऊँ।

श्री धनीजी ने अग्या करी, सैयां चौकी आन आगे धरी॥१०७॥

हे प्राणेश्वर! यदि इस समय आपकी आज्ञा हो, तो मैं भोजन ले आऊँ। धाम धनी की ओर से स्वीकृति मिलने पर सखियों ने सिंहासन के सामने पड़साल में दो चौकियाँ रख दीं।

**भावार्थ**— युगल स्वरूप चबूतरे पर मेवा-मिठाइयाँ ग्रहण करते हैं, जबकि पड़साल में दोपहर का भोजन सिंहासन या नीले-पीले मन्दिर के सामने करते हैं। यहीं पर वे अक्षर ब्रह्म को दर्शन भी देते हैं। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है—



सिनगार करे देहेलान में, आरोगे और मन्दिर।

इतहीं दीदार नूर को, दिन पौढ़ें पलंग अंदर॥

परिकरमा ३१/३९

सैयां दोए चाकले ल्याई, सो तो दोनों दिए बिछाई।

श्री राज उतारे वस्तर, पेहेनी पिछोरी कमर पर॥१०८॥

सखियाँ युगल स्वरूप के बैठने के लिये दो चाकले (गादी) लेकर आती हैं और उसे बिछा देती हैं। श्री राज जी भोजन करने के लिये अपनी कमर के ऊपर के वस्त्रों (पटुका, जामा इत्यादि) को उतार देते हैं तथा अपनी कमर के ऊपर पिछोरी को ओढ़ (पहन) लेते हैं।

**शंका-** आज के तर्क प्रधान भौतिकवादी युग में परमधाम की इस लीला के प्रति कुछ शंकायें स्वाभाविक ही उठती हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं-

१. "श्री राज उतारे वस्तर, पहनी पिछौरी कमर पर" के इस कथन से यही सिद्ध होता है कि भोजन करते समय श्री राज जी अपने ऊपर के वस्त्रों को उतार देते हैं। क्या परब्रह्म को भी भोज्य पदार्थों के गिरने से वस्त्रों के गन्दा होने का डर रहता है, जिसके कारण वे उन्हें उतार देते हैं? क्या यह किसी मानवीय लीला के चित्रण की तरह नहीं है?

२. जब परमधाम के पशु-पक्षी अनन्त हैं, तो १६६ मन्दिर के लम्बे-चौड़े चाँदनी चौक में कैसे आ जाते हैं?

३. बन्दरों द्वारा शाक-सब्जी लाना तथा सखियों के द्वारा उसे पकाना क्या सिद्ध करता है? क्या परमधाम में भी भूख लगती है?

४. सच्चिदानन्द परब्रह्म का सखियों के साथ यमुना जी के जल में स्नान करना, प्रातःकाल जलपान करना,

दोपहर को भोजन करके तीन बजे तक लेटना, पुनः वनों में सवारी करना और वापस आकर नृत्य देखकर सो जाना, क्या इस संसार के किसी राजा-महाराजा जैसी लीला नहीं है? इसे ब्रह्मलीला के रूप में क्यों दर्शाया गया है?

५. यदि यह कहा जाये कि मात्र चितवनि के लिये ही मानवीय लीला को ब्रह्मलीला में रूपान्तरित करके दर्शाया गया है, तब तो यह ब्रह्मवाणी का कथन हो ही नहीं सकता। क्या इस आधार पर तारतम्य वाणी को श्री मिहिरराज जी की बौद्धिक कुशलता की देन नहीं कहा जा सकता?

६. जो स्वयं ही आनन्द का अनन्त सागर है, उसे आनन्द प्राप्त करने के लिये नृत्य देखने की क्या आवश्यकता है?

७. कुञ्ज वन की रेती में सखियों के साथ भागने तथा एक-दूसरे के ऊपर गिरने की लीला को ब्रह्मलीला कैसे कहा जा सकता है?

८. परब्रह्म का सुखपाल में सवार होकर परमधाम घूमना, लाल चबूतरे पर बैठकर पशुओं की लीला देखना, तथा हिण्डोलों में झूला झूलना क्या सिद्ध करता है? क्या किसी भी धर्मग्रन्थ में परब्रह्म को ऐसी लीला करने वाला कहा गया है?

९. किसी छोटे नगर में भी १२००० से अधिक जनसंख्या होती है। यदि परमधाम में मात्र १२००० ही सखियाँ हैं, तो परमधाम को अनन्त कैसे कहा जा सकता है? यह तो किसी राजा-महाराजा की लीला जैसी कल्पना ही प्रतीत होती है।

१०. सच्चिदानन्द परब्रह्म के शयन करने की बात वेद,

उपनिषद्, दर्शन, कुरआन, तथा बाइबल आदि किसी भी धर्मग्रन्थ में नहीं है। पुनः परिक्रमा ग्रन्थ में पाँचवी भूमिका के प्रवाल रंग वाले मन्दिर में शयन करने का वर्णन क्यों किया गया है?

**समाधान-** संसार के सभी धर्मग्रन्थों के अनुसार परब्रह्म सच्चिदानन्दमय है। तैत्तरीय उपनिषद् के ब्र० ब अनु० १ में "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म", तो अनु० ४ में "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्, न बिभेति कदाचनेति" कहा गया है, अर्थात् उस आनन्दमय परब्रह्म को जानने वाला भय से रहित हो जाता है। यह गहन जिज्ञासा का विषय है कि यदि परब्रह्म अनन्त सूर्या से भी अधिक प्रकाशमान है "आदित्य वर्णं तमसः परस्तात्" (यजुर्वेद पुरुष सूक्त मण्डल १८), अन्तर्यामी है "य आत्मनि तिष्ठति अन्तर्यामृतः" (वृहदारण्यक उपनिषद्), सौन्दर्य का

निर्माता "सुरूपकृत्नमुतये" (ऋग्वेद १/४/१), अति सुन्दर "रुचिरसि रोचोऽसि" (अथर्ववेद १६/१/२१), अतिशय प्रेम करने वाला है "यदग्रे स्यामहम् त्वं त्वं वा घा स्यामहं" (ऋग्वेद), तो वह कैसा है?

यदि वह हमारी प्रार्थना को सुन सकता है, तो वह हमसे बोल क्यों नहीं सकता? यदि वह हमें देखता है, तो हम उसके सौन्दर्य को क्यों नहीं देख सकते? यदि उसमें अनन्त सौन्दर्य, ज्ञान, और प्रेम भरा हुआ है, तो लीला रूप में इसकी प्रामाणिकता क्या है? क्या सन्तरे के छिलके को हटाकर उसके रस को निचोड़े बिना उसे मीठे रस वाला कहा जा सकता है? क्या लीला में प्रकट हुए बिना ही उस परब्रह्म को प्रेम और आनन्द का सागर कहा जा सकता है? यदि परब्रह्म में प्रेम और आनन्द की क्रिया ही नहीं है, तो परमधाम में क्या वह निठल्ले होकर

चुपचाप बैठा रहता है? क्या चेतनों के चेतन (कठो.)  
उस अद्वितीय परब्रह्म में निष्क्रियता सम्भव है?

तारतम ज्ञान के प्रकाश में पूर्वोक्त शंकाओं का  
समाधान संक्षेप में इस प्रकार है—

१. भूख एवं प्यास तो भौतिक प्राणों का ही धर्म है।  
परमधाम त्रिगुणातीत होने के कारण वह भूख-प्यास,  
रोग-शोक आदि विकारों से रहित है। वहाँ तो "पल-पल  
मासूक देखना, एही आहार आसिकन" (सिनगार  
११/६) की ही स्थिति है, किन्तु मात्र लीला रूप में ही  
भोजन लीला को दर्शाया गया है। सुख का उपभोग मात्र  
पाँच साधनों के द्वारा ही सम्भव है— आँखों से मोहक  
सौन्दर्य को देखकर, कानों से मधुर वचनों को सुनकर,  
नासिका से सुगन्धि लेकर, जिह्वा से अति मीठे वचन  
बोलकर या स्वादिष्ट पदार्थों का रसास्वादन करके, तथा

त्वचा के द्वारा अति कोमल या मधुर स्पर्श का अनुभव करके। स्वलीला अद्वैत परमधाम की प्रेममयी एवं आनन्दमयी लीला को भी इसी दृष्टि से व्यक्त किया गया है। यद्यपि आन्तरिक (मारिफत) रूप से सम्पूर्ण परमधाम ही अक्षरातीत का स्वरूप है और उनके अतिरिक्त वहाँ और कोई भी नहीं है, किन्तु लीला का प्रकटन तो अकेले सम्भव नहीं है। बिना लहरों के तो प्रत्यक्ष दिखने वाले महासागर को भी महासागर नहीं कहा जा सकता। अपने अनन्त प्रेम और आनन्द गुण को लीला रूप में व्यक्त किये बिना श्री राज जी को भी प्रेममयी और आनन्दमयी कैसे कहा जा सकता है? इसलिये बाह्य (हकीकत) दृष्टि से लीला रूप में श्यामा जी, सखियों, एवं पच्चीस पक्षों आदि का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। परमधाम की शब्दातीत लीला को



शब्दों की परिधि में लाने के लिये ही पूर्वोक्त पाँच साधनों के आधार पर वर्णित किया गया है।

श्री मिहिरराज जी के मन में इस संसार में जो भी श्रेष्ठ तथ्य उठते थे, उन्हीं को माध्यम बनाकर शब्दों में लीला का कथन किया गया है। आज से लगभग ३०० वर्ष पहले धार्मिक दृष्टि से सभ्य समाज में कमर से ऊपर के वस्त्र उतारकर ही भोजन करने की परम्परा थी, इसलिये उसी दृष्टिकोण से श्री राज जी को भी भोजन करने से पूर्व वस्त्र (बागे) उतारते हुए दर्शाया गया है, जबकि वास्तविकता यह है कि कालमाया के नियमों को परमधाम में नहीं थोपा जा सकता। वहाँ भोजन, वस्त्र, शरीर आदि सभी कुछ जब ब्रह्ममय है, तो भला कौन किसको खायेगा तथा किससे कोई गन्दा होगा?

२. बृहदारण्यक उपनिषद् में परब्रह्म को पूर्णातिपूर्ण (अनन्त) कहा गया है, अर्थात् पूर्ण या अनन्त में कुछ भी जोड़ा-घटाया जाये या गुणा-भाग किया जाये तो भी वह उतना (अनन्त) ही रहता है—

पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात्पूर्णमुदुच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण परमधाम जहाँ अनन्त है, वहीं उसके कण-कण में ब्रह्मरूपता है। वस्तुतः उसके कण-कण में परब्रह्म के सभी गुणों का समावेश होना अनिवार्य है, अन्यथा उसकी ब्रह्मरूपता पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो जायेगा।

परमहंस महाराज श्री युगलदास जी ने अपने ग्रन्थ "मनमोहन रसानन्द सागर" में कहा है कि परमधाम के किसी भी एक फल में वहाँ के अनन्त फलों का स्वाद

भरा हुआ है। इसी प्रकार, जब श्री राजश्यामा जी सुखपाल या तख्तरवा पर विराजमान होकर सागरों आदि की सैर पर जाते हैं, तो जमीन के जानवर भी वहाँ पहुँचने के लिये दौड़ लगाते हैं। उनकी राह में पर्वत, महल जो कुछ भी आते हैं, वे पल भर के लिये झुककर धरती के बराबर हो जाते हैं तथा उनके चले जाने पर पुनः पूर्ववत् दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

श्री युगलदास जी के शब्दों में— "जिमी रूपी जो मोहोल मंदिर हैं, अत्यन्त नरमीत हो के चांदनी रूपी सिर अपने से फेर फेर जिमीन को छुअत हैं और आदाब बंदगी का बजाते हैं और खड़े से बीच सेजदे के पुस्तखंभ हो के फेरे ज्यों के त्यों सीधे हो जाते हैं।"

उपरोक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि परमधाम में इस नश्वर जगत से विपरीत स्थिति है। वहाँ की सम्पूर्ण

प्रकृति युगल स्वरूप एवं ब्रह्मात्माओं की इच्छा के अनुसार होती है। यमुना जी का जल इच्छा मात्र से ठोस भी हो सकता है। दीवार के बीच से भी जाया जा सकता है या आकाश में इच्छा मात्र से उड़ा जा सकता है। ऐसी स्थिति में यही मानना पड़ेगा कि जब श्री राजश्यामा जी तीसरी भूमिका की पड़साल में खड़े होकर चाँदनी चौक में खड़े हो पशु-पक्षियों को दर्शन देते हैं, तो उस समय परमधाम के सभी पशु-पक्षियों को भी चाँदनी चौक जैसे ही दर्शन का सुख प्राप्त होता है, भले ही वे हौज़ कौसर या पुखराज में ही क्यों न हों? जब इस नश्वर जगत में हजारों कि.मी. का दृश्य टी.वी. के माध्यम से प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, तो परमधाम में क्यों नहीं?

३. स्वलीला अद्वैत परमधाम का कण-कण ब्रह्मरूप है। वहाँ भूख-प्यास, रोग-शोक, जन्म-मरण आदि विकारों

का प्रवेश भी नहीं है। ऐसी स्थिति में वहाँ भोजन बनाने, खाने-पीने, तथा नहाने-धोने का प्रश्न ही नहीं है, किन्तु यहाँ के भावों के अनुसार ऐसा दर्शाया गया है, ताकि हम मन-वाणी से परे उस शब्दातीत लीला के कुछ अंशों को आत्मसात् कर सकें।

खुलासा १६/८४ के इस कथन "और खिलौने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए। एक जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए इत्तदाए" से यह स्पष्ट है कि परमधाम के बन्दर आदि सभी पशु या पक्षी ब्रह्मरूप ही हैं। लीला मात्र से ऐसा कहा गया है, इसलिये परमधाम की इस अकथनीय लीला को लौकिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

४. तैत्तरीयोपनिषद् में ब्रह्म को आनन्दमय कहा गया है—

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म।

ब्र० व० अनु० १

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्, न विभेति कदाचनेति।

ब्र० व० अनु० ४

प्रश्न यह है कि परब्रह्म को आनन्दमय कैसे माना जाये? क्या यह कल्पना कर ली जाये कि अनन्त प्रकाश का पुँज चारों ओर क्रीड़ा कर रहा है और उसमें आनन्द ही आनन्द दृष्टिगोचर हो रहा है?

यदि हम तारतम वाणी के प्रकाश में वेद और कुरआन का अनुशीलन करें, तो यह स्पष्ट होता है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म का अति सुन्दर किशोर स्वरूप (युगल) है, जो त्रिगुणातीत, निर्विकार, अनादि, और अखण्ड है, तथा वही अपनी अंगरूपा आत्माओं के साथ लीला करता है। सम्पूर्ण परमधाम के रूप में उसका ही अनन्त प्रकाश फैला हुआ है। तैत्तरीयोपनिषद् के ब्र० व०

अनु० ८ में ब्रह्मानन्द की मीमांसा (समीक्षा) की गयी है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

रूप और यौवन से सम्पन्न, सम्पूर्ण पृथ्वी के ऐश्वर्य का भोग करने वाले, एक मनुष्य (राजा) का जो आनन्द है, उससे १०० गुना आनन्द गन्धर्वों का है। उससे १०० गुना आनन्द देवगन्धर्वों का है। उससे भी सौ गुना पितरों का है। इसी क्रम में सौ—सौ गुना आजानज देवों, कर्मदेवों, देवों, इन्द्र, बृहस्पति, प्रजापति, और ब्रह्म का है। इस प्रकार ब्रह्म का आनन्द एक राजा के आनन्द से  $१०० \times १०० \times १०० \times १०० \times १०० \times १०० \times १०० \times १०० \times १०० \times १००$  अर्थात् १०१९ गुना है। यह तो बेहद मण्डल के आनन्द की एक झलक भर है। परमधाम का आनन्द तो अनन्त गुना है। उस आनन्दमयी लीला को शब्दों में व्यक्त करने के लिये यहाँ की लीलाओं

(स्नान, भोजन, भ्रमण, नृत्य, शयन आदि) को आधार बनाया गया है क्योंकि आनन्दमयी लीला की कोई भी क्रिया श्रवण, दर्शन, स्पर्श, रसानुभूति या सुगन्धि के केन्द्र में ही सम्भव है। इसलिये श्रीमुखवाणी में कहा गया है कि "अर्स बका बरनन किया, ले मसाला इत का।" परमधाम की लीला, शोभा, या आनन्द का वर्णन करने में इस संसार की बुद्धि पूर्णतया असमर्थ है।

परमधाम में नूर का ही भोजन है। यमुना जी भी नूर की है। इस प्रकार नाचने वाले, देखने वाले, सुनने वाले सभी कुछ नूरी है।

अंग सारे नूर के, नूरै का नूर आहार।

कौल फैल हाल नूर का, हाल चाल नूर बेहेवार।।

परिकरमा ३७/१३



बड़ा वन मोहोल नूर का, ए नूर अति सोभित।

जोए नूर आई पुल तले, सो क्यों कही जाय नूर सिफत॥

परिकरमा ३६/२०

नूर नूर को देखहीं, नूर की नूर सुनत।

नूर नाचत नूर बाजत, नूर कहां लो को गिनत॥

नूर बाजे नूर बजावहीं, नूर गावें नूर सरूप।

नूर देखें फेर फेर नूर को, नूर नाचत नूर अनूप॥

परिकरमा ३७/५०, ५१

५. यदि मूसलाधार वर्षा का पानी छिद्र युक्त घड़े में न ठहर सके, तो इसमें वर्षा का क्या दोष? सूर्य के उदित होने पर भी यदि चमगादड़ को न दिखायी पड़े, तो सूर्य को दोषी बनाने की मानसिकता क्यों?

श्री मिहिरराज जी के तन में विद्यमान श्री इन्द्रावती

जी की आत्मा अवश्य परमधाम की है, किन्तु जीव तो आदिनारायण का ही प्रतिभास है। धनी के आवेश के बिना उस तन में यह सामर्थ्य आ ही नहीं सकता कि वह बेहद और अक्षर से परे अक्षरातीत की शोभा-श्रृंगार का वर्णन कर सके। "ए वचन मेहराजनो प्रगट न थाय।" (प्रकास गु.) तथा "मेरी बुधें लुगा न निकसे मुख, धनी जाहेर करें अखण्ड घर सुख।" (प्रकास हि. २९/७) के इन कथनों से तो यह पूर्णतया स्पष्ट है कि तारतम वाणी मात्र श्री राज जी की है। इसमें श्री मिहिरराज जी का तन प्रयुक्त हुआ है तथा श्री इन्द्रावती जी की आत्मा को "महामति जी" के रूप में शोभा दी गयी है।

मानवीय हृदय स्वलीला अद्वैत परमधाम की लीला को आंशिक रूप में भी समझने की पात्रता पा सके, इसलिये मानवीय लीला के सांचे में निजधाम की लीला

को ढाला गया है। यह वैसे ही है, जैसे हिमालय पर्वत को एक तिनके के रूप में व्यक्त करना, या एक गिलास गंगाजल को गंगा नदी कहना। इसमें ग्रहण करने वाले की पात्रता का ही दोष है, देने वाले का नहीं।

६. क्या सागर में अथाह जलराशि होने के कारण वह अपनी लहरों के साथ उमड़ना बन्द कर सकता है? क्या सूर्य अपने प्रचण्ड ताप की उपस्थिति के कारण अपनी किरणों को अपने ही अन्दर छिपाये रख सकता है? क्या चन्द्रमा अपनी शीतल ज्योत्सना (चाँदनी) और अपने मनोरम सौन्दर्य पर पर्दा डाले रह सकता है? जब इन जड़ पदार्थों में स्वाभाविक क्रिया हो रही है, तो वह चेतन परब्रह्म निष्क्रिय कैसे रह सकता है? क्रिया तो चेतन का स्वाभाविक गुण है। यदि अक्षर ब्रह्म के मन के स्वाप्निक स्वरूप आदिनारायण के आवेश से सम्पूर्ण क्षर जगत के

कार्यों का सम्पादन हो रहा है, तो अक्षर से भी परे अक्षरातीत के क्रियाहीन होने की कल्पना कैसे की जा सकती है? जब एक जड़ पत्थर के सभी परमाणु गति कर रहे हैं और उनमें विद्यमान इलेक्ट्रान, प्रोटान भी नाभिक के चारों ओर गति कर रहे हैं, तो सब को गति देने वाले अक्षर ब्रह्म से भी परे उस अक्षरातीत परब्रह्म को क्या चुपचाप बैठे रहने वाला ही माना जाये?

प्रेम और आनन्द के अतिरेक (आधिक्य) में शारीरिक अंगों का स्पन्दन ही नृत्य है। यह वैसे ही है, जैसे मधुर हवा के झोंकों से पेड़-पौधे झूमने लगते हैं। परमधाम में होने वाले नृत्य की लीला को लौकिक जगत् के उस विलासपूर्ण नृत्य के समकक्ष नहीं मानना चाहिये, जिसमें अश्लीलता की गन्ध आती है। भक्तिभाव से परिपूर्ण मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु, और सूफी फकीरों के

नृत्य में जो पवित्रता और माधुर्यता है, उससे करोड़ों गुनी पवित्रता, माधुर्यता, और आनन्द परमधाम के नृत्य में है। जिस प्रकार सागर और उसकी लहरों में कोई अन्तर नहीं होता, उसी प्रकार नृत्य की लीला करने वाली सखियाँ अक्षरातीत से अभिन्न स्वरूप हैं। यह लीला तो अक्षरातीत के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम और आनन्द के अनन्त सागर की लहरों की क्रीड़ा है। इसे लौकिक दृष्टि से कदापि नहीं देखना चाहिए।

७. क्या सीता-हरण के पश्चात् मर्यादा पुरुषोत्तम राम का वनों में भटकते हुए विलाप करना उनकी गरिमा को कम कर देता है? यदि गायों और बछड़ों को चराना, अनपढ़ ग्वाल-बालों और गोपियों के प्रेम में डूबे रहना भी लीला-पुरुषोत्तम श्री कृष्ण जी की ब्रह्मरूपता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा नहीं करता, तो परमधाम में ब्रह्माँगनाओं

के साथ दौड़ने और एक-दूसरे के ऊपर गिर जाने मात्र से ब्रह्मलीला के ऊपर संशय की लकीरें क्यों खिंच जाती हैं?

वस्तुतः प्रेम ऐसी अलौकिक वस्तु है, जिसका रसपान करने के लिये अपने पद एवं गरिमा के साथ-साथ स्वयं के अस्तित्व को भी मिटाना पड़ता है। इसकी थोड़ी सी झलक राम के विलाप में भी देखी जा सकती है। रासेश्वर श्री कृष्ण जहाँ रास लीला में श्यामा जी के बालों की चोटी गूँथते हैं, सखियों के गिरे हुए आभूषणों को उठाकर पुनः उन्हें यथास्थान लगा देते हैं, वहीं ब्रज लीला में गोपियों के कहने पर नाचते भी हैं। वे प्रेम के मूर्तिमान स्वरूप हैं, इसलिये लीला में उन्हें अपनी मर्यादा या पद का आभास तक नहीं है।

अक्षरातीत तो प्रेम के अनन्त सागर हैं। यदि वे

अपनी ही अंगरूपा ब्रह्मात्माओं के साथ कुञ्ज वन की रेती या पश्चिम की चौगान में दौड़ लेते हैं, अथवा कोई उनके ऊपर गिर पड़ता है या किसी के ऊपर वे गिर पड़ते हैं, तो इससे उनकी ब्रह्मरूपता पर संशय नहीं किया जा सकता। इस तरह की मान्यता तो प्रेम के सागर से कोसों दूर बसेरा करने वाले एवं शुष्क हृदय का बोझ ढोने वाले वाचक ज्ञानियों की है।

८. महासागर के जल की ऊपरी सतह का कुछ अंश तरह-तरह की लहरों के रूप में क्रीड़ा करता है। कुछ लहरें बहुत ऊँची होती हैं, तो कुछ नीची। कुछ उठती हैं और कुछ गिरती हैं। कुछ सागर के तट से टकराकर पुनः जल में विलीन हो जाती हैं। यद्यपि लहरें सागर के ही जल से प्रकट हो रही हैं, किन्तु केवल लहरों को ही सागर का पूर्ण रूप समझ लेना उचित नहीं है।

जिस प्रकार लहरों के जल के नीचे सागर की अथाह जलराशि विद्यमान है, उसी प्रकार श्री राज जी के परमसत्य (मारिफत) रूपी हृदय से सत्य (हकीकत) के रूप में २५ पक्षों तथा श्यामा जी, सखियों, एवं लीला का स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है। लाल चबूतरा, सुखपाल, हिण्डोले आदि ब्रह्मरूप ही हैं, किन्तु लीला रूप में ये श्री राज जी से अलग दिखायी पड़ रहे हैं। अक्षरातीत की वास्तविक पहचान तो उनके परमसत्य स्वरूप (मारिफत) की पहचान है। हकीकत तो लहरों की तरह उनकी बाह्य क्रीड़ा है, जो उनके प्रेम, आनन्द, एकत्व, सौन्दर्य आदि गुणों को प्रगट करने के लिये है। यदि ऐसा न हो तो धर्मग्रन्थों (तैत्तिरीयोपनिषद्, वेद, कुरआन आदि) में "आनन्दो ब्रह्म इति व्यजनात्", "स्वर्यस्य च केवलं" (अथर्व १० / ८ / १), तथा "नूर आला नूर"



कैसे कहा जाता, क्योंकि मारिफत तो पूर्णतया अव्यक्त है?

९. जिस प्रकार किसी पुस्तिका के छोटे से पन्ने पर सम्पूर्ण भारत, विश्व, या आकाशगंगा में विद्यमान करोड़ों नक्षत्रों को दर्शा दिया जाता है, उसी प्रकार अनन्त परमधाम को भी परिक्रमा ग्रन्थ में एक बहुत छोटे से रूप में दर्शाया गया है। इसकी माप या गणना को इस संसार की माप या गणना के रूप में नहीं देखना चाहिए। इसलिये श्रीमुखवाणी सिनगार २६/५ का कथन है कि "गिनती सो भी अर्स की, ए बातें मोमिन समझेंगे।"

यद्यपि इस मायावी जगत में परमधाम से आयी हुई ब्रह्मसृष्टियों की संख्या मात्र १२००० ही कही गयी है, किन्तु परमधाम में इनकी संख्या को इतने में ही सीमित कर देना भारी भूल हो सकती है। अनन्त को सीमाबद्ध

करना तो हमारी मानवीय बुद्धि को ग्राह्य बनाने के लिये है। जिस प्रकार गंगाजल की मिठास जानने के लिये मात्र एक घूंट ही पर्याप्त होता है, गंगोत्री से गंगासागर तक के सम्पूर्ण जल की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार परमधाम के विस्तार को अंश मात्र में ही व्यक्त करना विवशता एवं पर्याप्तता है, क्योंकि स्वप्न की बुद्धि उसका बोझ ढोने में पूर्णतया असमर्थ है।

इस खेल में १२००० सखियों के आने की बात वैसे ही है, जैसे एक बहुत बड़े हाण्डे में पकने वाले चावलों में से एक चावल को निकाल कर देखना। वह दत्त के सिद्धान्त से सभी सखियों को खेल का वैसे ही अनुभव हो सकता है, जैसे निजधाम की लीला में एक सखी धनी से बात करती है तो उसका सुख सभी को मिलता है।

परमधाम में माणिक पहाड़ के जिन महाबिलन्द हिण्डोलों पर सखियाँ झूलती हैं, उनकी संख्या पर एक दृष्टि डालिये— १२००० तालों की १२००० हारें आयी हैं। ताल की एक हार में ऊपर ९६००० हिण्डोले होते हैं। इस प्रकार १२००० हारों के एक अरब १५ करोड़ २० लाख हिण्डोले होते हैं, जबकि प्रत्येक हिण्डोले में युगल स्वरूप सहित सभी सखियाँ बैठा करती हैं।

यदि ऐसा कहा जाये कि जिस प्रकार रास लीला में श्री राज जी ने १२००० स्वरूप धारण कर लीला की थी या पाँचवी भूमिका की शयन लीला में नित्य १२००० रूप धारण करते हैं, उसी प्रकार स्वलीला अद्वैत परमधाम में भी श्री राजश्यामा जी और सखियों के अनन्त रूप हो जाया करते हैं तथा पुनः १२००० स्वरूपों में समाहित हो जाया करते हैं, तो इसके विषय

में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि जब इस नश्वर मायावी जगत में करोड़ों आकाशगंगाएँ हैं , तथा हमारी सबसे छोटी इस आकाशगंगा में करोड़ों सूर्य हैं , जबकि हमारा सूर्य इस आकाशगंगा का सबसे छोटा सूर्य हैं , तो सम्पूर्ण क्षर जगत में रहने वाले प्राणियों तथा करोड़ों आकाशगंगाओं को अपने में लीन करने वाले महाशून्य का विस्तार अनन्त कि.मी. में होगा।

जब हृद का इतना विस्तार है तो बेहद मण्डल का विस्तार कितना होगा? उससे भी परे परमधाम को मात्र ५० करोड़ योजन विस्तार का कहना तथा आत्माओं की संख्या को मात्र १२००० में सीमित करना हमारी मानवीय बुद्धि को ग्राह्य बनाने के लिये ही किया गया है। वास्तविक गणना के लिये हमारी बुद्धि समर्थ नहीं है। इस सम्बन्ध में परमहंस महाराज श्री युगलदास जी का कथन

है कि परमधाम के एक कोस में यहाँ के करोड़ों कोस समाहित हो जाते हैं।

यदि ऐसी शंका की जाये कि परमधाम में भी यहाँ की तरह महाराजा-महारानी की भांति, जब श्री राजश्यामा जी और सेविकाओं के रूप में खूब-खुशालियों और सेवकों का वर्णन है, "एक-एक मोमिन के अलेखे सेवक", तो क्या यह द्वैत की नकल नहीं है? इसके समाधान में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि यह सारा कथन मात्र हमारी बुद्धि के लिये ग्राह्य बनाने हेतु किया गया है।

"एक जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए इतदाए।" (खुलासा १६/८४) के कथन से यह स्पष्ट है कि परमधाम में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा नहीं है, बल्कि सभी रूपों में श्री राज जी ही लीला

कर रहे हैं। खूब-खुशालियों की शोभा-सुन्दरता सखियों से किसी भी प्रकार से कम नहीं है। पशु-पक्षियों के स्वरूप में श्री राज जी का हृदय ही लीला कर रहा है। वे भी आशिक बनकर अपने प्रियतम को रिझाते हैं।

धनी इनों के कारने, सरूप धरे कई करोर।

लें दिल चाह्या दरसन, ऐसे आसिक हक के जोर॥

परिकरमा २८/८

पशु-पक्षी तो क्या, परमधाम की धरती, आकाश, जल आदि सभी कुछ चेतन हैं और आत्म-स्वरूप हैं—

जिमी जात भी रूह की, रूह जात आसमान।

जल तेज वाए सब रूह को, रूह जात अर्स सुभान॥

पसु पंखी या दरखत, रूह जिनस है सब।

हक अर्स वाहेदत में, दूजा मिले न कछुए कब॥

सागर १/४०,४१

ऐसी स्थिति में इस संसार की तरह परमधाम में भी राजा-प्रजा और स्वामी-सेवक की भावना कैसे की जा सकती है?

१०. इस मायावी जगत में तमोगुण की अधिकता से नींद आती है। सामान्य प्राणी इसी नींद के वशीभूत होते हैं। योगियों की योगनिद्रा इससे भिन्न होती है। उसमें सत्व एवं रज की प्रधानता रहती है, किन्तु परमधाम की शयन लीला त्रिगुणातीत लीला है। जिस प्रकार, एक परमहंस ध्यान (चितवनि) की गहन अवस्था में श्री राज जी की शोभा को देखते-देखते उसी में डूब जाता है तथा स्वयं को भुलाकर परमसत्य (मारिफत) की अवस्था को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार परमधाम की शयन लीला में भी प्रिया-प्रियतम (माशूक और आशिक) का भेद मिट

जाता है। परमधाम की ब्रह्मांगनायें प्रियतम अक्षरातीत के अनन्त प्रेम और सौन्दर्य में इस प्रकार डूब जाती हैं कि उन्हें स्वयं के अस्तित्व का जरा भी बोध नहीं रहता। परमधाम की इस अनिवर्चनीय त्रिगुणातीत लीला को सांसारिक निद्रा वाली शयन लीला से तुलना करना स्वयं को अन्धकार में भटकाने जैसा है। वेद, उपनिषद, दर्शन, संत साहित्य आदि में इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये निर्वीज आदि समाधियों की मान्यता है , भले ही वे निराकार अथवा बेहद मण्डल से क्यों न जुड़ी हों।

**श्री राज चाकले आए, श्री स्यामाजी संग सोहाए।**

**श्री राज पखाले हाथ, श्री स्यामाजी भी साथ॥१०९॥**

श्री राजश्यामा जी दोनों चाकलों पर विराजमान हुए। श्री राज जी ने भोजन करने के लिये अपने हस्तकमल को



धोया। उनके साथ ही श्यामा जी ने भी अपने हाथों को धोया।

**भावार्थ-** परमधाम तो निर्मलता की पराकाष्ठा है। हाथ धोने की प्रक्रिया को मात्र अपने मनोभावों की लीला ही समझना चाहिए।

**सैयां दौड़ दौड़ के जावें, आरोगने की वस्तां ल्यावें।**

**मेवा अंन ने साक मिठाई, कई विध सामग्री ले आई॥११०॥**

युगल स्वरूप को खिलाने के लिये अत्यधिक प्रेम में भरी हुई सखियाँ दौड़-दौड़ कर जाती हैं तथा भोजन की वस्तुएँ लाती हैं। वे अनेक प्रकार के मेवे, अन्न के तरह-तरह के व्यंजन (खीर, पूड़ी, इत्यादि), सब्जियाँ, मिठाइयाँ, तथा अनेक प्रकार की बहुत सी चीजें लेकर आती हैं।

एक ले चली साक कटोरी, तापे छीन ले चली दूसरी।

तिनथे झोंट ले चली तीसरी, चौथी वापे भी ले दौरी॥१११॥

युगल स्वरूप को खिलाने के लिये जब एक सखी सब्जियों की कटोरी लेकर चलती है, तो दूसरी उसके हाथ से प्रेमपूर्वक छीन लेती है और स्वयं लेकर चल देती है। उस दूसरी से तीसरी सखी छीन लेती है, तथा चौथी सखी तीसरी से भी छीन लेती है तथा लेकर दौड़ने लगती है।

जो कदी छीन लेत हैं जिनपे, पर रोस न काहू किनपे।

इतथें जो फिर कर गैयां, तिन और कटोरी जाए लैयां॥११२॥

इस लीला में भले ही कोई सखी किसी से छीनकर स्वयं ले जाती है, किन्तु किसी को भी किसी के ऊपर क्रोध नहीं आता। जिन सखियों से भोजन की कटोरियाँ

छीन ली जाती हैं, वे हँसती हुई वापस लौटकर रसोई घर में जाती हैं तथा कोई और कटोरी लेकर दौड़ती हुई आती हैं।

**भावार्थ-** इस मायावी जगत का सौतियाडाह कुख्यात है। इसके विपरीत परमधाम में एकदिली (वहदत) है, जहाँ प्रत्येक ब्रह्मसृष्टि दूसरे को अपने से करोड़ों गुना चाहती है। परमधाम में तो स्वप्न में भी क्रोधित होने की कल्पना नहीं की जा सकती। इस प्रकार का वर्णन परमधाम की प्रेममयी लीला की झलक को स्पष्ट करने के लिये ही किया गया है।

यों एक एक पे लेवें, हेत एक दूजी को देवें।

सब मंदिर करें झनकार, स्वर उठत मधुर मनुहार॥११३॥

इस प्रकार, सखियाँ एक-दूसरे से भोजन सामग्री लेती

हैं और प्रेमपूर्वक एक-दूसरे को देती हैं। उनके पैरों की झनकार रंगमहल के सभी मन्दिरों में सुनायी पड़ती है। उसका स्वर इतना मीठा होता है कि मन को हर लेता है।

**भावार्थ-** परमधाम स्वलीला अद्वैत की भूमिका है। वहाँ की ब्रह्मानन्द लीला का रस कण-कण में व्याप्त होता है। इस प्रकार रंगमहल के मन्दिरों में सखियों के पैरों से उठने वाली मधुर ध्वनि सम्पूर्ण २५ पक्षों में सुनी जाती है। वहाँ के प्रेम और आनन्द को किसी स्थान विशेष की सीमा के बन्धन में नहीं बाँधा जा सकता है।

सैयां दौड़त हैं साम सामी, सब्द रह्यो सबों ठौर जामी।  
कई स्वर उठत भूखन, पड़छंदे परें स्वर तिन॥११४॥  
जब सखियाँ आमने-सामने दौड़ती हैं, तो उनके नूरी चरणों से उठने वाली मधुर ध्वनि सम्पूर्ण परमधाम में

फैल जाती है। उनके आभूषणों से अनेक प्रकार के मोहक स्वर उठते हैं, जिनकी प्रतिध्वनि का स्वर सर्वत्र ही सुना जाता है।

**भावार्थ-** भोजन लीला में कुछ सखियाँ भोजन सामग्री लेकर दौड़ रही होती हैं, तो कुछ लेने के लिये आ रही होती हैं। इसे ही आमने-सामने दौड़ना कहा गया है।

कई बिध उठत मीठी बानी, मुख बरनी न जाए बखानी।  
इन समें की जो आवाज, सोभा धाममें रही बिराज॥११५॥

इस प्रकार, इस लीला में अनेक प्रकार की मीठी आवाज उठा करती हैं, जिसकी मोहकता का वर्णन इस मुख से नहीं हो सकता। इस समय की लीला में गूँजने वाली ध्वनि सम्पूर्ण परमधाम में सुशोभित होती है।

दूध दधी ल्याई लाड़बाई, सोतो लिए मन के भाई।

सब खेलें हाँसी करें, आए आए धनी जी के आगे धरें॥११६॥

लाडबाई दूध-दही लेकर आती हैं। युगल स्वरूप उसे अपने मन की इच्छा के अनुकूल ग्रहण करते हैं। सभी सखियाँ हँसते-खेलते हुए, अर्थात् अथाह प्रेम में डूबकर, धनी के सम्मुख आती हैं और तरह-तरह की भोज्य-सामग्री उनके सामने रखती जाती हैं।

**भावार्थ-** प्रेम में ही क्रीड़ा होती है और आनन्द की स्थिति में ही हँसा जाता है। इसे ही भाषायी सौन्दर्य की दृष्टि से हँसना-खेलना कहते हैं।

या समें दौड़त भूखन बाजे, पड़छंदे भोम सब गाजे।

झारी लेके चलू कराई, मुख हाथ रूमाल पोंछाई॥११७॥

इस समय जब सखियाँ दौड़ती हैं, तो उनके आभूषण

बजने लगते हैं। उनकी मधुर प्रतिध्वनि रंगमहल की सभी भूमिकाओं में गूँजने लगती है। सखियाँ एक विशेष प्रकार के लोटे में जल लेकर श्री राज जी को कुल्ला कराती हैं, तथा उनके मुख और हाथों को रूमाल से पोंछाती हैं।

**भावार्थ—** भोजन के पश्चात् जल द्वारा मुख के आन्तरिक भागों को साफ किया जाता है, ताकि दाँतों में भोज्य पदार्थों के कण न बचे रह जायें। इसके पश्चात् १ चम्मच के बराबर जल का आचमन (पान) किया जाता है। इसे झारी या कुल्ला करना कहा है। यद्यपि परमधाम में कुल्ला करने जैसे प्रक्रिया नहीं होती, क्योंकि वहाँ नूरी दाँतों के खराब होने का कोई भय ही नहीं है, फिर भी इस संसार में हम जिन स्थितियों में रहते हैं, उसी आधार पर इन चौपाइयों में प्रेम में डूबकर अपने प्राणवल्लभ को खिलाने का मनोहारी चित्रण किया गया है। अगली चौपाई में भी

यही भाव है।

श्री स्यामाजी चल्लू करी, दोए बीड़ी दो मुख में धरी।

श्री राज उठ बैठे सिंघासन, संग स्यामाजी उठे ततखिन॥११८॥

इसके पश्चात् श्यामाजी भी हाथ धोकर कुल्ला करती हैं। युगल स्वरूप पान के दो बीड़ों को ग्रहण करते हैं। जब श्री राज जी वहाँ से उठकर सिंहासन पर विराजमान होते हैं, तो उसी क्षण श्यामा जी भी उठकर सिंहासन पर सुशोभित हो जाती हैं।

दोऊ आसन जोड़े आए, सैयां चौकी चाकले उठाए।

सैयां तले आरोगने गैयां, आरोग आए पान बीड़ी लैयां॥११९॥

जब श्री राजश्यामा जी अपने सिंहासन पर बैठ जाते हैं, तब सखियाँ दोनों चौकियों एवं चाकलों को उठाकर रख



देती हैं। इसके पश्चात् सभी सखियाँ प्रथम भूमिका में रसोई की हवेली में भोजन करने चली जाती हैं। भोजन करने के पश्चात् वे पुनः तीसरी भूमिका में आ जाती हैं और आकर श्री राज जी से पानों का बीड़ा ग्रहण करती हैं।

सेज्या आए श्री जुगल किसोर, तब दिन हुआ दो पोहोर।

सैयां बैठी जुदे जुदे टोले, करें रहेस बातें दिल खोलें॥१२०॥

दोपहर का समय हो जाने पर, युगल स्वरूप नीले-पीले रंग के मन्दिर में सुख-शय्या पर विराजमान होते हैं। अब सखियाँ रंगमहल सहित अन्य पक्षों में अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग समूहों में बैठ जाती हैं तथा दिल खोलकर धनी के प्रति अपनी प्रेम भरी बातों को एक-दूसरे से कहने लगती हैं।

**भावार्थ-** दिल खोलने का तात्पर्य है- "अपने हृदय के प्रेम की गुह्यतम बातों को प्रकट करना।" परमधाम में एकदिली होने से सबके हृदय में एक ही बात रहती है और किसी के लिये भी किसी से कुछ छिपाना सम्भव नहीं रहता।

तित कई विध रस उपजावें, कई विलास मंगल मिल गावें।  
 कई हँस हँस ताली देवें, यों कई बिध आनंद लेवें॥१२१॥

वहाँ वे कई प्रकार की लीलाओं में आनन्द का रस प्रवाहित करती हैं। उनमें से कुछ सखियाँ तो आपस में आनन्दमग्न होकर प्रेम भरे मंगल गीत गाने लगती हैं, तो कुछ हँसती हुई ताली बजाने लगती हैं। इस प्रकार वे कई प्रकार की लीला से आनन्द लेती हैं।

कई बैठत छज्जों जाए, बैठें अंगसों अंग मिलाए।

मुख बानीसों हेत उपजावें, एक दूजी को प्रेम बढ़ावें॥१२२॥

कई सखियाँ रंगमहल के छज्जों पर जाकर एक-दूसरे से सट-सटकर बैठ जाती हैं और अपने मुख से इतनी प्रेम भरी वाणी बोलती हैं कि उसे सुनते ही प्रेम का प्रकटीकरण होता है। इस प्रकार वे आपस में अति मधुर बातों से एक-दूसरे का प्रेम बढ़ाती हैं।

**भावार्थ-** रंगमहल की सभी भूमिकाओं में छज्जे आये हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि दूसरी से आठवीं भूमिका तक के छज्जे ३३ हाथ के चौड़े (तिहाई मन्दिर के चौड़े) हैं, जबकि नवीं भूमिका का छज्जा अधिक चौड़ा (एक मन्दिर का) आया है। सखियाँ अपनी इच्छानुसार किसी भी भूमिका के छज्जों पर बैठ सकती हैं।

परमधाम में प्रेम के घटने-बढ़ने जैसी स्थिति नहीं

है, क्योंकि प्रेम की स्थिति एकरस होती है। इस चौपाई में प्रेम बढ़ने का तात्पर्य हृदय में छिपे हुए (अव्यक्त) प्रेम के प्रकट होने से है।

रस अनेक बातन लेवें सुख, सो मैं कह्यो न जाए या मुख।

सरूप सोभा जो सुन्दरता, बस्तर भूखन तेज जोत धरता॥१२३॥

वे प्रेम के रस से भरी हुई अनेक प्रकार की बातों का सुख लेती हैं। सखियों के नख से शिख तक की जो शोभा और सुन्दरता है, उसका वर्णन मैं इस मुख से नहीं कर सकती। उनके नूरी वस्त्रों तथा आभूषणों से निकलने वाले तेज एवं ज्योति का सर्वत्र फैलाव हो रहा है।

**भावार्थ—** शक्तिमान और शक्ति में जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध सुन्दर और सुन्दरता में है। सुन्दरता का व्यक्त रूप जो दृष्टिगोचर होता है, वह शोभा कहलाता है।

कई बैठत मिलावे आए, बैठें अंगसों अंग लगाए।

सुख एक दूजीको उपजावें, मुख बानी सों प्रीत बढ़ावें॥१२४॥

कुछ सखियाँ कहीं पर एकत्रित होकर बिल्कुल ही सट-सटकर बैठ जाती हैं। वे अपने मुख से इतनी मीठी बातें करती हैं कि उनके हृदय का प्रेम लहराने लगता है। इस प्रकार, वे एक-दूसरे को आनन्दित करती हैं।

हाँस विनोद ऐसा करें, सुख प्रेम अधिक अंग धरें।

यों सुख मिनों मिने लेवें, सखी एक दूजीको देवें॥१२५॥

वे आपस में इस प्रकार विनोदपूर्ण हँसी की लीला करती हैं कि उनके (सभी के) हृदय में अत्यधिक प्रेम और आनन्द उमड़ने लगता है। इस प्रकार, वे आपस में प्रेम का सुख लेती हैं तथा एक-दूसरे को देती हैं।

**भावार्थ-** अक्षरातीत का हृदय ही सम्पूर्ण (अनन्त) प्रेम

और आनन्द का मूल है। वही श्यामा जी, सखियों, और परमधाम के सभी पक्षों में क्रीड़ा करता है। इसी को प्रेम और आनन्द का लेना-देना कहते हैं। वस्तुतः सखियों का आपस में प्रेम एवम् आनन्द का लेना-देना तो मात्र लीला रूप है। इस सम्पूर्ण लीला के केन्द्र में श्री राज जी ही होते हैं।

**कई बैठत जाए हिंडोले, अनेक करत कलोलैं।**

**कई बैठत जाए पलंगे, बातां करत मिनों मिने रंगें॥१२६॥**

कुछ सखियाँ सातवीं और आठवीं भूमिका आदि के हिण्डोलों में बैठकर तरह-तरह की आनन्दमयी क्रीड़ायेँ करती हैं। कुछ अँगनायें शयन कक्ष के मन्दिरों में पलंग पर जाकर बैठ जाती हैं तथा आपस में अनेक प्रकार की प्रेम भरी बातें करती हैं।

यों अनेक विधें सुख नित, पियाजी को सदा उपजत।

सब सैयां पोहोर पीछल, टोलें तीसरी भोम आवें चल॥१२७॥

इस प्रकार श्री राज जी के हृदय में हमेशा ही यह प्यार उमड़ा करता है कि मैं अपनी अँगनाओं को नित्य अनेक तरह से अनन्त सुखों में डुबोये रखूँ। जब एक प्रहर दिन बाकी रहता है, अर्थात् तीन बज जाते हैं, तब सभी सखियाँ अपनी-अपनी टोलियों (समूहों) में होकर तीसरी भूमिका में आ जाती हैं।

मंदिर आइयाँ सैयां जब, खुले द्वार दरसन पाए सब।

तब आए सबे सुखपाल, स्यामाजी बैठे संग लाल॥१२८॥

जब सखियाँ नीले-पीले मन्दिर के सामने आ जाती हैं, तब दरवाजा स्वतः खुल जाता है और सभी को श्री राजश्यामा जी के दर्शन होते हैं। इसके पश्चात् छठी

भूमिका से सुखपाल आकर तीसरी भूमिका के छज्जे के साथ लग जाते हैं तथा श्यामा जी अपने प्राणवल्लभ के साथ एक सुखपाल में बैठ जाती हैं।

**दोए दोए सैयां सब संग, मिल बैठ करें कई रंग।**

**सुखपाल चलावें मन, ज्यों चाहिए जैसा जिन॥१२९॥**

सभी सखियाँ एक-एक सुखपाल में दो-दो की संख्या में बैठती हैं और अनेक प्रकार की आनन्दमयी लीलायें करती हैं। जिसको जिस तरफ भी जाने की इच्छा होती है, वह अपने मन की इच्छानुसार सुखपाल को चलाती हैं।

**भावार्थ—** छठी भूमिका में बाहरी हार मन्दिरों एवं पहले थम्भों की हार की मध्य गली में प्रत्येक दो मन्दिर की सन्धि की दीवार के सामने एक-एक सुखपाल आये हैं।



५९९९ मन्दिर की सन्धि की दीवार के सामने ५९९९ सुखपाल हैं। दरवाजे का मन्दिर दो मन्दिर का लम्बा है, अतः ६००० में एक कम मन्दिर हैं। दो सुखपाल दरवाजे के मन्दिर के सामने हैं। इस प्रकार कुल ६००१ सुखपाल आये हैं।

**या जमुनाजी या तलावे, आए खेलें जो मन भावें।**

**श्री राज स्यामाजी के डेरे, सुखपाल उतारे सब नेरे॥ १३०॥**

श्री राजश्यामा जी का सुखपाल जहाँ भी उतरता है, वहीं पर ही सभी सखियों के सुखपाल उतरते हैं। कभी तो यमुना जी के सातों घाटों में उतरते हैं या हौज़ कौसर तालाब में उतरते हैं। सखियों के मन में जैसी इच्छा होती है, उसी के अनुरूप वे प्रेममयी क्रीड़ायेँ करती हैं।

जुत्थ जुदे जुदे बन खेलें, खेल नए नए रंग रेलें।

तब लग खेलें साथ सब, दिन घड़ी दोए पीछला जब॥१३१॥

सखियाँ अलग-अलग समूहों में होकर वन में तरह – तरह की क्रीड़ाएँ करती हैं। वे नई-नई क्रीड़ाओं से अथाह आनन्द में डूब जाती हैं। दिन के अन्तिम प्रहर में जब दो घड़ी (४५ मिनट) बाकी रहते हैं, अर्थात् जब सन्ध्या समय के सवा पाँच (५:१५) बज जाते हैं, तब तक सुन्दरसाथ खेलते ही रहते हैं।

सैयां मिलकर पिउ पासे आवें, झीलने की बात चलावें।

श्री राज स्यामाजी उठकर, उतारे हैं वस्तर॥१३२॥

इसके पश्चात् सभी सखियाँ मिलकर श्री राज जी से स्नान (झीलना) की लीला करने के लिये आग्रह करती हैं। अब उनकी बात पर श्री राजश्यामा जी भी अपने-

अपने वस्त्र उतारकर स्नान-क्रीड़ा के लिये तैयार हो जाते हैं।

पेहेने वस्तर जो झीलन, राज स्यामा जी सैयां सबन।

इत एक घड़ीलो झीलें, जल क्रीड़ा कई रंग खेलें॥१३३॥

सभी सखियों सहित श्री राजश्यामा जी जल क्रीड़ा के वस्त्र धारण करते हैं। यहाँ पर लगभग एक घड़ी (२२:३० मिनट) तक वे जल में तरह-तरह की क्रीड़ाओं का आनन्द लेते हैं।

**भावार्थ-** परमधाम की जल क्रीड़ा को इस संसार की जल क्रीड़ा के समानान्तर नहीं समझना चाहिए। यद्यपि जल क्रीड़ा से पूर्व अपने वस्त्रों को उतारने एवं नये वस्त्र पहनने की बात तो लौकिक भावों से ही कही गयी है, जबकि गुह्य भाव यह है कि नूर के अनन्त सागर की

लहरों की अठखेलियाँ ही जल क्रीड़ा (झीलना) है।

बाकी दिन रह्यो घड़ी एक, तामें सिनगार किए विवेक।

हुओ संझाको अवसर, राज स्यामा जी बैठे सिनगार कर॥१३४॥

जब छः बजने में साढ़े बाइस (२२:३०) मिनट बाकी रहते हैं, तो उस समय (घड़ी में) सभी श्रृंगार करते हैं। सन्ध्या के समय होने तक, अर्थात् छः बजे तक, श्री राजश्यामा जी का भी श्रृंगार हो चुका होता है।

**भावार्थ-** परमहंस महाराज श्री युगलदास जी के कथनानुसार, सन्ध्या के समय श्री राजश्यामा जी स्वयं एक-दूसरे का श्रृंगार करते हैं। इसके अतिरिक्त बाकी समय में चार सखियाँ श्री राज जी का तथा चार सखियाँ श्यामा जी का श्रृंगार करती हैं।

मिनोँ मिने सिनगार करावें, एक दूजीके आगे धावें।

उछरंगतियां आवें आगे, राज स्यामा जी के पांउ लागे॥१३५॥

सभी सखियाँ आपस में एक-दूसरे का श्रृंगार कराती हैं। श्री राजश्यामा जी को प्रणाम करने के लिये उनके मन में इतनी उमंग है कि वे उनमें से प्रत्येक के अन्दर दूसरे से पहले दौड़कर प्रणाम करने की इच्छा है। इसी प्रेम भाव में वे युगल स्वरूप के चरणों में आ-आकर प्रणाम करती हैं।

पांउ लागके पीछियां फिरें, खेल चित चाह्या त्यों करें।

कई रंग फूले फूल बास, लेत नए नए बनके विलास॥१३६॥

श्री राजश्यामा जी के चरणों में प्रणाम करने के पश्चात् वे पुनः अपने स्थान पर चली जाती हैं तथा अपने चित्त की इच्छानुसार तरह-तरह के खेल करती हैं। वनों में अनेक

रंगों के अलौकिक फूल खिले होते हैं, जिनकी दिव्य सुगन्धि चारों ओर फैली होती है। सखियाँ इन वनों में हमेशा ही नये-नये प्रकार से आनन्द लेती हैं।

**भावार्थ-** यहाँ शुक्ल पक्ष के १५ दिनों में होने वाली लीला का वर्णन किया जा रहा है। चरणों में प्रणाम करने की परम्परा कालमाया के ब्रह्माण्ड की है, परमधाम की नहीं। प्रेम की गहन स्थिति में तो इस नश्वर जगत में भी प्रणाम की प्रक्रिया बन्द हो जाती है। क्या ब्रज लीला में कभी राधा जी ने श्री कृष्ण जी के चरणों में प्रणाम किया है? पुराण संहिता १७/११४ "तस्मिन्ननवसरे देवा दृष्ट्वा लीलामलौकिकीम्। प्रणन्तुमभिधावन्ति तावत्सर्वं तिरोदधे॥" में यह वर्णित है कि जब पाँचों देवता (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश्वर, तथा सदाशिव) योगमाया के ब्रह्माण्ड में श्री कृष्ण जी को प्रणाम करते हैं, तो लीला ही अदृश्य

हो जाती है। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि स्वलीला अद्वैत परमधाम में भी चरणों में झुककर प्रणाम करने की परम्परा हो? वस्तुतः इन चौपाइयों में, पूर्व की तरह ही, यहाँ के भावों के अनुसार वर्णन किया गया है।

**ससि बन याही जोत तेज, सब तत्व तेज रेजा रेज।**

**करें खेल अति उछरंग, तामें कबूँ कबूँ पियाजी के संग॥१३७॥**

सम्पूर्ण वन में चन्द्रमा की, तेज और ज्योति से भरपूर, नूरमयी चाँदनी छिटक रही है। यहाँ की धरती का प्रत्येक कण तथा सभी तत्व नूरी तेज से ओत-प्रोत हैं। सखियाँ अत्यधिक उमंग में भरकर तरह-तरह के खेल करती हैं। इस लीला में कभी-कभी स्वयं धाम धनी भी सम्मिलित हो जाते हैं।

**भावार्थ—** इस संसार के चन्द्रमा की चाँदनी में कुछ

धुँधलापन होता है, जबकि परमधाम के नूरी चन्द्रमा की चाँदनी चमकदार होती है। इसे ही "तेज" शब्द से सम्बोधित किया गया है। वहाँ के तेज में अग्नि तत्व की तरह दाहकता (ज्वलनशीलता) नहीं होती, बल्कि शीतल मिठास का अनुभव होता है।

**इत कई विध मेवा आरोगें, बनहीं को लेवें विभोगें।**

**इत नित विलास विसाल, पीछे आए बैठे सुखपाल॥१३८॥**

यहाँ वन में ही सभी भोजन करते हैं, जिसमें अनेक प्रकार के मेवे होते हैं। इस प्रकार यहाँ हमेशा ही अनन्त आनन्द की लीला होती है। इसके पश्चात् सभी अपने-अपने सुखपालों में आकर बैठ जाते हैं।



इत हुई पोहोर एक रात, सुखपाल चलावें चित चाहत।

घरों आए सुखपाल सारे, राजश्यामा जी पांचमी भोम पधारे॥१३९॥

इस तरह वन में लीला करते-करते जब रात्रि के ९ बज जाते हैं, तब सखियाँ अपने मन के अनुसार चलने वाले सुखपालों को रंगमहल की ओर चलाती हैं। कुछ ही समय में सभी सुखपाल रंगमहल आकर पाँचवीं भूमिका की पड़साल से लग जाते हैं तथा सखियों सहित श्री राजश्यामा जी शयन लीला करने के लिये पाँचवीं भूमिका में मध्य के नौ चौक में पधारते हैं, फिर सुखपाल छठी भूमिका में चले जाते हैं।

**भावार्थ-** सुखपालों को इस संसार के भावों के अनुसार विमान कहा जा सकता है। ये श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के मन की इच्छा मात्र से चलते हैं। यथार्थतः ये चेतन, अखण्ड, एवं ब्रह्मरूप हैं। लीला मात्र में ही ये

सुखपाल हैं।

पंद्रा दिन खेलें बन, पंद्रा दिन सुख भवन।

अब कहूं भवन को सुख, जो श्री धनीजी कह्यो आप मुख॥१४०॥

सखियों सहित युगल स्वरूप शाम के ६ से ९ बजे तक शुक्ल पक्ष में पन्द्रह दिनों तक वनों में लीला करते हैं और कृष्ण पक्ष के पन्द्रह दिन रंगमहल में लीला करते हैं। अब मैं रंगमहल में होने वाली लीला का वर्णन करती हूँ, जिसे स्वयं मेरे धाम धनी ने कहा है।

**भावार्थ-** यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि श्री राज जी ने रंगमहल की लीला का यह वर्णन सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से कहा है या श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर कहा है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि

परिक्रमा ग्रन्थ सहित सम्पूर्ण ब्रह्मवाणी श्री महामति जी के धाम हृदय से श्री राज जी के द्वारा ही अवतरित हुई है। इतना अवश्य है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के ही तन से भी श्री राज जी ने ऐसा कहा है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के सम्मान में यह बात अवश्य कही जा सकती है कि उन्होंने परमधाम की लीला का जो वर्णन किया था, वैसा ही अब कहा जा रहा है।

**बनथें आए सिनगार कर, संझा तले भोम मन्दिर।**

**आरोग चढ़े भोम चौथी, खेलें नवरंगबाई की जुत्थी॥१४१॥**

कृष्ण पक्ष के १५ दिनों में श्री राजश्यामा जी सखियों के साथ शाम के छः बजे तक वनों में श्रृंगार करते हैं और पुनः रंगमहल में आ जाते हैं। इसके पश्चात् वे प्रथम भूमिका में रसोई की हवेली में भोजन करके चौथी

भूमिका में नृत्य की हवेली में विराजमान होते हैं, जहाँ नवरंगबाई अपने यूथ की सखियों के साथ नृत्य करती हैं।

निरत करे नवरंगबाई, पासे कई विध बाजे बजाई।

निरत करें और गावें, पासे सखियां स्वर पुरावें॥१४२॥

चौथी भूमिका की चौथी चौरस हवेली में जब नवरंगबाई जी नृत्य करती हैं, तो अनेक प्रकार के वाद्य बजते हैं। नवरंगबाई जी नृत्य के साथ गाती भी हैं। शेष सखियाँ उनके स्वर में स्वर मिलाकर गायन करती हैं।

कर भूखन बाजे चरन, ताकी पड़ताल परे सब धरन।

पांऊं ऐसी कला कोई साजे, सबमें एक घूंघरी बाजे॥१४३॥

जब नवरंगबाई जी का मनमोहक नृत्य प्रारम्भ होता है,

तो उनके हाथों तथा पैरों के आभूषणों से बहुत ही मधुर ध्वनि निकलती है , जिसकी प्रतिध्वनि रंगमहल (परमधाम) की सभी भूमिकाओं में गूँजती रहती है। नवरंगबाई जी अपने पैरों को ऐसी कला के साथ चलाती हैं कि जब वे चाहती हैं कि केवल एक घुंघरी का ही आभूषण बजे, तो चरणों के चारों आभूषणों (झांझरी, घुंघरी, कांबी, कड़ला) में से मात्र घुंघरी ही बजती है।

**द्रष्टव्य—** नृत्य की हवेली में होने वाले नृत्य का रस केवल रंगमहल तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि सम्पूर्ण परमधाम के २५ पक्षों में प्रवाहित होता है। स्वलीला अद्वैत परमधाम में आन्तरिक रूप से किसी भी प्रकार की सीमा रेखा नहीं होती। इस सम्बन्ध में यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है—

जहां जहां नजर करे, जानों निरत होत सब ठौर।

कोई ठौर खाली नहीं, जहा देखें तहां और॥

महामति बड़ी वृत्त २१/१८

जब दोए रे दोए बोलावें, तब तैसे ही पांउं चलावें।

तीन कहें तो बाजे तीन, चार बाजे कला सब लीन॥१४४॥

जब नवरंगबाई जी चरणों के चारों आभूषणों में से किन्हीं दो आभूषणों की आवाज निकालना चाहती हैं, तो ऐसी कला से अपने पावों को चलाती हैं कि मात्र दो ही आभूषण बजते हैं। उनमें ऐसी विचित्र कला है कि जब वे तीन आभूषणों को बजाना चाहती हैं तो मात्र तीन ही आभूषण बजते हैं, और जब चारों आभूषण की इच्छा करती हैं तो चारों आभूषण बजने लगते हैं।

**विशेष-** जो विशेषता नवरंगबाई जी में है, वही विशेषता

परमधाम की सभी सखियों में है। सभी के रूप –गुण समान हैं, क्योंकि सभी के रूप में केवल श्री राज जी का दिल (हृदय) ही लीला कर रहा है।

**जो बोलावें झांझरी एक, जानों एही खेल वैसेक।**

**जिनको रे बोलावत जैसे, सो तो बोलत भूखन तैसे॥१४५॥**

जब वे पैरों में धारण की गये चारों आभूषणों में से मात्र एक झांझरी से मधुर स्वर निकालती हैं, तो ऐसा लगता है कि मात्र इसी का बजना सबसे अच्छा है। वे जिस आभूषण को जिस स्वर में बजाना चाहती हैं, वह आभूषण उसी तरह का स्वर देता है।

**जब बोलावें सर्वा अंगे, भूखन बोले सबे एक संगे।**

**जब जुदे जुदे स्वर बोलावें, छब जुदी सबोंकी सोहावे॥१४६॥**

जब नवरंगबाई जी अपने सभी अंगों के आभूषणों से एकसाथ बोलवाना चाहती हैं, तो सभी आभूषण एकसाथ अत्यधिक मधुर ध्वनि करने लगते हैं, और जब अलग-अलग स्वरों में सभी आभूषणों से बोलवाती हैं, तो सभी अलग-अलग स्वरों में क्रमशः बोलने लगते हैं। उस समय प्रत्येक आभूषण की ध्वनि अलग-अलग आती हुई विशेष रूप से अच्छी लगती है।

**भूखन करत जुदे जुदे गान, मुख बाजे करें एक तान।**

**क्यों कर कहूं ए निरत, सोई जाने जो हिरदे धरत॥१४७॥**

सभी आभूषणों में अलग-अलग स्वरों में गायन करने की कला है। सखियों के मुख और वाद्य-यन्त्रों (बाजों) से निकलने वाले स्वरों में एकतानता (समरूपता) है। चौथी भूमिका में होने वाले इस नृत्य की महिमा का मैं



कैसे वर्णन करूँ? इसके सुख को तो मात्र वे ब्रह्मात्मायें ही जानती हैं, जिनके हृदय में यह लीला बसी होती है।

**भावार्थ-** परमधाम में होने वाले नृत्य की लीला का आनन्द मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, जिनके मूल तन मूल मिलावा में विराजमान हैं। इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी जिन आत्माओं ने चितवनि द्वारा उस लीला का रस लिया है, केवल वे ही वहाँ के नृत्य की लीला के आनन्द को जानती हैं। माया की नींद में डूबी हुई आत्मायें भी इस खेल में इसकी गरिमा को नहीं जान सकतीं।

अनेक स्वरों बाजे बाजें, पड़छंदे भोम सब गाजें।

सुंदरियां सोभा साजें, सो तो धनी जी के आगे बिराजे॥१४८॥

सभी वाद्य अनेक स्वरों में बजते हैं, जिनकी प्रतिध्वनि रंगमहल की सभी भूमिकाओं में गुँजित होती है। उस

समय सभी सखियाँ अपने प्राणवल्लभ के सम्मुख नख से शिख तक श्रृंगार सजकर बैठी होती हैं।

निरत भूखन बाजे गान, देखो ठौर सैयां सब समान।

इन लीला में आयो चित्त, छोड़यो जाए न काहूँ कित॥१४९॥

हे साथ जी! चौथी भूमिका में होने वाले नृत्य की इस लीला को देखिए, जिसमें आभूषण और वाद्य यन्त्र भी गायन करते हैं, तथा सभी सखियाँ समान रूप से उसका आनन्द लेती हैं। जिसका भी चित्त इस लीला में लग जाता है, उसको यदि माया किसी भी प्रकार से छुड़ाना चाहे, तो उसके लिये छोड़ पाना सम्भव नहीं है।

**द्रष्टव्य-** परमधाम के नृत्य की लीला का आनन्द मात्र चितवनि (ध्यान) द्वारा आत्म-चक्षुओं से ही लिया जाता है। इस मायावी जगत में विकारजनित इस त्रिगुणात्मक

शरीर से नृत्य करके परमधाम के नृत्य का आनन्द मान लेना बहुत बड़ी भूल है। यह प्रवृत्ति सुन्दरसाथ को धनी की वाणी एवं उनके प्रेम से दूर करके अन्धकार में ले जाने वाली है।

**छुटकायो भी ना छूटे, तो आतम दृष्ट कैसे टूटे।**

**इत बोहोत लीला कहूँ केती, सोई जाने लगी जाए जेती॥१५०॥**

जब माया के द्वारा कितना भी छुड़ाने पर दिल इस लीला से नहीं हटता, तो आत्मा की दृष्टि कैसे हट सकती है? परमधाम के नृत्य की इस लीला का सुख बहुत है। मैं कितना वर्णन करूँ? इस लीला के सुख को मात्र वही ब्रह्मसृष्टि जानती है, जिसकी सुरता (आत्मदृष्टि) वहाँ लग जाती है।

**भावार्थ—** आत्मा के अन्तःकरण (हृदय, दिल) की

भूमिका अलग है और जीव के अन्तः करण की अलग। आत्मा का हृदय संसार को कूटस्थ भाव से देखा करता है, जबकि जीव का हृदय उसमें लिप्त रहा करता है। तारतम वाणी की छत्रछाया में जब जीव विरह का रस लेकर चितवनि में बैठता है, तो आत्मा भी अपने शुद्ध स्वरूप में (जीव से अलग) स्थित होकर परमधाम को देखने लगती है और उसके हृदय में वहाँ की छवि बसने लगती है। उसका कुछ अंश जीव के हृदय में भी आ जाता है क्योंकि उसने भी विरह का पुट (रस) ले रखा होता है। ऐसा जीव इस आनन्द को पा लेने के पश्चात् संसार की ओर दृष्टि करना पसन्द नहीं करता। यदि जीव का हृदय निर्मल नहीं है और विरह की गहन अवस्था भी नहीं है, तो चितवनि द्वारा परमधाम के थोड़े से अनुभव के बाद ध्यान भंग हो जाता है और आत्मदृष्टि (चितवनि)

टूट जाती है। यथार्थतः चितवनि का जीव के दिल से गहरा सम्बन्ध है। जब वह संसार की ओर दृष्टि नहीं करना चाहेगा, तो भला आत्मिक दृष्टि वहाँ से कैसे हट सकती है। चौपाई की प्रथम पंक्ति का यही आशय है।

**थम्भों दिवालों नंगों तेज जोत, जानों निरत सबों ठौर होत।**

**पिया पीछल मंदिर सेत दीवार, तामें कई रंग नंग विसाल॥१५१॥**

रंगमहल के थम्भों, दीवारों, तथा उनमें जड़े हुए नंगों के तेज और ज्योति का फैलाव हर जगह दृष्टिगोचर हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे इन सबमें (थम्भों, दीवारों, और नंगों में) ही सर्वत्र नृत्य की लीला हो रही है। श्री राज जी के पीछे की ओर (पश्चिम दिशा) के मन्दिरों की दीवार सफेद रंग (हीरे) की है। उसमें अनेक रंगों के बहुसंख्यक नग जड़े हुए हैं।

**भावार्थ-** नृत्य देखते समय श्री राज जी का मुख पूर्व दिशा में रहता है, इसलिये पश्चिम दिशा के मन्दिरों की दीवार को श्री राज जी के पीछे की दीवार कहा गया है। विशाल का तात्पर्य बहुसंख्यक नगों से है।

दाहिने हाथ मंदिर रंग लाखी, कई कटाव दीवार दिल साखी।

बाईं तरफ पीली जो दीवार, माहें स्याम सेत रंग लाल॥१५२॥

नृत्य की हवेली की दक्षिण दिशा, अर्थात् दाहिने हाथ के मन्दिर एवं थम्भ, गहरे लाल रंग के हैं। इन मन्दिरों की दीवारों पर हृदय को मुग्ध करने वाले अनेक प्रकार के बेल-बूटों के चित्र अंकित हैं। बायीं ओर अर्थात् उत्तर दिशा के मन्दिरों की दीवारें पीले रंग की हैं, जिनमें काले, श्वेत, और लाल रंग की आभा झलकती रहती है।

सामे नीला मन्दिर झलकत, साम सामी किरना लरत।

रह्या नूर नजरो बरस, जुबां क्या कहे धनीको रंग रस॥१५३॥

नृत्य की हवेली के सामने (पूर्व दिशा में) २०-२० थम्भों की हार की देहलान है, जिसके आगे तीसरी चौरस हवेली की पश्चिम दिशा के मन्दिरों की दीवारें दिख रही हैं, जो हरे रंग की हैं। आग्ने-सामने की दीवारों से निकलने वाली नूरी किरणें आपस में टकराती हुई सी दिखती हैं। इस हवेली में विराजमान श्री राज जी की आँखों से इश्क (नूर) की वर्षा होती रहती है। भला, धनी के प्रेम और आनन्द की इस लीला का वर्णन मेरी जिह्वा कैसे कर सकती है?

**विशेष-** नीला रंग कहीं-कहीं हरे रंग के रूप में दृष्टिगोचर होता है-

हरी दीवार जो मंदिर, सो सामी है नेक दूर।

परिकरमा ३१/४९

पोहोर रैनी लगे जो खेलावें, पीछे मुख अग्या करके बोलावें।  
इतहीं थें अग्या करी, पांउ लाग सेज्या दिल धरी॥१५४॥

रात्रि के ९ बजे तक नृत्य की यह लीला चलती रहती है। इसके पश्चात् यहीं पर स्वयं धाम धनी अपने श्रीमुख से सखियों को अपने पास बुलाकर शयन कक्ष में जाने के लिये कहते हैं। सखियाँ युगल स्वरूप के चरणों में प्रणाम करती हैं और अपने दिल में शयन (प्रियतम के साथ) की इच्छा करती हैं।

दई अग्या सबों बड़ भागी, आइयां मन्दिर चरनों लागी।  
श्रीराज स्यामाजी सेज्या पधारे, कोई कोई वस्तर भूखन वधारे॥१५५॥  
परमधाम की ये अँगनायें कितनी सौभाग्यशालिनी हैं,



जिन्हें स्वयं धाम धनी शयन-कक्ष में जाने के लिये कहते हैं। सभी सखियाँ युगल स्वरूप के चरणों में प्रणाम करके अपने-अपने मन्दिरों के शयन कक्ष में आती हैं। श्री राजश्यामा जी पाँचवीं भूमिका में लाल रंग वाले प्रवाली मन्दिर में शयन हेतु पधारते हैं और अपने कुछ वस्त्रों एवं आभूषणों को उतार देते हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त दोनों चौपाइयों में "अग्या" का भाव प्रेमपूर्वक कहने से है, इस संसार के सत्तात्मक आदेश से नहीं।

परमधाम में पहनने या उतारने की प्रक्रिया नहीं होती। सब कुछ इच्छा मात्र से पल भर में स्वयं ही हो जाता है।  
ना पेहेन्या ना उतारया, दिल चाह्या नित सुख।

श्रृंगार ५/२०

का यह कथन यही सिद्ध करता है, लेकिन लीला की

दृष्टि से पहनने या उतारने का वर्णन किया जाता है।

ए मन्दिर रंग परवाली, सो मैं क्या कहूं ताकी लाली।

माहें अनेक रंगों की जोत, सो मैं कही न जाए उद्धोत॥१५६॥

श्री राजश्यामा जी के शयन का यह मन्दिर प्रवाल के नग का है। इसकी मनोहर लालिमा का मैं कैसे वर्णन करूँ? इस मन्दिर में अनेक रंगों की ज्योति उठा करती है, जिसके उजाले का वर्णन कर पाना मेरे लिये सम्भव नहीं है।

**भावार्थ—** प्रवाल नग का रंग गुलाबी आभा लिये हुए है। गुलाबी रंग प्रेम का प्रतीक है, इसलिये श्री राजश्यामा जी के शयन कक्ष को भी इसी रंग से दर्शाया गया है।

पीछल बीसक पिउ पासे रहियां, सो भी आइयां घरों सब सैयां।  
 पिउजी सबों मन्दिरों पधारे, होत सेज्या नित विहारे॥१५७॥

सखियों के अपने-अपने मन्दिरों में चले जाने के पश्चात् भी लगभग बीस (२०) सखियाँ श्री राजश्यामा जी के पास सेवा करने के लिये रुक जाती हैं। युगल स्वरूप की सेवा करके तथा उन्हें शयन करवाकर, ये सखियाँ भी अपने-अपने मन्दिरों में आ जाती हैं। श्री राज जी अपने १२००० स्वरूप धारण करके सभी सखियों के मन्दिरों में पधारते हैं और उनकी सेज्या पर विराजमान होकर उन्हें प्रेम का आनन्द देते हैं। आनन्द की यह लीला नित्य-प्रति चलती रहती है।

**भावार्थ-** परमधाम स्वलीला अद्वैत है। यहाँ २५ पक्षों, श्यामा जी, सखियों, महालक्ष्मी, अक्षर ब्रह्म, खूब खुशालियों, तथा पशु-पक्षियों के रूप में केवल श्री राज

जी ही लीला कर रहे हैं। बाह्य रूप से देखने पर ये अलग-अलग रूप दिखायी पड़ रहे हैं। यथार्थतः श्री राज जी का दिल ही इन सभी रूपों में लीला कर रहा है , अर्थात् सभी के दिल में या सभी रूपों में श्री राज जी ही लीला कर रहे हैं।

स्वलीला अद्वैत का अर्थ ही यह होता है कि परब्रह्म का एक होते हुए भी अनन्त रूपों में दृष्टिगोचर होना। सखियों के अन्दर विराजमान श्री राज जी ही प्रकट होकर उनके साथ प्रेममयी लीलायें करते हैं। इसी को श्री राज जी के द्वारा सभी मन्दिरों में पधारना कहा गया है।

अब क्यों रे कहूं प्रेम इतको, सुख लेवें चाहयो चितको।

सुख लेवें सारी रात, तीसरी भोम आवें उठ प्रात॥१५८॥

पाँचवी भूमिका की इस प्रेमलीला का वर्णन कैसे करूँ?

सखियाँ अपने हृदय की इच्छानुसार पूरी रात प्रियतम के प्रेम का सुख लेती हैं और प्रातःकाल उठकर तीसरी भूमिका में आ जाती हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण से यह संशय होता है कि ब्रह्माङ्गनायें श्री राज जी से जिस सुख को लेती हैं, क्या वह इस संसार के प्रणय-सुख जैसा ही है या कुछ और है?

यह सर्वमान्य तथ्य है कि इस त्रिगुणात्मक जगत की लीलायें परमधाम की लीलाओं के विपरीत हैं। यह ब्रह्माण्ड जहाँ काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों से ग्रसित है, वहीं निजधाम में इन विकारों की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

यह तो स्वाभाविक ही है कि प्रेमलीला में दर्शन, स्पर्श, एवं मधुरतम् वार्तालाप अनिवार्य है। परमधाम की

प्रेमलीला में भी यह होता है, किन्तु परमधाम में जिस प्रकार प्रेम की पराकाष्ठा है, वह निर्विकारिता की भी पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) है। जबकि इस जगत के प्रणय-सम्बन्धों में विकार का होना अवश्यम्भावी है। स्वलीला अद्वैत में जब आन्तरिक रूप से दो हैं ही नहीं, तो विकार का प्रश्न ही कहाँ से हो सकता है?

**अब कहूँ या समें की बात, सो तो अति बड़ी विख्यात।**

**कोई होसी सनमन्धी इन घर, सो लेसी वचन चित धर॥१५९॥**

अब मैं इस समय की जागनी लीला की बात कहती हूँ, जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। परमधाम की जो कोई ब्रह्मसृष्टि होगी, वही ब्रह्मवाणी के वचनों को अपने हृदय में धारण करेगी।

ए बानी तिछन अति सार, सो निकसेगी वार के पार।

सनमन्धियों की एही पेहेचान, वाके सालसी सकल संधान॥१६०॥

यह तारतम वाणी भवसागर के बन्धनों को काटने के लिये तलवार की तीक्ष्ण (बहुत तेज) धार के समान है। बहुत ही महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके माध्यम से आत्मायें हृद-बेहृद से भी परे परमधाम पहुँच जायेंगी। ब्रह्मसृष्टियों की यही पहचान है कि इस ब्रह्मवाणी के अमृत भरे शब्द उनके रोम-रोम में चुभ जायेंगे और उसे प्रियतम के विरह की पीड़ा झेलनी पड़ेगी।

जाको लगी सोई जाने, मुख बरनी न जाए बखाने।

खेल मांग के आइयां जित, धनी आए के बैठे तित॥१६१॥

जिसको परमधाम के प्रेम की लगन लग जाती है, उसके सुख को एकमात्र वही आत्मा जानती है। इस मुख से उस

सुख का वर्णन नहीं हो सकता है। अपने प्राण प्रियतम से माया का खेल माँगकर अँगनायें जिस संसार में आयी हैं, धाम धनी भी इस जगत में आकर उनके धाम हृदय में विराजमान हो गये हैं।

**पासे बैठ के खेल देखावें, हांसी करने को आप भुलावें।**

**भूलियां आप खसम वतन, खेल देखाया फिराए के मन॥१६२॥**

धाम धनी हमारे बिल्कुल पास ही बैठे हैं और हमें माया का खेल दिखा रहे हैं। हमारे ऊपर हँसी करने के लिये ही उन्होंने हमें माया में भुला रखा है। श्री राज जी ने हमारे मन को परमधाम से हटाकर माया का ऐसा खेल दिखाया है कि हम स्वयं को, श्री राज जी को, तथा अपने परमधाम को भी भूल गयी हैं।

**भावार्थ—** धाम धनी मूल मिलावे में सिंहासन पर



विराजमान हैं तथा हमें अपने चरणों में बिठाकर इस माया का खेल दिखा रहे हैं। यद्यपि हमारे नूरी तन मूल मिलावे में ही बैठे हैं और वहाँ से एक कण भी यहाँ नहीं आ सकता, फिर भी हमारी सुरता (आत्मा) अपनी परात्म का प्रतिबिम्ब लेकर इस खेल में आयी है, जिसके धाम हृदय में भी धनी आकर विराजमान हो गये हैं।

"इन गुन्हेगारों के दिल को, अर्स कर बैठे मेहरबान" (खुलासा ३/७०) तथा "ए दोऊ तन तले कदम के, आतम परआतम" (खिलवत १०/४) से यही निष्कर्ष निकलता है। इस प्रकार, इस चौपाई के प्रथम चरण में पास बैठने का तात्पर्य दोनों जगहों से है। धनी मूल मिलावे में भी हमारे पास हैं और इस संसार में भी हमारे हृदय में हैं। "हक अर्स कर बैठे दिल को, जुदे इत भी छोड़े नाहें" (श्रृंगार २१/८२) का संकेत भी इसी ओर

है।

अब केहेती हों साथ सबन, घर जागोगे इन वचन।

जित मिल कर बैठियां तुम, याद करो आप खसम॥१६३॥

अब मैं सभी सुन्दरसाथ से यह बात कहती हूँ कि इस ब्रह्मवाणी के वचनों को आत्मसात् करके ही आप अपने उस मूल घर में जाग्रत हो जाएँगे, जहाँ आप मूल मिलावे में धनी के सम्मुख मिलकर बैठे हैं। हे साथ जी! आप अपने प्रियतम को तथा अपने मूल तन को याद कीजिए।

**भावार्थ-** इस चौपाई का आशय यह कदापि नहीं मान लेना चाहिए कि मात्र तारतम वाणी के शब्दों को पढ़कर ही हम परमधाम में अपनी परात्म में जाग्रत हो जायेंगे।

परात्म परमधाम की वहदत (एकदिली) में है, इसलिये उसकी जागनी एकसाथ ही होगी। "पौढ़े भेले

जागसी भेले" (कलस हि. २३/२९) का कथन इसी भाव को प्रकट करता है। ब्रह्मवाणी के कथनों को आत्मसात् करके जब आत्मा अपने धाम हृदय में अपने धनी की शोभा को बसाती है, तब उसे आत्मा की जागनी कहते हैं। श्रृंगार ग्रन्थ का चौथा प्रकरण इसी सन्दर्भ में है। इस प्रकरण (४) की चौपाई ७२ में कहा गया है—

जब बैठे हक दिल में, तब रुह खड़ी हुई जान।

हक आए दिल अर्स में, रुह जागे के एही निसान॥

इसी क्रम में जब सभी आत्माओं की जागनी हो जायेगी, तब धनी के आदेश से इस ब्रह्माण्ड का प्रलय होगा और आत्मायें निजधाम के अपने मूल तनों में जाग्रत होंगी, किन्तु ब्रह्मवाणी के बिना आत्म-जागनी का कार्य कदापि नहीं हो सकेगा। इस चौपाई के दूसरे चरण में

कथित "घर जागोगे इन वचन" का यही भाव लेना चाहिए।

तले भोम थंभों की जुगत, कही जाए न बानी सों बिगत।  
 इत बड़ा चौक जो मध, ताकी अति बड़ी सोभा सनन्ध॥१६४॥  
 प्रथम भूमिका में पाँचवीं गोल हवेली मूल मिलावा के  
 रंग-बिरंगे थम्भों की रचना का वर्णन हो पाना वाणी  
 (शब्दों) से सम्भव नहीं है। इस हवेली के मध्य में जो  
 बड़ा गोल चबूतरा है, उसकी शोभा तो अद्वितीय है।

आगे पीछे थंभों की हार, दाएं बाएं दोऊ पार।  
 जोत चारों तरफों जवेर, झलकार छाई चौफेर॥१६५॥  
 इस हवेली में चारों तरफ घेरकर गोलाई में मन्दिरों की  
 एक हार है, जिसके आगे-पीछे (बाहरी और भीतरी

तरफ) थम्भों की एक-एक हार है। ये थम्भ प्रत्येक मन्दिर के दायें-बायें (प्रत्येक दो मन्दिरों की सन्धि में) हैं। ये थम्भ इस पार (अन्दर की ओर) भी हैं तथा उस पार (बाहरी तरफ) भी हैं। चारों ओर जवेरों की ज्योति छायी हुई है। थम्भों, दीवारों, सतह, तथा चन्द्रवा में एक-दूसरे के प्रतिबिम्ब की चारों ओर झलकार हो रही है।

**मंदिर दिवालों थंभों के जो पार, सोभा करत अति झलकार।**

**जोत ऊपर की जो आवे, तले की भी सामी ठेहेरावे॥१६६॥**

मन्दिरों, दीवारों, और थम्भों के आगे रंग-बिरंगी किरणें झलझला रही हैं। चबूतरे के फर्श (सतह) पर जहाँ कोमल गलीचा बिछा है, वहीं ऊपर मनोरम चन्द्रवा लटक रहा है। दोनों से निकलने वाली ज्योति आपस में

टकराकर वहाँ रुकी हुई सी प्रतीत होती है।

इत अनेक विधों के जो नंग, ताकी किरना देखावें कई रंग।

आवत साम सामी अभंग, सो मैं क्यों कहूं नूर तरंग॥१६७॥

इस मूल मिलावा में दीवारों तथा थम्भों आदि में अनेक प्रकार के नग जड़े हुए हैं, जिनसे निकलने वाली किरणों में अनेक प्रकार के रंग दिखायी देते हैं। ये किरणें आमने-सामने से हमेशा ही लगातार निकलती रहती हैं। इन किरणों की तरंगों की शोभा का मैं किस प्रकार वर्णन करूँ?

इत याही चौक के बीच, बिछाया है दुलीच।

दुलीचा भी वाही रसम, ताकी अति जोत नरम पसम॥१६८॥

इस चबूतरे के ऊपर अति सुन्दर गलीचा बिछाया गया

है। बहुत ही कोमल पश्म का बना हुआ यह गलीचा नूरमयी है और बहुत अधिक ज्योति से भरपूर है।

**भावार्थ-** यद्यपि सम्पूर्ण चबूतरे के ऊपर ही गलीचा बिछा हुआ है, किन्तु किनारे पर थम्भों की हार आने के कारण इस चौपाई के पहले चरण में "बीच" शब्द का प्रयोग हुआ है। बहुत ही कोमल वस्त्र को पश्म कहते हैं।

याकी हंसत बेल फूल रंग, सो भी करत जवेरों सों जंग।  
किरना होत न पीछी अभंग, ए भी सोभित जवेरों के संग॥१६९॥

इस दुलीचे (गलीचे) पर बनी हुई रंग-बिरंगी बेलें तथा फूल इतने सुन्दर लगते हैं कि जैसे वे हँस रहे हों। इनसे निकलने वाली किरणें जवाहरातों से निकलने वाली किरणों से टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती हैं। संघर्ष की यह लीला निरन्तर चलती ही रहती है। किसी

(फूलों तथा जवाहरातों) की भी किरणें पीछे हटने का नाम नहीं लेतीं। इन फूलों तथा बेलों की शोभा भी जवाहरातों के ही समान है।

इत धरया जो सिंघासन, राज स्यामा जी के दोऊ आसन।  
 ताको रंग सोभित कंचन, जड़े मानिक मोती रतन॥१७०॥

चबूतरे के मध्य में सिंहासन रखा हुआ है, जिस पर युगल स्वरूप विराजमान होते हैं। कञ्चन रंग का यह सिंहासन सुशोभित हो रहा है। इसमें अति सुन्दर माणिक, मोती आदि रत्न जड़े हुए हैं।

पीछले तीन थंभ जो खड़े, ता बीच कई नकसों नंग जड़े।  
 तकियों के बीच दोऊ सिरे, ताके फूलन पर नंग हरे॥१७१॥

सिंहासन के पिछले भाग में जो तीन डण्डे (थम्भ) आये



हैं, उनके बीच में अनेक प्रकार की चित्रकारी है, जिनमें नग जड़े हुए हैं। इसी प्रकार तकियों (पाँचों) के दोनों किनारों के बीच में अनेक प्रकार के फूल हैं, जो हरे रंग के नगों से जड़ित होकर सुशोभित हो रहे हैं।

उतरती कांगरी जो हार, बने आसमानी नंग तरफ चार।  
कई बेल फूल जड़े माहीं, ताकी उठत अनेक रंग झांई॥१७२॥

तकियों में उतरती हुई कांगरी की जो हारें आयी हैं , उसके चारों ओर आसमानी रंग के नीलम के नग जड़े हुए हैं। इन कांगरियों में अनेक प्रकार की लतायें और फूल जड़े हुए हैं, जिनसे अनेक रंगों की आभा निकल रही है।

**भावार्थ—** कांगरी में बड़े चित्रों का क्रमशः छोटा होते जाना उतरना तथा छोटे से बड़ा होते जाना चढ़ना कहलाता है।

कई रंग नंग कहूं केते, हर एक तरंग कई देते।

बाई बगलों तकिए दोए, बेलां बारीक बरनन कैसे होए॥१७३॥

सिंहासन में अनेक रंगों के नग जड़े हैं, जिनका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ? प्रत्येक रंग के नग से अनेक प्रकार की तरंगे निकल रही हैं। सिंहासन की बायीं ओर दो तकिए रखे हुए हैं, जिन पर लताओं की अति सूक्ष्म चित्रकारी है, जिनकी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ?

**द्रष्टव्य—** सिंहासन पर ५ तकिये हैं। दो तकिए दायें-बायें, एक बीच में, तथा दो पीछे की ओर हैं। इस चौपाई के तीसरे चरण में जिन दो तकियों का वर्णन किया गया है, उसमें एक श्यामा जी की बायीं ओर का है तथा दूसरा तकिया बीच का है जो श्री राज जी की बायीं ओर होगा।

जो जनम सारे लो कहिए, तो एक नकस को पार न पैए।

पचरंगी पाटी मिहीं भरी, कई विध खाजली माहें करी॥१७४॥

यदि इस मानव जीवन की सम्पूर्ण आयु तक सिंहासन की शोभा का वर्णन किया जाये, तो भी एक चित्र की शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। पाँच रंगों वाली पट्टी की महीन भराई (बुनाई) है। इसके ऊपर अनेक प्रकार की मनोरम चित्रकारी की गयी है।

कई चाकले चित्रकारी, ता पर बैठे श्री युगल बिहारी।

दोऊ सरूप चित में लीजे, फेर फेर आतम को दीजे॥१७५॥

जिन दोनों चाकलों पर युगल स्वरूप विराजमान हैं, उन पर अनेक प्रकार की अति सुन्दर चित्रकारी की गयी है। हे साथ जी! युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की अनुपम छवि को अपने हृदय में बारम्बार बसाइये और अपनी

आत्मा को परमधाम के आनन्द में डुबोइये।

आतमसों न्यारे न कीजे, आतम बिन काहूँ न कहीजे।

फेर फेर कीजे दरसन, आतम से न्यारे न कीजे अधखिन॥१७६॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मिक दृष्टि से युगल स्वरूप की इस मनोहारिणी छवि का बारम्बार दर्शन कीजिए तथा आधे क्षण के लिये भी इसे अपनी आत्मा से अलग न कीजिए। ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य किसी से भी इस सुख को न कहिए।

**भावार्थ-** इस चौपाई में उन सुन्दरसाथ को इस बात का करारा उत्तर मिलता है, जो भ्रमवश यह मान बैठे हैं कि इस संसार में युगल स्वरूप का दर्शन ही नहीं हो सकता तथा चितवनि करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

पेहेले अंगुरी नख चरन, मस्तक लों कीजे बरनन।

सब अंग वस्तर भूखन, सोभा जाने आतम की लगन॥१७७॥

सबसे पहले युगल स्वरूप के चरण-कमलों की अंगुलियों तथा नखों से लेकर शीश-कमल तक की शोभा का वर्णन कीजिये, अर्थात् ज्ञानदृष्टि से अपने हृदय में बसाइये, ताकि आत्मा को जो युगल स्वरूप के अंग-प्रत्यंग एवं वस्त्र-आभूषणों को देखने की लगन लगी है, वह पूर्ण हो जाये तथा आत्मा अपने धाम हृदय में इस अद्वितीय शोभा को बसा सके।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण में चितवनि की उस अवस्था का वर्णन है, जब ज्ञान चक्षुओं से युगल स्वरूप की शोभा को निहारते हैं। "बरनन" करने का यही अभिप्राय है। इस स्थिति में जीव विरह की अग्नि में जल रहा होता है, जिसे अगली चौपाई में प्रकट किया गया है।

यों सरूप दोऊ चित में लीजे, अंग वार डार के दीजे।

गलित गात सब भीजे, जीव भान भून टूक कीजे॥१७८॥

हे साथ जी! इस प्रकार आप अपने हृदय में युगल स्वरूप को बसाइये तथा अपने अंग-अंग को धनी के विरह पर न्योछावर कर दीजिए। समर्पण की बलिवेदी पर अपने जीव को इस प्रकार टुकड़े-टुकड़े कर दीजिए कि आपका रोम-रोम प्रेम में डूब जाये।

**भावार्थ-** समर्पण की पराकाष्ठा पर पहुँचने पर ही "मैं" (खुदी) का परित्याग सम्भव है। इस अवस्था को प्राप्त किए बिना प्रेम का रसपान असम्भव है और बिना प्रेम के भला धनी का दीदार कैसे हो सकता है?

रंग करो विनोद हांस, सांचा सुख ल्यो प्रेम विलास।

घरों सुख सदा खसम, लेत मेरी परआतम॥१७९॥

अब आप प्रसन्नता भरी हँसी के साथ प्रियतम से आनन्द की लीला कीजिए और प्रेम के विलास का सच्चा सुख लीजिए। परमधाम में तो प्रियतम का सुख अनादि काल से ही मेरी परात्म लेती रही है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में चितवनि की उस अवस्था को दर्शाया गया है, जब आत्मा अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर युगल स्वरूप के सम्मुख होती है तथा वैसे ही प्रेम और आनन्द की अनुभूति करती है, जैसे परमधाम में करती रही है।

पर इत सुख पायो जो मेरी आत्म, सो तो कबहूँ न काहूँ जनम।  
इत बैठे धनी साथ मिल, हांसी करने को देखाया खेल॥१८०॥  
मेरी आत्मा ने चितवनि की अवस्था में जिस आनन्द को इस संसार में पाया है, उसे आज दिन तक इस सृष्टि

में कोई भी किसी जन्म में नहीं पा सका है। हमारे ऊपर हँसी करने के लिये ही धनी ने यह माया का खेल दिखाया है और नश्वर संसार में भी प्रियतम सुन्दरसाथ के धाम हृदय में ही बैठे हुए हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त दोनों (१७९-१८०) चौपाइयों से यह सिद्ध होता है कि इस नश्वर संसार में आत्मा की ही जागनी होनी है और मात्र आत्मा से ही युगल स्वरूप एवं परमधाम को देखा जा सकता है, परात्म से नहीं। परात्म की लीला परमधाम में है। परमधाम में श्री राज जी जहाँ अपने नूरी स्वरूप से मूल मिलावे में विराजमान हैं, वहीं इस संसार में आत्माओं के धाम हृदय में भी विराजमान हैं। "इन गुन्हेगारों के दिल को, अर्स कर बैठे मेहरबान" (खुलासा ३/७०) का कथन यही तथ्य प्रकट करता है।



आगे बारे सहस्र बैठियां हिल मिल, जानों एकै अंग हुआ भिल।

याको क्यों कहूं सरूप सिनगार, जाने आतम देखनहार॥१८१॥

मूल मिलावा में श्री राज जी के सम्मुख १२००० सखियाँ आपस में इस प्रकार सट-सट कर बैठी हुई हैं कि ऐसा लगता है जैसे सभी के अंग मिलकर एक ही दिख रहे हैं। इन ब्रह्माँगनाओं की शोभा-श्रृंगार का वर्णन मैं कैसे करूँ? इसे तो मात्र प्रत्यक्ष (ध्यान द्वारा) देखने वाली आत्मायें ही जानती हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई की पहली पंक्ति का आशय यह है कि भले ही १२००० सखियों के १२००० मुख या २४००० हाथ हैं, किन्तु देखने में ऐसा लगता है कि वहाँ मात्र एक ही सखी बैठी है और उसका मात्र एक मुख और दो हाथ हैं। सागर ग्रन्थ २/५,९ का यह कथन भी इसी के अनुकूल है-

सुन्दरसाथ भराए के, बैठियां सरूप एक होए।  
 यों सबे हिल मिल रहीं, सरूप कहे ना जावें दोए॥  
 ए मेला बैठा एक होए के, रूहें एक दूजी को लाग।  
 आवे ना निकसे इतथे, बीच हाथ न अंगुरी मांग॥

कई कोट कहूं जो अपार, जुबां क्या कहेगी झलकार।  
 जैसे भूखन तैसे वस्तर, तैसी सोभा सरूप सुन्दर॥१८२॥

भला मेरी यह रसना (जिह्वा) इन नूरी स्वरूपों की आभा का क्या वर्णन कर सकती है? यदि मैं अपनी करोड़ों जिह्वाओं से भी इस शोभा का वर्णन करना चाहूँ, तो भी यह सम्भव नहीं है, क्योंकि यह अनन्त है। युगल स्वरूप तथा सखियों के आभूषण जिस प्रकार चेतन, नूरमयी, और आत्मस्वरूप हैं, उसी प्रकार वस्त्रों की भी शोभा है। नख से शिख तक इन स्वरूपों की शोभा –

सुन्दरता अपार है।

इत बड़े चौक मिलावे, धनी साथको बैठे खेलावें।

जो खेल मांग्या है सैयन, सो देखाया फिराएके मन॥१८३॥

परमधाम के मूल मिलावा में गोल चबूतरे के ऊपर  
विराजमान होकर धाम धनी अपनी अँगनाओं को माया  
का खेल दिखा रहे हैं। सखियों ने अपने प्रियतम से माया  
के जिस खेल को दिखाने की इच्छा की है, धनी उनके  
मन को माया में भेजकर खेल दिखा रहे हैं।

धनी धाम आप बिसर्जन, खेल देखाया जो सुपन।

तामें बांधी ऐसी सुरत, सो अब पीछी क्यों ए ना फिरत॥१८४॥

आप अक्षरातीत श्री राज जी ने अपनी अँगनाओं को  
इस माया के संसार में भेजकर स्वप्न का खेल दिखाया

है। इस खेल में सखियों की सुरता इस प्रकार लग गयी है कि अब इसे छोड़ने की ही इच्छा नहीं करती।

**धनी दिए दरसन ता कारन, करने को सैयां चेतन।**

**धनी आप सैयों को दर्ई सुध, सो हम गावत अनेक विध॥१८५॥**

सुन्दरसाथ को जाग्रत करने के लिये ही श्री राज जी ने दर्शन दिया। धनी ने सखियों को निज घर की, अपनी, तथा मूल सम्बन्ध की पहचान करायी, जिसे मैं अनेक रूपों में गा रही हूँ।

**भावार्थ—** श्री राज जी ने सर्वप्रथम श्री देवचन्द्र जी को तीन बार दर्शन दिया तथा उनके धाम हृदय में विराजमान होकर सबको जगाने लगे। आड़िका लीला में भी वे श्री कृष्ण रूप में सबको दर्शन देते रहे। श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में बैठकर वे ब्रह्मवाणी का

अवतरण कर रहे हैं, ताकि सभी जाग्रत हो जायें। रास से लेकर कयामतनामा तक में धनी की एवं अपनी पहचान को अलग-अलग प्रकार से कहा गया है, जिसे इस चौपाई के चौथे चरण में सांकेतिक रूप में व्यक्त किया गया है।

**जागियां तो भी खेल न छोड़ें, फेर फेर दुखको दौड़ें।**

**धनी याद देत घर को सुख, तो भी छूटे ना लग्यो जो विमुख॥१८६॥**

तारतम वाणी के प्रकाश में सुन्दरसाथ ज्ञान दृष्टि से जाग्रत तो हो गये हैं, किन्तु उनसे यह मायावी जगत छूट ही नहीं पा रहा है, बारम्बार दुःखमयी संसार की ओर ही भाग रहे हैं। यद्यपि धाम धनी तारतम वाणी के द्वारा परमधाम के अनन्त सुखों की याद दिला रहे हैं, फिर भी प्रियतम से अलग (विमुख) होकर झूठे संसार के विषय—

रस में डूबने का जो स्वाद लग चुका है, वह किसी प्रकार से छूट ही नहीं पा रहा है।

**अब आप जगाए के धनी, हाँसी करसी मिनों मिने घनी।**

**अब केहेती हों साथ सबन, घर जागोगे इन वचन॥१८७॥**

अब धाम धनी हमको जाग्रत करेंगे तथा हमारे ऊपर बहुत हँसी करेंगे। इसलिये अब मैं सब सुन्दरसाथ से यही बात कहती हूँ कि हे साथ जी! जब आप तारतम वाणी को आत्मसात् करके चितवनि द्वारा अपनी आत्मा को जाग्रत करेंगे, तभी अपनी परात्म में भी जाग्रत हो सकेंगे।

**भावार्थ—** परात्म में जाग्रति खेल खत्म होने के बाद ही होगी, किन्तु खेल तभी खत्म होगा, जब सबकी आत्मा जाग्रत होगी। यद्यपि प्रकास हिन्दुस्तानी के "कातनी" के प्रकरण २६/१४ के अनुसार इस खेल में सबकी आत्मा

जाग्रत नहीं हो पायेगी। कई तो अपनी आँखें मलती हुई ही उठेंगी— "जो उठसी आंखां चोलती, सो केहेसी कहा वचन।"

धाम धनी के आदेश के अनुसार जब तक इस ब्रह्माण्ड और खेल का अस्तित्व है, तब तक एकमात्र ब्रह्मवाणी द्वारा चितवनि के माध्यम से ही अपनी आत्मा को जाग्रत कर सकेंगे। इसके बिना निज घर में परात्म की जागनी सम्भव नहीं है।

ए जो किया है तुम कारन, धनी धाम सैयां बरनन।

जित मिलकर बैठियां तुम, याद करो आप खसम॥१८८॥

इसलिये हे साथ जी! आपको जाग्रत करने के लिये ही मैंने श्री राजश्यामा जी, परमधाम, तथा सखियों की परात्म की शोभा का वर्णन किया है। जिस मूल मिलावा

में आप सभी बैठे हुए हैं, वहाँ अपने मूल तनों (परात्म को) तथा धाम धनी को याद कीजिए (अपने हृदय में बसाइए)।

करो अंतरगत गम, ए जो जाहेर देखाया हम।

याद करो वतन सोई, और न जाने तुम बिना कोई॥१८९॥

जिस अक्षरातीत एवं परमधाम को मैंने ज्ञान दृष्टि से प्रत्यक्ष दर्शाया है, उनकी पहचान आप अपनी आत्मा के धाम हृदय में कीजिए। जिस परमधाम को आपके बिना इस संसार में अन्य कोई भी नहीं जानता, उसे याद कीजिए अर्थात् अपने हृदय मन्दिर में बसाइए।

तुम मांगी धनीपे करके खांत, ए जो धनिएं करी इनायत।

याद करो सोई साइत, ए जो बैठ के मांग्या तित॥१९०॥



आपने अपने मन में बहुत ही तीव्र इच्छा लेकर इस खेल को माँगा था। धाम धनी ने भी आपके ऊपर कृपा करके इस मायावी संसार को दिखाया है। अब आप उस समय को याद कीजिए, जब आपने परमधाम में अपने प्राणवल्लभ से इस खेल को माँगा था।

**भावार्थ-** इस खेल में तारतम वाणी द्वारा सुन्दरसाथ को श्री राज जी के हृदय के परम सत्य (मारिफत) स्वरूप का बोध हुआ है, जो पहले कभी भी नहीं था। यह सब धाम धनी की मेहर से ही सम्भव हो सका है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है—

सुख हक इस्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रुह सो करो विचार॥

सागर १२/३०

सेवा पूजा का भी यह व्यक्तव्य बहुत ही सारगर्भित है—  
 "जब मेहेर का दरिया दिल में लिया, तब रूहों के दिल में  
 खेल देखने का ख्याल उपजा।"

स्याम स्यामाजी साथ सोभित, क्यों न देखो अंतरगत।  
 पीछला चार घड़ी दिन जब, ए सोई घड़ी है अब॥१९१॥  
 हे साथ जी! युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी तथा  
 सुन्दरसाथ मूल मिलावा में बैठे हुए सुशोभित हो रहे हैं।  
 आप उनकी शोभा को अपने धाम हृदय में क्यों नहीं  
 देखते हैं? इस खेल में आने के समय परमधाम में साढ़े  
 चार बजे थे, अब भी वहाँ वही समय है।

**भावार्थ—** यह कितने आश्चर्य की बात है कि परमधाम में  
 अभी भी वही पल है, किन्तु इस खेल में ब्रज एवं रास  
 की लीला पूर्ण हो चुकी है तथा जागनी लीला चल रही

है। महारास की लीला कितनी लम्बी है, इसका पता  
आदिनारायण या किसी को भी नहीं है—

नारायण जी की रात को, कोईक पावें पार।

पर पार नहीं रास रात को, ए तो बेहद कही।

प्रकास हिन्दुस्तानी ३१/६६,६७

बृज रास ए सोई लीला, सोई पिया सोई दिन।

सोई घड़ी ने सोई पल, वैराट होसी धन धन॥

किरंतन ५२/२२

पोहोर दिन से चार घड़ी लग, बरस्या हक का नूर।

इस्क तरंग सबों अपने, रोसन किए जहूर॥

खिलवत १६/१९

तीसरी भोम से आए के, बाकी दिन रहया घड़ी चार।

भोम तले आए के, चौक पांचवें का व्यवहार॥

महामति बड़ी वृत्त १५/४०

याद करो जो कह्या मैं सब, नींद छोड़ो जो मांगी है तब।  
याद करो धनीको सरूप, श्री स्यामा जी रूप अनूप॥१९२॥  
मैंने आपको जाग्रत करने के लिये जिन बातों को कहा  
है, उन्हें आत्मसात् कीजिए। मूल मिलावा में बैठकर  
प्रियतम श्री राज जी से आपने जिस माया की इच्छा की  
थी उसे छोड़ दीजिए तथा अपने हृदय मन्दिर में युगल  
स्वरूप श्री राजश्यामा जी के अनुपम सौन्दर्य को बसा  
लीजिए।

याद करो सोई सनेह, साथ करत मिनों मिने जेह।  
सुख सैयां लेवें नित, अंग आतम जे उपजत॥१९३॥  
आप परमधाम के उस अद्वितीय प्रेम को याद कीजिए,

जो आप सभी आपस में करते रहे हैं। प्रियतम अक्षरातीत के अनन्त आनन्द को आप वहाँ नित्य ही लेते रहते हैं। आपकी आत्मा के हृदय में धनी का अपार आनन्द पल-पल प्रकट होता ही रहता है।

रस प्रेम सरूप है चित, कई विध रंग खेलत।

बुध जाग्रत ले जगावती, सुख मूल वतन देखावती॥१९४॥

प्रियतम श्री राज जी का हृदय अनन्त प्रेम और आनन्द का स्वरूप है। वे अपनी अँगरूपा आत्माओं के साथ अनेक प्रकार की आनन्दमयी क्रीड़ाएँ करते हैं। मैं धनी की तारतम वाणी से आपको जाग्रत कर रही हूँ तथा अपने मूल घर परमधाम के अखण्ड सुखों का ज्ञान दृष्टि से अनुभव भी करा रही हूँ।

प्रेम सागर पूर चलावती, संग सैयों को भी पिलावती।

पियाजी कहें इन्द्रावती, तेज तारतम जोत करावती॥१९५॥

मेरे हृदय में अपने प्राणवल्लभ के प्रति प्रेम के अथाह सागर की लहरें उमड़ रही हैं। मैं अपने साथ परमधाम की आत्माओं को भी प्रेम का रस पिला रही हूँ। अब तो स्वयं श्री राज जी ही कह रहे हैं कि इन्द्रावती जी तो हर सुन्दरसाथ के हृदय में तारतम ज्ञान के उजाले की ज्योति जला रही हैं। जिस प्रकार सूर्य के अथाह तेज को चन्द्रमा अल्प मात्रा में ग्रहण कर उसे शीतल ज्योति में परिवर्तित कर लेता है, उसी प्रकार श्री महामति जी का हृदय तारतम ज्ञान का सूर्य है और उससे चन्द्रमा की ज्योति के समान तारतम की शीतल चाँदनी सुन्दरसाथ के हृदय में सुशोभित होती है।

**भावार्थ—** उपरोक्त चौपाइयों में यह बात स्पष्ट रूप से

दर्शायी गयी है कि प्रेम ही जीवन का सार है। तारतम ज्ञान द्वारा बोध हो जाने के पश्चात् आत्म-जाग्रति के लिये प्रेम के स्वर्णिम पथ पर चलना अनिवार्य है। अगली चौपाई में भी यही बात कही गयी है।

तासों महामत प्रेम ले तौलती, तिनसों धाम दरवाजा खोलती।

सैयां जानें धाम में पैठियां, ए तो घरही में जाग बैठियां॥१९६॥

इस प्रकार श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि मैंने प्रेम से ही धनी की पहचान की है और सब सुन्दरसाथ के लिए भी मैंने परमधाम का दरवाजा खोल दिया है। अब तो प्रेम के रस में डूबी हुई सखियों को ऐसा लगने लगा है कि वे इस संसार में ही नहीं है, बल्कि संसार को छोड़कर वे अपने परमधाम में पहुँच गयी हैं और जाग्रत होकर साक्षात् धनी के सामने बैठी हुई हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में अध्यात्म जगत् की उस परम अवस्था का वर्णन है, जब आत्मा प्रेम में डूबकर शरीर के बोध से पूर्णतया रहित हो जाती है, तथा इस संसार और बेहद से परे होकर परमधाम के मूल मिलावे में पहुँच जाती है, और युगल स्वरूप को एकटक देखने लगती है। उस समय उसे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह पूर्णतया जाग्रत है तथा धनी के सम्मुख है। संसार के अस्तित्व का उसे जरा भी भान नहीं होता। सागर ग्रन्थ में इस अवस्था का बहुत ही मनोरम चित्रण किया गया है—

अन्तस्करन आतम के, जब ए रहयो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥

सागर ११/४४

इस लक्ष्य को पाने लिये प्रेममयी चितवनि के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।



## प्रकरण ॥३॥ चौपाई ॥२८२॥

## सूरत इस्क पैदा होने की

### प्रेम प्रकट होने की स्थिति

"सूरत" शब्द का तात्पर्य दशा, अवस्था, या स्थिति से है। इस प्रकरण में यह बात बतायी गयी है कि किन परिस्थितियों में हमारे हृदय में प्रेम (इश्क) पैदा हो सकता है।

**तुमको इस्क उपजावने, करुं सो अब उपाए।**

**पूर चलाऊं प्रेम को, ज्यों याही में छाक छकाए॥१॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! अब मैं इस प्रकार के उपाय करती हूँ (मार्ग बताती हूँ), जिससे आपके हृदय-मन्दिर में धनी का प्रेम प्रकट हो जाये। मैं आपके हृदय में इश्क (प्रेम) का ऐसा प्रवाह बहाना चाहती हूँ, जिसमें आप पूर्ण रूप से तृप्त हो जायें।

इस्क जिन विध उपजे, मैं सोई देऊं जिनस।

तब इस्क आया जानियो, जब इन रंग लाग्यो रस॥२॥

अब मैं आपको वह मार्ग बताने जा रहा हूँ, जिससे आपके अन्दर प्रेम आ जाये। जब परमधाम के रंग में आनन्द आने लगे, तब समझ लेना चाहिए कि हमारे अन्दर धाम धनी का प्रेम आने लगा है।

**भावार्थ-** प्रायः हम संसार के विषय-सुखों में ही आनन्द (रस) की कल्पना करते हैं, जबकि यह छल होता है और इसका विवेक किसी-किसी को ही हो पाता है। जब हमारा मन केवल परमधाम की लीला एवं शोभा आदि में रस लेने लगे, तो इसे परमधाम के रंग में रंगने लगना या रस लेना कहते हैं।

ए सुख बिसरे धनीय के, इन सुपन भोममें आए।

सो फेर फेर याद देत हों, जो गया तुमें बिसराए॥३॥

हे साथ जी! इस मायावी जग में आकर आपने प्रियतम के अखण्ड सुखों को भुला दिया है। इसलिये मैं आपको बार-बार परमधाम के उन अनन्त सुखों की याद दिला रहा हूँ, जिनको आप भूल चुके हैं।

कीजे याद मिलाप धनी को, और सखियों के सनेह।

रात दिन रंग प्रेम में, विलास किए हैं जेह॥४॥

आप प्रियतम से प्रेम-भरे मिलन के मधुर क्षणों को याद कीजिए। यह भी याद कीजिए कि आप सब सुन्दरसाथ का आपस में कितना प्रेम था। आप इस बात को भी अपने हृदय में संजोए रखिए कि धनी के प्रेम-रस में डूबकर किस प्रकार हम आनन्द की लीलाओं का रस

लेते रहते थे।

निस दिन रंग-मोहोलन में, साथ स्यामाजी स्याम।

याद करो सुख सबों अंगों, जो करते आठों जाम॥५॥

आप सभी सुन्दरसाथ रंगमहल में युगल स्वरूप के साथ आठों प्रहर दिन-रात सभी अंगों से प्रेम एवं आनन्द की लीलायें करते थे। इसे आप अपने अन्तर्मन में बसाइए।

**भावार्थ-** सभी अंगों से धनी का सुख लेने का तात्पर्य है- अपने नेत्रों से प्रियतम को देखना, कानों से उनकी प्रेम-भरी मधुर वाणी सुनना, रसना से बोलना, तथा प्रेम भरे मधुर आलिंगन आदि का आनन्द लेना।

चौकस कर चित दीजिए, आत्म को एह धन।

निमख एक ना छोड़िए, कर मन वाचा करमन॥६॥

परमधाम की यह लीला आत्मा का अखण्ड धन है। बहुत सावधान होकर इस लीला के प्रति अपना ध्यान केन्द्रित कीजिए और एक क्षण के लिये भी मन, वाणी, और कर्म से इसे न छोड़िये।

**भावार्थ**— लापरवाही से कभी भी आध्यात्मिक लक्ष्य को नहीं पाया जा सकता, इसलिये इस चौपाई के पहले चरण में आलस्य छोड़कर चितवनि में हमेशा लगे रहने का निर्देश दिया गया है। मन से लीला को न छोड़ने का भाव है— लीला का निरन्तर मनन करते रहना। कर्म से परित्याग न करने का तात्पर्य है— आत्मिक दृष्टि से लीला में डूबे रहना (देखते रहना)। इसी प्रकार वाणी से न छोड़ने का अर्थ है— वाणी से केवल परमधाम की शोभा और लीला के बारे में ही बातें करना।

एही अपनी जागनी, जो याद आवे निज सुख।

इस्क याही सों आवहीं, याही सों होइए सनमुख॥७॥

अपनी आत्मिक जागनी का स्वरूप यही है कि परमधाम के अपने अखण्ड सुखों का हमेशा चिन्तन बना रहे। इसी अवस्था में धनी का प्रेम हृदय में आता है और प्रियतम परब्रह्म का दीदार (दर्शन) होता है।

**भावार्थ-** जो जिसका चिन्तन करता है, वह वैसा ही हो जाता है। भोग का चिन्तन करने वाला भोगी, तथा ब्रह्म का चिन्तन करने वाला ब्राह्मी गुणों को आत्मसात् कर लेता है। धनी का प्रेम प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि अनन्त प्रेम के स्वरूप प्रियतम अक्षरातीत का ही मात्र चिंतन हो। उपरोक्त चौपाइयों में यही तथ्य दर्शाया गया है।

इस्क धनी को आवहीं, याही याद के माहें।

इस्क जोस सुख धनी बिना, और पैदा कहूं नाहें॥८॥

युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार तथा परमधाम की लीला के चिन्तन से प्रियतम का इश्क आता है। श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कहीं से भी प्रेम का जोश और अखण्ड आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाइयों में "चिन्तन" का तात्पर्य शुष्क हृदय के बौद्धिक चिन्तन से नहीं है, बल्कि अपने चित्त से मायावी जगत के संस्कारों को निकालकर, श्रद्धा और समर्पण के भावों से युक्त होकर, अपने कोमल हृदय (चित्त) में प्रियतम तथा परमधाम की शोभा और लीला को आत्मसात् करने से है।



ताथें पल पल में ढिग होइए, सुख लीजे जोस इस्क।

त्यों त्यों देह दुख उड़सी, संग तज मुनाफक॥९॥

इसलिये हे साथ जी! आप चितवनि में इस प्रकार डूब जाइए कि आपको पल-पल प्रियतम की सान्निध्यता (निकटता) का अनुभव हो। इस प्रकार इस अवस्था में आप धनी के इश्क के जोश का सुख ले सकते हैं। जैसे-जैसे इस स्थिति की पूर्णता प्राप्त होती जाती है, वैसे-वैसे आत्मा इस झूठे मन का साथ छोड़कर शरीर के दुःखों से स्वयं को अलग मानती है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में "मुनाफक" शब्द का प्रयोग मन के लिये किया गया है। यह मन कभी तो श्री राज जी की ओर लग जाता है और कभी माया की तरफ। इसे मुनाफक कहे जाने का यही कारण है। मन के साथ जुड़े होने के कारण ही जीव को अपने शरीर के

माध्यम से सुख या दुःख का अनुभव होता है। आत्मा जीव के ऊपर बैठकर इस मायावी लीला को देख रही है। चितवनि की गहन-उच्च अवस्था में वह स्वयं को इस पञ्चभौतिक शरीर, अन्तःकरण, तथा जीव से परे परात्म स्वरूप के प्रतिबिम्बित रूप में पाती है। यहाँ यहीं तथ्य स्पष्ट होता है।

**जो लों इस्क न आइया, तोलों करो उपाए।**

**योंही इस्क जोस आवसी, पल में देसी पट उड़ाए॥१०॥**

जब तक आपके हृदय-मन्दिर में प्रेम का रस नहीं आ जाता, तब तक आपको इसी प्रकार प्रयासरत रहना चाहिए। इस प्रकार आपके अन्दर प्रेम (इश्क) का जोश आयेगा, जो पल भर में माया के झूठे पर्दे को हटा देगा।

**भावार्थ-** इस चौपाई में इश्क और जोश को अलग-

अलग नहीं, बल्कि इश्क के जोश के रूप में मानना चाहिए। यहाँ जोश का तात्पर्य धनी के जोश अर्थात् "जबराईल जोस धनीय का" (खुलासा १२/४५) से नहीं है, बल्कि प्रेम के जोश से है। धनी का जोश तो आत्म-जाग्रति के पश्चात् ही प्राप्त होता है। धनी का प्रेम पाने के लिये यहाँ जो चितवनि की राह बतायी गयी है, उससे पहले तो प्रेम का जोश प्राप्त होगा। तत्पश्चात् धनी के दीदार के रस में डूबने पर श्री राज जी की मेहर से ही उनका जोश प्राप्त हो सकता है। खिलवत १५/३८ में प्रेम के जोश के सम्बन्ध में कहा गया है—

सुकन मेरा मानो नहीं, सब भरी इस्क के जोस।

सब बोले नाचें कूदहीं, हमें कहा करे फरामोस॥

पल पल में पट उड़त है, बढ़त बढ़त अनूकरम।

इस्क आए जोस धनी के, उड़ गयो अन्तर भरम॥११॥

जैसे-जैसे धनी के इश्क का जोश क्रमशः बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे पल-पल में माया का पर्दा हटता जाता है, और ऐसी भी स्थिति आ जाती है कि हृदय-पटल पर किसी भी प्रकार का भ्रमरूपी पर्दा नहीं रह जाता।

**भावार्थ-** शरीर और संसार के प्रति मोह एक प्रकार का भ्रम या अज्ञान का पर्दा है, जो एकमात्र प्रियतम के प्रेम के जोश से ही हट सकता है। इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "अन्तर" शब्द का तात्पर्य पर्दा या भेद से ही है, भीतर से नहीं।

निमख निमख में निरखिए, पट न दीजे पल ल्याए।

छेटी खिन ना पर सके, तब इस्क जोस अंग आए॥१२॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मिक दृष्टि से युगल स्वरूप को पल-पल देखिए। एक पल के लिये भी अपने और धनी के बीच में किसी भी प्रकार का पर्दा न आने दीजिए। जब एक क्षण के लिये भी आपकी सुरता धनी से अलग नहीं होगी, तब आपके हृदय में श्री राज जी के इश्क का जोश आ जायेगा।

**भावार्थ-** युगल स्वरूप की छवि को एकटक देखना ही ध्यान है। पल-भर के लिये भी अपनी आत्मिक दृष्टि को धनी से अलग न करने का कथन यह स्पष्ट करता है कि धनी का प्रेम पाने के लिये चितवनि अनिवार्य है।

**इस्क पेहेले अनुभवी, निज सरूप निजधाम।**

**तिन खिन बेर ना होवहीं, धनी लेत असल आराम॥१३॥**

जो इश्क (प्रेम) का पहले अनुभव कर लेता है, उसे

अपनी परात्म तथा परमधाम का साक्षात्कार करने में क्षण भर की भी देर नहीं लगती। उसे आनन्द देने के लिये श्री राज जी की शोभा उसके धाम-हृदय में अखण्ड हो जाती है और आराम (प्रेम का) करती है।

**भावार्थ-** आशिक (प्रेमी) के हृदय में ही माशूक (प्रेमास्पद) को वास्तविक आराम (सुख) मिलता है और इसे ही प्रेमी अपनी सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि मानता है। "अर्स तुमारा मेरा दिल है, तुम आए करो आराम" (सागर ८/१) का कथन यही संकेत कर रहा है। प्रिया-प्रियतम अंग-अंगी हैं। सुख देना और सुख लेना इनकी स्वाभाविक लीला है। "सुख देऊं सुख लेऊं, सुख में जगाऊं साथ" (कलश हिन्दुस्तानी २३/६८) की वाणी भी यही प्रकट कर रही है। इस चौपाई में धनी का आराम लेना यही भाव दर्शा रहा है। "धनी का आराम लेना या

किसी आत्मा का आराम लेना", इन दोनों कथनों में विरोधाभास नहीं है क्योंकि दोनों प्रेम लीला में एक ही स्वरूप होते हैं।

**बैठे मूल मेले मिने, धनी आगूं अंग लगाए।**

**अंग इस्क जो अनुभवी, तुम क्यों न देखो चित ल्याए॥१४॥**

हे साथ जी! आप परमधाम के मूल मिलावा में श्री राज जी के सामने एक-दूसरे से सट-सटकर बैठे हुए हैं। आपके अंग-अंग में प्रियतम के प्रेम का अनुभव भरा है। आप चित्त लगाकर (हृदय से) अपने प्राणवल्लभ की शोभा को क्यों नहीं देखते हैं?

**भावार्थ-** एकमात्र परात्म के ही अंग-अंग में धनी के प्रेम का अनुभव है। उसकी प्रतिबिम्ब-स्वरूपा आत्मा के अंग-अंग में प्रेम का अनुभव केवल चितवनि से ही

आएगा। जीव को विरह का ही अनुभव होता है, जो प्रेम की आधारशिला है।

ए वचन विलास जो पेड़ के, आए हिरदे आत्म के अंग।

तब खिन बेर न लागहीं, असल चित्त एक रंग॥१५॥

जब परमधाम के मूल मिलावा की इन आनन्दमयी बातों का क्रियात्मक रूप, अर्थात् शोभा एवं लीला, आत्मा के हृदय अंग में बस जाये, तो आत्मा के चित्त एवं परात्म के चित्त के एक रंग होने में पल भर की भी देर नहीं लगेगी।

**भावार्थ—** इस प्रकरण की अधिकतर चौपाइयों में परमधाम या मूल मिलावा की प्रेममयी चितवनि का निर्देश दिया गया है। इसे इस पन्द्रहवीं चौपाई के प्रथम चरण में व्यक्त किया गया है। परात्म का प्रतिबिम्ब होने से आत्मा का चित्त भी वैसा ही है, किन्तु उसमें संसार की



लीला का प्रवेश हो गया होता है। चितवनि द्वारा आत्मा के चित्त से संसार हट जाता है और उसमें परात्म की तरह ही सम्पूर्ण परमधाम की शोभा एवं लीला दृष्टिगोचर होने लगती है, जिसे एक रंग में रंग जाना कहते हैं। इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

अन्तस्करन आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥

सागर ११/४४

अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछु नाहें।

सिनगार ११/७९

बैठते उठते चलते, सुपन सोवत जाग्रत।

खाते पीते खेलते, सुख लीजे सब विध इत॥१६॥

हे साथ जी! आप अपनी परात्म से इस प्रकार एकरूप हो जाइए कि चाहे आप बैठे हुए हों या खड़े हुए हों, चल रहे हों अथवा अर्धनिद्रा में स्वप्नलोक में विचरण कर रहे हों, चाहे आप गहरी निद्रा में शयन कर रहे हों या पूर्ण रूप से जाग्रत हों, भोजन कर रहे हों या कुछ पी रहे हों, अथवा किसी प्रकार की क्रीड़ा (खेल) में संलग्न हों, आपको इन सभी अवस्थाओं में परमधाम के अखण्ड सुख की अनुभूति होती रहे।

**भावार्थ-** सामान्यतः इस चौपाई को चितवनि के सन्दर्भ में जोड़कर देखा जाता है, किन्तु ऐसा नहीं है। गहन निद्रा या स्वप्न की अवस्था में कोई प्रेमहंस भी चितवनि नहीं कर सकता। वस्तुतः जब प्रियतम या परमधाम की शोभा आत्मा के धाम-हृदय में बस जाती है, तो उसकी सुगन्धि से जीव की स्थिति विलक्षण हो जाती है। उसकी

निद्रा भी दिव्य निद्रा बन जाती है। उसके स्वप्न में भी आध्यात्मिक आनन्द का रस समाया होता है। प्रत्येक अवस्था में उसे अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती रहती है, जिसे इस चौपाई में प्रकट किया गया है।

**एह बल जब तुम किया, तब अलबत बल सुख धाम।**

**अरस परस जब यों हुआ, तब सुख देवें स्यामा स्याम॥१७॥**

जब आप अपनी आत्म-जाग्रति के लिये इस प्रकार का प्रयत्न (पुरुषार्थ, प्रयास) करते हैं, तब आपको निश्चित रूप से परमधाम के सुखों का अनुभव होगा (शक्ति प्राप्त होगी)। जब आप अपनी परात्म से एकरूप हो जायेंगे, तब आपको युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी परमधाम के आनन्द में डुबो देंगे।

**भावार्थ-** अरस-परस का तात्पर्य है- अपनी परात्म या

श्री राज जी से अभिन्नता (एकरूपता) का अनुभव करना। दूसरे शब्दों में, इसे एकरस होना या ओत-प्रोत होना भी कहते हैं।

जिन जानो ढील इस्क की, जब रस आयो अंतस्करन।  
तब सुख पाइए धाम के, निस दिन रंग रमन॥१८॥

जब आत्मा के अन्तःकरण में परमधाम की शोभा का रस आने लगता है, तब यह मान लेना चाहिए कि अब धनी का इश्क (प्रेम) आने में जरा भी देर नहीं है। इस अवस्था में परमधाम के सुखों का अनुभव होने लगता है और आत्मा दिन-रात आनन्द में क्रीड़ा करने लगती है।

**भावार्थ—** जैसे-जैसे युगल स्वरूप या परमधाम की शोभा आत्मा के धाम-हृदय में बसने लगती है, वैसे-वैसे संसार से सम्बन्ध टूटता जाता है और धनी का प्रेम आने

लगता है। "ज्यों ज्यों अर्स होवे नजीक , त्यों त्यों खेल होवे दूर" का कथन इसी सन्दर्भ में है।

फेर फेर सुरत साधिए, धनी चरित्र सुख चैन।

इस्क आए बेर कछू नहीं, खुल जाते निज नैन॥१९॥

हे साथ जी! परमधाम में होने वाली धनी की अष्ट पहर की लीलाओं के आनन्द में अपनी सुरता लगाइये (चितवनि कीजिए)। ऐसा करने पर आपके हृदय में प्रेम आने में जरा भी देर नहीं लगेगी और आपकी आत्मिक दृष्टि भी खुल जायेगी।

फेर फेर सरूप जो निरखिए, फेर फेर भूखन सिनगार।

फेर फेर मिलावा मूल का, फेर फेर देखो मनुहार॥२०॥

अब आप अपनी आत्मिक दृष्टि से बार-बार श्री

राजश्यामा जी की अलौकिक शोभा को देखिए। उनके आभूषणों की अद्वितीय शोभा और श्रृंगार को भी देखिए। बारम्बार मूल मिलावा की उस अपरम्पार शोभा को देखिये, जिसमें धाम धनी अपनी अँगनाओं को खुश करने के लिये सामने बैठे हैं और वहीं पर बैठे –बैठे सबको माया का खेल दिखा रहे हैं।

**फेर फेर देखो धनी हेत की, फेर फेर रंग विलास।**

**फेर फेर इस्क रस प्रेम की, देखो विनोद कई हांस॥२१॥**

श्री राज जी की शोभा में डूबकर उनके लाड-प्यार और उनके आनन्द के विलास का बारम्बार अनुभव कीजिए। वे किस प्रकार इश्क (प्रेम) के रस में डूबे हुए हास्य एवं विनोद (मजाक) की मोहक लीलायें करते हैं, इसकी भी अनुभूति कीजिए।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रयुक्त "देखो" का भाव आत्म-चक्षुओं से देखने का नहीं है, बल्कि दर्शन के पश्चात् आत्मा की ज्ञान-दृष्टि से देखने का है जिसे अनुभव या अनुभूति की संज्ञा दी जा सकती है। आनन्द के विलास का तात्पर्य है- आनन्द की पराकाष्ठा, चरम उत्कर्ष की क्रीड़ा, या मूर्तिमान प्रत्यक्ष स्वरूप।

**अंदर धनी के देखिए, एक चित्त हेत रस रीत।**

**क्यों कहूं रंग हांस विनोद की, सुख सनेह प्रेम प्रीत॥२२॥**

आप एकाग्रचित्त होकर मूल मिलावा में विराजमान धनी के लाड-प्यार की लीला के आनन्द को देखिए। मैं प्रियतम के हास्यपूर्ण विनोद, प्रेम-प्रीति, और स्नेह के रस में ओत-प्रोत लीला के अनन्त रसमयी सुख का वर्णन कैसे करूँ।

**भावार्थ-** अपनत्व की प्रगाढ़ता में प्रेम का जो रस प्रवाहित होता है, उसे लाड-प्यार (हेत) कहते हैं। प्रेम रूपी फल का बीज प्रीति है। जिस प्रकार सागर का लहराता हुआ जल ही बाह्य रूप से दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार प्रेम के सागर की लहरों का क्रीड़ा रूप जल ही स्नेह है।

**खिन खिन में सुख होएसी, धनी याद किए असल।**

**ए सुख आए इस्क, बेर ना लगे एक पल॥२३॥**

इस प्रकार धाम धनी की शोभा को अपने हृदय में बसाते हुए याद करने पर पल-पल अखण्ड सुख प्राप्त होगा। धनी का सुख मिलने पर प्रेम आने में एक पल की भी देर नहीं लगेगी।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह संशय होता है कि क्या



इश्क से सुख प्राप्त होता है या सुख आने पर इश्क आता है? यह भी कहा जाता है कि "दुख थें विरहा उपजे, विरहा प्रेम इस्क", क्या इन तीनों में विरोधाभास है?

ब्रह्मवाणी के कथनों में कहीं भी विरोधाभास नहीं होता। केवल उचित सामंजस्य की आवश्यकता होती है। लौकिक दुःखों को देखकर (भोगने पर) या ज्ञान द्वारा विवेक होने पर, मन परब्रह्म की ओर लग जाता है और विरह आने लगता है। विरह में असह्य पीड़ा अवश्य होती है, किन्तु उसमें प्रेम की टीस होने से सुखद दर्द भी छिपा रहता है। विरह के लिये चितवनि, एवं हृदय में निर्मलता तथा कोमलता का होना आवश्यक होता है।

विरह से इश्क (प्रेम) आने के बाद जो धनी का दीदार होता है और सुख प्राप्त होता है, वह मन-वाणी से परे और अथाह होता है। विरह का सुख असीम नहीं

होता, क्योंकि उसमें दर्द भी छिपा रहता है।

इसी प्रकार धनी की शोभा को दिल में बसाने (ध्यान या चितवनि करने पर) भी सुख प्राप्त होता है, किन्तु इसकी सीमा है। जैसे-जैसे ध्यान गहरा होता जाता है, वैसे-वैसे सुख भी बढ़ता जाता है और प्रेम भी बढ़ता जाता है। जब प्रेम परिपक्व अवस्था में आ जाता है तथा प्रियतम का दर्शन होता है, तो उस समय का सुख अनन्त हो जाता है। उसका किसी भी प्रकार से वर्णन कर पाना सम्भव नहीं होता।

चितवनि या विरह से पहले मन को माया का सुख मिल रहा होता है, जो क्षणिक और मन को अशान्त करने वाला होता है। प्रियतम के ध्यान या विरह से जो सुख प्राप्त होता है, उसमें स्थिरता होती है और वह मन को शान्ति देने वाला होता है, क्योंकि उस आनन्द का

स्रोत अक्षरातीत या परमधाम की शोभा होती है। इस प्रकरण में दर्शन से पहले के इसी सुख का वर्णन किया गया है। वह प्राप्त होते रहने पर अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ता एवं विश्वास बना रहता है। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य यह है कि वास्तविक चितवनि (ध्यान) वही है, जिसमें विरह का पुट मिला होता है।

**मैं जो दई तुमें सिखापन, सो लीजो दिल दे।**

**महामत कहे ब्रह्मसृष्ट को, सखी जीवन हमारा ए॥२४॥**

श्री महामति जी परमधाम की आत्माओं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे साथ जी! मैंने आपको जो इस प्रकार की सीख दी है, उसे सच्चे हृदय से (दिल देकर, पूरे मन से) ग्रहण कीजिए। इस मार्ग का अनुसरण ही हमारा वास्तविक जीवन है। शेष सब निरर्थक (सारहीन)

है।

प्रकरण ॥४॥ चौपाई ॥३०६॥

## बन में सरूप सिनगार

इस प्रकरण में वनों में श्रृंगार करते हुए श्री राजश्यामा जी एवं सुन्दरसाथ की शोभा तथा लीला का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त वनों और यमुना जी की भी शोभा का मनोहर चित्रण है।

वतन आपनो, ब्रह्मसृष्ट को देऊं बताए।

धाम की सुध मैं सब देऊं, ज्यों अंतस्करन में आए॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! अब मैं आपको ब्रह्मसृष्टि होने के कारण परमधाम की बातें बताती हूँ। मैं आपको परमधाम की सारी पहचान (शोभा, लीला इत्यादि) देती हूँ, जिससे वह आपके धाम हृदय में बस जाये।

**इन भोम की रेती क्यों कहूं, उज्जल जोत अपार।**

**भोम बन आसमान लो, झलकारों झलकार॥२॥**

वनों की धरती की मनोहर रेती की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। यह बहुत अधिक उज्ज्वल है और इससे अनन्त ज्योति निकल रही है। धरती से उठने वाली इस ज्योति की झलकार वनों से होती हुई आकाश तक दृष्टिगोचर हो रही है।

**जोत जरे इन जिमी की, मावत नहीं आसमान।**

**तिन जिमी के बन को, जुबां कहा करसी बयान॥३॥**

वनों की धरती के एक-एक कण में इतनी ज्योति भरी हुई है कि वह आकाश में भी समा नहीं पा रही है, अर्थात् अनन्त है और चारों ओर फैली हुई है। ऐसी स्थिति में इस धरती के वनों की सम्पूर्ण शोभा का इस जिह्वा से

वर्णन कर पाना कैसे सम्भव है।

इन भोम रंचक रेत की, तेज न माए आकास।

जो नंग इन जिमी के, क्यों कहे जुबां प्रकास॥४॥

जब यहाँ की धरती के एक कण का तेज इतना अधिक होता है कि वह आकाश में समा नहीं पाता, तो यहाँ के नगों के अनुपम प्रकाश का वर्णन भला यहाँ की जिह्वा से कैसे हो सकता है।

जोत जिमी पोहोंचे आसमान लो, आसमान पोहोंचे जोत बन।

सो छाए रही ब्रह्मांड को, सब ठौरों उठत किरन॥५॥

वनों की धरती की ज्योति आकाश तक छा रही है और वह लौटकर वनों की ज्योति से टकराती है। इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम में ज्योति ही ज्योति दिखायी दे रही है।

चारों ओर नूरी किरणें फैलती हुई दृष्टिगोचर हो रही हैं।

**ए मंदिर झरोखे बन पर, झलकत हैं कई नंग।**

**बन फूल फल बेलियां, लगत झरोखों संग॥६॥**

मन्दिरों के झरोखे वनों से लगे हुए हैं। इन वनों में अनेक प्रकार के नग झलकार कर रहे हैं। वनों की लताएँ, फल, तथा फूल झरोखों के साथ स्पर्श करते हुए आए हैं।

**भावार्थ—** रंगमहल के चारों ओर वन आये हैं। पूर्व दिशा में सात वन – केल, लिबोई, अनार, अमृत, जाम्बू, नारंगी, वट – आये हैं। दक्षिण दिशा में वट – पीपल की चौकी है, जिसकी दक्षिण दिशा से होते हुए हौज – कौसर की परिक्रमा लगाते हुए कुञ्ज – निकुञ्ज वन आये हैं। इसी प्रकार उत्तर दिशा में बड़ो वन एवं ताड़वन की शोभा है, और पश्चिम में फूलबाग, नूरबाग, और अन्न वन की शोभा



आयी है। यद्यपि इस प्रकरण की चौपाई ५२-५५ में कुञ्ज-निकुञ्ज तथा हौज़-कौसर ताल के वनों की शोभा का भी वर्णन है, किन्तु विशेष रूप से यमुना जी के किनारे आये हुए सातों घाटों के वनों में श्रृंगार करने की लीला का मनोहारी चित्रण किया गया है।

**कई रंग नंग झलकत, जिमी झलके दिवालों बन।**

**सो छाए रही जोत आसमान में, पसु पंखी नूर रोसन॥७॥**

यहाँ की नूरी धरती झलकार कर रही है। रंगमहल की दीवारों तथा वनों में अनेक प्रकार के नगों की झलकार हो रही है, जो सम्पूर्ण आकाश में छायी हुई है। सभी पशु-पक्षी भी नूरी तेज से जगमगा रहे हैं।

जिमी आकास बिरिख नूर के, पात फूल फल नूर।

दिवाल झरोखे नूर के, क्यों कहूं नूर जहूर॥८॥

इन वनों के वृक्ष, पत्ते, फल, फूल, धरती, और आकाश सभी नूरमयी हैं। इन वनों से लगती हुई रंगमहल की दीवारें तथा झरोखे नूरी आभा से जगमगा रहे हैं। नूर के इस अलौकिक सौन्दर्य का मैं कैसे वर्णन करूँ।

जात अलेखे पंखियों, पसु अलेखे जात।

जात जात अनगिनती, क्यों कर कहूं विख्यात॥९॥

इन वनों में क्रीड़ा करने वाले पशु-पक्षियों की अनन्त प्रकार की जातियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक जाति की भी अनगिनत उपजातियाँ हैं, जिनका वर्णन मैं संसार में किसी प्रकार से नहीं कर सकती।

**पसु पंखी अति सुन्दर, बोलत अमृत रसान।**

**सुन्दरता केस परन की, क्यों कर करें बयान॥१०॥**

ये पशु-पक्षी बहुत सुन्दर हैं। ये अमृत से भी अधिक मीठे स्वरों में बोलते हैं। इनके अति कोमल बालों तथा पंखों की सुन्दरता का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ।

**कई विध बानी बोलहीं, कई विध जिकर सुभान।**

**कई दिन रातों रटत हैं, मुख मीठी कई जुबान॥११॥**

ये पशु-पक्षी अनेक प्रकार की वाणी बोलते हैं। प्रियतम अक्षरातीत की शोभा एवं महिमा को अनेक प्रकार से व्यक्त करते हैं। ये अपने मुख से अनेक प्रकार की अति मधुर बोलियों में दिन-रात श्री राज जी का नाम लेते रहते हैं।

मीठे नैन बैन मुख मीठे, सोभा सुन्दर अमान।

जिन विध धनी रीझहीं, खेलें बोलें तिन तान॥१२॥

इन पशु-पक्षियों के नेत्रों से मधुरता का रस टपकता रहता है। इनके बोल तथा मुख में मिठास की पराकाष्ठा है। इनकी शोभा-सुन्दरता की कोई भी उपमा नहीं दी जा सकती। जिस तरह से भी प्रियतम अक्षरातीत रीझ जायें, ये उसी तरह से खेलते और बोलते हैं।

विचित्र बानी माधुरी, बन में गूँजें करें गान।

चेतन चैन जो चातुरी, क्यों कर करूं बखान॥१३॥

इन पशु-पक्षियों की बोली अलौकिक माधुर्यता के रस से भरी हुई अद्भुत प्रकार की है। जब ये धनी को रिझाने के लिये गाते हैं, तो इनकी मधुर आवाज वनों में गूँजती रहती है। इनकी चतुराई तथा हमेशा आनन्दमयी रहने

वाले स्वभाव का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में "चेतन चैन" शब्द का तात्पर्य है – आनन्द के प्रति हमेशा चैतन्य (सावधान, जाग्रत रहने वाला) अर्थात् ये पशु-पक्षी कभी भी उदास या दुःखी नहीं होते हैं।

आए दरवाजे आगे खड़े, खेलोने अति घन।

स्याम स्यामा जी साथ को, पसु पंखी लेवें दरसन॥१४॥

ये पशु-पक्षी परमधाम के अत्यधिक आनन्दमयी खिलौने हैं। ये प्रतिदिन रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने चाँदनी चौक में आकर खड़े हो जाते हैं तथा युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी एवं सखियों का प्रेम भरा मधुर-दर्शन (शर्बत-ए-दीदार) प्राप्त करते हैं।

ठौर खेलन के चित धरो, विध विध के बन माहें।

केहेती हों आगूं तुम, जो हिरदे चढ़ चढ़ आए॥१५॥

हे साथ जी! इन वनों में आपके खेलने के अनेक प्रकार के स्थान हैं, जिनको आप अपने हृदय-मन्दिर में बसाइये। मेरे धाम हृदय में जो-जो दृश्य दिखायी पड़ रहे हैं, उन्हें मैं आपको बता रही हूँ।

आगूं धाम के बन भला, जमुना जी सातों घाट।

तीन बाएं तीन दाहिने, बीच जल कठेड़ा पाट॥१६॥

रंगमहल के आगे सात वन शोभायमान हैं, जो यमुना जी की किनार पर सातों घाटों के रूप में आये हैं। इनके मध्य में यमुना जी के जल के ऊपर कठेड़े से युक्त पाट घाट सुशोभित हो रहा है, जो अमृत वन के सामने आया है। इसके बायीं ओर उत्तर दिशा में केल , नींबू, और

अनार के वन हैं, तो दायीं ओर दक्षिण दिशा में जाम्बू, नारंगी, और बट के वन हैं।

**द्रष्टव्य—** ऐसा नहीं समझना चाहिए कि इन सात प्रकार के वनों में केवल सात ही प्रकार के वृक्ष हैं, बल्कि प्रत्येक वन में अनन्त प्रकार के वृक्ष, फूल, और लताये हैं। इतना अवश्य है कि इन सात वृक्षों की प्रमुखता है।

**घाट पाट जल ऊपर, अमृत बन हैं जाहें।**

**इन बन की सोभा क्यों कहूं, मेरो सब्द न पोहोंचे ताहें॥१७॥**

यमुनाजी के जल के ऊपर पाट घाट की शोभा आयी है। इसके सामने अमृत (आम) वन दृष्टिगोचर हो रहा है। भला, मैं इस वन की शोभा का कैसे वर्णन करूँ? मेरे शब्द वहाँ तक किसी भी प्रकार से नहीं पहुँच पा रहे हैं।

झीलन स्यामा संग राज सों, साथें किए जल केलि।

इन समें के विलास की, क्यों कहूं रंग रेलि॥१८॥

युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के साथ सुन्दरसाथ यमुना जी के जल में स्नान करने की लीला करते हैं। इस समय की प्रेममयी जल क्रीड़ा का जो अद्वितीय आनन्द होता है, उसका मैं कैसे वर्णन कर सकती हूँ।

मानिक हीरे पाच पोखरे, नूर तरफ से चारों द्वार।

चारों खूंटों थंभ नीलवी, अंबर भरयो झलकार॥१९॥

पाट घाट के चारों कोनों पर नीलम के कुल चार थम्भ आये हैं। चारों दिशाओं में माणिक , हीरा, पाच, तथा पुखराज के दो-दो थम्भ आये हैं। अक्षर धाम की ओर से देखने पर पूर्व दिशा में माणिक के दो थम्भ , पश्चिम में पाच के दो थम्भ, उत्तर दिशा में पुखराज के दो थम्भ,



तथा दक्षिण दिशा में हीरे के दो थम्भ आये हुए हैं। प्रत्येक दिशा के ये दो-दो थम्भ दरवाजे (मेहराबी द्वारों) के रूप में सुशोभित हो रहे हैं। इन थम्भों की नूरी झलकार आकाश तक छायी हुई है।

**ए बारे थंभों चांदनी, सोभित जल ऊपर।**

**साथ बैठा सब फिरता, चारों तरफों पसर॥२०॥**

इस प्रकार, जल की सतह के ऊपर कुल १२ थम्भ (४ नीलम + २ माणिक + २ पाच + २ पुखराज + २ हीरा) आये हैं, जिनके ऊपर छत की शोभा है। सब सुन्दरसाथ इस पाट घाट के ऊपर चारों ओर घेरकर आरामपूर्वक बैठा करता है।

सोभा बन संझा समें, फल फूल खुसबोए।

साथ बैठा पाट ऊपर, बीच सुंदर सरूप दोए॥२१॥

सन्ध्या के समय इन वनों की अलौकिक शोभा होती है। उस समय फलों तथा फूलों की दिव्य सुगन्धि चारों ओर फैल रही होती है और सुन्दरसाथ पाट घाट के ऊपर बैठा होता है। उनके मध्य में सौन्दर्य के सागर युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी विराजमान होते हैं।

बीच बैठक राज स्यामा जी, साथ गिरदवाए घेर।

साजे सकल सिनगार, सोभा क्यों कहूँ इन बेर॥२२॥

सम्पूर्ण श्रृंगार से सुशोभित सुन्दरसाथ चारों ओर से घेरकर बैठे हुए हैं तथा उनके बीच में श्री राजश्यामा जी की बैठक है। इस समय की इस शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

साथ बैठा पाट ऊपर, लग कठेड़े भराए।

जोत करी आकास लों, जानों आकास में न समाए॥२३॥

समस्त सुन्दरसाथ पाट घाट के ऊपर कठेड़े तक भरकर बैठा हुआ है। इनके शरीरों से निकलने वाली नूरी ज्योति आकाश में फैली हुई है। यह इतनी अधिक है कि ऐसा लगता है जैसे यह सम्पूर्ण आकाश में भी न समा सकेगी।

**द्रष्टव्य—** सौन्दर्य-वर्णन में अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग स्वाभाविक ही होता है। आकाश में न समा पाने की बात भी आलंकारिक भाषा में कही जाती है। इस चौपाई में भी यही स्थिति है।

कई रंग नंग कठेड़े, परत जल में झाँई।

तेज जोत जो उठत, तले मावे न आकास माहीं॥२४॥

कठेड़े में अनेक रंगों के नग जड़े हुए हैं , जिनका प्रतिबिम्ब जल में दिखायी पड़ता है। इन नगों से तेज और ज्योति की जो लहरें उठती हैं, वे इतनी अधिक हैं कि न तो नीचे समा पाती हैं और न ही ऊपर आकाश में समाती हैं।

**विशेष-** किसी समतल छत या सतह के चारों ओर लगभग २-३ फीट ऊँची दीवार की तरह एक पट्टी (रेलिंग) बना दी जाती है, जिसे कठेड़ा कहते हैं। इसका उद्देश्य किसी को भी गिरने से रोकना होता है।

सो झाँई जल लेहेरां लेवहीं, तिनसे लेहेरां लेवे आसमान।

कई रंग लेहेरें तिनकी, एक दूजी न सके भान॥२५॥

जब कठेड़े के नगों का प्रतिबिम्ब जल की लहरों के साथ हिलोरें लेता है, तो आकाश में भी उसकी तरंगें वैसे

ही हिलोरें लेने लगती हैं। इन लहरों से भी अनेक रंगों की लहरें निकलती हैं, किन्तु किसी का भी तेज या अस्तित्व अन्य किसी के तेज या अस्तित्व को समाप्त (नष्ट) नहीं कर पाता।

**जल में सिनगार सखियन के, लेहेरां लेवें संग छांहें।**

**होए ऊंचे नीचें आसमान लों, केहेनी अचरज न आवे जुबांए॥२६॥**

पाट घाट के ऊपर बैठी हुई सखियों के श्रृंगार के प्रतिबिम्ब जल में लहराते रहते हैं। यह शोभा जहाँ नीचे जल में दृष्टिगोचर होती है, वहीं आकाश में भी दिखायी पड़ती है। सबको आश्चर्य में डालने वाली इस शोभा का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

**भावार्थ—** पाट घाट के ऊपर जो सखियाँ बैठी होती हैं, उनका प्रतिबिम्ब जल में झलकता है। यमुनाजी का जल

लगातार प्रवाहित होता रहता है, इसलिये उस लहराते हुए जल में सखियों के नूरी प्रतिबिम्ब भी लहराते रहते हैं जिससे उनकी शोभा विलक्षण हो जाती है। यह लहराती हुई सम्पूर्ण शोभा (इन्द्रधनुष की तरह) आकाश में भी दिखायी पड़ती है।

**जेती जुगत पाट ऊपर, सब लेहेरां लेवें माहें जल।**

**जानों तले ब्रह्मांड दूजो भयो, भयो आसमान जोत सकल॥२७॥**

पाट घाट की सम्पूर्ण शोभा यमुना जी के जल में लहराती रहती है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे जल के अन्दर एक दूसरा ही नूरी ब्रह्माण्ड दिखायी पड़ रहा है, जिसकी ज्योति सम्पूर्ण आकाश में छायी हुई है।

बन पाट जोत आसमान लों, सब देखत जल माहें।

एक नयो अचंभोए बन्यो, केहेनी में आवत नाहें॥२८॥

पाट घाट तथा अन्य घाटों के वनों की ज्योति आकाश तक छायी हुई है और यह सम्पूर्ण शोभा जल के अन्दर दिखायी पड़ती है। इस प्रकार यहाँ सबको आश्चर्य में डालने वाला अनुपम शोभा से युक्त एक नये प्रकार का दृश्य दिखायी पड़ता है, जिसका यथार्थ वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

ज्यों ज्यों जल लेहेरां लेवहीं, त्यों त्यों तले ब्रह्मांड डोलत।

कई विध तेज किरनें उठें, नूर आसमान लेहेरां लेवत॥२९॥

यमुना जी का जल जैसे-जैसे लहराता है, वैसे-वैसे पाट घाट के प्रतिबिम्ब का ब्रह्माण्ड भी हिलता रहता है। इसकी अनेक प्रकार की तेजोमयी किरणें उठती हैं। इस

ब्रह्माण्ड का नूर आकाश में लहराता रहता है।

**भावार्थ-** जिस प्रकार पाट घाट की नूरी किरणें आकाश में क्रीड़ा करती हैं, उसी प्रकार उसके प्रतिबिम्ब की किरणें भी वैसी ही लीला करती हैं। परमधाम में प्रतिबिम्ब भी चेतन होता है। यह वैसे ही है, जैसे रंगमहल की दीवारों पर बने हुए चित्र गाते हैं, बोलते हैं, तथा चलते भी हैं।

ए ब्रह्मांड कहयो न जावहीं, पर समझाए न निमूने बिन।

सब्दातीत के पार की, बात केहेनी झूठी जिमी इन॥३०॥

यद्यपि जल में प्रतिबिम्बित इस ब्रह्माण्ड की शोभा का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता, फिर भी बिना दृष्टान्त (उपमा, नमूना) के इसे समझाया नहीं जा सकता। यह शोभा तो शब्दातीत बेहद मण्डल से भी परे की है, जिसे



इस झूठी दुनिया में कहना पड़ रहा है।

**हर घाटों सोभा कई विध, कई जुदे जुदे सुख सनंध।**

**बन नीके अपना देखिए, रस सीतल वाए सुगंध॥३१॥**

यमुना जी के प्रत्येक घाट की शोभा अनेक प्रकार की है। इसी प्रकार, इनके सुख भी अलग-अलग प्रकार के हैं। हे साथ जी! सातों घाटों के अपने इन वनों की अलौकिक शोभा को अच्छी प्रकार से देखिए। इन वनों में हमेशा ही प्रेम के रस से भरी हुई शीतल, मन्द, एवं सुगन्धित हवा बहती रहती है।

**भावार्थ—** जिस प्रकार परमधाम में अनन्त प्रकार के फल हैं और प्रत्येक फल में सभी (अनन्त) प्रकार के फलों का रस अवश्य विद्यमान है, भले ही उस फल का अपना कोई स्वतन्त्र रस क्यों न हो, ठीक इसी प्रकार

यमुना जी के सातों घाटों में विद्यमान अलग – अलग प्रकार की शोभा और सुख सम्पूर्ण परमधाम की झलक दर्शाते हैं।

केल वन अपने स्वरूप में कोमलता और स्निग्धता (चिकनाई) का सुख (रस) लिए हुए है। लिबोई वन नूरी प्रकाश की स्वर्णिम आभा को दर्शा रहा है, तो अनार वन सखियों के अनुपम सौन्दर्य एवं एकत्व (वहदत) को प्रकट कर रहा है। अमृत वन माधुर्यता का सागर उड़ेल रहा है, तो जाम्बू वन इल्म के सागर की किरणों को फैला रहा है और यह भी बता रहा है कि उसके अन्दर इश्क का मीठा रस भी छिपा हुआ है। नारंगी वन स्वयं में सम्पूर्ण परमधाम के सौन्दर्य को समेटने की भावना को उजागर कर रहा है। वट वन यह प्रकट कर रहा है कि जैसे एक छोटे से वट के बीज में इतना बड़ा वृक्ष समाया

हुआ है, उसी प्रकार अनन्त परमधाम श्री राज जी के परमसत्य (मारिफत) स्वरूप हृदय के अन्दर समाया हुआ है। संक्षिप्त रूप में, इन सातों घाटों में इस प्रकार के सुखों का अलग-अलग अनुभव होता है, किन्तु यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि प्रत्येक घाट में अन्य छः घाटों की विशेषता वैसे ही समायी हुई है, जैसे परमधाम के प्रत्येक सागर में अन्य सात सागरों की विशेषता छिपी हुई है।

क्यों कहूं सोभा बन की, और छाए रही फूल बेल।

तले खेलें सैयां सरूपसों, आवें एक दूजी कंठ मेल॥३२॥

इन वनों की अलौकिक शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। वनों में चारों ओर फूलों से भरी हुई लतायें छायी हुई हैं, जिनके नीचे सखियाँ एक-दूसरे के गले में बाहें डालकर

श्री राजश्यामा जी के साथ क्रीड़ा करती हैं।

जिमी बन जुबां न आवहीं, तो क्यों कहूं सिनगार जहूर।

सुन्दरता सरूपों की, कई रस सागर भर पूर॥३३॥

जब परमधाम की धरती और वनों की शोभा का ही वर्णन नहीं किया जा सकता, तो श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के श्रृंगार की शोभा कैसे कही जा सकती है। इनकी सुन्दरता के रस से तो सौन्दर्य के अनन्त (कई) सागर भर जायेंगे। दूसरे शब्दों में, इनके अन्दर सौन्दर्य के अनन्त सागर समाए हुए हैं।

अब क्यों कहूं जोत सरूपों की, और सुन्दरता सिनगार।

वस्तर भूखन इन जिमी के, हुआ आकास उद्धोतकार॥३४॥

अब मैं श्री राजश्यामा जी एवं सखियों की ज्योतिर्मयी

शोभा एवं श्रृंगार का वर्णन कैसे करूँ। परमधाम के इन वस्त्रों और आभूषणों के नूरी तेज से तो सारा आकाश ही जगमगा रहा है।

**कई रंग के नकस, कई भांत बेल फूल माहें।**

**कई रंग इनमें जवेर, इन जुबां में आवत नाहें॥३५॥**

यहाँ के नूरी वस्त्रों में अनेक प्रकार की चित्रकारी है , जिनमें अनेक प्रकार की लतायें एवं फूल दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इन वस्त्रों में कई प्रकार के जवाहरात जड़े हुए हैं , जिनकी सुन्दरता का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

**इन बेल फूल कई पांखड़ी, तिन हर पांखड़ी कई नंग।**

**तिन नंग नंग कई रंग उठें, तिन रंग रंग कई तरंग॥३६॥**

इन लताओं के फूलों की बहुत सी पँखुड़ियां हैं। प्रत्येक

पँखुड़ी में अनेक प्रकार के नग जड़े हुए हैं। प्रत्येक नग में अनेक प्रकार के रंग दिखायी देते हैं तथा प्रत्येक रंग से कई प्रकार (रंगों) की तरंगें निकलती हैं।

**ए स्वाद आतम तो आवहीं, जो पलक न दीजे भंग।**

**अरस-परस एक होवहीं, परआतम आतम संग॥३७॥**

आत्मा को इस शोभा का वास्तविक अनुभव तभी हो सकता है, जब वह चितवनि में एक पल के लिये भी अपनी दृष्टि को मूल मिलावा से न हटाये। इस अवस्था में ही आत्मा अपनी परात्म के भावों में डूबकर एकरस (ओत-प्रोत) हो पाती है और परमधाम की इस अनुपम शोभा का रसपान करती है।

**भावार्थ-** आत्मा के अन्तःकरण में जब युगल स्वरूप की छवि बस जाती है, तो वह स्वयं को परात्म से

अभिन्नता का अनुभव करती है। उसे अपने धाम हृदय में ही सम्पूर्ण परमधाम सहित युगल स्वरूप का अनुभव होने लगता है।

**अब भूखन की मैं क्यों कहूँ, जो इत हैं हेम मनी।**

**कई विध की इत धात है, नंग जात नहीं गिनी॥३८॥**

अब मैं परमधाम के आभूषणों की शोभा का वर्णन कैसे करूँ, जो सोने में जड़े हुए जवाहरातों से बने हैं। निजधाम में अनन्त प्रकार की नूरी धातुएँ हैं। नूरी नगों की गणना हो पाना तो सम्भव ही नहीं है।

**भावार्थ—** इस संसार में सोने में जवाहरातों को जड़ा जाता है, किन्तु परमधाम की प्रत्येक वस्तु अनादि है। वहाँ इच्छा मात्र से ही सब कुछ दिखता है। जोड़ने, बनाने, या पहनने-उतारने की लीला यहाँ के भावों के

अनुसार ही कही गयी है।

क्यों कहूं इन बानी की, मुख से उचरत जे।

मीठी मीठी मुसकनी, सब भीगे इस्क के॥३९॥

श्री राजश्यामा जी, सखियाँ, तथा खूब-खुशालियाँ आदि अपने मुख से जो वाणी बोलते हैं, उसकी मोहकता का मैं कैसे वर्णन करूँ? सभी मधुर-मधुर मुस्कान के साथ प्रेम के रस में भीगी हुई वाणी बोलते हैं।

**भावार्थ-** परमधाम माधुर्यता की पराकाष्ठा है। अतः वहाँ की बोली का सबसे अधिक मधुर होना स्वाभाविक है। इसी तथ्य को श्रृंगार १६/१ में इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

जाको नामै रसना, होसी कैसी मीठी हक।

जिनकी जैसी बुजरकी, जुबां होत है तिन माफक॥



हंसत नेत्र मुख नासिका, श्रवन हंसत चरन।

भों भृकुटी गाल अधुर, हंसत सिनगार भूखन॥४०॥

जब श्री राजश्यामा जी और सखियाँ आपस में बातें करते हैं, तो उनके नेत्र और मुख पर हमेशा हँसी तैरती हुई दिखायी देती है। उनकी नासिका, कानों, भौंहों, भृकुटी, गालों, तथा होठों पर केवल प्रेम रस से भरा हुआ हास्य ही क्रीड़ा करता रहता है। यहाँ तक कि उनके चरण-कमलों एवं श्रृंगार के आभूषणों में भी हँसी का रस समाया होता है।

चाल चातुरी कहा कहूँ, लटक चटक भरे पाए।

मटके अंग मरोरते, कछू ए गत कही न जाए॥४१॥

प्रेम की चतुराई से भरी उनकी मोहिनी चाल का मैं कैसे वर्णन करूँ? वे चपलता भरी मोहक चाल से चलते हैं।

जब वे प्रेम की मस्ती में अपने अंगों को घुमाते हुए लचकते हैं, तो इस मनोरम अवस्था का वर्णन कर पाना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं रह जाता।

**भावार्थ-** सुस्ती से रहित फुर्ती भरी (चपल) चाल को चटकना कहते हैं। कोमल भावों से युक्त मनोहर चाल को लटकना कहते हैं, तथा प्रेम के नशे में लचकते हुए चलना मटकना कहलाता है।

ए सुख सरूपों की मुसकनी, रंग रस गत मुख बान।

ए भोम बन धनी धाम को, रेहेस लीला नित्यान॥४२॥

श्री राजश्यामा जी तथा सखियों की प्रेम भरी मुस्कराहट अनुपम सुख देने वाली है। इनके मुख से निकली हुई वाणी प्रेम रस में सराबोर होती है, जो हृदय को प्रेम-भरे आनन्द की अवस्था में पहुँचाने वाली है। वनों की यह

भूमिका धाम धनी की प्रेममयी नित्य लीला को दर्शाया करती है।

अब क्यों कहूँ भूखन की, और क्यों कहूँ बानी मिठास।

क्यों कहूँ रहेस जो पिउ को, जो अंग अंग में उलास॥४३॥

अब मैं परमधाम के नूरी आभूषणों तथा माधुर्यता के चरम को छूने वाली बोली की मिठास का कथन कैसे करूँ। प्रियतम की उस अलौकिक प्रेममयी लीला का भी कैसे वर्णन करूँ, जो अँगनाओं के अंग-अंग में उल्लास देने वाली है।

इन जिमी इन बन में, करें खेल सरूप जो एह।

कहा कहूँ इन विलास की, जो करत प्रेम सनेह॥४४॥

परमधाम के इन वनों में युगल किशोर के साथ

सुन्दरसाथ तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करते हैं। ये आपस में जिस प्रकार की प्रेममयी लीलाएँ करते हैं, उनके शब्दातीत आनन्द को शब्दों की परिधि में कैसे बाँधू।

**कई रंग रहेस संग धनी के, केते कहूँ विलास।**

**प्रेम प्रीत सनेह कई रीत, मीठी मुसकनी कई हाँस॥४५॥**

निजधाम में अपनी अँगनाओं के साथ धनी के प्रेम और आनन्द की अनेक प्रकार की लीलाएँ होती हैं। प्रेम, प्रीति, और स्नेह की भी अनेक प्रकार की लीलाएँ हैं। इसी प्रकार मीठी मुस्कराहट के साथ हँसी की भी अनेक लीलाएँ हैं, जिनके आनन्द का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

**भावार्थ—** यद्यपि, परमधाम की लीला मन-वाणी से परे पूर्णतया शब्दातीत है, किन्तु यहाँ के भावों के अनुसार सांकेतिक रूप में बस इतना ही कहा जा सकता है कि

पाँचवी भूमिका की शयन-लीला "प्रेम" की है, चौथी भूमिका की नृत्य-लीला तथा यमुना जी में झीलने की लीला "प्रीति" की है, और वनों की सवारी एवं भोजन-लीला "स्नेह" की है।

**नैन सों नैन लेत रंग सैनें, अरस-परस उछरंग।**

**उर मुख नेत्र कर कंठ, यों सुख सब विध अंग॥४६॥**

जब श्री राज जी अपने प्रेम भरे नेत्रों से श्यामा जी एवं सखियों के नेत्रों की ओर देखकर प्रेम के संकेत करते हैं, तो सभी के अन्दर आनन्द सागर क्रीड़ा करने लगता है और आपस में सभी प्रेम की उमंग में डूब जाते हैं। इस प्रकार श्यामा जी एवं सखियों के हृदय, मुख, नेत्र, हाथ, कण्ठ आदि सभी अंगों में प्रत्येक प्रकार का आनन्द ही आनन्द दृष्टिगोचर होता है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में कथित सब प्रकार के आनन्द का तात्पर्य है— दर्शन, स्पर्श, मधुर वार्तालाप, मधुर श्रवण, एवं दिव्य सुगन्धि की अनुभूति।

**बंके नैन समारे सर बंके, बंकी सारस भों बंकी।**

**बंके बैन लगत बान बंके, बंकी चलत बंक लंकी॥४७॥**

श्री राज जी अपने तिरछे नेत्रों से प्रेम के तिरछे बाण चलाते हैं। उनकी तिरछी भौंहें कमल की तिरछी पँखुड़ियों या हँस की तिरछी गर्दन के समान कोमल व सुन्दर हैं। उनके मुख से निकले हुई अमृतमयी तिरछे वचन तिरछे बाणों की तरह हृदय में चुभ जाते हैं। तिरछे लचककर चलने वाली उनकी चाल भी तिरछी है।

**भावार्थ-** अक्षरातीत के मरिफत (परमसत्य) स्वरूप हृदय में उमड़ने वाला प्रेम का सागर नेत्रों के माध्यम से

लीला (हकीकत) में रूपान्तरित हो जाता है। इस चौपाई में धनी के नेत्रों की उपमा उस तिरछे धनुष से की गयी है, जिससे निकलने वाले प्रेम के बाणों से श्यामा जी सहित सभी सखियाँ बींधी रहती हैं। सीधे बाण तो चुभने के बाद वापस निकल जाते हैं, किन्तु तिरछे (तिकोने) बाण चुभने के पश्चात् वापस निकलते नहीं हैं। इसी प्रकार धाम धनी की अमृत से भी अनन्त गुनी मीठी बोली और मधुर चाल, सखियों के हृदय को इस प्रकार घायल कर देती है कि वे उनके प्रेम-बन्धन से कदापि अलग नहीं हो पातीं। यही कारण है कि इस चौपाई में धनी की वाणी और चाल को भी तिरछा कहकर वर्णित किया गया है।

रस लेत धाम के सरूप सों, एक दूजी को ठेल।

विविध विहार अलेखे अंगों, क्यों कहूं खुसाली खेल॥४८॥

परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप को रिझाती हुई सखियाँ अनन्त आनन्द का रसपान करती हैं और प्रेममयी क्रीड़ा में हँसते हुए एक-दूसरे को धकेलती हैं। इस प्रकार वे अपने अंगों से प्रियतम के साथ अनेक प्रकार का लीला-विहार करती हैं, जिसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। इन प्रेममयी क्रीड़ाओं के आनन्द को भला मैं कैसे बता सकती हूँ।

**अंग इस्क इन भोम के, अलेखे अंग असल।**

**कई रंग रस सरूपसों, जुदे जुदे या सामिल॥४९॥**

परमधाम में सखियों के अंग प्रेममयी हैं। ये अंग अनादि (सत्य) हैं और इनकी शोभा शब्दातीत है। युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के साथ ये सखियाँ व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप में प्रेम और आनन्द से भरी हुई अनेक



प्रकार की क्रीड़ायेँ करती हैं।

**भावार्थ—** पाँचवी भूमिका में श्री राज जी के साथ सखियों की लीला व्यक्तिगत होती है, जबकि स्नान (झीलना), वनों की यात्रा, हिण्डोलों पर झूलने, तथा लाल चबूतरे आदि की लीला सामूहिक होती है। यदि कोई अँगना धनी से किसी प्रकार की लीला का सुख प्राप्त करती है, तो वह सुख सभी को प्राप्त होता है, क्योंकि वहाँ वहदत (एकत्व) की लीला है। इसलिये इस संसार के भावों के अनुसार ही व्यक्तिगत या सामूहिक लीला का वर्णन किया गया है।

कहा कहूँ वस्तर भूखन की, नूर रोसन जोत उजास।

स्याम स्यामाजी साथ की, अंग अंग पूरत आस॥५०॥

निजधाम के वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा का मैं कैसे

वर्णन करूँ? ये नूरी प्रकाश, ज्योति, और उजाले से झलझलाते रहते हैं। युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी सब सुन्दरसाथ के प्रत्येक अंग की इच्छा (चाहना) को पूर्ण करते हैं।

**भावार्थ**— सखियों की आँखें युगल स्वरूप का दीदार चाहती हैं, कान उनकी मीठी वाणी को सुनना चाहते हैं, तो जिह्वा उनसे प्रेम भरी बातें करना चाहती है। इस चौपाई के चौथे चरण में कथित प्रत्येक अंग की इच्छा का यही भाव है।

ए जोत में सोभा सुन्दर, देखिए हिरदे में आन।

भर भर प्याले पीजिए, देख केहे सुन कान॥५१॥

हे साथ जी! नूरमयी ज्योति में विराजमान युगल स्वरूप की इस सुन्दर शोभा को अपने धाम-हृदय में लेकर

अपनी प्रेम भरी आत्मिक दृष्टि से उनका दर्शन कीजिए,  
आत्मिक रसना से प्रेम भरी बातें कीजिए, और अपने  
आत्मिक कानों से उनकी अमृत से भी मीठी बातों को  
सुन-सुनकर प्रेम के प्याले भर-भर कर पीजिए।

**भोम बन तलाब सोभित, कुन्ज-बन बीच मंदिर।**

**कहा कहूं गलियन की, छाया प्रेमल सुंदर॥५२॥**

यहाँ की धरती, वन, तथा हौज़-कौसर तालाब की  
शोभा अनुपम है। हौज़-कौसर ताल व वट-पीपल की  
चौकी (वन) के बीच में कुञ्ज-निकुञ्ज के फूलों के मन्दिर  
आये हैं। इन मन्दिरों के बीच में सुन्दर-सुन्दर फूलों की  
सुगन्धि से भरपूर छाया है, जिसकी शोभा का वर्णन कैसे  
किया जा सकता है।

**नरमाई इन रेत की, उज्जल जोत सुपेत।**

**खुसबोए कही न जावहीं, निकुन्ज-बन या रेत॥५३॥**

कुञ्ज-निकुञ्ज वनों की रेती अत्यन्त कोमल, उज्जवल, ज्योति से भरपूर, तथा श्वेत रंग की है। इस रेती तथा कुञ्ज-निकुञ्ज वनों में इतनी सुगन्धि भरी है कि उसको शब्दों में कहा ही नहीं जा सकता।

**सोभा पाल तलाव की, कही न जाए जुबां इन।**

**बन दयोहरी जल मोहोल की, रोसन रोसन में रोसन॥५४॥**

हौज़-कौसर ताल के पाल की शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता। यहाँ के वनों, देहुरियों, जल, तथा टापू महल की शोभा एक से बढ़कर एक है और ये सभी नूरी तेज से जगमगा रहे हैं।

**भावार्थ-** हौज़-कौसर ताल की दोनों पालों पर बड़े वन

के वृक्षों की पाँच हारें सुशोभित हो रही हैं, जिनमें से दो हारें ढलकती पाल पर हैं और तीन हारें चौरस पाल पर। चौरस पाल के प्रथम भाग में १२४ छोटी देहुरियाँ आयी हैं और द्वितीय भाग में १२८ बड़ी देहुरियाँ आयी हैं। चौथे भाग में घाटों की शोभा है, जिसमें पूर्व दिशा में सोलह देहुरी का घाट है तथा पश्चिम में झुण्ड का घाट है। उत्तर दिशा में नौ देहुरी का और दक्षिण दिशा में तेरह देहुरी का घाट आया है।

परमधाम की वहदत में सबकी शोभा समान होती है, किन्तु वर्णन शैली में एक-दूसरे को अन्य की अपेक्षा अधिक ज्योतिष्मान (शोभायमान) कहा जाता है। इस चौपाई के चौथे चरण "रोसन रोसन में रोसन" का यही भाव है।

दयोहरियां सोभित ताल की, पाल पांवड़ियां अन्दर।

सोभा कहा कहूं सब जड़ित की, बीच मोहोल जल ऊपर॥५५॥

हौज़-कौसर ताल की चौरस पाल के प्रथम भाग में चारों तरफ कटीपाल की सीढ़ियाँ और १२४ छोटी दयोहरियां हैं। ये सभी नगों से जड़ित हैं। इन सबकी शोभा का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। जल के मध्य में टापू महल की शोभा अद्वितीय है।

जुदी जुदी जुगतें सोभित, बन मोहोलों लिया घेर।

गिरद झरोखे नवों भोम के, बीच धाम बन चौफेर॥५६॥

परमधाम के महलों को वनों की अलग-अलग प्रकार की शोभा ने घेर रखा है। परमधाम के मध्य में रंगमहल है, जिसकी नवों भूमिकाओं में चारों ओर झरोखे आये हैं। रंगमहल को घेरकर चारों ओर वनों की सुन्दर शोभा है।

**भावार्थ-** रंगमहल की तरह ही हौज़-कौसर, माणिक पहाड़, एवं पुखराज पहाड़ में भी (अनन्त) महल आये हैं। यही स्थिति बड़ी राँग, छोटी राँग, तथा सागरों में भी है। चौबीस हाँस के महल तथा जवैरों के महल को भी इनसे अलग नहीं किया जा सकता। किन्तु ये सभी महल अलग-अलग रूपों में वनों की शोभा से सुशोभित हैं (घिरे हुए हैं)।

**याही भांत अछर की, बीच बन गलियां जानवर।**

**खेल खेलें अति सोहने, क्यों बरनों सोभा दोऊ घर॥५७॥**

इसी प्रकार अक्षरधाम की ओर भी वन, गलियों, तथा जानवरों की शोभा आयी है। ये पशु अति सुन्दर-सुन्दर खेल खेला करते हैं। अक्षरब्रह्म के रंगमहल तथा अक्षरातीत के रंगमहल की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

**भावार्थ-** श्री राजश्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, तथा महालक्ष्मी का एक ही अद्वैत स्वरूप है। लीला मात्र से ही अक्षर और अक्षरातीत दो प्रतीत होते हैं और दोनों के रंगमहल भी लीला रूप में अलग-अलग हैं। अक्षर ब्रह्म की लीला बेहद मण्डल में होती है, किन्तु उनका रंगमहल अक्षरधाम कहलाता है जो परमधाम के अन्तर्गत ही है।

**साम सामी दोऊ दरबार, उठत रोसनी नूर।**

**क्यों कहूं इन जुबान सों, करें जंग दोऊ जहूर॥५८॥**

अक्षर ब्रह्म तथा अक्षरातीत के रंगमहल आमने-सामने हैं। इन दोनों धामों से अनन्त नूरी प्रकाश उठता रहता है, जो आपस में टकराकर युद्ध सा करता हुआ प्रतीत होता है। इस अनुपम शोभा का वर्णन मैं इस जिह्वा से



कैसे करूँ।

**भावार्थ-** दोनों धामों के मध्य में यमुना जी बहती हैं। यमुना जी के पूर्व में अक्षर ब्रह्म का रंगमहल है, तो ठीक पश्चिम दिशा में अक्षरातीत का रंगमहल है। इसलिये, इस चौपाई में दोनों रंगमहलों को आमने – सामने कहकर वर्णित किया गया है।

आगूं बड़े द्वार के, बीस थंभ तरफ दोए।

रंग पांचों नूर जहूर के, ए सिफत किन मुख होए॥५९॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के दोनों ओर चबूतरे की बाहरी एवं भीतरी किनार पर बीस थम्भ (दस खुले तथा दस अक्शी) आये हैं। ये थम्भ पाँच रंग के जवाहरातों (हीरा, माणिक, पुखराज, पाच, नीलम) के हैं। इनकी नूरी शोभा झलकार कर रही है, जिसकी प्रशंसा मैं किस मुख से

करूँ।

**द्रष्टव्य—** अक्शी थम्भ वे हैं, जिनका आधा हिस्सा दीवार में मिला होता है और आधा उभरा होता है। ये दस अक्शी थम्भ रंगमहल की दीवार से लगते हुए आए हैं।

**द्वार आगूं दोए चबूतरे, दोए तले बीच चौक।**

**हरा लाल दोऊ पर दरखत, हक हादी रूहों ठौर सौक॥६०॥**

रंगमहल के मुख्य द्वार के आगे तथा २ मन्दिर के चौक के दायें-बायें रंगमहल के १ भूमिका चबूतरे से लगते हुए दो चबूतरे आये हैं। इसी प्रकार सीढ़ियों से नीचे चाँदनी चौक में भी दो चबूतरे हैं, जिनमें एक पर (उत्तर दिशा में) लाल रंग का आम का वृक्ष है तथा दूसरे पर (दक्षिण दिशा में) हरे रंग का अशोक का वृक्ष है। इन स्थानों पर

श्री राजश्यामा जी और सखियाँ बड़ी रुचि से बैठा करते हैं।

भोम बन आकास का, अवकास न माए उजास।

कछुक आतम जानहीं, सो कहयो न जाए प्रकास॥६१॥

परमधाम की नूरी धरती, वन, एवं आकाश में इतना अधिक (अनन्त) नूरी प्रकाश है कि वह आकाश में समाता नहीं है। आत्मा को उसके कुछ अंश-मात्र का अनुभव हो जाने पर भी यथार्थ रूप में वह शोभा व्यक्त नहीं हो पाती है।

महामत कहे बन धाम का, विध विध दिया बताए।

जो होसी ब्रह्मसृष्ट का, ए बान फूट निकसे अंग ताए॥६२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! मैंने परमधाम

के नूरी वनों की अलौकिक शोभा का अनेक प्रकार से वर्णन कर दिया है। आपमें जो भी ब्रह्मसृष्टि होगी, उसके हृदय में मेरे इन वचनों के बाण चुभकर निकल जायेंगे।

**भावार्थ-** हृदय में बाण चुभना या चुभकर निकल जाना एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है- आत्मसात् करना या पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लेना। न चुभने का तात्पर्य है- अस्वीकार कर देना (न मानना)। इस चौपाई में यही भाव प्रकट किया गया है कि परमधाम की आत्मा वनों की शोभा का वर्णन पढ़कर भाव-विह्वल (लोट-पोट) हो जायेंगी।

**प्रकरण ॥५॥ चौपाई ॥३६८॥**

## जमुना जोए किनारे सात घाट

हिन्दू धर्मग्रन्थों में जिसे "यमुना जी" कहते हैं, उसे ही कुरआन-हदीसों की भाषा में "जोए" कहा गया है। इसके किनारे जो सात घाट आये हैं, उनकी मनोरम शोभा का वर्णन इस प्रकरण में किया गया है।

## केल का घाट

केला सौन्दर्य, स्निग्धता, एवं कोमलता का प्रतीक है। केल घाट के रूप में परमधाम की मनोहारिता, कोमलता, एवं स्निग्धता को यहाँ दर्शाया जा रहा है।

कतरे कई केलन के, लटक रहे जल पर।

आगे पीछे कोई नहीं, सब सोभित बराबर॥१॥

केले के फलों के बहुत से गुच्छे यमुना जी के जल के

ऊपर लटक रहे हैं। सभी गुच्छे बराबर दूरी पर कतारबद्ध रूप से सुशोभित हो रहे हैं। उनके बीच की दूरी में कहीं भी कमी या अधिकता नहीं है, न ही वे आगे-पीछे हैं।

**दिवालां थंभन की, नरमाई अतंत।**

**छाया पात गली मन्दिरों, तले उज्जल रेत चिलकत॥२॥**

केले के वृक्षों के तनों (थम्भों) की ही दीवारें हैं, जिनमें अनन्त कोमलता विद्यमान है। गलियों में तथा मन्दिरों के ऊपर केले के पत्तों की छाया है। नीचे धरती पर अति उज्ज्वल रेती चमक रही है।

**भावार्थ—** केलों के तने थम्भों के रूप में हैं। उनकी डालियों की मेहराबें दीवारों के रूप में दिखायी दे रही हैं। चार वृक्षों और उनके ऊपर बनी हुई मेहराबों के बीच की जगह को चौक या मन्दिर कहा गया है।

कई चौक ठौर खेलन के, छाया पात सीतल।

खूबी जुबां ना केहे सके, रेत मोती निरमल॥३॥

इस केल घाट में खेलने के बहुत से चौक हैं, जिनमें केले के पत्तों की शीतल छाया दृष्टिगोचर हो रही है। जमीन पर मोती के समान अति स्वच्छ रेत बिछी हुई है, जिसकी रमणीयता का वर्णन यह जिह्वा नहीं कर सकती।

**भावार्थ—** ब्रह्मरूप परमधाम में शीत-उष्ण का विकार नहीं है। यहाँ पत्तों की शीतल छाया के अस्तित्व का तात्पर्य शोभा की दृष्टि से है, गर्मी के भय से नहीं।

कच्चे पक्के केलों कतरे, एक खूबी और खुसबोए।

जुदी जुदी जिनसों सोभित, सुन्दर चौक में सोए॥४॥

केलों के कुछ गुच्छे तो कच्चे हैं और कुछ पके हुए हैं। एक तो ये सुन्दर हैं, दूसरा इनमें सुगन्धि भी भरी हुई है।

चौकों में अलग-अलग जातियों के अति सुन्दर-सुन्दर केले सुशोभित हो रहे हैं।

**भावार्थ-** इस संसार में भी केलों की अलग-अलग जातियाँ होती हैं। असम, तमिलनाडू, महाराष्ट्र, और उत्तर प्रदेश के केलों में आकृति, गुण आदि के आधार पर अनेक प्रकार की भिन्नता दिखायी देती है। इस भाव के अनुसार केलों के अलग-अलग वर्गों को शोभा की दृष्टि से वर्णित किया गया है। यह वैसे ही है, जैसे पशु-पक्षियों को भी अनन्त (कई) प्रकार की जातियों (वर्गों) में कहा गया है।

सैयां आवत झीलन को, निकस मन्दिरों द्वार।

ए समया कहयो न जावहीं, सोभा सिफत अपार॥५॥

जब सखियाँ यमुना जी में स्नान करने के लिये, केलों



के बने हुए मन्दिरों के द्वारों (मेहराबी द्वारों) से होकर निकलती हैं, तो इस समय की शोभा अनन्त होती है। इसकी महिमा का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

ए घाट पोहोंच्या बड़े वन को, जित हिंडोलों हींचत।

उत चल्या किनारे जमुना, हद लिबोई से इत॥६॥

केलों के वृक्ष (घाट) पीछे पश्चिम दिशा में बड़े वन तक गये हैं, जहाँ पर सखियाँ हिण्डोलों में झूला झूलती हैं। यह घाट (वन) पूर्व की ओर यमुना जी तक फैला है। इसकी दायीं ओर नींबू का घाट शोभा देता है।

**भावार्थ—** केल घाट में बड़ोवन के ही वृक्ष हैं, जो केले के रूप में हैं। ये ५ भूमिका ऊँचे हैं तथा इनमें भी हिण्डोले हैं। किन्तु केल वन के वृक्ष दो भोम एवं तीसरी चाँदनी के हैं। केल घाट से बड़ोवन के वृक्षों की पाँच हारें

केल वन के मध्य से होते हुए पश्चिम में जाकर लाल चबूतरे के बड़ोवन से मिल गयी हैं, उनमें भी हिण्डोले हैं।

## घाट लिबोई का

### नींबू का घाट

छत्रियां लिबोइयन की, सुगंध सीतल अति छांहे।

पेड़ जुदे जुदे लम्बी डारियां, मिल गैयां माहों माहें॥७॥

इस घाट में नींबू के पेड़ नीचे से (तने) अलग-अलग (५०-५० मन्दिर की दूरी पर) आये हुए हैं, किन्तु इनकी लम्बी-लम्बी डालियाँ हैं जो ऊपर जाकर आपस में मिल गयी हैं और छत्रियों के समान सुशोभित हो रही हैं। इनकी छाया अत्यधिक शीतल है और सुगन्धि से भरपूर है।

कई विध के फल लटकत, जल पर बनी जो हार।

लटके जवेर जड़ाव ज्यों, ऐसी बन की रची किनार॥८॥

जल के किनारे नींबू के वृक्षों की जो हार आयी है, उसकी डालियों में अनेक प्रकार (छोटे, बड़े, कच्चे, पके आदि) के फल जल के ऊपर कतारबद्ध रूप से लटक रहे हैं। ये फल जड़े हुए जवाहरातों के समान दिखायी दे रहे हैं। यमुना जी के किनारे नींबू के वन की कुछ ऐसी ही अलौकिक शोभा आयी है।

**भावार्थ-** यद्यपि जवाहरातों के समान फल तो सभी वृक्षों में हैं, किन्तु इस चौपाई में यमुना जी के किनारे आये पहली हार के वृक्षों की जो डालियाँ यमुना जी के जल चबूतरे तक आयी हैं, केवल उनमें लटकने वाले फलों की शोभा का वर्णन किया गया है।

या विध फल छाया मिने, बनमें झूमत अन्दर।

कहूं हारे कहूं फिरते, कई रंग चन्द्रवा सुन्दर॥९॥

इस प्रकार इस वन में नींबू के फल छतरियों की छाया में लटक रहे हैं, जो हवा के झोंकों से झूमते रहते हैं। नींबू के फल कहीं पर सीधी पंक्तियों में आये हैं, तो कहीं गोलाई (वृत्ताकार) में। छतरियाँ अति सुन्दर चन्द्रवा के समान दिखायी दे रही हैं, जिसमें अनेक रंग शोभा दे रहे हैं।

सोभा तले रेतीय की, कहा कहूं छाया ऊपर।

कही न जाए लिबोई घाट की, सोभा अचरज तले भीतर॥१०॥

धरती पर बिछी हुई मनोरम रेत तथा छाया के ऊपर विद्यमान छतरियों की शोभा के विषय में मैं क्या कहूँ? वन के अन्दर रेती की शोभा आश्चर्य में डालने वाली है।

नींबू के घाट की शोभा को तो शब्दों में कहा ही नहीं जा सकता।

पेड़ जुदे जुदे गेहेरी छाया, सब पेड़ों छत्री एक।

देख देख के देखिए, जानों सबसे ए ठौर नेक॥११॥

यद्यपि नींबू के पेड़ (तने) अलग-अलग स्थित हैं, किन्तु सभी पेड़ों की डालियाँ और पत्तियों ने मिलकर एक छतरी का रूप धारण कर लिया है, जिससे वृक्षों की छाया भी बहुत घनी हो रही है। यहाँ की शोभा को बारम्बार देखने पर तो ऐसा लगता है कि जैसे यह स्थान सबसे अच्छा है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह संशय होता है कि यहाँ केवल एक ही छत्री का वर्णन है, जबकि सातवीं चौपाई में कई छत्रियों का वर्णन है। ऐसा क्यों?

वस्तुतः दोनों कथनों में विरोधाभास नहीं है। सातवीं चौपाई में कई छत्रियों के वर्णन होने का कारण यह है कि वहाँ व्यक्ति अकेले (व्यक्तिगत) रूप में केवल एक वृक्ष की छत्री को लक्षित किया गया है। प्रत्येक वृक्ष की डालियों और पत्तियों की छाया एक छोटी सी छत्री का रूप धारण कर लेती है। अलग-अलग वृक्षों की अलग-अलग छत्री होने से यहाँ अनेक छत्रियों का वर्णन किया गया है, जबकि ग्यारहवीं चौपाई में सभी वृक्षों की छत्रियों को मिलाकर समष्टि (सामूहिक) रूप में मात्र एक छत्री के रूप में वर्णित किया गया है, क्योंकि सभी वृक्षों की डालियाँ और पत्तियाँ मिलकर सामूहिक रूप से एक छत्री का निर्माण कर देती हैं।

धाम छोड़ आगे चल्या, तरफ चेहेबच्चे पास।

इन बन की सोभा क्यों कहूं, जित नित होत विलास॥१२॥

यह नीम्बू का वन रंगमहल के ईशान कोण में स्थित १६ हाँस के चहबच्चे (हौज़) से आगे केल वन की सीमा तक गया है। जिस नीम्बू वन में नित्य ही प्रेम के विलास की लीलायें होती हैं, उसकी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ?

**भावार्थ**— रंगमहल के सामने सात में से मात्र तीन वन हैं— अनार, अमृत, व जामुन। नीम्बू का वन रंगमहल की सीमा के आगे ताड़वन की सीमा (५०० मन्दिर की चौड़ाई) में आया है। इसके उत्तर में केलवन की शोभा है।

जब खेलें इत सखियां, स्याम स्यामाजी संग।

तब सोभा इन बन की, लेत अलेखे रंग॥१३॥

जब श्री राजश्यामा जी के साथ सखियाँ इस वन में प्रेममयी क्रीड़ा करती हैं, तब इस वन की शोभा इतनी आनन्दमयी होती है कि उसे शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

## घाट अनार का

ए बन खूबी देत हैं, चल्या दोरी बंध हार।

फल नकस की कांगरी, लटकत जल अनार॥१४॥

अनार के घाट की विशेषता यह है कि इसमें सभी वृक्ष पंक्तिबद्ध आये हैं। यमुना जी के जल के ऊपर लटकते हुए अनार के फल ऐसे प्रतीत होते हैं कि जैसे ये किसी काँगरी के मनोहर चित्र हों।

**द्रष्टव्य—** दोरी बंध और हार समानार्थक शब्द हैं।



केतिक छाया जल पर, केतिक छाया बार।

ए दोऊ बराबर चली, जमुना बांध किनार॥१५॥

यमुना जी के किनारे अनार के वृक्षों की जो पहली हार आयी है, उसमें प्रत्येक वृक्ष की कुछ छाया तो यमुना जी के जल पर (जल चबूतरे तक) पड़ती है और कुछ छाया बाहर अर्थात् स्थल भाग पर पड़ती है। ये दोनों छाया यमुना जी के किनारे-किनारे पंक्तिबद्ध होकर सीधी चली जाती हैं।

घाट अनार को अति भलो, एकल छत्री सब जान।

घट बढ़ काहूँ न देखिए, छाया गेहेरी सब समान॥१६॥

अनार का घाट अत्यन्त प्यारा है। इसकी डालियों एवं पत्तियों ने मिलकर एक छत्री (छतरी) का रूप धारण कर लिया है। यह छत्री न तो कहीं ज्यादा घनी दिखायी देती

है और न कहीं कम घनी दिखती है, अपितु हर जगह समान रूप से घनी छाया हो रही है।

जो जहां घाट बन देखिए, जानों एही बन विसेक।

एक से दूजा अधिक, सो कहां लो कहूं विवेक॥१७॥

हे साथ जी! यदि आप इन सात घाटों के वनों में से किसी भी घाट के वन को देखें, तो ऐसा लगता है कि यही वन सबसे अधिक (विशेष) सुन्दर है। प्रत्येक घाट का वन दूसरे से अधिक मनोहर लगता है। इस प्रकार इनकी शोभा का मैं कहाँ तक विवेचन (विश्लेषण) करूँ?

कहूं फूल कहूं फल बने, कहूं पात रहे अति बन।

जुदी जुदी जुगतें मंडप, जानों बहु रंग मनी कंचन॥१८॥

इस अनार वन में कहीं पर अति सुन्दर फूल दिखायी दे

रहे हैं, तो कहीं पर फल दिख रहे हैं। कहीं पर पत्तियों की अधिकता है। इस प्रकार पत्तियों, फूलों, और फलों ने अलग-अलग प्रकार से आपस में मिलकर ऐसा मण्डप तैयार कर लिया है, जिसे देखने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे सोने में अनेक रंगों के नग जड़े हुए हैं।

**इन पेड़ों खूबी क्यों कहूं, देख बन होइए खुसाल।**

**रोसन रेत खुसबोए बन, आए लग्या दीवार॥१९॥**

हे साथ जी! अनार के इन वृक्षों की विशेषताओं का मैं कैसे वर्णन करूँ? इसकी शोभा को देख-देखकर आप आनन्द में मग्न हो जाइए। यहाँ की धरती की रेत जहाँ जगमगा रही है, वहाँ सम्पूर्ण वन सुगन्धि से ओत-प्रोत हो रहा है। अति रमणीय यह वन रंगमहल की दीवार तक आया हुआ है।

## अमृत बन-घाट पाट का

अब पाट घाट के सामने आये हुए आम के अति सुन्दर वनों का वर्णन हो रहा है।

दोऊ पुलों के बीच में, सोभित सातों घाट।

तीन बाएं तीन दाहिने, बीच थंभ चांदनी पाट॥२०॥

दोनों पुलों के बीच में यमुना जी के दोनों ओर सात – सात घाट आये हैं, जिनमें मध्य में अमृत वन के सामने पाट घाट की शोभा है। पाट घाट की बायीं ओर केल, लिबोई, और अनार के घाट हैं, तो दायीं ओर जाम्बू, नारंगी, और वट के घाट हैं। पाट घाट में १२ थम्भों के ऊपर सुन्दर चाँदनी (छत) की शोभा है।

**भावार्थ-** जमीन की सतह से जल की सतह तक १६ थम्भ (चार थम्भों की चार हारें) आये हैं। जल की सतह

पाट की शोभा है। इसके ऊपर १२ थम्भ हैं, जिनके ऊपर चाँदनी बनी है।

**अमृत बन अति सोभित, घाट पाट का जे।**

**आगूं दरवाजे निकट, बन बन्या जो सुन्दर ए॥२१॥**

पाट घाट के सामने आया हुआ आम का यह वन अनुपम शोभा से युक्त है। रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने अति निकट स्थित वन बहुत ही सुन्दर दिखायी दे रहा है।

**भावार्थ—** रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने २००० मन्दिर लम्बा व ५०० मन्दिर चौड़ा अमृत वन आया है। चाँदनी चौक इसी अमृत वन की जगह (१६६ लम्बाई—चौड़ाई) में आया है।

कई रंग के इत बिरिख हैं, नीले पीले सेत लाल।

क्यों कहूं सोभा इन मुख, जाकी पूरन सिफत कमाल॥२२॥

यहाँ नीले, पीले, श्वेत, और लाल आदि कई रंगों के अति सुन्दर वृक्ष हैं। जिस अमृत वन की महिमा पूर्ण रूप से आश्चर्य में डालने वाली है, उसकी शोभा को मैं इस मुख से कैसे कह सकती हूँ।

**भावार्थ—** ये वही अमृत वन और पाट घाट हैं जहाँ हमें क्रीड़ा के लिये जाना था, किन्तु अब इस माया के खेल में आ गये हैं। खेल समाप्त होने के पश्चात् पुनः पाट घाट ही आना होगा।

अखोड़ अंजीर बन अमृत, ऊपर छाया अंगूर।

एक छाया पात दीवार लो, क्यों कर बरनों ए नूर॥२३॥

अमृत वन में अखरोट और अंजीर आदि के वृक्ष आये

हैं, जिनके ऊपर अँगूर की बेलों की सुखद छाया शोभायमान है। आम के वृक्षों की छाया सर्वत्र ही एक समान है और रंगमहल की दीवार तक चली गयी है। इस अलौकिक शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**कई रंग हैं एक पात में, कई रंग हैं फूल फल।**

**अब क्यों बरनों में इन जुबां, कई बन हैं सामिल॥२४॥**

इस वन के एक-एक पत्ते में अनेक प्रकार के रंग हैं। यही स्थिति फलों और फूलों के सन्दर्भ में भी है। ऐसा लगता है कि इस अमृत वन में अनेक वन सम्मिलित हैं। अब इस अवस्था में अमृत वन की शोभा का मैं कैसे वर्णन कर सकती हूँ।

केते रंग एक पात में, केते रंग एक फूल।

केते रंग एक फल में, केते रंग डाल मूल॥२५॥

अमृत वन के सभी वृक्षों के प्रत्येक पत्ते और प्रत्येक फूल में कई प्रकार के रंग सुशोभित हो रहे हैं। हर फल अपने में अनेक प्रकार के रंगों को समेटे हुए है। वृक्षों की प्रत्येक डालियों एवं प्रत्येक जड़ों में भी बहुत से रंग विद्यमान हैं।

ए बन जोत इन भांत की, रोसन करत आसमान।

आप अपना रंग ले उठत, कोई सके न काहूं भान॥२६॥

इस वन की ज्योति इस प्रकार की अलौकिक है कि इससे सम्पूर्ण आकाश प्रकाशित हो रहा है। इस नूरी ज्योति से अनेक रंगों की किरणें निकल रही हैं। ये किरणें अपने-अपने रंग के साथ आकाश में टकराती हैं, किन्तु



कोई भी किसी को नष्ट नहीं कर पाती।

कई मेवे इन बन में, केती कहूं जिनस।

जुदे जुदे स्वाद कई विध के, जानो एक से और सरस॥२७॥

अमृत वन में अनन्त प्रकार के मेवे हैं, जिनका मैं कितना वर्णन करूँ? सभी मेवों के स्वाद अलग-अलग और अनेक प्रकार के हैं, किन्तु सभी एक से बढ़कर एक स्वादिष्ट हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण का भाव यह है कि प्रत्येक मेवे का अपना अलग स्वाद अवश्य है, किन्तु उसमें भी अन्य मेवों का स्वाद मिला हुआ है।

**उदाहरणार्थ-** अँगूर में अँगूर की सभी जातियों का स्वाद है और इच्छा मात्र से अन्य मेवों का भी स्वाद अँगूर में मिल सकता है।

इन पेड़ों खूबी क्यों कहूं, देख बन होइए खुसाल।

ए रेत रोसन खुसबोए बन, ए निरखत बदले हाल॥२८॥

हे साथ जी! अमृत वन के वृक्षों की विशिष्टताओं (विशेषताओं) को मैं कैसे व्यक्त करूँ? आप इस वन की शोभा को देखकर आनन्दित होइए। यह वन दिव्य सुगन्धि से भरपूर है और यहाँ की रेत नूरी ज्योति से जगमगा रही है। इस वन की शोभा का अनुभव (दर्शन) हो जाने पर हमारी रहनी बदल जायेगी, अर्थात् हमारी सुरता माया (संसार) से अलग होकर धनी के प्रेम में डूबी रहने लगेगी।

घाट जांबू का

निकट घाट पाट के, सोभित है अति बन।

इन मुख खूबी क्यों कहूं, छत्रियां जांबूअन॥२९॥

पाट घाट के निकट (दक्षिण में) जामुन का घाट है, जिसमें जामुन के वृक्ष अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं। जामुन के वृक्षों की डालियों और पत्तियों से बनी हुई छतरियाँ अति सुन्दर हैं। मैं इस मुख से उनकी विशेषताओं का कैसे वर्णन करूँ।

**गेहेरी छाया अति निपट, देखत नहीं आसमान।**

**जमुना धाम के बीच में, ए बन सोभा अमान॥३०॥**

जामुन के वृक्षों की छाया इतनी अधिक घनी है कि उसके नीचे से आकाश बिल्कुल भी नहीं दिखायी देता। यमुना जी और रंगमहल के बीच में आये हुए इस वन की अनन्त शोभा हो रही है।

ए मंडप जानों चंद्रवा, कहूं ऊँचा नीचा नाहें।

ए सोभा जुबां ना केहे सके, होंस रहेत दिल माहें॥३१॥

जामुन के पेड़ों की डालियों एवं पत्तियों से बना हुआ मण्डप अति सुन्दर चन्द्रवा की तरह दिख रहा है। यह कहीं भी ऊँचा-नीचा (कम-ज्यादा घना) नहीं है, बल्कि पूर्णतया समतल है। यह इतना रमणीक है कि मेरी जिह्वा इसकी शोभा का वर्णन नहीं कर सकती। हृदय में हमेशा इसे देखते रहने की इच्छा होती है।

अनेक रंग इन ठौर के, क्यों कहूं इतका नूर।

रोसन जिमी प्रफुलित, क्यों कहूं जुबां जहूर॥३२॥

इस वन में जामुन के फलों, फूलों, तथा पत्तियों आदि में अनेक रंग (कत्थई, सफेद, हरा इत्यादि) दिखाई दे रहे हैं। यहाँ की मनोहारिता का मैं कैसे वर्णन करूँ? नूरी

ज्योति से जगमगाने वाली यहाँ की धरती हँसती हुई सी दृष्टिगोचर हो रही है। इस जिह्वा से यहाँ की शोभा को मैं कैसे बताऊँ।

एह सिफत न जाए कही, जिन बन कबूँ न जवाल।

ए जुबां खूबी तो कहे, जो कोई होवे इन मिसाल॥३३॥

जिस जामुन के वन में कभी भी किसी प्रकार की कमी नहीं हो सकती, उसकी महिमा शब्दों में नहीं कही जा सकती। यदि इस वन की तुलना में कोई और भी वन (परमधाम के अतिरिक्त) होता, तो इस रसना से इसकी कुछ विशेषता कही भी जाती।

**भावार्थ—** इस वन में जामुन के फल, फूल, और शोभा सभी कुछ अनन्त हैं। इसमें रंच मात्र भी हास नहीं होता। इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "कमी न होने" का

यही भाव है।

सिफत न होवे रेत की, ना होवे बन सिफत।

जो कछू कहूं सो उरे रहे, मेरी जुबां ना पोहोंचत॥३४॥

न तो जामुन के वृक्षों की विशेषताओं (शोभा, तेज, ज्योति) का वर्णन हो पाना सम्भव है और न ही यहाँ की नूरी रेत का वर्णन सम्भव है। मेरी जिह्वा वहाँ की शोभा का वर्णन करने में स्वयं को असमर्थ पा रही है। मैं जो कुछ भी कहती हूँ, वह इसी ब्रह्माण्ड (निराकार) तक रह जाता है।

**भावार्थ—** नश्वर शून्य से उत्पन्न होने के कारण, यहाँ के शब्दों से परमधाम का यथार्थ वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। इस चौपाई में यही भाव प्रकट किया गया है।

## घाट नारंगी का

चार हार फल की बनी, जल पर दोरी बंध।

तलें सात सात की कांगरी, माहें नकस कई सनंध॥३५॥

जल के किनारे की पंक्ति के वृक्षों की डालियाँ जल के ऊपर (जल चबूतरे तक) आयी हुई हैं, जिन पर नारंगी के फल की चार हारें कतारबद्ध रूप से लटक रही हैं। इन प्रत्येक हार में फलों की सात-सात काँगरी जैसी शोभा है। इन फलों में अनेक प्रकार की चित्रकारी की शोभा है।

**भावार्थ-** फलों की चार हारें इस प्रकार हैं - ऊपर से नीचे की ओर प्रथम हार में चार फल हैं, इसके नीचे दूसरी हार में तीन फल हैं, इसके नीचे तीसरी हार में दो फल हैं, एवं इसके नीचे चौथी हार में एक फल है। किनारे का प्रत्येक फल एक काँगरी के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। इस प्रकार इन १० फलों में से किनार के ७ फल

सात काँगरी के रूप में शोभायमान हो रहे हैं। इस प्रकार के कई समूह जल चबूतरे पर लटक रहे हैं।

खुसरंग फल नारंग के, पीलक लिए रंग लाल।

झाँई उठे माहें जल, ए सोभित इन मिसाल॥३६॥

नारंगी के फल गहरी लालिमा और पीलापन लिये हुए हैं। जल में इन फलों का प्रतिबिम्ब झलकता रहता है। इस प्रकार की इनकी अलौकिक शोभा है।

नारंग बन की छत्रियां, जाए लगी बट घाट।

फल फूल पात जड़ित ज्यों, जानों रच्यो अचंभो ठाट॥३७॥

नारंगी वन की छत्रियाँ वट के घाट की छत्रियों से मिली हुई हैं। नारंगी के छत्रियों के फल, फूल, और पत्तों की शोभा इस प्रकार है, जैसे उनमें अनेक जवाहरात जड़े



हों, जो इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, जैसे इन्हें आश्चर्य में डालने वाली सजावट के रूप में बनाया गया है।

एकल छाया रेती रोसन, पूरन सिफत कमाल।

और अनेक बन आगूं भला, ए हृद छोड़ चल्या दीवार॥३८॥

सम्पूर्ण वन में अंतराल रहित एक समान छाया आयी है। नीचे धरती पर नूरी प्रकाश से युक्त रेती जगमगा रही है। यह शोभा तो पूर्ण रूप से आश्चर्य में डालने वाली है। नारंगी वन से आगे (दक्षिण में) अति सुन्दर कुञ्ज-निकुञ्ज तथा बड़े वन, एवं पश्चिम में वट-पीपल की चौकी की शोभा आयी है। यह नारंगी वन रंगमहल की दीवार से आगे दाहिनी ओर (जामुन वन की दक्षिण दिशा में) है और वट-पीपल की चौकी की सीमा में है।

इन बन की सोभा अति बड़ी, आवत आतम में जोए।

इन नैन श्रवन के बल थें, मुखसे न निकसे सोए॥३९॥

इस नारंगी वन की शोभा अनन्त है। मेरी आत्मा अपने आत्मिक नेत्रों से जो देख रही है या अपने (आत्मिक) कानों से जो प्रियतम की आवाज सुन रही है, उसे इस नश्वर शरीर के मुख से यथार्थ रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता। पञ्चभौतिक तन के नेत्रों और कानों से वहाँ का कोई भी अनुभव नहीं हो सकता।

इन बन सोभा अपार है, कछु आतम उपजत सुख।

तिनको हिस्सा लाखमों, कहयो न जाए या मुख॥४०॥

इस वन की अपार शोभा का दर्शन करके मेरी आत्मा में जो कुछ भी सुख उत्पन्न होता है, उसका एक लाखवाँ भाग भी इस मुख से नहीं कहा जा सकता।

## घाट बट का

जो बट बन्यो जमुना पर, अनेक तिनकी डार।

निपट पसारा इनका, जित बैठ करत सिनगार॥४१॥

यमुना जी के किनारे जो वट का वृक्ष आया है, उसकी अनेक डालियाँ चारों ओर फैली हुई हैं। इनका फैलाव बहुत अधिक है, जिसके नीचे बैठकर श्री राजश्यामा जी और सखियाँ श्रृंगार करते हैं।

ऊँचा निपट दयोहर ज्यों, तले हाथों डारी लगत।

डारों डारी अति विस्तरी, सुमार न इन सिफत॥४२॥

यह वृक्ष मन्दिर (दयोहरी) की तरह बहुत ही ऊँचा है। नीचे की ओर डालियाँ इस प्रकार फैली हुई हैं कि खड़े होने पर हाथों से छुआ (पकड़ा) जा सकता है। इसके डालों से भी अनेक डालियाँ निकली हुई हैं, जिनका

बहुत अधिक फैलाव है। इसकी शोभा की कोई सीमा नहीं है।

जानों थंभ दिए बड़वाई के, फिरते फिरते हार चार।

सोभा लेत पात फूल, ए बट बड़ो विस्तार॥४३॥

बड़वाईयों की चार हारें चारों ओर घेरकर आयी हैं, जो थम्भों के समान शोभा देती हैं। इस वृक्ष के पत्तों और फूलों की अलौकिक शोभा हो रही है। इस वट के वृक्ष का बहुत अधिक विस्तार है।

**द्रष्टव्य—** वट के वृक्षों की डालियों से जड़ के समान पतली शाखायें निकलती हैं, जो नीचे की ओर आती हैं, इन्हें बड़वाई कहते हैं।

छत्री पांच ऊपरा ऊपर, जानों रचिया भोम समार।

एक भोम रेती तले, ऊपर भोम बट चार॥४४॥

डालियों की एक-दूसरे के ऊपर पाँच छत्रियाँ आयी हैं। इन्हें देखने पर ऐसा लगता है कि डालियों और पत्तियों को व्यवस्थित रूप से सँवारकर पाँच भूमिकायें बनायी गयी हैं। पहली भूमिका में नीचे रेती है और शेष चार भूमिकायें वट का डालियों के ऊपर हैं।

एक पड़त झरोखे जल पर, और तरफ सब बन।

ऊपर भोम धाम देखिए, दसों दिसा नूर रोसन॥४५॥

इन पाँच भूमिकाओं की छत्रियाँ (डालियाँ) चारों दिशाओं में बढ़ी हैं। एक तरफ (पूर्व में) यमुना जी के जल चबूतरे तक ये छत्रियाँ बढ़ी हैं, जिनकी किनार पर कठेड़े की शोभा होने से ये झरोखे के समान दिख रही हैं।

बाकी दिशाओं में ये छत्रियाँ कई प्रकार के वनों से मिली हैं। ऊपर की पाँचवी भूमिका (चाँदनी) से रंगमहल दिखायी देता है, जिसका दसों दिशाओं में प्रकाश फैल रहा है।

**भावार्थ—** वट घाट के पश्चिम में कुञ्ज-निकुञ्ज वन है, जिनके मध्य में से होकर बड़ोवन के वृक्षों की पाँच हारें पश्चिम की तरफ गयी हैं। वट घाट के उत्तर में नारंगी घाट के वृक्ष हैं।

इत बोहोत ठौर खेलन के, कई जिनसैं तले ऊपर।

बैठत दौड़त कूदत, खेलत कई हुनर॥४६॥

यहाँ वट के वृक्ष में ऊपर-नीचे कई प्रकार के खेलने के बहुत से स्थान हैं। सखियाँ यहाँ पर कभी बैठती हैं, तो कभी दौड़ती हैं, और कभी उछल-कूदकर अनेक प्रकार

के खेल खेलती हैं।

ठेकत हैं कई जल में, और कूद चढ़े कई डार।

खेल करें कई भांत सों, सब अंगों चंचल हुसियार॥४७॥

कई सखियाँ वट वृक्ष की ऊपर की भूमिकाओं से यमुना जी के जल में कूद जाती हैं और कई उछलकर वट की डालें पकड़कर वृक्ष पर चढ़ जाती हैं। इस प्रकार वे अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करती हैं। उनके सभी अंग क्रीड़ा करने में स्फूर्त (चञ्चल) और चतुर हैं।

तरफ चारों फिरते हिंडोले, उपली लग भोम जोए।

धाम तलाब जमुना नारंगी, सखियां हींचत बट पर सोए॥४८॥

इस वट वृक्ष के चारों ओर पाँचवीं भूमिका तक हिण्डोले आये हैं। रंगमहल, हौज़ कौसर तालाब, यमुना जी, तथा

नारंगी घाट से आकर सखियाँ इस वट वृक्ष पर झूला झूलती हैं।

**भावार्थ-** इस वट वृक्ष में बड़वाई के थम्भों की जो ४ हारें चारों तरफ घेरकर आयी हैं , उनकी मेहराबों में प्रत्येक भूमिकाओं में हिण्डोले आये हैं। एक भूमिका में १४४ हिण्डोले हैं।

**अतंत सोभा इन घाट की, छाया चली जल पर।**

**ए बट या और बिरिख, जल छाए लिया बराबर॥४९॥**

इस वट घाट की शोभा अनन्त है। यमुना जी के जल चबूतरे के ऊपर तक इसकी डालियाँ छाया प्रदान करती हैं। इस वट वृक्ष के अतिरिक्त और भी घाटों के वृक्षों ने जल चबूतरे तक बराबर (समान रूप से) छाया प्रदान की है।



**भावार्थ-** इस संसार में, प्रतिबिम्ब और छाया में सूक्ष्म अन्तर होता है। प्रतिबिम्ब मात्र दर्पण, जल, या किसी विशिष्ट चिकनी धातु आदि में ही पड़ता है, जबकि छाया धरती आदि किसी भी पदार्थ के ऊपर पड़ सकती है। प्रतिबिम्ब का रूप-रंग वास्तविक जैसा दिखता है, किन्तु छाया का रंग काला होता है। परमधाम में प्रत्येक वस्तु नूरमयी है, वहाँ किसी काली छाया की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस प्रकार इस चौपाई में छाया का तात्पर्य बिम्ब (मूल) तरह दिखने वाले प्रतिबिम्ब से ही होगा।

घाट बट को अति बड़ो, जल लिए चल्या किनार।

कई बन इत बहु विध के, जानों बने दोरी बंध हार॥५०॥

वट का घाट बहुत बड़ा है। यह यमुना जी के किनारे

पाल पर ५०० मन्दिर की चौड़ाई में फैला हुआ है। इस घाट के पश्चिम में अनेक प्रकार के वन आये हैं, जिनके वृक्ष पंक्तिबद्ध रूप में शोभा दे रहे हैं।

**भावार्थ-** पुखराजी रौंस पर दो हारें बड़े वन की आयी हैं। इस वट घाट के सामने पश्चिम दिशा में ५०० मन्दिर की दूरी पर (पुखराजी रौंस के आगे) कुञ्ज-निकुञ्ज बन आया है, जिनके मध्य से होकर दक्षिण की तरफ बड़े वन के वृक्षों की पाँच हारें आयी हैं। इस चौपाई में कथित "अनेक वन" का यही भाव है।

**सातों घाट ए कहे, आगे पुल कुंज बन।**

**अपना खजाना एह है, महामत कहे मोमिन॥५१॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! इस प्रकार, सातों घाटों का यह संक्षिप्त वर्णन है। इसके आगे वट का

पुल तथा कुञ्ज वन की शोभा है। इसे अपने धाम हृदय में बसाइये, क्योंकि यह अपने अनमोल धन का भण्डार (खजाना) है।

प्रकरण ॥६॥ चौपाई ॥४१९॥

## कुंज बन मंदिर

परमधाम के नूरी वृक्षों, फूलों, तथा पत्तियों ने अति मनोहर आकृति के मन्दिरों का रूप धारण कर लिया है, जिन्हें कुञ्ज-निकुञ्ज वन मन्दिर कहते हैं। कुञ्ज चौकोर आकृति में होता है तथा निकुञ्ज गोल आकार में होता है। इस प्रकरण में इन्हीं की शोभा का मनोरम चित्रण किया गया है।

सातों घाट बीच में, पुल मोहोल तरफ दोए।

दोऊ पांच भोम छठी चांदनी, क्यों कहुँ सोभा सोए॥१॥

यमुना जी पर सातों घाटों के दोनों ओर महल की आकृति में केल पुल तथा वट पुल की शोभा आयी है। इन दोनों के मध्य में यमुना जी के दोनों ओर सातों घाट (केल, लिबोई, अनार, अमृत, जम्बू, नारंगी, वट)

सुशोभित हो रहे हैं। दोनों पुलों में पाँच भूमिका (मन्जिल) और छठी चाँदनी (आकाशी, छत) आयी है। मैं इनकी अलौकिक शोभा का वर्णन कैसे करूँ।

**भावार्थ-** केल घाट के सामने आये हुए पुल को केल पुल तथा वट घाट के सामने आए हुए पुल को वट पुल कहते हैं। इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "तरफ दोए" का यही भाव है।

**साम सामी झरोखे, झलकत अति मोहोलात।**

**पुल दोऊ दूजी किनार लग, बीच जल ताल ज्यों सोभात॥२॥**

दोनों पुल महल के समान शोभायमान हो रहे हैं। दोनों पुलों के झरोखें आमने-सामने हैं, तथा यमुना जी के जल में अत्यधिक झलकार कर रहे हैं। दोनों पुल यमुना जी के दोनों किनारों तक आये हुए हैं। दोनों पुलों तथा

सातों घाटों (दोनों तरफ) के बीच में यमुना जी का जल एक मनोहर ताल के समान दिखायी पड़ रहा है।

**भावार्थ-** प्रत्येक पुल की दूसरी भूमिका से पाँचवी भूमिका तक चारों दिशाओं में ५० मन्दिर का एक चौड़ा छज्जा निकला है, जिसकी किनार पर चारों तरफ थम्भों की एक हार और आयी है। इन थम्भों के मध्य में चारों ओर कठेड़ा शोभायमान हो रहा है। इस प्रकार ये झरोखे के रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। केल पुल की दक्षिण दिशा के झरोखे व वट पुल की उत्तर दिशा के झरोखे आमने सामने हैं। यमुना जी के दोनों किनारों पर जल रौंस के आगे २५० मन्दिर की चौड़ी पाल आयी है। उस पर सात घाट हैं, जिनमें बड़े वन के वृक्षों की पाँच हारें हैं, जो सात वनों के रूप में हैं। इनकी भी पाँच भूमिका एवं छठी चाँदनी है। यह ऊँचाई यमुना जी के दोनों पुलों की

ऊँचाई के बराबर है। इस प्रकार चारों तरफ दो पुल तथा सातों घाटों के वृक्षों से घिरा हुआ यमुना जी का जल एक सुन्दर ताल के समान प्रतीत हो रहा है, जो ३५०० मन्दिर लम्बा तथा ५०० मन्दिर चौड़ा है।

**तले दस घड़नाले पोरियां, बीच नेहेरें ज्यों चलत।**

**स्याम स्यामाजी सखियां, इन मोहोलों आए खेलत॥३॥**

पुल के नीचे जमीन से जल की सतह तक ११ थम्भों की ११ हारें आयी हैं, जिनमें १० मेहराबों की ११ हारें १० घड़नालों के रूप में दिखायी दे रही हैं। इन घड़नालों में बहता हुआ जल नहरों के रूप में शोभा दे रहा है। दोनों पुलों के महलों में आकर सखियाँ युगल स्वरूप के साथ तरह-तरह की क्रीड़ायेँ करती हैं।

**भावार्थ—** थम्भों के ऊपर मेहराबें बनी हैं तथा उनके

बीच की जगह घड़नालों का कार्य करती है। इस प्रकार ये घड़नाले उन दरवाजों के समान हैं, जिनके ऊपर मेहराबें बनी होती हैं। इन्हें ही पौरी (पौरी) कहा गया है।

खेल करें जब इन मोहोलों, धनी सुख देत सैन्य को।  
कई विध खेल कहूँ केते, आवें ना जुबां मौं॥४॥

जब धाम धनी इन पुल रूपी महलों में क्रीड़ा करते हैं, तो अपनी अँगनाओं को अपार आनन्द देते हैं। वे अनेक प्रकार के ऐसे-ऐसे मनमोहक खेल खेलते हैं, जिनका वर्णन मैं कहाँ तक करूँ।

इन मोहोल आगूँ घाट केल का, इस तरफ आगूँ बट घाट।  
तीन बाएं तीन दाहिने, बीच घाट चांदनी पाट॥५॥

उत्तर की दिशा के पुल रूप महल के सामने केल का



घाट है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा के पुल (महल) के सामने बट का घाट आया हुआ है। दोनों पुलों के मध्य में थम्भों की चाँदनी से युक्त पाट घाट की शोभा है, जिसकी दायीं ओर तीन घाट तथा बायीं ओर तीन घाट आये हैं।

**सात घाट को लेयके, आगूं आए अर्स द्वार।**

**इत पसु पंखी कई खेलत, ए सिफत न आवे सुमार॥६॥**

सातों घाटों की शोभा को देखते हुए रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने चाँदनी चौक में आते हैं, अर्थात् वहाँ की शोभा देखते हैं। यहाँ अनन्त प्रकार के पशु-पक्षी तरह-तरह की क्रीड़ायेँ करते हैं, जिसकी प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती।

**आगूं इन चबूतरों, खेलावत जानवर।**

**नए नए रूप रंग ल्यावही, अनेक विध हुनर॥**

परिकरमा ३०/२१

आगूं अर्स चबूतरे, हम सखियां बैठत मिलकर।

ए सुख हमारे कहां गए, खेलत नाचत बंदर॥

परिकरमा २०/१५

कई मिलावे सोहने, धनी सैयों के खेलौने।

पसु पंखी जुत्थ मिलत, आगूं बड़े दरवाजे खेलत॥

परिकरमा ३/५९

चल्या गया बन ताल लों, एकल छत्री अति भिल।

तलाव धाम के बीच में, आगूं निकस्या चल॥७॥

इस नारंगी घाट की दक्षिण दिशा में कुञ्ज-निकुञ्ज वन की शोभा है, जो हौज़ कौसर ताल तक चली गयी है। कुञ्ज-निकुञ्ज के मध्य में आये बड़ो वन के वृक्षों की

डालियाँ आपस में इस प्रकार मिली हुई हैं कि उन्होंने एक समान सतह वाली सुन्दर छतरी का रूप धारण कर लिया है। यह कुञ्ज-निकुञ्ज वन रंगमहल (वट-पीपल की चौकी) तथा हौज़ कौसर ताल के बीच से होते हुए हौज़ कौसर ताल को घेरते हुए आगे अक्षर धाम तक चला गया है।

**विशेष-** सम्पूर्ण कुञ्ज-निकुञ्ज वनों के बीच-बीच में भी २ भोम ऊँचे बड़ोवन के वृक्ष आये हैं।

**जमुना धाम तलाव के, बीच में कई विवेक।**

**कुंजवन मन्दिर कई रंगों, कहा कहूँ रसना एक॥८॥**

यमुना जी, रंगमहल, तथा हौज़ कौसर ताल के समीपवर्ती (लगते हुए) क्षेत्र में आये हुए कुञ्ज-निकुञ्ज वनों में अनेक प्रकार के रंगों की शोभा से युक्त मन्दिर

आये हैं, जिनकी मनोहारिता का वर्णन अपनी इस एक जिह्वा से मैं कैसे कर सकती हूँ।

**भावार्थ**— यद्यपि इस चौपाई के दूसरे चरण में "बीच" शब्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु इसका तात्पर्य यमुना जी, रंगमहल, एवं हौज़ कौसर के संलग्न क्षेत्र से ही है।

**उज्जल रेती मोती निरमल, जोत को नहीं पार।**

**आकास न मावे रोसनी, झलकारों झलकार॥९॥**

कुञ्ज—निकुञ्ज वन की रेती मोती के समान उज्ज्वल और स्वच्छ है। इसकी ज्योति इतनी अनन्त है कि वह आकाश में भी समा नहीं पा रही है। चारों तरफ नूरी रेत की ही झलझलाहट हो रही है।

कई पुरे इन बन में, तिनके बड़े द्वार।

तिन द्वार द्वार कई गलियां, तिन गली गली मंदिर अपार॥१०॥

इन वनों में अनेक उपनगर हैं, जिनमें प्रवेश करने के लिये बड़े-बड़े मुख्य द्वार आये हैं। इन द्वारों से होकर अनेक गलियाँ निकली हैं। इस प्रकार प्रत्येक गली में मन्दिरों की अनन्त संख्या आयी है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे-तीसरे चरण में कथित "द्वार" का तात्पर्य किसी गृह के द्वार से नहीं है, बल्कि नगर के मुख्य द्वार से है।

कई मंदिर इत फिरते, कई चारों तरफों मंदिर।

तिनमें कई विध गलियां, निकुंज बन यों कर॥११॥

निकुञ्ज वन की शोभा इस प्रकार है कि उसके मन्दिर गोलाई में आये हुए हैं। इसी प्रकार, कुञ्ज वन के सभी

मन्दिर चौरस आये हैं। इन सभी वनों (कुञ्ज-निकुञ्ज) में अनेक प्रकार की गलियाँ सुशोभित हो रही हैं।

**मंदिर दिवालें गलियां, नकस फल फूल पात।**

**मंदिर द्वार देख देख के, पलक न मारी जात॥१२॥**

मन्दिरों की दीवारों, द्वारों, तथा गलियों पर फलों, फूलों, तथा पत्तियों की मनोरम चित्रकारी आयी हुई है। मन्दिरों एवं द्वारों की शोभा को देखने पर तो पलकें ही नहीं झपकती हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में पलक न झपकने का तात्पर्य आत्मिक दृष्टि न हटने से है। पलकें स्थूल आँखों में ही होती हैं। चितवनि में मात्र आत्मिक दृष्टि से ही परमधाम को देखा जाता है।

कई पुरे कई छूटक, कई गलियाँ बने हुनर।

या गलियों या मंदिरों, सब छाया बराबर॥१३॥

इन वनों में बहुत से छोटे-छोटे उपनगर हैं, जिनमें बहुत ही कलात्मक ढंग से गलियों की शोभा आयी है। चाहे गलियाँ हों या मन्दिर, सभी की नूरी शोभा (कान्ति, दीप्ति) समान आयी है।

इन बन बोहोतक बेलियां, सोभा अति सुन्दर।

फल फूल पात कई रंगों, या बाहेर या अन्दर॥१४॥

इन वनों में अनेक प्रकार की लतायें फैली हुई हैं, जिनकी बहुत ही सुन्दर शोभा दृष्टिगोचर हो रही है। अनेक रंगों के फल, फूल, और पत्ते भी दिखायी दे रहे हैं, जो अन्दर और बाहर समान रूप से सुन्दर हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "या बाहेर

या अन्दर" का भाव यह है कि वृक्षों और पौधों में लगे हुए फल, फूल, या पत्तों की शोभा केवल बाह्य भाग में ही नहीं है, बल्कि वृक्षों या पौधों और लताओं के झुरमुटों (समूहों) अथवा फूलों के गुच्छों के आन्तरिक भाग में भी है।

**कई छलकत जल चेहेबच्चों, करत झीलना जाए।**

**अतन्त खूबी इन बन की, क्यों कहूँ इन जुबांए॥१५॥**

इन वनों के अनेक कुण्डों से फव्वारों के रूप में जल आकाश में उछलते हुए क्रीड़ा कर रहा है। इनमें जाकर स्नान किया जाता है। इस कुञ्ज-निकुञ्ज वन की अनन्त शोभा है, जिसका वर्णन इस जिह्वा से मैं कैसे करूँ।



फूल पात जो कोमल, रगाँ तिनमें कोई नाहें।

तिनके सेज चबूतरे, कई बने जो मोहोलों माहें॥१६॥

यहाँ के पत्ते और फूल इतने कोमल हैं कि उनमें कहीं भी कोई तन्तु (नसें) हैं ही नहीं। इन्हीं फूलों और पत्तों से महलों में बहुत से चबूतरे और शय्यायें (सेज्यायें) बने हुए हैं।

**भावार्थ—** मानवीय शरीर में रक्तवाहिनी नाड़ियों की ही तरह पेड़-पौधों की पत्तियों में तन्तुओं का जाल बिछा होता है, जिसे इस चौपाई में रग (नस) कहकर वर्णित किया गया है। इस पञ्चभौतिक जगत में भी पेड़-पौधों की अधिकतर क्रियायें चर प्राणियों से मिलती-जुलती हैं।

इत कई रंग जवेरन के, तिन कई रंगों कई नूर।

ए मिसाल इनकी, आकास न माए जहूर॥१७॥

यहाँ के वृक्षों, पौधों, तथा फूलों में अनेक रंगों के जवाहरातों की शोभा दिखायी दे रही है। इनसे अनेक रंगों की नूरी किरणें इस प्रकार निकल रही हैं कि वे आकाश में समा नहीं पा रही हैं अर्थात् समस्त आकाश इनसे भरा हुआ है। इस प्रकार की उपमा तो मात्र हमारे लिये बोधगम्य (आत्मसात्) करने के लिये ही दी गयी है, अन्यथा इसका वास्तविक वर्णन हो ही नहीं सकता।

कई बन स्याह सुपेत हैं, कई बन हैं नीले।

कई बन लाल गुलाल हैं, कई बन हैं पीले॥१८॥

यहाँ बहुत से वृक्ष काले और श्वेत रंग के हैं, तो कई वृक्ष नीले रंग के हैं। लाल और गुलाबी रंग के भी अनेक वृक्ष

हैं। इसी प्रकार, पीले रंग के भी बहुत से वृक्ष दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

**भावार्थ—** कुञ्ज-निकुञ्ज वनों के बीच-बीच में बड़ोवन के वृक्ष आये हैं। यहाँ उन बड़ोवन के वृक्षों की ही शोभा का वर्णन है। अनेक रंगों के जवाहरातों के कारण अलग – अलग रंगों के वृक्ष दिखायी पड़ रहे हैं।

कई बन हैं एक रंग के, कई एक एक में रंग दस।

इन विध कई अनेक हैं, कई जुदे जुदे रंगों कई रस॥१९॥

बड़ोवन में एक ही रंग के अनेक वृक्ष हैं। बहुत से ऐसे भी वृक्ष हैं, जिनमें प्रत्येक दस-दस रंग के हैं। इस प्रकार यहाँ अलग-अलग रंगों में सुशोभित होने वाले और अनेक प्रकार के आनन्द की रसधाराओं को प्रवाहित करने वाले अनेक प्रकार के बहुत से वृक्ष विद्यमान हैं।

**भावार्थ-** सम्पूर्ण परमधाम वहदत (एकत्व) के रस में ओत-प्रोत है। वहाँ का कण-कण परमधाम की छवि को अपने अन्दर विद्यमान (आत्मसात्) किये हुए है। इसी प्रकार यहाँ कुञ्ज-निकुञ्ज वनों में आठों सागरों की एक झलक सी दिखायी गयी है। जिस प्रकार परमधाम का प्रत्येक सागर भले ही अलग-अलग दिखायी पड़ रहा है, किन्तु वहाँ के प्रत्येक सागर में अन्य सभी सागर किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। ठीक इसी तरह, एक-एक रंग के वृक्षों में अनेक रंग के वृक्षों का अस्तित्व है। चौपाई २३ में यही भाव व्यक्त किया गया है। निःसन्देह, ये चौपाइयाँ एकत्व (वहदत) के झरने को शब्दों में व्यक्त कर रही हैं।

फल फूल छाया पात की, खुसबोए जिमी और बन।

आकास भरयो नूरसों, किया रेत बन रोसन॥२०॥

कुञ्ज-निकुञ्ज वन के फलों, फूलों, तथा पत्तियों की दीप्ति (कान्ति) अलौकिक है। इनकी दिव्य सुगन्धि से धरती और सम्पूर्ण वन ओत-प्रोत हो रहा है। इनकी अनन्त आभा से आकाश भरा हुआ है, जिससे रेतीली धरती और वन भी जगमगा रहे हैं।

अनेक मेवे कई भांत के, सो ए कहूं क्यों कर।

नाम भी अनेक मेवन के, और स्वाद भी अनेक पर॥२१॥

इस बड़ोवन में अनेक प्रकार के मेवे हैं, जिनका यथार्थ वर्णन मैं कैसे करूँ। मेवों के अनेक प्रकार के नाम हैं तथा उनमें स्वाद भी अनेक प्रकार के आये हैं।

**भावार्थ-** फल और मेवे में सूक्ष्म सा अन्तर होता है।

फलों को ताजा ही खाने के प्रयोग में लाया जाता है , जबकि मेवों को सुखाकर महीनों-वर्षों तक खाद्य के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इस आधार पर आम, अमरूद, अँगूर, केला, चीकू, सन्तरा आदि फल हैं, जबकि अखरोट, किशमिश, बादाम, काजू, अज्जीर आदि मेवे हैं। अँगूर और खजूर सामान्यतः फल हैं, किन्तु जब इन्हें सुखाकर खाने के काम में लाया जाता है तो इन्हें क्रमशः किशमिश (मुनक्का) और छुआरा कहते हैं।

**कई मीठे मीठे मीठरड़े, कई फरसे फरसे मुख पर।**

**कई तीखे तीखे तीखरड़े, कई खट्टे खट्टे खट्टबर॥२२॥**

इन वनों में अनेक प्रकार के मीठे-मीठे मेवे हैं, जिनमें कुछ तो बहुत मीठे हैं। इसी प्रकार कुछ मेवे खाने पर मुख में कसैलेपन के साथ मिठास का स्वाद देते हैं। कुछ मेवों

में तीखापन (तीक्ष्णता) का रस है। किसी-किसी में यह रस कुछ अधिक ही है। कुछ तो खट्टे ही खट्टे हैं।

**भावार्थ-** मेवों में सामान्यतः मीठे रस की ही प्रधानता होती है, किन्तु इस चौपाई में मेवों को खट्टा, कसैला, तथा तीखे स्वाद वाला कहने का आशय यह है कि इन मेवों में मिठास के साथ कसैलापन, खट्टापन, तथा तीखेपन का भी रस मिला होता है। यह वैसे ही है जैसे आँवले में मिठास के साथ कसैलापन, एवं सन्तरे आदि में मीठेपन के साथ खट्टास भी मिली होती है। यही बात अगली चौपाई में दर्शायी गयी है।

इन एक एक में अनेक रस, रस रस में अनेक स्वाद।

इन विध मेवे अनेक रस, सो कहां लों बरनों आद॥२३॥

प्रत्येक मेवे में अनेक प्रकार के रस हैं तथा प्रत्येक रस

में कई तरह के स्वाद हैं। इस प्रकार मेवों में निहित अनेक प्रकार के रसों के स्वाद का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

**भावार्थ-** इस संसार में छः प्रकार के रस (खट्टा, मीठा, कड़वा, कसैला, नमकीन, तीखा या चरपरा) होते हैं। इनके पारस्परिक मेल से अनेक (अनन्त) प्रकार के स्वाद की अनुभूति होती है। यह कथन वैसे ही है जैसे प्रकाश में कथन मात्र के लिये सात ही रंग होते हैं, किन्तु इनके सम्मिश्रण से अनन्त प्रकार के रंगों का निर्माण होता है। इसी प्रकार अनन्त परमधाम में अनन्त प्रकार के रंग, रस, और स्वाद का भी अस्तित्व मानना पड़ेगा।

कई मेवे हैं जिमी में, कई बेलियों दरखत।

कई मेवे फल की खलड़ी, कई रस बीज में उपजत॥२४॥



यहाँ के बहुत से मेवे ऐसे हैं जो धरती के अन्दर पैदा होते हैं, तो कुछ लताओं पर फलते हैं और कुछ वृक्षों पर। कुछ मेवे फलों के गूदे से तैयार होने वाले हैं, तो कुछ रसीले मेवे फलों के बीज से तैयार होने वाले हैं।

**भावार्थ-** मूँगफली आदि जमीन में पैदा होते हैं, तो किशमिश आदि मेवे अँगूर की बेलों से तैयार होते हैं। काजू, अज्जीर, अखरोट आदि वृक्षों पर फलते हैं, तो खुबानी के बीजों को निकालकर उसके गूदे को खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसी प्रकार, चिरौंजी तथा बादाम के कठोर छिलकों को हटाकर उनके बीजों को मेवे के रूप में खाया जाता है। इस चौपाई में संसार के मेवों के दृष्टान्त से परमधाम के नूरमयी मेवों की एक छोटी सी झलक दिखायी गयी है।

बोहोत रेती इन ठौर है, निपट सेत उज्जल।

खेल खुसाली होत है, सखियां पांउं चंचल॥२५॥

इन वनों की रेतीली धरती बहुत उज्ज्वल और श्वेत रंग की है। यहाँ की सुन्दरता अनुपम है। सखियाँ जब अपने चञ्चल कदमों से तरह-तरह की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करती हैं, तो यह दृश्य बहुत ही आनन्दमयी होता है।

इत कई चौक छाया मिने, कहूं चांदनी चौक।

स्याम स्यामा जी सखियनसों, खेल करें कई जौक॥२६॥

कुञ्ज वन के चौक ढके हुए हैं, अतः उन पर नूरी छाया पड़ती है। निकुञ्ज वन के चौक खुले हैं, अतः वहाँ चाँदनी (आकाशी) खुली है। वहाँ श्री राजश्यामा जी सखियों के साथ तरह-तरह के आनन्दमयी खेल खेला करते हैं।

**द्रष्टव्य—** "जौक" शब्द अरबी भाषा का है, जिसका अर्थ

होता है- स्वाद, रसानुभव, आनन्द, मजाक, शौक, रुचि आदि।

क्यों कहूं वन की रोसनी, सीतल वाए खुसबोए।

ए जुबां न केहे सके, जो सुख आतम होए॥२७॥

कुञ्ज-निकुञ्ज वन की ज्योतिर्मयी आभा की सुन्दरता का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। यहाँ हमेशा शीतल एवं सुगन्धित हवा बहती रहती है। यहाँ के अनन्त आनन्द का जो अनुभव आत्मा को होता है, उसका वर्णन मैं अपनी इस जिह्वा (वाणी) से नहीं कर सकती।

इन बन की हद धामलों, और झरोखों दीवार।

इन बन में कई हिंडोले, होत रंग रसाल॥२८॥

इन वनों की सीमा रंगमहल की दीवार और झरोखों तक

गयी है। यहाँ बहुत से हिण्डोले हैं, जिन पर बैठकर प्रेम रस से भरी हुई आनन्दमयी लीलायें होती हैं।

**भावार्थ-** कुञ्ज-निकुञ्ज वन के अन्दर, बड़ोवन के वृक्षों की डालियाँ वट-पीपल की चौकी के वृक्षों की डालियों से मिलते हुए आयी हैं। इन वट-पीपल के वृक्षों की डालियाँ रंगमहल के झरोखों से मिली हुई हैं। इस वट-पीपल की चौकी में बहुत से हिण्डोले आये हैं। इन बड़ोवन के वृक्षों की शोभा भी वट-पीपल की चौकी के जैसी ही है, इसलिये इस चौपाई में यह बात कही गयी है कि इन वृक्षों की डालियाँ रंगमहल की दीवारों तथा झरोखों से लगकर आयी हैं। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी में कहा गया है-

और पीछल पाल तलाब के, कई वन सोभा लेत।

ए वन आगूं फिरवल्या, परे धाम लों दिखाई देत॥

परिकरमा १०/१

ताल को बीच लेय के, मिल्या धाम दिवालों आए।

कई मेवे केते कहूं, अगनित गिने न जाएं॥

परिकरमा १०/२

**चौक चार उपरा ऊपर, बट पीपल बखान।**

**बराबर थंभ छातें, ठौर सोभित सब समान॥२९॥**

वट-पीपल की चौकी में ऊपर-नीचे क्रमशः चार भूमिकायें (भोमें) कही गयी हैं। वट एवं पीपल के वृक्षों के तने थम्भों के समान सुशोभित हो रहे हैं। प्रत्येक भूमिका में इन थम्भ रूप तनों के ऊपर डालियों, फूलों, तथा पत्तों की छतें आयी हैं। वट-पीपल की चौकी का यह सम्पूर्ण स्थान समान रूप से अत्यन्त सुन्दर शोभा को धारण किये हुए है।

घाट के दोऊ तरफ पुल, मिले दोऊ तरफों इन।

बन नारंगी चन्द्रवा, पोहोंच्या दिवालों रोसन॥३०॥

सातों घाटों के दोनों तरफ जो पुल हैं , वे दोनों तरफ केल व वट घाट के वृक्षों से मिले हुए हैं। इसमें नारंगी घाट के वृक्ष वट-पीपल के वृक्षों से मिलकर चन्द्रवा की शोभा दर्शा रहे हैं। वट-पीपल के वृक्ष रंगमहल की दीवारों तक जगमगा रहे हैं।

**भावार्थ-** नारंगी वन के वृक्षों की डालियाँ आपस में मिलकर अति मनोहर चन्द्रवा (छत) के समान दिखायी दे रही हैं। इसी प्रकार वट-पीपल के वृक्षों की डालियाँ भी छत के समान शोभा धारण कर रंगमहल की दीवारों से लगी हुई हैं तथा नारंगी वन के वृक्षों की छत से भी मिली हुई हैं। इस प्रकार, यह सम्पूर्ण दृश्य एक ही चन्द्रवा के समान दिखायी दे रहा है। दूसरे शब्दों में, यही

कहा जा सकता है कि सातों घाट या दोनों पुलों से नारंगी वन से होते हुए वट-पीपल की चौकी या रंगमहल में आ-जा सकते हैं।

**चार थंभ बराबर सोभित, उपरा लग ऊपर।**

**घट बढ़ न दोऊ तरफों, ए सोभा अति सुन्दर॥३१॥**

वट-पीपल की चौकी की चारों भूमिकाओं में वृक्षों के ऊपर वृक्ष आये हैं। वृक्षों के तने थम्भों के रूप में सुशोभित हो रहे हैं। थम्भ के ऊपर थम्भ आने से चार भूमिकायें दिखायी दे रही हैं। इनकी लम्बाई-चौड़ाई या मोटाई कहीं भी कम अथवा अधिक नहीं है। इस प्रकार यह शोभा बहुत सुन्दर दिखायी दे रही है।

**द्रष्टव्य-** इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित दोनों तरफ का तात्पर्य लम्बाई, चौड़ाई, और मोटाई से है।

**द्वार समान सब देखत, ऊपर सोभा अपार।**

**माहें खट छपरें बन की, हिंडोले छातें चार॥३२॥**

वट-पीपल के वृक्षों की डालियों, पत्तियों, तथा फूलों ने मेहराबों के रूप में अति सुन्दर दरवाजों (मेहराबी द्वारों) का स्वरूप धारण कर लिया है। प्रत्येक द्वार की सुन्दरता समान है। एक-दूसरे के ऊपर आयी हुई चारों भूमिकाओं में इन दरवाजों (मेहराबों) की अनन्त शोभा हो रही है। इनमें प्रत्येक भूमिका में षट-छप्पर के हिण्डोले लटक रहे हैं।

**भावार्थ-** मेहराब रूपी सभी दरवाजे १००-१०० मन्दिर के चौड़े आये हैं। प्रत्येक भूमिका में षट-छप्पर के १३० हिण्डोले आये हैं। इस प्रकार चारों भूमिकाओं में कुल ५२० हिण्डोले आये हैं। षट-छप्पर का तात्पर्य है, वे हिण्डोले जिनकी छत (छप्पर) में षट् कोण हों।



कई हिंडोले एक छातें, छातें छातें खट अनेक।

चारों तरफों हार देखिए, जानों एक एक थें विसेक॥३३॥

एक भूमिका में अनेक (१३०) षट-छप्पर के हिण्डोले आये हैं। इस प्रकार सभी भूमिकाओं के कुल हिण्डोले ५२० हैं। जब वट-पीपल की चौकी के चारों ओर के हिण्डोलों की हारों को देखते हैं, तो ऐसा लगता है कि प्रत्येक हार के हिण्डोले एक-दूसरे से अधिक सुन्दर हैं।

**द्रष्टव्य-** अनन्त परमधाम की किसी भी गणना को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। इस प्रकार की गणनायें तो महासागर की अथाह जलराशि को एक बूँद के रूप में दिखाने की तरह हैं, ताकि हमारी स्वाप्तिक बुद्धि उसे हृदयंगम कर सके।

राजस्यामा जी सखियां, जब इत आए हींचत।

इन समें बन हिंडोले, सोभा क्यों कर कहूँ सिफत॥३४॥

जब युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के साथ सखियाँ इन हिण्डोलों पर झूलती हैं, तो उस समय हिण्डोलों सहित वन की जो अद्वितीय शोभा होती है, उसकी महिमा का वर्णन मैं कैसे करूँ? यह नितान्त असम्भव है।

**भावार्थ—** सामान्यतः लौकिक दृष्टि से भी झूला झूलना या देखना अत्यधिक मनमोहक होता है, किन्तु यदि प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द, और एकत्व के सागर ही यह लीला करने लगे तो भला इस आनन्द को शब्दों में कैसे बाँधा जा सकता है।

जवेर भी रस जिमी के, और जिमी को रस बन।

नरमाई फूल पात अधिक, ना तो दोऊ बराबर रोसन॥३५॥

परमधाम की नूरी धरती का रस जवाहरात है, अर्थात् वहाँ की सम्पूर्ण धरती हीरे-मोती आदि जवाहरातों की है। इसी प्रकार वन भी धरती की शोभा (रस) स्वरूप है। फूलों और पत्तों की केवल कोमलता ही जवाहरातों से अधिक है, अन्यथा दोनों (जवाहरातों और फूल-पत्तों) की नूरी ज्योति बराबर ही है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में जवाहरातों एवं वनों को धरती का रस कहने का आशय यह है कि इन्हीं से धरती (जमीन) की शोभा है। जिस प्रकार किसी फल के रस में फल के सभी गुण विद्यमान हो जाते हैं अर्थात् फल का सार उस रस में समाहित हो जाता है, उसी प्रकार परमधाम की सम्पूर्ण जमीन हीरे, मोती, माणिक आदि जवाहरातों तथा नूरी वृक्षों से परिपूर्ण है। दूसरे शब्दों में यही कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण धरती ही

जवाहरातमयी एवं वृक्षमयी है। इन्हें कभी भी अलग नहीं किया जा सकता। वहाँ के फूलों एवं पत्तियों की आभा हीरे, मोती, माणिक आदि नगों के समान ही है।

**चढ़ आवत बादलियां, सेहेरें घटा तरफ चार।**

**इन समें बन सोभित, माहें बिजलियां चमकार॥३६॥**

कभी-कभी अचानक ही नूरी बादल घिर आते हैं। चारों तरफ घने बादल वर्षा करने लगते हैं और उनके अन्दर विद्युत की चमक दिखायी देने लगती है। इस समय वनों (कुअ-निकुअ, वट-पीपल की चौकी, तथा बड़ोवन) की अनुपम शोभा होती है।

**बोए आवे सुगंध सीतल, उछरंग होत मलार।**

**गाजत गंभीर मीठड़ा, इन समें सोहे सिनगार॥३७॥**

इस वर्षा काल में शीतल, मन्द, और सुगन्धित हवा के झोंके बहने लगते हैं। चारों ओर आनन्द ही आनन्द दृष्टिगोचर होता है। बादल अति मीठे और गम्भीर स्वरों में गर्जना करने लगते हैं। इस समय सम्पूर्ण श्रृंगार की ही शोभा निराली होती है।

**भावार्थ-** परमधाम के बादलों की मीठे स्वरों में गर्जना भी संगीतमयी होती है। इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "श्रृंगार" शब्द का तात्पर्य सम्पूर्ण वन एवं उसमें क्रीड़ा करते हुए युगल स्वरूप सहित सुन्दरसाथ के श्रृंगार से है।

हंस चकोर मैना कोइली, करें बन में टहुँकार।

बोलें बपैया बांबी दादुर, करें तिमरा भमरा गुंजार॥३८॥

इस समय इन वनों में हँस, चकोर, मैना, और कोयल

अति मीठे स्वरों में अपना रस उड़ेलते रहते हैं। पपीहा (चातक), बांबी, और मेंढक भी अपना-अपना स्वर अलाप रहे होते हैं। झींगुर और भौरे की गूँज चारों ओर फैल रही होती है।

**भावार्थ—** हँस, चकोर, मैना, कोयल, और चातक अति मधुर बोलने वाले प्रेममयी पक्षी हैं। इनके स्वरों में प्रेम की माधुर्यता और अपनत्व का रस झलकता है। झींगुर और भौरे की गुनगुनाहट वातावरण को और अधिक रसिक बनाने वाली होती है। यही कारण है कि वर्षा के मनोहर काल में इनका वर्णन किया गया है।

हिंडोले हजार बारे, स्याम स्यामाजी हींचत।

अखंड सुख धनी धाम बिना, कौन देवे इन समें इत॥३९॥

इन कुञ्ज-निकुञ्ज वनों के हिण्डोलों में श्री राजश्यामा जी

१२००० सखियों के साथ झूले झूलते हैं। भला , प्रियतम अक्षरातीत के अतिरिक्त और कौन है , जो हमें इस वर्षा काल में परमधाम के इन अखण्ड सुखों का रसपान कराये।

**भावार्थ-** यद्यपि ब्रह्मवाणी द्वारा धाम धनी हमें परमधाम के अखण्ड सुखों का स्वाद अवश्य दे रहे हैं , किन्तु इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "इन समें इत " का तात्पर्य परमधाम में होने वाली लीला से सम्बन्धित है। ऐसा ही इस प्रकरण की चौपाई ३६ में भी कहा गया है।

ए निकुंज बन सब लेयके, जाए पोहोंच्या ताल।

जमुना धाम के बीच में, ए बन है इन हाल॥४०॥

इस सम्पूर्ण शोभा के साथ कुञ्ज-निकुञ्ज वन हौज कौसर ताल को घेरकर आया है। यमुना जी और

रंगमहल के बीच में भी यह अपनी अद्भुत छटा के साथ जगमगा रहा है।

**भावार्थ-** वट घाट के पश्चिम से यह वन शुरू होकर, नारंगी वन व वट-पीपल की चौकी के दक्षिण से होते हुए, हौज़ कौसर ताल को चारों तरफ घेरकर, अक्षर धाम के पूर्व तक गया है।

जित बोहोत रेती मोती पतले, गड़त घूटन लो पाए।

इत सबे मिल सखियां, रब्द गुलाटें खाएं॥४१॥

कुञ्ज-निकुञ्ज वन की रेती मोती के छोटे-छोटे कोमल कणों के समान है और बहुत जगमगा रही है। यह इतनी कोमल है कि दौड़ने पर घुटने तक पाँव धँस जाते हैं। यहाँ सभी सखियाँ आपस में होड़ बाँधकर कलाबाजियाँ खाते हुए क्रीड़ा करती हैं।



इत बोहोत रेतीमें सखियां, दौड़ दौड़ देत गुलाटें।

कूदें दौड़े ठेकत हैं, रेत उड़ावें पांउं छांटें॥४२॥

इस कोमल रेती में सखियाँ खूब दौड़-दौड़कर कलाबाजियाँ खाती हैं। वे आनन्द में कूदती हैं, दौड़ती हैं, और छलाँगें लगाती हैं। इसके साथ ही वे अपने पैरों से चारों ओर रेत बिखेरती हैं और उड़ाती हैं।

कबूँ दौड़त राज सखियां, सबे मिलके जेती।

हाँसी करत जमुना त्रट, जित बोहोत गड़त पांउं रेती॥४३॥

कभी-कभी प्रेममयी लीला में श्यामा जी सहित सभी सखियाँ और श्री राज जी मिलकर दौड़ते हैं। इस प्रकार वे यमुना जी के किनारे तरह-तरह की हँसी की लीलायें करते हैं। यहाँ कुञ्ज वन की रेती इतनी कोमल है कि दौड़ने पर उसमें पाँव धँस जाया करते हैं।

**भावार्थ-** यहाँ पर यमुना जी के उस किनारे का वर्णन है, जहाँ आग्नेय कोण पर यमुना जी मुड़कर पश्चिम दिशा में हौज़ कौसर ताल में १६ देहुरी के घाट में समा जाती है। यह स्थान २५० मन्दिर चौड़ा है, जो "रमण रेती" के नाम से प्रसिद्ध है।

**अनेक रामत रेतीय में, बहुविध इन ठौर होत।**

**ए बन स्याम स्यामाजी को, है हाँसी को उद्योत॥४४॥**

इस प्रकार, कुञ्ज वन की इस रेती में अनेक प्रकार की बहुत सी प्रेममयी क्रीड़ाएँ हुआ करती हैं। कुञ्ज-निकुञ्ज का यह मनोरम स्थान सखियों के साथ श्री राजश्यामा जी की प्रेममयी हँसी की लीलाओं के लिये प्रसिद्ध है।

**द्रष्टव्य-** यद्यपि "उद्योत" शब्द का बाह्य अर्थ प्रकाशमयी होता है, किन्तु इस चौपाई में प्रसंगानुसार

"उद्योत" शब्द प्रसिद्ध (जाहिर) होने या प्रकाश (चर्चा) में आने के सन्दर्भ में है।

**कहूं कहूं सखियां ठेकत, माहें रेती रब्द कर।**

**पीछे हँस हँस ताली देयके, पड़त एक दूजी पर॥४५॥**

कभी-कभी सखियाँ आपस में होड़ बाँधकर कोमल रेती में छलांगे लगाती हैं और बाद में हँसते हुए ताली बजाकर एक-दूसरे के ऊपर गिर पड़ती हैं।

**भावार्थ-** चौपाई ४१ एवं ४५ में "रब्द" का तात्पर्य खेलने की बहस से सम्बन्धित है, जिसका भाव है- होड़ बाँधना। इस ४५वीं चौपाई में एक बहुत ही मधुर भाव की लीला का वर्णन किया गया है, जिसमें प्रेम में आकण्ठ डूबी हुई (मदमस्त) सखियाँ पैरों से धूल उड़ाने लगती हैं और तत्पश्चात् हँसते हुए एक-दूसरे के ऊपर गिर पड़ती

है। मानवीय बुद्धि से प्रेम की इस पहेली को नहीं समझा जा सकता।

एकल छत्री सब बनकी, भांत चंद्रवा जे।

फेर फेर उमंग होत है, ठौर छोड़ी न जाए ए॥४६॥

इस सम्पूर्ण कुञ्ज-निकुञ्ज वन के ऊपर बड़ोवन के वृक्षों की एक समान छतरी की शोभा आयी है, जो अति मनोहर चन्द्रवा के समान दिखायी पड़ रही है। यहाँ की अनुपम शोभा को जितना ही देखा जाये, उतना ही मन में उल्लास (आनन्द) प्राप्त होता है और इसे छोड़ने की जरा भी इच्छा नहीं होती।

फेर फेर इतहीं दौड़त, कहूं ठेकत दौड़त गिरत।

सब सखियां मिल तिन पर, फेर फेर हाँसी करत॥४७॥

इस कुञ्ज-निकुञ्ज वन की रेती में सखियाँ बार-बार दौड़ती हैं। वे कभी उमंग में छलांगे लगाती हैं, तो कभी दौड़ते हुए गिर जाती हैं। शेष अन्य सखियाँ उन गिरी हुई सखियों के ऊपर बारम्बार प्रेममयी हँसी करती हैं।

**केते खेल कहूं सखियन के, जो करत बन नित्यान।**

**खेल करें स्याम स्यामाजी, सखियों खेल अमान॥४८॥**

इन कुञ्ज-निकुञ्ज वनों में सखियाँ नित्य ही तरह-तरह की प्रेममयी क्रीड़ायेँ करती हैं, जिनका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। श्री राजश्यामा जी सुन्दरसाथ के साथ यहाँ पर जो तरह-तरह के आनन्दमयी खेल खेलते हैं, उसकी इस संसार में किसी से भी उपमा नहीं दी जा सकती।

महामत कहे ऐ मोमिनो, देखो ताल पाल के बन।

ए लीजो तुम दिल में, करत हों रोसन॥४९॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी !  
अब आप हौज़ कौसर ताल की पाल पर आये हुए बनो  
की अलौकिक शोभा को देखिये। मैं उस अद्वितीय शोभा  
का वर्णन कर रही हूँ और आप उसे अपने हृदय में धारण  
कीजिए।

प्रकरण ॥७॥ चौपाई ॥४६८॥

## हौज कौसर ताल जित जोए कौसर मिली

इस प्रकरण में उस हौज कौसर ताल की शोभा का वर्णन किया गया है, जिसमें यमुना जी जाकर मिलती हैं।

अब कहूं मैं ताल की, अन्दर आए सको सो आओ।

जो होवे रूह अर्स की, फेर ऐसा न पावे दाओ॥१॥

हे साथ जी! अब मैं हौज कौसर ताल की शोभा का वर्णन कर रही हूँ। आपमें जो भी परमधाम की आत्मा है, वह चितवनि द्वारा यदि इस हौज कौसर के अन्दर आकर सम्पूर्ण शोभा को देख सकती है, तो आए और इसका रसपान करे। पुनः आपको ऐसा सुनहरा अवसर नहीं मिलने वाला है।

**भावार्थ-** चितवनि का तात्पर्य ही है आत्म-दृष्टि से युगल स्वरूप सहित २५ पक्षों की शोभा को देखना या

उसमें घूमना। मात्र ब्रह्मसृष्टि ही चितवनि में रुचि लेती है, जबकि ईश्वरी सृष्टि ज्ञान एवं जीव सृष्टि कर्मकाण्ड में लगी रहती है। इस चौपाई के तीसरे चरण से यही निष्कर्ष निकलता है। पुनः ऐसा अवसर न मिलने का आशय यह है कि जब स्वयं श्री जी (अक्षरातीत) ही परमधाम की आत्माओं को हौज़ कौसर देखने का निर्देश कर रहे हों और सुन्दरसाथ उसकी अवहेलना करें, तो उससे अधिक मन्दभाग्य भला और कौन हो सकता है। सिन्धी ग्रन्थ का यह कथन "जाए न बोलाए खसम की, सो औरत बेएतबार" भी इसी सन्दर्भ में है।

एक हीरे की पाल है, तिनमें कई मोहोलात।

गिरद दयोहरी कई बन हैं, क्यों कहूं फल फूल पात॥२॥

हौज़ कौसर के अन्दर एक हीरे की पाल है, जिसमें



अनेक महल जगमगा रहे हैं। इस पाल के चारों ओर घेरकर १२८ बड़ी दयोहरियों एवं वनों की शोभा आयी है। इन वनों की पत्तियों, फूलों, एवं फलों की सुन्दरता का मैं कैसे वर्णन करूँ।

**भावार्थ—** १००० मन्दिर की चौड़ी और एक भूमिका ऊँची चौरस पाल है, जिसके १२८ हाँस आये हैं। चौरस पाल के प्रथम भाग में १२४ छोटी दयोहरियाँ एवं द्वितीय भाग में १२८ बड़ी दयोहरियाँ आयी हैं। इस पाल के नीचे (७५० मन्दिर की चौड़ाई में) अनन्त महल आये हैं, जिन्हें "पाल अन्दर के महल" कहते हैं। पाल के ऊपर बड़ोवन के वृक्षों की पाँच हारें आयी हैं, जिनमें से दो वृक्षों की हारें ढलकती पाल पर हैं तथा तीन वृक्षों की हारें चौरस पाल पर हैं।

जब आवत इत अर्स से, चढ़िए इन घाट ताल।

चबूतरे दोए दयोहरी, सीढ़ियां चढ़ते होत खुसाल॥३॥

हे साथ जी! जब रंगमहल से यहाँ आते हैं, तो पश्चिम में झुण्ड के घाट की दिशा से ताल ढलकती पाल पर चढ़ते हैं। ताल की पश्चिम दिशा में (झुण्ड के घाट के सामने) ढलकती पाल पर दो दयोहरियाँ (४ थम्भों पर गुम्मत-कुल ८ थम्भ १० मेहराबें) आयी हैं तथा इन देहुरियों से लगते हुए वन की रौंस पर दो चबूतरे हैं। इन दोनों चबूतरों के मध्य वन की रौंस से ढलकती पाल पर तीन सीढ़ियाँ चढ़ी हैं। इन सीढ़ियों से चढ़ते हुए यहाँ की शोभा को देखकर बहुत आनन्द आता है।

ए जो कही दो दयोहरी, तिन बीच पौरी दोए।

एक आगूं चबूतरा, दूजी आगूं दयोहरी सोए॥४॥

ये जो दो देहुरियाँ ढलकती पाल पर कही गयी हैं, उनके बीच में दो मेहराबी द्वार (पौरियाँ) हैं। एक मेहराब के सामने दायें-बायें दो चबूतरे हैं तथा दूसरी मेहराब के सामने दायें-बायें दो देहुरियाँ हैं।

**भावार्थ-** यहाँ कुल आठ थम्भ और १० मेहराबें हैं। ४-४ मेहराबें दोनों चबूतरों में एवं २ मेहराबें मध्य चौक में हैं, जिन्हें पौरी कहा गया है।

**इतथें सीढ़ियां चढ़ती, ऊपर आए पोहोंची किनार।**

**दोऊ तरफ दोए चबूतरे, बीच चौक खूंटों चार॥५॥**

यहाँ (ढलकती पाल) से संक्रमणिक सीढ़ियाँ चढ़ी हैं, जो चौरस पाल की किनार पर पहुँची हैं। चौरस पाल पर यहाँ दायें-बायें दो चौरस चबूतरे हैं। इनके बीच में चार कोनों वाला (चौरस) चौक है।

ए बड़ा घाट तरफ अर्स के, फिरते तीन घाट तरफ और।  
बने गिरदवाए पाल पर, जुदी जिनसों चारों ठौर॥६॥

रंगमहल की दक्षिण दिशा में जो हौज़ कौसर ताल आया है, उसकी पश्चिम दिशा में चौरस पाल पर बहुत बड़ा झुण्ड का घाट है। गोलाई में आयी हुई चौरस पाल की शेष तीन दिशाओं में तीन घाट और आये हैं। पूर्व में १६ देहुरी का घाट, उत्तर में ९ देहुरी का घाट, तथा दक्षिण दिशा में १३ देहुरी का घाट शोभायमान हो रहा है। इस प्रकार इन चारों दिशाओं में चारों घाटों की अलग-अलग प्रकार की शोभा है।

ताल बीच टापू बन्यो, मोहोल बन्यो तिन पर।

तिन गिरदवाए जल है, खूबी हौज कहूं क्यों कर॥७॥

हौज़ कौसर ताल के मध्य में टापू बना हुआ है, जिसके

ऊपर अति सुन्दर महल जगमगा रहा हैं। उसके चारों ओर ताल का जल लहरा रहा है। इस हौज़ कौसर ताल की विशेषताओं का मैं कैसे वर्णन करूँ।

नेक कहूं तिनका बेवरा, चारों तरफ बन पाल।

अव्वल बड़े घाट से, ए जो हौज़ कौसर कह्या ताल॥८॥

फिर भी हौज़ कौसर की पाल पर आये हुए वनों एवं चारों घाटों की शोभा का मैं थोड़ा सा वर्णन कर रही हूँ। सबसे पहले हौज़ कौसर ताल के झुण्ड के घाट से अपना वर्णन प्रारम्भ करती हूँ।

जो झुण्ड ताल की पाल पर, ऊंचा अतंत है सोए।

फेर आए लग्या भोम सों, इन जुबां सोभा क्यों होए॥९॥

हौज़ कौसर ताल की चौरस पाल पर झुण्ड के घाट में

वृक्षों का जो झुण्ड (समूह) आया है, उसकी ऊँचाई इतनी अधिक है कि उसे अनन्त ही कहा जा सकता है। वृक्षों का यह समूह पुनः एक भूमिका नीचे ढलकती पाल पर (२ हारें) आया है। इस जिह्वा से उसकी शोभा का वर्णन हो पाना असम्भव है।

**भावार्थ—** चौरस पाल पर बड़े वन के वृक्षों की तीन हारें आयी हैं तथा उससे भोम भर नीचे, अर्थात् संक्रमणिक सीढ़ियों के नीचे, वृक्षों की दो हारें ढलकती पाल के ऊपर आयी हैं।

एह झुण्ड है घाट पर, और पाल ऊपर सब बन।

फिरता आया झुण्ड लो, पोहोंच्या पावड़ियों रोसन॥१०॥

वृक्षों का यह समूह झुण्ड के घाट में शोभा ले रहा है। चौरस पाल के चारों ओर वृक्षों की तीन हारें घेरकर आयी

हैं। ये तीन हारें झुण्ड के घाट के एक तरफ से निकलकर पाल पर घूमकर, झुण्ड के घाट से दूसरी तरफ आकर मिलती हैं। पुनः संक्रमणिक सीढ़ियों के सामने ढलकती पाल के ऊपर भी वृक्षों की दो हारें घेरकर आयी हैं।

**भावार्थ—** झुण्ड के घाट पर दोनों चबूतरों के ऊपर वृक्षों के झुण्ड आये हैं। बायें चबूतरे वाले झुण्ड को पहला झुण्ड तथा दायीं तरफ वाले चबूतरे के झुण्ड को दूसरा झुण्ड कहा गया है।

**और झुण्ड जो दूसरा, तरफ दाहिनी सोए।**

**छे छाते सीढ़ियों पर, बांधी मिल कर दोए॥११॥**

वृक्षों का जो दूसरा झुण्ड है, वह दाहिनी ओर आया है। दोनों ओर के वृक्षों के झुण्डों ने चबूतरों की सीढ़ियों पर अपनी डालियाँ फैलाकर पाँच भूमिका और छठीं चाँदनी

की शोभा धारण कर रखी है।

जो कहे झुण्ड दोऊ तरफ के, दोए दोए चबूतरे किनार।

चौथे हिस्से चबूतरे, हार फिरवली खूंटों चार॥१२॥

इस प्रकार, दोनों ओर के वृक्षों के जो झुण्ड कहे गये हैं, उनमें चबूतरों की एक दिशा में दो-दो झुण्ड हैं, जो चबूतरों के चौथे हिस्से में चबूतरों के कोनों से लगते हुए हैं। इस प्रकार वृक्षों के दो-दो झुण्ड दोनों चबूतरों के चारों ओर आये हैं।

चौक बीच आए जब देखिए, दोऊ तरफ बने दोऊ द्वार।

दोए द्वार दोए सीढ़ियों, चौक सोभित अति अपार॥१३॥

दोनों चबूतरों के बीच के चौक में आकर जब हम दोनों ओर (दायें-बायें) देखते हैं, तो चबूतरे की किनार पर



आयी वृक्षों की डालियाँ आपस में मिलकर दो मेहराबी द्वार के रूप में दिखायी पड़ती हैं। चौक से दोनों चबूतरों पर चढ़ने के लिये जो तीन-तीन सीढ़ियाँ (दोनों तरफ की) आयी हैं, वे भी दिखायी पड़ रही हैं। इस प्रकार चौक पर से दोनों ओर (दायें-बायें) के वृक्षों की अद्भुत शोभा दिखायी पड़ रही है।

एक एक बाजू चबूतरे के, तिनके हिस्से चार।

दो हिस्से खूंट दो दिवालों, और दो हिस्सों बीच द्वार॥१४॥

दोनों चबूतरों की प्रत्येक दिशा में चार भाग हैं। कोनों से लगते हुए दोनों भागों में वृक्षों की दो दीवारें (झुण्ड) हैं। इनके मध्य के दो भागों में वृक्षों की डालियों से बना हुआ एक मेहराबी द्वार है।

**चार खूने दोए चबूतरे, दोऊ तरफों चौथे हिस्से।**

**तरफ आठ पेड़ दीवार ज्यों, सोभा कही न जाए मुख ए॥१५॥**

इस प्रकार इन दोनों चबूतरों के चारों कोनों में वृक्षों की शोभा है। चबूतरों की प्रत्येक दिशा में मेहराबी द्वार के दायें-बायें चौथे भागों में आठ – आठ वृक्ष दीवार के समान सुशोभित हो रहे हैं। इनकी अनुपम शोभा का वर्णन इस मुख से हो पाना सम्भव नहीं है।

**इसी भांत दोऊ चबूतरे, चारों खूंटों पेड़ दीवार।**

**जब देखिए बीच चबूतरे, चार द्वार इसी मिसाल॥१६॥**

इस तरह दोनों चबूतरों के चारों कोनों में वृक्षों की दीवारें हैं। जब चबूतरों पर मध्य में खड़े होकर चारों ओर देखते हैं, तो प्रत्येक चबूतरे की चारों दिशाओं में इसी प्रकार के चार मेहराबी द्वार दिखायी देते हैं।

**खूंट आठों दोऊ चबूतरे, और आठों बने द्वार।**

**सोले दिवालें हुई सबे, सोभा लेत पेड़ों हार॥१७॥**

दोनों चबूतरों के कुल आठ कोने हैं और आठ मेहराबी द्वार हैं। इन द्वारों के दाये-बायें आठों कोनों से लगती हुई वृक्षों की कुल १६ दीवारें सुशोभित हो रही हैं। इस प्रकार चबूतरों के ऊपर वृक्षों की हारें अनुपम शोभा से युक्त हैं।

**जानों तीनों चौक बराबर, बारे द्वार दिखाई देत।**

**चार चार द्वार चबूतरे, दो सीढ़ियों पर सोभा लेत॥१८॥**

ऐसा लगता है जैसे, दोनों चबूतरों एवम् मध्य के चौक, इन तीनों चौकों की शोभा एक समान आयी है। इन तीनों चौकों में कुल १२ दरवाजे दिखायी पड़ रहे हैं। दोनों चबूतरों के ऊपर चार-चार द्वार दृष्टिगोचर हो रहे हैं और दो मेहराबी द्वार मध्य के चौक में, घाटी की सीढ़ियों की

सीध में शोभा ले रहे हैं।

दस द्वार हुए हिसाब के, हुए बारे देखन मों।

देखें बीच तीनों चौक से, ए किन मुख खूबी कहों॥१९॥

यद्यपि देखने में तो १२ द्वार दिखायी पड़ रहे हैं, किन्तु गणना करने पर १० ही द्वार होंगे। प्रत्येक (तीनों) चौक के मध्य से देखने पर चारों ओर चार-चार ही मेहराबी द्वार दिखायी देते हैं। इस अलौकिक शोभा का वर्णन मैं किस मुख से करूँ।

**भावार्थ-** तीनों चौकों (दोनों चबूतरे व उनके मध्य का चौक) की सन्धि के दोनों द्वार दोनों तरफ गिनते हैं। इसलिए गिनती में दो द्वार कम हो जाते हैं।

दोऊ तरफ दयोहरियां पाल पर, पेड़ सीढ़ियों के लगती।

दो सीढ़ी ऊपर आगूं द्वारने, चौक आगूं देत खूबी॥२०॥

झुण्ड के घाट के दोनों चबूतरों के ठीक सामने, चौरस पाल के दूसरे भाग में (ताल की तरफ से) दो देहुरियाँ हैं। दोनों देहुरियों के बीच में घाट की सीढ़ियाँ उतरी हैं। इसी सीढ़ी से लगते हुए चौरस पाल पर बड़ोवन का एक वृक्ष है। दोनों देहुरियों के सामने पाल के पहले भाग (कटी पाल) में चबूतरे (चाँदे) हैं। दयोहरियों के चार थम्भों की चार मेहराबे हैं। इन्हें मेहराबी द्वार भी कहा जाता है। ताल की तरफ के मेहराबी द्वारों के सामने चबूतरों से कटी पाल की दो सीढ़ियाँ उतरी हैं। एक सीढ़ी बायीं तरफ के चबूतरे की बायीं तरफ और एक सीढ़ी दायीं ओर के चबूतरे की दायीं ओर उतरी है। ये सीढ़ियाँ जहाँ पर उतरी हैं, वहाँ चौक की शोभा आयी है।

एक तरफ एक सीढ़ियों, सामी दूजी के मुकाबिल।

इसी भांत तरफ दूसरी, सोभा कहा कहे इन अकल॥२१॥

चबूतरे के एक ओर की सीढ़ियाँ सामने के दूसरे चबूतरे की सीढ़ियों के सामने आयी हैं, अर्थात् दोनों सीढ़ियाँ आमने-सामने हैं। उन दोनों के मध्य में चौक है। इसी प्रकार की शोभा चबूतरे की दूसरी ओर भी आयी है, जिसकी अनुपम शोभा का वर्णन हो पाना इस बुद्धि से सम्भव नहीं है।

एक एक सीढ़ियों पर, तरफ दूसरी पेड़ दीवार।

तरफ तीसरी पाल पर, चौथी तरफ मोहोल ताल॥२२॥

देहुरियों की चारों दिशा में चार मेहराबी द्वार हैं। एक द्वार घाटी की सीढ़ियों की तरफ है, तो दूसरा द्वार झुण्ड के घाट (वृक्षों की दीवारों) की ओर है। इसी प्रकार तीसरा

द्वार चौरस पाल की ओर, और चौथा मेहराबी द्वार ताल एवं टापू महल की ओर आया है।

दो दयोहरी सोभा लेत हैं, ताल के खूंटों पर।

द्वार सामी टापू के, दोरी बन्ध बराबर॥२३॥

झुण्ड के घाट के सामने एवं हौज़ कौसर ताल की पश्चिम दिशा के हाँस के दोनों कोनों पर दो देहुरियाँ शोभा ले रही हैं। इन देहुरियों के मध्य मेहराबें भी आयी हैं। ये मेहराबें और देहुरियाँ टापू महल की पश्चिम दिशा के द्वार एवं उस द्वार के दायें-बायें के चबूतरों के ठीक सामने स्थित हैं।

दोऊ तरफों दो दयोहरी, उतरती जल पर।

तिन आगूं दोए चबूतरे, सो आए छात अन्दर॥२४॥

दोनों तरफ (दायें-बायें) दो देहुरियाँ हैं। मध्य में घाट की सीढ़ियाँ उतरी हैं, जिनसे जल-रौंस पर जाते हैं। इन दोनों देहुरियों के सामने चौरस पाल के पहले भाग (कटी पाल) में दो चबूतरे हैं, जिनसे कटी पाल की सीढ़ियाँ उतरी हैं। बड़ोवन के वृक्षों की डालियाँ जल चबूतरे तक छायी हैं। इन डालियों की छत के नीचे ये चबूतरे आये हुए हैं।

ए जो कही दोए दयोहरी, बीच ऊपर दोए मेहेराब।

तीनों घाट इन विध, सोभित बिना हिसाब॥२५॥

झुण्ड के घाट की जिन दो देहुरियों का वर्णन किया गया है, उनके मध्य में घाट की सीढ़ियाँ हैं, जिनके ऊपर दो मेहराबें दिखायी देती हैं। इसी प्रकार से ९ देहुरी के घाट एवं १३ देहुरी के घाट (कुल तीनों घाटों) में भी दो-दो



देहुरियाँ और घाट की सीढ़ियाँ हैं। इस प्रकार तीनों घाटों की अद्वितीय शोभा देखने में आती है।

ए जो पावड़ियां घाटों पर, जड़ाव ज्यों झलकत।

अनेक रंगों किरनें उठें, नूर आसमान लेहेरां लेवत॥२६॥

तीनों घाटों की सीढ़ियाँ नूरमयी जवाहरातों से जड़ी हुई हैं, अर्थात् इनमें अनुपम शोभा वाले अनन्त प्रकार के जवाहरात जड़े हुए हैं, जो झलझलाते रहते हैं। इनसे अनेक रंगों की नूरी किरणें उठती रहती हैं, जिनकी लहरों का मनोहर प्रकाश आकाश में क्रीड़ा करता रहता है।

और सीढ़ियां जो बाहेर की, छात आई लग तिन।

बने छज्जे उपरा ऊपर, ठौर खुसाली खेलन॥२७॥

झुण्ड के घाट के सामने (पश्चिम में) ढलकती पाल पर दो देहुरियाँ हैं, जिनके मध्य में हौज़ कौसर का मुख्य द्वार है, जहाँ पर वन की रौंस से तीन सीढ़ियाँ चढ़ी हैं। बड़ोवन के वृक्षों की डालियाँ (छत) इन सीढ़ियों तक छाया प्रदान करती हैं। बड़ोवन के इन वृक्षों की ५ भूमिकायें हैं। इनकी मेहराबों (डालियों) में हिण्डोले आये हैं। यह स्थान आनन्दमयी क्रीड़ा के लिये ही है।

**ए घाट अति सोहना, चबूतरे बुजरक।**

**अति बिराज्या झुण्ड तले, ऊपर छातें इन माफक॥२८॥**

इस प्रकार यह झुण्ड का घाट बहुत सुन्दर है। वृक्षों के झुण्डों के नीचे आये हुए दोनों चबूतरों की शोभा अत्यधिक है। इन चबूतरों के ऊपर आये हुए वृक्षों की पाँच भूमिकाओं की छतें भी इसी प्रकार मनोरम लगती

हैं।

जब हक आवत ताल को, आए बिराजत इत।

सो खेल जल का करके, ऊपर सौक को बैठत॥२९॥

जब श्री राज जी हौज़ कौसर ताल में आते हैं, तो इसी झुण्ड के घाट में विराजमान होते हैं। वे ताल के सुखद एवं सुन्दर जल में पहले क्रीड़ा करते हैं, तत्पश्चात् झुण्ड के घाट के चबूतरों आदि पर बहुत ही उल्लास (शौक) से बैठा करते हैं।

पीछे तले या ऊपर, रंग भर रूहें खेलत।

ए खुसाली खावंद की, जुबां क्या करसी सिफत॥३०॥

सखियाँ अत्यधिक आनन्द में भरकर झुण्ड के घाट के पीछे (ढलकती पाल, वन रौंस, बड़े वन के वृक्षों के

हिण्डोलों, देहुरियों, चबूतरों आदि), चौरस पाल के नीचे के महलों एवं हिण्डोलों, १२८ बड़ी देहुरियों, चबूतरों, तथा पाल के ऊपर आये हुए पाँच भूमिकाओं एवं छठी चाँदनी वाले वृक्षों के ऊपर तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करती हैं। ये सभी स्थान प्रियतम श्री राज जी की आनन्दमयी क्रीड़ा के स्थान हैं। मेरी यह जिह्वा भला इनकी महिमा का वर्णन कैसे कर सकती है।

**कई रंग इन दरखतों, अनेक रंग इन पात।**

**अनेक रंग फल फूल में, याकी इतहीं होवे बात॥३१॥**

यहाँ अनेक रंगों के वृक्ष हैं। इसी प्रकार, प्रत्येक वृक्ष में अनेक रंग के पत्ते तथा फल और फूल हैं। इनकी अद्वितीय शोभा का वर्णन तो एकमात्र परमधाम में ही सम्भव है, इस स्वप्नवत् संसार में नहीं।

इन ठौर रेती नहीं, एक जवेर को बन्ध।

खुसबोए नूर अतंत, क्यों कहूं सोभा सनन्ध॥३२॥

बड़ोवन के वृक्ष जिस चौरस पाल पर आये है, वहाँ कुञ्जवन की तरह रेती नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण पाल (चौरस पाल, ढलकती पाल आदि) एक हीरे के नग की है। यहाँ की नूरी शोभा में अनन्त सुगन्धि फैली हुई है। ऐसी स्थिति में यहाँ की शोभा का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ।

पाल हीरे की उज्जल, ऊपर रोसन बन छाहें।

तिनसे पाल सब रोसन, जिमी हरी पाच देखाए॥३३॥

यद्यपि हीरे की यह पाल अत्यन्त उज्ज्वल है, किन्तु उसके ऊपर आये वृक्षों की नूरी छाया जब पाल के ऊपर जगमगाती (पड़ती) है, तो पाल की सम्पूर्ण जमीन पाच

के समान हरे रंग की दिखायी देती है।

ए बन बाँई तरफ का, बन्या दोऊ भर पाल।

देत नूर आकास को, सोभा लेत अति ताल॥३४॥

झुण्ड के घाट के बायीं ओर जो बड़ोवन के वृक्ष आये हैं, वे दोनों पालों (ढलकती पाल तथा चौरस पाल) पर पाँच हारों के रूप में सुशोभित हो रहे हैं। इस वन से उठने वाली नूरी ज्योति आकाश में छायी रहती है, जिससे हौज़ कौसर ताल की शोभा और अधिक दिखायी पड़ती है।

**द्रष्टव्य—** बड़ोवन के वृक्षों का झुण्ड सम्पूर्ण पाल पर घेरकर आया है, किन्तु इस चौपाई में झुण्ड के घाट के बायीं ओर के ही बड़ोवन के वृक्षों का वर्णन किया गया है।

अंदर दयोहरियां पाल पर, ऊपर बन बिराज्या आए।

ए सोभा बन लेत है, ए खूबी कही न जाए॥३५॥

चौरस पाल के अन्दर की ओर, दूसरे भाग में १२८ बड़ी देहुरियाँ हैं तथा पहले (कटी पाल के) हिस्से में १२४ छोटी देहुरियाँ हैं। चौरस पाल के ऊपर बड़ोवन के वृक्षों की जो डालियाँ आयी हैं, वे इन देहुरियों के ऊपर से होते हुए ताल जल चबूतरे तक गयी हैं।

ऊपर पाल जो दयोहरी, फिरती आगूं गिरदवाए।

तिन सबों आगूं चबूतरा, तिन दोऊ तरफों उतराए॥३६॥

चौरस पाल के दूसरे भाग में १२८ बड़ी देहुरियाँ चारों तरफ घेरकर आयी हैं। उनके सामने चौरस पाल के पहले भाग में चबूतरे (चाँदे) हैं, जिनसे दायें-बायें दोनों ओर कटी पाल की सीढ़ियाँ उतरी हैं।

यों दयोहरी सब चबूतरों, तिन सीढ़ियां सबको।

हर दयोहरी हर चबूतरे, सीढ़ियां दोऊ तरफों॥३७॥

इस प्रकार, १२८ बड़ी देहुरियों के आगे चबूतरे (चाँदे) आये हैं। प्रत्येक देहुरी के आगे के चबूतरे से दोनों ओर एक भूमिका (भोम) भर की सीढ़ियाँ नीचे उतरी हैं, जिन्हें कटी पाल की सीढ़ियाँ कहते हैं।

दो सीढ़ियों के बीच में, तले चबूतरे द्वारा।

तिन सब सीढ़ियों परकोटे, चढ़ती कांगरी दोऊ किनार॥३८॥

जहाँ दो सीढ़ियाँ आमने-सामने उतरी हैं, वहाँ दोनों सीढ़ियों के मध्य में चौक है। इस चौक में चार मेहराबें हैं— दो सीढ़ियों की तरफ, एक ताल की ओर, तथा एक पाल के अन्दर के महलों की तरफ। इन सीढ़ियों के दोनों ओर परकोटे (कमर भर ऊँची दीवार) हैं, जिनके दोनों



किनारों पर चढ़ती हुई काँगरी की शोभा आयी है।

सीढ़ियों पर जो चबूतरे, तिन तले सब मेहेराब।

मेहेराब आगूँ जो चबूतरा, सोभित है ढिग आब॥३९॥

कटी पाल की सीढ़ियाँ जिन चबूतरों से उतरी हैं, उन चबूतरों के नीचे मेहराबी द्वार बने हुए हैं। इनकी तरफ सामने ताल की ओर जल रौंस है, जहाँ हाथ लगता हुआ जल आया है।

दो दो सीढ़ियों के बीच में, ए जो छोटे कहे दो द्वार।

तिन पर अजब काँगरी, अति सोभित पाल अपार॥४०॥

कटी पाल की सीढ़ियाँ जहाँ आमने-सामने उतरती हैं, वहाँ प्रत्येक दो सीढ़ियों के मध्य में दो छोटे द्वारों का वर्णन किया गया है। एक द्वार जल रौंस की ओर है तथा

दूसरा द्वार पाल के अन्दर के महलों की ओर है। इनके छत की किनार पर तथा कटी पाल की किनार पर आश्चर्य में डालने वाली काँगरी बनी है, जिसकी शोभा अपरम्पार है।

**पाल ऊपर जो दयोहरी, बीच कठेड़ा सबन।**

**ए बैठक सोभा लेत है, कहा कहूं जुबां इन॥४१॥**

चौरस पाल के ऊपर जो १२८ बड़ी देहुरियाँ आयी हैं, उनके सामने के चबूतरों की बाहरी किनार पर सभी जगह कठेड़ा है। सखियों के बैठने का यह स्थान बहुत ही सुन्दर है, जिसका वर्णन इस जिह्वा (वाणी) से हो पाना सम्भव नहीं है।

## घाट बांई तरफ नव दयोहरी का

हौज़ कौसर ताल में बायीं ओर (उत्तर दिशा में) नौ देहुरी का घाट आया है, जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

घाट बांई तरफ का, चौथे हिस्से तक।

ऊपर झुण्ड बिराजिया, अति सोभा बुजरक॥४२॥

झुण्ड के घाट की बायीं ओर उत्तर दिशा में नौ देहुरी का घाट आया है, जो चौरस पाल के चौथे हिस्से (२५० मन्दिर) की चौड़ाई में दिखायी दे रहा है। इसकी (चबूतरे की) किनार पर चारों तरफ वृक्षों के झुण्ड हैं अर्थात् बहुत से वृक्ष आये हैं, जिनकी शोभा बहुत अधिक (अनन्त है)।

ऊपर बनी नव दयोहरी, फिरते आए तले आठ थंभ।

अदभुत बन्या है कठेड़ा, ए बैठक अति अचंभ॥४३॥

५०० मन्दिर लम्बे तथा २५० मन्दिर चौड़े चबूतरे की किनार पर (चारों दिशाओं तथा चारों कोनों में ) कुल आठ थम्भ विद्यमान हैं। चबूतरे की चारों दिशाओं में तीन-तीन सीढ़ियाँ उतरी हैं। शेष जगह में कठेड़ा आया है, जिसकी शोभा विचित्र (आश्चर्यजनक) है। इन थम्भों की छत पर नौ देहुरियाँ सुशोभित हो रही हैं। इस प्रकार इस बैठक की शोभा अत्यधिक आश्चर्य में डालने वाली है।

उतरती दोए दयोहरी, तिन तले दोए चबूतर।

बीच उतरती सीढ़ियां, तले चौक पानी भीतर॥४४॥

नौ देहुरी के घाट के सामने चौरस पाल के दूसरे भाग में

दो बड़ी देहुरियाँ आयी हैं, जिनके मध्य में घाट की सीढ़ियाँ उतरी हैं। दोनों देहुरियों के सामने चौरस पाल के पहले भाग में दो चबूतरे हैं, जिनके मध्य में घाट की सीढ़ियों के सामने चौक है। दोनों चबूतरों और मध्य के चौक के मिल जाने से ७५० मन्दिर लम्बा और २५० मन्दिर चौड़ा एक दूसरा चौक बन गया है। इसके ठीक नीचे भी इतना ही लम्बा-चौड़ा चौक आया है। घाट की सीढ़ियाँ उतरकर, इस चौक को पार करके जब तीन सीढ़ियाँ नीचे उतरते हैं तो जल-रौंस पर पहुँच जाते हैं, जहाँ हाथ से लगता हुआ जल आया है।

फेर कहूँ इनका बेवरा, ज्यों जाहेर सबों समझाए।

अब कहूँ इन भांतसों, ज्यों मोमिनों हिरदे समाए॥४५॥

मैं पुनः इन (देहुरी, चबूतरे, सीढ़ियों, वृक्षों आदि) का

विवरण बताती हूँ, जिसको सभी स्पष्ट रूप से समझ सकें। अब मैं इस प्रकार से वहाँ की शोभा का वर्णन करने जा रही हूँ, जो ब्रह्मात्माओं के धाम-हृदय में बस जाये।

**पेड़ चार चारों तरफों, छाया सोभा लेत अतंत।**

**हार किनार बराबर, इत ज्यादा दो दरखत॥४६॥**

नौ देहुरी के घाट के चबूतरे के चारों ओर (कोनों में) चार वृक्ष हैं, जिनकी छाया अनन्त शोभा को धारण किये हुए है। ये चारों वृक्ष बड़ोवन के वृक्षों की तीसरी और चौथी हार की सीध में आये हैं। वैसे गिनती के अनुसार, चबूतरे के उत्तर एवं दक्षिण में मिलाकर मात्र दो ही वृक्ष होने चाहिए थे, किन्तु यहाँ पर चारों कोनों में चार वृक्ष हैं। इस प्रकार, गणना के अनुसार दो वृक्ष अधिक आये हैं।

नव चौकी का मोहोल जो, ए बड़ी ठौर बीच पाल।

चौथा हिस्सा पाल का, हुई दयोहरी आगूं पड़साल॥४७॥

चौरस पाल पर स्थित नौ देहुरी का यह घाट (महल) बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह चौरस पाल के चौथे हिस्से में (संक्रमणिक सीढ़ियों से लगते हुए) शोभायमान है। नौ देहुरी के घाट के आगे चौरस पाल के तीसरे हिस्से में (संक्रमणिक सीढ़ियों की ओर से दूसरे हिस्से में) पड़साल की शोभा आयी है। इसके सामने दूसरे हिस्से में घाट की सीढ़ियाँ एवं दो देहुरियाँ शोभायमान हैं।

इतथें उतरती सीढ़ियां, दाएं बाएं दो दयोहरी।

हुए तीनों चौक बराबर, सीढ़ियां इतथें तले उतरी॥४८॥

नौ देहुरी के घाट के सामने पड़साल के आगे (चौरस पाल के दूसरे भाग में) घाट की सीढ़ियाँ उतरी हैं। इनके

दायें-बायें दो बड़ी देहुरियाँ हैं। दोनों देहुरियों और मध्य के घाट की सीढ़ियों के सामने चौरस पाल के प्रथम हिस्से में तीन चौक हैं, जो बराबर ऊँचे एवं लम्बे-चौड़े हैं। ये तीनों चौक मिलकर ७५० मन्दिर लम्बे एवं २५० मन्दिर चौड़े एक चौक का रूप धारण कर लेते हैं। इस चौक के दायें-बायें से कटी पाल की भोम (एक भूमिका) भर की सीढ़ियाँ उतरी हैं।

**दयोहरी तले जो चबूतरे, चौक दूजा याही बराबर।**

**जल ऊपर जो चबूतरा, आई सीढ़ियाँ इत उतर॥४९॥**

दोनों देहुरियों के आगे जिस प्रकार ७५० मन्दिर लम्बा एवं २५० मन्दिर का चौड़ा चौक है, उसी प्रकार इस चौक के ठीक नीचे भी इतना ही लम्बा-चौड़ा चौक आया है, जहाँ घाट की सीढ़ियों से उतरकर आते हैं।



इस चौक से ताल की जल-रौंस पर ३ सीढ़ियाँ उतरती हैं।

अब घाट छोड़ आगे चले, क्यों कहूँ खूबी ए।

एक छाया सब पाल पर, और छाया पाल से उतरती जे॥५०॥

अब मैं नौ देहुरी के घाट से आगे चलकर आसपास की शोभा को देख रही हूँ। यहाँ की विशेषताओं का वर्णन मैं कैसे करूँ? यहाँ बड़ोवन के वृक्षों की डालियाँ, फूल, एवं पत्ते आपस में इस प्रकार मिल गये हैं कि सम्पूर्ण पाल पर एक समान ही छाया हो रही है। यद्यपि चौरस पाल पर बड़ोवन के वृक्षों की तीन हारें आयी हैं और ढलकती पाल पर दो हारे हैं, फिर भी दोनों पालों के वृक्षों की डालियाँ आपस में मिल गयी हैं और संक्रमणिक सीढ़ियों पर छाया करती हुई नीचे उतर रही हैं।

और हार दोऊ उतरती, लगती तीसरी तले बन।

इन विध पेड़ बराबर, गिरदवाए सबन॥५१॥

बड़ोवन के वृक्षों की दो हारें उस ढलकती पाल पर हैं, जो चौरस पाल से एक भूमिका नीचे है। ढलकती पाल के दोनों हारों के वृक्ष (डालियाँ) चौरस पाल पर आयी तीसरी हार के वृक्षों (डालियों) से मिले हुए हैं। इस प्रकार, चारों ओर बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें समान रूप से शोभायमान हो रही हैं।

डारी लटकी जल पर, पेड़ गिरद दयोहरी हार।

और पेड़ डारों डारी मिली, यों फिरती पाल किनार॥५२॥

बड़ोवन के वृक्षों की पाँचवी हार, जो चौरस पाल पर आयी है, उसकी ताल की तरफ की डालियाँ ताल के जल चबूतरे तक छायी हुई हैं। इस प्रकार ताल के चारों

ओर चौरस पाल पर देहुरियाँ एवं वृक्षों की हारें शोभायमान हो रही हैं। सभी वृक्षों की डालियाँ आपस में मिलकर अलौकिक सुन्दरता को प्रकट कर रही हैं।

## घाट सोले दयोहरी का

इसके आगे सोलह देहुरी के घाट की मनोहारिता का वर्णन किया जा रहा है।

जमुना तरफ ताल के, जित जल भिल्या माहें जल।

दयोहरियां इन बंध पर, जल पर सोभित मोहोल॥५३॥

हौज़ कौसर के पूर्व में (यमुना जी की तरफ) चौरस पाल पर सोलह देहुरी का घाट आया है, जिसके नीचे से होकर यमुना जी का जल ताल में मिल जाता है। इस प्रकार, यमुना जी एवं हौज़ कौसर ताल की सन्धि में

जल के ऊपर १६ देहुरी का घाट (महल) जगमगा रहा है।

तले जाली द्वारें पाल में, जित जल रह्या समाए।

इत बैठ झरोखों देखिए, जानों पूर आवत हैं धाए॥५४॥

सोलह देहुरी के घाट के नीचे, जल की जमीन पर ५ थम्भों की नौ हारें हैं। इनमें से पूर्व के ५ थम्भों के मध्य ४ घड़नाले (४ जाली द्वार) आये हैं, जिनसे यमुना जी का जल हौज़ कौसर में प्रवेश करता है। इन थम्भों की छत (सोलह देहुरी के घाट की प्रथम भूमिका) में ५ थम्भों की ७ हारें हैं। इनमें से पूर्व व पश्चिम के पाँच-पाँच थम्भों को झरोखों के थम्भ कहा जाता है। पूर्व के झरोखों के ५ थम्भों के पास बैठकर देखने पर यमुना जी की विशाल जलराशि तीव्र गति से आती हुई दृष्टिगोचर होती

है।

चार दयोहरियां लग लग, चारों तरफों चार चार।

सोले बंध पर दयोहरी, थंभ पचीस पांच पांच हार॥५५॥

इस घाट में एक पंक्ति में चार देहुरियाँ आयी हैं। इस प्रकार चार देहुरियों की चार हारें सुशोभित हो रही हैं। यमुना जी और हौज़ कौसर ताल की सन्धि में १६ देहुरियाँ हैं, जो ५ थम्भों की ५ हारों (कुल २५ थम्भों) की चाँदनी के ऊपर आयी हुई हैं।

पचीस थंभ ऊपर कहे, तले सोले थंभ गिरदवाए।

सो पोहोंचे दूजी भोम में, भोम बीच की अति सोभाए॥५६॥

सोलह देहुरी के घाट की दूसरी भूमिका (चौरस पाल) में ५०० मन्दिर का लम्बा-चौड़ा चबूतरा आया है। इस

चबूतरे पर ५ थम्भों की ५ हारें आयी हैं, अर्थात् कुल २५ थम्भ आये हैं। इनमें से चबूतरे की किनार पर कुल १६ थम्भ हैं। इसके ठीक नीचे १६ देहुरी के घाट की प्रथम भूमिका में भी १६ थम्भ हैं, जिनकी अलौकिक शोभा हो रही है।

**भावार्थ—** सोलह देहुरी के घाट की प्रथम भूमिका में ५ थम्भों की ७ हारें हैं। इसमें मध्य का एक थम्भ नहीं है क्योंकि यहाँ २५० मन्दिर की लम्बी-चौड़ी छत नहीं है। अतः कुल थम्भ ३४ होते हैं। इनमें से पूर्व व पश्चिम के ५-५ थम्भों को छोड़कर मध्य के २४ थम्भों के ऊपर सोलह देहुरी के घाट की दूसरी भूमिका में (चौरस पाल पर) २५ थम्भ हैं।

**इत कठेड़ा चारों तरफों, बीच कठेड़ा और।**

**इन बीच चारों हांसों कुंड बन्या, जल जात चल्या इन ठौर॥५७॥**

प्रथम भूमिका की किनार के इन १६ थम्भों के मध्य चारों तरफ कठेड़े शोभायमान हैं। इन थम्भों के भीतरी तरफ ८ थम्भ घेरकर आये हैं, जिनके मध्य भी चारों ओर कठेड़ा सुशोभित हो रहा है। इन थम्भों की भीतरी तरफ २५० मन्दिर का लम्बा-चौड़ा (समचौरस) कुण्ड बन गया है, जहाँ से यमुना जी का जल हौज़ कौसर की ओर बहता हुआ दिखायी देता है।

**इत खुली भोम जल ऊपर, चारों तरफों बराबर।**

**चारों हिस्से हर तरफों, आधी खुली जिमी जल पर॥५८॥**

यमुना जी के जल के ऊपर सोलह देहुरी के घाट की प्रथम भूमिका में जो ८ थम्भ आये हैं, उनके भीतरी

तरफ जमीन (जल की जमीन पर आये थम्भों की छत) नहीं है। यहाँ कुण्ड जैसी शोभा है, जो चारों ओर से बराबर की माप वाला (समचौरस) है। यहाँ ८ थम्भों की बाहरी तरफ जो १६ थम्भ हैं, वे ५०० मन्दिर की लम्बाई-चौड़ाई में हैं। इसकी प्रत्येक दिशा से १२५-१२५ मन्दिर के चार भाग दिखते हैं, जिसमें से मध्य के दो भाग में जमीन नहीं है, शेष दो हिस्सों में (आधी जगह में) जमीन है।

**ऊपर बैठक तले जल, ए जो कहा कठेड़ा गिरदवाए।**

**इत आए जब बैठिए, तले जल अति सोभाए॥५९॥**

कुण्ड के चारों ओर कठेड़ा आया हुआ है, जिसके चारों ओर गिलम के ऊपर सुन्दर बैठक है तथा कुण्ड में जल लहरा रहा है। जब हम यहाँ आकर बैठते हैं एवं यहाँ की



शोभा को देखते हैं, तो नीचे स्थित कुण्ड का जल बहुत अधिक सुशोभित होता है।

**भावार्थ-** इस कुण्ड के चारों ओर ८ थम्भ आये हुए हैं। इन थम्भों के बीच में कठेड़ा बना हुआ है। इस कुण्ड के चारों ओर १२५ मन्दिर की चौड़ी रौंस आयी है। इस रौंस पर गिलम बिछी हुई है, जिस पर सुन्दरसाथ की बैठक होती रहती है।

**चारों तरफों कुण्ड ज्यों, इत देत खूबी अति जल।**

**हाए हाए ए बात करते मोमिन, रूह क्यों न जात उत चल॥६०॥**

यहाँ यमुना जी का जल चौरस कुण्ड के समान दृष्टिगोचर हो रहा है। चारों ओर देखने पर इस जल की बहुत विशेष शोभा दिखायी देती है। हाय! हाय! वहाँ की शोभा का वर्णन करने पर भी ब्रह्मसृष्टियों की आत्मायें

वहाँ प्रत्यक्षतः क्यों नहीं पहुँच पा रही हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में धाम धनी द्वारा यह निर्देश दिया गया है कि परिक्रमा ग्रन्थ को मात्र चर्चनी के रूप में बुद्धि-विलास का ही विषय न बनाया जाये, बल्कि उसे क्रियात्मक रूप में अपने जीवन में उतारा जाये अर्थात् अपने आत्म-चक्षुओं से परमधाम के २५ पक्षों की शोभा को स्पष्ट रूप से देखा जाये। इस चौपाई के चौथे चरण से शरीर छोड़ने का भाव नहीं लेना चाहिए।

चार दयोहरी आगूं चबूतरा, तिन तले घड़नाले चार।

तिन बीच चारों झरोखे, करें पानी ऊपर झलकार॥६१॥

सोलह देहुरियों में से पूर्व की ४ देहुरियों (जो चबूतरों पर स्थित थम्भों के ऊपर हैं) के सामने पूर्व दिशा में १२५ मन्दिर का चौड़ा चौक है। इसके नीचे १६ देहुरी

के घाट की प्रथम भूमिका में पाँच थम्भ हैं, जिनके मध्य ४ मेहराबें हैं जिन्हें झरोखे के थम्भ कहते हैं। इनके नीचे जल की जमीन पर ५ थम्भों के मध्य चार घड़नाले हैं। ये चार देहुरियाँ तथा चार मेहराबें (झरोखे) यमुना जी के जल पर झलकार कर रहे हैं।

**आगूं पांच थंभ ऊपर चबूतरा, इसी भांत झरोखों पर।**

**सोभा लेत चारों झरोखे, थंभ तले ऊपर बराबर॥६२॥**

सोलह देहुरी के घाट के पूर्व में चबूतरे पर ५ थम्भ आये हैं। उनके नीचे सोलह देहुरी के घाट की प्रथम भूमिका में भी चबूतरे पर ५ थम्भ हैं, जिनके मध्य ४ मेहराबें (झरोखे) हैं। इस प्रकार ऊपर-नीचे ५-५ थम्भ व ४-४ झरोखे शोभायमान हो रहे हैं।

ऊपर दोऊ तरफों सीढ़ियां, दोऊ तरफ उतरते द्वार।

इत आया तले का चबूतरा, परकोटे सोभे दोऊ पार॥६३॥

सोलह देहुरी के घाट की पश्चिम दिशा में १२५ मन्दिर की चौड़ी पड़साल है, जिसके आगे ७५० मन्दिर का लम्बा और २५० मन्दिर का चौड़ा जो चौक है, उसके दायें-बायें (उत्तर-दक्षिण) से कटी पाल की सीढ़ियाँ उतरी हैं। जहाँ सामने कटी पाल की सीढ़ियाँ उतरी हैं, वहाँ पर चौक में चारों कोनों पर चार थम्भ हैं। इनके मध्य चारों दिशा में चार मेहराबें हैं, जिनमें से दो मेहराबें (द्वार) दोनों तरफ से उतरती सीढ़ियों पर हैं। इन सीढ़ियों के दोनों ओर (बाहरी और भीतरी) परकोटे (काँगरी युक्त कमर भर ऊँची दीवार) की शोभा है। इस चौक (चबूतरे) से ३ सीढ़ी उतरकर जल-रौंस पर आ सकते हैं। जल-रौंस से कमर भर ऊँचा होने से इस चौक को चबूतरा

कहा गया है।

जो अंदर चारों घड़नाले, आगूं चबूतरा जल पर।

तले जल जाली बारों आवत, सोभा इन घाट कहूं क्यों कर॥६४॥

सोलह देहुरी के घाट के पश्चिम में जल-रौंस के नीचे ५ थम्भों के मध्य चार घड़नाले हैं, जो जालीद्वार बने हैं। इनमें से होकर यमुना जी का जल हौज़ कौसर में समाता है। इस जल-रौंस के सामने (बाहरी तरफ) कमर भर ऊँचा चबूतरा है, जिस पर सोलह देहुरी के घाट की प्रथम भूमिका आयी है। इस घाट की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

सीढ़ियों ऊपर जो चबूतरा, बने चारों झरोखे जे।

इत आगूं सबन के कठेड़ा, अति बन्या ताल पर ए॥६५॥

सोलह देहुरी के घाट की प्रथम भूमिका (जो कमर-भर ऊँचे चबूतरे पर है) में ५ थम्भों की ७ हारें हैं। इनमें से पूर्व व पश्चिम के ५-५ थम्भ (४-४ मेहराबें) झरोखे के थम्भ कहलाते हैं। पूर्व के झरोखे के ५ थम्भों के मध्य कठेड़ा शोभायमान है। पश्चिम के झरोखे के ५ थम्भों के दायें-बायें १-१ थम्भ व मेहराबें और हैं। इन ७ थम्भों और ६ मेहराबों के सामने ताल की ओर ४ थम्भ एवम् ३ बड़ी मेहराबे हैं। यहाँ से तीन सीढ़ी उतरकर ताल के जल-रौंस पर जाते हैं। इस प्रकार, हौज़ कौसर ताल के सोलह देहुरी के घाट की बड़ी सुन्दर शोभा आयी है।

**सोभा जल जो लेत है, भरयो नूर रोसन आकास।**

**बीच लेहेरें लगेँ मोहोलन को, ए क्यों कहूं खूबी खास॥६६॥**

सोलह देहुरी के घाट से हौज़ कौसर ताल के जल की

अलौकिक शोभा दिखायी दे रही है। जल से उठने वाली नूरी आभा सम्पूर्ण आकाश में फैली हुई है। जल में लहराने वाली लहरें टापू महल को स्पर्श करती हैं। इस विशेष शोभा को मैं कैसे व्यक्त करूँ।

**खेलत जुदी जुदी जिनसों, इत पांउ ना भोम लगत।**

**इत खेलें रूहें पाल पर, कई विध दौड़त कूदत॥६७॥**

यहाँ पर सखियाँ अलग-अलग प्रकार से खेलती हैं। हौज़ कौसर की पाल पर अँगनायें तरह-तरह से दौड़कर या कूदकर खेला करती हैं, किन्तु उनके पाँव रेतीली धरती पर नहीं पड़ते। सम्पूर्ण पाल की शोभा हीरे के नग के समान आयी है।

ए भोम इन विध की, पांउ न खूंचत रेत।

खेलत हैं इत रूहें, नए नए सुख लेत॥६८॥

यहाँ क्रीड़ा-स्थली इस प्रकार की है कि यहाँ सखियों के पाँव में रेत चुभती नहीं है। यहाँ पर वे अनेक प्रकार के नये-नये खेल करके आनन्द लेती हैं।

**भावार्थ-** हौज़ कौसर ताल की पाल पर कुञ्ज वन की रेती की तरह रेत नहीं है। सम्पूर्ण पाल चिकनी है, किन्तु बहुत ही कोमल है। इसी प्रकरण की चौपाई ३२ में स्पष्ट कहा गया है कि "इन ठौर रेती नहीं"।

आगूं बन इन घाट के, अतंत सोभा लेत।

तीसरे झुंड के घाट में, खेलें खावंद रूहें समेत॥६९॥

सोलह देहुरी के घाट के दायें-बायें बड़ोवन के वृक्षों की अत्यन्त सुन्दर शोभा दिखायी दे रही है। सोलह देहुरियों



वाला यह तीसरा घाट वृक्षों के झुण्डों से घिरा हुआ है।  
यहाँ पर श्री राजश्यामा जी अँगनाओं के साथ तरह-तरह  
की प्रेममयी क्रीड़ायेँ करते रहते हैं।

## घाट तेरे दयोहरी का

अब तेरह देहुरियों वाले घाट का वर्णन किया जाता है।

**दयोहरी चौथे घाट की, देखें पाइयत हैं सुख।**

**झुण्ड बन्या इन ऊपर, खूबी क्योंकर कहूं इन मुख॥७०॥**

चौथे घाट की देहुरियों की शोभा को देखकर बहुत सुख  
होता है। इस घाट में भी वृक्षों के झुण्डों की अनुपम शोभा  
आयी है, जिसकी विशेषताओं का वर्णन मैं इस मुख से  
कैसे करूँ।

चौक पर फिरती चांदनी, आठ दयोहरी गिरदवाए।

पांच दयोहरियां बीच में, तले आठ थंभ सोभाए॥७१॥

इस घाट में २५० मन्दिर का चौड़ा और ५०० मन्दिर का लम्बा एक चौक (चबूतरा) है। इसके ऊपर चारों दिशाओं तथा चारों कोनों में कुल ८ थम्भ आये हैं। इसकी चाँदनी में कुल १३ देहुरियाँ हैं, जिसमें से ८ किनार पर और ५ बीच में हैं।

तले फिरता कठेड़ा, चारों तरफों द्वार।

तले उतरती सीढ़ियां, जल माहें करें झलकार॥७२॥

चबूतरे से चारों दिशा के मध्य में ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। सीढ़ियों की जगह छोड़कर बाकी जगह में चबूतरे की किनार पर कठेड़ा सुशोभित हो रहा है। इन सीढ़ियों की जगह को ही द्वार कहा गया है, क्योंकि यहीं से चबूतरे पर

आते-जाते हैं। आगे घाट पर भोम भर की सीढ़ियाँ उतरी हैं, जिनकी नूरमयी किरणें जल में झलकार कर रही हैं।

जल पर दोए चबूतरे, ऊपर चढ़ती दयोहरी दोए।

आए पोहोंची थंभन को, अति सोभा घाट पर सोए॥७३॥

हौज़ कौसर ताल की जल रौंस से लगते हुए कटी पाल के हिस्से में २५० मन्दिर के लम्बे-चौड़े दो चबूतरे (चाँदे) आये हैं। इनके सामने चौरस पाल के दूसरे हिस्से में (घाट की सीढ़ियों के दायें-बायें) दो देहुरियाँ हैं, जो चार-चार थम्भों के ऊपर शोभायमान हैं। इस प्रकार तेरह देहुरी के घाट की अत्यधिक शोभा हो रही है।

फेर इनका भी कहूं बेवरा, ज्यों हिरदे आवे मोमिन।

ए चौथा घाट अति सोहना, सुख होए अर्स रुहन॥७४॥

मैं पुनः इन देहुरियों तथा चबूतरों आदि का विवरण भी देती हूँ, जिससे यहाँ की सम्पूर्ण शोभा आत्माओं के धाम-हृदय में बस जाये। तेरह देहुरियों वाला यह घाट बहुत सुन्दर है। यहाँ पर क्रीड़ा करने से सखियों को बहुत आनन्द होता है।

**तेरे चौकी बीच पाल के, आगे पालै की पड़साल।**

**गिरद चौकी चार बिरिख की, सोभित झुण्ड कमाल॥७५॥**

चौरस पाल के चौथे हिस्से में (ताल की तरफ से) तेरह देहुरी का घाट आया है। आगे तीसरे हिस्से में पड़साल है। चबूतरे के चारों कोनों में चार वृक्षों का झुण्ड है , जिसकी शोभा अत्यधिक आश्चर्य में डालने वाली है।

उतरी सीढ़ियां पड़साल से, चौक हुआ बीच इत।

दोऊ चौक दाएं बाएं बने, बीच दोए दयोहरी जित॥७६॥

पड़साल से घाट की सीढ़ियाँ उतरी हैं। जहाँ पर सीढ़ियाँ उतरी हैं, वहाँ २५० मन्दिर का लम्बा-चौड़ा चौक बना है। इसके दायें-बायें भी इतने ही लम्बे-चौड़े १-१ चौक आये हैं। इस प्रकार कुल चौक (तीनों मिलाकर) ७५० मन्दिर का लम्बा एवं २५० मन्दिर का चौड़ा है। दायें-बायें के इन चौकों के ऊपर (चौरस पाल पर) चबूतरे (चाँदे) हैं, जिनके सामने चौरस पाल के दूसरे भाग में दो देहुरियाँ हैं, जिनके बीच में घाट की सीढ़ियाँ हैं।

इतथें आगूं सीढ़ियां, दोऊ चबूतरों बराबर।

इत चौक होए सीढ़ी उतरीं, तले आए मिली चबूतर॥७७॥

इन दोनों चबूतरों से दायें-बायें कटी पाल की भोम भर की सीढ़ियाँ उतरी हैं। नीचे जहाँ आमने-सामने से सीढ़ियाँ उतरी हैं, वहाँ पर अति सुन्दर चौक दिखायी दे रहा है। चौक से ३ सीढ़ियाँ नीचे उतरकर जल-रौंस पर जाते हैं और पुनः ३ सीढ़ियाँ उतरकर जल-चबूतरे पर आ जाते हैं।

**मोमिन होए सो देखियो, तुमारा दिल कह्या अर्स।**

**चारों घाट लीजो दिल में, दिल ज्यों होए अरस-परस॥७८॥**

हे साथ जी! आपमें जो भी परमधाम की आत्मा है, वह इन घाटों की शोभा को अवश्य देखे। आपके दिल (हृदय) को ही धाम कहा गया है, इसलिये अपने धाम-हृदय में इन चारों घाटों की अनुपम शोभा को बसाइये, जिससे आपका यह दिल परात्म और धनी के दिल से

एकरस (अरस-परस) हो जाये।

**भावार्थ-** इस चौपाई से यह पूर्णतया स्पष्ट हो रहा है कि ब्रह्मसृष्टियों के लिये चितवनि अनिवार्य है। अरस -परस का तात्पर्य है- एकरस, एकाकार, या ओत-प्रोत हो जाना। जब आत्मा के धाम-हृदय में धनी की शोभा बस जाती है, तो वह परात्म से एकाकार हो जाती है, अर्थात् परात्म के दिल और आत्मा के दिल में कोई भी भेद नहीं रह जाता। सागर ग्रन्थ ११/४४ में इसे इस रूप में दर्शाया गया है-

अन्तस्करन आतम के, जब ए रहयो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥

चितवनि की और गहराई में डूबने पर वह धनी के दिल से भी एकाकार (एकरस) हो जाती है।

ए पाल सारी इन भांतकी, कई विध खेल होत इत।

या घाटों या पाल पर, हक रूहें खेल करत॥७९॥

हौज़ कौसर की यह सम्पूर्ण पाल इस प्रकार की है कि यहाँ अनेक प्रकार की प्रेममयी क्रीड़ायेँ होती रहती हैं। चारों घाटों तथा पाल के ऊपर श्री राजश्यामा जी सखियों के साथ तरह-तरह की आनन्दमयी लीलायेँ करते हैं।

**भावार्थ-** चौरस पाल के चार भाग हैं। प्रथम भाग में कटी पाल और १२४ छोटी देहुरियाँ हैं। दूसरे भाग में चारों ओर १२८ बड़ी देहुरियाँ एवं तीन दिशाओं में घाट की सीढ़ियाँ हैं। तीसरे भाग में पड़साल है, तथा चौथे भाग में चारों दिशाओं में चार घाट हैं।



खूबी अजब इन बन की, जो बन ऊपर पाल।

दयोहरियां उलंघ के, डारें लटक रही माहें ताल॥८०॥

चौरस पाल के ऊपर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों की शोभा महान आश्चर्य में डालने वाली है। इन वृक्षों की डालियाँ देहुरियों के ऊपर से होकर हौज़ कौसर ताल के जल में (जल चबूतरे तक) लटक रही हैं।

ऊपर पाल तलाव के, ऊंचा बन अमोल।

जिनकी लम्बी डारियां, तिनमें बने हिंडोल॥८१॥

हौज़ कौसर ताल की पाल के ऊपर आये हुए ऊँचे—ऊँचे वृक्षों की शोभा इतनी अधिक है कि उसकी कोई उपमा ही नहीं दी जा सकती। इन वृक्षों की डालियाँ बहुत अधिक लम्बी हैं और इनमें हिण्डोले लटक रहे हैं।

अंदर किनारे पाल पर, दयोहरियां बराबर।

सोभित किनारे गिरदवाए, अति सोभा सुन्दर॥८२॥

हौज़ कौसर ताल की पाल के ऊपर प्रथम हिस्से में १२४ छोटी एवं दूसरे हिस्से में १२८ बड़ी देहुरियाँ चारों ओर आयी हैं। ये अत्यन्त मनोहर शोभा को लिये हुए हैं और ताल की ओर किनारे-किनारे चारों ओर शोभायमान हो रही हैं।

ऊपर बन बुजरक, कई हिंडोलों हींचत।

कई डारी बन झूमत, कई विध खेल करत॥८३॥

पाल के ऊपर अपने अन्दर महान शोभा को समेटे हुए बड़ोवन के वृक्ष आये हुए हैं। इन वृक्षों की डालियाँ झुकी रहती हैं, जिनमें बहुत से हिण्डोले लगे हुए हैं। इनमें युगल स्वरूप के साथ सखियाँ तरह-तरह की क्रीड़ायें

करती हैं।

फिरते आए घाट लग, चारों घाट बराबर।

कम ज्यादा इनमें नहीं, अब देखो पाल अंदर॥८४॥

हौज़ कौसर की पाल की सम्पूर्ण शोभा को देखते हुए झुण्ड के घाट में आते हैं। वस्तुतः चारों घाटों की शोभा समान ही है। कोई भी घाट किसी अन्य घाट से न तो अधिक सुन्दर है और न कम सुन्दर है। हे साथ जी! अब आप चौरस पाल के अन्दर आये हुए महलों की शोभा को देखिए।

## पाल अंदर की मोहोलात

अब चौरस पाल के अन्दर आए हुए महलों की शोभा का वर्णन किया जा रहा है।

**आगूं फिरता चबूतरा, हाथ लगता आब।**

**लग लग द्वार ऊपर बने, जिन बिध होत मेहेराब॥८५॥**

ताल के चारों ओर एवं चौरस पाल की भीतरी तरफ चबूतरा (जल-रौंस) है, जहाँ पर हाथ लगता हुआ जल है अर्थात् ताल में पानी का स्तर जल-रौंस के बराबर है। इसके (बाहरी तरफ) आगे चारों ओर कटी पाल के हिस्से में अनेक मेहराबी द्वार बने हुए हैं, जिनसे होकर पाल के अन्दर के महलों में जाया जाता है।

**द्रष्टव्य—** १२४ छोटी देहुरियों के नीचे १२४ छोटे द्वार हैं। १२८ चाँदों (चबूतरों) के नीचे १२८ बड़े द्वार हैं।

**ताल में द्वार लग लग, पौरें बनी बीच पाल।**

**झलकत हैं थंभ अगले, सोभा लेत है ताल॥८६॥**

ताल की जल-रौंस के सामने चौरस पाल की कटी-

पाल के हिस्से में पास-पास में बहुत से द्वार बने हुए हैं। इनसे होकर पाल के अन्दर के महलों में जाने के रास्ते हैं। इन द्वारों में थम्भों तथा मेहराबों की अति सुन्दर शोभा आयी है। ताल के सामने के थम्भों और मेहराबों के मनोहर प्रतिबिम्ब ताल में झलझलाते रहते हैं।

अब क्यों कहूं पाल अंदर की, कई थंभ कई मोहोलात।

कई देहेलाने कई मंदिर, ए खूबी कही न जात॥८७॥

अब मैं पाल के अन्दर की शोभा का वर्णन कैसे करूँ। यहाँ बहुत से थम्भ एवं महल हैं, जिनमें बहुत सी देहलाने और मन्दिर विद्यमान हैं। इनकी दिव्य शोभा का वर्णन मेरे इस मुख से नहीं हो पा रहा है।

**थंभ दोए हारें बनी, अंदर मोहोल कई और।**

**कई बैठकें जुदी जुदी जिनसों, कहां लग कहूं कई ठौर॥८८॥**

पाल के अन्दर थम्भों की दो हारें बनी हुई हैं तथा बहुत से महल भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इन महलों में अलग – अलग प्रकार की बहुत सी बैठकें बनी हुई हैं। बहुत से स्थानों पर बनी हुई इन बैठकों की शोभा का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

**भावार्थ–** यहाँ महलों की दो हारों के मध्य थम्भों की दो हारें विद्यमान हैं।

**एह जुगत सब पाल में, गिनती न होए हिसाब।**

**थंभ द्वार जो झलकत, सो कहा कहे जुबां ख्वाब॥८९॥**

पाल के अन्दर (नीचे) इस प्रकार थम्भों, महलों आदि की बनावट है कि उनकी संख्या की माप या गणना हो ही

नहीं सकती अर्थात् वे अनन्त हैं। नूरमयी थम्भ और द्वार (कटी पाल के मेहराबी द्वार) इस प्रकार झलकार कर रहे हैं कि सपने की यह जिह्वा उनकी शोभा का वर्णन नहीं कर सकती।

**और सीढ़ियां चारों घाट की, इत दरवाजे नाहें।**

**तित मोहोलात है अंदर, बिना हिसाबें माहें॥९०॥**

चारों घाटों की सीढ़ियों के सामने चौक की किनार पर दरवाजे नहीं आये हैं (यहाँ थम्भ व मेहराबें हैं)। यहाँ से पाल के अन्दर (नीचे) जाते हैं, जहाँ इतने महल बने हुए हैं कि उनकी गणना ही नहीं हो सकती।

**भावार्थ—** यद्यपि तीन घाटों में ही घाट की सीढ़ियाँ हैं, सोलह देहुरी के घाट में नहीं हैं, किन्तु यहाँ पर भी जल-रौंस पर तीन सीढ़ियाँ तो उतरी ही हैं। दरवाजों के

न होने का भाव यह है कि झुण्ड के घाट, नौ देहुरी के घाट, या तेरह देहुरी के घाट में सीढ़ियों से उतरने पर सामने ७५० मन्दिर लम्बा व २५० मन्दिर चौड़ा एक चौक है, जिसकी जल-रौंस की तरफ की किनार पर चार थम्भों के ऊपर तीन मेहराबें बनी हुई हैं। इस चौक से जल-रौंस पर तीन-तीन सीढ़ियाँ भी उतरी हैं। इसी प्रकार की शोभा सोलह देहुरी के घाट में भी है। इन्हें ही दहलान या मेहराबी द्वार कहते हैं।

चारों हिस्से ताल के, मोहोल बने इन ठाट।

और झुण्ड ऊपर चारों चौक के, ए जो बने चारों घाट॥९१॥

इस प्रकार ताल के चारों खाँचों (भागों) में महलों की अलौकिक शोभा हो रही है। इनके ऊपर चारों घाटों (चबूतरों या चौकों) में आये हुए वृक्षों के झुण्डों की भी



अनुपम शोभा है।

**द्रष्टव्य—** चार घाटों के कारण चार भागों जैसी शोभा कही गयी है।

घाट झुण्ड तलाब के, पावड़ियां तरफ जल।

दयोहरियां चबूतरे, सोभित इन मिसल॥९२॥

हौज़ कौसर ताल के चारों घाटों, वृक्षों के झुण्डों, ताल की ओर उतरती हुए सीढ़ियों, सीढ़ियों के दायें-बायें आयी हुई देहुरियों एवं चबूतरों की अपरम्पार शोभा हो रही है।

चौक थंभ कठेड़े, बैठक चारों घाटन।

जो बन खूबी पाल पर, सो क्यों कहूं जुबां इन॥९३॥

चारों घाटों के चबूतरे (चौक) थम्भों और कठेड़ों से युक्त हैं। इस प्रकार, चारों घाटों में बैठक के रूप में बहुत ही सुन्दर शोभा है। चौरस पाल के ऊपर वृक्षों की जो अद्वितीय सुषमा (शोभा) है, उसे मैं इस जिह्वा से कैसे कहूँ।

**फेर कहूँ पाल ऊपर, जो देखी माहें दिल।**

**सो कहूँ मैं अर्स रुहन को, देखें मोमिन सब मिल॥९४॥**

अब मैं पाल के ऊपर आयी हुई उस शोभा का पुनः वर्णन कर रही हूँ, जिसे मैंने अपने धाम-हृदय में देखा है। मैं परमधाम की आत्माओं से उस शोभा का वर्णन कर रही हूँ, जिससे सभी सुन्दरसाथ उसे आत्मसात् कर सकें।

दयोहरी आगूं चबूतरे, खुले झरोखे ताल पर।

सबों बिराजत कठेड़ा, नूर भराए रह्यो अंबर॥९५॥

१२८ बड़ी देहुरियों के सामने (कटी पाल के हिस्से में) २५० मन्दिर के लम्बे-चौड़े चबूतरे हैं, जिनके आगे (ताल की ओर) कठेड़ा शोभायमान हो रहा है। यहाँ चारों ओर आकाश में सर्वत्र नूर ही नूर दृष्टिगोचर हो रहा है।

**भावार्थ-** कठेड़े से सुशोभित चबूतरों पर बैठकर या खड़े होकर ताल की शोभा को निहारते हैं, इसलिये इन्हें झरोखे कहकर वर्णित किया गया है। इनके ऊपर छत न होने से इन्हें खुले झरोखे भी कहा गया है।

चारों घाटों के बीच बीच, गिरदवाए दयोहरियां सब।

याही विध आगूं सबों, ऊपर बन छाए रही छब॥९६॥

चारों घाटों के बीच-बीच में चौरस पाल के दूसरे हिस्से

में चारों ओर घेरकर १२८ बड़ी देहुरियाँ आयी हैं। इसी प्रकार चौरस पाल के पहले हिस्से में भी १२४ छोटी देहुरियाँ हैं। इनके आगे बाहरी तरफ बड़ोवन के वृक्ष हैं, जिनकी डालियों, पत्तियों, फूलों, तथा फलों ने आपस में मिलकर चन्द्रवा के समान अति मनोहर रूप धारण कर लिया है।

**जो फिरते आए चबूतरे, दोरी बंध बराबर।**

**ऊपर बन सोभे दोरी बंध, कहूं गेहेरा नहीं छेदर॥९७॥**

१२८ बड़ी देहुरियों के आगे जो चबूतरे (चाँदे) घेरकर आये हैं, वे पंक्तिबद्ध रूप से हैं एवं उनकी लम्बाई तथा चौड़ाई भी समान रूप से आयी है। इनके ऊपर वनों की जो डालियाँ, पत्तियाँ, फल, और फूल मिलकर चन्द्रवा के समान सुशोभित हो रहे हैं, वे भी पंक्तिबद्ध आये हैं

अर्थात् सभी जल चबूतरे तक छाया कर रहे हैं। वृक्षों की डालियों, पत्तियों, फलों, तथा फूलों का आपस में मिलन इस प्रकार है कि न तो कहीं पर अधिक घने हैं और न कहीं पर छितरे (बिखरे) हुए, बल्कि सभी जगह समान रूप से स्थित हैं।

**सब खुले झरोखे ढांप के, बन झलूब आया जल पर।**

**ए सोभा अति देत है, जो देखिए रूह की नजर॥९८॥**

बड़ोवन के वृक्षों की झूमती हुई डालियाँ सभी खुले झरोखों (चबूतरों, चाँदों) को ढकती हुई जल-चबूतरे तक छाया कर रही हैं। हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से देखें, तो आपको यह विदित होगा कि ये वृक्ष पाल के ऊपर शोभा को धारण किये हुए हैं।

ऊपर दयोहरी तले चबूतरे, तिन तले सब मेहेराब।

परकोटे तले छोटे द्वारने, फिरता बन सोभे तले आब॥९९॥

चौरस पाल के ऊपर आयी हुई १२८ बड़ी देहुरियों की भीतरी ओर चबूतरे (चाँदे) आये हैं। उनके नीचे पाल अन्दर के महलों में जाने के लिये मेहराबी द्वार दिखायी दे रहे हैं। चबूतरों से दायें-बायें उतरती हुई सीढ़ियाँ और परकोटे भी अति सुन्दर लग रहे हैं। जहाँ आमने-सामने सीढ़ियां उतरी हैं, वहाँ के छोटे द्वारों के थम्भों, मेहराबों, तथा अपनी डालियों से जल चबूतरे तक को आच्छादित करने वाले वृक्षों से युक्त हौज़ कौसर ताल की अद्वितीय शोभा है।

आब ऊपर जो चबूतरा, फिरते देखिए छोटे द्वार।

दे परिकरमा आइए, देख आइए घाट चार॥१००॥

जल-रौंस की बाहरी तरफ कटी पाल के हिस्से में अनेक छोटे-छोटे मेहरावी द्वार (थम्भ और मेहराबें) आये हुए हैं। वहाँ आमने-सामने से कटी पाल की सीढ़ियाँ उतरी हैं। हे साथ जी! आप जल-रौंस पर घूमते हुए इनकी और चारों घाटों की अनुपम सुन्दरता को देखिए।

**महामत कहे मोमिन को, गेहेरा गंभीर जल देख।**

**टापू बन्यो बीच हौज के, सोभित अति विसेख॥१०१॥**

श्री महामति जी परमधाम के ब्रह्ममुनियों से कहते हैं कि हे साथ जी! आप अपनी आत्मिक दृष्टि से हौज़ कौसर ताल के उस मनोरम जल को देखिए, जो बहुत ही गहरा और शान्त है। इसके मध्य में टापू महल आया है, जिसकी शोभा बहुत विशेष प्रकार की है।

**प्रकरण ॥८॥ चौपाई ॥५६९॥**

## टापू के बीच मोहोलात चौसठ पांखड़ी की

इस प्रकरण में उस महल की अनुपम शोभा का वर्णन किया गया है, जो हौज़ कौसर ताल के मध्य में स्थित है और जिसकी आकृति ६४ पँखुड़ियों वाले कमल के फूल के समान आयी है।

**बन्यो ताल के बीच में, चारों तरफों जल।**

**बन झरोखे गिरदवाए, सोभित बाग मोहोल॥१॥**

हौज़ कौसर ताल के मध्य में एक सुन्दर टापू महल शोभायमान है, जिसके चारों ओर जल है। टापू महल से लगकर चारों ओर इसके गुर्जों के मध्य सुन्दर-सुन्दर वन आये हैं। बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवार पर झरोखे (खिड़कियाँ) हैं। इस प्रकार टापू महल बागों से अत्यधिक सुशोभित हो रहा है।



अब कहूं ताल के मोहोल की, जल गिरदवाए गेहेरा गंभीर।  
लेहेरें लगे बीच गुरज के, जल खलकत उज्जल खीर॥२॥

अब मैं हौज कौसर ताल के इस महल की शोभा का वर्णन करती हूँ। इस महल के चारों ओर बहुत गहरा और शान्त जल लहरा रहा है। इस जल की लहरें गुर्जों के बीच टकराया करती हैं। यह जल दूध के समान उज्ज्वल है, जो लहराते हुए अत्यन्त मनोहर क्रीड़ाये करता है।

ज्यों एक फूल चौसठ पांखड़ी, चार द्वार बने गिरदवाए।  
गुरज साठ बने तिन पर, ए खूबी कही न जाए॥३॥

इस महल की शोभा भी ऐसी है, जैसे एक फूल के अन्दर ६४ पँखुड़ियां हों। चारों दिशाओं में चार दरवाजे आये हैं। प्रत्येक हाँस की सन्धि में रौंस पर ६० गुर्ज आये हैं। इस अद्वितीय शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव

नहीं है।

**भावार्थ-** चौंसठ हाँस वाले चबूतरे के प्रत्येक हाँस के मध्य से जल-रौंस पर ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। बाकी जगह में चबूतरे की किनार पर कठेड़ा आया है। कठेड़े की भीतरी तरफ परिक्रमा की रौंस की जगह छोड़कर मन्दिरों की एक हार है, जिसके ६४ हाँस हैं। हाँस-हाँस की सन्धि में रौंस पर ६० गुर्ज आये हैं। सभी हाँस २५० मन्दिर के लम्बे हैं, किन्तु चारों दिशा के हाँस ७५० मन्दिर के लम्बे हैं, जिनके मध्य में २५० मन्दिर का दरवाजा है। इसके दायें-बायें २५०-२५० मन्दिर के चबूतरे आये हैं। इन चबूतरे के दायें-बायें के गुर्ज आधी माप के हैं अर्थात् ये साढ़े ६२ मन्दिर के लम्बे और १२५ मन्दिर के चौड़े हैं, जबकि अन्य सभी गुर्ज १२५ मन्दिर के लम्बे-चौड़े हैं। इस प्रकार के आधे गुर्ज चारों

दिशा के मिलाकर कुल आठ हैं, जिन्हें चार गिना जाता है। इस प्रकार चारों तरफ कुल मिलाकर ६४ गुर्ज होते हैं।

एक टापू बन्यो बीच जल के, मोहोल गुरज तिन पर।

दयोहरियां ताल किनार पर, फिरती पाल बराबर॥४॥

जल के मध्य में टापू आया है, जिस पर गुर्जों से युक्त महल की सुन्दर शोभा दिखायी दे रही है। ताल की किनार पर चारों तरफ चौरस पाल की शोभा है, जिस पर चारों ओर अनेक देहरियाँ (१२८ बड़ी एवं १२४ छोटी) शोभायमान हैं।

ए चौक बने चारों तरफों, और पाल ऊपर चार घाट।

चारों द्वार टापूअके, बने सनमुख ठाट॥५॥

चौरस पाल के प्रथम भाग में (ताल की ओर से) नीचे चारों दिशाओं में चार चौक (७५० मन्दिर लम्बे एवं २५० मन्दिर चौड़े) आये हैं। चौरस पाल के ऊपर चारों दिशाओं में चार घाट दिखायी देते हैं। ये चौक और घाट टापू महल के चारों मुख्य द्वारों के ठीक सामने ही सुशोभित हो रहे हैं।

**दयोहरियां घाटन पर, चारों जुदी जिनस।**

**देख देख के देखिए, जानों एक पे और सरस॥६॥**

चारों घाटों में देहुरियों की अलग – अलग प्रकार की शोभा है। पूर्व में सोलह देहुरी का घाट है, तो पश्चिम में झुण्ड का घाट। इसी प्रकार उत्तर में नौ देहुरी का घाट है, और दक्षिण में तेरह देहुरी का घाट। इन घाटों की शोभा को जितना देखा जाता है, उतना ही प्रत्येक घाट

एक-दूसरे से अधिक सुन्दर लगता है।

पाल टापू हीरे एक की, तिनमें कई मोहोलात।

अनेक रंग नंग देखत, असल हीरा एक जात॥७॥

सम्पूर्ण पाल और टापू की रचना एक हीरे के नग की है।  
उन पर अनेक महल बने हुए हैं। यद्यपि यह सम्पूर्ण शोभा  
एक ही हीरे के नग में आयी है, किन्तु इसमें अनेक रंगों  
के नग दिखायी देते हैं।

**द्रष्टव्य-** जल के अन्दर स्थित भूभाग टापू कहलाता है।  
परमधाम की प्रत्येक शोभा अनन्तता में है। भले ही  
सम्पूर्ण हौज़ कौसर केवल हीरे का ही क्यों न दिखायी  
देता हो, किन्तु माणिक, मोती, पुखराज आदि का भी रंग  
झलकता रहता है।

जब खूबी ताल यों देखिए, चढ़ चांदनी पर।

फिरती पाल बन दयोहरी, जल सोभित अति सुंदर॥८॥

टापू महल की चाँदनी में बैठकर जब ताल की शोभा को देखते हैं, तो चारों ओर घेरकर आयी एक भूमिका ऊँची पाल पर बड़ोवन के वृक्षों की हारों, देहुरियों, तथा इनके प्रतिबिम्ब से युक्त जल की अनुपम शोभा दृष्टिगोचर होती है।

तले सोभा चारों द्वारने, आगूं कठेड़े बैठक।

आराम लेवें इन ठौरों, जब आवें इत हादी हक॥९॥

टापू महल की चारों दिशाओं में प्रथम भोम में चार मुख्य दरवाजे हैं, जिनके दायें-बायें २५० मन्दिर के लम्बे-चौड़े दो-दो चबूतरे हैं। इन चबूतरों पर ८ थम्भ और १० मेहराबें आयी हैं। किनार पर सीढ़ियों की जगह छोड़कर

कठेड़ा है। जब श्री राजश्यामा जी यहाँ आते हैं, तो इन मनोरम स्थानों में आराम (प्रेममयी लीला) करते हैं।

**बीच-बीच में बन बिराजत, गुरज छज्जे जल पर।**

**छे छज्जे फिरते बने, सब गुरजों यों कर॥१०॥**

प्रत्येक दो गुर्जों के मध्य परिक्रमा की रौंस में सुन्दर वन सुशोभित हो रहे हैं। गुर्जों के ३ छज्जे ताल के जल की ओर तथा ६ छज्जे वन की तरफ आये हैं। इस प्रकार सभी गुर्जों की शोभा आयी है।

**भावार्थ-** सभी गुर्ज तीन भूमिका एवं चौथी चाँदनी के आये हैं। इस प्रकार गुर्ज का जो भाग हौज़ कौसर ताल के जल की ओर आता है, उस तरफ ३ छज्जे निकलते हैं, तथा दायें-बायें वनों की ओर आये हुए छज्जों की संख्या ६ होगी।

तीन छातें चौथी चाँदनी की, सब गुरजों पर इत।

तले छज्जे जल हाथ लग, ऊपर अति सोभित॥११॥

इस टापू महल में सभी गुर्जों की शोभा तीन भूमिका एवं चौथी चाँदनी आयी है। छज्जों के नीचे अर्थात् तले की भूमिका के सामने चारों तरफ जल-रौंस है, जहाँ पर हाथ लगता हुआ जल है। इसके ऊपर मन्दिरों, छज्जों, और चाँदनी की बहुत सुन्दर शोभा हो रही है।

ए टापू जिमी जवेर की, बीच बीच बन्या बन।

दोनों तरफों छज्जे बने, ऊपर बन रोसन॥१२॥

हौज़ कौसर ताल के मध्य आए हुए इस टापू की सम्पूर्ण धरती जवाहरातों की है। गुर्जों के बीच में वनों की शोभा आयी है। वन के दोनों ओर अर्थात् गुर्ज के दायें-बायें छज्जे आये हैं। गुर्जों के मध्य रौंस के ऊपर वन अपनी



शोभा से जगमगा रहे हैं।

तीनों तरफों गुरज के, छज्जे बने यों आए।

उपरा ऊपर भी तीन हैं, क्यों कहूं सोभा ताए॥१३॥

इस प्रकार, प्रत्येक गुर्ज के तीनों ओर (दायें-बायें एवं जल की ओर) छज्जे आये हैं। तीनों भूमिकाओं में क्रमशः एक-दूसरे के ऊपर भी तीन-तीन छज्जे आये हैं। इन गुर्जों की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

तीन तीन छज्जे तरफ जल के, छे छज्जे बन पर।

अन्दर गिरदवाए मोहोलात, बीच बैठक चबूतर॥१४॥

प्रत्येक गुर्ज में जल की ओर तीन-तीन छज्जे आये हैं तथा दायें-बायें वन की ओर कुल छः (तीनों भूमिकाओं के मिलाकर) छज्जे हैं। इन गुर्जों के भीतरी तरफ गोलाई

में मन्दिरों (महलों) की हारें आयी है। इनके मध्य में कमर-भर ऊँचा गोल चबूतरा आया है, जिस पर सुन्दर बैठक है।

**भावार्थ-** ६० मन्दिरों की पहली हार के पश्चात् ६४ थम्भों की पहली हार आयी है। इसके पश्चात् ६० मन्दिरों की दूसरी हार आयी है। पुनः ६४ थम्भों की दूसरी हार है। इसके पश्चात् ६४ थम्भों की तीसरी हार कमर-भर ऊँचे चबूतरे के किनार पर आयी है।

**दो गुरजों बीच मंदिर, हर मन्दिर झरोखे।**

**तीन तीन उपरा ऊपर, बने तीनों भोमों के।१५॥**

प्रत्येक दो गुर्जों के बीच में एक मन्दिर की शोभा आयी है (प्रत्येक दो मन्दिरों की सन्धि में १ - १ गुर्ज है)। हर एक मन्दिर में झरोखे बने हुए हैं। प्रत्येक मन्दिर की तीन

भूमिकायें हैं, जिनमें प्रत्येक भूमिका में एक के ऊपर एक कुल तीन झरोखे आये हैं। इस प्रकार, प्रत्येक मन्दिर में (तीन भूमिकाओं में) तीन-तीन झरोखे सुशोभित हो रहे हैं।

**गुरज गुरज तीन द्वारने, तीनों भोमों में।**

**कई एक ठौरों चरनियां, ऊपर चढ़िए जिनों से॥१६॥**

प्रत्येक गुर्ज में तीन दिशाओं में (जल की ओर तथा दायें-बायें) तीन द्वार हैं। इस प्रकार, दरवाजें तीनों भूमिका में हैं। कई स्थानों पर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, जिनसे ऊपर की ओर चढ़कर जाते हैं।

**सामी और हार बनी, मन्दिर सामी मन्दिर।**

**तिनमें साठ बाहेर, और साठ भए अन्दर॥१७॥**

६४ थम्भों की हार के सामने ६४ थम्भों की अन्य हारें भी आयी हैं। इसी प्रकार मन्दिरों के सामने मन्दिर आये हैं। थम्भों की पहली हार के बाहरी तरफ ६० मन्दिरों की पहली हार आयी है तथा अन्दर की ओर भी ६० मन्दिरों की दूसरी हार आयी है।

**बीच चेहेबच्चा जल का, कई फुहारे छूटत।**

**फिरते द्वार इन चौक के, बोहोत सोभा अतन्त॥१८॥**

चबूतरे के मध्य भाग में एक चहबच्चा (जल का कुण्ड) आया है। इस चहबच्चे के चारों ओर चबूतरे के दूसरे भाग में बगीचों, नहरों, तथा फव्वारों की अद्भुत शोभा है (इसकी बाहरी ओर तीसरे हिस्से में बैठक है)। इस चबूतरे की बाहरी तरफ मन्दिरों की जो दूसरी हार घेरकर आयी है, उसके दरवाजे चारों ओर बहुत अधिक

(अनन्त) सुशोभित हो रहे हैं।

तीनों भोम चबूतरे, और फिरते मन्दिर द्वार।

बीच बैठक चबूतरे, बने थंभ तरफ हार॥१९॥

तीनों भूमिकाओं के मध्य में चबूतरे हैं (ऊपर की दो भूमिकाओं में चहबच्चे, फव्वारे, तथा बगीचे नहीं हैं)। इस चबूतरे के चारों ओर दूसरी हार के मन्दिरों के द्वार बहुत अधिक मनोहर लग रहे हैं। चबूतरे और मन्दिरों की हार के मध्य थम्भों की एक हार भी दृष्टिगोचर हो रही है। थम्भों की एक हार चबूतरे की किनार पर भी आयी है। इस प्रकार चबूतरे पर बहुत सुन्दर बैठक आयी है।

कही फिरती हार थंभन की, द्वार द्वार आगूं दोए।

हर मन्दिर दो द्वारने, सोभा लेत अति सोए॥२०॥

थम्भों की हारें गोलाई में चारों ओर घूमकर आयी हैं। प्रत्येक मन्दिर के द्वार के सामने (दायें-बायें) दो-दो थम्भ हैं। दूसरी हार के प्रत्येक मन्दिर के बाहरी एवं भीतरी तरफ के दोनों दरवाजों के आगे ऐसी ही अनुपम शोभा है।

**साठ गुरज फिरते कहे, गिरद चांदनी दीवार।**

**सो ए कमर के ऊपर, खूबी लेत कांगरी लाल॥२१॥**

बाहरी हार मन्दिरों से लगते हुए बाहरी ओर ६० गुर्ज घेरकर आये हैं। चाँदनी की किनार पर कमर-भर ऊँचा चबूतरा है, जिसके बराबर ये गुर्ज भी ऊपर उठे हैं। गुर्जों और चाँदनी की किनार पर कमर-भर ऊँची दीवार आयी है, जिस पर लाल काँगरी बहुत शोभा दे रही है।

ऊपर चांदनी कठेड़ा, बीच जोड़ सिंघासन।

राज स्यामाजी बीच में, फिरती बैठक रुहन॥२२॥

चाँदनी के मध्य में कमर-भर ऊँचा चबूतरा आया है, जिसकी किनार पर सीढ़ियों की जगह छोड़कर बाकी जगह कठेड़ा सुशोभित हो रहा है। इस चबूतरे पर पशमी गिलम बिछी हुई है। मध्य में सिंहासन है, जिस पर युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी विराजमान होते हैं और सखियाँ उन्हें चारों ओर से घेरकर बैठती हैं।

कबूं मिलावा नजीक, मिल बैठें गिरदवाए।

छोटा तखत दुलीचे पर, बैठी रूहें अंग सों अंग लगाए॥२३॥

कभी-कभी सखियाँ चबूतरे पर श्री राजश्यामा जी को घेरकर उनके बहुत ही निकट बैठ जाती हैं। चबूतरे के ऊपर अति कोमल पशमी गिलम बिछी हुई है। इस दुलीचे

(गिलम) पर एक छोटा सा सिंहासन विद्यमान है, जिस पर युगल स्वरूप विराजमान होते हैं तथा सखियाँ एक-दूसरे से सट-सटकर उनके चारों ओर बैठ जाती हैं।

**कबूँ कबूँ बैठियां कुरसियों, रूहें बारे हजार।**

**कबूँ दो दो एक कुरसी पर, कबूँ हर कुरसी चार चार॥२४॥**

कभी-कभी १२००० सखियाँ कुर्सियों पर बैठ जाती हैं, जिसमें कभी एक-एक कुर्सी पर दो-दो सखियाँ बैठती हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि प्रत्येक कुर्सी पर चार-चार सखियाँ बैठती हैं।

**द्रष्टव्य-** स्थान के अनुसार कुर्सियाँ बड़ी होती जाती हैं। मध्य के चबूतरे पर सिंहासन एवं ६००० कुर्सियाँ रखी हैं। इनमें से प्रत्येक कुर्सी पर दो-दो सखियाँ मिलकर बैठती हैं। चाँदनी की किनार पर कमर-भर ऊँचे चबूतरे



पर ३००० कुर्सियाँ रखी हुई हैं। यहाँ प्रत्येक कुर्सी पर चार-चार सखियाँ बैठती हैं।

कबूँ दो दो सै एक कुरसियों, बैठें साठों गुरजों गिरदवाए।  
सो कुरसी दिवालों लगती, यों बैठक कठेड़े भराए॥२५॥

कभी-कभी एक-एक कुर्सी पर २००-२०० सखियाँ बैठती हैं। ऐसी ६० कुर्सियाँ ६० गुर्जों में आयी हैं। ये कुर्सियाँ काँगरीयुक्त कमर-भर ऊँची दीवार से लगकर आयी हैं। इस प्रकार कठेड़े तक भरकर बैठा जाता है।

**भावार्थ-** मध्य के चबूतरे की किनार पर भी कठेड़े हैं तथा किनार के चबूतरे की किनार पर भी कठेड़े हैं।

बीच तख्त बिराजत, सबथें ऊँचा गज भर।

बैठक हक बड़ीरूह, सोभा लेत सब पर॥२६॥

सिंहासन की ऊँचाई लगभग एक गज है। यह सिंहासन कमर-भर ऊँचे चबूतरे पर रखा हुआ है। इस प्रकार, सिंहासन की ऊँचाई सबसे अधिक है। इस पर युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी विराजमान होते हैं। इनकी शोभा सर्वोपरि है।

**द्रष्टव्य—** परमधाम में स्वलीला अद्वैत होने के कारण सभी की शोभा समान है।

हक बड़ी रूह बैठें तखत पर, फिरती रूहें बैठत।

दो दो सै बीच गुरज के, बारे हजार रूहें इत॥२७॥

चबूतरे पर विद्यमान सिंहासन पर युगल स्वरूप विराजमान होते हैं और सभी सखियाँ उन्हें चारों ओर से घेरकर बैठा करती हैं। प्रत्येक गुर्ज में दो-दो सौ सखियाँ बैठती हैं। इस प्रकार ६० गुर्जों में कुल १२००० सखियाँ

बैठती हैं।

चांद चौदमी रात का, बैठें चांदनी नूरजमाल।

सनमुख सबे बैठाए के, करें खावंद रूहें खुसाल॥२८॥

चतुर्दशी की रात्रि में, जब चन्द्रमा अपनी स्वर्णिम चाँदनी को सम्पूर्ण परमधाम में फैला रहा होता है, उस समय श्री राजश्यामा जी इस टापू महल की चाँदनी पर सिंहासन पर आरूढ़ होते हैं और सभी सखियों को अपने सामने बैठाकर अपने प्रेम के रस में डुबोकर आनन्दित करते हैं।

अमृत खसम रूहन पर, नूर नजरों सींचत।

सो रस रूहें रब का, सनमुख रोसन पीवत॥२९॥

श्री राज जी अपनी प्रेम भरी (नूरमयी) अमृतमयी दृष्टि से अँगनाओं को आनन्दित करते (सींचते) हैं। सभी

सखियाँ धनी के सम्मुख बैठकर उनके नेत्रों से प्रेम-रस का पान करती हैं।

**पूरन पाँचों इंद्री सरूपें, एक एक में पांच पूरन।**

**हर एक में बल पांच का, हर एक में पांच गुन॥३०॥**

परमधाम के प्रत्येक स्वरूप में पाँचों इन्द्रियाँ लीला रूप में हर प्रकार से पूर्ण हैं। प्रत्येक इन्द्रिय में सभी पाँचों इन्द्रियों के गुण विद्यमान रहते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे हर इन्द्रिय में अन्य सभी इन्द्रियाँ अपने बल एवं लक्षणों सहित विद्यमान हैं।

**भावार्थ-** परमधाम के प्रत्येक स्वरूप से तात्पर्य है- श्री राज जी, श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, खूब खुशालियाँ, सभी प्रकार के पशु-पक्षी आदि। परमधाम में प्रत्येक इन्द्रिय में सभी पाँचों इन्द्रियों की

विद्यमानता का आशय यह है कि प्रत्येक इन्द्रिय से अन्य सभी इन्द्रियों की लीला होती है। उदाहरणार्थ – वहाँ आँख से केवल देखने का ही कार्य नहीं होता , बल्कि वहाँ आँखें बोलती हैं, सूँघती हैं, सुनती हैं, तथा स्पर्श सुख का भी अनुभव करती हैं। यही स्थिति अन्य सभी इन्द्रियों के साथ है। स्वलीला अद्वैत में किसी गुण के अभाव या न्यूनता का प्रश्न ही नहीं है।

**एक एक जाहेर सब में, एक एक में चार बातन।**

**इन बिध रूहें मुतलक, असल अर्स के तन॥३१॥**

परमधाम में प्रत्येक इन्द्रिय में उस इन्द्रिय का गुण तो प्रत्यक्ष रूप में रहता ही है , अन्य चार इन्द्रियों के भी सभी गुण उसमें बातिनी (परोक्ष, गुप्त) रूप से रहते हैं। इस प्रकार, परमधाम में ब्रह्मात्माओं के जो मूल तन

(परात्म) हैं, निश्चय ही उनमें इस प्रकार की अलौकिक विशेषता है।

**अर्स तन रूहें आतमा, तरफ सबों बराबर।**

**पूरन कहावें याही बात सें, सब विधों ए कादर॥३२॥**

निजधाम में आत्माओं (रूहों) के जो मूल तन हैं, वे सभी धनी के समान ही हैं। वे प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण सामर्थ्यवान हैं, इसलिये वे भी धाम धनी की तरह ही पूर्ण कहलाते हैं।

**भावार्थ-** "ब्रह्मसृष्टि कही वेद ने, ब्रह्म जैसी तदोगत" से स्पष्ट है कि श्री राज जी एवं सखियों की परात्म में कोई भी अन्तर नहीं है। जिस प्रकार श्री राज जी सर्वसामर्थ्यवान् एवं परिपूर्ण हैं, उसी प्रकार आनन्द की लीला में सखियाँ भी परिपूर्ण हैं, क्योंकि वे उन्हीं की

अँगरूपा हैं, स्वलीला अद्वैत में एकत्व है। वहदत में किसी भी प्रकार के भेद की कल्पना नहीं की जा सकती।

सरूप बैठे सब मिल के, घेर के गिरदवाए।

सबों सुख पूरन हक का, रूहें लेवें दिल चाहे॥३३॥

सभी सखियाँ युगल स्वरूप को चारों ओर से घेरकर बैठा करती हैं। सभी के हृदय में श्री राज जी का आनन्द क्रीड़ा करता है। अँगनायें अपने दिल की इच्छानुसार धनी से प्रेम एवं आनन्द का रस लेती हैं।

अब और देऊँ एक नमूना, इनको न पोहोंचे सोए।

पर कहे बिना रूहन के, दिल रोसन क्यों होए॥३४॥

अब मैं एक उपमा (दृष्टान्त) देकर इन ब्रह्मात्माओं की शोभा का वर्णन करना चाहती हूँ, किन्तु मेरे द्वारा दी गयी

यह उपमा इनकी वास्तविक शोभा को दर्शाने में पूर्णतया असमर्थ है। यदि मैं ऐसा भी न कहूँ, तो इस संसार में आत्माओं के हृदय में इसका ज्ञान कैसे होगा अर्थात् नहीं हो पायेगा।

**एक जरा इन जिमी का, ताको नूर न माए आकास।**

**तिन जिमी के जवेर को, होसी कौन प्रकास॥३५॥**

परमधाम के एक कण में भी इतना तेज है कि वह आकाश में समा नहीं पाता। ऐसी अवस्था में यह सहज ही सोचा जा सकता है कि वहाँ के जवाहरातों में कितना प्रकाश होगा?

**सो जवेर आगूं रूहन के, कैसा देखावें नूर।**

**ज्यों सितारे रोसनी, बल क्या करे आगूं सूर॥३६॥**



वे जवाहरात भी भला सखियों की शोभा सौन्दर्य के तेज के सामने अपना तेज कैसे दिखला सकते हैं? यह बात तो वैसे ही है, जैसे सूर्य के उग जाने पर समस्त तारागणों का प्रकाश नगण्य सा हो जाता है।

**आगूं रूह सूरत सूर के, जवेर गए ढँपाए।**

**तो सोभा हक जात की, क्यों कर कही जाए॥३७॥**

जब एक ब्रह्मसृष्टि की शोभा रूपी सूर्य के तेज के सामने जवाहरातों का तेज ढँप जाता है, तो सभी ब्रह्मसृष्टियों एवं श्यामा जी की शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है?

**भावार्थ—** हक जात का तात्पर्य मात्र श्यामा जी से ही नहीं है, बल्कि श्री श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, खूब खुशालियाँ आदि सभी हक जात के ही अन्तर्गत हैं। श्रीमुखवाणी का यह कथन इस तथ्य को

स्पष्ट करता है—

और तो कोई है नहीं, बिना एक हक जात।

जात माहें हक वाहेदत, हक हादी गिरो कहलात॥

श्रृंगार २३/३

जो रूहें अंग अर्स के, तिन चीज न कोई सोभाए।

वाहेदत में बिना वाहेदत, और कछु ना समाए॥३८॥

परमधाम में विद्यमान सखियों के अंगों की शोभा की तुलना में कोई भी वस्तु नहीं हो सकती। परमधाम के एकत्व (एकदिली) में एकत्व के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता, अर्थात् श्री राज जी के दिल का ही स्वरूप सभी रूपों में लीला कर रहा है। अन्य किसी बाह्य वस्तु का वहाँ प्रवेश हो पाना सम्भव नहीं है।

**भावार्थ—** परमधाम में अक्षरातीत के अतिरिक्त और कोई

है ही नहीं।

ना अर्स जिमिएं दूसरा, कोई और धरावे नाहें।

ए लिख्या वेद कतेब में, कोई नहीं खुदा बिन काहें॥

खुलासा १६/८३

इस प्रकार श्री राज जी के हृदय (वहदत की मारिफत) से प्रकट होने वाले सभी स्वरूपों (वहदत की हकीकत) के अतिरिक्त परमधाम में और कुछ भी नहीं है। इस चौपाई की दूसरी पंक्ति "वाहेदत में बिना वाहेदत, और कछु ना समाए" का यही आशय है।

वस्तर भूखन हक जात के, सो हक जातै का नूर।

कोई चीज अर्स अंग को, कर ना सके जहूर॥३९॥

श्री श्यामा जी एवं सखियों के वस्त्र तथा आभूषण भी उनके अंगों का नूर (तेज, कान्ति, शोभा या सौन्दर्य

आदि) ही हैं। परमधाम के अंगों की शोभा को इस संसार की किसी भी वस्तु से उपमा देकर नहीं दर्शाया या व्यक्त किया जा सकता।

**सोभा अंग अर्स के, या वस्तर या भूखन।**

**होवे दिल चाह्या कई विध का, सोभा सिनगार माहें खिन॥४०॥**

परमधाम में वस्त्रों या आभूषणों की जो शोभा दिखायी देती है, वस्तुतः वह उनके (सखियों एवं श्यामा जी के) अंगों की ही शोभा है। दिल की इच्छानुसार मात्र एक क्षण में उनकी शोभा या श्रृंगार के अनेक रूप हो जाते हैं।

**भावार्थ—** परमधाम के वस्त्र या आभूषण भी चेतन एवं आत्म-स्वरूप हैं। वे भी प्रेम में डूबकर श्री राजश्यामा जी एवं सखियों को रिझाते हैं। पल-भर में करोड़ों रूप धारण कर लेना उनकी स्वाभाविकता है। श्रीमुखवाणी के

इन कथनों से उनकी छोटी सी झलक मिलती है—

जिमी जात भी रूह की, रूह जात आसमान।

जल तेज वाए सब रूह को, रूह जात अरस सुभान॥

पसु पंखी या दरखत, रूह जिनस है सब।

हक अर्स वाहेदत में, दूजा मिले न कछुए कब॥

सागर १/४०,४२

सो हेम नंग अति उत्तम, इन रूहों के माफक।

वस्तर भूखन साज के, जाए देखें नजर भर हक॥४१॥

वस्त्रों एवं आभूषणों में दृष्टिगोचर होने वाले स्वर्ण तथा जवाहरातों के नग आदि अति उत्तम शोभा वाले हैं।

इनकी यह अनुपम शोभा सखियों के हृदय की इच्छानुसार ही दिखायी देती है। ब्रह्मांगनायें नूरी वस्त्रों

तथा आभूषणों से स्वयं को सजाती हैं और अपने प्राणवल्लभ के पास जाकर जी भरकर उनका दीदार (मधुर दर्शन) करती हैं।

ए सोभा सब साज के, रुहें ले बैठी अपना नूर।

सो आगूं हक बड़ीरुह नूर के, ए क्यों कर करूं मजकूर॥४२॥

जब सखियाँ टापू महल की चाँदनी पर अपनी सम्पूर्ण नूरमयी शोभा से सुसज्जित होकर युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की नूरी शोभा के समक्ष बैठती हैं, तो उस समय के अनुपम दृश्य का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ।

तखत रुहों बीच चांदनी, बैठे बड़ी रुह खावंद।

सो थंभ हुआ चांदनी, ऊपर आया पूरन चन्द॥४३॥

जब श्री राजश्यामा जी टापू महल की चाँदनी पर

सखियों के बीच सिंहासन पर बैठे होते हैं, उस समय उनके ऊपर अपनी सम्पूर्ण शोभा के साथ चन्द्रमा भी जगमगा रहा होता है। चाँदनी पर विराजमान युगल स्वरूप तथा सखियों का नूरी तेज चन्द्रमा से टकराकर एक अति मनोहर थम्भे के समान दिखायी देता है।

**विशेष-** आधी रात के समय चतुर्दशी का चन्द्रमा भी लगभग पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा ही दिखता है। इसलिये, इस चौपाई के चौथे चरण में "पूरन चन्द" शब्द का प्रयोग किया गया है।

**जेती फिरती चांदनी, भरयो नूर उद्धोत।**

**ले सामी चन्द रोसनी, भयो थंभ एक जोत॥४४॥**

टापू महल की छत (चाँदनी) पर सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दिखायी पड़ रहा है। सामने चन्द्रमा की ज्योति

टकरा रही है, जिससे अखण्ड ज्योति का अति मनोहर थम्भ ही दिखायी पड़ रहा है।

इन नूर थंभ की रोसनी, पड़ी ताल पर जाए।

जल थंभ कियो आसमान लों, घेरयो चौदे गिरदवाए॥४५॥

इस प्रकाशमयी थम्भे की ज्योति (प्रतिबिम्बित रूप में) हौज़ कौसर ताल के जल में भी दिखायी पड़ती है। जल में दृश्यमान इस थम्भे का प्रकाश आकाश तक छा जाता है और चन्द्रमा को भी चारों ओर से घेर लेता है।

जंग करे जोत थंभ की, अर्स जोतसों आए।

मिली जोत जिमी बन की, ए नूर आसमान क्यों समाए॥४६॥

जल में दिखायी देने वाले थम्भे की ज्योति टापू महल की ज्योति से टकराकर युद्ध करती हुई प्रतीत होती है।



उसमें धरती तथा वनों की ज्योति भी मिल जाती है। भला, इतना अनन्त प्रकाश आकाश में कहाँ समा सकता है।

**भावार्थ-** यद्यपि "अर्स" शब्द का तात्पर्य परमधाम या रंगमहल से होता है, किन्तु यहाँ टापू महल का प्रसंग है। वनों से आशय बड़ोवन आदि के वृक्षों से है। प्रकरण ८ चौपाई ३ "जब आवत इत अर्स से" में "अर्स" शब्द का भाव रंगमहल से है।

**महामत कहे ए मोमिनो, जो होवे अरवा अर्स।**

**सो प्रेम प्याले ल्यो भर भर, पीजे हकसों अरस-परस॥४७॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! आपमें जो भी परमधाम की आत्मायें हैं, वे अपने हृदय रूपी प्यालों को धनी के प्रेम-रस से भर लें और प्रियतम से एकाकार

होकर उसका रसपान करें।

प्रकरण ॥९॥ चौपाई ॥६१६॥

## फूलबाग

इस प्रकरण में फूल बाग की शोभा को दर्शाया गया है।

और पीछल पाल तलाव के, कई बन सोभा लेत।

ए बन आगूं फिरवल्या, परे धाम लों देखाई देत॥१॥

हौज़ कौसर ताल की पाल (ढलकती पाल) के पीछे कुञ्ज-निकुञ्ज एवं बड़ोवन आदि कई वन शोभायमान हैं। ये वन हौज़ कौसर ताल के पश्चिम से उत्तर की ओर घूमते हुए रंगमहल के पास तक विद्यमान हैं।

ताल को बीच लेय के, मिल्या धाम दिवालों आए।

कई मेवे केते कहूं, अगनित गिने न जाएं॥२॥

बड़ोवन हौज़ कौसर ताल को घेरकर रंगमहल की दीवार

तक आया है। इस वन में अनेक प्रकार के इतने मेवे हैं कि उनके विषय में मैं क्या कहूँ? वस्तुतः वे अनन्त हैं। उनकी गिनती हो ही नहीं सकती।

**भावार्थ**— बड़ोवन रंगमहल की दीवार से केवल उत्तर की दिशा में लाल चबूतरे के सामने आकर मिला है। पश्चिम में रंगमहल की दीवार से लगकर फूलबाग है। बड़ोवन के वृक्षों की पाँच हारें फूलबाग की तीन दिशाओं (उत्तर, दक्षिण, व पश्चिम) से होकर लाल चबूतरे के बड़ोवन से मिल गयी हैं।

रंगमहल की दक्षिण दिशा में वट-पीपल की चौकी है। फूल बाग के पश्चिम, उत्तर, व दक्षिण तीन दिशाओं में बड़ोवन की शोभा आयी है। वट-पीपल की चौकी की दक्षिण दिशा में भी बड़ोवन के वृक्ष आये हैं, जिनकी डालियाँ वट-पीपल की चारों भूमिकाओं से मिली हुई हैं।

वट-पीपल की डालियाँ रंगमहल के झरोखों से मिली हुई हैं। अतः यह भी कह सकते हैं कि वट-पीपल की चौकी के माध्यम से बड़ोवन के वृक्ष रंगमहल से जुड़े हुए हैं।

**तरफ पीछल धाम के, अन बन मेवे अनंत।**

**फल फूल पात कंदमूल, ए कहाँलों को गिनत॥३॥**

रंगमहल की पश्चिम दिशा में फूल बाग के पीछे अन्न वन है, जिसमें अनन्त प्रकार के मेवे, फल, फूल, पत्तियाँ, और कन्द-मूल विद्यमान हैं। इनकी गिनती कोई भी नहीं कर सकता।

**भावार्थ-** फूल बाग में अनेक प्रकार के रंगों एवम् सुगन्धि से भरपूर फूलों के बगीचे हैं। फूल बाग के पश्चिम से अन्न वन के बीच से बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें निकली हैं, जिनमें अनेक प्रकार के मेवों के वृक्ष हैं।

ऊपर झरोखे धाम के, बन आए लग्या दीवार।

वाही छाया तले रेती रोसन, जैसा आगे कहा बन हाल॥४॥

रंगमहल की ऊपर की भूमिकाओं के झरोखे एवं छज्जे फूल बाग के ऊपर शोभायमान हैं। फूल बाग के वृक्षों की डालियाँ रंगमहल की दीवारों के छज्जों (झरोखों) से लगी हुई हैं। फूल बाग के वृक्षों की डालियाँ आपस में अति सुन्दर चन्द्रवा के समान मिली हुई हैं। फूलों के इस चन्द्रवा की छाया में तेजोमयी रेती बिछी हुई है। यह शोभा ठीक वैसी ही है, जैसी कुञ्ज-निकुञ्ज वनों की है। कुञ्ज-निकुञ्ज वन में वृक्षों की छत के नीचे जगमगाती हुई रेती सुशोभित हो रही है।

**विशेष-** फूल बाग की दो भूमिकायें एवं तीसरी चाँदनी है। इसकी दोनों भूमिकाओं की डालियाँ आपस में भी मिली हैं तथा रंगमहल से भी मिली हैं।

बाग बने फूलन के, लगत झरोखे दीवार।

जब आवत हैं इन छज्जों, रूहें इत होत खुसाल॥५॥

रंगमहल की पश्चिम दिशा के बाहरी हार मन्दिरों की दीवारों तथा झरोखों से लगते हुए ठीक सामने फूलों के बाग आये हैं। जब सखियाँ इन बाहरी हार मन्दिरों के छज्जों (झरोखों) में आकर सामने दृष्टिगोचर होने वाले फूल बाग का अति मोहक दृश्य देखती हैं, तो आनन्द के सागर में डूब जाती हैं।

लग लग होए के बैठत, ऊपर छज्जों के आए।

आगूं उठत ऊँचे फुहारे, जल झलकत मोती गिराए॥६॥

सखियाँ छज्जों के ऊपर आकर एक-दूसरे से सट-सटकर बैठ जाती हैं और उन फव्वारों को देखती हैं, जिनका जल बहुत ऊँचाई तक जाकर गिरता है तथा श्वेत

मोती की तरह झलकार करता है।

आगूं सबन के फुहारे, और आगूं सबों के फूल।

देख देख ए चेहेबच्चे, सबे होत सनकूल॥७॥

सभी सखियों को सामने की तरफ फव्वारों तथा फूलों की अनुपम शोभा दिखायी पड़ती है। सभी सखियाँ चहबच्चों की शोभा को बारम्बार देखती हैं और आनन्दित होती हैं।

**भावार्थ—** रंगमहल के चबूतरे से लगती हुई पहली आड़ी नहर में ३००० चहबच्चे हैं। अतः पश्चिम दिशा की बाहरी हार मन्दिरों के जिस भी मन्दिर के झरोखे में सखियाँ आती हैं, सभी के सामने फव्वारों और फूलों के दृश्य दिखायी पड़ते हैं।



छलकत छोले चेहेबच्चे, नेहेरें चलत तेज नूर।

सो विचरत सब बगीचों, पीवत हैं भरपूर॥८॥

चहबच्चों में लहराता हुआ जल छलकता रहता है। नूरी जल तीव्र गति से नहरों में विचरण करता है। नहरों से वह सभी बगीचों में पहुँचता है और उन्हें सिंचित करता है।

जो लग्या चबूतरे चेहेबच्चा, बुजरक बड़ा विसाल।

उतरता जल इतथें, नेहेरें चलत इन हाल॥९॥

रंगमहल के चबूतरे से लगते हुए नैऋत्य एवं वायव्य कोने में १६-१६ हाँस के दो चहबच्चे आये हैं। ये दोनों चहबच्चे आकृति में अन्य चहबच्चों की अपेक्षा बहुत बड़े हैं। इन दोनों चहबच्चों से फूल बाग की नहरों में जल प्रवाहित होता है।

**द्रष्टव्य-** बुजरक एवं विशाल शब्द समानार्थक हैं। इनमें मात्र भाषा भेद है।

विचरत जल चेहेबच्चों, सो सिरे लगे पोहोंचत।

इसी भांत झरोखे बगीचे, माहें रुहें केलि करत॥१०॥

इस प्रकार, इन बड़े चहबच्चों से छोटे चहबच्चों में जल पहुँचता है और नहरों के माध्यम से फूल बाग के अन्तिम किनारे तक (सम्पूर्ण बाग में) पहुँच जाता है। सखियाँ भी झरोखों (छज्जों) से बगीचों में आ जाती हैं तथा तरह – तरह की प्रेममयी लीलायें करती हैं।

इन ऊपर छज्जे बिराजत, सिरे लगे एकै हार।

ऊपर खूबी इन विध, सोभा लेत किनार॥११॥

दूसरी भूमिका से आठवीं भूमिका तक मन्दिरों के झरोखे

एवं ३३ हाथ चौड़े छज्जे घेरकर कतारबद्ध रूप से एक सीध में आये हैं। नवमी भूमिका में १ मन्दिर का चौड़ा छज्जा निकला हुआ है। छज्जे की किनार पर थम्भों की एक हार आयी है तथा थम्भों के बीच में किनार पर कठेड़ा सुशोभित हो रहा है। नवीं भूमिका तक इस प्रकार की सुन्दर शोभा दिखायी दे रही है।

**इत खेलत कई जानवर, मृग मोर बांदर।**

**कई मुरग तीतर लवा लरें, कई विध कबूतर॥१२॥**

फूल बाग में अनेक प्रकार के नूरी पशु-पक्षी जैसे मृग, मोर, बन्दर आदि हैं, जो तरह-तरह की क्रीड़ायेँ करते हैं। मृग, तीतर, लवा आदि आपस में अनेक प्रकार की प्रेम-भरी लड़ाइयाँ करते हैं। अनेक रंगों एवं जातियों के कबूतर भी हैं।

**भावार्थ-** पक्षियों का प्रेमपूर्वक खेलना ही लड़ना कहा जाता है। इनकी लड़ाई द्वेष के कारण नहीं होती।

**कई विध देत गुलाटियां, कई उलटे टेढ़े चलत।**

**कई कूदें फांदें उड़ें लड़ें, कई विध खेल करत॥१३॥**

ये पशु-पक्षी तरह-तरह की गुलाटियाँ खाते हैं। वे जान-बूझकर क्रीड़ा रूप में, कभी तो उल्टे पावों से उल्टी दिशा में चलने लगते हैं, तो कभी तिरछे चलते हैं। कभी ऊँचाई से कूदते हैं, तो कभी लाँघते हैं। कभी आकाश में उड़ने लगते हैं और कभी प्रेममयी क्रीड़ा के रूप में लड़ाई करने लगते हैं। इस प्रकार ये तरह-तरह की क्रीड़ाओं में संलग्न रहते हैं।

**विशेष-** कूदने और लाँघने (फाँदने) में सूक्ष्म सा अन्तर होता है। कूदने की प्रक्रिया हमेशा किसी ऊँचे

स्थान से होती है, किन्तु लाँघने की क्रिया में सतह से किसी ऊँची वस्तु को पार (लाँघ) कर पुनः वैसी ही सतह पर आ जाना होता है। यद्यपि उछल-उछल कर चलने को भी कूदते हुए चलना अवश्य कहते हैं।

**एक नाचें गावें स्वर पूरें, एक बोलत बानी रसाल।**

**नए नए रूप रंग ल्यावहीं, किन विध कहूं इन हाल॥१४॥**

ये पशु-पक्षी नये-नये रंगों के रूप धारण कर लेते हैं और अद्भुत तरीके से नाचते-गाते हैं। कुछ पीछे से स्वर पूरते हैं अर्थात् गाने वालों के पीछे-पीछे उसी राग में गाते हैं। कुछ तो प्रेम-रस से भरी हुई बहुत मीठी वाणी बोलते हैं। इनकी मनमोहक लीलाओं का मैं कैसे वर्णन करूँ।

और केते कहूं जानवर, छोटे बड़े करें खेलि।

ए खुसाली खावन्द की, रुहों करावें इस्क केलि॥१५॥

कुछ पशु-पक्षी छोटे हैं, तो कुछ बड़े। मैं इनका कितना वर्णन करूँ। ये सभी तरह-तरह की लुभाने वाली प्रेममयी क्रीड़ाएँ करते हैं। परमधाम में धाम धनी की यह आनन्दमयी लीला है, जिसमें सखियाँ इन पशु-पक्षियों पर चढ़कर या उनके साथ तरह-तरह के प्रेम-भरे खेल किया करती हैं।

**भावार्थ-** पशु-पक्षी भी श्री राज जी के ही अंगरूप हैं। इनके द्वारा सखियों को रिझाना भी धनी के प्रेम और आनन्द की लीला का एक अंग है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही आशय है।

ए खेलौने खावन्द के, सब विध के सुखकार।

कोई विद्या छिपी ना रहे, जानें खेल अपार॥१६॥

ये पशु-पक्षी श्री राज जी के आनन्दमयी खिलौने हैं। ये तरह-तरह के खेल करके हर तरह का सुख देते हैं। धनी को रिझाने की कोई भी विद्या इनसे छिपी नहीं होती है। ये अनन्त प्रकार की क्रीड़ाएँ करना विधिवत् जानते हैं।

जित तले दस खिड़कियां, इतथें रूहें उतरत।

फिरत सैर इन बन को, जब कबूँ आवें हक इत॥१७॥

रंगमहल की बाहरी हार मन्दिरों से नूर बाग में जाने के लिये १५०-१५० मन्दिर की दूरी पर बाहरी हार मन्दिरों की सन्धि की दीवारों से १० सीढ़ियाँ १० छोटे दरवाजों से होकर उतरी हैं। जब युगल स्वरूप के साथ सखियाँ नूर बाग में घूमने के लिये आती हैं, तो इन्हीं

सीढ़ियों से वे बागों में उतरा करती हैं।

कई बन हैं फूलन के, इन बन को नहीं सुमार।

कई भातें रंग कई जुगतें, कई कांगरियां किनार॥१८॥

यहाँ फूलों के इतने प्रकार के पेड़ हैं कि उनकी कोई सीमा ही नहीं है। यहाँ अनेक रंगों की बनावट के अनन्त फूल हैं। इन फूलों तथा उनकी पत्तियों में तरह-तरह की सुन्दर-सुन्दर काँगरी भी बनी हुई है।

हिसाब नहीं फूलन को, हिसाब ना चित्रामन।

हिसाब नहीं खुसबोए को, हिसाब ना रंग रोसन॥१९॥

इस फूल बाग में इतने फूल हैं कि उनकी गणना ही नहीं हो सकती। उन फूलों की आकृति भी इतनी हैं कि उनकी कोई सीमा नहीं है अर्थात् वहाँ अनन्त आकृति



वाले फूल विद्यमान हैं। इन फूलों से निकलने वाली अनन्त सुगन्धि की भी कोई माप हो ही नहीं सकती। इसी प्रकार, उन फूलों के जगमगाते हुए रंगों की भी गणना हो पाना सम्भव नहीं है।

**कई मेवे फलन के, कई मेवे हैं फूल।**

**कई मेवे डार पात के, कई मेवे कन्दमूल॥२०॥**

इस फूल बाग में कई फलों के मेवे हैं, तो कई फूलों के ऐसे भी मेवे हैं जो डालियों तथा पत्तियों से तैयार होते हैं। इसी प्रकार कन्दमूलों के रूप में पैदा होने वाले भी अनेक प्रकार के मेवे शोभायमान हो रहे हैं।

**भावार्थ—** इस चौपाई में बड़ोवन के वृक्षों का प्रसंग है। अज्जीर, अखरोट आदि फलों से बने हुए मेवे हैं।

कई बन आगूं आए मिल्या, जो बन बड़ा कहियत।

ऊंचे बिरिख अति सुन्दर, जित हिंडोलों हींचत॥२१॥

फूल बाग के सामने (उत्तर, दक्षिण, व पश्चिम में) बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें आयी हैं। इसमें अनेक प्रकार के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। ये ऊँचे-ऊँचे वृक्ष बहुत सुन्दर हैं, और इनमें हिण्डोले लटके हुए हैं जिनमें श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ झूला झूलती हैं।

**भावार्थ-** अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त होने के कारण ही "कई वन" का कथन किया गया है, जिसका तात्पर्य है- कई प्रकार के वृक्षों वाला "बड़ा वन"।

कई बिरिख कई हिंडोले, कई जुदी जुदी जिनस।

स्याम स्यामाजी साथ जी, सुख लेवें अरस-परस॥२२॥

बड़ोवन के अनेक वृक्षों में अलग-अलग प्रकार के बहुत

से हिण्डोले दिखायी दे रहे हैं। इन हिण्डोलों पर श्री राजश्यामा जी तथा सुन्दरसाथ झूलते हैं तथा एकरस अवस्था में आनन्द का रसपान करते हैं।

**भावार्थ-** एकरस (अरस-परस) होने का तात्पर्य है- एकत्व (वहदत) के रस में डूब जाना। जब सखियाँ युगल स्वरूप के साथ झूले झूलती हैं, तो उन्हें अपनी जरा भी सुध नहीं रहती। इसी को अरस-परस होना कहा गया है।

कहूं कहूं लम्बे हिंडोले, कहूं तिनसें बड़े अतंत।

कहूं कहूं छोटे बने, कई जुदी जुदी जुगत॥२३॥

कहीं-कहीं छोटे हिण्डोले हैं। कहीं-कहीं लम्बे हिण्डोले आये हैं और कहीं पर इतने लम्बे हिण्डोले दृष्टिगोचर हो रहे हैं कि उनकी लम्बाई का माप ही नहीं हो सकता। इस

प्रकार, अलग-अलग प्रकार की बनावट के अनन्त प्रकार के हिण्डोले शोभायमान हो रहे हैं।

कहूं कहूं सेज्या हिंडोले, कहूं हिंडोले सिंघासन।

कहूं कहूं खड़ियां हींचत, यों खेल होत इन बन॥२४॥

कुछ झूले शयन करते हुए झूलने के लिये शय्या से युक्त हैं, तो कुछ बैठते हुए झूलने के लिये सिंहासन से युक्त हैं। किसी-किसी हिण्डोले पर खड़े होकर भी झूलते हैं। इस प्रकार फूल बाग के सामने आये हुए बड़ोवन के अन्दर इस प्रकार की मनोरम लीलायें हुआ करती हैं।

एक सोए हिंडोले लेवहीं, एक बैठके हींचत।

एक उठें एक बैठत हैं, यों जुगल केलि करत॥२५॥

शय्या से युक्त हिण्डोलों में कोई सखी शयन करते हुए

(लेटे-लेटे) झूला झूलती है, तो कोई सिंहासन हिण्डोले पर बैठे-बैठे झूलती है। कई हिण्डोलों में दो-दो सखियाँ साथ-साथ झूला झूलती हैं, जिनमें से एक सखी खड़े होकर और दूसरी बैठकर झूलती है। इस प्रकार, दोनों तरह-तरह से इस प्रेममयी क्रीड़ा में तल्लीन रहती हैं।

**इन बन जिमी की रोसनी, मावत नहीं आकास।**

**इन रोसन हिंडोलों हींचत, क्यों कहूं खूबी खास॥२६॥**

बड़ोवन से घिरे इस फूल बाग एवं यहाँ की धरती से इतनी अधिक ज्योति उठ रही है कि वह आकाश में नहीं समा पा रही है, अर्थात् सर्वत्र ज्योति ही ज्योति दिखायी दे रही है। जिस समय युगल स्वरूप के साथ सखियाँ इन जगमगाते हुए हिण्डोलों में झूलती हैं, उस समय की इस विशेष (अनुपम) शोभा का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ।

इस तरफ चबूतरा धाम का, आए मिल्या बन इत।

महामत कहे इन अकलें, क्यों कर करूं सिफत॥२७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! रंगमहल की उत्तर दिशा में धाम चबूतरे से लगता हुआ लाल चबूतरा है, जिसके सामने बड़ोवन के ४९ वृक्षों की ४९ हारे आयी हैं। बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें नूर बाग की तीन दिशाओं (दक्षिण, पश्चिम, तथा उत्तर) से होते हुए इस बड़ोवन से आकर मिल गयी है। मैं इस बुद्धि से यहाँ की शोभा का कैसे वर्णन करूँ।

प्रकरण ॥१०॥ चौपाई ॥६४३॥

## लाल चबूतरा बड़े जानवरों के मुजरे की जगह

लाल चबूतरा वह स्थान है, जहाँ पर युगल स्वरूप सहित सुन्दरसाथ अपने आसनों पर विराजमान होकर सामने बड़ोवन के अखाड़ों में बड़े-बड़े जानवरों की तरह-तरह की लीलायें देखा करते हैं।

ए जो बड़ा चबूतरा, लगता चल्या दीवार।

इत छाया बड़े बन की, ए बैठक बड़ी विसाल॥१॥

रंगमहल की उत्तर दिशा में लाल रंग का यह बहुत बड़ा चबूतरा है, जो रंगमहल के चबूतरे से लगते हुए आया है। चबूतरे के ऊपर बड़े वन की प्रथम पंक्ति के ४१ वृक्षों की छाया पड़ती है। इस प्रकार एक विशाल बैठक के रूप में चबूतरे की अपार शोभा हो रही है।

**भावार्थ—** रंगमहल के वायव्य कोने में स्थित १६ हाँस

के चहबच्चे से पूर्व की ओर १२०० मन्दिर का लम्बा तथा ३० मन्दिर का चौड़ा लाल चबूतरा आया हुआ है। इस चबूतरे के सामने बड़े वन के ४१ वृक्षों की ४१ हारें सुशोभित हो रही हैं। इन ४१ वृक्षों की प्रथम १७ हारें एक भूमिका ऊँची हैं, जो रंगमहल की १० भूमिका के बराबर है। शेष २४ हारें २५० भूमिका ऊँची हैं। पहली हार के ४१ वृक्षों की डालियाँ रंगमहल की १०वीं चाँदनी से मिली हुई हैं।

**सोभा लेत अति कठेड़ा, तमाम चबूतर।**

**तले लगते दरखत, सब पेड़ बराबर॥२॥**

सम्पूर्ण चबूतरे की किनार पर लगा हुआ कठेड़ा (परकोटा) बहुत ही सुशोभित हो रहा है। इस चबूतरे से लगते हुए नीचे बड़े वन के पहली हार के अति सुन्दर वृक्ष



आये हैं। सभी वृक्ष एक-दूसरे से एक-एक हाँस की समान दूरी पर दिखायी दे रहे हैं।

**पेड़ लम्बे उपली छातलों, छत्रियां छज्जों पर।**

**लम्बे छज्जे बड़ी बैठक, इत मोहोला लेत जानवर॥३॥**

बड़े वन के वृक्ष बहुत ही लम्बे हैं और दसवीं चाँदनी की ऊँचाई तक गये हैं। वृक्षों की डालियाँ दसवीं आकाशी के छज्जों से मिल गयी हैं। ये छज्जे बहुत लम्बे हैं और चारों ओर घेरकर आये हैं। नीचे लाल चबूतरे पर सभी सखियों और युगल स्वरूप की विशाल बैठक होती है। यहीं पर बैठकर जानवरों की लीला का आनन्द लिया जाता है।

**भावार्थ—** वृक्षों की डालियाँ चबूतरे के ऊपर दसवीं चाँदनी से मिल गयी हैं, जिससे ३० मन्दिर का चौड़ा एवं १२०० मन्दिर का लम्बा छज्जा बन गया है। लाल

चबूतरा ४० हाँस का है। प्रत्येक हाँस में एक-एक सिंहासन तथा इसके दायें-बायें ६०००-६००० (कुल १२०००) कुर्सियाँ रखी हुई हैं, अर्थात् लाल चबूतरे पर ४० सिंहासन एवं १२००० x ४० कुर्सियाँ रखी हैं। यही कारण है कि इस बैठक को चौपाई १ व ३ में विशाल बैठक कहकर सम्बोधित किया गया है।

**जवेर ख्वाब जिमी के, ए खूब ख्वाब में लगत।**

**ए झूठ निमूना क्यों देऊं, अर्स बका के दरखत॥४॥**

इस मायावी संसार के हीरे-मोती आदि जवाहरात इस जगत में अच्छे लगते हैं। परमधाम में संसार के इन जवाहरातों की शोभा का कोई अस्तित्व ही नहीं है। ऐसी स्थिति में अखण्ड परमधाम के वृक्षों की अनन्त शोभा को यहाँ जवाहरातों की उपमा देकर भला मैं कैसे कह

सकती हूँ।

रोसनी इन दरखत की, पेड़ डार या पात।

नूर इन रोसन का, अवकास में न समात॥५॥

निजधाम के इन वृक्षों की नूरी ज्योति अनन्त है। इन जगमगाते हुए वृक्षों की डालियों एवं पत्तों से इतना तेज (शीतलता एवं चैतन्यता) निकल रहा होता है कि वह आकाश में भी समा नहीं पाता (सर्वत्र तेज ही तेज दिखायी देता है)।

एक डार जरे की रोसनी, भराए रही आसमान।

तो कौन निमूना इनका, जो दीजिए इनके मान॥६॥

यहाँ के वृक्षों की एक डाली की कणिका (अंश) मात्र से जब सम्पूर्ण आकाश ही नूरी ज्योति से आच्छादित हो

जाता है, तो इनके समक्ष इस मायावी संसार के हीरे – मोती आदि कोई भी पदार्थ भला कहाँ ठहर सकते हैं, जिनकी उपमा इनसे दी जाये।

जिमी रंचक रेत की, कछू दिया न निमूना जात।

तो क्यों कहूं फल फूल पात की, और झरोखे मोहोलात॥७॥

जब परमधाम की नूरी धरती की रेत के एक कण मात्र की ज्योति की तुलना में इस संसार के सभी तेजोमयी पदार्थ (सूर्यादि) अयोग्य हो जाते हैं, तो वहाँ के वृक्षों के फलों, फूलों, पत्तियों, झरोखों, तथा महलों की अनन्त शोभा का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ।

ऊपर तमाम चबूतरे, बिछाया है दुलीच।

दोऊ तरफों बैठी रूहें, हक हादी सिंघासन बीच॥८॥

सम्पूर्ण चबूतरे के ऊपर अति कोमल और सुन्दर दुलीचा बिछा हुआ है। युगल स्वरूप का सिंहासन बीच में होता है तथा उनके दोनों ओर सखियाँ अपनी-अपनी कुर्सियों पर विराजमान होती हैं।

**भावार्थ-** प्रत्येक हाँस में दुलीचे (गिलम) का रंग अलग-अलग है, किन्तु सिंहासन एवं कुर्सियों की शोभा यथावत है।

**बैठे तिन सिंघासन, हक अपना मिलावा ले।**

**इन अंग की अकलें, क्यों कहूं खूबी ए॥९॥**

उस सिंहासन पर युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी विराजमान होते हैं तथा समस्त सुन्दरसाथ उनके दोनों ओर सुशोभित होते हैं। इस अनुपम शोभा का वर्णन भला मैं इस भौतिक तन की बुद्धि से कैसे कर सकती हूँ।

बैठे जुगल किसोर, ऊपर दोऊ के छत्र।

आगे जिकर करें कई विधसों, और बजावें बाजंत्र॥१०॥

श्री राजश्यामा जी सिंहासन के ऊपर बैठे होते हैं और उनके ऊपर दो छत्र शोभायमान हो रहे होते हैं। उनके सामने पशु-पक्षी तरह-तरह के मधुर बाजे बजाते हैं तथा उनकी अनन्त महिमा का गुणगान करते हैं।

आवत मोहोलें मुजरे, इतका जो लसकर।

ताके एक बाल के नूरसों, रही भराए जिमी अंबर॥११॥

लाल चबूतरे पर विराजमान धाम धनी के दर्शन एवं प्रणाम करने के लिये पशु-पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड यहाँ आते हैं। इन जानवरों के एक बाल में भी इतना तेज (नूर) विद्यमान है कि उससे सम्पूर्ण धरती और आकाश भरा हुआ दिखायी देता है।

देखावत रुहन को, पसु पंखी लराए।

हँसत हक अरवाहों सों, नए नए खेल खेलाए॥१२॥

श्री राज जी अपनी अँगनाओं को पशु-पक्षियों की तरह-तरह की लड़ाइयों के एवं अन्य नये-नये कई प्रकार के खेल दिखाते हैं, और उनसे बहुत प्रेमपूर्वक हँसी की लीला करते हैं।

**भावार्थ-** चीतल, साम्भर, छिंकारा, बारहसिंगा आदि हिरन की जातियाँ हैं। हिरन की भारतवर्ष में लगभग १२ जातियाँ होती हैं। चीतल के शरीर पर चित्तियाँ होती हैं। इसके सींगों में शाखायें होती हैं, जबकि छिंकारा (काले हिरन) के केवल दो सींग होते हैं।

कई गरुड़ गरजें लड़ें, कई मोर मुग कुलंग।

लड़े चढ़े ऊंचे आसमान लों, फेर के लड़े जंग बंग॥१३॥

यहाँ पर बहुत से गरुड़, मोर, मुर्गे, कुलंग (शुतुरमुर्ग) आदि पक्षी अपनी बोली द्वारा वीरता दिखाते हुए (गर्जते हुए) लड़ाई करते हैं। वे लड़ते हुए आकाश में बहुत अधिक ऊँचाई तक चले जाते हैं और पुनः वापस आकर घोर युद्ध करने लगते हैं।

**द्रष्टव्य—** परमधाम में पशु-पक्षियों की लड़ाई भी प्रेम लीला का ही एक अंग है। वहाँ की लड़ाई इस संसार की तरह द्वेष के कारण नहीं होती।

**केसरी काबली हाथी, बाघ बीघ बांदर।**

**पस्व घोड़े दीपड़े, लड़े सूअर सांम्हर॥१४॥**

लाल चबूतरे के सामने १६०० अखाड़ों में केसरी (सिंह, शेर, बब्बर), काबली, हाथी, बाघ, भेड़िये, बन्दर, पस्व, घोड़े, तेंदुए, सुअर, बारहसिंगे आदि लड़ाई



के रूप में तरह-तरह के खेल करते हैं।

**भावार्थ-** केशरी सिंह को वनराज कहा जाता है। इसके चेहरे एवं शिर पर बड़े-बड़े बाल होते हैं तथा कमर बहुत पतली होती है, किन्तु बाघ की कमर पतली नहीं होती।

**चीते चीतल बैल बकर, लड़ें बरबरे हरन।**

**जरख चरख रोझ रीछड़े, लड़त आवें अरन॥१५॥**

चीते, चीतल, बैल, गाय, बारहसिंगे (हिरन), लकड़बग्घे, नीलगाय, रीछ, और जंगली भैंसे अखाड़ों में प्रेमपूर्वक लड़ाई करते हैं।

**लोखरी कूकरी जंबुक, लड़त हैं मेढ़े।**

**खरगोस बिल्ली मूस्क, लरें छिकारे गैंडे॥१६॥**

लोमड़ी, मुर्गी, गीदड़, मेढ़े, खरगोश, बिल्ली, चूहे, तथा हिरन (छिकारे) भी लड़ते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

**कई जातें पसुअन की, और कई जातें जानवर।**

**हिसाब न आवे गिनती, ए खेल कहूं क्यों कर॥१७॥**

इस प्रकार, इन अखाड़ों में अनेक जातियों (प्रकार) के इतने पशु-पक्षी हैं जिनकी कोई गिनती ही नहीं है। वे यहाँ पर तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करते हैं। इस लीला का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**विशेष-** पशु और जानवर एकार्थवाची शब्द हैं। "पशु" शब्द संस्कृत एवं हिन्दी का है, तथा "जानवर" शब्द फारसी का है। श्रीमुखवाणी में प्रेम-इश्क, आशा-उमेद आदि का भी प्रयोग इसी प्रकार किया गया है।

कई रिझावें लड़ के, कई नाच मिलावें तान।

कई उड़ें कूदें फांदहीं, कई बोलत मीठी बान॥१८॥

कुछ पशु-पक्षी ऐसे हैं जो आपस में लड़कर धाम धनी को रिझाते हैं, तो कुछ नाचते हुए ही मधुर स्वरों में गाकर अपने प्राणेश्वर को आनन्दित करते हैं। कुछ रिझाने के लिये आकाश में उड़ते हैं, कुछ ऊँचाई से कूदते हैं, और कुछ लाँघते हैं। इसी प्रकार, कुछ पशु-पक्षी बहुत ही मीठी वाणी बोलकर अपने प्रियतम को रिझाते हैं।

कई देत गुलाटियां, कई साधत स्वर समान।

कई खेलें चले टेढ़े उलटे, कई नई नई मुख बान॥१९॥

कुछ पशु-पक्षी उल्टी कलाबाजियाँ मारते (खाते) हैं, तो कुछ एक समान स्वर में मधुर गायन करते हैं। कई उल्टे-टेढ़े चलते हुए तरह-तरह के खेल करते हैं। कई

अपने मुख से नयी-नयी तरह की ध्वनियाँ निकालकर  
धाम धनी को रिझाते हैं।

कई नाचत हैं पांउं सों, कई नचावें पर।

कई नाचत हैं उड़ते, कई हाथ चोंच सिर लर॥२०॥

कुछ पशु ऐसे हैं, जो पैरों से नाचते हैं। इसी प्रकार, मोर  
आदि कई पक्षी ऐसे हैं, जो अपने पंखों से नृत्य करके  
धाम धनी को रिझाते हैं। कुछ तो आकाश में उड़ते-  
उड़ते भी नाचते रहते हैं। कुछ अपने हाथों (पँजों),  
चोंच, तथा शिर से आपस में लड़ाई करते हैं और युगल  
स्वरूप को रिझाते हैं।

कई हंसावत हक को, भांत भांत खेल कर।

कोई हिकमत छिपी ना रहे, ए ऐसे पसु जानवर॥२१॥

परमधाम के ये पशु-पक्षी ऐसे हैं, जो तरह-तरह के खेल खेलकर धाम धनी को हँसाते रहते हैं। श्री राज जी को प्रेमपूर्वक रिझाने की कोई भी कला इनसे छिपी नहीं है।

क्यों कहूं इन सुख की, जो इन मेले में बसत।

ए सोई रूहें जानहीं, जो इन हक की सोहोबत॥२२॥

परमधाम में धनी के साथ प्रेम लीला का सुख लेने वाली इन अँगनाओं के आनन्द का वर्णन कैसे करूँ। इसे तो मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, जो दिन-रात धनी के अंग-संग रहती हैं।

**द्रष्टव्य-** परमधाम में धनी की अँगरूपा सखियाँ अनन्त हैं, इसलिए उनके समूह को दर्शाने के लिये "मेले" शब्द का प्रयोग किया गया है।

क्यों कहूँ इन सुख की, जो हक देत मुख बोल।

क्यों देऊँ निमूना इनका, याको रूहें जानें तौल मोल॥२३॥

श्री राज जी अपने श्रीमुख से जब सखियों के साथ प्रेम भरी बातें करते हैं, तो इस अपार सुख का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ। परमधाम के इस सुख की उपमा संसार में दे पाना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। इसका वास्तविक मूल्यांकन तो मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं।

**भावार्थ-** किसी वस्तु को खरीदने (मोल लेने) के लिये जब उसकी मात्रा और मूल्य की माप (गणना) की जाती है, तो उसे मूल्यांकन करना कहते हैं। धनी के सुख को अपने धाम-हृदय में बसाना ही मोल करना है।

क्यों कहूँ इन सुख की, जो धनी देत कर हेत।

आराम इन इस्क का, सोई जाने जो लेत॥२४॥

धाम धनी बहुत प्यार करके अपनी अँगनाओं को जो अनन्त सुख देते हैं, उसका वर्णन मैं इस मुख से कैसे कर सकती हूँ। धनी के प्रेम से मिलने वाले अथाह आनन्द को तो वे सखियाँ ही जानती हैं, जो उसे प्राप्त करती हैं।

**क्यों कहूँ सुख सनमुख का, जो पिलावें नैनों सों।**

**ए सोई रूहें जानहीं, रस आवत है जिनकों॥२५॥**

श्री राज जी अपनी अँगनाओं को सम्मुख करके अपने नेत्रों से उनके हृदय में जो प्रेम का रस उड़ेलते हैं, उस शब्दातीत सुख का वर्णन हो पाना कदापि सम्भव नहीं है। उस अपार आनन्द का रस मात्र उन सखियों को ही मालूम है, जिसके हृदय में यह प्रवाहित होता है।

क्यों कहूं इन सुखकी, धनी देवें इस्कसों।

ए सोई रूहें जानही, हक देत हैं जिनकों॥२६॥

प्रियतम अक्षरातीत अपनी प्रियाओं को अपने प्रेम का जो अपार आनन्द देते हैं, उसका इस संसार में वर्णन कर पाना मेरे लिये सम्भव नहीं है। उस सुख के वास्तविक स्वरूप को तो मात्र वे ब्रह्मात्मायें ही जानती हैं, जिन्हें स्वयं धाम धनी वह आनन्द देते हैं।

क्यों कहूं इन सुख की, हक देत कर प्रीत।

जो ए प्याले लेत हैं, सोई जानें रस रीत॥२७॥

प्राण प्रियतम श्री राज जी अपनी अँगरूपा आत्माओं को अपनी अथाह प्रीति का जो सुख देते हैं, उसे मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ। मधुर प्रीति के अपार रस की पहचान तो उन सखियों को ही होती है, जो धनी के नेत्रों



से मिलने वाले प्रीति के प्यालों को ग्रहण करती हैं।

**भावार्थ-** प्रेम के बीज रूप में "प्रीति" विद्यमान होती है। यह कथन वैसे ही है, जैसे अहंकार में बीज रूप से अस्मिता का होना। श्री राज जी के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम का सागर प्रीति रूपी लहरों के रूप में उनके नेत्रों से प्रकट होता है, जो सखियों के प्याले रूपी हृदय में छलकने लगता है (लबालब भर जाता है)। आन्तरिक रूप से प्रेम और प्रीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इनमें मूलतः कोई अन्तर नहीं है, किन्तु शब्दों की परिधि में लाने के लिये प्रेम और प्रीति को अलग करके कहा जाता है।

क्यों कहूं सुख नजीक का, जो इन हक की सोहोबत।

ए सोई रूहें जानहीं, जो लेवें हर बखत॥२८॥

धाम धनी के साथ-साथ रहने वाली अँगनाओं को उनकी सामीप्यता का जो अपार सुख मिलता है, उसका वर्णन भला मैं कैसे कर सकती हूँ। इसे मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, जो पल-पल धनी के सामीप्य का सुख लेती हैं।

**द्रष्टव्य-** लीला रूप में ही सखियों को श्री राज जी के समीपस्थ बताया गया है, अन्यथा दोनों अंग-अंगी हैं। दोनों का हृदय एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं। तात्त्विक रूप से (मारिफत की नजर से) दोनों के स्वरूप में कोई भी भेद नहीं है।

क्यों कहूँ इन सुखकी, जासों हक रमूज करत।

ए सोई रूहें जानहीं, जिनका बासा इत॥२९॥

जिन अँगनाओं से स्वयं धाम धनी प्रेम भरी मधुर बातें

करते हैं, उनके सुख का मैं कैसे वर्णन करूँ। उस सुख को मात्र वे सखियाँ ही जानती हैं, जो परमधाम में रहा करती हैं।

क्यों कहूँ इन सुखकी, जासों हक करें इसारत।

ए सोई रूहें जानहीं, सामी सैन से समझावत॥३०॥

जिन ब्रह्मात्माओं से प्रियतम श्री राज जी अपने प्रेम भरे नेत्रों से प्रेम के संकेत (इशारे) किया करते हैं, उनके सुख का वर्णन हो पाना कदापि सम्भव नहीं है। इस सुख को वे आत्मायें ही जानती हैं, जिनके सम्मुख स्वयं श्री राज जी अपने नेत्रों के संकेतों से प्रेम की बातें करते हैं (समझाते हैं)।

क्यों कहूं इन सुखकी, जो हक देत दायम।

ए सोई रूहें जानहीं, जो पिएं सराब कायम॥३१॥

उन ब्रह्मसृष्टियों के सुख का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है, जिन्हें स्वयं श्री राज जी अपने हृदय का प्रेम अखण्ड रूप से देते रहते हैं। अक्षरातीत के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम का रस अनवरत (निरन्तर) रूप से जो सखियाँ पीती रहती हैं, एकमात्र वे ही उसके मर्म (रहस्य) को जानती हैं।

क्यों कहूं इन सुखकी, जासों हक करत हैं हांस।

ए सोई रूहें जानहीं, जो लेत खुसाली खास॥३२॥

अपनी जिन प्रियाओं से श्री राज जी प्रेम भरी हँसी की लीलायें करते हैं, उनके सुख को शब्दों में किसी भी प्रकार से व्यक्त नहीं किया जा सकता। धनी से हास –

परिहास (हँसी-मजाक) की लीला का विशेष सुख लेने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ ही इस अपार आनन्द को यथार्थ रूप से जानती हैं।

क्यों कहूँ इन सुखकी, जाए हक लेत बोलाए।

सनमुख बातें करके, अमीरस नैन पिलाए॥३३॥

जिन सखियों को धाम धनी बहुत प्यार से अपने पास बुलाते हैं और अपने सामने बैठाकर अति प्रीतिपूर्वक बातें करते हुए अपने नेत्रों से उनके नेत्रों में प्रेम का अमृत रस उड़ेलते हैं, उनके इस अलौकिक सुख का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ।

क्यों कहूँ इन रूहनकी, जासों धनी बोलत सनमुख।

नहीं निमूना इनका, एही जानें ए सुख॥३४॥

जिन ब्रह्मांगनाओं को अपने सम्मुख करके धाम धनी अति प्यार भरी बातें करते हैं, उनके इस सुख का मैं वर्णन नहीं कर सकती। संसार में इस अलौकिक सुख की कोई उपमा नहीं दी जा सकती। केवल ब्रह्मसृष्टियाँ ही इस सुख के वास्तविक रहस्य को जानती हैं।

**क्यों कहूं इन सुखकी, जो प्यारी पिउ के दिल।**

**सनमुख बातां करत हैं, इन खावंद सामिल॥३५॥**

सखियाँ श्री राज जी को बहुत प्यारी हैं (प्राणेश्वरी हैं)। वे अपने प्रियतम श्री राज जी के सम्मुख होकर प्रेम रस से भरपूर मधुर-मधुर बातें करती हैं। उनके इस सुख का शब्दों में वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "सामिल" शब्द का तात्पर्य श्री राज जी के "साथ" बातें करने से

है।

क्यों कहूं ताके सुखकी, हक बातें करें दिल दे।

ए रूहें प्याले जानहीं, जो हाथ धनीके लें॥३६॥

जिन आत्माओं को धाम धनी अपना दिल देकर प्रेम रस से भरपूर अति मीठी बातें करते हैं, उनके उस सुख को व्यक्त कर पाना मेरे लिये सम्भव नहीं है। इस सुख का अनुभव तो उन ब्रह्मसृष्टियों को ही है, जो धनी के हाथ से प्रेम भरे प्याले लेती हैं।

क्यों कहूं इन सुख की, जाको निरखत धनी नजर।

प्याले आप धनीय को, सामी देत भर भर॥३७॥

जिन सखियों को धाम धनी अपनी प्रेम भरी दृष्टि (नजर) से देखते हैं, उनके उस सुख का वर्णन हो पाना

सम्भव नहीं है। माशूक स्वरूपा सखियाँ भी अपने प्राण प्रियतम को अपने हृदय के प्रेम (इश्क) रूपी प्याले समर्पित करती हैं।

**भावार्थ-** आशिक अपने माशूक का दीदार चाहता है। दीदार करके वह इश्क चाहता है। अन्त में माशूक अपने हृदय का इश्क उस पर लुटा देता है। इस चौपाई में इसी स्थिति का चित्रण किया गया है।

क्यों कहूं इन सुख की, जो हकसों नैनो नैन मिलाए।  
 फेर फेर प्याले लेत हैं, आगूं इन धनी के आए॥३८॥

ब्रह्मसृष्टियाँ बारम्बार धनी के सम्मुख (आगे) आ-  
 आकर उनके प्रेम भरे नेत्रों से अपने नेत्र मिलाती हैं और  
 प्रेम के प्याले भर-भर कर लेती हैं। इनके इस अलौकिक  
 सुख का वर्णन मैं कैसे करूँ।



**भावार्थ-** इस चौपाई में पूर्व की ३७वीं चौपाई के विपरीत कथन है। यहाँ सखियाँ आशिक हैं और धनी माशूक हैं। सखियाँ धनी के नेत्रों से नेत्र मिलाकर उनका प्रेम चाहती हैं और श्री राज जी उनके प्याले रूपी दिलों में अपने हृदय का प्रेम रस भर देते हैं। जिस पात्र (बर्तन) में प्रेम का रस डाला जाता है, उसे प्याला कहा जाता है। यह प्याला श्यामा जी एवं सखियों का दिल है। कहीं-कहीं पात्रहीनता (पात्र की अनुपस्थिति) की अवस्था में भी प्रेम रस को दर्शाने के लिये "प्याला" शब्द का प्रयोग किया जाता है, जैसे चौपाई ३७ में "प्याले आप धनीय को, सामी देत भर भर।"

क्यों कहूं इन सुख की, जो दूर बैठत हैं जाए।

तितथें धनी बोलाएके, ढिग बैठावत ताए॥३९॥

जब कोई ब्रह्मात्मा कहीं दूर बैठी होती है, तो धाम धनी उसे बुलाकर बहुत प्रेमपूर्वक अपने पास बैठाते हैं। धनी के अथाह प्रेम में डुबकी लगाने वाली इन ब्रह्मसृष्टियों के सुख का मैं कैसे वर्णन करूँ।

**क्यों कहूँ इन सुखकी, जाको देत धनी चित्त।**

**सो धनी आगूँ आके, सामी मीठी बान बोलत॥४०॥**

ब्रह्मसृष्टियों के प्रति श्री राज जी अपना हृदय समर्पित किये (लुटाये) हुए होते हैं। उनके प्रेम रूपी बाणों से बिंधी (घायल) हुई सखियाँ उनके सामने आ-आकर अमृत से भी अनेक गुना मीठी वाणी बोलती हैं। इस प्रकार का सौभाग्य जिन्हें प्राप्त है, उनके इस अपरिमित सुख को मैं कैसे व्यक्त करूँ।

क्यों कहूँ सुख रुहन के, फेर फेर देखें हक नैन।

खावंद नजीक बुलाए के, बोलत मीठे बैन॥४१॥

ब्रह्मात्माओं के उस अलौकिक सुख का वर्णन मैं कैसे करूँ, जो धनी के प्रेम-भरे नेत्रों की ओर बारम्बार देखा करती हैं और धाम धनी उन्हें अपने पास बुलाकर प्रेम से भरपूर बहुत मीठी वाणी बोलते हैं।

क्यों कहूँ सुख नजीकियों, जाको देखें हक नजर।

बातें इस्क पिउ अंगे, पिएं प्याले भर भर॥४२॥

पल-पल धनी के पास सखियों के सुखों का मैं कैसे वर्णन करूँ। इन्हें श्री राज जी अपनी अनन्त प्रेम भरी नजरों से निहारा (देखा) करते हैं। सखियाँ भी अपने प्राणवल्लभ से प्रेम की माधुर्यता के रस में डूबी हुई मीठी-मीठी बातें करती हैं और प्रेम के प्याले भर-भरकर

उसका रसपान करती हैं।

क्यों कहूं सुख रूहन के, फेर फेर देखें मुख पिउ।

नैन बैन सुख देत हैं, चुभ रहेत माहें जिउ॥४३॥

इन ब्रह्मसृष्टियों के अपार सुखों का वर्णन मैं कैसे करूँ, जो बार-बार धनी के मोहक मुख को निहारा करती हैं। श्री राज जी के प्रेम-भरे अति सुन्दर नेत्र और अति मीठे वचन अँगनाओं को अनन्त सुख देते हैं। सखियों के हृदय में इन सुखों की अनुभूति हमेशा बनी रहती है।

**विशेष-** इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "जीउ" (जीव) शब्द से तात्पर्य हृदय (अन्तःकरण या दिल) से है। अन्तःकरण द्वारा ही सुख की अनुभूति होती है, जिसका रस आत्मा को प्राप्त होता है। यहाँ कालमाया के जीव जैसा भाव नहीं लेना चाहिए, क्योंकि स्वलीला

अद्वैत परमधाम में जीव भाव का अस्तित्व नहीं है।

क्यों कहूं सुख रूहन के, जो हक बड़ीरूह अंग नूर।

आठों जाम इन पिउसों, हँस हँस करें मजकूर॥४४॥

श्री श्यामा जी श्री राज जी की हृदय स्वरूपा हैं और सखियाँ श्री श्यामा जी के हृदय (अंग, दिल) के नूर (प्रेम, आनन्द) से हैं। जो अष्ट प्रहर अपने प्राणवल्लभ से हँस-हँस कर प्रेम भरी बातें करती हैं, उनके सुख को शब्दों में मैं कैसे व्यक्त करूँ।

**भावार्थ-** "नूर" शब्द का तात्पर्य तेज, ज्योति, आभा, सौन्दर्य, कान्ति, जीवन-तत्त्व, प्रेम, आनन्द आदि से है। संक्षेप में सम्पूर्ण परमधाम में लीला रूप में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, वह नूर है, और उसका प्रकटीकरण श्री राज जी के हृदय (मारिफत रूपी दिल)

से हुआ है। श्री राज जी का दिल ही श्यामा जी के दिल के रूप में कार्य कर रहा है और श्यामा जी का दिल सखियों के दिल (हृदय) के रूप में लीला कर रहा है। इस प्रकार इस चौपाई में श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के स्वरूप में एकरूपता दर्शायी गयी है।

**क्यों कहूं सुख रुहन के, जो इन पिउ के आसिक।**

**भर भर प्याले लेवहीं, फेर फेर देवें हक॥४५॥**

सखियाँ धाम धनी की आशिक हैं। मैं उनके अखण्ड सुखों का यथार्थ वर्णन कैसे कर सकती हूँ। श्री राज जी अपने नेत्रों से बार-बार प्रेम के प्याले भर-भर कर देते हैं और सखियाँ अपने हृदय रूपी प्यालों में भर-भर कर उसका रसपान करती हैं।

क्यों कहूँ सुख रूहन के, जो लगे इन हकके कान।

करें मजकूर मजाक सों, साथ इन सुभान॥४६॥

प्रियतम अक्षरातीत के कानों से आत्माओं को जो सुख मिलता है, उसका वर्णन मैं इस जिह्वा से नहीं कर सकती। परमधाम के मूल सम्बन्ध से सखियाँ अपने प्रियतम के कानों में प्रेम-भरे मजाक की मीठी-मीठी बातें करती हैं। यह सौभाग्य एकमात्र उन्हीं को ही प्राप्त है।

क्यों कहूँ सुख इन रूहन के, जासों खेलें हँसें सनमुख।

पार नहीं सोहागको, इन पर धनीको रूख॥४७॥

परमधाम की इन सुहागिन सखियों के सुख की कोई सीमा ही नहीं है, उसका वर्णन भला मैं कैसे कर सकती हूँ। धाम धनी की मेहर भरी दृष्टि इन पर पल-पल बरसती रहती है। यह तो इन्हीं के सौभाग्य में है कि स्वयं

अक्षरातीत इनके साथ हँसते-खेलते हैं।

क्यों कहूं सुख रूहन के, इन पिउसों रस रंग।

आठों जाम आराम में, एक जरा नहीं दिल भंग॥४८॥

प्रियतम के प्रेम और आनन्द में डूबी रहने वाली अँगनाओं के अनन्त सुखों का मैं कैसे वर्णन करूँ। वे अष्ट प्रहर अपने प्राणवल्लभ के ही प्रेम और आनन्द में ओत-प्रोत (सराबोर) रहती हैं। उनके हृदय में रंचमात्र (नाम मात्र) भी प्रेम और आनन्द की कमी नहीं होती।

क्यों कहूं सुख रूहन के, जो आठों पोहोर पिउ पास।

रात दिन सोहोबत में, करें हांस विलास॥४९॥

अष्ट प्रहर प्रियतम के ही पास रहने वाली सखियों के अनन्त सुखों का मैं कैसे वर्णन करूँ। वे दिन-रात अपने



धनी के साथ रहकर प्रेम-भरे विनोद और आनन्द की लीला में रसमग्न रहा करती हैं।

**द्रष्टव्य-** जब युगल स्वरूप तीसरी भूमिका में सुख-शय्या पर विश्राम कर (पौढ़) रहे होते हैं, उस समय सखियाँ परमधाम में अनेक स्थानों पर भ्रमण के लिये गयी होती हैं। यद्यपि वे बाह्य रूप से धनी से दूर गई होती हैं किन्तु आन्तरिक रूप से एक पल के लिये भी धनी से दूर नहीं रहतीं, क्योंकि स्वलीला अद्वैत परमधाम में एक पल का भी वियोग होना सम्भव नहीं है।

क्यों कहूं सुख रूहन के, जो आठों जाम दिन रात।

प्रेम प्रीत सनेह की, भर भर प्याले पिलात॥५०॥

धनी के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम, प्रीति, और स्नेह के सागर की लहरें सखियाँ अपने हृदय रूपी प्यालों में भर-

भरकर अष्ट प्रहर-चौंसठ घड़ी दिन-रात पीती रहती हैं।  
उनके इस अपरिमित सुख का वर्णन मैं किस प्रकार  
करूँ।

क्यों कहूँ सुख रूहन के, जिनका साकी ए।

हक प्याले इस्क के, भर भर रूहों को दे॥५१॥

मैं ब्रह्मात्माओं के उस शब्दातीत सुख का वर्णन कैसे  
करूँ, जिन्हें प्रेम रस का पान कराने वाले स्वयं  
अक्षरातीत ही हैं। वे प्रेम के प्याले भर-भर कर अपनी  
अङ्गरूपा आत्माओं को निरन्तर पिलाते रहते हैं।

क्यों कहूँ इन सुख की, जो सदा सोहोबत हक जात।

जो इस्क आराम में, सो क्यों कहूँ इन मुख बात॥५२॥

सदा ही श्री राज जी के अंग-संग रहने वाली

ब्रह्मसृष्टियों के अखण्ड सुखों को मैं कैसे कहूँ। जिन्हें मात्र इश्क (प्रेम) की लीला में ही आनन्द मिलता है, उनके सुखों को किसी भी प्रकार से व्यक्त कर पाना मेरे लिये सम्भव नहीं है।

**क्यों कहूँ इन सुखकी, जिनका हक खावंद।**

**आठों जाम रूहन पर, हक होत परसंद॥५३॥**

सकल गुण निधान अक्षरातीत ही जिनके प्रियतम हैं और अष्ट प्रहर अपनी अँगरूपा सखियों की चाहना करते हैं, ऐसी ब्रह्मांगनाओं के अनन्त सुखों को मैं कैसे व्यक्त करूँ।

**भावार्थ—** इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "परसंद" का तात्पर्य चाहना, इच्छा, या प्रेम करने से है।

क्यों कहूं इन सुखकी, जो ख्वाब में गैयां भूल।

याद देने सुख अर्स के, हकें भेज्या एह रसूल॥५४॥

इस स्वप्नमयी संसार में आकर आत्मायें अपने धनी एवं परमधाम के सुखों को भूल चुकी हैं। उन्हें परमधाम के सुखों की याद देने के लिये ही धाम धनी ने अपने सन्देशवाहक के रूप में श्यामा जी (श्री देवचन्द्र जी) को भेजा है। जिन आत्माओं से श्री राज जी इतना प्यार करते हैं, उनके सुखों का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**भावार्थ-** रसूल (सन्देशवाहक) के दो भेद हैं। एक स्वरूप साक्षी के लिये कुरआन लाता है, किन्तु उस समय परमधाम की आत्मायें नहीं उतरी होती हैं। यह रसूल मुहम्मद साहब का स्वरूप है। दूसरा स्वरूप सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का स्वरूप है, जो आत्माओं को तारतम ज्ञान के माध्यम से धनी का सन्देश देता है। इस

चौपाई के तीसरे चरण में परमधाम के सुखों को याद दिलाने की बात कही गयी है, जो मात्र सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी एवं श्री महामति जी द्वारा ही सम्भव हो पायी है। अरब में जब आत्मायें उतरी ही नहीं थीं, तो शरियत के ज्ञान से भला किसको परमधाम के सुखों की याद दिलायी जाती। इस सम्बन्ध में सूर मरियम पारा १६ का कथन बहुत महत्वपूर्ण है। वस्तुतः हुक्म की तीन सूरते हैं—

बसरी मलकी और हकी, ए हुक्म तीन सूरत।

तिन दर्ई हैयाती दुनी को, करी सैंयन वास्ते सरत॥

बीतक ६२/१९

क्यों कहूं सुख हाँसीय को, जो ख्वाब में दैयां भुलाए।

ऊपर फेर फेर याद देत हैं, पर फरामोसी क्योंए न जाए॥५५॥

इस खेल में सखियों ने अपने धनी एवं मूल घर को भुला दिया है। धाम धनी तारतम वाणी द्वारा निज घर एवं मूल सम्बन्ध की पहचान ऊपर से निरन्तर (बारम्बार) दे रहे हैं, फिर भी माया की नींद सखियों का पीछा नहीं छोड़ रही है। जब परमधाम में जाग्रत होंगे, तब सबकी बहुत हँसी होगी। उस हँसी का सुख भी अपार होगा, जिसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

**भावार्थ—** धनी का स्वरूप जब आत्मा के हृदय में बस जाता है, तभी पूर्ण आत्म-जाग्रति होती है। ज्ञान दृष्टि से जो जाग्रति होती है, वह अधूरी होती है। इसे ही ऊपर-ऊपर से जगाना कहते हैं।

क्यों कहूं सुख इनका, जासों हक हांसी करत।

ए विध कहूं मैं कितनी, जो रूहों हक खेलावत॥५६॥

जिन सखियों के साथ स्वयं श्री राज जी ही प्रेम-भरी हँसी किया करते हैं, उनके अनन्त सुखों का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ। धनी अपनी अँगनाओं को जिस प्रेममयी लीला में डुबोये रखते हैं, उसके यथार्थ स्वरूप को मैं कितना व्यक्त करूँ।

**भावार्थ-** धनी का अपनी अँगनाओं के प्रति अनन्त प्रेम है। शब्दों में किसी भी प्रकार से उसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। इस चौपाई में इसी तथ्य को दर्शाया गया है।

क्यों कहूँ इन रुहन की, हक देखावें कई सुख।

दई सुख बका लज्जत, ख्वाब देखाए के दुख॥५७॥

मैं ब्रह्मसृष्टियों की महिमा को कहाँ तक दर्शाऊँ। इन्हें तो धाम धनी परमधाम में अनेक प्रकार से अखण्ड सुखों का

रसपान कराते ही हैं, इस संसार में भी उन्होंने माया के दुःखों को दिखाकर परमधाम के अखण्ड सुखों का स्वाद दिया है।

**भावार्थ-** इस संसार में तारतम वाणी के ज्ञान एवं परमधाम के चितवनि द्वारा परमधाम के स्वाद (रस) का प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है।

क्यों कहूं सुख रुहन के, जो लेवत आठों जाम।

बिना हिसाबे दिए आराम, हक का एही काम॥५८॥

सखियाँ अपने धाम धनी से अष्ट प्रहर प्रेम के आनन्द का रसपान करती रहती हैं। अपनी अँगनाओं को प्रेम का आनन्द देने के अतिरिक्त श्री राज जी के पास अन्य कोई कार्य ही नहीं है, अर्थात् धनी की लीला मात्र प्रेम एवं आनन्द की ही होती है। धाम धनी ने सखियों को जो



आनन्द दिया है, उसकी कोई भी सीमा नहीं है। उसे शब्दों की परिधि में बाँध पाना किसी भी प्रकार से सम्भव भी नहीं है।

**वास्ते इन रुहन के, परहेज लिया हकें ए।**

**आठों जाम फेर फेर देऊँ, सुख अर्स का जे॥५९॥**

मात्र इन सखियों के लिये ही धाम धनी ने निजधाम में यह निर्णय किया है कि मैं अपनी अँगनाओं को आठों प्रहर परमधाम का सुख बार-बार देता ही रहूँ।

**भावार्थ-** जिस प्रकार सागर और लहरों की लीला निरन्तर अबाध गति से चलती रहती है, उसी प्रकार धाम धनी की अपनी अँगरूपा आत्माओं के साथ प्रेम और आनन्द की लीला भी शाश्वत है और उसकी निरन्तरता में कोई बाधा नहीं पहुँचती। सूक्ष्म दृष्टि से

देखा जाये तो ब्रज, रास, एवं जागनी लीला में वहाँ का पल भर ही व्यतीत हुआ है।

अब क्यों कहूँ इन सुख की, लिया ऐसा परहेज हक।

जैसा बुजरक साहेब, सुख भी तिन माफक॥६०॥

धाम धनी की महिमा जिस प्रकार अनन्त है, उसी प्रकार उनके सुख भी अनन्त हैं। ऐसी अवस्था में धनी ने जब अनन्त सुखों का निरन्तर रसपान अपनी आत्माओं को कराते रहने का निर्णय किया है, तो सखियों के इन सुखों का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ।

ए सुख इन केहेनीय में, क्योंए किए न आवत।

देखो दिल विचार के, कछू तब पाओ लज्जत॥६१॥

धाम धनी अपनी अँगनाओं को परमधाम में जो अनन्त

सुख देते हैं, वे किसी भी प्रकार से शब्दों में व्यक्त नहीं किये जा सकते। हे साथ जी! यदि आप अपने दिल में वहाँ की लीला एवं सुखों के बारे में आत्मिक रूप से विचार करें, तो थोड़ा सा मात्र स्वाद ही मिल सकता है।

**भावार्थ**— परमधाम के सुखों को इस संसार में किसी भी भाषा में तर्क, वाकपटुता, या संकेतों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। चितवनि की गहराइयों में डूबने पर आत्मा को जो प्रत्यक्ष अनुभव होता है, उसको यदि गहन चिन्तन में लाया जाये तो उस आनन्द के अंश मात्र की एक झलक को जीव की बुद्धि द्वारा जाना जा सकता है, किन्तु यथार्थ रूप से शब्दों में उसे भी व्यक्त नहीं किया जा सकता।

आराम अर्स बका मिने, हक दिल दे देवें सुख।

ए सुख इन आकार से, क्यों कर कहूं इन मुख॥६२॥

अखण्ड परमधाम में अनन्त आनन्द है। धाम धनी ने अपना दिल अपनी अँगनाओं को दे दिया है और दिन-रात उसका सुख उन्हें देते रहते हैं। इन सुखों का वर्णन भला मैं इस नश्वर शरीर के इस मुख से कैसे कर सकती हूँ।

**भावार्थ-** आनन्द आत्मा का विषय है तथा सुख अन्तःकरण का विषय है। यद्यपि परमधाम में शरीर , इन्द्रिय, और अन्तःकरण भी आत्म-स्वरूप हैं, फिर भी इस संसार में उसी दृष्टि से आनन्द और सुख की अनुभूति को व्यक्त किया गया है। दूसरे शब्दों में, आनन्द ऋत् (परमसत्य, मारिफत) है, तो सुख सत्य (हकीकत) है।

ठौर बका अर्स कहा, और खावंद नूरजमाल।

इन दरगाह रूहों के सुख, क्यों कहूं फैल हाल॥६३॥

स्वलीला अद्वैत परमधाम को अनादि और अखण्ड कहा गया है। उसमें ब्रह्मसृष्टियों के प्रियतम अक्षरातीत विराजमान हैं। इस परमधाम में सखियाँ दिन-रात धनी के अनन्त सुखों का रसपान करती रहती हैं। इन ब्रह्मांगनाओं की अलौकिक करनी और रहनी का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**भावार्थ-** अपने प्राणवल्लभ को प्रेम से रिझाना सखियों की "करनी" है तथा उसमें डूबे रहना "रहनी" है।

ए सुख रूह कछू जानहीं, पर केहेनी में आवत नाहें।

ख्वाब वजूद की अकलें, क्यों कर आवे जुबाएं॥६४॥

परमधाम के सुखों को मेरी आत्मा कुछ अंशमात्र में

जानती हैं (अनुभव करती हैं), किन्तु वह कथन में नहीं आ पाता। इस स्वप्नमयी शरीर की बुद्धि और जिह्वा से भला अखण्ड सुखों का यथार्थ वर्णन कैसे हो सकता है।

**द्रष्टव्य—** धनी की मेहर से कोई भी ब्रह्मसृष्टि (श्री महामति जी के अतिरिक्त) परमधाम के सुखों का अंशमात्र में अनुभव कर सकती है।

**अर्स अजीम का खावंद, रमूज करे दिल दे।**

**अपने अर्स अरवाहों सों, क्यों कहे जुबां इन देह॥६५॥**

प्राणवल्लभ अक्षरातीत परमधाम में अपनी अँगरूपा ब्रह्मसृष्टियों को अपना दिल (हृदय) देकर हँसी-मजाक के रूप में अति प्रेम-भरी मीठी बातें करते हैं। उस सुख का वर्णन भला इस नश्वर शरीर की जिह्वा कैसे कर सकती है।

क्यों कहूं सुख हांसीय का, वास्ते हाँसी किए फरामोस।

फेर फेर उठावें हांसीय को, वह टलत नहीं बेहोस॥६६॥

परमधाम में होने वाली हँसी की लीला का सुख इतना असीम है कि उसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। हमारे ऊपर हँसी करने के लिये ही तो धाम धनी ने हमें बेसुधि का यह खेल दिखाया है। हमारे ऊपर हँसी करने के लिये ही श्री राज जी हमें बार-बार जगाते हैं, फिर भी हमारी नींद (बेसुधि) नहीं हटती।

**भावार्थ-** तारतम ज्ञान द्वारा जो हमारी आत्म-जाग्रति होती है, वह धनी को अपने धाम-हृदय में बसाये बिना पूर्ण नहीं होती। इस पूर्ण अवस्था से पूर्व ज्ञान द्वारा बार-बार जागने पर भी दिल माया में अटका रहता है। इसी की परमधाम में हँसी होनी है।

आप फरामोसी देय के, ऊपर से जगावत।

क्यों जागें बिना हुकमें, हक इन विध हांसी करत॥६७॥

एक ओर तो धाम धनी ने सखियों को माया की नींद में डाला है, तो दूसरी ओर तारतम वाणी से स्वयं जगा भी रहे हैं। भला, धनी के हुक्म के बिना कोई भी आत्मा कैसे जाग्रत हो सकती है? इस विचित्र लीला द्वारा श्री राज जी अपनी अँगनाओं पर हँसी कर रहे हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब श्री राज जी ही तारतम वाणी द्वारा सबको जगा रहे हैं, तो क्या उनका हुक्म उनसे भी बड़ा है, जो किसी को जाग्रत नहीं होने दे रहा है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि ज्ञान लक्ष्य को मात्र दर्शाता है, प्राप्त नहीं कराता। धनी के स्वरूप को प्रेम द्वारा दिल में बसाये बिना आत्म-जाग्रति



का दावा नहीं किया जा सकता। प्रेम की राह पर चलना ही ब्रह्मसृष्टियों के लिये परीक्षा की कसौटी है, किन्तु इस पर कोई-कोई ही चलता है। धाम धनी ने आत्माओं को माया से निकालने के लिये तारतम वाणी का ज्ञान दिया है, जिससे कि वे एक अक्षरातीत की पहचान कर सकें और प्रेम द्वारा धनी को रिझा सकें। ज्ञान द्वारा धनी की पहचान कराना ही ऊपर से जगाना है।

धाम धनी ने सभी आत्माओं की जाग्रति का एक निश्चित समय अपने हृदय में ले रखा है। उससे पहले सभी के जाग्रत होने का प्रश्न ही नहीं है। प्रेम का निर्णय करने के लिये ही तो यह खेल बना है, इसलिये श्री राज जी तारतम ज्ञान द्वारा अपनी पहचान देते हैं, पूर्ण जाग्रति नहीं, अन्यथा हँसी की लीला कैसे होगी? कोई-कोई आत्मा ही प्रेम के पँख लगाकर परमधाम की उड़ान

भरती है। शेष पहचान के बाद भी मायावी नींद की झपकी लेते रहते हैं।

ए हाँसी फरामोसीय की, होसी बड़ो विलास।

जागे पीछे आनंद को, अंग न मावत हांस॥६८॥

इस मायावी खेल की परमधाम में जो हँसी होगी, उसका आनन्द बहुत होगा। परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् हँसी की लीला का आनन्द इतना अधिक होगा कि वह दिल में नहीं समा पायेगा अर्थात् अनन्त होगा।

**भावार्थ-** माया में भूलने की हँसी तो आनन्दमयी ही होगी, किन्तु माया में ब्रह्मसृष्टियों के जीवों से जो गुनाह (अपराध) हुए हैं, उसकी हँसी लज्जित कराने वाली होगी, क्योंकि गुनाह आत्मा के नाम से जुड़े हुए माने जायेंगे। यही कारण है कि श्री महामति जी ने सभी को

हँसी के गुनाह से स्वयं को बचाने का निर्देश दिया है—

और हांसी सब सोहेली, पर ए हांसी सही न जाए।

अक्स भी न सह सकें, जब इलमें दिये पढ़ाए॥

सिनगार २३/२७

अनेक सुख देने को, साहेबें दर्ई फरामोसी।

जगावते भी जागे नहीं, एही हांसी बड़ी होसी॥६९॥

धाम धनी ने हमें परमधाम के अनेक प्रकार के सुखों को दिखाने के लिये ही नींद का यह खेल दिखाया है। ब्रह्मवाणी द्वारा बार-बार जगाने पर भी ब्रह्मसृष्टियाँ जाग्रत नहीं हो पा रही हैं, इसी बात की परमधाम में बहुत अधिक हँसी होगी।

**भावार्थ—** परमधाम में इश्क, निस्बत, वहदत, और खिलवत के हकीकत के सुखों का रसपान आत्मायें

किया करती थीं, किन्तु उन्हें धाम धनी के दिल की मारिफत की वास्तविक पहचान नहीं थी। इस जागनी ब्रह्माण्ड में तारतम वाणी द्वारा मारिफत की पहचान हो गयी है, जिससे परमधाम में सुख का अनुभव विशिष्टता लिये हुए होगा। इसे ही इस चौपाई के प्रथम चरण में "अनेक सुख" कहकर सम्बोधित किया गया है।

**अनेक सुख दिए अर्स में, सुख फरामोसी नहीं कब।**

**हंस हंस गिर गिर पड़सी, ए सुख ऐसा देखाया अब॥७०॥**

यद्यपि प्राणेश्वर अक्षरातीत अपनी अँगनाओं को परमधाम में अनेक प्रकार के सुख देते रहे हैं, किन्तु इस माया के खेल से हँसी का जो सुख मिलेगा, वह कभी पहले अनुभव में नहीं आया था। इस जागनी लीला में धाम धनी ने हमारे लिये ऐसा सुख उपलब्ध कराया है,

जिसमें परात्म में जागने पर सभी हँसते –हँसते गिर पड़ेंगी।

खिन एक विरहा ना सहें, सो सौ बरस सहें क्यों कर।

फरामोसी इन हक की, कोई हांसी ना इन कदर॥७१॥

यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि जो ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम में अपने प्रियतम से एक क्षण का भी विरह नहीं सह सकतीं, वे इस मायावी संसार में सौ साल का वियोग आसानी से कैसे सहन कर रही हैं। इस भूल की जो हँसी परमधाम में होगी, वैसी हँसी अब तक न तो कभी हुई है और न ही कभी होगी।

**भावार्थ-** परमधाम की आत्माओं को इस नश्वर संसार में आये हुए लगभग ४०० वर्ष से अधिक (२०६८-१६३८=४३०) वर्ष हो चुके हैं। श्री पद्मावतीपुरी धाम में

जिस समय परिक्रमा ग्रन्थ का अवतरण हो रहा था, उस समय इस खेल में आये हुए लगभग १०० वर्ष व्यतीत हो चुके थे, इसलिये इस चौपाई में १०० वर्षों के विरह का वर्णन किया गया है।

ए सुख आनंद फरामोस को, कह्यो जाए ना अलेखे ए।

ए सुख जागे पीछे चाहे नहीं, सुख दिए फरामोसी जे॥७२॥

इस मायावी जगत् में जागनी लीला में सखियों को जो सुख और आनन्द मिला है, वह इतना अधिक है कि उसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। निश्चित रूप से इस मायावी खेल ने आत्माओं को अपार सुख दिया है, किन्तु परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् आत्मायें इस प्रकार के सुख को कभी भी नहीं चाहेंगी।

**भावार्थ—** परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् इस जागनी

लीला का सम्पूर्ण चित्र सबकी दृष्टि में आ जायेगा। परिणाम स्वरूप, इस जागनी लीला में होने वाली सभी की भूलें (गुनाह) एक-दूसरे की नजरों में आ जायेंगी। फलतः सभी एक-दूसरे की भूलों को देखकर खूब हँसेंगे और आनन्दित भी होंगे, किन्तु प्रत्येक सुन्दरसाथ को अपनी आत्मा पर खेल में गुनाह (भूल) करने का जो दाग लगेगा उससे उन्हें लज्जित भी होना पड़ेगा।

दूसरों के ऊपर हँसी करते हुए भी, कोई अपने ऊपर गुनाह लग जाने के कारण ऐसे खेल की पुनः इच्छा नहीं करेगा। इस खेल में आत्म-जाग्रति से पूर्व जिस प्रकार धनी के वियोग का कष्ट होता रहा है, उसके कारण भी कोई आत्मा इस खेल को दोबारा देखने की इच्छा नहीं करेगी।

सुख तो अलेखे पाइया, पर इन सुख ऐसी बात।

ए बल पड़या आए बीच में, तार्थें ए सुख रूहें न चाहत॥७३॥

यद्यपि इस खेल में परमधाम की आत्माओं ने अपने धनी के अपार सुख का स्वाद लिया है, किन्तु इस सुख में एक ऐसी भी विशेष बात हो गयी है जिसके कारण जाग्रत आत्मायें इस खेल को कभी भी देखने की इच्छा नहीं करेंगी।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में "बल पड़या" का कथन है, जिसका आशय है- सिबलट पड़ना, अटकाव होना, टेढ़ापन हो जाना, मन्दता या हास का अँकुर फूटना। इस जागनी लीला में आत्मा के ऊपर गुनाहों (भूलों) का दोष लगना तथा विरह का अनुभव होना ही ऐसा बल पड़ना है, जिसके कारण आत्मायें इस नश्वर जगत की लीला देखने की पुनः इच्छा कभी भी



नहीं करेंगी।

**अनेक हाँसी होएसी, अनेक उपजसी सुख।**

**इस्क तरंग कई बढ़सी, ऐसा देखाया फरामोसी दुख॥७४॥**

धाम धनी ने आत्माओं को मायावी नींद का ऐसा दुःखमयी संसार देखाया है, जिनमें भूलें होने से अनेक प्रकार की हँसी की लीलायें होंगी। इस खेल में जाग्रत हो जाने पर परमधाम के अनेक सुखों का भी अनुभव होगा तथा हृदय में प्रेम की अनेक प्रकार की तरंगें क्रीड़ा करेंगी।

**भावार्थ—** अनेक प्रकार की भूलों को अनेक प्रकार की हँसी के रूप में दर्शाया जायेगा। जाग्रत होने पर परमधाम की अष्ट प्रहर की लीला, युगल स्वरूप सहित २५ पक्षों की शोभा का दर्शन, तथा खिल्वत, वहदत, निस्वत,

इश्क आदि के स्वाद का अनुभव आत्मा के धाम-हृदय में होगा। इसे ही अनेक प्रकार का सुख कहा गया है। जैसे-जैसे धनी के प्रेम और आनन्द का रस आत्मा को मिलने लगता है, वैसे-वैसे उसकी गहराई बढ़ती जाती है। इसे ही इश्क की तरंगों का बढ़ना कहते हैं।

कई सुख हाँसी फरामोस के, कई हजूर सुख खिलवत।

कई सुख पसु पंखियन के, कई सुख मोहोलों बैठत॥७५॥

इस मायावी जगत् के खेल में होने वाली भूलों की अनेक प्रकार की हँसी होनी है, जिसका सुख परात्म में जाग्रत होने पर होगा। इसी प्रकार, इस खेल में जाग्रत होने पर खिल्वत (मूल मिलावा) के सुखों का अनेक प्रकार से प्रत्यक्ष अनुभव होता है। परमधाम में पशु – पक्षियों की मनोहर क्रीड़ाओं के अनेक प्रकार के सुख हैं।

सभी सखियों का धनी के साथ रंगमहल के भिन्न-भिन्न स्थानों में बैठना भी अनेक प्रकार के सुखों का रस देता है।

**भावार्थ-** चितवनि द्वारा मूल मिलावा में विराजमान युगल स्वरूप सहित सखियों की बैठक को प्रत्यक्ष रूप में देखना ही वहाँ के सुखों का अनुभव करना है।

कई सुख चबूतर के, कई कठेड़े गिलम।

कई सुख बीच तखत के, कई सुख देत बैठ खसम॥७६॥

लाल चबूतरे की शोभा अवर्णनीय है। चबूतरे के ऊपर अति सुन्दर पशमी गिलम बिछी हुई है, जो अलग-अलग हाँसों में अलग-अलग रंग की आयी हुई है। प्रत्येक हाँस में चाँदे की जगह को छोड़कर किनार पर अति सुन्दर कठेड़ा आया है। इसके प्रत्येक हाँस में सखियों की

कुर्सियों के बीच में सिंहासन जगमगा रहा होता है, जिस पर श्यामा जी के साथ विराजमान होकर श्री राज जी अपनी अँगनाओं को तरह-तरह के अखण्ड सुख देते हैं।

**कई सुख ऊपर बैठक के, कई सुख दरखतों छात।**

**कई सुख तले बड़े बिरिख के, झूमत हैं ऊपर मोहोलात॥७७॥**

जब युगल स्वरूप सुन्दरसाथ के साथ लाल चबूतरे के ऊपर विराजमान होते हैं, उस समय के दीदार का अपार सुख होता है। बड़े वन के वृक्षों की चाँदनी (छत) का सुख भी शब्दों में वर्णित नहीं हो सकता। लाल चबूतरे के सामने जमीन पर आये हुए बड़े वन के वृक्षों की डालियाँ रंगमहल के ऊपर झूमती रहती हैं। इनमें होने वाली लीला के भी अपार सुख हैं।

फेर कहूं सुख तले बन के, ए बन बड़ा विस्तार।

भर चबूतरे आगूं चल्या, मिल्या मधुबन किनार॥७८॥

अब मैं पुनः लाल चबूतरे के सामने जमीन पर आए हुए बड़े वन के वृक्षों के मनोरम सुखों का वर्णन करती हूँ। इस बड़े वन का बहुत अधिक विस्तार है। यह सम्पूर्ण लाल चबूतरे की चौड़ाई में सामने उत्तर दिशा के ओर गया है, जो आगे जाकर मधुवन से मिल गया है।

मधुबन की किन विध कहूं, बन जाए लग्या आसमान।

पुखराज अर्स के बीच में, ए सिफत न होए बयान॥७९॥

मैं मधुवन की अपार शोभा का कैसे वर्णन करूँ। इस वन के वृक्ष इतने ऊँचे हैं कि वे आकाश को छूते हुए प्रतीत होते हैं। पुखराज तथा रंगमहल के बीच में मधुवन की शोभा आयी है। इसकी महिमा (सुन्दरता) का वर्णन हो

पाना सम्भव नहीं है।

लिबोई केल के घाट जो, ताके सिरे मिले आए इत।

बुजरक बन मधुवन का, मिल्या जोए किनारे जित॥८०॥

लिबोई और केल घाट के वनों की सीमा इस मधुवन से मिलती है। मधुवन का बहुत अधिक विस्तार है। यह यमुना जी के किनारे तक आया है।

**भावार्थ-** लिबोई वन के पश्चिम में ताड़वन है एवं उत्तर में केलवन है। केलवन के उत्तर में मधुवन है। जो केल पुल के पश्चिम से शुरू होकर, केलवन के उत्तर से होते हुए, पुखराज के चारों तरफ घूमा है।

और फिरवल्या पुखराज को, सो पोहोंच्या जाए लग दूर।

चढ़ पुखराज जब देखिए, आए तले रह्या हजूर॥८१॥

पुखराज पर्वत को घेरकर चारों ओर दूर-दूर तक मधुवन का विस्तार है। जब पुखराज पर्वत के ऊपर चढ़कर इसकी अनुपम शोभा को देखते हैं, तो ऐसा लगता है कि यह तो पुखराज के नीचे बिल्कुल पास में है।

**सुख हक का महामत जानहीं, या जानें मोमिन।**

**दूजा नहीं कोई अर्स में, बिना बुजरक रुहन॥८२॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! प्रियतम अक्षरातीत के अनन्त सुखों को या तो मैं जानती हूँ या आप जानते हैं क्योंकि स्वलीला अद्वैत परमधाम में युगल स्वरूप के साथ हमारे और अपार महिमा वाले आपके अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं।

**भावार्थ—** यद्यपि परमधाम में अक्षर ब्रह्म और महालक्ष्मी

भी हैं, किन्तु धनी के ही अंग होने से इन्हें अलग नहीं समझना चाहिए। महालक्ष्मी को भी सखियों की तरह ही परमधाम की लीला का सम्पूर्ण सुख प्राप्त होता है और अक्षर ब्रह्म के रूप में श्री राज जी ही सत् की लीला करते हैं।

प्रकरण ॥११॥ चौपाई ॥७२५॥



इस प्रकरण में ताड़वन, बड़ोवन, मधुवन, महावन आदि वनों एवं यमुना जी की शोभा का वर्णन किया गया है।

फेर कहूं तले बन की, जो बन बड़ा विस्तार।

भर चबूतरे आगूं चल्या, जाए पोहोंच्या केल के पार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अब मैं पुनः लाल चबूतरे के सामने जमीन पर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों की शोभा का वर्णन करती हूँ, जिनका बहुत अधिक विस्तार (फैलाव) है। ये वृक्ष लाल चबूतरे की सम्पूर्ण चौड़ाई के सामने आये हैं, जो केलवन की सीमा से भी आगे तक चले गये हैं।

**भावार्थ—** बड़ोवन के ४१ वृक्षों की ४१ हारे हैं, जो केलवन की सीमा से भी आगे तक चली गयी हैं। बड़ोवन के ४१ वृक्षों की १७ हारों के पूर्व में ताड़वन है। इसके उत्तर

में अगली १७ हारों (३३वें हार तक) के पूर्व में केलवन है। इसके भी उत्तर में बड़ोवन की ओर ८ हारे हैं।

**जो बन आया चेहेबच्चे, सोभा अति रोसन।**

**छाया करी जल ऊपर, तीनों तरफों बन॥२॥**

लाल चबूतरा और बड़ोवन के वृक्षों की १७ हारों के पूर्व में ताड़वन स्थित है। उसकी जमीन पर रंगमहल से लगती हुई खड़ोकली है, जिसकी बहुत अधिक शोभा है। यह खड़ोकली एक हाँस की लम्बी-चौड़ी है। इसके तीन तरफ (पूर्व, उत्तर, एवं पश्चिम में) वन (ताड़ का) आया है, जिनके वृक्षों की डालियाँ खड़ोकली के जल-चबूतरे तक मनोहर छाया कर रही हैं।

ऊपर झरोखे मोहोल के, जल पर बने जो आए।

इन चेहेबच्चे की सिफत, मुख थें कही न जाए॥३॥

खड़ोकली की दक्षिण दिशा में रंगमहल की बाहरी हार मन्दिरों के झरोखे और छज्जे (३३ हाथ के) सुशोभित हो रहे हैं। ये झरोखे खड़ोकली के जल के ऊपरा-ऊपर दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस खड़ोकली की शोभा का वर्णन इस मुख से हो पाना सम्भव नहीं है।

**भावार्थ-** खड़ोकली के जल पर पूर्व, पश्चिम, तथा उत्तर दिशा में ताड़ के वृक्षों की छाया (जल चबूतरे तक) है, तो दक्षिण दिशा में छज्जों की छाया जल के ऊपर आयी है।

कई बन हैं इत ताड़ के, कई खजूरी नारियर।

और नाम केते लेऊं, बट पीपर सर ऊमर॥४॥

ताड़ के इन वनों में ताड़ के वृक्षों के अतिरिक्त खजूर और नारियल के पेड़ भी बहुतायत में हैं। वट, पीपल, खस, गूलर आदि के भी असंख्य वृक्ष हैं। इन वनों के वृक्षों के नामों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

ए बन गेहेरा दूर लग, इत आए मिल्या केल घाट।

जमुना जल किनार लों, छाया चली दोरीबंध ठाट॥५॥

ताड़वन के घने वृक्ष आपस में डालियाँ मिलाते हुए गहरी छाया के साथ बहुत दूर तक गये हैं। ये आगे उत्तर दिशा में केलवन से मिल गये हैं। बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें केलवन में से होकर यमुना जी की किनार पर पाल तक गयी हैं। इन वृक्षों की डालियों एवं पत्तों ने आपस में मिलकर सुन्दर छतरी का रूप धारण कर रखा है, जिनकी एक समान छाया यमुना जी के जल चबूतरे तक

सुशोभित हो रही है।

जोए जमुना का जल, पहाड़ से उतरत।

तले आया कुंडमें, पहाड़ से निकसत॥६॥

श्री यमुना जी का जल पुखराज पहाड़ से क्रमशः ४ और १६ धाराओं के रूप में अधबीच के कुण्ड में उतरता है। पुनः ७८४ जल स्तूनों द्वारा अधबीच के कुण्ड की तलहटी में जाता है। पुनः आगे पूर्व दिशा में ढँपे चबूतरे और मूल कुण्ड से होते हुए यमुना जी के रूप में प्रकट होता है।

जमुनाजी के मूल में, पहाड़ बन्यो चबूतर।

आगूं कुंड दूजा भया, जहां से जल चल्या उतर॥७॥

यमुना जी के मूल (प्रारम्भ) में ८ लाख कोस ऊँचा

पुखराज पहाड़ आया है, जो १००० हाँस के चबूतरे के मध्य में एक भूमिका ऊँचे चौरस चबूतरे पर स्थित है। इसके पूर्व में पुखराजी ताल है, जहाँ २० भूमिका की ऊँचाई से ४ धारायें गिरती हैं। इसके पूर्व में अधबीच का कुण्ड (दूसरा) है, जहाँ ४८४ भूमिका की ऊँचाई से १६ धारायें गिरती हैं। यहाँ से ही जल ७८४ स्तूनों (पाइप) द्वारा तलहटी में उतरता है।

**पेहेले कुण्ड चबूतरा, दूजा आगूं सोए।**

**चारों तरफों बैठक, जल उज्जल खुसबोए॥८॥**

अधबीच के कुण्ड के पूर्व में ढँपा चबूतरा आया है। इसके पूर्व में पुनः कुण्ड है, जिसे मूल कुण्ड कहते हैं। यहाँ मध्य में १२०० कोस की लम्बाई-चौड़ाई का कुण्ड है, जिसके चारों ओर चबूतरे के ऊपर बैठक बनी है।

इसमें गिलम बिछी हुई है, जिस पर सिंहासन तथा कुर्सियों की अद्भुत शोभा दिखायी दे रही है। मूल कुण्ड का जल दूध से भी अधिक उज्ज्वल तथा सुगन्धि से भरपूर है।

**चारों तरफ चबूतरा, जमुना दोऊ किनार।**

**ए कुंड हुए दोऊ इन विध, चली दयोहरी दोऊ हार॥९॥**

इस प्रकार दोनों कुण्डों (अधबीच का कुण्ड और मूल कुण्ड) की शोभा अपरम्पार है। मूल कुण्ड के मध्य में कुण्ड और चारों तरफ चबूतरा आया है। इसके पूर्व की दीवार में ४००-४०० कोस की ९ मेहराबें हैं, जो तलहटी की प्रथम भूमिका में हैं। मध्य की मेहराब से श्री यमुना जी प्रकट होती हैं। इसके दायें-बायें की मेहराब के सामने जल-रौंस और पाल की शोभा आयी है। इस

प्रकार यमुना जी के दोनों किनारों पर जल-रौंस व पाले हैं। मरोड़ तक दोनों पालों की दोनों किनार पर थम्भों की २-२ हारें हैं। इनकी छत पर १०-१० देहुरियाँ हैं अर्थात् यमुना जी के दोनों तरफ पाल पर मूल कुण्ड से मरोड़ तक देहुरियों की एक-एक हार है, जिनमें १०-१० देहुरियाँ हैं।

**केतेक लग ढांपी चली, तरफ दोऊ थंभ हार।**

**इन आगूं जुदी जिनस, चली दयोहरी दोऊ किनार॥१०॥**

मूल कुण्ड से मरोड़ तक की दूरी की आधी दूरी तक यमुना जी के ऊपर भी छत आयी है, जिस पर ५ देहुरियाँ हैं। इसे ढाँपी यमुना कहते हैं। इसके आगे आधी दूरी तक यमुना जी के ऊपर छत नहीं है, बल्कि दायें-बायें पालों पर थम्भों की हारें (दहलानें) और देहुरियाँ हैं।



इसे खुली यमुना कहते हैं।

ऊपर ढांप्या पुल ज्यों, सोभा लेत सुन्दर।

ऊपर दयोहरी जड़ाव ज्यों, जल खलकत चल्या अन्दर॥११॥

ढँपी यमुना जी में दोनों पालों के ऊपर थम्भों की जो ४ हारें आयी हैं, उन पर दृष्टिगोचर होने वाले पटाव की बहुत सुन्दर शोभा हो रही है। यह शोभा यमुना जी के ऊपर पुल जैसी दिखायी दे रही है। इस पर आयी हुई देहुरियाँ जवाहरातों से जड़ी हुई हैं। इनके नीचे से दूध से भी उज्ज्वल खलखलाता हुआ जल प्रवाहित होता रहता है।

**भावार्थ—** इन थम्भों की छत मूल कुण्ड के चबूतरे से मिली हुई है। इस प्रकार मूल कुण्ड के चबूतरे से इन थम्भों की छत पर आ-जा सकते हैं। यह छत आधी दूरी

तक यमुना जी पर भी है। इसलिये यमुना जी आधी दूरी तक ढँपी हैं तथा उसके बाद आधी दूरी तक खुली हैं। इस ढँपे हिस्से को ढँपी यमुना जी कहते हैं। यह भाग सुन्दर पुल के समान शोभायमान हो रहा है।

**चार थंभ हारें चली, ऊपर ढांपी तरफ दोए।**

**यों चल आई दूरलों, ए जल जमुना जोए॥१२॥**

इस प्रकार यमुना जी के दोनों तरफ पाल पर थम्भों की कुल ४ हारें हैं, जिनके ऊपर छत और देहुरियाँ आयी हैं। इन्होंने आधी दूरी तक यमुना जी को भी दोनों तरफ से छत फैलाकर ढाँप रखा है। दहलान और देहुरियाँ मरोड़ तक आयी हैं। इस प्रकार मरोड़ तक खुली व ढँपी यमुना जी की शोभा है।

**दोऊ किनारें बैठक, बन गेहेरा गिरदवाए।**

**अति सोभा इत जोए की, इन जुबां कही न जाए॥१३॥**

यमुना जी के दोनों किनारे पाल पर दहलानों के रूप में बैठक बन गयी है, जिसकी बाहरी व भीतरी किनार पर सीढ़ियों के अतिरिक्त स्थान में कठेड़ा दृष्टिगोचर हो रहा है। पाल पर गिलम, कुर्सियाँ, और सिंहासन शोभायमान हैं। इन दोनों दहलानों की बाहरी तरफ बड़ोवन के घने वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। यहाँ यमुना जी की अत्यन्त सुन्दर शोभा दिखायी दे रही है, जिसका वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

**दोऊ तरफों दयोहरी, कई कंगूरे कलस ऊपर।**

**इत बैठक अति सुन्दर, चल आए दोऊ चबूतर॥१४॥**

यमुना जी के दोनों ओर दहलानों के ऊपर देहुरियों की

शोभा है। इन देहुरियों पर कलश तथा दहलानों की छत की दोनों किनार पर कई प्रकार के कलशों, कंगूरों, तथा काँगरियों की सुन्दरता दिखायी दे रही है। इसी प्रकार यमुना जी के दोनों तरफ पाल (चबूतरों) पर स्थित दहलान (बैठक) की अनुपम सुषमा हो रही है।

**ए जल तरफ ताल के, इतथें चल्या मरोर।**

**एक दयोहरी एक चबूतरा, ए सोभा अति जोर॥१५॥**

यमुना जी का जल यहाँ से मरोड़ खाकर उत्तर से दक्षिण की ओर हौज़ कौसर ताल के लिये प्रवाहित होता है। यमुना जी के मरोड़ से लेकर केल पुल तक दोनों पालों पर क्रमशः ५ महल (देहुरी) एवं ४ चबूतरे आये हैं। इन्हें एक महल (देहुरी) और एक चबूतरा कहा जाता है, क्योंकि ये क्रमशः आये हैं।

ए बन की सोभा क्यों कहूं, पेड़ चले आए बराबर।

दोऊ तरफों जुगतें, आए दयोहरियां ऊपर॥१६॥

बड़ोवन के इन वृक्षों की अनुपम शोभा का मैं क्या वर्णन करूँ, जिनकी दो हारें पुखराज पहाड़ से ही श्री यमुना जी के दोनों तरफ (पाल की बाहरी तरफ पुखराजी रौंस पर) बराबर (साथ-साथ) चली आयी हैं। इनकी डालियाँ पाल पर आयी हुई देहुरियों को उलंघकर यमुना जी के जल चबूतरे तक छाया कर रही हैं।

इत लंबा बन आए मिल्या, जमुना भर किनार।

इतथें छत्री ले चल्या, पोहोंच्या पहाड़ के पार॥१७॥

इन पाँच महल चार चबूतरों के सामने (पश्चिम में) पुखराजी रौंस से लगते हुए महावन के वृक्ष आये हैं। इन वृक्षों की चार हारे हैं, जिनकी डालियों ने आपस में

मिलकर एक समान सतह वाली छतरी का रूप धारण कर लिया है। महावन के वृक्षों का यह समूह पुखराज पहाड़ को घेरकर आया है।

**भावार्थ-** मरोड़ के पास सर्वप्रथम २५० मन्दिर की चौड़ाई में रेती-रमण है। इसके दक्षिण दिशा में ५०० मन्दिर की चौड़ाई में महावन है। फिर ५०० मन्दिर की चौड़ाई में मधुवन है, जो केल पुल के पश्चिम दिशा में ठीक सामने है।

**दोऊ किनार सीधी चली, आए पोहोंच्या केल घाट।**

**एक चौक दयोहरी इतलों, ए बन्यो जो ऐसो ठाट॥१८॥**

इस प्रकार मरोड़ से केल पुल तक यमुना जी के दोनों किनारों पर एक जैसी शोभा है। केल पुल के आगे केल घाट की अनुपम सुषमा दृष्टिगोचर हो रही है। क्रमशः एक

महल (देहुरी) एक चबूतरा (चौक) की बनावट वाली शोभा केल पुल तक ही आयी है।

**छूटक छूटक दयोहरी, सातों घाटों माहें।**

**दोऊ किनारें जड़ाव ज्यों, क्यों कहूं सोभा जुबांए॥१९॥**

केल पुल तथा वट पुल के बीच श्री यमुना जी के दोनों ओर सात-सात घाट हैं। सातों घाटों की सन्धियों में जल रौंस पर (यमुना जी के दोनों ओर) छोटी-छोटी ६-६ देहुरियाँ आयी हैं। ये रत्नों से जड़ी हुई बहुत सुन्दर लग रही हैं। इनकी अनुपम शोभा का वर्णन मैं इस जिह्वा से कैसे करूँ।

**इतथें चले ताललों, एक दयोहरी एक चबूतर।**

**दोऊ तरफ या विध, जोए हौज मिली यों कर॥२०॥**

वट पुल से यमुना जी के आग्नेय कोण के मरोड़ तक यमुना जी के दोनों तरफ पाल के ऊपर ५ महल और ४ चबूतरे क्रमशः (पूर्ववत्) आये हैं। इसके पश्चात् यमुना जी पश्चिम दिशा में हौज़ कौसर ताल की ओर मुड़ जाती हैं। मरोड़ से हौज़ कौसर ताल तक यमुना जी के दोनों ओर पाल पर थम्भों की दो-दो हारें आयी हैं, जिनकी छत पर दोनों तरफ ९०-९० देहुरियाँ सुशोभित हो रही हैं।

**महामत कहे ए मोमिनो, मैं बोलत बुध माफक।**

**ख्वाब मन जुबानसों, क्यों कर बरनों हक॥२१॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! मैंने इस संसार की बुद्धि के अनुकूल ही वर्णन किया है। स्वप्न के मन और जिह्वा से अक्षरातीत के लीला-धाम का यथार्थ वर्णन हो पाना कदापि सम्भव नहीं है।



**भावार्थ-** इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब श्री महामति जी के धाम-हृदय में जाग्रत बुद्धि एवं निज बुद्धि विद्यमान है तथा साक्षात् युगल स्वरूप ही लीला कर रहे हैं, तो यहाँ सपने की बुद्धि से वर्णन करने का प्रसंग क्यों किया गया है? यदि सपने की बुद्धि से कहा जा रहा है, तो श्रीमुखवाणी एवं संसार के अन्य स्वप्निक ग्रन्थों में भेद ही क्या है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि संसार के अन्य धर्मग्रन्थों का ज्ञान स्वप्न की बुद्धि द्वारा संग्रहित है तथा प्रस्तुतिकरण भी स्वप्न की बुद्धि से ही होता है, किन्तु श्रीमुखवाणी के ज्ञान का मूल अक्षरातीत का आवेश है, जो जाग्रत बुद्धि एवं निज बुद्धि द्वारा श्री महामति जी के धाम हृदय में प्रकट हो रहा है, किन्तु उसका बाह्य शब्दों (बैखरी वाणी) में प्रकटीकरण स्वप्न

की बुद्धि एवं मन से हो रहा है, जिनमें इतनी सामर्थ्य ही नहीं होती कि वे परमधाम की शोभा को यथार्थ रूप में व्यक्त कर सकें। यह कथन वैसे ही है जैसे समाधि में होने वाले ब्रह्म-साक्षात्कार के अनुभव को शब्दों में व्यक्त करना।

यद्यपि गीता, महारास, कबीर जी की साखियों, तथा कुरआन की आयतों का अवतरण जोश (जिबरील) द्वारा ही हुआ है, किन्तु उनका भी शब्दों में प्रस्तुतिकरण स्वप्न की बुद्धि से ही हुआ है। वेदों का ज्ञान बेहद मण्डल में जाग्रत स्वरूप है, किन्तु इस संसार में उसका प्रकटन आदिनारायण में स्वप्न की बुद्धि में ही होता है। आदिनारायण से वही ज्ञान ऋषियों को समाधि अवस्था में प्राप्त होता है, किन्तु उसका मनन-विवेचन स्वप्न की बुद्धि द्वारा होता है। इसलिये वेदों के वास्तविक आशय

को कोई विरला ही जान पाता है। वेदों के आधार पर जिन अन्य धर्मग्रन्थों की रचना की जाती है, उनके मूल में स्वप्न बुद्धि ही कार्य करती है।

इस प्रकार श्रीमुखवाणी का तारतम ज्ञान संसार के अन्य धर्मग्रन्थों से विशिष्ट स्थान रखता है। भले ही इसके प्रकटीकरण में स्वप्न की बुद्धि, मन, एवं शब्दों का प्रयोग हो रहा है, किन्तु उसके मूल में जाग्रत बुद्धि, निज बुद्धि, एवं धनी के आवेश की लीला है।

**प्रकरण ॥१२॥ चौपाई ॥७४६॥**

## मोहोल पहाड़ पुखराजी

॥ राग श्री मारू ॥

इस प्रकरण में पुखराज पहाड़ के महलों की शोभा का वर्णन किया गया है।

सुख लीजो मोमिन, पहाड़ मोहोल के आराम।

अर्स अजीम के कायम, निस-दिन एही ताम॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! आप चितवनि द्वारा पुखराज पहाड़ के महलों में लीला का सुख लीजिए। परमधाम के ये सुख अखण्ड हैं और आपके लिये दिन-रात (निरन्तर) सेवन (ग्रहण) करने योग्य हैं।

**द्रष्टव्य-** यद्यपि सुख और आराम शब्दों का भाव एक-दूसरे के बहुत निकट है, किन्तु यहाँ आराम का आशय

पुखराज के महलों की शोभा एवं लीला के रस में स्वयं को डुबाने से है। इससे आत्मा को आनन्द एवं हृदय को सुख प्राप्त होता है।

**हौज जोए अर्स जिमिं, जो फुरमान में फुरमाए।**

**पहाड़ मोहोल पेड़ इनका, सो हक हुकमें देऊं बताए॥२॥**

धर्मग्रन्थों (पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, एवं कुरआन) में परमधाम की नूरमयी धरती पर स्थित जिस हौज कौसर और यमुना जी का वर्णन किया गया है, उसका मूल यह पुखराज पहाड़ है जिसका वर्णन मैं धाम धनी के आदेश से कर रही हूँ।

**भावार्थ—** इस चौपाई में "फुरमान" शब्द का तात्पर्य मात्र कुरआन ही नहीं है, बल्कि परब्रह्म के आदेश से रचित सभी धर्मग्रन्थों से है। पुराण संहिता एवं माहेश्वर

तन्त्र में सम्पूर्ण परमधाम का वर्णन किया गया है। कहीं – कहीं पर जो भिन्नता है, वह केवल ब्रह्म के धाम का वर्णन किये जाने के कारण है।

**एक जवेर इन जिमी पर, बीच अर्स एक नंग।**

**बोहोत नाम जवेरों के, जुदे नाम जुदे रंग॥३॥**

परमधाम की भूमिका में सम्पूर्ण सामग्री एक ही नूरमयी जवाहरात के नग की है। यद्यपि परमधाम में अनेक प्रकार के जवाहरात हैं, जिनके अलग-अलग नाम और अलग-अलग रंग हैं, किन्तु मूल रूप में एक नग (नूर का) है।

**भावार्थ-** इसी प्रकार की सातवीं चौपाई में लिखा है कि "एक जवेर इन भोम का", अर्थात् परमधाम में हरे, पीले, लाल, उज्ज्वल, स्वर्ण आदि अनेक प्रकार के रंग हैं, किन्तु जवाहरात तो एक ही है। इसी के भावों से मिलती

हुई चौपाई २ प्रकरण ३२ में भी कहा गया है—

इन विध समझो अर्स को, एक जवेर कई रंग।

द्वार दिवालें पड़सालें, और थम्भों उठत तरंग॥

सो बड़ा पहाड़ एक नंग का, तिनमें कई मोहोलात।

चौड़ा ऊंचा तेज में, क्यों कहूं अर्स की बात॥४॥

इतना विस्तृत पुखराज पहाड़ एक ही पुखराज के नग में है अर्थात् सम्पूर्ण पहाड़ पुखराज का है। इसमें बहुत से महल हैं। परमधाम की बातों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। यह पुखराज पहाड़ बहुत ऊँचा और चौड़े आकार वाला है। इसके साथ ही यह नूरी तेज से ओत-प्रोत है।

गिरद मोहोल बराबर, तरफ तले संकड़ा।

मोहोल बढ़ते बराबर, चढ़ते अति चौड़ा॥५॥

महल रूप यह पुखराज पहाड़ गोलाकार है और नीचे से संकरा (पतला) है। जैसे-जैसे ऊँचाई पर चढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे महलों की संख्या बढ़ने से इसकी चौड़ाई बढ़ती जाती है।

गिरदवाए फेर देखिए, आकास न माए झलकार।

मोहोलातें सब नूर की, जुबां कहा केहेसी विस्तार॥६॥

हे साथ जी! अब आप पुनः पुखराज पहाड़ की शोभा को चारों ओर से देखिए। इसकी नूरी झलकार इतनी अधिक है कि वह आकाश में समा ही नहीं पा रही है। पुखराज पहाड़ के सभी महल नूरमयी हैं। मेरी जिह्वा इन महलों के विस्तार (संख्या के आंकलन) का वर्णन करने



में पूर्णतया असमर्थ है।

हरे पीले लाल उज्जल, संग सोब्रन नूर अमान।

एक जवेर इन भोम का, भरया रोसन नूर आसमान॥७॥

ये महल हरे, पीले, लाल, श्वेत, और सुनहरे रंग में जगमगा रहे हैं। इनकी सुन्दरता की कोई भी उपमा नहीं दी जा सकती। यह सम्पूर्ण पुखराज पहाड़ एक ही जवाहरात का है, जिससे तरह-तरह (अनन्त प्रकार के) रंग निकल रहे हैं। इन महलों की नूरी आभा से सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो रहा है।

कई विध के इत मोहोल हैं, सब रंग के इत बन।

कई जल धारें फुहारे, रस मेवे स्वाद सबन॥८॥

इस पुखराज पहाड़ में अनेक प्रकार के महल दृष्टिगोचर

हो रहे हैं। सभी रंगों के वन भी हैं। यहाँ अनेक प्रकार की मनोरम जल-धारायें प्रवाहित हो रही हैं तथा फौवारों में जल उछलता रहता है। यहाँ के वनों में अनन्त प्रकार के रसीले मेवे हैं, जिनका स्वाद अति उत्तम है।

**ए पर्वत इन भांत का, नैनो नमख न छोड़या जाए।**

**क्यों कहूं खूबी इन जुबां, देखत रह्या हिरदे भराए॥९॥**

यह पुखराज पर्वत इतना सुन्दर है कि एक पल के लिये भी इससे दृष्टि नहीं हट पाती है। इसकी विशेषताओं का वर्णन मैं इस जिह्वा से कैसे करूँ। इसको देखते रहने पर हृदय में पल-पल आनन्द बढ़ता ही रहता है।

**ऊपर सोब्रन सिखर तले, सोभित जल उतरत।**

**खूबी खुसबोए बन में, आए मिल्या ताल जित॥१०॥**

इस पुखराज पहाड़ का ऊपरी भाग (आकाशी महल) सोने के शिखर की तरह दिखायी देता है। वहाँ से नीचे की ओर आता हुआ जल बहुत अधिक सुशोभित हो रहा है। यह जल पुखराजी ताल में मिल जाता है। यहाँ के वनों में अपार सुन्दरता और सुगन्धि विद्यमान है।

**भावार्थ—** पाँच पेड़ों में से मध्य के पेड़ से होते हुए जल का पाइप (नली) आकाशी महल की चाँदनी तक जाता है। चाँदनी तथा प्रत्येक भूमिका में पहुँचने वाला यह जल पूर्व के बड़े दरवाजे के नीचे से गुप्त रूप से बहते हुए चार धाराओं के रूप में २० भूमिका ऊपर से पुखराजी ताल में गिरता है। ताल के चारों ओर सुन्दरता एवं सुगन्धि से भरपूर वन दिखायी देते हैं।

**खूबी इन पहाड़ की, ऊँचा माहें आकास।**

**कई मोहोल बैठक रोसनी, ज्यों रोसन धाम प्रकास॥११॥**

इस पुखराज पर्वत की मुख्य विशेषता यह है कि यह आकाश में बहुत अधिक ऊँचाई तक जगमगाते हुए दिखायी देता है। इसके अन्दर झलझलाते हुए अनेक प्रकार के महल तथा बैठने (विश्राम करने) के स्थान हैं। नूरी ज्योति से भरपूर रंगमहल की तरह ही यहाँ की शोभा दिखायी देती है।

**दूरथें अति सुन्दर, आए देखें सोभा अतंत।**

**इन जुबां इन पहाड़ की, क्यों कर करे सिफत॥१२॥**

इस पुखराज पर्वत को जब दूर से देखते हैं, तो यह बहुत सुन्दर दिखायी देता है। जब इसे निकट से देखते हैं, तो इसकी शोभा-सुन्दरता अनन्त दिखायी देती है।

ऐसी स्थिति में इस नश्वर जिह्वा से इसकी शोभा का यथार्थ वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

**विशेष-** यद्यपि "सिफ्त" शब्द का अर्थ महिमा, प्रशंसा, गुण आदि है, किन्तु यहाँ "शोभा" से भाव लिया जायेगा।

**कई बैठक तले ऊपर, कई ठौर तले कराड़।**

**सोभा जल बन सोभित, अतंत खूबी इन पहाड़॥१३॥**

इस पहाड़ की अनन्त विशेषताएँ हैं। इसमें नीचे से लेकर ऊपर तक बहुत सी बैठकें (बैठने की जगह) हैं। कई बैठने की जगहें नीचे की भोमों में किनारों पर हैं। यहाँ क्रीड़ा में संलग्न उज्ज्वल जल तथा वन की शोभा अनन्त है।

उपरा ऊपर भोम अनेक, अति विराजे सोए।

खूबी इन मोहोलन की, देख देख मन मोहे॥१४॥

यहाँ के महलों की एक के ऊपर एक अनेक भूमिकायें आयी हैं, जो बहुत अधिक सुशोभित हो रही हैं। अति सुन्दर इन महलों की शोभा को देख-देख कर मन मुग्ध हो जाता है।

जड़या पहाड़ जानों सोने सों, जुदे जुदे जवेरन।

ए मोहोल अति सुन्दर, बड़ी बैठकें रोसन॥१५॥

इस पुखराज पर्वत को देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे यह सोने में अनेक प्रकार के जवाहरातों को जड़कर बनाया गया है। महलनुमा यह पहाड़ बहुत सुन्दर है। इसमें विश्राम करने के बड़े-बड़े स्थान हैं, जो अपनी नूरी आभा से हमेशा ही जगमगाते रहते हैं।

माहें कई नेहरें चलें, सब पहाड़ में फिरत।

कई फुहारे चेहेबच्चे, सब ठौरों खूबी करत॥१६॥

इस पुखराज पर्वत में बहुत सी नहरें प्रवाहित होती हैं, जो चारों ओर गयी हैं। इसमें बहुत से फव्वारे तथा जल के कुण्ड (चहबच्चे) हैं, जो हर जगह अपनी शोभा दर्शा रहे हैं।

ए मोहोल बड़े अति सुन्दर, एक दूजे थें चड़त।

ज्यों ज्यों ऊपर चढ़िए, त्यों त्यों खूबी बढ़त॥१७॥

पुखराज के ये महल बहुत सुन्दर हैं। सभी की सुन्दरता एक-दूसरे से बढ़कर है। जैसे-जैसे हम ऊपर की भूमिकाओं में चढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे इनकी शोभा और बढ़ती हुई दिखायी देती है।

ए मोहोल बैठन के, अति बड़ियाँ पड़साल।

बोहोत देखी मैं बैठकें, पर ए सोभा अति कमाल॥१८॥

इन महलों में बैठने के लिये बहुत बड़ी-बड़ी पड़सालें हैं। यद्यपि मैंने परमधाम में अपनी आत्म-दृष्टि से बहुत सी बैठकें देखी हैं, किन्तु इन बैठकों की शोभा तो अत्यन्त आश्चर्य में डालने वाली है।

**भावार्थ-** पुखराज पहाड़ में चारों तरफ घेरकर जो छज्जे निकलते हैं, उनमें बैठके बनी हैं। यहाँ बैठकर चारों ओर का दृश्य देखते हैं। इनकी शोभा अनुपम है।

ऊपर चौक लग चाँदनी, अतंत है विसाल।

नजर न पीछी फिर सके, देख देख होइए खुसाल॥१९॥

ऊपर १००० भूमिका की चाँदनी तक इस प्रकार के छज्जे (चौक) चारों ओर घेरकर आये हैं। ये अत्यन्त



विशाल आकार वाले हैं। इनको देखने पर कभी भी दृष्टि नहीं हटती। जितना ही इन्हें देखा जाता है, उतना ही अधिक आनन्द आता है।

कोटक कचेहेरी बनी, फिरतियां गिरदवाए।

ए सुन्दरता इन जुबां, मोपे कही न जाए॥२०॥

पुखराज के चबूतरे पर आये हुए इन पाँच पेड़ों की २५० भूमिका के पश्चात् चारों ओर घेरकर गोलाई में छज्जे निकले हैं, जिनकी शोभा कचहरियों (पड़सालों) के रूप में आयी है। ये करोड़ों की संख्या में आये हैं। इस नश्वर संसार की जिह्वा से इनकी शोभा का वर्णन मुझसे हो पाना सम्भव नहीं है।

ज्यों ज्यों नैनों देखिए, त्यों त्यों लगत सुंदर।

न्यारी नजर न होवहीं, चुभ रह्या रूह अंदर॥२१॥

जैसे-जैसे इन महलों की शोभा को अपने नेत्रों से देखते हैं, वैसे-वैसे ये और अधिक सुन्दर लगते हैं तथा इन्हें अपनी दृष्टि से अलग करने की इच्छा ही नहीं होती। यह सम्पूर्ण शोभा आत्मा के हृदय में बस जाती है।

अति बड़े सुभट सूरमें, सेन्यापति सिरदार।

मेला होत है इन मोहोलों, कई जातें जिनसें अपार॥२२॥

परमधाम में पशु-पक्षियों की संख्या अनन्त है। इनकी अनेक प्रकार की जातियाँ हैं। बड़े-बड़े यूथों (समूहों, झुण्डों) के जो बड़े-बड़े प्रमुख सेनापति हैं और बहुत अधिक पराक्रमी वीर हैं, उनका जमावड़ा (मेला) इन महलों में हुआ करता है।

रुहें राज स्यामाजी बिराजत, निपट सोभा है इत।

ऊपर तले बीच सुन्दर, खूबी-खुसाली करत॥२३॥

सखियों के साथ युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी जब इन महलों में ऊपर, नीचे, या मध्य की भूमिकाओं में विराजमान होते हैं, उस समय यहाँ की शोभा बहुत अधिक होती है। इस समय यहाँ अनेक प्रकार से विशेष आनन्द की लीलाएँ करते हैं।

**भावार्थ-** परमधाम में वहदत (एकत्व) होने से सम्पूर्ण शोभा समान रहती है, क्योंकि लीला रूप सभी पदार्थ श्री राज जी के ही स्वरूप हैं। इस चौपाई में श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के विराजमान होने से शोभा का बढ़ जाना लीला रूप में दर्शाया गया है। सम्पूर्ण लीला के केन्द्र में श्री राज जी ही होते हैं, इसलिये उनकी उपस्थिति से प्रेम-लीला में उन स्थानों की शोभा का

अधिक प्रतीत होना स्वाभाविक है।

इत सिखरें सब पहाड़ की, जानों जवेर सब नूर।

सिखरें सब आसमान लों, जानों के गंज जहूर॥२४॥

पुखराज के सभी शिखर (आकाशी महल) पुखराज नग के हैं और नूरी तेज से ओत-प्रोत हैं। ये आकाश को छूते हुए प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है, जैसे इनसे निकलने वाला नूर का भण्डार सर्वत्र फैला हुआ है।

इन मोहोलों में देखिए, अतंत सोभा थंभन।

उपरा ऊपर देखिए, जुबां कहा करे बरनन॥२५॥

इन महलों में देखने पर एक के ऊपर एक आये हुए थम्भों की अनन्त शोभा दिखायी देती है। मेरी यह जिह्वा उसकी शोभा का भला क्या वर्णन कर सकती है।

फिरता पेड़ जो पहाड़ का, तले बन्या सकड़ा ए।

फिरते थंभ चौड़े चढ़े, जाए फैल्या आसमान में जे॥२६॥

पुखराज पहाड़ के आधार-स्तम्भ के रूप में पाँच पेड़ों का यह समूह नीचे तो सँकरा है और ऊपर आकाश में फैलता गया है। ऊँचाई के बढ़ने के साथ-साथ छज्जे भी क्रमशः बढ़ते गये हैं, जिससे पहाड़ की चौड़ाई भी बढ़ती गयी है तथा छज्जों की किनार पर चारों ओर घेरकर थम्भ आते गये हैं।

**भावार्थ-** पुखराज पर्वत के आधार-स्तम्भ कहे जाने वाले पाँच पेड़ों की छठीं भूमिका से २५० भूमिका तक एक-दूसरे की तरफ तथा बाहर की तरफ छज्जे बढ़ते गये हैं। २५१वीं भूमिका में सभी छज्जे मिल गये हैं। पुनः १००० भूमिका तक घेरकर छज्जे आये हैं। इन सभी छज्जों में बाहरी तरफ थम्भों की हार और भीतरी तरफ

महल बनते जाते हैं।

ऐसे ही थंभ तिन पर, चौड़ा अति विस्तार।

या विध चढ़ता चढ़या, गिरदवाए बनी किनार॥२७॥

जैसे छज्रों की किनार पर नीचे थम्भ आये हैं, वैसे ही ऊपर की भूमिकाओं में भी छज्रों की किनार पर थम्भ आये हैं। इस प्रकार ऊँचाई के अनुसार छज्रों की चौड़ाई क्रमशः बढ़ते-बढ़ते बहुत अधिक हो गयी है।

ज्यों ज्यों मोहोल ऊंचे चढ़े, तिन चौगिरद थंभ हार।

चौड़ा ऊंचा चढ़ता, चढ़ता चढ़या विस्तार॥२८॥

जैसे-जैसे ऊँचाई बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे छज्रे भी बढ़ते जाते हैं। इनकी किनार पर थम्भों की हार आयी है। ऊँचाई के साथ-साथ, छज्रों की चौड़ाई (विस्तार) भी

क्रमशः बढ़ती जाती है (चढ़ता जाता है)।

**चढ़ते मोहोल मोहोलन पर, जाए लग्या आसमान।**

**चढ़ती सोभा सुन्दर, ए क्यों कर कहे जुबान॥२९॥**

इस तरह, ऊपर की ओर चढ़ती हुई प्रत्येक भूमिका में महल के ऊपर महल बनते गये हैं। इनके ऊँचाई आकाश को छूती हुई प्रतीत होती है। इनमें से प्रत्येक की शोभा-सुन्दरता दूसरे से अधिक दिखायी देती है, जिसका वर्णन मेरी यह जिह्वा नहीं कर सकती।

**द्रष्टव्य-** आकाश अनन्त और सूक्ष्म है, इसलिये किसी स्थूल वस्तु की भाँति उसे छू लेना असम्भव है। किन्तु जब कोई वस्तु आकाश में बहुत ऊँचाई तक गयी होती है, तो उसे आलंकारिक भाषा में (अतिशयोक्ति अलंकार के रूप में) आकाश को छूते हुए वर्णित किया जाता है।

मोहोल बड़े सोभा बड़ी, थंभ फिरते दोरी बंध।

जोतें जोत जगमगे, क्यों कहूं सोभा सनंध॥३०॥

ये महल बहुत बड़े-बड़े हैं तथा इनकी शोभा भी अत्यधिक है। चारों ओर थम्भ पंक्तिबद्ध रूप में आये हैं। एक थम्भ की ज्योति दूसरे थम्भ से टकराकर जगमगा रही है। इनकी शोभा की वास्तविकता का मैं कैसे वर्णन करूँ।

तले से ऊपर लग, मोहोल झरोखे पड़साल।

कई चौक थंभ कचेहेरियां, कई देहेलानें दीवार॥३१॥

नीचे से ऊपर तक महलों, झरोखों, तथा पड़सालों की अनुपम शोभा आयी है। इनके अन्तर्गत बहुत से चौकों, थम्भों, कचहरियों, दहलानों, तथा दीवारों की मनोहर शोभा भी दृष्टिगोचर हो रही है।



मोहोलन पर मोहोल विस्तरे, सोभा चढ़ती चढ़ी अतंत।

कोई मोहोल बड़े इन भांत के, सब नजरों आवत।।३२।।

महल के ऊपर महल का विस्तार होता गया है और इनकी शोभा बढ़ते-बढ़ते अनन्त हो गयी है। कुछ महल तो इतने बड़े हैं कि उनमें से देखने पर सम्पूर्ण परमधाम नजर आता है।

**भावार्थ-** परमधाम की अद्वैत भूमिका में कहीं से भी सम्पूर्ण (अनन्त) परमधाम को देखा जा सकता है, किन्तु इस चौपाई में ऊँचे एवं विशाल महल से सम्पूर्ण परमधाम को देखने का वर्णन लौकिक भावों के अनुसार है।

फिरते मोहोल अति बने, कई मोहोलातें जे।

कई रंगों चरनी बनी, सब एक जवेर में ए।।३३।।

चारों ओर बहुत सुन्दर-सुन्दर महल बने हुए हैं। इनके अन्दर बहुत से छोटे-छोटे महल हैं। अनेक रंगों की सीढ़ियाँ भी बनी हैं, किन्तु ये सभी एक ही पुखराज के नग में आयी हैं, अर्थात् एक ही पुखराज के नग की सभी सीढ़ियाँ हैं किन्तु रंग अलग-अलग प्रकार के दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

**हजार हाँसों सोभित, तापर गुरज बिराजत।**

**मोहोल माहें विध विध के, बैठक झरोखे जुगत॥३४॥**

पुखराज पहाड़ की हजार हाँस की चाँदनी की किनार पर हजार हाँस के महल हैं। प्रत्येक हाँस की सन्धि में बाहरी तरफ गोल गुर्ज आये हैं। इस पुखराज पर्वत में अनेक प्रकार के महलों, बैठकों, और झरोखों की मनोहर शोभा आयी है।

**भावार्थ-** पुखराज पहाड़ १००० हाँस की एक भूमिका ऊँचे चबूतरे पर विद्यमान है। २५१वीं भूमिका से जो छज्जे बढ़ते हैं, वे हजार हाँस के ही रूप में बढ़ते हैं। १००० भूमिका ऊपर, नीचे के १००० हाँस के चबूतरे के बराबर लम्बी-चौड़ी १००० हाँस की चाँदनी आयी है, जिसकी किनार पर चारों ओर घेरकर १००० हाँस के महल विद्यमान हैं। १००० हाँस की सन्धियों में १००० गोल गुर्ज बाहरी ओर हैं और १००० चौरस गुर्ज भीतरी तरफ हैं। इसके अतिरिक्त २०००-२००० चौरस गुर्ज बाहरी व भीतरी तरफ प्रत्येक हाँस के मध्य में हैं, जिनके ऊपर गुम्मत शोभायमान हैं। यहाँ अनेक प्रकार के महल सुशोभित हो रहे हैं। चाँदनी की किनार पर होने से इन महलों से दूर-दूर के सुन्दर दृश्य देखे जाते हैं, इसलिये इन्हें झरोखों की बैठकें कहा जाता है।

हजार हांसों हजार रंग, हर हांस हांस नया रंग।

थंभ रोसन जिमी लग चांदनी, करत मिनो मिने जंग॥३५॥

हजार हाँस के महलों के हजार हाँस हजार रंग के आये हैं। प्रत्येक हाँस में नये ही प्रकार के रंग की शोभा है। जमीन (पाँच पेड़ों की छठी भूमिका) से लेकर पुखराज की चाँदनी तक के थम्भे नूरी प्रकाश से जगमगा रहे हैं और उनसे निकलने वाली किरणें आपस में टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती हैं।

ऊपर चौड़ा तले सकड़ा, दोरीबंध देखत।

तले से ऊपर लग देखिए, गिरदवाए सब सोभित॥३६॥

यह पुखराज पर्वत ऊपर से चौड़ा तथा नीचे से सँकरा है। यदि नीचे से ऊपर तक इसकी ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई जाये, तो सभी महल चारों ओर गोलाई में

पंक्तिबद्ध रूप में सुशोभित होते हुए दिखायी देते हैं।

मोहोल चारों तरफों, हजार हाँसों माहें।

ए मोहोल पहाड़ जवेर के, क्यों केहेसी जुबाँए॥३७॥

इसके हजार हाँसों में चारों ओर महल ही महल दिखायी दे रहे हैं। पुखराज पहाड़ के ये महल एक ही पुखराज नग के आये हैं। इनकी अनुपम शोभा का वर्णन भला यह जिह्वा कैसे कर सकती है।

बराबर दोरीबंध ज्यों, फिरती पहाड़ किनार।

सो इन मुख सोभा क्यों कहूं, झलकारों झलकार॥३८॥

पुखराज पर्वत की किनार पर चारों ओर आये हुए थम्भों व महलों की ये पंक्तियां समान दूरी पर स्थित हैं। ये अनुपम रूप से झलकार कर रहे हैं। इस प्रकार इस मुख

से इनकी शोभा का वर्णन कर पाना नितान्त असम्भव है।

**भावार्थ-** २५० भूमिका के पश्चात् पुखराज पहाड़ में चारों ओर घेरकर हजार हाँस के रूप में ४४-४४ कोस के छज्जे निकलते हैं। इनमें बाहरी ११ कोस में थम्भे एवं भीतरी ३३ कोस में महल बनते जाते हैं।

एक नकस बरनन ना कर सकों, ए अति बड़ो बयान।

ए मोहोल पहाड़ अर्स के, कहा कहे एह जुबान॥३९॥

मैं इन महलों के एक भी चित्र की सुन्दरता का वास्तविक वर्णन नहीं कर सकती। सम्पूर्ण पुखराज पर्वत की शोभा का कथन करना तो बहुत बड़ी बात है अर्थात् असम्भव सा है। ये महल परमधाम के पुखराज पहाड़ के हैं। भला मेरी यह जिह्वा उनका क्या वर्णन कर सकती है।

**भावार्थ-** यद्यपि अक्षरातीत के लिये कुछ भी असम्भव

नहीं है, किन्तु धनी के आवेश से श्री महामति जी की आत्मा परमधाम को प्रत्यक्ष देखकर जो कुछ भी कहना चाह रही हैं, उसे यथार्थ रूप में व्यक्त नहीं कर पा रही है क्योंकि यह शोभा मन-वाणी से परे शब्दातीत है। उपरोक्त चौपाई में वर्णन न कर पाने का यही आशय है।

**गुरज हजार बीच चाँदनी, सब गुरज बराबर।**

**कई कोट जुबां इन खूबी की, सिफत न सके कर॥४०॥**

चाँदनी की किनार पर जो हजार हाँस के महल हैं, उनमें बाहरी तरफ हजार हाँसों की सन्धियों में हजार गुर्ज आये हैं। ये सभी गुर्ज आपस में बराबर माप एवं शोभा के हैं। इनकी सुन्दरता की विशेषताओं का वर्णन तो करोड़ों जिह्वाओं से भी नहीं हो सकता।

तले चार गुरज बिलंद हैं, थंभ होत ज्यों कर।

चारों भोम से छात लग, आए पोहोंचे ऊपर॥४१॥

हजार हाँस के चबूतरे की चारों दिशाओं के चारों पेड़ रूपी गुर्ज बहुत बड़े थम्भों के स्वरूप में आये हैं। ये चारों पेड़ ऊपर २५१वीं भूमिका से जाकर लगे हैं।

**द्रष्टव्य**— यहाँ मध्य के पाँचवे पेड़ का वर्णन नहीं किया गया है।

**भावार्थ**— चारों पेड़ (महल) प्रथम भूमिका से पाँचवी भूमिका तक सीधे गये हैं। छठीं भूमिका से चारों तरफ छज्जे बढ़ते जाते हैं। २५० भूमिका तक चारों पेड़ अलग-अलग गये हैं। २५०वीं भूमिका की छत (२५१वीं भूमिका में) से चारों तरफ छज्जे इस प्रकार निकले हैं कि चारों पेड़ आपस में मिल गये हैं, अर्थात् प्रथम भूमिका से २५०वीं भूमिका की छत तक चारों पेड़ अलग-अलग



गये हैं।

सो याही छात को लग रहे, ज्यों एक मोहोल चार पाए।

पेड़ पांचमा बीच में, मोहोल पांचों जुदे सोभाए॥४२॥

इस प्रकार २५०वीं भूमिका की छत के नीचे चारों पेड़ आकर लगे हैं। २५१वीं भूमिका से १००० भूमिका तक हजार हाँस के रूप में घेरकर छज्जे (महल) बढ़ते गये हैं। पुखराज पहाड़ की शोभा चार पायों (आधार-स्तम्भों) पर खड़े एक विशाल महल के समान दिखायी देती है। इन चारों पेड़ों (महलों) के मध्य में एक पाँचवा पेड़ (महल) भी है। इन पाँचों पेड़ों के ऊपर पुखराज पर्वत सुशोभित हो रहा है। २५१वीं भूमिका के नीचे ये पाँचों पेड़ (महल) अलग-अलग हैं और २५१वीं भूमिका से एक हो गये हैं (छज्जों द्वारा आपस में मिल गये हैं)।

सो पाँचों माहें मोहोलात हैं, रंग नंग जुदी जिनस।

देख देख पाँचों देखिए, एक पे और सरस॥४३॥

इन पाँचों महलों (पेड़ों) में अलग-अलग रंगों के नगों से बने हुए छोटे-छोटे बहुत से महल हैं। जब पाँचों महलों को बारम्बार देखते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक महल दूसरे से अधिक सुन्दर है।

कहा कहूं क्यों कर कहूं, एक जुबां मोहोल अनेक।

इन झूठी जिमीके साजसों, क्यों कहूं अर्स विवेक॥४४॥

मेरी एक ही जिह्वा है, जबकि महल तो अनन्त (बहुत से) हैं। इनकी अनुपम शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। मुझे संकोच हो रहा है कि इनकी शोभा के वर्णन में मैं क्या कहूँ। इस नश्वर जगत् के साधनों (वस्तुओं) से उपमा देकर भला मैं परमधाम की शोभा का यथार्थ वर्णन कैसे

कर सकती हूँ।

तले से ऊपर लग, थंभ झरोखे देहेलान।

ए बैठकें बका मिने, रूहें संग सुभान॥४५॥

नीचे से ऊपर तक (चबूतरे से चाँदनी तक) थम्भों, झरोखों, तथा दहलानों की अद्वितीय शोभा दृष्टिगोचर हो रही है। अखण्ड परमधाम के अन्दर की ये बैठकें (दहलान, महल इत्यादि) हैं, जिनमें युगल स्वरूप के साथ सखियाँ तरह-तरह की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करती हैं।

ए पाँचों फेर के देखिए, खोल के रूह नजर।

ले भोम से लग चांदनी, खूब ऊपर खूबतर॥४६॥

हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से इन पाँचों पेड़ों की शोभा को देखें, तो आपको ऐसा अनुभव

होगा कि प्रथम भूमिका से लेकर चाँदनी तक सुन्दरता उत्तरोत्तर (क्रमशः) बढ़ती ही गयी है।

**भावार्थ-** परमधाम में एकत्व (वहदत) होने से सर्वत्र ही समान शोभा है, किन्तु लीला रूप में किसी की शोभा का वर्णन करते-समय कम या अधिक कहकर वर्णित किया जाता है।

एक तरफ अर्स हौज के, तरफ दूजी हौज जोए।

और दोए तरफ दोए चरनियां, ज्यों जड़ित जगमगे सोए॥४७॥

पुखराजी ताल के एक ओर रंगमहल है, तो दूसरी ओर यमुना जी हैं। दो तरफ घाटियों की दो सीढ़ियाँ हैं, जो जवाहरातों से जड़ी हुई हैं और जगमगाती रहती हैं।

ए छठा पहाड़ हौज जोए का, ताके तले बड़ो विस्तार।

आए पोहोंच्या अधिक ऊपर, इत मिल गया इनके पार॥४८॥

यह पुखराजी ताल पुखराज पहाड़ के छठे पेड़ (आधार) के रूप में है। पुखराजी ताल के नीचे एक भूमिका ऊँचे चबूतरे पर बहुत अधिक विस्तार है (४८ बँगलों की ४८ हारें, ४८ चहबच्चों की ४८ हारें इत्यादि)। छठी भूमिका से इनके भी छज्जे चारों ओर बढ़े हैं।

२५१वीं भूमिका में पुखराज के पूर्व के पेड़ के छज्जों से ये छज्जे मिल जाते हैं। २५१वीं भूमिका से पुखराज पहाड़ और पुखराजी ताल के महल आपस में मिलते हुए ऊपर गये हैं, अर्थात् एक हो गये हैं।

तले छे जुदे रहे, ऊपर पहाड़ मोहोल एक।

और दोए कही जो घाटियां, भए आठ ऊपर इन विवेक॥४९॥

२५० भूमिका के नीचे ये छः निशान (चिह्न, रूप)– पाँच पेड़ और पुखराजी ताल– अलग-अलग आये हैं। २५१वीं भूमिका में ये सभी एक हो गये हैं, अर्थात् ऊपर एक ही पहाड़ महल के रूप में शोभायमान है। इसके अतिरिक्त पुखराज के पश्चिम एवं उत्तर में जिन दो घाटियों का वर्णन किया गया है, उनके भी छज्जे छठीं भूमिका से २५० भूमिका तक पुखराज पहाड़ की ओर बढ़ते जाते हैं। २५१वीं भूमिका में ये पुखराज के छज्जों से मिल जाते हैं और मिलते हुए १०००वीं भूमिका तक जाते हैं। इस प्रकार ये आठ निशान (५ पेड़, पुखराजी ताल, तथा दो घाटी) कहे गये हैं। इनके ऊपर ही सम्पूर्ण पुखराज पहाड़ स्थित है।

चरनी दोए बड़ी कही, जो बड़े गुरज दरम्यान।

आइयां जिमी से ऊपर लग, क्या करसी जुबां बयान॥५०॥

हजार हाँस के महलों की चारों दिशा में चार बड़े दरवाजे हैं, जिनके दायें-बायें २-२ बड़े गुर्ज हैं। पश्चिम और उत्तर के दरवाजों (व गुर्जों) के सामने दो बड़ी-बड़ी सीढ़ियाँ (घाटियाँ) हैं, जो नीचे (जमीन) से ऊपर (पुखराज की चाँदनी) तक आयी हैं। इनकी अनुपम शोभा का वर्णन भला मेरी यह जिह्वा कैसे कर सकती है।

बड़ियां ऊंची आसमान लों, और खूबी देत अति जोर।

जोत जवेर अति झलकत, किनार दोऊ सीधी दौर॥५१॥

ये दोनों सीढ़ियाँ आकाश में बहुत ऊँचाई तक (चाँदनी) जाती हैं। इनकी अपरम्पार शोभा हो रही है। इनमें जड़े हुए जवाहरातों की ज्योति झलकार कर रही है। सीढ़ियों

के दोनों किनारे पूर्णतया सीधे हैं , अर्थात् सीढ़ियाँ पूर्णरूपेण सीधी आयी हैं।

दोऊ सीढ़ियों के सिरे पर, दोए दरवाजे बुजरक।

दोऊ तरफों दो दिवालें, सो भी वाही माफक॥५२॥

दोनों सीढ़ियाँ ऊपर चाँदनी में जहाँ पहुँचती हैं , वहाँ सामने दो विशाल (५ भूमिका ऊँचे) दरवाजे हैं, जिनके ऊपर ५ भूमिका ऊँचे महल हैं। इस प्रकार दरवाजों की कुल ऊँचाई १० भूमिका की हो जाती है। इन दरवाजों के दायें-बायें ५ भूमिका के ऊँचे महल दीवारों के रूप में सुशोभित हो रहे हैं।

दोए द्वार इत और हैं, इन चांदनी चार द्वार।

सो चारों तरफों जगमगे, सोभा अलेखे अपार॥५३॥



यहाँ पर दो बड़े दरवाजे और हैं। इस प्रकार चाँदनी के ऊपर चारों दिशाओं में कुल चार बड़े दरवाजे आये हैं। चारों दिशाओं में इनकी जगमगाहट फैल रही है। इनकी शोभा इतनी अनन्त है कि उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता।

**भावार्थ-** दोनों सीढ़ियों के सामन दो बड़े दरवाजे हैं, तथा तीसरा दरवाजा पूर्व दिशा में पुखराजी ताल की तरफ है, और चौथा दरवाजा दक्षिण में महावन की ओर है।

गुरज दोए हर द्वारने, इत बड़े दरबार।

सो तेज जोत नूर को, कह्यो न जाए सुमार॥५४॥

इन चारों बड़े दरवाजों में प्रत्येक द्वार के दायें -बायें अन्दर एवं बाहर की तरफ दो-दो गुर्ज (चबूतरे) आये हैं।

इनकी नूरमयी ज्योति एवं तेज इतना अनन्त है कि उसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

**भावार्थ-** चारों द्वार ५ भूमिकाओं के बराबर ऊँचे हैं। इनके ऊपर ५ भूमिकाओं के महल भी आये हैं। इस प्रकार इन चार बड़े दरवाजों को बड़े दरबार कहा गया है।

ए जो गिरदवाए मोहोल चाँदनी, बीच मोहोल गुरज हजार।

जोत बीच आसमान के, मावत नहीं झलकार॥५५॥

पुखराज की चाँदनी की किनार पर जो हजार हाँस के महल हैं, उनकी (हजार हाँस) सन्धियों में बाहरी ओर हजार गोल गुर्ज हैं, जिनकी चाँदनी पर बैठकें बनी हैं। इन गुर्जों की ज्योति की झलझलाहट से सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो रहा है।

ए अति बड़े मोहोल किनारे, और कंगूरे अति सोभित।

सोभा इन मोहोलन की, जुबां कहा करसी सिफत॥५६॥

पुखराज की चाँदनी की किनार पर आये हुए ये महल बहुत बड़े-बड़े हैं। इनके ऊपर चाँदनी की किनार पर बने हुए कँगूरे बहुत मनोरम शोभा को धारण किये हुए हैं। इन महलों की अलौकिक शोभा का वर्णन भला यह जिह्वा कैसे कर सकती है।

हौज जोए इन पहाड़ से, सो पीछे कहूं सिफत।

बड़े मोहोल पर मोहोल जो, ए खूबी आकास में अतंत॥५७॥

पुखराज पहाड़ में स्थित पुखराजी ताल की शोभा का वर्णन तो मैं बाद में करूँगी। अभी मैं उस आकाशी महल की शोभा का वर्णन कर रही हूँ, जो १००० भूमिका ऊँचे पुखराज पहाड़ के ऊपर (चाँदनी पर) मध्य में विद्यमान

है। यह भी १००० भूमिका ऊँचा है और आकाश को छूता हुआ प्रतीत होता है। आकाश में इसकी ऊँचाई की शोभा अनन्त है।

इन मोहोल ऊपर जो चांदनी, तिन पर जो मोहोलात।  
 सो विस्तार है अति बड़ा, या मुख कह्यो न जात॥५८॥  
 पुखराज पहाड़ के १००० भूमिका ऊँचे महलों पर जो चाँदनी (आकाशी, छत) है, उस पर बने हुए महलों (आकाशी महल) का विस्तार बहुत अधिक है जिसका वर्णन इस मुख से हो पाना असम्भव है।

इन पहाड़ ऊपर मोहोलात जो, ऊँचा बड़ा विस्तार।  
 गिरद झरोखे ऊपर तले, याको क्यों कर होए निखार॥५९॥  
 पुखराज पर्वत के ऊपर आये हुए आकाशी महल की

ऊँचाई और विस्तार बहुत अधिक है। इस महल में चारों ओर ऊपर-नीचे सुन्दर-सुन्दर झरोखे आये हुए हैं, जिनका वर्णन हो पाना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

**चारों तरफों दरवाजे, आगूं चौखूँटे चबूतर।**

**थंभ चार हर चबूतरे, मोहोल इन आठों पर॥६०॥**

चारों दिशाओं में चारों दरवाजों के आगे चौरस चबूतरे आये हैं। प्रत्येक चबूतरे पर चार थम्भों की शोभा दिखायी दे रही है। इस प्रकार इन आठ चबूतरों के ऊपर आठ महलों की शोभा आयी है।

**भावार्थ—** आकाशी महल में १३ हवेलियों की १३ हारें सुशोभित हो रही हैं। प्रत्येक हवेली की चारों दिशा के मध्य में बड़े दरवाजे एवं दायें-बायें कमर भर ऊँचे चौरस

चबूतरे आये हैं। प्रत्येक दिशा की (१३-१३) हवेलियों के २-२ चबूतरे (कुल २६-२६ चबूतरे) बाहरी रौंस पर हैं। इनके ऊपर की भूमिकाओं में सुन्दर झरोखे (छज्जे) बने हैं, जिससे ये चौरस चबूतरे चौखूँटे गुर्जों के रूप में ऊपर जाते हुए दिखायी दे रहे हैं। चौपाई ६०-६५ तक में जो चारों दिशा के चार दरवाजों और आठ चबूतरों का वर्णन है, वह चारों दिशाओं की मध्य की हवेली के दरवाजों व चबूतरों का वर्णन है। यद्यपि इसके दायें-बायें अन्य ६-६ हवेलियों के भी दरवाजे और चबूतरे विद्यमान हैं।

**चारों तरफों द्वारने, और चारों खूंटों गुरज चार।**

**कहा कहूं अन्दर मोहोल की, जिनको नहीं सुमार॥६१॥**

इस प्रकार चारों दिशाओं में मध्य की हवेली के चार

मुख्य दरवाजे शोभायमान हैं। आकाशी महल के चारों कोनों में चार गोल गुर्ज (पाँच महल के) भी सुशोभित हो रहे हैं। इस आकाशी महल के अन्दर असंख्य मन्दिर, चबूतरे, बगीचे इत्यादि विद्यमान हैं, जिनकी अनुपम शोभा के विषय में मैं क्या कहूँ। मेरे द्वारा उनका यथार्थ वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

**इनके आठ चबूतरे, तिन आठों पर आठ गुरज।**

**आकास में जाए जगमगे, करें जंग जोत सूरज॥६२॥**

चारों दिशाओं के मध्य की हवेली के चार मुख्य दरवाजों के दायें-बायें जो आठ चबूतरे हैं, वे चौखूँटे गुर्ज के रूप में आकाश में १००० भूमिका की ऊँचाई तक जगमगाते हुए दिख रहे हैं। इनकी ज्योति सूर्य के प्रकाश से टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती है।

**भावार्थ-** चबूतरों के ऊपर की भूमिकाओं में झरोखे आये हैं, जिनमें चबूतरे के समान थम्भ, कठेड़े, तथा मेहराबें शोभायमान हैं, तथा ये झरोखे कमर भर ऊँचे भी हैं। ये झरोखे और चबूतरे महल से बाहर भी निकले हुए होते हैं। इस कारण इन चबूतरों व झरोखों का समूह नीचे से ऊपर तक एक गुर्ज के समान ही प्रतीत होता है।

**इन आठों बीच चार द्वार ने, कई सोभा लेत अपार।**

**कठेड़ा आठों चबूतरे, तरफ चारों चार द्वार॥६३॥**

इन आठों चबूतरों के मध्य में चार दरवाजों की कई प्रकार की अपरम्पार शोभा हो रही है। इन आठों चबूतरों के ऊपर अति सुन्दर कठेड़ा आया हुआ है। इस प्रकार चारों दिशाओं में मध्य की हवेलियों के चारों द्वारों की शोभा दृष्टिगोचर हो रही है।



चार गुरज चार खूंट के, माहें मोहोल फिरते गिरदवाए।

फिरते झरोखे सिरे लगे, आसमान में पोहोंचे आए॥६४॥

आकाशी महल के चारों कोनों में चार गोल गुर्ज हैं। इनके बीच में (चारों दिशा में) घेरकर हवेलियों के महल दिख रहे हैं, जो हवेलियों में दरवाजों के दायें –बायें शोभायमान हैं। इन हवेलियों के दरवाजों के दायें –बायें जो चबूतरे हैं, इनके ऊपर की भूमिकाओं में झरोखे बनते हुए आकाश तक गये हैं। इस प्रकार, चारों तरफ एक ही सीध में सभी झरोखे विद्यमान हैं।

आठों खाँचों के गुरज जो, छ्यानब्बे गुरज कहे।

बारे गुरज अव्वल कहे, सब एक सौ आठ भए॥६५॥

आकाशी महल की एक दिशा में मध्य की हवेली के दायें –बायें दो भाग (खाँचे) हुए, जिनमें ६ – ६ हवेलियों

के १२-१२ गुर्ज हुए। चारों दिशाओं के आठ भागों में कुल ९६ चौखूँटे गुर्ज हुए। इसके पहले १२ गुर्जों का वर्णन किया जा चुका है (८ गुर्ज चारों दिशा की मध्य की हवेली के और ४ गोल गुर्ज चारों कोनों के)। इस प्रकार, ९६ और १२ मिलकर कुल १०८ गुर्ज होते हैं।

**सब मोहोल अति सुन्दर, चौखूँटे एक सौ चार।**

**चार गिरद चार खूंट के, एक सौ आठ यों सुमार॥६६॥**

ये सभी महल बहुत सुन्दर हैं। आकाशी महल की चारों दिशा में आये चौखूँटे गुर्ज १०४ की संख्या में हैं। गोल गुर्ज कुल चार हैं, जो आकाशी महल के चारों कोनों में हैं। इस प्रकार कुल १०८ गुर्ज आये हैं।

दिवालां आकास लों, करे जोत जोत सों जंग।

बिलंद झरोखे कई थंभ, हिसाब ना जिनस रंग॥६७॥

इन हवेलियों की दीवारें आकाश में बहुत ऊँचाई तक गयी हुई हैं। इनसे निकलने वाली ज्योति की किरणें आपस में टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत हो रही हैं। इन महलों में बड़े-बड़े झरोखे और बहुत से थम्भ आये हैं, जिनकी अद्भुत बनावट एवं रंगों की सुन्दरता की कोई सीमा नहीं है।

**भावार्थ-** आकाशी महल की प्रत्येक दो हवेलियों के मध्य त्रिपोलिये हैं, जो बाहरी रौंस पर चौरस गुर्ज के रूप में हैं। इन्हें त्रिपोलिया के गुर्ज कहते हैं। ये चारों दिशा में कुल ४८ की संख्या में हैं। ये ऊपर की भूमिकाओं में बड़े झरोखों के रूप में शोभायमान हैं।

चारों तरफों मोहोलात के, क्यों कहूं खूबी ए।

कई रंग नंग थंभ जवेर के, चारों तरफों झरोखे॥६८॥

इस आकाशी महल में चारों ओर अपार सौन्दर्य बिखरा पड़ा है, जिसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। यहाँ अनेक रंगों वाले नगों तथा जवाहरातों के थम्भ हैं, तथा चारों ओर मनमोहक झरोखे आये हैं।

एक सौ आठ गुरज जो, ऊपर जाए लगे आसमान।

कलस रोसन कई तिन पर, सो जाए न कहे जुबान॥६९॥

आकाशी महल के ये १०८ गुर्ज आकाश में बहुत ऊँचाई (चाँदनी) तक सुशोभित हो रहे हैं। इन गुर्जों पर अति सुन्दर कलश जगमगा रहे हैं, जिनकी शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

माहें मोहोल कई विध के, कई कचेहेरी देहेलान।

कई मंदिर हवेलियां, क्यों कर कहूं बयान॥७०॥

इस आकाशी महल में अनेक प्रकार की कचहरियाँ तथा दहलानें आयी हैं। बहुत सी हवेलियाँ, महल, तथा मन्दिर भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं, जिनकी अलौकिक शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

कई अंदर नेहेरें फिरें, माहें हवेलियों चेहेबच्चे।

खुसबोए फूल मेवे कई, माहें बैठक कई बगीचे॥७१॥

इन हवेलियों में बहुत सी नहरें आती –जाती हैं तथा अनेक चहबच्चे भी सुशोभित हो रहे हैं। कई प्रकार के सुगन्धित फूल खिले हुए हैं तथा स्वादिष्ट मेवे भी लगे हुए हैं। बगीचों में बहुत सी बैठकें भी बनी हुई हैं।

**बाहेर देखाई माफक, अंदर बड़ा विस्तार।**

**पहाड़ ऊपर या मोहोल में, आवत नहीं सुमार॥७२॥**

आकाश महल जिस प्रकार बाहर से बहुत विस्तृत दिखायी देता है, उसी प्रकार अन्दर भी इसका बहुत अधिक विस्तार है। पुखराज पहाड़ की चाँदनी पर आये हुए इस आकाशी महल की शोभा अनन्त है।

**बड़े द्वार बड़े चबूतरे, इत सोने के कमाड़।**

**जड़ाव चारों द्वार ने, एक जवेर मोहोल पहाड़॥७३॥**

हजार हाँस के महल में चारों दिशाओं में चार बड़े-बड़े दरवाजे हैं, जिनके किवाड़ सोने के हैं। उनके सामने दो-दो चबूतरे हैं, जो दरवाजों के अनुसार ही बड़े हैं। ये चारों द्वार नगों से जड़े हुए हैं। सम्पूर्ण पुखराज पहाड़ एक ही पुखराज के नग में आया हुआ सुशोभित हो रहा है।

इन मोहोलों हक आवत, सुख देने रूहों सबन।

सुख इत के दिए जो ख्वाब में, सो जानें रूह मोमिन॥७४॥

श्री राज जी इन महलों में अपनी सभी अँगनाओं को प्रेममयी लीला का आनन्द देने के लिये आते हैं। धनी ने अपनी वाणी द्वारा इस संसार में परमधाम का जो सुख दिया है, उसे मात्र ब्रह्मात्मायें ही जानती हैं।

चरनी आठों चबूतरे, और ऊपर आठों के छत।

बड़े छज्जे चारों द्वार पर, सब फिरते छज्जे मोहोलात॥७५॥

चारों दरवाजों के आठों चबूतरों से तीन दिशा में तीन – तीन सीढ़ियाँ उतरी हैं। शेष जगह में चबूतरे की किनार पर कठेड़ा आया है। प्रत्येक चबूतरे पर ५ भूमिका ऊँचे ४ – ४ थम्भ हैं, जिनके ऊपर छत आयी है। छत पर पुनः ५ भूमिका तक झरोखे (चबूतरे) गुर्ज के रूप में सुशोभित

हो रहे हैं। चारों दरवाजों के ऊपर सामने की ओर (दोनों चबूतरों के मध्य में) छज्जे हैं, जो दोनों चबूतरों की छत को मिलाते हैं। हजार हाँस के महलों की प्रत्येक भूमिका से भी चारों ओर छज्जे निकले हुए हैं।

**कई कलस कई कंगूरे, आसमान में रोसन।**

**खूबी हक के अर्स की, इत क्यों कहूँ जुबां इन॥७६॥**

इन आठ चबूतरों (चौखूँटे गुर्जों) तथा १००० हाँस के २००० चौखूँटे गुर्जों के ऊपर चाँदनी में बहुत से कलश एवं कँगूरे बने हुए हैं, जो आकाश में जगमगा रहे हैं। प्रियतम अक्षरातीत के स्वलीला अद्वैत परमधाम की शोभा अद्वितीय है। उसे इस संसार में अपनी जिह्वा से मैं कैसे व्यक्त करूँ।



जवेर अर्स जिमी के, और सोना भी जिमी अर्स।

जिमी रेत या दरखत, सब अर्स जिमी एक रस॥७७॥

परमधाम के चाहे हीरे-मोती आदि जवाहरात हों या सोना-चाँदी या धातुएँ, अथवा धरती की रेत या वृक्ष, सभी एक ही नूरमयी तत्व के हैं। सम्पूर्ण परमधाम में अक्षरातीत का स्वरूप ही इन सभी पदार्थों में एकरस होकर लीला कर रहा है।

**भावार्थ-** इस मायावी जगत् में बालू की रेत, सोना, या हीरे-मोती की गुणवत्ता एवं मूल्य में बहुत अन्तर होता है, किन्तु परमधाम में ऐसा नहीं है। परमधाम की प्रत्येक वस्तु में समान रूप से सुन्दरता, अखण्डता, कोमलता, अनादिता, आनन्दमयता आदि गुण विद्यमान होते हैं, क्योंकि वहाँ की प्रत्येक वस्तु आत्म-स्वरूप है एवं अक्षरातीत के हृदय का ही लीला भाव में प्रकट रूप है।

अर्स तरफ दाहिनी, तरफ सामी ताल जोए।

बांई तरफ और पीछली, ए कही सीढ़ियां दोए॥७८॥

पुखराज पर्वत की दायीं ओर (दक्षिण में) रंगमहल है, तो सामने पूर्व की ओर पुखराजी ताल और यमुना जी हैं। इसी प्रकार बायीं ओर उत्तर में तथा पीछे पश्चिम में दो सीढ़ियों (घाटियों) की शोभा दृष्टिगोचर हो रही है।

अब कहूं इनका बेवरा, ए सब मोहोलात नंग एक।

ए लीजो नीके दिल में, केहेती हों विवेक॥७९॥

हे साथ जी! मैं इनका विवरण देती हूँ। पुखराज पर्वत के ये सभी महल एक ही पुखराज के नग में आये हुए हैं। आप सभी मेरे द्वारा कहे हुए कथनों को अपने धाम-हृदय में अच्छी तरह से बसा लीजिए, क्योंकि मैं धनी द्वारा दिये गये विवेक से ही ऐसा कह रही हूँ।

ए चारों तरफ कहे पहाड़ के, बीच गुरज बड़े थंभ चार।

ए आठ निसान गिरद के, लीजो रूहें दिल विचार॥८०॥

हे साथ जी! पुखराज पहाड़ के सम्पूर्ण विस्तार में चारों ओर आठ निशान (चिह्न, रूप) माने गये हैं। उनका चिन्तन करके अपने हृदय में बसाइये। ये आठों निशान इस प्रकार हैं— चार दिशाओं के चार पेड़, पाँचवा मध्य का पेड़, पश्चिम तथा उत्तर की दो घाटियाँ, एवं एक पुखराजी ताल।

और मोहोलात इन ऊपर, सो नूर ऊपर जो नूर।

देत खूबी बीच अकास के, अवकास सबे जहूर॥८१॥

नूरमयी पुखराजी पहाड़ के ऊपर जो नूरी आकाशी महल आया है, उसकी अद्वितीय छटा आकाश में दिखायी पड़ रही है। सम्पूर्ण आकाश में चारों ओर ही

इनकी दिव्य ज्योति फैली हुई है।

एक सौ आठ गुरज कहे, जो करत ऊपर रोसन।

कंगूरे कलस ऊपर कई, देख होत खुसाल मोमिन॥८२॥

आकाशी महल में आये हुए १०८ गुर्जों का वर्णन पहले किया जा चुका है। ये गुर्ज आकाश में अपनी नूरी झलकार के साथ सुशोभित हो रहे हैं। इनके ऊपर बहुत से कँगूरे और कलश बने हुए हैं, जिन्हें देख-देखकर ब्रह्ममुनि सुन्दरसाथ आनन्दित हुआ करते हैं।

इन मोहोलों बीच इमारतें, हिस्सा कोटमा कहा न जाए।

ए खूबी सब्दातीत की, लीजो रूह के दिल लगाए॥८३॥

आकाश महल के बीच भवनों की जो अलौकिक शोभा है, उसके करोड़वें भाग का भी वर्णन नहीं किया जा

सकता। यह शोभा तो शब्दों से परे है। हे साथ जी! इस अनुपम शोभा को आप अपनी आत्मा के धाम-हृदय में बसा लीजिए।

**आगूं जल अति सोभित, तले गिरदवाए पाल।**

**तिन पर बन बिराजत, क्यों कहूं खूबी इन ताल॥८४॥**

पुखराज पर्वत की पूर्व दिशा में (आगे) ९८० भूमिका गहरा पुखराजी ताल है। ताल के चारों ओर पाल आयी हुई है। जिस पर ताल के चारों ओर जवेरों के महल आये हैं, जो २० भूमिका ऊँचे हैं। जवेरों के महलों के बाहरी व भीतरी तरफ बड़ोवन के वृक्षों की ५-५ हारों की विलक्षण शोभा हो रही है। ताल बीच से खुला है। इस पुखराजी ताल की अनुपम शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

ए जवेर अर्स जिमी के, सब्द में न आवत।

ए मोमिन देखो रूहसों, जुबां न पोहोंचे सिफत॥८५॥

परमधाम की भूमिका में जवाहरातों की अनन्त शोभा को शब्दों की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। हे साथ जी! आप अपनी आत्मिक दृष्टि को खोलकर इस अद्वितीय शोभा को देखिए। मेरी जिह्वा इसका वर्णन करने में स्वयं को असमर्थ पा रही है।

नसीहत लई जिन मोमिनों, ए तरफ जानें सोए।

अर्स हौज जोए, रूहें पेहेचान यासों होए॥८६॥

पुखराज पर्वत की इस शब्दातीत शोभा को मात्र वे ब्रह्ममुनि ही जानते हैं, जिन्होंने तारतम वाणी की अमृतमयी रसधारा को आत्मसात् किया है। ब्रह्मसृष्टि होने की पहचान यही है कि उनकी आत्मिक दृष्टि रंगमहल ,

हौज़ कौसर, अथवा यमुना जी की अनुपम शोभा में क्रीड़ा करती रहती है।

**भावार्थ-** केवल शब्द-ज्ञान को ही सर्वोपरि मानकर चितवनि से दूर रहने वाले शुष्क-हृदय सुन्दरसाथ के लिये इस चौपाई में विशेष रूप से शिक्षा (सिखापन) दी गयी है। बिना प्रेममयी चितवनि में डूबे, आत्म-दृष्टि का खुलना तो दिवास्वप्न के समान मिथ्या है।

जो अरवाहें अर्स की, सो यामें खेलें रात दिन।

ऊपर तले मांहें बाहेर, ए जरे जरा जाने मोमिन॥८७॥

परमधाम की जो भी आत्मायें हैं, वे परमधाम (युगल स्वरूप एवं २५ पक्ष) की शोभा में दिन-रात डूबी रहती हैं। निजधाम की लीला रूप प्रत्येक वस्तु के ऊपर-नीचे या अन्दर-बाहर के कण-कण को इन ब्रह्माँगनाओं ने

अपनी आत्मिक दृष्टि से देखा और जाना है।

महामत कहे ए मोमिनो, क्यों कहूं पहाड़ सिफत।

ए लज्जत तिनको आवसी, जाए हक बका निसबत॥८८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! मैं पुखराज पहाड़ की शोभा रूप महिमा का किस प्रकार से वर्णन करूँ। इस शोभा का रसास्वादन तो मात्र उन्हीं को मिल पाता है, जिनका सम्बन्ध अखण्ड परमधाम में विराजमान धनी के चरणों से होता है।

**भावार्थ-** प्रायः ब्रह्मसृष्टि ही धनी के प्रेम में गोता लगाती है, इसलिये उपरोक्त तीनों (८६, ८७, ८८) चौपाइयों में उनके द्वारा ही परमधाम के दर्शन का रसास्वादन करने का वर्णन है। किन्तु यदि ईश्वरी सृष्टि एवं जीव सृष्टि भी प्रेममयी चितवनि की राह अपनाये, तो उसे भी परमधाम



एवं श्री राज जी का दर्शन अवश्य हो सकता है। हाँ!  
श्यामा जी एवं सखियों का दर्शन नहीं होगा। इस सम्बन्ध  
में सागर १४ / २५, २६, २७ के यह कथन देखने योग्य  
हैं—

जो कोई हक के हुकम का, ताए जो इलम करे बेसक।  
लेवे अपनी मेहर में, तो नेक दीदार कबूं हक॥  
पर कबूं दीदार ना निसबत का, ना काहूं को एह न्यामत।  
ए जुबां इन निसबत की, कहा करसी सिफत॥  
ए जो सरूप निसबत के, काहूं न देवें देखाए।  
बदले आप दिखावत, प्यारी निसबत रखे छिपाए॥

**प्रकरण ॥१३॥ चौपाई ॥८३४॥**

## ताल बंगले जोए मोहोलात

इस प्रकरण में पुखराजी ताल, बँगलों, एवं यमुना जी के किनारे आये हुए महलों की शोभा का वर्णन किया गया है।

मोहोल के तले ताल जो, तुम देखो अर्स अरवाए।

रहिए संग सुभान के, छोड़िए नहीं पल पाए॥१॥

हे साथ जी! आप परमधाम की ब्रह्मांगना हैं। आकाशी महल की चाँदनी से १०२० भूमिका नीचे, पुखराज पहाड़ की पूर्व दिशा में, जो पुखराजी ताल आया है, उसकी अनुपम शोभा को देखिये। अपनी आत्मिक दृष्टि से सर्वदा धाम धनी के साथ रहिए और एक पल के चौथाई भाग के लिये भी उनके चरणों से अलग न होइए।

ऊपर पहाड़ के ताल जो, बोहोत बड़ो विस्तार।

तले बड़े मोहोलात के, सो नेक कहूं विचार॥२॥

पुखराज पहाड़ के ऊपर (९८० भूमिका की चाँदनी पर) जो पुखराजी ताल है, वह बहुत लम्बा-चौड़ा (३३००० कोस का लम्बा-चौड़ा) व गहरा (९८० भूमिका) है। पुखराजी ताल के चारों ओर महलों एवं बगीचों का बहुत अधिक विस्तार है। पुखराजी ताल के (९८० भूमिका) नीचे की भूमिकाओं में छज्जों, थम्भों, तथा महलों की जो शोभा है, अब उसके विषय में थोड़ा सा वर्णन करती हूँ।

बड़े देहेलान कचेहेरियां, बैठक बारे हजार।

हक हादी रूहन की, नाहीं सिफत सुमार॥३॥

बँगलों की छठी चाँदनी से ९८० भूमिका तक चारों ओर

छज्जे निकलते गये हैं, जिनके किनारे चारों तरफ थम्भों की हारें आयी हैं। इन्हें ही इस चौपाई में बड़ी – बड़ी दहलानें या कचहरियाँ कहा गया है। यहाँ युगल स्वरूप के साथ सखियाँ बैठा करती हैं। इस स्थान की शोभा की कोई सीमा नहीं है।

**भावार्थ**— बँगलों की छठी चाँदनी से पुखराजी ताल शुरु हो जाता है, किन्तु दिखता नहीं है। यहाँ ताल के चारों ओर दीवार है। इसके बाहरी तरफ दहलान (थम्भों की एक हार) आयी है। इसी दहलान से चारों ओर छज्जे निकलते हैं। २५० भूमिका तक छज्जों के बढ़ने के साथ – साथ दीवार भी खिसकती जाती है, जिससे ताल की चौड़ाई भी बढ़ती जाती है। २५१वीं भूमिका से ९८० भूमिका तक ताल बढ़ना बन्द हो जाता है तथा बढ़ते हुए छज्जों की जगह में महल बनते जाते हैं।

थंभ बड़े जवेरन के, कहूं सो केते रंग।

बोहोत छजे कई रंगों के, करे जोत जोत सों जंग॥४॥

जवाहरातों के ये थम्भ काफी ऊँचाई वाले (लम्बे) हैं। वे इतने अधिक रंगों के हैं कि मैं उनका कहाँ तक वर्णन करूँ। अनेक रंगों के बहुत से छजे भी सुशोभित हो रहे हैं, जिनकी ज्योति थम्भों एवं दीवारों की ज्योति से टकराकर युद्ध का मनमोहक दृश्य प्रकट कर रही है।

कई छजे ताल ऊपर, पड़त जल में झाँई।

मोहोल सबे माहें देखत, खूबी आवे न जुबां माहीं॥५॥

पुखराजी ताल के चारों ओर बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें आयी हैं, जिनकी भूमिकायें जवेरों के महलों की २० भूमिकाओं से मिली हुई हैं। इन वृक्षों की २० भूमिकाओं की डालियाँ पुखराजी ताल के ऊपर (जल चबूतरे तक)

छज्जे के समान छायी हुई हैं। ये अनेक रंगों की चित्रकारी से युक्त चन्द्रवा के समान दिखती हैं। इनके एवं ताल के पूर्व व पश्चिम में आयी दहलानों के सुन्दर प्रतिबिम्ब जल में झलकते हैं। इस मनोहर शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

**अंदर मोहोल नेहेरें चलें, चारों तरफों फिरत।**

**इन सबमें सोभा देय के, पुखराजें पोहोंचत॥६॥**

बीच वाले पेड़ से आकाशी महल की चाँदनी में जल पहुँचता है। वहाँ से वह आकाशी महल के सभी भवनों तथा बगीचों आदि में नहरों के रूप में पहुँचता है। इन सब में शोभायमान होता हुआ वह जल पुखराज की चाँदनी पर पहुँचता है। तत्पश्चात् पुखराजी ताल के पश्चिम के दहलान की २१वीं चाँदनी में से गुप्त रूप से होकर २०

भूमिका नीचे पुखराजी ताल में ४ धाराओं के रूप में गिरता है।

तीनों तरफों ताल के, जुदी जुदी मोहोलात।

बड़े छज्जे तरफ पहाड़ के, दोऊ बाजू दरखतों छात॥७॥

पुखराजी ताल की तीनों दिशाओं (पश्चिम, उत्तर, तथा दक्षिण) में अलग-अलग प्रकार के महल सुशोभित हो रहे हैं। पश्चिम दिशा में २५० भूमिका पर ६६००० कोस का लम्बा छज्जा विद्यमान है, जो पुखराज के पूर्व के पेड़ के छज्जे से मिला हुआ है। उत्तर व दक्षिण दिशा में भी पुखराजी ताल के छज्जे प्रत्येक भूमिकाओं में बढ़ते गये हैं, जो महावन की डालियों से मिल गये हैं।

मोहोल दोऊ छातों पर, तिन परे भी बड़े वन।

ए बन मोहोल अति बिलन्द, पर नेक करुं रोसन॥८॥

पुखराजी ताल के उत्तर और दक्षिण में ९८०वीं भूमिका की चाँदनी पर जवेरों (जवाहरातों) के महल विद्यमान हैं। उनके आगे-पीछे बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें भी सुशोभित हो रही हैं। ये वृक्ष तथा महल भी काफी ऊँचे (२० भूमिका के) हैं। उनकी शोभा का भी मैं थोड़ा सा वर्णन करती हूँ।

**द्रष्टव्य-** "परे" शब्द नवमी चौपाई में भी है, जहाँ इसका अर्थ "पास में, सामने, या आगे" होना चाहिए।

दोऊ बाजू बन मोहोल दोऊ, परे दोऊ तरफों दरखत।

पीछे मोहोल पर बड़े मोहोल, तिनकी जुदी बड़ी सिफत॥९॥

पुखराजी ताल की ९८०वीं भूमिका की चाँदनी पर



उत्तर और दक्षिण दोनों दिशा में बड़ोवन के वृक्ष एवं जवैरों के महल आये हैं। जवैरों के महलों की बाहरी और भीतरी दोनों ओर बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें दृष्टिगोचर हो रही हैं। पीछे पश्चिम दिशा में २० भूमिका ऊँची दहलान (८ थम्भों की १४ हारें) आयी है, जिसके पश्चिम में पुखराज पहाड़ की चाँदनी में आकाश को छूता हुआ १००० भूमिका ऊँचा आकाशी महल है, जिनकी शोभा सबसे न्यारी है।

**आगूं दोऊ सिरे गुरज दोए, माहें छज्जे कई किनार।**

**दोऊ बीच में पानी उतरत, गिरत चादरें चार॥१०॥**

पुखराजी ताल के पूर्व में भी दहलानें आयी हैं , जो अधबीच के कुण्ड के पश्चिम की दहलानों से मिलती हुई नीचे चबूतरे से ही चली आ रही हैं। अधबीच के कुण्ड की

दहलान के पूर्वी किनारे के दोनों कोणों (आग्नेय एवं ईशान) में २-२ गुर्ज (१ गोल और १ चौरस) सुशोभित हो रहे हैं। इस दहलान के पूर्व में ९७७ भूमिका ऊपर ९७८वीं भूमिका से लेकर ९८१वीं भूमिका तक चार छज्जे (क्रमशः ४००, ८००, १२००, एवं १६०० कोस के) निकले हैं। दोनों गुर्जों के मध्य १६०० कोस के छज्जे से १२ पाइपों द्वारा नीचे के तीनों छज्जों में भी पानी उतरता है तथा सामने ४ चादरें (धारायें) ४८४ भूमिका नीचे अधबीच के कुण्ड में गिरती हैं।

**सो चारों जुदी जुदी, उपरा ऊपर भी चार।**

**सोभा लेत और गरजत, सो सोले भई सुमार॥११॥**

जिस प्रकार, १६०० कोस के छज्जे से अलग-अलग चार धारायें गिरती हैं, उसी प्रकार नीचे के तीन छज्जों से

भी ४-४ धारायें गिरती हैं। इस प्रकार चारों छज्जों से कुल १६ धारायें गिरती हैं। ये धारायें बहुत ऊँचाई (लगभग २ लाख कोस) से गिरने के कारण मधुर गर्जना करती हुई सुशोभित होती हैं।

**दोऊ गुरज बीच बड़े देहेलान, जित सोले जाली द्वार।**

**थंभ झरोखे दोऊ तरफों, ए सोभा अति अपार।।१२।।**

इस प्रकार, इस दहलान के पूर्व में दो बड़े गुर्जों के बीच इन चारों छज्जों में (४-४) कुल १६ जालीदार द्वार हैं। इन दहलानों की दोनों किनार पर (उत्तर-दक्षिण में) थम्भों एवं झरोखों की अनन्त शोभा हो रही है।

**भावार्थ-** इन चारों छज्जों की उत्तर, पूर्व, एवं दक्षिण दिशा की किनार पर कमर-भर ऊँची दीवार है, जिनमें से पूर्व की चारों दीवारों में ४-४ जालीद्वार हैं।

तले बैठ जब देखिए, जानों गुरज लगे आसमान।

क्यों कहूं इन मोहोलात की, खेलें रूहें हादी सुभान॥१३॥

नीचे अधबीच के कुण्ड की ५०० भूमिका की चाँदनी पर (खास महल की पाँचवी चाँदनी पर) पूर्व दिशा में बैठकर जब पश्चिम दिशा में देखते हैं, तो दहलान और गुर्ज की ऊँचाई आकाश को छूती हुई प्रतीत होती है। इन महलों की उस अनुपम शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ, जिनमें युगल स्वरूप सखियों के साथ तरह-तरह की प्रेममयी लीलायें करते हैं।

मोहोल बड़े बीच गुरजों के, खूबी लेत तरफ दोए।

एक खूबी तरफ ताल के, दूजी ऊपर चादरों सोए॥१४॥

ये महल (दहलानें) काफी ऊँचे और लम्बे हैं, क्योंकि पुखराजी ताल के पूर्व की दहलान एवं अधबीच के कुण्ड

के पश्चिम की दहलान आपस में मिलती हुई नीचे चबूतरे से १००० भूमिका तक गयी हैं। इन दहलानों के पश्चिम में (पुखराजी ताल की तरफ) तथा पूर्व में अधबीच के कुण्ड की ओर, दोनों दिशा में गोल एवं चौरस गुर्ज सुशोभित हो रहे हैं।

**तले चारों सीढ़ी जुदी जुदी, पीछे करत पानी मार।**

**सो चारों उपरा ऊपर, इन विध पड़त धार॥१५॥**

दहलानों के पूर्व में अधबीच के कुण्ड की तरफ ९७८वीं भूमिका से लेकर ९८१वीं भूमिका तक उल्टी सीढ़ी के समान ४ छज्जे निकले हैं, जिनके आगे पूर्व से ४-४ (कुल १६) धारायें अधबीच के कुण्ड में गिरती हैं।

सो धारें पड़त बीच कुण्ड के, कुण्ड पर मोहोल गिरदवाए।

दोऊ बाजू छातें दरखत, पीछे मोहोल मिले आए॥१६॥

ये १६ धारायें अधबीच के कुण्ड में ४८४ भूमिका ऊपर से गिरती हैं। कुण्ड की दोनों दिशाओं (उत्तर-दक्षिण) में बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें हैं, जिनकी चारों भूमिकाओं की डालियाँ कुण्ड के ऊपर भी (कुछ दूरी तक) सुशोभित हो रही हैं। इनकी बाहरी तरफ खास (विशेष) महल हैं, जिनकी बाहरी तरफ भी बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें आयी हैं। खास महल की चारों भूमिकाओं के छज्जे बड़ोवन के वृक्षों की चारों भूमिकाओं से मिलते हुए आये हैं।

**भावार्थ-** वैसे तो अधबीच के कुण्ड के पूर्व दिशा में भी बड़ोवन आया है, किन्तु यहाँ मात्र उत्तर-दक्षिण दिशा का वर्णन किया गया है।

चारों तरफ झरोखे कुण्ड के, बीच चादरें खूबी देत।

बड़े देहेलान कचेहेरियां, हक रूहें खुसाली लेत॥१७॥

अधबीच के कुण्ड के चारों ओर झरोखे (छज्जे) शोभायमान हैं। तीन ओर बड़ोवन के वृक्षों के छज्जे हैं तथा एक ओर (पश्चिम में) दहलानों (१४ थम्भों की ८ हारों) के छज्जे हैं। यहाँ से इनके मध्य में कुण्ड में १६ धारायें गिरती हुई दिखायी देती हैं। ये दहलानें, छज्जे, तथा बैठकें बहुत बड़ी-बड़ी हैं। इनमें बैठकर श्री राजश्यामा जी व सखियाँ १६ धाराओं के गिरने के मनोहर दृश्यों का आनन्द लेते हैं।

खास मोहोल कुण्ड ऊपर, जहां लेहेरी छलकत जल।

सो जल उतरत पहाड़ से, चढ़ गिरत ऊंचे नल॥१८॥

अधबीच के कुण्ड में जहाँ जल की लहरें छलकती रहती

हैं, उसके किनारे पर विशेष प्रकार के महल आये हैं, जिन्हें खास महल कहते हैं। इस कुण्ड में ४८४ भूमिका ऊपर से १६ जालीद्वारों (नलों) द्वारा १६ धारायें गिरती हैं। फिर यह जल ४९७वीं भूमिका से ७८४ जलस्तूनों द्वारा नीचे उतरकर तलहटी में पहुँच जाता है।

## बंगले

बिराजे बंगले, ए जो मोहोल तले ताल।

बारे हजार बड़ी रूह ले, हक सों खेलत माहें हाल॥१९॥

पुखराजी ताल के नीचे चबूतरे पर, ४८ बंगलों की ४८ हारें और ४८ चहबच्चों की ४८ हारें विद्यमान हैं। यहाँ पर श्यामा जी के साथ १२००० सखियाँ अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत के साथ तरह-तरह की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करती हैं।



पहाड़ तले कई कुण्ड हैं, कई बिध पानी फिरत।

कई जिनसें केती कहूं, नेहेरें साम सामी चलत॥२०॥

पुखराजी ताल के नीचे इन बंगलों के बीच-बीच में कई बड़े तथा कई छोटे-छोटे चहबच्चे हैं, जिनमें जल अनेक प्रकार से क्रीड़ा करते हुए दृष्टिगोचर होता है। शोभा वाली अन्य वस्तुएँ भी बहुत सी हैं, जिनका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। इन बंगलों में आमने-सामने अति सुन्दर-सुन्दर नहरें प्रवाहित होती हैं।

कई नेहेरें फिरें माहें फिरतियां, कई आड़ियां आवत।

एक बड़ी नेहेर बाहेर निकसी, सो पानी पूर ज्यों चलत॥२१॥

इन बंगलों में बहुत सी नहरें तो अन्दर ही घूमती रहती हैं और बहुत सी नहरें आड़ी आती हैं। बंगले की तरहटी में पूर्व दिशा में एक बड़ी नहर निकली है, जिसमें पानी

काफी तेज बहाव से बहता है।

खास बिरिख कई विध के, सो केते कहूं विवेक।

तले पहाड़ छाया मिने, जानों ए बिरिख अति विसेक॥२२॥

यहाँ विशेष प्रकार के बहुत से (अनन्त) वृक्ष हैं, जिनका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। पुखराजी ताल (पहाड़) की छाया तले अर्थात् बंगलों के चारों ओर जो बहुत से वृक्ष हैं, उन्हें बहुत ही विशेष प्रकार का समझना चाहिए।

**विशेष—** ये वृक्ष ४८ बंगलों की ४८ हारों व ४८ चेहेबच्चों की ४८ हारों के बाहरी तरफ हैं, जो ५ भूमिका के बराबर ऊँचे आये हैं। ये बड़ोवन के वृक्ष हैं, जिनकी ५-५ हारें फीलपायों की ४ हारों की बाहरी व भीतरी तरफ आयी हैं।

**बन सुन्दर अति उत्तम, सोभा लेत ए ठौर।**

**ए बन छाया का देखे पीछे, जानो ऐसा न कोई और॥२३॥**

बंगले के चबूतरे के ऊपर आया हुआ यह बड़ोवन बहुत ही सुन्दर और उत्तम है, जिससे इस स्थान की शोभा अति मनोहर दिखायी दे रही है। शीतल व घनी छाया से युक्त इस वन की शोभा को देखने के बाद तो ऐसा लगता है कि इससे अधिक सुन्दर और कुछ है ही नहीं।

**थंभ बड़े बड़ी जाएगा, पहाड़ तले चहुं ओर।**

**ए खूबी कही न जावहीं, बन सोभित नेहेरें जोर॥२४॥**

पुखराजी ताल के नीचे बंगलों के चारों ओर बड़ोवन के वृक्षों की ५-५ हारों के मध्य फीलपायों की भी ४ हारें आयी हैं, जिनकी भी ५ भूमिका के बराबर एक ही भूमिका आयी है। ये फीलपाये व वृक्ष चौड़ाई की तरफ

२५०० कोस की दूरी पर हैं तथा लम्बाई की तरफ १२५० कोस की दूरी पर आये हैं (अर्थात् काफी विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं)। यह सम्पूर्ण वन नहरों से इस प्रकार सुशोभित हो रहा है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता।

**बीच बीच दोरी बंध, अड़तालीस बंगले।**

**हर हारें अड़तालीस, ए बैठक पहाड़ तले॥२५॥**

बड़ोवन के वृक्षों तथा फीलपायों की हारों के मध्य, ४८ बंगलों की ४८ हारें तथा ४८ चहबच्चों की ४८ हारें पंक्तिबद्ध रूप में क्रमशः विद्यमान हैं। यह स्थान पुखराजी ताल के नीचे चबूतरे पर आया हुआ है।

बराबर नेहेरें चेहेबच्चे, और बराबर दरखत।

झूठी जुबां इन देह की, क्यों कर कहे ए जुगत॥२६॥

सभी नहरें और चहबच्चे बराबर दूरी पर स्थित हैं। वृक्षों की एक-दूसरे से दूरी और ऊँचाई भी समान है। इस नश्वर तन की जिह्वा से भला यहाँ की अद्वितीय शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है।

चारों तरफों बराबर, ऊपर लगे पहाड़ सों आए।

जुदे जुदे जवेरन को, नूर पहाड़ तले न समाए॥२७॥

बंगलों के चारों तरफ आये बड़ोवन के वृक्ष व फीलपाये भी समान ऊँचे व समान दूरी पर हैं। इन बड़ोवन व फीलपायों की चाँदनी पर ही पुखराजी ताल स्थित है। ये सभी अलग-अलग जवाहरातों के हैं, जिनका नूर (तेज, सौन्दर्य) पुखराजी ताल के नीचे सर्वत्र फैला हुआ है। वह

इतना अधिक है कि समा नहीं पा रहा है।

छात पांचमी पोहोंची पहाड़ लों, बड़े बंगले बड़ी दीवार।

बड़े छज्जे चारों तरफों, सुख पाइए जो आवे हाल॥२८॥

ये बड़े-बड़े बंगले ऊँची-ऊँची दीवारों से युक्त हैं। इन बंगलों की पाँचवी छत (छठी भूमिका) के ऊपर बड़ोवन व फीलपायों की छत है, जिस पर पुखराजी ताल शुरू होता है, जिनके चारों तरफ बड़े-बड़े छज्जे निकले हैं। इनका सुख तो उसी को प्राप्त होता है, जो परमधाम की रहनी में आकर अपनी आत्मिक नेत्रों से इन्हें देखता है।

**भावार्थ-** प्रेम में डूबकर युगल स्वरूप एवं परमधाम की चितवनि ही ब्रह्मसृष्टियों की करनी है, जिसकी पराकाष्ठा रहनी (हाल) कही जाती है।

कई रंगों जरी पसमी, कई दुलीचे रंग केते।

सोभित हैं सबों बैठकें, कई नकस बेल फूल जेते॥२९॥

इन बंगलों में अनेक रंगों के बहुत से दुलीचे हैं, जिन्हें सोने-चाँदी आदि के तारों द्वारा अनेक रंगों वाले अति कोमल रेशम (पश्म) से बनाया गया है। यहाँ की सभी बैठकों में अनेक प्रकार की लताओं तथा फूलों के मनोहर चित्र सुशोभित हो रहे हैं।

दो तीन चार पुड़े चौकियां, कई जवेरों झलकत।

सीसे प्याले डब्बे तबके, कई वस्ते धरियां इत॥३०॥

यहाँ पर कहीं दोराहे (दोपुड़े) हैं, तो कहीं पर तिराहे (त्रिपुड़े), और कहीं पर चौराहे (चौपुड़े) हैं। अति सुन्दर प्रवेश द्वार भी बने हैं। ये सभी जवाहरातों के बने हैं और अपने प्रकाश से झलकार कर रहे हैं। यहाँ के भवनों में

दर्पण, प्याले, डिब्बे, तथा थालियाँ हैं, जिनमें तरह-  
तरह की वस्तुएँ रखी हुई हैं।

**कई सादे सिंघासन, कैयां ऊपर छत्र।**

**कई ठौर कदेले कुरसियां, कई तखत खूबतर।।३१।।**

यहाँ कई जगहों पर सामान्य सिंहासन (बिना छत्र वाले) रखे हुए हैं, तो कई स्थानों पर छत्र वाले सिंहासन विद्यमान हैं। कई बैठकों में गद्देदार आसन और कुर्सियाँ हैं, तो कई जगहों पर बहुत ही मनोहर चौकियाँ रखी हुई हैं।

**विशेष-** सागर ग्रन्थ में "तख्त" का अर्थ सिंहासन है, किन्तु यहाँ पर प्रसंग के अनुकूल "तख्त" शब्द का भाव उस चौकी से किया गया है जो पलंग के समान होती है।



कई एक ठौरों हिंडोले, कई सेज बिछोने पलंग।

कई जुदे जुदे जवेर, करत मिनो मिने जंग॥३२॥

कई एक स्थानों पर झूले लटके हुए हैं, तो कई स्थानों पर पलंग पर शयन के लिये बिछौने लगे हुए हैं। ये सभी अलग-अलग जवाहरातों के बने हुए हैं तथा इनसे निकलने वाली नूरमयी किरणें आपस में युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती हैं।

कई सोभित हैं सांकलें, माहें डब्बे पुतलियां तबक।

इत रूहें संग स्यामाजी, बीच बिराजत हक॥३३॥

कई जगहों पर छींके लटक रहे हैं, जिनमें रखे हुए डिब्बों एवं थालियों के ऊपर पुतलियों के अति मनोहर चित्र बने हुए हैं। यहाँ पर श्यामा जी और सखियों के बीच में श्री राज जी विराजमान होते हैं।

कई सीढ़ियां सोब्रन की, कई हीरा मानिक पुखराज।

उपली भोमे चौकी पर, कई धरे सन्दूकें साज॥३४॥

बंगलों में कई सीढ़ियाँ तो सोने की हैं और कई हीरे ,  
माणिक, तथा पुखराज की हैं। ऊपर की भूमिकाओं में  
चौकियों के ऊपर बहुत सी सन्दूकें और अन्य सामग्रियाँ  
सजाकर रखी हुई हैं।

कई सोभित साखें कमाड़ियां, जोर जवेर झलकार।

घोड़े कड़े बेनी जंजीरां, रोसन करत अपार॥३५॥

दरवाजों के पल्लों तथा चौखटों में कई प्रकार के  
जवाहरात बहुत अधिक झलकार करते हुए सुशोभित हो  
रहे हैं। दरवाजों के घोड़ों, कड़ों, बेनियों, तथा जंजीरों से  
अनन्त ज्योति फैल रही है।

**भावार्थ—** दरवाजे की चारों दिशाओं में पल्लों को

नियोजित करने के लिये जो आधार रूप भाग होता है, वह चौखट कहलाता है। प्रायः "चौखट" शब्द से जमीन से जुड़े हुए नीचे के भाग से अभिप्राय लिया जाता है। दरवाजों को खोलने या बन्द करने के लिये खूंटे के रूप में घोड़े, सिंह आदि की मूर्ति बना दी जाती है। इसी में शोभा के लिये गोल कड़े लगे होते हैं। पल्लों के चारों ओर के किनारे के भाग को बेनी कहते हैं। पल्ले में लगी हुई जंजीर दीवार में लगे गोल हुक से ताला लगाने के काम में प्रयुक्त होती है।

**हर बंगले विस्तार बड़ा, आगूं बड़े दरबार।**

**कई मोहोलों कई मंदिरों, कहीं कहां लग कहूं न सुमार॥३६॥**

प्रत्येक बंगले का विस्तार बहुत अधिक है। उनमें इतने अधिक महल और मन्दिर हैं कि उनकी कोई सीमा ही

नहीं है। हे साथ जी! अब आप ही बताइये कि मैं उनका कहाँ तक वर्णन करूँ। बंगलों में चबूतरे की किनार पर मन्दिरों की ५ भूमिका के बराबर ऊँचे थम्भ आये हैं। इनके भीतरी ओर मन्दिरों की हार है। पाँच भूमिका के बराबर ऊँचे थम्भ होने के कारण मन्दिरों और थम्भों के बीच की जगह को दरबार कहा गया है।

**ए बन जवेर अर्स के, खूबी कहा कहे जुबान।**

**बीच बैठक चबूतरे, सुख रूहें संग सुभान॥३७॥**

बंगलों के चारों ओर वृक्षों की शोभा है , जिनकी भूमिकायें बंगलों की भूमिकाओं से मिलते हुई आयी हैं। ये वृक्ष परमधाम के नूरमयी जवाहरातों के बने हैं। इनकी अनुपम शोभा का वर्णन भला मेरी यह जिह्वा कैसे कर सकती है। प्रत्येक बंगले के मध्य में चबूतरे आये हैं,

जिनके ऊपर की छत सीधे बंगलों की छठी चाँदनी (मन्दिरों की २५वीं चाँदनी) पर है। मन्दिरों की प्रत्येक भूमिका से चबूतरे पर विराजमान युगल स्वरूप का दर्शन किया जा सकता है। इस प्रकार चबूतरे पर बैठक की अद्भुत शोभा है। यहाँ पर सखियाँ अपने प्रियतम श्री राज के साथ बैठकर प्रेममयी लीला का सुख लेती हैं।

**चारों तरफों नेहेरें चलें, बीच कठेड़े चबूतर।**

**चेहेबच्चे बीच बीच बन, ए सिफत कहूं क्यों कर॥३८॥**

बंगले के चबूतरे की किनार पर कठेड़े की शोभा आयी है। चबूतरे के चारों ओर बगीचों में नहरें बह रही हैं, तथा बीच-बीच में चहबच्चे भी आये हैं। बगीचों में वृक्षों की अद्भुत शोभा हो रही है, जिसका वर्णन मेरे से नहीं हो सकता।

**भावार्थ-** एक बंगले के चारों ओर ४०० मन्दिर के लम्बे-चौड़े १२ बगीचे हैं, जिनमें बेशुमार नहरें, चहबच्चे, व फव्वारे चल रहे हैं। इनमें अनेक प्रकार के फल-फूल के रंग-बिरंगे वृक्ष १-१ मन्दिर की दूरी पर कतारबद्ध रूप से शोभायमान हैं।

**कई मोहोल नेहरें किनारें, कई बन में बिराजत।**

**भांत भांत कई विध के, ए किन विध करूं सिफत॥३९॥**

नहरों के किनारे बहुत से महल आए हैं। इसी प्रकार वन में बहुत सी नहरें एवं अलग-अलग कई प्रकार की आकृति के महल विद्यमान हैं। इनकी त्रिगुणातीत शोभा का वर्णन मैं किस प्रकार करूँ।

**भावार्थ-** ये नहरें १२५ मन्दिर की चौड़ी हैं, जिसमें से २५ मन्दिर की चौड़ाई में मध्य में पानी है तथा दायें-

बायें ५०-५० मन्दिर की चौड़ी पाल है। दोनों पाल के तीन-तीन भाग हैं। मध्य के एक-एक भाग में महल हैं। दायें-बायें के भाग में रौंसों के मध्य फुलवाड़ी है।

**बन मोहोल नेहेरें कहीं, इन जिमी विध कही न जाए।**

**ए अर्स जवेर देख्या चाहे, सो ए बन देखो आए॥४०॥**

यद्यपि मैंने पुखराज पर्वत के वनों, महलों, एवं नहरों की शोभा का वर्णन अवश्य किया है, किन्तु इस नश्वर संसार में वहाँ की शोभा का यथार्थ वर्णन कदापि नहीं किया जा सकता। जिन्हें परमधाम के जवाहरातों को देखने की इच्छा हो, उन्हें केवल यहाँ के वनों की शोभा को आत्म-दृष्टि से आकर देख लेना चाहिए अर्थात् परमधाम के सभी वन जवाहरातों के ही हैं।

जैसा पहाड़ तैसी जिमी, और तैसे ही दरखत।

ए मोहोल ऐसे जवेरन के, जुबां क्यों कर करे सिफत॥४१॥

जिस प्रकार पुखराज पहाड़ एक पुखराज के नग में आया है, उसी प्रकार वहाँ की धरती तथा वृक्ष भी नूरमयी जवाहरातों के हैं। वहाँ के महल भी चैतन्य जवाहरातों के हैं। ऐसी स्थिति में भला वहाँ की शोभा का वर्णन मेरी यह जिह्वा कैसे कर सकती है।

ए नूर खूबी इतकी इतहीं, इनका निमूना सोए।

और सब्द तो निकसे, जो और ठौर कोई होए॥४२॥

पुखराज के बंगलों की यह अनुपम शोभा मात्र परमधाम में है। परमधाम के समान यदि कोई और परमधाम होता, तब तो उनकी उपमा भी दी जाती और उनकी शोभा का कुछ वर्णन भी होता, अर्थात् किसी भी स्थिति में



परमधाम की वास्तविक शोभा का वर्णन इस संसार में नहीं हो सकता।

ए दरखत नेहेरें चेहेबच्चे, बीच खेलन ठौर कमाल।

याही विध बड़े पहाड़ लग, सुख रूहें नूरजमाल॥४३॥

परमधाम के इन वृक्षों, नहरों, तथा चहबच्चों के बीच में प्रेममयी लीला के लिये बहुत सुन्दर जगह है। इसी प्रकार की शोभा सम्पूर्ण पुखराज पहाड़ में आयी है, जिसमें अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के साथ लीला करके सखियाँ तरह-तरह के सुख लेती हैं।

पेहेली तरफ का जो बन, बड़े मेहेराव आगूं दरखत।

ए बन मेवे केते कहूं, अर्स अजीम की न्यामत॥४४॥

पुखराज तथा बंगलों के मध्य छज्जों द्वारा २५० भूमिका

ऊँची महाराब बनी है। इसकी गिनती १४ महाराबों में होती है। इनके सामने महावन के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। इस महावन में अनन्त प्रकार के मेवे हैं, जिनका स्वाद विलक्षण है। वस्तुतः ये परमधाम की नेमतें (निधि) हैं।

**जहां लो नजरों देखिए, ए बड़े बिरिख अति विस्तार।**

**मेवे मोहोल छातें बनी, ना कछू पसु पंखी को पार॥४५॥**

पुखराज के चारों ओर जहाँ कहीं भी अपनी दृष्टि दौड़ाते हैं, वहीं पर महावन के बड़े-बड़े वृक्षों का बहुत अधिक विस्तार दिखायी पड़ता है। मेवे के फलों, फूलों, पत्तों, एवं डालियों के महल तथा उनकी छतें बनी हुई हैं। इनमें रहने वाले पशु-पक्षियों की कोई सीमा ही नहीं है।

सोई जिमी उज्जल अति सोभित, ए जो पहाड़ नजीक या दूर।

आकास भरयो रोसनी, कहां लग कहूं ए नूर॥४६॥

पुखराज पहाड़ के निकट या दूर की सम्पूर्ण धरती अत्यधिक उज्ज्वल शोभा से युक्त है। धरती से निकलने वाली अखण्ड ज्योति सम्पूर्ण आकाश में छायी हुई है। इस अनुपम शोभा का मैं कितना वर्णन करूँ।

आकास भरयो खुसबोय सों, वाए तेज खुसबोए।

जित तित सब खुसबोए, बोए चांद सूर दोए॥४७॥

सम्पूर्ण आकाश सुगन्धि से भरा हुआ है। हवा , तेज सभी में दिव्य सुगन्धि व्याप्त है। परमधाम के लीला रूप प्रत्येक पदार्थ में जहाँ कहीं भी देखिए , सुगन्धि ही सुगन्धि भरी हुई है। यहाँ तक कि चन्द्रमा और सूर्य से भी सुगन्धि आती है।

**भावार्थ-** परमधाम के २५ पक्षों का प्रत्येक पदार्थ ब्रह्मरूप है, इसलिये उन सभी में अनन्त सौन्दर्य, कान्ति, आनन्द, सुगन्धि, और अविनाशिता का गुण होना स्वाभाविक है।

पेड़ बोए पात बोए, बोए फल फूल डार।

जल जिमी खुसबोए को, कछू आवे नहीं सुमार॥४८॥

निजधाम के पेड़ों में सुगन्धि का ही साम्राज्य है। उनकी डालियों, पत्तों, फूलों, तथा फलों में सर्वत्र सुगन्धि ही सुगन्धि भरी हुई है। वहाँ की धरती एवं जल में इतनी अधिक सुगन्धि भरी हुई है कि उसकी कोई सीमा ही नहीं है।

जित देखूं तित खुसबोए, पहाड़ जवेर बोए नूर।

रस धात रेजा रेज जो, खुसबोए सबे जहूर॥४९॥

मैं परमधाम में जहाँ कहीं भी देखती हूँ, वहीं पर अनन्त सुगन्धि की क्रीड़ा नजर आती है। चाहे पहाड़ हो या जवाहरात, सभी अनन्त सौन्दर्य एवं सुगन्धि से भरपूर हैं। आनन्द रस से परिपूर्ण सभी पदार्थों, सभी धातुओं, तथा धरती के एक-एक कण में सर्वत्र सुगन्धि ही सुगन्धि फैली हुई है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रयुक्त "रस" शब्द का तात्पर्य षट् रसों [मधुर (मीठा), लवण (नमकीन), तिक्त (तीता), कटु (कड़वा), कषाय (कषैला), अम्ल] एवं नवरसों (हास्य, करुण, शृंगार, संयोग, वियोग, वीभत्स, वीर, शान्त, अद्भुत) से नहीं है, बल्कि प्रत्येक पदार्थ आनन्द रस से ओत-प्रोत है जिसे संक्षिप्त में "रस"

कहकर सम्बोधित किया गया है। परमधाम के प्रत्येक आनन्दमयी पदार्थ में सुगन्धि का होना अनिवार्य है।

कई रेहेत अंदर जानवर, कई विध बोलें बान।

ए खूबी खुसाली हक की, जुदी जुदी कई जुबान॥५०॥

पुखराज पर्वत में अनन्त प्रकार के जानवर रहते हैं, जो अनेक प्रकार की बोलियाँ बोलते हैं। धाम धनी की आनन्दमयी लीला की ये विशेषतायें हैं, जिसमें पशु-पक्षियों की अलग-अलग भाषायें आनन्द का प्रकटन करती हैं।

पसु सबे खुसबोए सों, खुसबोए सबे जानवर।

तन बंध बंध खुसबोए सों, बोए बाल पर पर॥५१॥

परमधाम के सभी पशु-पक्षियों में अपार सुगन्धि भरी

हुई है। उनके शरीर के सभी अंगों के जोड़ में सुगन्धि ही सुगन्धि भरी हुई है। यहाँ तक कि उनके बालों व पंखों में भी सुगन्धि भरी हुई है।

**भावार्थ-** "पशु" शब्द संस्कृत और हिन्दी का है तथा "जानवर" शब्द फारसी का है। दोनों का भाव एक ही है। श्रीमुखवाणी में इस प्रकार की स्थिति कई जगहों पर देखने को मिलती है, जैसे- प्रेम-इश्क, आशा-उम्मेद इत्यादि।

**वस्तर भूखन रूहन के, ताकी क्यों कहूं खुसबोए।**

**इन खूबी खुसबोए को, सब्द न पोहोंचे कोए॥५२॥**

सखियों के वस्त्रों एवं आभूषणों में जो अलौकिक सुगन्धि है, उसका मैं कैसे वर्णन करूँ। इस संसार की किसी भी भाषा में ऐसे शब्द नहीं हैं, जिनके द्वारा सखियों के वस्त्रों

तथा आभूषणों की शोभा और सुगन्धि का वास्तविक वर्णन हो सके।

हकीकत तले पहाड़ की, ए जो नेक कही जुगत।

ए विस्तार इत बोहोत है, जुबां कर न सके सिफत॥५३॥

पुखराजी ताल के नीचे स्थित बंगलों की शोभा-संरचना का मैंने बहुत ही थोड़ा सा (नाम-मात्र) वर्णन किया है। इनका विस्तार तो इतना अधिक है कि मेरी जिह्वा उनका यथार्थ वर्णन संसार में कभी भी नहीं कर सकती।

जिन जानों रूहन को, अर्स में सेवक नाहें।

हुकमें काम करावत, जो आवत दिल माहें॥५४॥

ऐसा नहीं समझना चाहिए कि परमधाम में सखियों के सेवक नहीं हैं। उनके दिल में जो भी इच्छा होती है, वह



हुक्म से उसी पल पूर्ण हो जाती है।

**एक एक मोमिन के, अलेखे सेवक।**

**बड़ी साहेबी बका मिने, बंदे तिन माफक॥५५॥**

एक-एक ब्रह्मसृष्टि के अनन्त सेवक (सेविकायें) हैं। परमधाम में सखियों का बहुत बड़ा स्वामित्व (साहेबी) है। उसी के अनुकूल उनके सेवक भी हैं।

**भावार्थ-** परमधाम में इस मायावी जगत की भांति स्वामी-सेवक की भावना नहीं है, बल्कि एक अक्षरातीत का हृदय (मारिफत) ही सभी रूपों (हकीकत) में क्रीड़ा कर रहा है। जब परमधाम का कण-कण ही ब्रह्मरूप है, तो ब्रह्मसृष्टियों की सेविकाओं को इस संसार की तरह सत्ता के धरातल पर नहीं देखा जा सकता।

जिस प्रकार, सूर्य से अनन्त किरणें निकलती हैं

और वे उसी का स्वरूप होती हैं, उसी प्रकार खूब खुशालियाँ या सेविकायें (बाँदियाँ) सखियों की हृदय स्वरूपा हैं। यदि हम सखियों को श्री राज जी का तन या उनके हृदय की अंगरूपा मानते हैं, तो सखियों की अंगरूपा या श्री राज जी की अंगरूपा मानने में कोई अन्तर नहीं है। खूब खुशाली का अर्थ ही होता है , अत्यधिक आनन्दमयी।

परमधाम में प्रत्येक स्वरूप अपने से दूसरे को अनन्त गुना प्रेम करता है और उसे प्रत्येक रूप में रिझाता है। इसे ही सांसारिक भावों में "सेवा" शब्द से सम्बोधित कर सकते हैं। क्या महाभारत के युद्ध में अर्जुन का सारथी बनने के कारण श्री कृष्ण जी की महत्ता घट गयी। इसी प्रकार युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में याज्ञिक ब्राह्मणों के चरण धोने या जूठी पत्तलें उठाने के

कारण भी श्री कृष्ण जी की महिमा घटी नहीं, बल्कि बढ़ी ही है। यह महान कार्य दुर्योधन या शकुनि जैसे अहंकारियों से स्वप्न में भी हो पाना सम्भव नहीं था।

प्रेम की पहली कक्षा ही सर्वस्व समर्पण है। यदि परमधाम में सखियाँ युगल स्वरूप को रिझाने के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर सकती हैं, तो स्वयं को इश्क का सागर या आशिक कहने वाले अक्षरातीत सखियों को रिझाने के लिये क्या नहीं कर सकते।

श्रीमुखवाणी में स्पष्ट कहा गया है—

ना अर्स जिमिएं दूसरा, कोई और धरावे नाहिं।

ए लिख्या वेद कतेब में, कोई नाहीं खुदा बिन काहिं॥

खुलासा १६/८३

और खिलौने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।

एक जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए इसदाए॥

खुलासा १६/८४

स्वलीला अद्वैत परमधाम में जब श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व ही नहीं है , तो सांसारिक भावों में बहकर वहाँ पर दास –दासियों की कल्पना नहीं की जा सकती। संक्षेप में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि पशु-पक्षियों, खूब-खुशालियों, या जवाहरातों की पुतलियों (बाँदियों) के रूप में स्वयं श्री राज जी का हृदय ही किसी न किसी रूप में लीला कर रहा है। यही तो उस प्राणेश्वर अक्षरातीत (आशिक) का प्रेम है, जिसे परमधाम में कोई समझ नहीं सकी थी और अपने प्रेम को बड़ा कहती थी।

पुतलियां जवेरन की, सोभा सुन्दरता अत।

कहूँ केती सेवा बंदगी, सब अग्या सों करत॥५६॥

सखियों की सेवा में प्रयुक्त होने वाली जवाहरातों की पुतलियों की शोभा और सुन्दरता अनन्त है। उनकी सखियों के प्रति सेवा और श्रद्धा (बन्दगी) में इतनी निष्ठा है कि मैं उसका कहाँ तक वर्णन करूँ। वे सखियों की आज्ञा से पल भर में ही सारे कार्य कर लेती हैं।

**या बिध सब जानवर, और केते कहूँ पसुअन।**

**सब विध करें बंदगी, जैसा सोभित जिन॥५७॥**

इसी प्रकार सभी जानवर एवं पक्षी भी अँगनाओं की सेवा करते हैं। उनकी सेवा भावना के विषय में मैं कितना कहूँ। जिस पशु-पक्षी को जैसा शोभित होता है, उसके अनुसार वह हर प्रकार से सखियों की सेवा-भक्ति करता है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रयुक्त बन्दगी का तात्पर्य संसार

वाली बन्दगी (भक्ति) नहीं है, बल्कि सच्चे समर्पण, सेवा, एवं श्रद्धा के साथ अपने प्रेमास्पद (माशूक) को आनन्दित करने के प्रयास से है। यद्यपि वहाँ प्रेम या आनन्द की न्यूनता अथवा अधिकता नहीं है, किन्तु लीला रूप में ऐसा ही कहा जाता है। इस चौपाई के चौथे चरण का भाव यह है कि सभी पशु-पक्षी अपनी जातिगत विशिष्टताओं के अनुसार सखियों को रिझाते हैं, जैसे- बन्दरों का वनों से शाक और फल-फूल लाना, मोर और कोयल का गाना, तथा भालू आदि का नृत्य करना।

**हुकमें होवे सब बंदगी, आगूं इन रुहन।**

**हँसे खेलें नाचें गाएँ, कई विध करें रोसन॥५८॥**

ब्रह्मसृष्टियों के हृदय की इच्छा मात्र (हुक्म) से ही उनकी सम्पूर्ण सेवा-भक्ति होती है। सभी पशु-पक्षी

सखियों को रिझाने के लिये हँसते हैं, तरह तरह से खेलते हैं, नाचते हैं, एवं गाते हैं। इस प्रकार वे अनेक क्रियाओं द्वारा ब्रह्मात्माओं को रिझाते हैं।

**पसु पंखी जवेरन के, अति सोभा अर्स में लेत।**

**सब सेवा करें रूहन की, इत ए काम कर देत॥५९॥**

परमधाम में जवाहरातों के जो पशु-पक्षी हैं, वे बहुत सुन्दर शोभा को धारण किये हुए हैं। वे सखियों की पूरी सेवा करते हैं तथा पल भर में ही उनके सारे कार्य कर देते हैं।

**कई पुतलियां जवेरन की, खड़ियां तले इजन।**

**हजार दौड़े एक हुकमें, आगूं इन रूहन॥६०॥**

जवाहरातों की बनी हुई पुतलियाँ सखियों के आदेश से

उनकी सेवा के लिये एक पाँव पर खड़ी रहती हैं। वे सखियों के मात्र एक आदेश पर हजारों की संख्या में सेवा के लिये दौड़ती हैं।

**हर रूहों आगूं दौड़हीं, कई खूबी लेत खुसाल।**

**रात दिन कबूं न काहिली, रहें हमेसा बीच हाल॥६१॥**

जवाहरातों की ये पुतलियाँ सेवा के लिये प्रत्येक ब्रह्मसृष्टि के आगे दौड़ती हैं और कई प्रकार के विशेष आनन्द को प्राप्त करती हैं अर्थात् बहुत आनन्दित होती हैं। वे दिन-रात हमेशा सखियों की सेवा में ही मग्न रहती हैं और इसमें कभी भी सुस्ती (आलस्य) नहीं दिखातीं।

**बंदियां खूब-खुसालियां, जाए फिरें ज्यों मन।**

**काम कर दसों दिस, आए खड़ियां वाही खिन॥६२॥**



खूब खुशालियाँ सखियों की सेवा में रहती हैं। ये मन की गति से आती-जाती हैं। दशों दिशाओं में ये सखियों की सेवा के लिये जाती हैं और काम करके उसी क्षण उनके सामने उपस्थित हो जाती हैं।

**भावार्थ-** खूब खुशाली का अर्थ होता है - अत्यधिक आनन्दमयी। इनकी शोभा-सुन्दरता सखियों के ही समान है। इन्हें मात्र लीला रूप में ही सेविकायें कहा गया है।

**ए दौड़ें रूहों के मन ज्यों, खड़ियां हुकम बरदार।**

**एक रूह मनमें चितवे, वह जी जी करें हजार॥६३॥**

खूब खुशालियाँ सखियों के आदेशों का तत्क्षण पालन करने वाली हैं। ब्रह्मसृष्टियों के मन की गति से उनके आदेशों पर दौड़ती हैं। यदि कोई ब्रह्मांगना अपने दिल में

केवल इच्छा भर करती है, तो खूब खुशालियाँ आदेश सुनने के लिये हजार बार जी-जी कहने लगती हैं।

मुख केहेने की हाजत ना पड़े, जो उपजे रूहों के दिल।  
सो काम कर ल्यावें खिन में, ऐसा इनों का बल॥६४॥  
ब्रह्माँगनाओं के दिल में जो कुछ भी भाव उत्पन्न होता है, उसे वे अपने मुख से कहें, इसके पहले ही खूब खुशालियाँ क्षण भर में सारा काम कर डालती हैं। इनकी ऐसी अलौकिक शक्ति है।

सरूप रूहों के मनके, जो कछुए मन चाहें।  
ऊपर तले माहें बाहेर, एक पल में काम कर आएँ॥६५॥  
ये खूब खुशालियाँ सखियों की मन स्वरूपा हैं। अँगनायें अपने मन में जो कुछ भी इच्छा करती हैं, उसे ये एक

पल में ही पूरा कर देती हैं, चाहें वह कार्य पच्चीस पक्षों में ऊपर-नीचे या अन्दर-बाहर कहीं भी क्यों न हो।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित अन्दर-बाहर का तात्पर्य २५ पक्षों में से किसी भी पक्ष विशेष के अन्दर-बाहर से है, परमधाम के बाहर से नहीं। परमधाम अनन्त है, इसलिये उसके बाहर की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

**कई ले खड़ियां रुमाल, कई ले खड़ियां पान डब्बे।**

**बंदियां बारे हजार की, आगूं अलेखे॥६६॥**

एक-एक सखी की सेवा में अनेक खूब खुशालियाँ होती हैं। कोई उनके लिये रुमाल लेकर खड़ी होती है, तो कोई पान के डिब्बे। इस प्रकार, १२००० सखियों की सेवा में अनन्त खूब खुशालियाँ हैं, जिनका वर्णन हो पाना सम्भव

नहीं है।

**भावार्थ-** रुमाल और पान के डिब्बे का कथन लौकिक भावों के अनुसार किया गया है, क्योंकि "अर्स बका बरनन किया, ले मसाला इत का।"

कई वस्तां आगूं ले खड़ियां, वस्तर भूखन कई साज।  
 ए साहेबी अर्स अजीम की, ए नहीं ख्वाब के राज॥६७॥  
 ये खूब खुशालियाँ सखियों के सामने श्रृंगार के लिये बहुत से वस्त्र-आभूषण और अन्य कई वस्तुएँ लेकर प्रस्तुत रहती हैं। जैसा इनका स्वामित्व परमधाम में है, वैसा तो इस नश्वर संसार में कल्पना में भी नहीं आ सकता।

**भावार्थ-** यद्यपि परमधाम में इच्छा मात्र से सब कुछ पल भर में ही प्राप्त हो सकता है और सेविकाओं की कोई

आवश्यकता भी नहीं है, फिर भी लीला रूप में प्रेम के प्रकटीकरण में ऐसा होता है।

ए खूबी इन अर्स की, क्यों कहूं इन जुबान।

कायम सुख साहेबी, ए होए रूहों बीच बयान॥६८॥

परमधाम की यह अद्वितीय विशेषता है, जिसे मैं इस जिह्वा से कैसे कहूँ। वहाँ के अखण्ड सुख और स्वामित्व को तो ब्रह्मसृष्टियों के बीच में मात्र वहाँ (परमधाम में) ही कहा जा सकता है।

ए बातें केती कहूं, अर्स के जो सुख।

साहेबी इन रूहन की, इत बरनन याही मुख॥६९॥

स्वलीला अद्वैत निजधाम के अनन्त सुखों की इन बातों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। सखियों का परमधाम में जो

स्वामित्व है, उसे नश्वर संसार में इस मुख से कह पाना कदापि सम्भव नहीं है।

जो जवेर बंदे रूहन के, देखो तिन को बल।

जानत हो इन विध को, देखियो अपनी अकल॥७०॥

हे साथ जी! जवाहरातों की पुतलियाँ, जो सखियों की सेविकायें हैं, उनकी शक्ति को देखिये। क्या आप उनकी अलौकिक शक्ति के विषय में जानते हैं? इस विषय में आप अपनी बुद्धि से विचार कीजिए।

मैं तुमें पूछों मोमिनों, जो तुम हो अर्स के।

तुम अपनी रूहसों विचार के, जवाब दयो मुझे ए॥७१॥

हे साथ जी! मैं आपसे एक प्रश्न पूछती हूँ। यदि आप परमधाम की ब्रह्मसृष्टि हैं, तो आप अपनी अन्तरात्मा से

विचार करके इसका उत्तर दीजिए।

**उड़त पर के वाउसे, कोट ब्रह्मांड देवे उड़ाए।**

**एक छोटी चिड़िया अर्स की, ताकी लड़ाई क्यों कही जाए॥७२॥**

परमधाम की एक छोटी सी चिड़िया में इतनी शक्ति है कि वह अपने पँखों की हवा मात्र से करोड़ों ब्रह्माण्डों को उड़ा सकती है। ऐसी चिड़िया यदि लीला में किसी से लड़ाई करती है, तो उसकी शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है।

**कोट ब्रह्मांड पर के वाउ से, अर्स चिड़िया देवे उड़ाए।**

**तो इन अर्स के फील को, बल देखो चित्त ल्याए॥७३॥**

जब परमधाम की एक चिड़िया अपने पँखों की हवा से करोड़ों ब्रह्माण्डों को उड़ा सकती है, तो वहाँ के एक

हाथी में कितनी शक्ति होगी, आप इसका अपने हृदय में विचार कीजिए।

**खरगोस एक जवेर का, चले रूह के मन सों।**

**बड़ा फील लड़े अर्स का, कहो कौन जीते इनमों॥७४॥**

परमधाम का एक खरगोश जो नूरमयी जवाहरातों का होता है, ब्रह्मसृष्टियों के मन की गति से चलता है। जब वह परमधाम के बहुत बड़े हाथी से लड़ता है, तो आप बताइये कि इन दोनों में कौन जीतेगा?

**भावार्थ—** परमधाम में वहदत (एकत्व) होने के कारण सबकी शोभा, सुन्दरता, एवं शक्ति समान होती है। इस प्रकार, खरगोश के अन्दर भी उतनी ही शक्ति है, जितनी हाथी में। लीला रूप में जब उनकी लड़ाई होगी, तो दोनों ही बराबरी पर छूटेंगे। कम या अधिक शब्द परमधाम में



प्रयुक्त नहीं होते।

रूहों दिल चाहे बोलत, दिल चाही सोभा सुन्दर।

दिल चाहे पेहेरे भूखन, दिल चाहे वस्तर॥७५॥

ब्रह्मसृष्टियों के दिल की इच्छानुसार ही वहाँ के पशु-पक्षी मीठी वानी बोलते हैं। उनकी सुन्दर शोभा भी सखियों के हृदय के अनुसार ही निर्धारित होती है। वे वस्त्र एवं आभूषण भी अँगनाओं की इच्छानुसार ही धारण करते हैं।

करें दिल चाही सब बंदगी, चित चाह्या चलत।

दिल चाहे बल तेज जोत, सब दिल चाही सिफत॥७६॥

ब्रह्मात्माओं के हृदय की इच्छानुसार ही सभी पशु-पक्षी सेवा (भक्ति) करते हैं। चलते भी उनकी इच्छानुसार ही

हैं। सखियों की इच्छानुसार ही उनके शरीर में बल, एवं नूरमयी तेज और ज्योति दृष्टिगोचर होती है। उनके दिल की इच्छानुसार ही वे धनी की महिमा गाते हैं।

**सब वस्तां आगे ले खड़ियां, ज्यों पातसाही लवाजम।**

**आगूं चेतन दिल से, खड़ियां सनमुख एक कदम॥७७॥**

जिस प्रकार, किसी सम्राट (बादशाह) के सामने सेवा की सामग्री लेकर सेवक हमेशा ही तैयार खड़े रहते हैं, उसी प्रकार खूब खुशालियाँ भी सभी सामग्री लेकर सखियों की सेवा में खड़ी रहती हैं। सखियों की हृदय स्वरूपा होने से उनके दिल के भावों से पहले ही अवगत (सावधान, जानकार) हो जाती हैं। इस प्रकार, वे अँगनाओं की सेवा में एक पाँव पर खड़ी रहती हैं।

रूप रंग रस दिल चाहे, दिल चाही चित चितवन।

दिल चाही अकल इंद्रियां, करें दिल चाही रोसन॥७८॥

ब्रह्मात्माओं के दिल की इच्छानुसार ही खूब खुशालियों का रूप-रंग दिखता है तथा उन्हें आनन्द की अनुभूति होती है। सखियों के हृदय के अनुसार ही वे अपने चित्त में धनी को बसाये रखती हैं, अर्थात् एकत्व (वहदत) के कारण सखियों के हृदय में युगल स्वरूप के लिये जैसा प्रेम होता है, वैसा ही प्रेम खूब खुशालियों के हृदय में भी होता है। अँगनाओं के हृदय की इच्छानुसार ही खूब खुशालियों की बुद्धि तथा इन्द्रियाँ लीला में संलग्न होती हैं।

ए जो खूब खुसाली सूरतें, सो सब रूहों के दिल।

ए जो हर रूहों के आगे खड़ी, बांध अपनी मिसल॥७९॥

सभी खूब खुशालियाँ ब्रह्मसृष्टियों की हृदय स्वरूपा हैं। यही कारण है कि वे प्रत्येक ब्रह्मांगना को रिझाने के लिये समूहबद्ध होकर उनके सामने पल-पल खड़ी रहती हैं।

**क्यों कर कहूँ ए साहेबी, ए जो रूहें करत अर्स माहें।**

**हकें कई देखाए ब्रह्मांड, पर कोई पाइए ना निमूना क्याहें॥८०॥**

स्वलीला अद्वैत परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ जिस प्रकार से स्वामित्व (साहबी) का रसपान करती हैं, उसका मैं यथार्थ वर्णन कैसे करूँ। यद्यपि धाम धनी ने ब्रज, रास, एवं जागनी के रूप में हमें कई ब्रह्माण्ड दिखाये हैं, किन्तु किसी में भी परमधाम जैसा स्वामित्व का रस नहीं मिला।

**भावार्थ—** सखियाँ अक्षरातीत श्री राज जी की अंगरूपा (अर्धांगिनी) हैं। इस प्रकार, वे सभी परमधाम में स्वामिनी की शोभा को धारण किये हुए हैं। जिस प्रकार

सखियाँ युगल स्वरूप को रिझाती हैं, उसी प्रकार खूब खुशालियाँ, जवाहरातों की पुतलियाँ, सभी पशु-पक्षी, एवं २५ पक्ष युगल स्वरूप सहित सखियों को रिझाते हैं।

**झूठ आगे सांच के, क्यों आवे सरभर।**

**नाहीं क्यों कहे आगूं है के, लगे ना पटंतर॥८१॥**

अनादि, शाश्वत सत्य परमधाम के समक्ष भला इस झूठे स्वप्नमयी नश्वर संसार की कैसे उपमा दी जा सकती है। दोनों में किसी समानता की बात ही नहीं हो सकती, क्योंकि संसार जहाँ लय हो जाने वाला है, वहीं परमधाम अनादि काल से है तथा अनन्त काल तक रहेगा।

**ए जो दुनियां खेल कबूतर, साहेबी आगूं रूहन।**

**ए खरगोस रूहों के दिल का, लड़े साथ अर्स फीलन॥८२॥**

परमधाम में सखियों का जो स्वामित्व है, उसके सामने तो यह संसार खेल के कबूतर के समान काल्पनिक एवं स्वाप्निक है। परमधाम के एकत्व (वहदत्त) में तो सखियों के हृदय का स्वरूप एक खरगोश भी हाथी के साथ वीरतापूर्वक लड़ता है और हारता नहीं है।

**भावार्थ—** जिस प्रकार, एक जादूगर या सिद्धि-प्राप्त व्यक्ति अपने संकल्प-बल से खेल करने के लिये कबूतर को प्रकट करता है और थोड़ी देर में उसे अदृश्य भी कर देता है, क्योंकि मूलतः कबूतर तो होता ही नहीं बल्कि सिद्धि-बल से दर्शकों के दृष्टिबन्ध होने से ऐसा दिखता है। उसी प्रकार, कबूतर की तरह, मूलतः इस संसार का अस्तित्व नहीं है, किन्तु भासित इसलिये हो रहा है क्योंकि स्वप्न में आदिनारायण का मन इस संसार का अस्तित्व मान रहा है और उसके अंशरूप (चिदाभास

रूप) प्राणी इसमें क्रीड़ा कर रहे हैं। आदिनारायण की नींद टूटते ही संसार का कोई भी अस्तित्व नहीं रहेगा।

ए जो फौज रूहों के दिल की, सो आवत सांच समान।  
 तिन आगे त्रैगुन यों कर, ज्यों चली जात खेल की जहान॥८३॥  
 पशु-पक्षी और खूब-खुशालियों का समूह सखियों के हृदय का ही स्वरूप है। ये हमेशा अखण्ड रहने वाले हैं। इनके समक्ष ब्रह्मा, विष्णु, और शिव आदि त्रिदेव भी उत्पन्न एवं लय होने वाले सांसारिक जीवों के ही समान हैं।

उपजत रूहों के दिल से, राखत ऐसा बल।  
 कई कोट ब्रह्मांड के खावंद, चले जात माहें एक पल॥८४॥  
 ब्रह्मात्माओं के हृदय स्वरूप कहे जाने वाले एक खरगोश

के अन्दर भी इतनी शक्ति होती है कि उसके पल मात्र के संकेत से करोड़ों ब्रह्माण्डों के स्वामी त्रिदेव भी लय को प्राप्त हो जाते हैं।

**भावार्थ-** परमधाम का कण-कण अक्षरातीत का ही स्वरूप है। इसलिये एकत्व (वहदत्त) के सिद्धान्त से एक खरगोश के बल को भी अक्षर ब्रह्म के बल के समान दर्शाया गया है।

ए सुध अर्स में रूहों को नहीं, देखी खेल में बड़ाई रूहन।  
तो खेल हकें देखाइया, ऊपर मेहेर करी मोमिन॥८५॥

परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों को अपनी एवं धनी के स्वामित्व (साहबी) की पहचान नहीं थी। यही कारण है कि धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों के ऊपर अति कृपा (मेहर) करके यह माया का झूठा खेल दिखाया है। तारतम वाणी के



प्रकाश में ही सुन्दरसाथ (ब्रह्मसृष्टियों) ने इस मायावी जगत में अपनी महिमा, अर्थात् परमधाम के अपने स्वामित्व, का अनुभव किया है।

**नजरों होत अछर के, कोट चले जात माहें खिन।**

**मैं सुन्या मुख धनी के, खेल पैदा फना रात दिन॥८६॥**

अक्षर ब्रह्म की दृष्टि मात्र में करोड़ों ब्रह्माण्ड एक पल में पैदा होते हैं और लय को प्राप्त हो जाते हैं। दिन-रात वाली इस सृष्टि की उत्पत्ति तथा लय के सम्बन्ध में मैंने धाम धनी के मुख से सुन रखा था।

**भावार्थ-** अक्षर ब्रह्म के मन (अव्याकृत) की जाग्रत अवस्था में यह सृष्टि नहीं बनती है अन्यथा इसका लय ही नहीं होता। परमधाम में विराजमान मूल अक्षर ब्रह्म सृष्टि की उत्पत्ति-लय का मात्र संकल्प करते हैं, जिसे

इस चौपाई में "नजरो" शब्द से सम्बोधित किया गया है।  
ब्राह्मी दिन में सृष्टि का अस्तित्व रहता है तथा ब्राह्मी रात्रि  
में महाप्रलय। इसे ही इस चौपाई में रात-दिन कहा गया  
है।

एक इन वचन का बसबसा, तबका रहेता था मेरे मन।

लखमीजी का गुजरान, होत है विध किन॥८७॥

पहले मेरे मन में इस बात का संशय रहा करता था कि  
उस प्रेम के धाम परमधाम में अक्षर ब्रह्म की अर्धांगिनी  
महालक्ष्मी का गुजारा (निर्वाह) कैसे होता है, क्योंकि  
अक्षर ब्रह्म तो सत्ता के स्वरूप हैं।

खेल दुनियां अर्स खेलौने, करें बाल चरित्र भगवान।

या खेल या बिन साहेबी, होए लखमीजी क्यों गुजरान॥८८॥

यह मायावी जगत परमधाम के समक्ष एक झूठे खिलौने के समान है। अक्षर ब्रह्म बाल क्रीड़ा की तरह सृष्टि की उत्पत्ति-लय की लीला किया करते हैं। जब लक्ष्मी जी इस मायावी खेल में भी भाग नहीं लेतीं और सखियों जैसा प्रेम का स्वामित्व भी नहीं रखतीं, तो परमधाम में वह क्या करती हैं? उनकी क्या लीला है?

**विशेष-** प्रेम का स्वामित्व न रखने का तात्पर्य प्रेम की लीला में भाग न लेने से है। संशय का कारण यह था कि सत्ता के स्वरूप अक्षर ब्रह्म तो प्रेममयी लीला कर नहीं सकते, तो ऐसी स्थिति में महालक्ष्मी क्या करती होंगी?

सो संसे मेरा मिट गया, हक इलमें किए बेसक।

दिलमें संसे क्यों रहे, जित हकें अपनी करी बैठक॥८९॥

धाम धनी के तारतम ज्ञान ने इस सम्बन्ध में मुझे पूर्ण

रूप से संशयरहित कर दिया है। अब मेरे मन में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहा, तो परम सत्य (मारिफत) की गुह्यतम बातें इनके धाम-हृदय में क्यों नहीं प्रकाशित होंगी।

**अर्स कहा दिल मोमिन, दिया अपना इलम सहूर।**

**सक ना खिलवत निसबत, ताए काहे न होवे जहूर॥९०॥**

ब्रह्मसृष्टियों का दिल (हृदय) ही धाम कहलाता है। श्री राज जी ने अपना तारतम ज्ञान और विवेक भी इन्हें दिया है। जब इन्हें खिल्वत और निस्बत (मूल सम्बन्ध) के विषय में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहा, तो परम सत्य (मारिफत) की गुह्यतम बातें इनके धाम हृदय में क्यों नहीं प्रकाशित होंगी।

जैसी साहेबी रूहन की, विध लखमीजी भी इन।

वाहेदत में ना तफावत, पर ए जानें रूहें अर्स तन॥९१॥

परमधाम में जैसा स्वामित्व सखियों का है, वैसा ही महालक्ष्मीजी का भी है, क्योंकि वहदत (एकत्व) में किसी भी प्रकार का भेदभाव (अन्तर) नहीं होता, किन्तु इस रहस्य को मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं जिनके मूल तन मूल मिलावा में विद्यमान होते हैं।

**भावार्थ-** श्री राज श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, तथा महालक्ष्मी का स्वरूप मिलकर एक स्वलीला अद्वैत स्वरूप कहलाता है। इनमें तत्त्वतः कोई भी भेद नहीं होता है। मात्र लीला में ही बाह्य रूप से भेद होता है। इसलिये श्री राज जी के प्रेम का जो सुख श्यामा जी सहित सखियों को प्राप्त होता है, वही सुख महालक्ष्मी को भी प्राप्त होता है।

ए बातें बका अर्स की, बिना रूहें न जाने कोए।

ए बातें खुदाए की, और तो जाने जो दूसरा होए॥९२॥

ये अलौकिक बातें अखण्ड परमधाम की हैं, जिन्हें ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता। अक्षरातीत के हृदय की बातों को भला अँगनाओं के अतिरिक्त और दूसरा कौन जान सकता है। दूसरा कोई तो तभी जानेगा, जब वह स्वयं परमधाम में रहता हो।

निपट बड़े सुख अर्स के, इत आवत नहीं जुबांए।

देख माया निमूना झूठ का, याकी बातें करसी अर्स माहें॥९३॥

निश्चित रूप से परमधाम के सुख अनन्त हैं। इस झूठे संसार में इस जिह्वा से उनका वर्णन नहीं हो सकता। तारतम वाणी द्वारा मायावी जगत की झूठी उपमाओं द्वारा हम परमधाम को अवश्य जान रहे हैं, किन्तु इसकी

वास्तविक बातें तो हम परमधाम में जाग्रत होने पर ही करेंगे।

महामत कहे हुकमें इलम, जो हक सिखावें कर हेत।

सो केहेवे आगूं अर्स तन के, अपने दिल अर्स में लेत॥९४॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! यह सम्पूर्ण ज्ञान मैं धाम धनी के आदेश से ही कह रही हूँ। यदि आपको धाम धनी बहुत प्यार करके यह अनमोल ज्ञान दें, तो आप उसे अपने धाम-हृदय में धारण करें और उन ब्रह्मसृष्टियों से अवश्य कहें जिनकी परात्म मूल मिलावा में विराजमान है।

प्रकरण ॥९४॥ चौपाई ॥९२८॥

## जमुनाजी का मूलकुंड कठेड़ा चबूतरा

### ढांपी खुली सात घाट

इस प्रकरण में यह दर्शाया गया है कि यमुना जी का जल किस प्रकार पुखराज से प्रकट होकर सातों घाटों में प्रवाहित होता है।

**किनारे मोहोल जोए के, तुम मिल देखो मोमिन।**

**पाउ पलक न छोड़िए, अपना एही जीवन॥१॥**

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! श्री यमुना जी के किनारे स्थित महलों की अनुपम शोभा को आप सभी मिलकर देखिए और इसे चौथाई पल के लिये भी अपनी आत्मिक दृष्टि से अलग न होने दीजिए क्योंकि अपना वास्तविक जीवन यही है।

**भावार्थ—** इस चौपाई में चितवनि के लिये स्पष्ट रूप से



निर्देश दिया गया है। प्रेममयी चितवनि के बिना तो आत्म-जाग्रति या आध्यात्मिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

**अब जल तले जो आइया, उतर कुंड से जे।**

**केताक फैल्या तले दरखतों, और निकसी नेहेर बड़ी ए॥२॥**

अधबीच के कुण्ड से उतरकर जल तलहटी में पहुँचता है। उसमें से कुछ पानी तलहटी के वृक्षों में जाता है। शेष पानी पूर्व दिशा की बड़ी नहर से होकर ढँपे चबूतरे की तरफ जाता है।

**जोए जमुना का जल जो, पहाड़ से निकसत।**

**सो पोहोंच्या तले चबूतरे, ए बैठक अति सोभित॥३॥**

यमुना जी का जो जल पुखराज पर्वत से निकलता है,

वह अधबीच के कुण्ड की तरहटी से निकलकर ढँपे चबूतरे के नीचे तरहटी में पहुँचता है। यहाँ ढँपे चबूतरे पर बहुत ही सुन्दर बैठक सुशोभित हो रही है।

**तीनों तरफों कठेड़ा, ऊपर छाया दरखत।**

**सो छाया मोहोलों पर छई, ए रूहें लेवे लज्जत॥४॥**

ढँपे चबूतरे के तीन ओर सीढ़ियों की जगह को छोड़कर कठेड़ा आया हुआ है (चौथी तरफ अधबीच के कुण्ड का चबूतरा है)। पुखराजी रौंस पर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों की डालियों ने सम्पूर्ण चबूतरे पर अपनी मनोरम छाया प्रदान की है, जिससे इस बैठक की शोभा महल के समान प्रतीत हो रही है। इसको आत्मिक दृष्टि से देखकर ब्रह्मात्मायें आनन्द लेती हैं।

जोए जमुना के मूल में, उतर जल चबूतर।

और कुंड एक इत बन्यो, जहां से जल चल्या उतर॥५॥

ढँपे चबूतरे की तलहटी से पानी निकलकर दूसरे कुण्ड में आता है। यमुना जी यहीं से प्रकट होती हैं, इसलिये इसे मूल कुण्ड कहते हैं।

इत भी चारों तरफों बैठक, सोभा लेत अति सोए।

तीनों तरफों कठेड़ा, जल उज्जल खुसबोए॥६॥

मूल कुण्ड के चारों ओर बैठक बनी है, जिसमें सिंहासन और कुर्सियों आदि की अपार शोभा हो रही है। इसकी तीन ओर कठेड़ा आया है (चौथी तरफ ढँपो चबूतरा है)। इसका जल दूध से भी अधिक उज्ज्वल तथा सुगन्धि से युक्त है।

जुदे जुदे रंगों जवेर ज्यों, कहा कहूं झलकार।

ए कुंड कठेड़ा चबूतरा, सिफत न आवे सुमार॥७॥

कुण्ड, कठेड़े, व चबूतरे से अलग-अलग रंगों की किरणें निकल रही हैं, जो जवाहरातों की तरह झलकार कर रही हैं। उसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। इनकी शोभा को शब्दों की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता।

अब कुंड से पुल आगूं चल्या, ढाँपिल दोऊ किनार।

दोऊ तरफों बैठकें, थंभ चले दोऊ हार॥८॥

मूल कुण्ड से मरोड़ तक यमुना जी के दोनों ओर पाल पर थम्भों की २-२ हारें सुशोभित हो रही हैं। इनमें बैठक के लिये गिलम पर सिंहासन तथा कुर्सियाँ विद्यमान हैं। इनकी छत पर दोनों ओर १०-१० देहुरियाँ हैं। इन थम्भों पर आधी दूरी तक यमुना जी के ऊपर भी

छत आयी है, जिन पर ५ देहुरियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। यमुना जी के ऊपर जो छत है, वह पुल के समान सुशोभित हो रही है। इस पुल के नीचे से यमुना जी बहती हैं।

**बड़े दरखत कुंड लों, ऊपर छाया सीतल।**

**अब दरखत मोहोलों माफक, दोऊ तरफों बीच जल॥९॥**

बड़ोवन के रंग-बिरंगे वृक्षों की डालियाँ मूल कुण्ड के जल चबूतरे तक शीतल छाया प्रदान कर रही हैं। मूल कुण्ड के पूर्व में (आगे) बड़ोवन के वृक्ष, पाल पर आये हुए महलों (ढँपी-खुली यमुना जी) के अनुसार आये हैं। ढँपी यमुना जी में यमुना जी के ऊपर आयी छत व देहुरी को भी वृक्षों ने पूर्ण रूप से ढका है व खुली यमुना जी के दोनों तरफ से बड़ोवन के वृक्षों ने यमुना जी के जल

चबूतरे तक छाया की है।

इत दोऊ तरफों कठेड़ा, ऊपर सोभित जल निरमल।

जहां लग जल ढांप्या चल्या, जुबां कहा कहे इन अकल॥१०॥

यमुना जी के दोनों तरफ की पाल के दोनों किनारे पर  
थम्भों के मध्य सीढ़ियों की जगह छोड़कर बाकी जगह में  
कठेड़ा शोभायमान हो रहा है। यहाँ से दूध से भी उज्ज्वल  
श्री यमुना जी का जल तीव्र गति से बहता हुआ दिखायी  
दे रहा है। इस प्रकार दोनों पालों पर सुन्दर बैठकें आयी  
हैं। आगे मरोड़ तक की आधी दूरी तक यमुना जी पर भी  
छत है, जिसे ढँपी यमुना जी कहते हैं। इसके ऊपर ५  
देहुरियाँ हैं। मेरी जिह्वा इस बुद्धि से उस शोभा का वर्णन  
भला कैसे कर सकती है।

दोऊ तरफों दोए चबूतरे, दोऊ तरफ कठेड़े दोए।

बीच थंभ लगते चले, सोभा लेत अति सोए॥११॥

मूल कुण्ड के पूर्व में यमुना जी के दोनों ओर (जल रौंस की बाहरी तरफ) दो कमर भर ऊँचे चबूतरे (पाल) हैं, जिनके दोनों किनारों पर थम्भों की २ – २ हारें आयी हैं। थम्भों के मध्य में कठेड़े बहुत अधिक सुशोभित हो रहे हैं।

ऊपर दयोहरियां झलकत, जवेर अति सुन्दर।

ए खूबी कही न जावहीं, जल खलकत चल्या अंदर॥१२॥

दोनों पालों के इन थम्भों की छत पर जवाहरातों की अति सुन्दर देहुरियाँ झलकार कर रही हैं। दोनों पालों पर मरोड़ तक १० – १० देहुरियाँ हैं। ढँपी यमुना जी पर ५ देहुरियाँ हैं, जिनके नीचे (अन्दर) से यमुना जी का जल

खलखलाने जैसी मधुर ध्वनि करते हुए प्रवाहित हो रहा है। इस शोभा का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

कई विध विध के कलस कई, कई किनारे कई जिनस।

झलकार न माए आकास, कई कटाव कई नकस॥१३॥

इन २५ देहुरियों व पाल की दहलानों की छत की किनार पर कई प्रकार के कलशों, कँगूरों, तथा काँगरियों की शोभा दिखायी दे रही है। इनके ऊपर तरह-तरह के बेल-बूटे एवं चित्रकारी की शोभा है। इनकी अनुपम झलकार आकाश में समा नहीं पा रही है।

बड़ी रूह रूहें सामिल, हक बैठत इन ठौर।

ए खूबी कहूँ मैं किन जुबां, इतथें जिनस चली और॥१४॥

जब सखियों के साथ युगल स्वरूप ढँपी यमुना जी के



दायें-बायें पाल की दहलानों में विराजमान होते हैं , तो उस समय की अद्वितीय शोभा का मैं किस मुख से वर्णन करूँ। यहाँ से बाहरी तरफ सुन्दर वृक्षों की शोभा है तथा भीतरी तरफ यमुना जी की शोभा दृष्टिगोचर होती है। इसके आगे (पूर्व की ओर) थोड़ी अलग तरह की शोभा है, अर्थात् यमुना जी के ऊपर छत नहीं आई है।

**चार थंभ हारें चलीं, ऊपर ढांपिल तरफ दोए।**

**यों चल आई दूर लों, ए जल जमुना जोए॥१५॥**

खुली यमुना जी के भी दायें-बायें पालों पर थम्भों की कुल ४ हारें (२-२ हारें दोनों पालों पर ) विद्यमान हैं, जिनकी छत पालों पर तो है किन्तु यमुना जी पर नहीं है। ऐसी शोभा यमुना जी के मरोड़ तक (११७४०० कोस) है।

दोऊ किनारों बैठक, बन गेहेरा गिरदवाए।

अति सोभा इन जोए की, इन जुबां कही न जाए॥१६॥

यमुना जी के दोनों किनारें पालों पर अति सुन्दर बैठकें हैं। इनके बाहरी तरफ घने सुन्दर वन आये हैं तथा भीतरी ओर यमुना जी की अति सुन्दर शोभा है, जिसका वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

दोऊ तरफों जो दयोहरी, कई कंगूरे कलस ऊपर।

इत बैठक अति सुन्दर, चल आए दोऊ चबूतर॥१७॥

पाल के ऊपर दोनों तरफ किनारे पर देहुरियाँ बनी हैं, जिनके ऊपर बहुत से कलश और कँगूरे आये हैं। इस प्रकार, मूल कुण्ड से आगे दोनों पालों (चबूतरों) पर बहुत सुन्दर बैठकों की शोभा दिखायी दे रही है।

ए जल तरफ ताल के, इतथें चल्या मरोर।

एक मोहोल एक चबूतरा, ए सोभा अति जोर॥१८॥

यमुना जी यहाँ से (ढँपी और खुली यमुना जी के बाद) हौज़ कौसर ताल की ओर दक्षिण दिशा में मुड़ जाती हैं। मरोड़ से केल पुल के बीच में यमुना जी के दोनों ओर पाल पर ५-५ महल और ४-४ चबूतरे आये हैं, जिन्हें १ महल और १ चबूतरा कहकर वर्णित किया जाता है। यह शोभा बहुत विलक्षण है।

इन बन की सोभा क्यों कहूं, पेड़ चले आए बराबर।

दोऊ तरफों जुगतें, मोहोल आए ऊपर॥१९॥

पाल की बाहरी ओर पुखराजी रौंस पर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों की अनुपम शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। इनकी दो हारें पुखराज पहाड़ से ही यमुना जी के

दोनों तरफ (पुखराजी रौंस पर) बराबर चली आ रही हैं। इन वृक्षों ने युक्तिपूर्वक १ महल तथा १ चबूतरे की बनावट के ऊपर भी अपनी मनोरम छाया प्रदान की है तथा इनकी डालियाँ यमुना जी के जल चबूतरे तक गयी हैं।

**ए लंबे बन को जाए मिल्या, जमुना भर किनार।**

**इतथें छत्री ले चल्या, जाए पोहोंच्या नूर के पार॥२०॥**

५ महल-४ चबूतरे (मरोड़ से केल पुल तक) के सामने पाल की बाहरी ओर (पश्चिम में) पुखराजी रौंस पर जो बड़ोवन के वृक्ष आये हैं, उनके पश्चिम में महावन की शोभा है। महावन के वृक्षों की डालियाँ मधुवन तथा बड़ोवन से मिली हुई हैं। इस प्रकार, बड़ोवन के वृक्ष मधुवन तथा महावन से परस्पर मिलकर सुन्दर चन्द्रवा

के रूप में एक छत्री सी बनाते हुए पुखराज पर्वत को घेरकर अक्षर धाम के पूर्व तक चले गये हैं।

**दोऊ किनारे सीधी चली, पोहोंची पुल केल घाट।**

**ए मोहोल चौक इतलों, आगूं चल्या ओर ठाट॥२१॥**

श्री यमुना जी के दोनों किनारों की शोभा (जल रौंस, पाल, १ महल-१ चबूतरा, पुखराजी रौंस, बड़ोवन के वृक्षों की दो हारें, वन की रौंस आदि) मरोड़ से लेकर केल पुल तक एक समान रूप से आयी है। शेष शोभा तो आगे तक भी गयी है, किन्तु एक महल और एक चबूतरे की शोभा यहीं तक है। पाल पर आगे दूसरी ही शोभा (बड़ोवन के वृक्ष की) है।

पेहेले बेवरा सातों घाट का, और जोए हौज मिलाए।

पीछे पुल मोहोल हक के, सो फेर नीके देऊं बताए॥२२॥

पहले, सातों घाटों का वर्णन करते हुए, मैं आपको यह बता देती हूँ कि यमुना जी हौज़ कौसर में किस प्रकार मिल जाती हैं। पुनः, धनी की लीला के स्थान दोनों पुल महलों (केल पुल एवं वट पुल) का वर्णन अच्छी तरह से करूँगी।

दोऊ पुल के बीच में, सातों घाट सोभित।

पांच पांच भोम छठी चांदनी, इन मोहोलों की न हो सिफत॥२३॥

दोनों पुलों (वट एवं केल) के मध्य में श्री यमुना जी के दोनों ओर (पाल पर) सात-सात घाट शोभायमान हैं। दोनों पुल महलों की ५-५ भूमिकायें एवं छठी चाँदनी आयी है, जिसकी शोभा का यथार्थ वर्णन हो पाना

कदापि सम्भव नहीं है।

छूटक छूटक दयोहरी, सातों घाटों माहें।

दोऊ किनार जड़ाव ज्यों, क्यों कहूं सोभा जुबांए॥२४॥

श्री यमुना जी के दोनों तरफ सातों घाटों की सन्धि के सामने जल-रौंस पर ६-६ छोटी-छोटी देहुरियाँ आयी है। यमुना जी के दोनों किनारे (जल रौंस) नूरमयी रत्नों से जड़े हुए हैं। मैं इस जिह्वा से उनकी शोभा का कैसे वर्णन करूँ।

इतथें चली ताललों, एक मोहोल एक चबूतर।

दोऊ तरफों ढांपी चली, जोए हौज मिली यों कर॥२५॥

वट पुल के आगे (दक्षिण में) श्री यमुना जी के आग्नेय कोण के मरोड़ तक यमुना जी के दोनों तरफ पाल पर

उसी प्रकार क्रमशः १ महल और १ चबूतरा, कुल पाँच महल और चार चबूतरे आये हैं। मरोड़ से हौज़ कौसर ताल तक यमुना जी के दोनों किनारों पर पाल के ऊपर २-२ थम्भों की हारें आयी हैं, जिनकी छतों पर ९०-९० देहुरियाँ शोभायमान हैं। पाल ढकी हुई है। इस प्रकार की शोभा के साथ श्री यमुना जी हौज़ कौसर ताल में मिलती हैं।

**बन दोऊ किनारे ले चल्या, ऊपर बराबर जल।**

**कोई आगे पीछे दोऊ में नहीं, एक दोरी पात फूल फल॥२६॥**

यमुना जी के दोनों किनारों पर पुखराजी रौंस में बड़ोवन के वृक्षों की दो हारें बराबर चली आ रही हैं, जिनकी डालियाँ दोनों तरफ से यमुना जी के जल चबूतरे तक बराबर छाया प्रदान करती हुई आ रही हैं। दोनों तरफ की



इन डालियों में पत्ते, फल-फूल आदि पंक्तिबद्ध रूप में सीधे चले आ रहे हैं। एक-दूसरे के आमने-सामने हैं, आगे-पीछे जरा भी नहीं।

या विध कुण्ड से ले चली, अति खूबी दोऊ किनार।

जल ऊपर लटकत चली, दोरी बंध दोऊ हार॥२७॥

बड़ोवन के वृक्षों की दो हारें पंक्तिबद्ध रूप से मूल कुण्ड से ही यमुना जी के दोनों तरफ पुखराजी रौंस पर आयी हैं। इनकी डालियाँ भी यमुना जी पर दोनों तरफ से जल चबूतरे तक छाया प्रदान करती हुई प्रारम्भ से चली आ रही हैं।

जो रंग जित सोभा लेवहीं, जित चाहिए फल फूल।

डार पात सब जुगतें, कहा कहे जुबां ए सूल॥२८॥

जहाँ पर जिस रंग की आवश्यकता है, वहाँ पर वहीं रंग सुशोभित हो रहा है। जहाँ पर जैसे फल-फूल की शोभा चाहिए, वहाँ पर वैसे ही फल और फूल दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वृक्षों की डालियाँ और पत्ते युक्तिपूर्वक सुसज्जित दिख रहे हैं। मेरी यह जिह्वा इस मनोहर शोभा का कैसे वर्णन करे।

**दरखत सबे खुसबोए के, खुसबोए जिमी और जल।**

**वाए तेज खुसबोए सों, तो कहा कहूँ पात फूल फल॥२९॥**

सभी वृक्ष सुगन्धि से भरपूर हैं। धरती, जल, वायु, तेज आदि सभी दिव्य सुगन्धि से ओत-प्रोत हैं। ऐसी स्थिति में पत्तों, फलों, तथा फूलों की अनुपम सुगन्धि का मैं कैसे वर्णन करूँ।

जिमी आकास जोत में, तेज जोत जल बन।

नूर दयोहरी किनार दोऊ, अवकास न माए रोसन॥३०॥

परमधाम की धरती और आकाश नूरी ज्योति से भरपूर हैं। जल और वनों में सर्वत्र नूरी तेज और ज्योति दिखायी पड़ रही है। यमुना जी के दोनों किनारों में पाल पर बनी हुई नूरी देहुरियों की आभा इतनी अधिक है कि वह आकाश में समा नहीं पा रही है।

दोरी बंध जल बराबर, दोऊ तरफ चली जो साध।

चल कुंड से मरोर सीधी चली, मरोर हौज मिली आए आध॥३१॥

यमुना जी के जल की चौड़ाई दोनों किनारों में हर जगह एक समान है, अर्थात् यमुना जी का जल बिल्कुल सीधा बहता गया है। यमुना जी मूल कुण्ड से चलकर दक्षिण दिशा में मरोड़ खाती हैं और दक्षिण दिशा में ९ लाख

कोस चलकर पश्चिम में मुड़ती है और हौज़ कौसर में मिल जाती है।

**भावार्थ-** पुखराज पहाड़ से ईशान कोण के मरोड़ तक यमुना जी की लम्बाई साढ़े चार लाख कोस है। इसी प्रकार, आग्नेय कोण के मरोड़ से हौज़ कौसर तक की लम्बाई भी साढ़े चार लाख कोस है, जो ९ लाख कोस (ईशान कोण के मरोड़ से आग्नेय कोण के मरोड़ तक की दूरी) का आधा है। इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "आए आध" का यही आशय है।

**महामत कहे ए मोमिनो, मैं बोलत बुध माफक।**

**ख्वाब मन जुबान सों, क्यों करूं बरनन हक॥३२॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! मैं परमधाम की शब्दातीत शोभा को यहाँ की बुद्धि के अनुकूल ही

कह पा रही हूँ। स्वप्न के मन तथा जिह्वा से भला मैं धनी  
के परमधाम की अखण्ड शोभा को कैसे व्यक्त करूँ।

**प्रकरण ॥१५॥ चौपाई ॥९६०॥**

## पुल मोहोल दोऊ जवेर के

इस प्रकरण में उन महल रूप केल पुल तथा वट पुल की शोभा का वर्णन किया गया है, जो नूरमयी जवाहरातों के बने हुए हैं।

तुम देखो दिल में, अरवाहें जो अर्स।

हक देखावत नजरों, घड़नाले नेहेरें दस॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! आपको प्राणेश्वर अक्षरातीत मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर यमुना जी के दस घड़नालों से प्रवाहित होने वाले दस नहरों की शोभा को दिखा रहे हैं। आपमें जो भी निजधाम की आत्मा है, वह अपने धाम-हृदय में (चितवनि द्वारा) अवश्य देखे।

मेहेर करी मेहेबूब ने, मोहोल देखे ऊपर जोए।

ए सुख कहूं मैं किनको, मोमिन बिना न कोए॥२॥

प्रियतम अक्षरातीत ने मेरे ऊपर अपार मेहर की है, जिससे मैंने यमुना जी के ऊपर बने हुए महल के समान शोभा वाले केल पुल तथा वट पुल को देख लिया है। प्रश्न यह है कि इस दर्शन (दीदार) का सुख मैं किससे कहूँ? ब्रह्मसृष्टियों के बिना तो कोई इसे सुन ही नहीं सकता।

**भावार्थ-** पूर्वोक्त दोनों (१, २) चौपाईयों में ब्रह्मसृष्टि की पहचान बतायी गयी है। परमधाम के ज्ञान एवं चितवनि द्वारा उसके साक्षात्कार की कामना ब्रह्मसृष्टियों में ही होती है। जीव सृष्टि शरियत को छोड़कर हकीकत – मारिफत की राह नहीं अपना पाती।

तले ताक अति सोभित, साम सामी बार।

जल छोड़े ना हद अपनी, निकसत सामी द्वार॥३॥

दोनों पुलों के नीचे आये हुए महाराब रूपी द्वार जो एक-दूसरे के सामने और सीध में आए हैं, बहुत अधिक सुशोभित हो रहे हैं। प्रत्येक घड़नाले का जल अपनी सीमा नहीं छोड़ता और अपने सामने के द्वार (घड़नाले) से ही निकलता है।

**भावार्थ-** दोनों पुलों के नीचे जल की जमीन पर ११ थम्भों की ११ हारें हैं। १० महाराबों (११ थम्भों के मध्य) की ११ हारें (उत्तर से दक्षिण की ओर) १० घड़नालों के रूप में शोभायमान हो रही हैं। केल के पुल के नीचे से १० घड़नालों से १० नहरों के रूप में श्री यमुना जी निकलती हैं। इन १० नहरों का जल वट पुल तक के मार्ग में १० नहरों के ही रूप में रहता है। वट पुल



के १० घड़नाले केल पुल के १० घड़नालों की ही सीध में आये हैं। श्री यमुना जी का १० नहरों के रूप में आता जल अपने ठीक सामने (सीध में) आये वट पुल के १० घड़नालों से ही होकर जाता है।

इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित जल द्वारा अपनी सीमा न छोड़ने का भाव यह है कि सभी घड़नालों का जल यद्यपि मिला हुआ अवश्य दिखता है, किन्तु प्रत्येक घड़नाले से निकली हुई जलराशि नहरों के रूप में अपने सामने वाले घड़नाले में से ही गुजरती है।

**नेहेरें आवत जिन द्वार की, निकसत सामी द्वार।**

**तले मोहोल के आए के, जल चल्या जात है पार॥४॥**

केल पुल के जिस द्वार (घड़नाले) से यमुना जी का जो जल नहरों के रूप में निकलता है, वह जल (नहर) वट

पुल के उसी की सीध में आये हुए घड़नाले से बाहर निकलता है। इस प्रकार, यमुना जी का जल दोनों पुलों (महलों) के नीचे से होकर गुजरता है।

मोहोल पांचों भोम के, सोभित बराबर।

दोऊ तरफों देखत, पुल मोहोल पानी ऊपर॥५॥

दोनों पुलों की ५ भूमिकायें हैं तथा दोनों की शोभा एक-समान दिखायी देती है। जल के ऊपर आये हुए पुल रूपी ये दोनों महल उत्तर व दक्षिण दोनों ही दिशाओं में दिखायी पड़ते हैं।

दोऊ मोहोलों बीच में, पानी तले आए निकसत।

ए मोहोल नूरजमाल के, जुबाँ कहा करे सिफत॥६॥

दोनों पुलों के बीच से होता हुआ पानी पुलों के नीचे से

होकर प्रवाहित होता है। धनी की प्रेममयी क्रीड़ा के स्थान रूप इन पुलों की शोभा का वर्णन भला यह जिह्वा कैसे कर सकती है।

सामी अर्स द्वार के, बीच अमृत बन पाट।

तीन बाएं तीन दाहिने, ए बेवरा सातों घाट॥७॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने, सातों वनों के बीच में अमृत वन है, जिसके सामने श्री यमुना जी पर पाट घाट सुशोभित हो रहा है। अमृत वन के दायें-बायें ३-३ वन हैं। सात घाटों की स्थिति का यह संक्षिप्त विवरण है।

लगता बट घाट के, चारों खूंटों चार हार।

सो चारों तरफों बराबर, दो जल पर दोए किनार॥८॥

वट पुल के सामने वट घाट आया हुआ है। वट के घाट

में पाल और वन की रौंस पर ५०० मन्दिर लम्बे-चौड़े चबूतरे पर वट का एक विशाल वृक्ष आया है। इसके धड़ (तना) के चारों ओर बड़वाइयों के थम्भों की चार हारें आयी हैं। वट पुल की पाँचों भूमिकाओं से चारों ओर समान रूप से छज्जे निकले हुए हैं, जो यमुना जी के दोनों तरफ के वट के वृक्षों की डालियों से मिले हुए हैं। इस प्रकार, वट पुल की दो दिशा (उत्तर, दक्षिण) के छज्जे जल की ओर हैं तथा दो दिशा (पूर्व, पश्चिम) के छज्जे जल रौंस (दोनों किनारों) की तरफ हैं।

**और मोहोल घाट केल के, सो भी जिनस इन।**

**ए दोऊ मोहोल अति सुन्दर, करत साम सामी रोसन॥१॥**

केल घाट के सामने आये हुए केल पुल (महल) की भी शोभा इसी प्रकार की है। अन्तर केवल इतना ही है कि

केल पुल के छज्जे, केल घाट के वृक्षों की पाँचों भूमिकाओं की डालियों से मिले हुए हैं। ये दोनों महल बहुत सुन्दर हैं, और एक-दूसरे के आमने-सामने जगमगाते रहते हैं।

**साम सामी थंभ झरोखे, और सामें बड़े देहेलान।**

**क्यों कहूं सिफत इन जुबां, जोए ऊपर मोहोल सुभान॥१०॥**

यमुना जी के ऊपर धाम धनी की क्रीड़ा-स्थली के रूप में जो ये दोनों पुल (महल) बने हैं, इनके थम्भे, झरोखे, और बड़ी-बड़ी दहलानें एक-दूसरे के आमने-सामने आयी हैं। मैं इनकी शोभा का वर्णन इस जिह्वा से कैसे करूँ।

**भावार्थ-** इस पुल महल में ११ थम्भों की ११ हारें हैं। दूजी भोम से ५० मन्दिर का चौड़ा छज्जा चारों ओर निकला है, जिसकी किनार पर पुनः थम्भों की एक हार

आयी है, जिनके मध्य चारों ओर कठेड़ा शोभायमान है। इस किनारे के भाग को झरोखा कहते हैं तथा बीच के थम्भों वाले भाग को दहलान कहते हैं।

चारों तरफों मोहोल छज्जे, तामें एक तरफ भया नूर।

तरफ दूजी अर्स अजीम, दोऊ तरफों जल जहूर॥११॥

इन दोनों महलों (पुलों) के छज्जे चारों दिशाओं में निकले हुए हैं। पूर्व दिशा में अक्षर धाम की ओर छज्जे निकले हैं, तो पश्चिम में परमधाम की ओर। इसी प्रकार, उत्तर-दक्षिण में यमुना जी के जल की तरफ छज्जे आये हुए हैं।

पांच भोम छठी चांदनी, ए खूबी अति सोभित।

ए हद इन मोहोलन की, जुबां क्या करसी सिफत॥१२॥

इन दोनों महलों की बनावट इस प्रकार की है कि इनकी पाँच भूमिकाएँ एवं छठी चाँदनी (छत) आयी है। यह मनोहारिता इतनी शोभायमान हो रही है कि भला यह जिह्वा इसका क्या वर्णन करेगी।

**सात घाट बीच में लिए, दोए मोहोल दोऊ किनार।**

**पुल पूरे जल ऊपर, ले वार से लग पार॥१३॥**

यमुना जी के दोनों किनारों को जोड़ते हुए दोनों पुल (वट एवं केल) आये हैं। इनके बीच में (यमुना जी के दोनों ओर) सात घाट (केल, लिबोई, अनार, अमृत, जाम्बू, नारंगी, वट) आये हैं। जल के ऊपर आये हुए इन दोनों पुलों के अन्दर होते हुए एक ओर से दूसरी ओर तक जल प्रवाहित होता है।

दोऊ तरफों बिरिख अति सुन्दर, दोऊ तरफों मोहोल सुन्दर।

बीच जोए सातों घाटों, दस नेहेरें चलें अंदर॥१४॥

यमुना जी के दोनों ओर पूर्व तथा पश्चिम में सातों घाटों में बड़ोवन के अति सुन्दर-सुन्दर वृक्ष आये हैं। तो उत्तर और दक्षिण में पुलों के रूप में सुन्दर महलों की शोभा है। इन दोनों महलों के बीच में सात घाटों के सामने यमुना जी १० घड़नालों से होकर १० नहरों के रूप में प्रवाहित होती है।

ए अर्स जिमी के जवेर, ए जवेर मोहोल नूर तिन।

जोत बीच आसमान में, मावत नहीं रोसन॥१५॥

जिन नूरी जवाहरातों के यह महल (पुल) बने हैं, वे जवाहरात अद्वैत परमधाम की भूमिका के हैं। इनकी नूरी ज्योति इतनी अधिक जगमगा रही है कि वह आकाश में



भी समा नहीं पा रही है।

नूर-तजल्ला नूर के, बीच में ए मोहोलात।

ए सुख बका के क्यों कहूं, इन मोहोलों खेलें हक जात॥१६॥

अक्षर धाम तथा अक्षरातीत के रंगमहल के बीच में केल पुल तथा वट पुल की अनुपम शोभा आयी है। इन महलों में युगल स्वरूप के साथ सखियाँ तरह-तरह की प्रेममयी क्रीड़ायेँ करती हैं। अखण्ड परमधाम के इन सुखों को इस मायावी जगत में मैं कैसे व्यक्त करूँ।

हक ए सुख देवें हादी को, और देवें रूहन।

ए सुख अर्स अजीम के, क्यों कहूं जुबां इन॥१७॥

श्री राज जी अनन्य प्रेममयी लीला का अखण्ड सुख श्यामा जी एवं सखियों को देते हैं। परमधाम के इन

अनन्त सुखों को मैं इस झूठे संसार में इस जिह्वा से कैसे बताऊँ।

**महामत कहे ए मोमिनोँ, ए सुख अपने अर्स के।**

**एक पलक छोड़े नहीं, भला चाहे आपको जे॥१८॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! यमुना जी के सातों घाटों एवं दोनों महलों आदि में क्रीड़ा करने के अनन्त सुख परमधाम के हैं। जो भी सुन्दरसाथ इस संसार में अपना भला चाहते हैं, वे एक पल के लिये भी चितवनि द्वारा अपनी आत्मिक दृष्टि से यहाँ की शोभा को अलग न करें।

**भावार्थ—** इस चौपाई में प्रेममयी चितवनि की महत्ता को दृढ़तापूर्वक निर्देशित किया गया है कि जो भी सुन्दरसाथ इस मायावी जगत में अपनी भलाई चाहता है, अर्थात्

माया के विकारों एवं दुखों से दूर रहकर आत्म-जाग्रति और प्रियतम का सुख चाहता है, उसे कभी भी चितवनि से अलग नहीं होना चाहिए।

**प्रकरण ॥१६॥ चौपाई ॥१७८॥**

## पार जोए के वन खूबी

यमुना जी के किनारे पर आये हुए वनों की शोभा।

पार जमुना जो बन, इसी भांत दिल आन।

दोरी बंध बन ले चल्या, डारी सब समान॥१॥

यमुना जी के उस पार (अक्षर धाम की तरफ) भी इसी प्रकार वन सुशोभित हो रहे हैं। जिस प्रकार इस पार (रंगमहल के सामने) सातों वनों के वृक्ष पंक्तिबद्ध रूप से आपस में डालियाँ मिलाते हुए आये हैं, उसी प्रकार उस पार भी आये हैं। उस पार के सातों घाटों के वृक्षों की डालियाँ भी इस पार के समान ही यमुना जी के जल चबूतरे तक छायी हुई हैं।

जहां लग नजरों देखिए, तहां लग एही बन।

जित जमुना तले आए मिली, देखो किनार एही रोसन॥२॥

केल पुल के नीचे, जहाँ से यमुना जी १० नहरों (धाराओं) के रूप में निकलती हैं, वहाँ से वट पुल तक (जहाँ नीचे से यमुना जी निकलती हैं) यमुना जी के दोनों किनारों पर पाल के ऊपर बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें सातों घाट के रूप में शोभायमान हैं। यहाँ से अक्षर धाम की तरफ जहाँ तक अपनी दृष्टि दौड़ाते हैं, इसी प्रकार के वन ही वन दिखायी देते हैं।

दोऊ किनारे बन सोभित, चल्या जल जमुना ले।

रोसनी न माए आकास लों, क्या कहे जुबां नूर ए॥३॥

प्रवाहित होती हुई यमुना जी के दोनों किनारों पर वन सुशोभित हो रहे हैं। इन वनों की ज्योति इतनी अधिक है

कि वह आकाश में भी समा नहीं पा रही है। यहाँ की जिह्वा से इस शोभा का वर्णन नहीं हो सकता।

**चल्या अछर के मोहोल लों, एकल छत्री नूर।**

**जैसा बन इत धाम का, ए भी तैसा ही जहूर॥४॥**

पाल पर आये हुए बड़ोवन (सातों घाटों) के वृक्षों की डालियाँ पुखराजी रौंस पर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों से मिली हैं। इनकी भी डालियाँ सातों वनों के वृक्षों की डालियों से मिली हैं। सातों वनों के वृक्षों की डालियाँ अक्षर धाम के झरोखों से मिली हुई हैं। इस प्रकार सात घाट से अक्षर धाम तक वृक्षों की डालियों एवं पत्तियों ने एक सुन्दर छतरी का रूप धारण कर लिया है। जिस प्रकार यमुना जी के इस पार रंगमहल के सामने वन आये हैं, उसी प्रकार अक्षर धाम के सामने भी आये हैं।

**द्रष्टव्य-** पुखराजी रौंस पर बड़ोवन के वृक्षों की २ हारें दिखायी देती हैं, जबकि पाल के ऊपर बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें आयी हैं। ये वृक्ष जिस वन के सामने आये हैं, उन्हीं के रूप में शोभायमान हो रहे हैं।

**मोहोल के पीछे फिरवल्या, जहां लों पोहोंचे नजर।**

**सब ठौरों एही रोसनी, कहां लों कहूं क्यों कर॥५॥**

बड़ोवन के ये वृक्ष अक्षर धाम के पीछे (पूर्व में) भी घेरकर आये हैं। जहाँ तक दृष्टि पहुँचती है, वहाँ तक इन्हीं की शोभा दिखायी पड़ती है। मैं इनकी शोभा को कहाँ तक कैसे वर्णन करूँ।

**भावार्थ-** शब्दातीत शोभा को शब्द की परिधि में बाँधना असम्भव होता है। "कहां लों कहूं क्यों कर" का यही आशय है।

सुंदर दरवाजा नूर का, रोसन झरोखे गिरदवाए।

नव भोम बिराजत, मोहोल रोसन रहे छिटकाए॥६॥

अक्षर ब्रह्म के रंगमहल का मुख्य द्वार नूरमयी है। इसके चारों ओर आए हुए बाहरी हार मन्दिरों के झरोखे जगमगा रहे हैं। नवों भूमिकाओं के महल अपनी नूरी शोभा से झलकार कर रहे हैं।

इसी भांत है चांदनी, ऐसी कांगरी ऊपर।

इतथें जब देखिए, तब आवत धाम नजर॥७॥

नौ भूमिकाओं के ऊपर आयी हुई चाँदनी (छत, आकाशी) भी बहुत सुन्दर है। चाँदनी में बनी हुई काँगरी बहुत मनोहर है। जब अक्षर धाम की दसवीं आकाशी पर खड़े होकर पश्चिम में देखते हैं, तो सामने अक्षरातीत का रंगमहल दृष्टि में आता है।



दोऊ दरवाजे साम सामी, सोभित दोरी बंध।

नूर नूर-बिलंद की, जुबां कहा कहे ए सनंध॥८॥

अक्षर ब्रह्म तथा अक्षरातीत के रंगमहल, दोनों के मुख्य दरवाजे एक ही सीध में आमने-सामने आये हैं। इस अद्वितीय शोभा का यथार्थ वर्णन मेरी यह जिह्वा नहीं कर सकती।

एकल छाया बन की, जहां लों नजर देखत।

तोलों फेर सब देखिया, सोभा सब में अतंत॥९॥

जहाँ तक दृष्टि जाती हैं, वहाँ तक छतरी के समान वन की समतल छाया ही नजर आती है। मैंने पुनः बार-बार परमधाम की सम्पूर्ण शोभा को देखा, किन्तु यह शोभा सबसे न्यारी है, अनन्त है।

खूबी इन भोम बन की, जानों फेर फेर देखूं धाए।

देख देख के देखिए, तो नजर न काढ़ी जाए॥१०॥

इस भूमिका के वनों की विशेषता (सुन्दरता) यह है कि हमेशा यही इच्छा होती है कि मैं दौड़-दौड़कर बार-बार इनकी अनुपम शोभा को देखा करूँ। चाहे कितना भी इस शोभा को क्यों न देखा जाये, किन्तु इनसे अपनी दृष्टि हटाने की इच्छा ही नहीं होती।

सब एक बन छांहेड़ी, श्री धाम के गिरदवाए।

गिरदवाए जमुना तलाब के, नूर अछर पोहोंचे आए॥११॥

ये वन रंगमहल के चारों ओर एक-समान छाया प्रदान करते हुए यमुना जी, हौज़ कौसर तालाब, एवं पुखराज पहाड़ के भी चारों ओर घूमते हुए अक्षर धाम तक गये हैं। इस प्रकार चारों ओर वन की एक-समान छतरी सी

छाया बन गयी है।

बन नूर के फिरवल्या, एही छाया है तित।

इन जुबां ए बरनन, क्यों कर करूं सिफत॥१२॥

ये वन अक्षर धाम के भी चारों ओर घूमकर आये हैं।  
ऐसी ही मनोहर छाया अक्षर धाम की ओर भी है। वनों  
की इस मनोरम शोभा का वर्णन मैं इस जिह्वा से कैसे  
करूँ।

**भावार्थ-** अक्षर धाम के दक्षिण में जो कुञ्ज-निकुञ्ज वन  
आये हैं, उनके मध्य में भी दो भोम ऊँचे बड़ोवन के वृक्ष  
आये हैं।

अनेक पसु इन बन में, अनेक हैं जानवर।

खेलत बोलत गून्जत, करत चकोसर॥१३॥

इन वनों में तरह-तरह के अनन्त पशु-पक्षी वास करते हैं, जो अनेक प्रकार की मधुर क्रीड़ाएँ करते हैं और मीठी वाणी की गुन्जार करते हुए आनन्दपूर्वक शोर मचाते हैं।

**कई खूबी पशु केसन की, कई खूबी जानवर पर।**

**कई सुन्दर सोभा नकस, ए जुबां कहे क्यों कर॥१४॥**

यहाँ के पशु-पक्षियों के बालों एवं पंखों की सुन्दरता में बहुत सी विशेषताएँ हैं। उनके ऊपर बहुत ही सुन्दर चित्रकारी आयी है। भला इस जिह्वा से उस शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है।

**भावार्थ-** परमधाम के पशु-पक्षियों का एक भी बाल न तो कभी टूटता है और न कभी पुराना होता है। वह बेहद चमकीला, सुन्दर, कोमल, और नूरमयी है।

कई मुख बानी बोलत, अतंत मीठी जुबान।

अति सुंदर हैं सोहने, क्यों कर कीजे बयान॥१५॥

ये पशु-पक्षी अपने सुन्दर मुखों से अनन्त मीठी वाणी बोलते हैं। देखने में ये इतने सुन्दर एवं मनमोहक हैं कि उसका वर्णन ही नहीं हो सकता।

कई खेलत करत लड़ाइयां, कई कूदत कई फांदत।

उड़के कई देखावहीं, कई बानी बोल रिझावत॥१६॥

इन पशु-पक्षियों में से कुछ तो लड़ाइयाँ करते हुए खेलते हैं, तो कुछ कूदते-फाँदते हैं। कुछ पक्षी तरह-तरह से उड़ाने भरकर अपनी कला दिखाते हैं और कुछ बहुत ही मीठी वाणी बोलकर सबको आनन्दित करते हैं।

पसु पंखी सब बन में, घेरों घेर फिरत।

कई तले कई बन पर, कई विध खेल करत॥१७॥

वन में सभी पशु-पक्षी प्रेमपूर्वक चारों ओर निर्द्वन्द्व होकर घूमा करते हैं। कुछ जमीन पर रहते हैं, तो कुछ वृक्षों के ऊपर। इस प्रकार वे तरह-तरह के खेल किया करते हैं।

**भावार्थ-** जमीन पर विचरण करने वाले पशुओं के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे केवल धरती पर ही रहें। वे अपनी इच्छानुसार मन के वेग से कहीं भी (जल, आकाश आदि में) आ-जा सकते हैं। वहाँ पर प्रकृति का कोई भी बन्धन नहीं है। "घोड़े पर राखत हैं, आकास में उड़त" से यही निष्कर्ष निकलता है।

राज स्यामाजी साथ सों, खेलत हैं इन बन।

ए जो ठौर कहे सब तुमको, तुम जिन भूलो एक खिन॥१८॥

इन वनों में श्री राजश्यामा जी सुन्दरसाथ के साथ अनेक प्रकार की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करते हैं। आपसे मैंने जिन-जिन स्थानों का वर्णन किया है, उसे एक क्षण के लिये भी मत भूलिये अर्थात् चितवनि द्वारा अपने धाम-हृदय में बसाए रखिए।

धनी कबूं देखें फेर दौड़ते, कबूं बैठ चले सुखपाल।

ए बन जमुनाजीय का, एही बन फिरता ताल॥१९॥

इन वनों की शोभा को देखते-देखते, धाम धनी कभी तो प्रेम में दौड़ने लगते हैं और कभी सुखपाल में बैठकर सम्पूर्ण वनों को देखते हुए विचरण करते हैं। यमुना जी के चारों ओर दिखायी देने वाला यह वन हौज़ ताल को भी

घेरकर आया है।

कबूं राज आगूं दौड़त, ताली स्यामाजी को दे।

पीछे साथ सब दौड़त, करत खेल हाँसी का ए॥२०॥

इन वनों में कभी-कभी तो ऐसी लीला होती है कि धाम धनी श्यामा जी को ताली बजाकर दौड़ पड़ते हैं तथा उनके पीछे श्यामा जी सहित सभी सखियाँ दौड़ने लगती हैं। इस प्रकार, प्रेममयी हाँसी के ऐसे मनोहर खेल होते रहते हैं।

महामत कहे सुनो साथ जी, खिन बन छोड़ो जिन।

या मंदिरों संग धनीय के, विलसो रात और दिन॥२१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! मेरी एक बात सुनिए। इन वनों की शोभा को अपने हृदय से एक क्षण के



लिये भी अलग न होने दीजिए। परमधाम के इन मन्दिरों में अष्ट-प्रहर (दिन-रात) होने वाली लीला में चितवनि द्वारा डूब जाइए और अखण्ड आनन्द का रसपान कीजिए।

**भावार्थ-** यद्यपि परमधाम में लीला तो दिन -रात अनवरत चलती ही रहती है, किन्तु इस मायावी जगत में निद्रा-भोजन तथा अन्य कार्यों में ब्रह्मलीला का निरन्तर रसास्वादन केवल आत्मिक धरातल पर ही लिया जा सकता है। जीव के हृदय में दिन-रात उसका अनुभव होते रहना सम्भव नहीं है। आत्मा जब परात्म का श्रृंगार सजकर युगल स्वरूप और परमधाम की शोभा या अष्ट प्रहर की लीला को आत्मसात् कर लेती है, तो वह उसके धाम-हृदय में हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है और आत्मा निरन्तर उस आनन्द का रसपान करती

रहती है। जीव को केवल चितवनि में ही आनन्द मिलता है। इस चौपाई में कथित "विलसों रात और दिन" का यही आशय है। इस चौपाई में प्रेममयी चितवनि के लिये स्पष्ट आदेश दिया गया है।

**प्रकरण ॥१७॥ चौपाई ॥१९९॥**

## परिकरमा बड़ी फिराक की

यद्यपि परिक्रमा शब्द का बाह्य अर्थ किसी स्थूल वस्तु के चारों ओर घूमना होता है, किन्तु बातिन (गुह्य) रूप में इसका आशय किसी तथ्य की वास्तविकता को प्रकट करना होता है। इस सम्पूर्ण प्रकरण में विरह के भावों को बहुत गहनता से दर्शाया गया है, इसलिये इसे विरह (फिराक) की बड़ी परिक्रमा कहते हैं।

क्यों दियो रे बिछोहा दुलहा, छूटी हक खिलवत।

हम अरवाहें जो अर्स की, फेर कब देखें हक सूरत॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत! आपने हमें इस संसार में भेजकर इस प्रकार का वियोग क्यों दे दिया? यहाँ आने से तो हम सभी आपके हृदय के अनन्त आनन्द-रस से वन्चित हो गयी

हैं। अब आप ही बताइये कि माया के अन्धकार में भटकती हुई परमधाम की हम आत्मायें आपके मुखारविन्द के सौन्दर्य-रस का पान कब करेंगी?

**बेसक इलम दिया अपना, आप आए के इत।**

**ना रह्या धोखा जरा हमको, देखाए दई निसबत॥२॥**

आपने इस संसार में आकर सभी संशयों को दूर करने वाला तारतम ज्ञान हमें दिया। इस तारतम वाणी से हमारे मन में अब किसी भी प्रकार का संशय (धोखा) नहीं रह गया है। आपने अपने ज्ञान से हमें मूल सम्बन्ध की भी पहचान करा दी है।

**भावार्थ-** श्री राज जी ने श्री देवचन्द्र जी को दर्शन देकर जो तारतम ज्ञान दिया, वह बीज रूप में था। उनके धाम-हृदय में विराजमान होकर धाम धनी ने अखण्ड

ब्रज, रास, एवं परमधाम की चर्चा तो अवश्य की, किन्तु उस तन से मूल सम्बन्ध की वास्तविक पहचान सभी को नहीं हो सकी थी। श्री महामति जी के धाम – हृदय में विराजमान होकर श्री राज जी ने जिस तारतम वाणी का अवतरण किया है, इस चौपाई में उसी का सन्दर्भ दिया गया है।

खेल देखाए उरझाए हमको, सो फेर दिया छुड़ाए।

ना तो ऐसा फरेब, कबूं किन छोड़या न जाए॥३॥

आपने माया का खेल दिखाकर हमें इसमें उलझा दिया था, किन्तु तारतम वाणी का प्रकाश देकर पुनः इसके जाल से छुड़ा दिया। अन्यथा माया का यह संसार ऐसा है, जिसमें फँसने के बाद कोई भी कभी इसमें से निकल नहीं पाया है।

**विशेष-** संसार में आने के बाद केवल पञ्चवासनायें (शिव, सनकादि, विष्णु भगवान, शुकदेव, कबीर जी) ही इससे निकल सकी हैं। किसी के न निकल सकने का संकेत समस्त जीव सृष्टि के लिये है।

हम वास्ते रसूल भेजिया, और भेज्या अपना फुरमान।  
 सो इत काहूं न खोलिया, मिली चौदे तबक की जहान॥४॥  
 हे धाम धनी! आपने हमारे लिये ही अपने सन्देशवाहक के रूप में मुहम्मद साहब को कुरआन देकर भेजा। उस कुरआन के गुह्य रहस्यों को चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में कोई भी खोल नहीं सका।

**द्रष्टव्य-** इल्म-ए-लदुन्नी (तारतम ज्ञान) के बिना कोई भी अपनी मानवीय बुद्धि से कुरआन के गुह्य भेदों को नहीं जान सकता।

सो कुंजी भेजी हाथ रुहअल्ला, दई महंमद हकी सूरत।

कह्या आखिर आवसी अर्स रुहें, खोलो तिन बीच मारफत॥५॥

आपने कुरआन के गुह्य रहस्यों को खोलने की कुंजी तारतम ज्ञान के रूप में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को दी, किन्तु उसे उजागर करने (खोलने) की शोभा श्री महामति जी को दी। (मुझसे) आपने कहा कि धर्मग्रन्थों में जिन ब्रह्मात्माओं के आने का वर्णन किया है, उनके मध्य मारिफत (परम सत्य) के रहस्यों को स्पष्ट करो।

खिलवत संदेसे दिए रुहअल्ला, जो मेहेर कर केहेलाए।

किन खोले न द्वार अर्स के, मोको सब विध दई समझाए॥६॥

आपने मेरे ऊपर अपार मेहर (कृपा, प्रेम) की और श्यामा जी को मेरे धाम-हृदय में विराजमान कर परमधाम के सन्देशों को उनसे कहलवाया। जिस

परमधाम के बारे में आज तक न तो कोई जानता था और न उसका साक्षात्कार ही कर सका था, उसके विषय में आपने श्यामा जी द्वारा सब कुछ ज्ञात करा (बतला) दिया।

**मुझे संदेसे खिलवत के, सब रूहअल्ला दर्ई सिखाए।**

**बेसक इलम अर्स का, मोहे सब विध दर्ई बताए॥७॥**

श्यामा जी ने मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर श्री राज जी के हृदय की गुह्यतम बातों को बताया। उन्होंने परमधाम के तारतम ज्ञान को हर तरह से मेरे अन्दर प्रकाशित कर दिया।

**भावार्थ-** परमधाम में श्यामा जी एवं सखियों के ऊपर फरामोशी (नींद) का आवरण है और एकमात्र श्री राज जी ही पूर्ण रूप से जाग्रत हैं। उनके हृदय की बातों का



श्री महामति जी के धाम-हृदय में प्रकट होना ही खिल्वत के सन्देशों का आना है। श्यामा जी श्री राज जी की आनन्द स्वरूपा हैं, इसलिये श्यामा जी द्वारा ही श्री राज जी की बातों का उनके धाम-हृदय में प्रकट होना माना गया है। यह प्रसंग उस समय का नहीं है जब सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ज्ञान चर्चा करते थे, बल्कि यह उस समय के बाद की बात है जब हब्से में श्री मिहिरराज जी ने अपना तन छोड़ दिया और युगल स्वरूप ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया।

ब्रह्मसृष्टि हुती ब्रज रास में, प्रेम हुतो लछ बिन।

सो लछ लाए अव्वल को रुहअल्ला, पर न था आखरी इलम पूरन॥

सिनगार १/४६

से यही प्रमाणित होता है। यदि मारिफत की गुह्य बातें अपने पञ्चभौतिक तन से श्री देवचन्द्र जी ने श्री

मिहिरराज जी को बताया होती, तो "न था आखरी इलम पूरन" का कथन नहीं होता।

**छूटी रूहों को अर्स की, मूल मेले की लज्जत।**

**इस्क न आवे क्यों हमको, जाकी नूरजमाल सों निसबत॥८॥**

परमधाम से इस संसार में आने पर हम ब्रह्मसृष्टियाँ निजघर का रसास्वादन करना भूल गयी हैं। धनी के चरणों से तो हमारा अखण्ड सम्बन्ध है। फिर भी यह विचारने योग्य बात है कि हमारे अन्दर धनी का प्रेम (इश्क) क्यों नहीं आ रहा है?

**भावार्थ—** परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ वहदत (एकत्व), निस्बत (मूल सम्बन्ध), खिल्वत, और इश्क (प्रेम) का रसपान करती रही हैं। इस मायावी जगत् में उसकी अनुभूति को मूल मेले की लज्जत (स्वाद) लेना कहा

जाता है। मूल मेले का तात्पर्य केवल "मूल मिलावा" ही नहीं है, बल्कि परमधाम भी है, क्योंकि इश्क का रस सम्पूर्ण परमधाम में मिलता है, जबकि मूल मिलावे में तो केवल खेल देखने के लिये ही बैठी हैं। हमारा मूल घर परमधाम है, जबकि इस नश्वर जगत् में हम अलग-अलग घरों, वर्गों, प्रान्तों, एवं देशों में आयी हुई हैं। इसलिये परमधाम को भी मूल मेला कहकर सम्बोधित किया गया है।

फेर दई हकें मेहेर कर, मूल मेले की लज्जत।

क्यों न जागें रूहें ए सुन के, जाकी इन हकसों निसबत॥९॥

अब धाम धनी हमारे ऊपर मेहर कर पुनः परमधाम का रसास्वादन करा रहे हैं। अक्षरातीत से जिन ब्रह्मसृष्टियों का मूल सम्बन्ध है, वे भी इस बात को सुनकर जाग्रत

क्यों नहीं हो रही हैं, यह बहुत आश्चर्य की बात है।

बेसक इलम रूहों पाइया, अजूं नजर क्यों ना खोलत।

क्यों न आवे हमको इस्क, जाकी अर्स अजीम निसबत॥१०॥

हमारा मूल सम्बन्ध परमधाम से है और हमने धनी का दिया हुआ संशयरहित तारतम ज्ञान भी प्राप्त कर लिया है, फिर भी हम अपनी आत्मिक दृष्टि को क्यों नहीं खोल पा रही हैं तथा हमारे अन्दर धनी का प्रेम क्यों नहीं आ पा रहा है?

पेहेचान हुई सब विध की, पाई हक मारफत।

क्यों न आवे इस्क हमको, जाकी नूरजमाल सों निसबत॥११॥

प्राणेश्वर! हमने तारतम वाणी से आपके हृदय के गुह्यतम भेदों को जान लिया है तथा क्षर से लेकर परमधाम तक

की सम्पूर्ण पहचान भी कर ली है। आपसे हमारा अनादि काल से ही अखण्ड सम्बन्ध रहा है, फिर भी हमारे अन्दर आपके प्रति प्रेम क्यों नहीं पैदा हो रहा है?

**हजूर खिन एक ना हुई, इत चली जात मुद्धत।**

**ए क्या हक को खबर है नहीं, वह कहां गई निसबत॥१२॥**

यद्यपि परमधाम में धनी के चरणों में बैठे हुए एक पल भी नहीं बीता है, किन्तु इस खेल में तो एक लम्बा समय (अरसा) बीत गया है। क्या धाम धनी को यह ज्ञात (मालूम) नहीं है कि इस खेल में हमारा इतना समय बीत गया है, अर्थात् अवश्य ही मालूम है। हमारा धनी से परमधाम का सम्बन्ध कहाँ चला गया है?

**भावार्थ—** भले ही परमधाम में एक क्षण भी नहीं बीता है, किन्तु इतने ही समय में ब्रज, रास की लीला बीत चुकी

है, तथा जागनी लीला का अन्तिम चरण चल रहा है।

इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का कथन है—

इत जो करी मजकूर, अजुं सोई है साइत।

चार घड़ी दिन पिछला, तुम जानों हुई मुद्धत॥

खिलवत १३/३७

इतने लम्बे समय में भी आत्मायें अपने मूल सम्बन्ध को पहचान कर भी यदि जागनी के पथ पर आगे नहीं बढ़ती हैं, तो हँसी का शिकार होना पड़ेगा। इस चौपाई के चौथे चरण का यही भाव है।

जो सुख अर्स अजीम के, सो देखाए दुनीमें इत।

भेज्या इलम बका अपना, वह कहां गई निसबत॥१३॥

धाम धनी ने तारतम वाणी का अखण्ड ज्ञान हमारे पास भेजा और हमें इस संसार में भी परमधाम के अनन्त

सुखों की पहचान करायी। फिर भी, धनी से हम अपने मूल सम्बन्ध को पूरी तरह नहीं निभा सकी (अँगना कहलाते हुए भी अपने कर्तव्य की कसौटी पर स्वयं को खरा सिद्ध नहीं कर सकी)।

**बेसुध चौदे तबकों, तामें हमको बेसक किए इत।**

**सुख अर्सों के सब दिए, कर ऐसी हक निसबत॥१४॥**

चौदह लोक के इस मायावी जगत में हम अपने प्राणप्रियतम अक्षरातीत के प्रति पूर्णतया बेसुध हो गयी थीं, किन्तु श्री राज जी ने अपनी तारतम वाणी का ज्ञान देकर हमें पूर्णतया संशयरहित कर दिया और परमधाम के सभी सुखों का संसार में अनुभव भी करा दिया।

**भावार्थ—** अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, और लीला के विषय में कुछ भी न जानना, तथा शरीर और संसार के

मोह में उलझे रहना ही बेसुध होना है। परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला का पूर्ण बोध होना ही संशयरहित होना है।

**हम पर अर्स में हँसने, माया देखाई तीन बखत।**

**इस्क हमारा देखने, वह कहां गई निसबत॥१५॥**

परमधाम में हमारी हँसी करने तथा हमारे प्रेम की परीक्षा लेने के लिये धाम धनी ने ब्रज, रास, एवं जागनी के रूप में तीन बार हमें माया का खेल दिखाया है। फिर भी धनी से हमारा मूल सम्बन्ध कहाँ चला गया, अर्थात् धनी के प्रति हम अपने सम्बन्ध का निर्वाह पूरी तरह क्यों नहीं कर सकी?

**भावार्थ—** ब्रज, रास, एवं जागनी ब्रह्मांड में माया हमारे ऊपर कहीं न कहीं भारी पड़ी है और हमने धनी के प्रति



अपने प्रेम के दायित्वों को पूरा नहीं किया है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही अभिप्राय है।

**चौदे तबक आड़े देयके, सो नजीक छिपे क्यों कित।**

**निपट सेहेरग से नजीक, वह कहां गई निसबत॥१६॥**

यद्यपि हमारे और धनी के बीच में चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड पर्दे के समान दिख रहा है, फिर भी वे प्राणनली से भी अधिक निकट हैं और हमारे धाम हृदय में शाहरग (प्राणनली) से भी अधिक निकट होकर विराजमान हैं, किन्तु खेद है कि ऐसी स्थिति में भी हम धनी के प्रति अपने मूल सम्बन्ध का निर्वाह उचित रूप से नहीं कर पा रही हैं।

किन तरफ हमारे तुम हो, किन तरफ तुमारे हम।

बीच भयो क्यों ब्रह्मांड, क्यों हम पकड़ बैठे कदम॥१७॥

हे प्रियतम! अब आप ही बता दीजिए कि आप हमसे अलग होकर कहाँ पर (किस तरफ) हैं और हम आपसे अलग होकर कितनी दूर स्थित हैं? हमारे और आपके बीच माया का यह ब्रह्माण्ड पर्दा क्यों बना हुआ है? जब हम सुरता रूप से इस खेल में आ गयी हैं, तो यह बात कैसे कही जा रही है कि हम सभी आपके चरणों को पकड़कर अभी भी बैठी हैं?

पेहेले क्यों फरामोसी देयके, रूहें डारी माहें छल।

पीछे ताला कुंजी दोउ दिए, दर्ई खोलने की कल॥१८॥

हे धाम धनी! आपने पहले हमें फरामोशी (नींद) में डालकर इस मायावी जगत में क्यों भेज दिया? धर्मग्रन्थों

के ज्ञान रूपी ताले को खोलने के लिये आपने हमें तारतम ज्ञान रूपी कुञ्जी तथा रहस्यों को स्पष्ट करने की युक्ति भी दी।

**भावार्थ-** इस चौपाई में विरह के भावों में संसार में भेजने के कारण धनी से प्रेम-भरी शिकायत है। तारतम ज्ञान की कुँजी होने पर भी धनी की कृपा के बिना धर्मग्रन्थों के वास्तविक आशय को नहीं जाना जा सकता। इस सम्बन्ध में कलस हिंदुस्तानी १/३७ का कथन है-

निज बुध आवे अग्याँ, तोलों न छूटे मोह।

आतम तो अंधेर में, सो बुध बिना बल ना होए॥

इससे स्पष्ट होता है कि अध्यात्म जगत् के गुह्यतम रहस्यों को खोलने (स्पष्ट करने) की कला धाम धनी की मेहर से ही आती है, मात्र छः चौपाइयाँ याद कर लेने से

नहीं। धनी की मेहर को पाने के लिये इश्क (प्रेम), ईमान (अटूट श्रद्धा एवं विश्वास), सन्तोष, विनम्रता, एवं हृदय की पवित्रता का होना आवश्यक है।

**किन विध दई तुम बेसकी, सक रही न किन सब्द।**

**दुनियां चौदे तबक में, सुध परी न बांधी हद॥१९॥**

हे धनी! इस बात को तो मैं अच्छी तरह से जानती हूँ कि आपने किस प्रकार तारतम वाणी से हमें पूर्णतया संशयरहित कर दिया है। आपके तारतम ज्ञान के किसी भी शब्द पर हमें संशय नहीं है। चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में जीव सृष्टि के किसी भी व्यक्ति को यह सुधि नहीं हो सकी है कि वैकुण्ठ-निराकार (हृद मण्डल) से परे भी कुछ (बेहद, परमधाम) है।

हमको सक ना हदमें, ना कछू बेहद सक।

सक रही न पार बेहद की, दिया बेसक इलम हक॥२०॥

आपने तारतम वाणी के रूप में ऐसा संशयरहित ज्ञान दिया है, जिससे अब न तो हद के विषय में कोई संशय रह गया है और न बेहद के सम्बन्ध में। बेहद से परे परमधाम के सम्बन्ध में भी अब किसी प्रकार का कोई संशय नहीं रह गया है।

**भावार्थ—** हद, बेहद, और परमधाम के सम्बन्ध में संसार के बुद्धिजीवी वर्ग में संशय ही संशय भरा पड़ा है, जिसका निर्णय तारतम ज्ञान के बिना हो ही नहीं सकता। संक्षेप में उनके प्रश्नों की एक छोटी सी झलक इस प्रकार है—

१. जब शून्य (आकाश) में असंख्य नक्षत्र स्थित हैं और उसका ही विस्तार ज्ञात नहीं है, तो उससे परे

महाशून्य की कल्पना ही व्यर्थ है।

२. जब बेहद शब्द का ही अर्थ अनन्त होता है, तो उससे भी परे अनन्त परमधाम कैसे हो सकता है? क्या अनन्त के परे भी अनन्त हो सकता है?

३. हद-बेहद से परे परमधाम में परब्रह्म का अस्तित्व मानने पर तो वह एकदेशी हो जायेगा। ऐसी स्थिति में वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, और सबका न्याय करने वाला कैसे कहा जा सकता है?

४. सर्वशक्तिमान परब्रह्म अपना सम्पूर्ण कार्य स्वयं करता है। अपने कार्य में वह नारायण आदि की सहायता नहीं ले सकता। यदि वह मात्र १२००० आत्माओं के साथ ही क्रीड़ा करता है, तो संसार में असंख्य प्राणियों के साथ वैसा ही व्यवहार क्यों नहीं करता ? उसकी लीला में इतना पक्षपात क्यों है?

५. सच्चिदानन्द परब्रह्म को एक मानवाकृति वाला मानकर उनका भोजन करना, स्नान करना, नृत्य देखना, टहलना, सोना, और हँसना-बोलना मात्र एक कल्पना है, जो इस संसार के राजा-महाराजाओं के भाव के आधार पर कल्पित की गयी है। वह तो सूक्ष्म से सूक्ष्म, सर्वव्यापक, सर्वाधार, सर्वज्ञ, और पूर्णात् पूर्ण है।

**ए विध रूहें देखी जिनों, सो केहेनी में आवत नाहें।**

**कछू वास्ते हम रूहनके, हुकम कहावत जुबांए॥२१॥**

जिन आत्माओं ने धनी के इस मेहर रूपी लाड-प्यार का अनुभव किया है, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। किन्तु ब्रह्मसृष्टियों को सुख देने के लिये ही श्री राज जी का हुकम (आदेश) मेरी जिह्वा से कुछ कहलवा रहा है।

ए हककी मैं हुकम ले, कई विध बका द्वार खोलत।

याद देने अर्स-अजीम में, होत सब वास्ते उमत॥२२॥

मेरे अन्दर अब श्री राज जी की "मैं" आ गयी है और उसी भाव में (मैं को लेकर) मैं धनी के आदेश से कई प्रकार से अखण्ड परमधाम के दरवाजे खोल रही हूँ, ताकि सबको परमधाम में विद्यमान अपनी परात्म की याद आ जाये। यह सम्पूर्ण लीला ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही हो रही है।

**भावार्थ-** शरीर, जीव, और संसार से परे होकर एकमात्र धाम धनी के भावों में डूबे रहना ही धनी की "मैं" को लेना है। ज्ञान और प्रेम आदि द्वारा परमधाम की अनुभूति की जाती है। इसे ही कई प्रकार से धाम का द्वार खोलना कहा गया है। ज्ञान द्वारा निस्बत, वहदत, खिल्वत, इश्क आदि की हकीकत एवं मारिफत को



जाना जाता है, तथा प्रेम द्वारा उसका प्रत्यक्ष अनुभव किया जाता है।

हम तो इत आए नहीं, अर्स एक दम छोड़या न जाए।

जागे पीछे दुलहा, हम देख्या खेल बनाए॥२३॥

हम सभी आत्मायें अपने नूरी तन से नहीं आयी हैं , बल्कि धनी के हुक्म से सुरता स्वरूप में आयी हैं। हमसे परमधाम पूर्ण रूप से नहीं छूट सकता। तारतम वाणी से जाग्रत होने के पश्चात् ही हमें यह बोध हुआ है कि हमने जिस मायावी खेल को देखा है, उसे तो प्रियतम ने हमारी इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही बनाया है।

**भावार्थ-** परमधाम में परात्म का तन धनी के चरणों में मूल मिलावा में बैठा हुआ है, जो यहाँ पर नहीं आ सकता। उसका प्रतिबिम्बित स्वरूप ही आत्मा के रूप में

जीव के ऊपर विराजमान होकर इस खेल को देख रहा है। इस चौपाई के दूसरे चरण का भाव यही तथ्य प्रकट कर रहा है।

**अर्स निसबत हक की, खेल में आए बिना लेत सुख।**

**हिकमत देखन हक हुकम की, कही न जाए या मुख॥२४॥**

अपने नूरी तन से इस मायावी जगत में आये बिना ही हम आत्मायें परमधाम तथा अक्षरातीत से अपने मूल सम्बन्ध का सुख ले रही हैं। खेल देखने की यह सारी लीला श्री राज जी के आदेश (हुकम) की युक्ति (कौशलता, कारीगरी) से ही हो रही है, जिसको इस मुख से कहा नहीं जा सकता।

**भावार्थ—** परमधाम में निस्वत की मारिफत की पूर्ण पहचान नहीं थी। इस खेल में हमारी आत्मा तारतम

वाणी द्वारा अक्षरातीत के हृदय की उन सारी गुह्य बातों को जान पा रही है, जिसे परमधाम में भी जान नहीं सकी थी। यद्यपि हमारी परात्म का नूरमयी तन मूल मिलावा में है और हमारे जीव का तन भी पञ्चभौतिक है, किन्तु हमारी आत्मा जो परात्म का प्रतिबिम्बित स्वरूप है, जीव के ऊपर विद्यमान होकर दृष्टा के रूप में सब कुछ देख रही है और जान रही है। इसलिये परात्म के दिल और आत्मा के दिल में जाग्रत होने के बाद किसी भी तरह का भेद नहीं रह जाता। यह कथन श्रीमुखवाणी में इस प्रकार कहा गया है—

अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछु नाहें।  
सुख लज्जत अरस तन खैचहीं, तब क्यों रहे अंतर माहें॥

सिनगार ११/७९

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रहयो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए॥

सागर ११/४४

हुकमें मांग्या हुकम पे, सो हुकमें देवनहार।

सो हुकम फैल्या सबमें हक का, सो हकै खबरदार॥२५॥

हुकम ने हुकम से खेल माँगा है और हुकम ही खेल दिखाने वाला है। अब सब में श्री राज जी का हुकम ही लीला कर रहा है। इस प्रकार श्री राज जी ही सबको माया से सावचेत करके जाग्रत कर रहे हैं।

**भावार्थ-** धाम धनी के दिल की इच्छा ही हुकम या आदेश है। खिलवत ५/३७ में कहा गया है कि "हकें हुकम किया वतन में, सो उपजत अंग असल।" धाम धनी की इच्छा से ही सखियों ने खेल की इच्छा की तथा

वे श्री राज जी की हृदय-स्वरूपा भी हैं। इस प्रकार श्री राज जी एवं सखियों को हुक्म का स्वरूप कहा गया है। "तैसा इत होता गया, जैसा हजूर हुक्म करत" से यही निष्कर्ष निकलता है कि सभी सखियों में श्री राज जी के हृदय (दिल) की इच्छा से सब कुछ हो रहा है।

**बिना हुक्म हक के जरा नहीं, कहे सुने देखे हुक्म।**

**किल्ली इलम हुकमें सब दर्ई, किया तेहेकीक हुकमें खसम॥२६॥**

श्री राज जी के दिल की इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता। लीला में श्री राज जी का हुक्म (हृदय की इच्छा) ही किसी न किसी रूप में कहता है, सुनता है, और देखता भी है। श्री राज जी के हुक्म ने ही हमें तारतम ज्ञान की कुञ्जी दी है तथा हमें पूर्ण रूप से धनी के प्रति प्रेम का निश्चय कराया है।

**द्रष्टव्य-** श्री राजश्यामा जी तथा सखियों का कहना, सुनना, एवं देखना भी हुक्म का ही कहना, सुनना, एवं देखना है, क्योंकि सभी में एक ही दिल लीला कर रहा है।

सुख खिलवत इन मुख क्यों कहूँ, कहा न जाए जुबाँ।  
 ए बातें आसिक मासूक की, रूहें जानें अर्स दिल माहें॥२७॥

खिलवत का सुख असीम है, उसे मैं इस मुख से कैसे बताऊँ। खिलवत में तो मात्र आशिक और माशूक (प्रेमी और प्रेमास्पद) की लीला की बातें हैं, जिन्हें मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही अपने धाम-हृदय में जानती हैं। उसे इस जिह्वा से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

जो सुख खोलूं अर्स के, माहें मिलावे इत।

निकस जाए मेरी उमर, केहे न सकों खिन की सिफत॥२८॥

यदि मैं परमधाम के अनन्त सुखों को इस संसार में सुन्दरसाथ के बीच में कहना चाहूँ, तो मेरी सारी उम्र बीत भी जायेगी, फिर भी मैं धनी से मिलने वाले एक पल के सुख की महिमा का वर्णन नहीं कर पाऊँगी।

**विशेष-** इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "माहें मिलावे इत" का तात्पर्य इस संसार में जागनी लीला में सुन्दरसाथ के समूह (मिलावा) से है। परमधाम के मूल मिलावा का इस चरण में प्रसंग नहीं है।

हम रूहों को चेतन किए, खोली रूह-अल्ला हकीकत।

ए खिलवत के सुख कहां गए, हम कब पावसी ए न्यामत॥२९॥

श्यामा जी ने अपने तारतम ज्ञान से वास्तविक सत्य को

प्रकट किया और परमधाम की आत्माओं को माया से सावधान कर दिया। ज्ञान द्वारा जाग्रत होने पर अब हमें बिलखना पड़ रहा है कि परमधाम के सुख हमसे कैसे छूट गये? धनी की अखण्ड नेमतों (निधियों) को हम कब प्राप्त करेंगी?

**भावार्थ-** आठों सागरों के रूप में धनी के प्रेम (इश्क), एकत्व (वहदत), मूल सम्बन्ध (निस्बत), और शोभा-श्रृंगार आदि की ही क्रीड़ा हो रही है। इस मायावी जगत में इनका अनुभव करना ही धाम धनी की निधियों को प्राप्त करना है।

हक खिलवत सुख मोमिनों, लिखी फुरमान में मारफत।

कहां गए हमारे ए सुख, हम कब पावें ए बरकत॥३०॥

हे धाम धनी! यह सर्वविदित है कि आपका सुख



ब्रह्मात्माओं के धाम-हृदय में प्रकट होता है। आपने मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर तारतम वाणी के रूप में परम सत्य (मारिफत) के गहन रहस्यों को उजागर किया है। किन्तु हमारे वे सुख कहाँ चले गये अर्थात् हमें प्राप्त क्यों नहीं हो पा रहे हैं? आपकी मेहर से उन सुखों को हम कब प्राप्त करेंगी?

**भावार्थ-** इस चौपाई में "फुरमान" शब्द का तात्पर्य कुरआन नहीं बल्कि तारतम वाणी है, जो धाम धनी के हुक्म (आदेश) से अवतरित हुई है। कुरआन में तो शरियत एवं तरीकत का ही ज्ञान है। हकीकत की बातें भी संकेतों (हरुफ-ए-मुक्तेआत आदि) के रूप में हैं। मारिफत (परम सत्य, ऋत्) की बातें तो मुहम्मद साहिब की वाणी (जिह्वा) से कही ही नहीं जा सकी। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी सनंध ३९/१,२ में कहा गया

है—

कह्या जाहिर रसूलें, मैं हरफ सुने हैं कान।  
 सो आए केहेसी इमाम, मैं लिखे नहीं फुरमान॥  
 जो हरफ जुबां चढ़े नहीं, सो क्यों चढ़े कुरान।  
 और जुबां ले आवसी, इमाम एही पेहेचान॥

**रुहें लगाइयां अपने सरूप में, और भी अपनी सिफत।**  
**दिल अर्स मोमिन लीजियो, कहें रुह मता हुकमें महामत॥३१॥**  
 धाम धनी ने तारतम वाणी से सभी आत्माओं को अपने स्वरूप की शोभा में डुबोने और अपनी महिमा की पहचान कराने में लगा लिया है। श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! आपका हृदय तो प्रियतम का धाम कहलाता है। आप धनी की इस बात को आत्मसात् (हृदयंगम) कीजिये, अर्थात् अपने धाम-हृदय में अपने

प्राणेश्वर की शोभा एवं महिमा को बसा लीजिए। यह बात मेरी आत्मा धनी के आदेश से उनकी तारतम वाणी के ज्ञान के आधार पर ही कह रही है।

**प्रकरण ॥१८॥ चौपाई ॥१०३०॥**

## खिलवत से चांदनी तांई

मूल मिलावा से दसवीं आकाशी (चाँदनी) तक  
इस प्रकरण में विरह के भावों में डूबकर रंगमहल की  
प्रेममयी लीला की एक झलक दिखायी गयी है।

भोम तले की बैठाए के, खेल देखाया बांध उमेद।

हक बिना हकीकत कौन कहे, दिए बेसक इलम भेद॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे धाम धनी!  
आपने प्रथम भूमिका मूल मिलावा में बैठाकर हमें माया  
का खेल दिखाया है। हम भी इस आशा में बैठी हैं कि  
आप हमें माया में अकेले नहीं छोड़ेंगे अर्थात् हमसे अलग  
नहीं होंगे। आपके बिना संसार से लेकर परमधाम तक  
की वास्तविकता को भला कौन बता सकता है। आपने  
तारतम वाणी द्वारा ज्ञान के गुह्यतम भेदों को स्पष्ट करके

हमें पूर्ण रूप से संशयरहित कर दिया है।

कहां सुख झरोखे अर्स के, कहां सुख सीतल बयार।

कहां सुख बन कहां खेलना, कहां सुख बखत मलार॥२॥

हे धनी! परमधाम के झरोखों में बैठकर हम शीतल ,  
मन्द, और सुगन्धित हवाओं के मधुर झोंकों का आनन्द  
लिया करती थीं। वनों में जाकर तरह - तरह के खेल  
किया करती थीं और वर्षा के समय अनेक प्रकार से  
आनन्द लिया करती थीं। इस संसार में आने के बाद वे  
सुख कहाँ चले गये? हमें उनका अनुभव क्यों नहीं हो पा  
रहा है?

कहां सुख कोकिला मोर के, बन में करें टहुंकार।

बादल अंबर छाड़्या, सुख बीजलियां चमकार॥३॥

अब हमें परमधाम के वनों में क्रीड़ा करते हुए मोरों और कोयलों की मधुर आवाज (टहुँकार) सुनने को नहीं मिल रही है। उन मनोरम दृश्यों को भी देखने का आनन्द नहीं मिल पा रहा है, जब आकाश में बादल छा जाते थे और बिजलियाँ चमकने लगती थीं।

**दो दो रूहें मिल बैठती, सुख लेती सुखपाल।**

**कहां सुख साथ मासूक के, सैर जाते जोए या ताल॥४॥**

हे धनी! जब हम आपके साथ यमुना जी के सातों घाटों या हौज़ कौसर ताल की ओर भ्रमण करने के लिये जाते थे, तो एक-एक सुखपाल में हम दो-दो अँगनायें एकसाथ बैठकर तरह-तरह के दृश्यों का आनन्द लेती थीं। अब वे सुख कहाँ हैं? इस संसार में तो उनका नामोनिशान भी नहीं है।

ए सुख हमारे कहां गए, कहां जाए करूं पुकार।

तुम कोई न देखाया तुम बिना, अजुं क्यों न करो विचार॥५॥

परमधाम के वे सुख हमें अब प्राप्त नहीं हो पा रहे हैं। अब मैं कहाँ जाऊँ और किसे अपनी विरह-व्यथा सुनाऊँ? आप इस बात का अभी भी विचार क्यों नहीं कर रहे हैं कि आपने हमें अपने अतिरिक्त और किसी की पहचान भी नहीं दी है, अर्थात् आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी हमारा प्रियतम नहीं है।

क्यों दिन जावें एकले, किन विध जावे रात।

किन विध बसो तुम अर्स में, वह कहां गई मूल बात॥६॥

प्राणप्रियतम! हमारे बिना आप भी अपना दिन कैसे गुजारते हैं? प्रेम के मधुरतम क्षणों का अहसास कराने वाली रात कैसे बीत जाती है? आप हमारे बिना

परमधाम में कैसे रह रहे हैं? क्या आप अपनी उस बात को भूल गये हैं, जो आपने निजधाम में कही थी कि मैं तुमसे एक पल के लिये भी अलग नहीं रह सकता और तुम्हें एक पल के लिये अलग भी नहीं कर सकता?

**सुख चेहेबच्चे भोम दूसरी, मिल मंदिर बारे हजार।**

**कौन देवे मासूक बिना, सुख भुलवनी अपार॥७॥**

दूसरी भूमिका में खड़ोकली तथा भुलवनी के १२००० मन्दिरों की शोभा आयी है। आपके अतिरिक्त भला अन्य किसमें सामर्थ्य है, जो हमें जल-क्रीड़ा एवं भुलवनी की लीला के अपार सुखों को दे सके।

**हम अर्स भोम तीसरी, चढ़ देखें नूर मकान।**

**दोऊ द्वारों नूर झलके, ए सुख कब देसी मेहेरबान॥८॥**



परमधाम में रंगमहल की तीसरी भूमिका की पड़साल में खड़े होकर हम अँगनायें अक्षर धाम की शोभा को देखा करती थीं। दोनों धामों के मुख्य दरवाजे नूरी शोभा से झलझला रहे हैं। आप तो मेहर के सागर हैं। पुनः दोनों धामों के रंगमहलों के दर्शन का सुख हमें कब देंगे?

**इत आवत झरोखे मुजरे, हमारे मेहेबूब के।**

**ए सुख धनी हमको, फेर कब देखाओगे॥९॥**

हे प्रियतम! आप तीसरी भूमिका की पड़साल पर झरोखों को पीठ देकर बैठा करते थे। आपके साथ हम भी वहीं पर रहती थीं तथा अक्षर ब्रह्म चाँदनी चौक में प्रतिदिन आकर आपका दीदार किया करते थे। वे क्षण बहुत ही आनन्दमयी थे। अब आप ही बताइये कि ऐसे सुखद पल आप हमें कब दिलायेंगे?

बड़ी बैठक जित होत है, इन बड़े देहेलान।

ए कब देखाओ मेला बड़ा, मेरे वाहेदत बड़े सुभान॥१०॥

परमधाम के एकत्व (वहदत) के प्राणेश्वर! तीसरी भूमिका की पड़साल में आपके साथ हमारी बड़ी-बड़ी बैठकें हुआ करती थीं। तीसरी भूमिका के उस बड़े मिलन की पुनरावृत्ति आप कब करायेंगे, अर्थात् वे दिन कब आयेंगे जब हम सभी आपके साथ तीसरी भूमिका में प्रेममयी लीला का आनन्द लेंगी?

**भावार्थ-** तीजी भूमिका के पड़साल में तीन हिस्से आते हैं- पड़साल, दहलान, और चबूतरा। इनके समूह को तीजी भूमिका की पड़साल या दहलान कह दिया जाता है। जबकि पड़साल १० मन्दिर की लम्बी एवं २ मन्दिर की चौड़ी है, दहलान ४ मन्दिर की लम्बी एवं १ मन्दिर की चौड़ी है, जिसके दायें-बायें तीन-तीन मन्दिर हैं।

चबूतरा ४ मन्दिर का लम्बा एवं १ मन्दिर का चौड़ा है। पड़साल में खड़े होकर श्री राजश्यामा जी पशु-पक्षियों को दर्शन देते हैं, तथा जब झरोखों को पीठ देकर बैठते हैं तो गायन की लीला होती है। दहलान में राज जी का श्रृंगार होता है, श्यामा जी का श्रृंगार आसमानी रंग के मन्दिर में होता है, तथा सभी सखियाँ दोनों हार के मन्दिरों में श्रृंगार करती हैं। उसके बाद जब वापस आती हैं, तो इसी चबूतरे, देहलान, व पड़साल में मिलन होता है।

इत बड़ा मिलावा होई, जुदी रहे न या समें कोई।

परिकरमा ३/९१

चौथी भोम सुख निरत के, कौन देवे कर हेत।

ए सुख अर्स के इन जिमी, हक हमको विध विध देत॥११॥

रंगमहल की चौथी भूमिका में नृत्य की लीला का अपार सुख है। इस सुख को आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रेमपूर्वक नहीं दे सकता। उस सुख का अनुभव आप हमें इस नश्वर जगत में भी तारतम वाणी द्वारा तरह-तरह से करा रहे हैं।

**भावार्थ-** तारतम वाणी द्वारा चौथी भूमिका में होने वाली नृत्य लीला का चिन्तन करने पर भावलीनता की स्थिति बन जाती है। चितवनि में तो प्रत्यक्ष लीला देखने जैसी स्थिति प्राप्त हो सकती है। इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "विध विध देत" का यही अभिप्राय है।

**भोम पांचमी सुख पौढ़न के, ए हक की बातें नेक।**

**कौन केहेवे मासूक बिना, आसिक गुझ विवेक॥१२॥**

पाँचवी भूमिका में शयन की लीला का सुख है। आपके

प्रेम की तो ये बहुत थोड़ी सी झलक है, जो मैं कह रही हूँ। आपके बिना और कौन दूसरा समर्थ है कि हम अँगनाओं के प्रेम की गुह्यतम बातों को संसार में कह सके।

**विशेष—** इस प्रकरण की चौपाई २ से १० तक में परमधाम के सुखों का अभाव दर्शाकर विरह-व्यथा की अभिव्यक्ति प्रकट की गयी है, जबकि ११ से १७ तक की चौपाइयों में तारतम वाणी के ज्ञान से परमधाम के सुखों का रसास्वादन (लज्जत) कराने की बात कही गयी है।

सुख छठी भोम मोहोलन के, ए कौन देवे कर विचार।

इन जुबां सुख क्यों कहूँ, इन हक के बेसुमार॥१३॥

रंगमहल की छठी भूमिका में आये अनन्त प्रकार के

सुन्दर महलों में आप हमें अनेक प्रकार के सुख देते हैं, इसका वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता। विचारपूर्वक यह ज्ञान भी आपके अतिरिक्त हमें और कौन दे सकता है।

**सुख कहा कहूं भोम सातमी, जो लेते खटों छपर।**

**हक हादी रूहें झूलत, साम सामी बांध नजर॥१४॥**

सातवीं भूमिका में षट छप्पर वाले हिण्डोले आये हैं, जिन पर युगल स्वरूप के साथ सखियाँ आमने-सामने बैठकर एक-दूसरे से दृष्टि मिलाते हुए झूलती हैं। इस भूमिका के अपार सुखों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

**भावार्थ—** जिसकी छत (छप्पर) में षट्कोण हो, वह षटछप्पर कहलाता है। ऐसे ही हिण्डोले आठवीं भूमिका में भी हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि सातवीं भूमिका में

२ हिण्डोलों की ताली पड़ती है और आठवीं भूमिका में  
४ हिण्डोलों की ताली पड़ती है।

सुख हिंडोले भोम आठमी, हक हादी रूहें हींचत।

ए चारों तरफों के झूलने, हक हमको देत लज्जत॥१५॥

आठवीं भूमिका में आप युगल स्वरूप के साथ हम  
अँगनायें झूला झूलती हैं। यहाँ चार हिण्डोलों की ताली  
पड़ती है अर्थात् चार दिशाओं से हिण्डोले आते हैं।  
इसका सुख अपार है, जिसका रसास्वादन आप तारतम  
ज्ञान द्वारा हमें संसार में करा रहे हैं।

नौमी भोम बैठाए के, जो सुख नजरोँ दूर।

ए कौन देवे सुख हक बिना, बुलाए के अपने हजूर॥१६॥

हे धनी! नवमी भूमिका के छज्जों में बिठाकर आप हमें

परमधाम के दूर-दूर के स्थानों को दिखाने का सुख दिया करते थे। इस मायावी जगत् में आपके अतिरिक्त और कौन है, जो हमें अपने चरणों में लेकर नवमी भूमिका के अखण्ड सुखों का अनुभव कराये?

**सुख चांदनी चढ़ाए के, पूनम की मध्य रात।**

**ए कौन देवे मासूक बिना, इस्क भीगे अंग गात॥१७॥**

हे प्राण प्रियतम! पूर्णिमा के दिन रंगमहल की दसवीं चाँदनी (आकाशी) पर सायं ३ बजे आप हमें ले जाते थे और मध्य रात्रि तक तरह-तरह की प्रेममयी लीलायें करते थे। इस जागनी लीला में हमारे अंग-अंग में प्रेम का रस देकर उस लीला का अनुभव आपके अतिरिक्त और कौन करा सकता है?

**भावार्थ—** यदि यह संशय किया जाये कि पूर्वोक्त



चौपाइयों में इस संसार में धनी के सुखों का रसास्वादन करने की बात नहीं है बल्कि इसका प्रसंग केवल परमधाम में ही घटित होगा, तो इसका सीधा सा उत्तर यह है कि यदि इस संसार में परमधाम की शोभा एवं सुखों का कुछ भी अनुभव नहीं हो सकता तो परिक्रमा, सागर, एवं श्रृंगार ग्रन्थ के अवतरण का उद्देश्य ही क्या है? पुनः विरह में दिन-रात तड़पने की सार्थकता ही क्या है?

यह अवश्य है कि परमधाम की तरह यहाँ लीला का विलास नहीं हो सकता, किन्तु प्रेममयी चितवनि में डूबकर वहाँ की शोभा, श्रृंगार, एवं लीला का अनुभव तो किया ही जा सकता है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण श्री लालदास जी एवं श्री युगलदास जी द्वारा लिखे हुए चर्चनी के ग्रन्थ हैं। इस प्रकरण की अन्तिम चौपाई में भी ज्ञान

द्वारा परमधाम के सुखों के स्वाद मिलने का कथन किया गया है।

**आगे गुमटियों चढ़ाय के, नजरों नूर मकान।**

**कौन देवे अंगुरी बताए के, बिना मेहेबूब मेहेरबान॥१८॥**

मेहर के सागर! आप हमारे प्राणवल्लभ हैं। आपके अतिरिक्त और कौन हो सकता है, जो हमें रंगमहल की दसवीं चाँदनी की गुमटियों में ले जाये और अपनी अँगुली के संकेत से अक्षर धाम को दिखलाया करे?

**दसों भोमके मोहोल सुख, कौन देवे मासूक बिन।**

**सो इत सुख ल्याए इलम, ना तो कौन देवे जिमी इन॥१९॥**

हे धनी! आपके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है, जो रंगमहल की दसों भूमिकाओं में हमें प्रेममयी लीला का

आनन्द दे। इस नश्वर जगत में भी परमधाम के अखण्ड सुखों का रसास्वादन आप तारतम वाणी द्वारा करवा रहे हैं। यह केवल आप ही कर रहे हैं।

**प्रकरण ॥१९॥ चौपाई ॥१०४९॥**

## अर्स आगूं खुली चांदनी

इस प्रकरण में रंगमहल के आगे आये हुए चाँदनी चौक का मनोरम वर्णन किया गया है। इस प्रकरण में भी विरह की सुगन्धि दृष्टिगोचर होती है।

दोऊ कमाड़ों की क्यों कहूं, नूर रंग दरपन।

ए रोसनी जुबां क्यों कहे, भरया नूर अंबर धरन॥१॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के दोनों पल्ले (किवाड़) नूरमयी हैं और इनका रंग श्वेत दर्पण के समान है। इनसे निकलने वाली अलौकिक नूरी ज्योति धरती से लेकर आकाश तक फैली हुई है। मेरी जिह्वा इस अनुपम शोभा का वर्णन भला कैसे कर सकती है।

दोऊ बाजू बड़े दरवाजे, रूहअल्ला कहा रंग लाल।

बिन अंग जुबां बोलना, आगूं क्यों कहूं अर्स दीवार॥२॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मुख्य द्वार के दोनों ओर की दीवार का रंग लाल बताया है। रंगमहल की इस अलौकिक दीवार की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ, क्योंकि मेरी जिह्वा तो नश्वर अंगों की है।

चबूतरे दीवार में, दोऊ तरफ आठ मेहेराब।

जो नीके कर निरखिए, तो तबहीं उड़ जाए ख्वाब॥३॥

मुख्य द्वार के दायें-बायें (४-४ मन्दिरों के सामने) दो चबूतरे हैं, जो कि ४ मन्दिर लम्बे व २ मन्दिर चौड़े हैं। इन दोनों चबूतरों की बाहरी और भीतरी तरफ ५-५ थम्भ आये हैं। भीतरी तरफ मन्दिरों की दीवार से लगते हुए ५ थम्भों के मध्य ४ अक्शी महराबें हैं। इस प्रकार

दोनों ओर कुल ८ महराबें दिखायी दे रही हैं। चबूतरे की बाहरी किनार पर भी ४-४ (कुल ८) खुली महराबें हैं। इस तरह दरवाजे के दोनों ओर ८-८ महराबें (४ अक्सी ४ खुली) आयी हैं। यदि इस शोभा को अच्छी तरह से देख लिया जाये, तो उसी क्षण संसार का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "ख्वाब" का तात्पर्य शरीर से नहीं, बल्कि संसार से है। यद्यपि दोनों ही स्वप्नवत हैं, किन्तु प्रसंग के अनुकूल संसार का अर्थ होगा। यदि मुख्य द्वार को गहराई से देखने पर शरीर छूट जायेगा, तो श्री लालदास एवं श्री युगलदास जी का शरीर क्यों नहीं छूटा? उन्होंने तो बहुत गहराई से मुख्य द्वार की शोभा को देखा है और उसका वर्णन किया है। "ख्वाब" के छूटने का मुख्य भाव यह है कि शरीर और

संसार के प्रति उसका मोह भाव समाप्त हो जाता है। श्रीमुखवाणी के इस कथन को किरंतन ९/१४ से जोड़कर देखा जा सकता है—

लगी वाली और कछु न देखे, पिण्ड ब्रह्माण्ड वाको है री नहीं।  
ओ खेलत प्रेमें पार पिया सों, देखन को तन सागर मांही॥

**ए जो कहे आठ मेहेराव, दोऊ चबूतरों पर।**

**ए बैठक हक हादी रूहें, भरया नूर जिमी अंबर॥४॥**

इन दोनों चबूतरों पर जो ८-८ महाराबें आयी हैं। इन चबूतरों पर युगल स्वरूप के साथ सखियाँ बैठा करती हैं। यहाँ धरती से लेकर आकाश तक चारों ओर नूर ही नूर दिखायी देता है।

**भावार्थ—** दोनों चबूतरों के बीस थम्भों के ऊपर कुल २२ महाराबें आयी हुई हैं। चबूतरों के पूर्व-पश्चिम में १६

महराबें अवश्य हैं, किन्तु सभी मिलकर २२ ही होंगी।

बीस थंभ रंग पांच के, आगूं अर्स द्वार।

दस बाएं दस दाहिने, करें रोसन नूर झलकार॥५॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के आगे दोनों चबूतरों के ऊपर ५ नगों (हीरा, माणिक, पुखराज, पाच, नीलवी) के बीस थम्भ आये हुए हैं। मुख्य द्वार के बायें चबूतरे पर १० थम्भ (५ खुले और ५ अक्शी) दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इन नूरी थम्भों का प्रकाश चारों ओर झलकार कर रहा है।

हीरा मानिक पोखरे, पाच नीलवी जे।

नूर थंभ तरफ दाहिनी, तरफ बाईं यही नूर के॥६॥

हीरा, माणिक, पुखराज, पाच, तथा नीलवी के दस नूरी थम्भ मुख्य द्वार के दाहिनी ओर के चबूतरे पर आये हैं



तथा ऐसे ही दस नूरी थम्भ बायीं ओर के चबूतरे पर आये हुए दिखायी दे रहे हैं।

**ज्यों आगूं त्यों पीछल, याके सनमुख माहें दीवार।**

**बीसों दोए चबूतरे, इन दीवार रंग लाल॥७॥**

जिस प्रकार चबूतरे के आगे १० थम्भ (५-५ प्रत्येक पर) आये हैं, उसी प्रकार चबूतरे के पीछे १० अक्शी थम्भ (५-५ प्रत्येक पर) दीवार में आये हैं। कुल मिलाकर २० थम्भ दोनों चबूतरों पर आये हैं और दीवार का रंग लाल दिखायी दे रहा है।

**अर्स आगूं खुली चांदनी, माहें चबूतरे चार।**

**दोए तले बीच बन के, दो ऊपर लगते द्वार॥८॥**

रंगमहल के आगे खुले आकाश वाला चौक (चाँदनी

चौक) है, जिसमें चार चबूतरे दिखायी देते हैं। दो चबूतरे मुख्य द्वार के सामने जमीन पर अमृत वन के बीच में आये हैं। इन पर लाल (आम) एवं हरा (अशोक) वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। इसी प्रकार दो चबूतरे रंगमहल की दीवार से लगते हुए मुख्य द्वार के दायें-बायें आये हुए हैं।

**विशेष-** सम्पूर्ण रंगमहल एक भूमिका ऊँचे २०१ हाँस के गोल चबूतरे पर आया हुआ है। धरती की सतह (चाँदनी चौक) से मुख्य द्वार तक १०० सीढ़ियाँ आयी हुई हैं। १०० सीढ़ियों के पश्चात् मुख्य द्वार के सामने दो मन्दिर का लम्बा-चौड़ा चौक है, जिसके दायें-बायें चौक से एक हाथ ऊँचे दो चबूतरे हैं जो ४ मन्दिर के लम्बे व २ मन्दिर के चौड़े हैं। चाँदनी चौक के दोनों चबूतरे कमर भर ऊँचे हैं।

इन मोहोलों सुख क्यों कहूं, आगूं बड़े दरबार।

हक हादी सुख इन कठेड़े, देत बैठाए बारे हजार॥९॥

रंगमहल की लीला में इतना अधिक आनन्द है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। रंगमहल के मुख्य द्वार के दायें-बायें दोनों चबूतरों (बड़े दरबार) पर बैठाकर युगल स्वरूप सखियों को अपार आनन्द देते हैं। इन चबूतरों की बाहरी किनार पर (चाँदनी चौक की ओर) थम्भों के मध्य कठेड़ा सुशोभित हो रहा है। चबूतरे के ऊपर सिंहासन और कुर्सियाँ रखी होती हैं, जिन पर श्री राजश्यामा जी और सखियाँ विराजमान होते हैं तथा चाँदनी चौक की ओर मुख करके तरह-तरह की लीलाओं का आनन्द लेते हैं।

आगूं इन मोहोलों खेलौंने, खेल करत कला अपार।

नाम जुदे जुदे तो कहूं, जो कहूं आवे माहें सुमार॥१०॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के दायें-बायें चबूतरों पर श्री राजश्यामा जी व सखियाँ विराजमान होते हैं, तो सामने चाँदनी चौक में अनेक प्रकार के पशु-पक्षी अनन्त कलाओं से खेल करके उन्हें रिझाते हैं। इन पशु-पक्षियों के नाम तो तभी बताये जा सकते हैं, जब उनकी कोई सीमा हो।

ए सुख लें अरवा अर्स की, हक हादी संग निस दिन।

ए जाहेर किया इत हुकमें, वास्ते हम मोमिन॥११॥

युगल स्वरूप के साथ परमधाम की आत्मायें दिन-रात इस लीला का सुख लेती हैं। इस लीला का ज्ञान हम ब्रह्मांगनाओं के लिये ही धाम धनी के हुक्म ने तारतम

वाणी द्वारा संसार में प्रकट किया है।

**चारों हांसों खुली चांदनी, तीन तरफों बन बराबर।**

**तरफ चौथी झरोखे अर्स के, सोभे आगूं चबूतर॥१२॥**

रंगमहल के मुख्य द्वार व दोनों चबूतरों के सामने १६६ मन्दिर का लम्बा-चौड़ा (सम-चौरस) चौक है। खुले आकाश (चाँदनी) से युक्त होने के कारण इसे चाँदनी चौक कहते हैं। इसके तीन ओर (उत्तर, दक्षिण, तथा पूर्व में) अमृत वन के वृक्ष हैं और चौथी तरफ रंगमहल की बाहरी हार मन्दिरों के झरोखे शोभायमान हैं।

**नोट-** दरवाजे के हाँस के मन्दिरों में झरोखे नहीं हैं। इसके दायें-बायें के ७८-७८ मन्दिरों में झरोखे हैं, जो चाँदनी चौक की हद में आते हैं।

तले जो दोऊ चबूतरे, बिरिख लाल हरा तिन पर।

ए बिरिख द्वार चबूतरे, नूर रोसन करत अंबर॥१३॥

चाँदनी चौक में जो दो चबूतरे आये हैं, उन पर लाल (उत्तर में) और हरे (दक्षिण में) रंग के वृक्ष (आम तथा अशोक) सुशोभित हो रहे हैं। वृक्षों वाले इन दोनों चबूतरों की चारों दिशा के मध्य से ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। सीढ़ियों की जगह को छोड़कर शेष बाकी जगह में किनार पर कठेड़ा शोभायमान है। इसलिये सीढ़ियों की जगह को "कठेड़ा द्वार" कहा जाता है। इन दोनों चबूतरों से निकलने वाला नूर सम्पूर्ण आकाश मण्डल को प्रकाशित कर रहा है।

इत जोत जिमी की क्यों कहूं, हुआ आकास जिमी एक।

सोभा क्यों कहूं आगूं अर्स के, जानों सबसे एह विसेक॥१४॥

चाँदनी चौक से उठने वाली अनुपम ज्योति की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। चारों ओर ज्योति ही ज्योति दिखायी देने से धरती और आकाश में कोई भेद ही नहीं रह गया है। रंगमहल के आगे पूर्व में स्थित इस चाँदनी चौक की शोभा को मैं कैसे व्यक्त करूँ। ऐसा प्रतीत होता है कि यह शोभा सबसे अलग, कुछ विशेष प्रकार की है।

**आगूं अर्स चबूतरे, हम सखियां बैठत मिलकर।**

**ए सुख हमारे कहां गए, खेलत नाचत बांदर॥१५॥**

जब रंगमहल के सामने चाँदनी चौक के इन दोनों चबूतरों पर हम सखियाँ मिलकर बैठती थीं, तो सामने चाँदनी चौक में बन्दर खेलते थे और मनोहर नृत्य करते थे। इस खेल में आने के बाद ये सुख हमसे दूर हो गये हैं।

इत तखत कदेले कुरसियां, बैठें रूहें बारे हजार।

सुख इतके हमारे कहां गए, मोर नचावनहार॥१६॥

चाँदनी चौक के इन चबूतरों पर सिंहासन, गद्देदार आसन, और कुर्सियाँ रखी हुई हैं, जिन पर युगल स्वरूप सहित हम १२००० सखियाँ बैठा करती थीं। हमारे सामने मोरों का बहुत ही मनमोहक नृत्य हुआ करता था। इस खेल में परमधाम के वे सुख न जाने हमसे कहाँ चले गये।

हक हमारे इत बैठके, कै विध करें मनुहार।

कई पसु पंखी अर्सके, इत सुख देते अपार॥१७॥

इन चबूतरों पर हमारे प्राणवल्लभ हमारे साथ बैठकर हमें तरह-तरह से आनन्दित किया करते थे। इस समय परमधाम के अनेक पशु-पक्षी भी अपनी-अपनी कलाओं



से हमें अपार सुख दिया करते थे।

**द्रष्टव्य—** यद्यपि परमधाम में पल-भर भी नहीं बीता है, किन्तु इस खेल में बहुत लम्बा समय व्यतीत हो गया है। इसलिये, विरह के भावों में परमधाम की लीलाओं सहित शोभा का वर्णन किया जा रहा है। भले ही परमधाम पूर्णरूप से जाग्रत है और लीला में सैद्धान्तिक रूप से व्यवधान (रुकावट) की बात दर्शन शास्त्र के विद्वानों के गले नहीं उतर सकती, किन्तु विरह का वर्णन भूतकाल में ही किया जाता है। यहाँ वैसा ही प्रसंग चल रहा है।

सुख सब पसु पंखियन के, कई खेल बोल दें सुख।

ए आगूं अर्स आराम के, क्यों कर कहूं इन मुख॥१८॥

रंगमहल के आगे चाँदनी चौक में सभी पशु-पक्षी तरह-तरह के खेल दिखाकर और मीठे-मीठे शब्द बोलकर

सखियों को सुख देते हैं। इस आनन्दमयी लीला को मैं इस मुख से कैसे कहूँ।

**कबूँ एक एक पसु खेलत, कबूँ एक एक जानवर।**

**ए सुख अर्स अजीम के, सुपन जुबां कहे क्यों कर॥१९॥**

बहुत से पशुओं की सामूहिक क्रीड़ा के साथ कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वर्ग विशेष का केवल एक ही पशु अपनी मनोहर क्रीड़ाओं का प्रदर्शन करता है। ये अलौकिक सुख उस सर्वोपरि परमधाम के हैं। इनका वर्णन करने का सामर्थ्य इस स्वप्न की जिह्वा (वाक्) में नहीं है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के प्रथम चरण में कथित "कबूँ एक एक पसु खेलत" का भाव यह होता है कि चाँदनी चौक में पशु-पक्षियों की क्रीड़ा में एक-एक जाति (वर्ग)

का एक-एक पशु आकर अपना खेल दिखाता है।

**कई बांदर बाजे बजावहीं, आगूं अर्स के नाचत।**

**ए सुख हमारे कहां गए, हम देख देख राचत॥२०॥**

रंगमहल के आगे चाँदनी चौक में बहुत से बन्दर तरह-  
तरह के बाजे बजाते हैं और मोहक नृत्य करते हैं। उनकी  
मनोहर क्रीड़ाओं को देखकर हम सभी सखियाँ बहुत ही  
प्रफुल्लित (खुश) हुआ करती थीं। पता नहीं, ये सुख  
हमसे दूर होकर अब कहाँ चले गये हैं, अर्थात् इस संसार  
में आ जाने से इस लीला का प्रत्यक्ष आनन्द अब हमें  
प्राप्त नहीं हो पा रहा है।

**इत कई विध पसु खेलत, कई खेलत हैं जानवर।**

**खेल बोल नाच देखावहीं, कई हंसावत लड़कर॥२१॥**

चाँदनी चौक में पशु-पक्षी तरह-तरह की मनोहर क्रीड़ाएँ करते हैं। वे अनेक प्रकार के खेल खेलकर, बोलकर, तथा नाचकर सखियों को खुश करते हैं। बहुत से पशु-पक्षी तो आपस में इस प्रकार की लड़ाई करते हैं कि उन्हें देखकर सखियाँ हँसने लगती हैं।

**हक हादी रूहें चाँदनी बैठत, ऊपर होत बखत मलार।**

**मोर बांदर दादुर कोकिला, सुख देत कर टहुंकार॥२२॥**

कभी-कभी जब श्री राजश्यामा जी सुन्दरसाथ के साथ चाँदनी चौक में चबूतरों के ऊपर बैठे होते हैं, तो उस समय मनभावन वर्षा होने लगती है। ऐसे समय में मोर, बन्दर, मेंढक, और कोयल अपनी मधुर वाणी से सबको आनन्दित कर देते हैं।

सुख कहाँ गए इन समें के, कई विध बन करें गुंजार।

सेहेरा गाजत छाया बादली, होत बीजलियां चमकार॥२३॥

उस समय आकाश में चारों ओर घने बादल छा जाते हैं और गम्भीर स्वरों में गर्जना करने लगते हैं। बिजलियाँ चमकने लगती हैं। वन में पशु-पक्षियों की गूँज सुनायी पड़ने लगती है। परमधाम के इस समय की मनोहर लीला के सुख हमसे दूर होकर कहाँ चले गये हैं।

बट पीपल की चौकियां, चारों भोम हिंडोले।

ए सुख कब हम लेवेंगे, हक हादी रूहें भेले॥२४॥

रंगमहल की दक्षिण दिशा में वट-पीपल की चौकी है। इसमें वट और पीपल के १५ वृक्षों की ५ हारें क्रमशः आयी हैं। इनकी चारों भूमिकाओं में हिण्डोले लगे हुए हैं, जिनमें युगल स्वरूप के साथ झूला झूलने का सुख हम

आत्मार्यें फिर कब लेंगी?

चारों भोम चौकी हिंडोले, हक हादी रूहें हींचत।

हम सुख लेती सब मिल के, सो कहां गई निसबत॥२५॥

वट-पीपल की चौकी में चारों भूमिकाओं में हिण्डोले लगे हुए हैं। इन हिण्डोलों में श्री राजश्यामा जी के साथ हम सभी सखियाँ झूला झूलने का आनन्द लिया करती थीं। अब वह सम्बन्ध कहाँ चला गया?

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में विरह के दर्द को प्रकट करने वाला व्यंग्यात्मक परिहास है। निस्वत (मूल सम्बन्ध) के समाप्त होने का भाव यह है कि हे धनी! क्या आपने उस सम्बन्ध को भुला दिया है, अर्थात् आप हमें भूल गये हैं (पहले हमारे साथ झूला झूलते थे, अब क्यों नहीं झूलते)?

एक अलंग सारी हिंडोले, सो सिफत न कही जाए।

अधिकारी इन सुख के, सो काहे को रूह बिलखाए॥२६॥

सभी हिण्डोले एक ही सीध में (पंक्तिबद्ध रूप से) आये हुए हैं। इनकी शोभा का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। हम अँगनायें मूल सम्बन्ध से आपके साथ झूला झूलने की अधिकारिणी हैं। ऐसी स्थिति में आप हमें क्यों बिलखा रहे हैं, अर्थात् हमारे साथ झूला क्यों नहीं झूलते?

**भावार्थ-** यद्यपि इस मायावी जगत में परमधाम की तरह श्री राज जी का कोई नूरमयी तन इस रूप में नहीं है कि झूला झूलने का आनन्द लिया जा सके। किन्तु इस तरह की अभिव्यक्ति का आशय आत्म-जाग्रति की ओर कदम बढ़ाने के भाव में है कि हम प्रेममयी चितवनि में इस प्रकार डूब जायें कि हमें ऐसा लगे कि हम साक्षात्

परमधाम में श्री राजश्यामा जी के साथ ही झूले झूल रहे हैं। दूसरा भाव खेल समाप्ति के बाद परात्म में जाग्रत होकर प्रत्यक्ष लीला के आनन्द से भी है। आगे की चौपाई २७, २८, और २९ में इसी प्रकार की भावना है।

**पसु पंखी चारों भोम के, सुख देत दिल चाहे।**

**सो सुख कब लेसी मोमिन, क्यों इन बिन रह्यो जाए॥२७॥**

वट-पीपल की चौकी की चारों भूमिकाओं के पशु-पक्षी सखियों को उनके दिल की इच्छानुसार सुख देते हैं। उन सुखों को हम पुनः कब प्राप्त करेंगी ? आश्चर्य है! उन सुखों के बिना भी हम इस संसार में कैसे रह रही हैं?

**कब सुख लेसी फूल बाग के, बाग ऊपर झरोखे।**

**कहां जाऊं किनसो कहूं, कब हम सुख लेवें ए॥२८॥**



रंगमहल की पश्चिम दिशा में धाम चबूतरे से लगते हुए बाहरी हार मन्दिरों की दीवारों व झरोखों के ठीक सामने फूलों के बगीचे हैं। इन झरोखों से सामने स्थित फूलबाग का मनमोहक दृश्य देखा जाता है। प्राणप्रियतम! अब आप ही बताइये कि झरोखों में बैठकर हम फूलबाग के दृश्यों का सुख कब लेंगी? उसे पाने के लिये मैं कहाँ जाऊँ? किससे अपने तड़पते मन की पीड़ा बताऊँ? हमें वे सुख पुनः कब मिलेंगे?

ए जो चेहेबच्चे फूल बाग के, इत कारंजे उछलत।

ए सुख कब हम पावेंगे, कहाँ जाए पुकारुं कित॥२९॥

फूलबाग के चहबच्चों में फव्वारे का सुन्दर दृश्य दिखायी पड़ता है। अब हमें वे फव्वारे देखने का अवसर कब प्राप्त होगा? मैं अपने हृदय की इस पीड़ा को कहाँ जाकर

किससे कहूँ?

जो सुख लाल चबूतरे, लेत मोहोला बड़े पसुअन।

ए बैठक सुख क्यों कहूं, ए सुख जानें अर्स के तन॥३०॥

रंगमहल की उत्तर दिशा में लाल चबूतरा आया है, जिस पर युगल स्वरूप के साथ बैठकर हम सभी सखियाँ बड़े-बड़े पशुओं का अभिवादन स्वीकार करती थीं। इस सुख को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसे तो मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, जिनके मूल तन मूल मिलावा में विद्यमान हैं।

हांस चालीस चबूतरा, धरत कठेड़ा जोत।

केहे केहे मुख केता कहे, आसमान भरयो उद्योत॥३१॥

लाल चबूतरा ४० हाँस का लम्बा व एक हाँस का चौड़ा

आया है। प्रत्येक हाँस में १-१ सिंहासन व १२-१२ हजार कुर्सियाँ रखी हुई हैं, और प्रत्येक हाँस के सामने चाँदों से (दायें-बायें) एक भूमिका की सीढ़ियाँ उतरी हैं। चाँदों की जगह को छोड़कर सम्पूर्ण बाहरी किनार पर अति सुन्दर कठेड़ा आया हुआ है, जिसकी ज्योति से आकाश में सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दिखायी पड़ रहा है। इस मुख से उसकी शोभा का कितना वर्णन किया जाये। बस इतना ही कहकर मौन रहना पड़ता है।

**बाघ चीते गज केसरी, हंस गरुड़ मुरग मोर।**

**पसु पंखी सुख क्यों कहूं, इन जुबां के जोर॥३२॥**

लाल चबूतरे के सामने आये हुए १६०० अखाड़ों में बाघ, चीते, हाथी, केशरी सिंह, हंस, गरुड़, मुर्गे, मोर आदि अनेक प्रकार के पशु-पक्षी तरह-तरह के खेल

करके श्री राजश्यामा जी एवं सखियों को रिझाते हैं और स्वयं भी आनन्दित होते हैं। इस जिह्वा से इनके सुखों का वर्णन कर पाना कदापि सम्भव नहीं है।

**इत बिछौने दुलीचे, ऊपर सोभित सिंघासन।**

**सोभे कई भांतों छत्रियां, कब हक देवें हादी रुहन॥३३॥**

चबूतरे के ४० हाँसों में बिछौने और दुलीचे सुशोभित हो रहे हैं। प्रत्येक हाँस में सिंहासन और कुर्सियों की अपार शोभा आयी है। इन सिंहासनों में अनेक प्रकार की छत्रियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। प्रियतम अक्षरातीत श्यामा जी सहित हम अँगनाओं को लाल चबूतरे का यह सुख कब देंगे?

कई रंगों बन सोभित, चौक सोभित चबूतर।

ए खूबी आगूं अर्स के, इन जुबां कहूं क्यों कर॥३४॥

लाल चबूतरे के सामने कई रंगों के बड़ोवन के वृक्ष शोभायमान हैं। चबूतरे के ४० हाँसों के सामने ४० चौकों (अखाड़ों) की ४० हारें आयी हैं, जहाँ तरह-तरह के पशु-पक्षी अपने खेल दिखाते हैं। रंगमहल की उत्तर दिशा में आये हुए लाल चबूतरे की यह शोभा है, जिसका वर्णन मैं इस जिह्वा से कैसे करूँ।

कहां बन कहां खेलना, कहां सुख मेले सखियन।

कहां नाचें मोर बांदर, कहां सुख पसु पंखियन॥३५॥

वनों में सखियों के साथ जाकर तरह-तरह के खेल खेलने के सुख कहाँ चले गये? परमधाम में हम मोरों और बन्दरों आदि पशु-पक्षियों के नृत्य को देख-देखकर

आनन्दित हुआ करती थीं, किन्तु इस खेल में हमारे वे सभी सुख हमसे कहीं दूर चले गये हैं (प्राप्त नहीं हो रहे हैं)।

अर्स जिमी जरे की रोसनी, मावत नहीं आकास।

कब देखें सुख इन जिमी, जित बरसत नूर प्रकास॥३६॥

परमधाम की धरती के एक कण की ज्योति इतनी अनन्त है कि वह आकाश में भी नहीं समा पाती। हे धनी! हम परमधाम की उस धरती का अनन्त सुख कब देखेंगी, जहाँ नूरी ज्योति की वर्षा अखण्ड रूप से होती रहती है।

जोत एक दरखत पात की, हुआ अंबर जिमी रोसन।

धनी ए सुख कब देओगे हमें, अपने इन बागन॥३७॥

परमधाम में वृक्ष के एक पत्ते में ही इतनी ज्योति है कि उससे धरती से लेकर आकाश तक प्रकाश ही प्रकाश फैल जाता है। हे प्रियतम! वे दिन कब आयेंगे, जब आप हमें परमधाम के इन बागों में होने वाली प्रेममयी लीला का सुख देंगे?

इत हक कहावें हुकम कहे, वास्ते हादी रूहन।

अर्स में केहेसी सुख खेल के, सिर ले कहे महामत मोमिन॥३८॥

श्री महामति जी की आत्मा धनी की "मैं" लेकर सुन्दरसाथ से कहती है कि श्यामा जी सहित परमधाम की हम सभी आत्माओं को सुख देने के लिये श्री राज जी मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर अपने हुकम (आदेश) से मुझसे कहलवा रहे हैं। जब हम सभी अँगनायें परमधाम में जाग्रत होंगी, तो इस जागनी लीला

के सुखों की चर्चा करेंगी।

प्रकरण ॥२०॥ चौपाई ॥१०८७॥



## सात घाट पुल हौज

इस प्रकरण में हौज कौसर ताल में प्रवेश करती हुई यमुना जी के सातों घाटों एवं दोनों पुलों की शोभा का सुन्दर चित्रण किया गया है।

और सुख सातों घाट के, और सुख दोऊ पुल।

ए सुख सब अर्स के, कब लेसी हम मिल॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! यमुना जी के अति मनोरम सातों घाटों तथा दोनों पुलों (केल एवं वट) में श्री राजश्यामा जी के साथ लीला करने का सुख अद्वितीय है। परमधाम के इन सुखों को शब्दों की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। हे प्रियतम ! आपकी मेहर की छाँव तले हम सभी आत्मायें कब इन सुखों का रसपान करेंगी?

घाट जांबू अति सोभित, जिमी जड़ाव किनारे जोए।

कई मोहोल किनारे जवेरों, बन सोभित किनारे सोए॥२॥

श्री यमुना जी के दोनों किनारों की जमीन (जल रौंस) सुन्दर रत्नों से जड़ी हुई है। कई रत्न-जड़ित महल (छोटी-छोटी देहुरियाँ) भी यमुना जी के किनारे जल रौंस में है। जल रौंस की बाहरी तरफ कमर-भर ऊँची पाल है, जिस पर बड़ोवन के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। जम्बू वन के सामने ये वृक्ष जम्बू (जम्बू-जामुन) के रूप में आये हैं। इस प्रकार यमुना जी के किनारे जम्बू घाट की अति सुन्दर शोभा दिखायी दे रही है।

ए बन जड़ाव जानों चंद्रवा, कई रंग बने इन हाल।

जाए पोहोंच्या लग झरोखों, अर्स की हद दीवार॥३॥

जम्बू वन के वृक्षों की डालियों, पत्तों, तथा फूलों ने

आपस में मिलकर रत्नजड़ित चन्द्रवा के समान अति सुन्दर छत (चाँदनी) का निर्माण कर दिया है। यह चन्द्रवा अनेक रंगों की चित्रकारी से युक्त है। जम्बू वन रंगमहल की सीमा में आया है, इसलिये इन वृक्षों की डालियाँ रंगमहल की बाहरी हार मन्दिरों के झरोखों से लगी हुई हैं।

**देखो बन ए नारंगी, जानों उनथें एह अधिक।**

**सुख लेती रूहें इन घाट के, कब देसी हमें हक॥४॥**

हे साथ जी! इस नारंगी वन की अनुपम शोभा को देखिए। यहाँ नारंगी वन जम्बू वन से लगकर दक्षिण दिशा में आया है। ऐसा लगता है जैसे यह वन जम्बू वन से अधिक सुन्दर है। हम आत्मायें नारंगी घाट में धनी के साथ प्रेममयी लीला करके बहुत अधिक आनन्दित हुआ

करती थीं। पता नहीं, अब धाम धनी कब उस लीला का आनन्द देंगे?

**भावार्थ**— परमधाम में सबकी शोभा समान है, किन्तु वर्णन शैली ऐसी होती है कि वर्णित (जिसका वर्णन किया जा रहा हो) वस्तु को सबसे अधिक सुन्दर कहा ही जाता है। इस चौपाई के चौथे चरण में विरह की भावुकता को दर्शाया गया है।

**घाट नारंगी अति भला, जानों कोई न इन समान।**

**सो कब पावें सुख झीलना, जो हम लेतीं संग सुभान॥५॥**

नारंगी का घाट बहुत सुन्दर है। ऐसा लगता है कि कोई भी घाट इसके समान सुन्दर नहीं है। हे प्राणवल्लभ! आपके साथ नारंगी घाट के सामने यमुना जी में हम सभी सखियाँ जल-क्रीड़ा (स्नान) किया करती थीं। अब हम

सभी आपके साथ जल-क्रीड़ा (झीलना) का आनन्द  
पुनः कब लेंगी?

कई रंग बन छत्रियां, सुंदर अति सोभाए।  
करत अंबर में रोसनी, पोहोंची अर्स हिंडोलों जाए॥६॥  
नारंगी वन के वृक्षों की डालियाँ अनेक रंगों की  
चित्रकारी से युक्त सुन्दर छत्रियों के रूप में शोभायमान  
हैं, जिनकी तेजोमयी ज्योति आकाश तक प्रकाश कर  
रही है। यह नारंगी वन आगे (पश्चिम में) हिण्डोलों की  
शोभा से युक्त वट-पीपल की चौकी तक गया है।

सोभा बट घाट क्यों कहूं, तरफ चारों चार दीवार।  
जरी किनारे दोऊ सोभित, क्यों देऊं इन मिसाल॥७॥  
नारंगी घाट से लगकर दक्षिण में वट घाट आया है।

इसकी अनुपम शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। इसके धड़ (तने) के चारों ओर बड़वाई रूपी थम्भों की चार हारें हैं, जिनके मध्य महाराबों की शोभा आयी है। इन्हीं थम्भों और महाराबों को दीवार कहा गया है। यमुना जी के दोनों किनारे (वट घाट के) रत्नजड़ित हैं। इनकी शोभा की मैं क्या उपमा दूँ।

**ऊपर बिराजत हिंडोले, तरफ चारों सोभित।**

**ऊपर जल पुल लगते, ए सुख कहां गए अतंत॥८॥**

इस वृक्ष के धड़ के चारों ओर बड़वाईयों के थम्भों के मध्य की महाराबों में पाँचों भूमिकाओं में हिण्डोले सुशोभित हो रहे हैं। इसकी पाँचों भूमिकाओं की डालियाँ पूर्व में यमुना जी के जल चबूतरे तक छायी हुई हैं तथा वट पुल के छज्जों से भी मिली हुई हैं। हमारे ये अनन्त

सुख अब कहाँ चले गये हैं (अब हमें इन सुखों का अनुभव क्यों नहीं हो रहा है)?

क्यों कहूँ रेती इन भोम की, जानों उज्जल मोती सेत।

ए सुख हमारे कहाँ गए, जो इन भोम में लेत॥९॥

यहाँ (वट घाट) की धरती की रेत की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। यहाँ की रेत के कण श्वेत रंग के उज्ज्वल मोतियों के समान जगमगाते रहते हैं। यहाँ की नूरमयी रेतीली धरती में जो हम तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करती थीं, वे सुख हमसे दूर होकर कहाँ चले गये हैं?

अचरज बन इन घाट का, सोभित ज्यों मंदिर।

बेल पात फूल फल छाहें, ए सोभित अति सुंदर॥१०॥

इस प्रकार, वट के घाट की बहुत अद्भुत शोभा है। यह

वट वृक्ष मन्दिर के समान सुशोभित हो रहा है। इस वृक्ष की डालियाँ, फल, फूल, पत्ते, तथा इस पर चढ़ी हुई बेलें आपस में इस प्रकार मिल गयी हैं कि सम्पूर्ण चबूतरे पर एक जैसी छाया प्रदान कर रही हैं।

**कहां सुख सातों घाट के, कहां सुख पुल मोहोलात।**

**कहां सुख झरोखे जल पर, जो तले नेहेरें चली जात॥११॥**

दोनों पुलों के छज्जे दूसरी भूमिका से पाँचवी भूमिका तक चारों ओर निकले हैं। दक्षिण की तरफ के छज्जों (झरोखों) में खड़े होकर पुल के नीचे से यमुना जी की १० धाराओं के निकलने का सुन्दर दृश्य हम सखियाँ देखा करती थीं, वे सुख कहाँ चले गये? इसी प्रकार, यमुना जी के दोनों तरफ से सातों घाटों के वृक्षों की पाँचों भूमिकाओं की डालियाँ भी जल चबूतरे तक छायी



हैं, जहाँ से हम यमुना जी का मनोरम दृश्य देखा करती थीं। अब यह सुख भी हमारे हाथ से चला गया है।

जोए बट थें कुंज बन चल्या, बोहोत रेती बीच ताए।

ताल हिंडोलों बीच होए, आगूं निकस्या जाए॥१२॥

यमुना जी के वट घाट के पश्चिम (वट के वन की जगह) में कुञ्ज-निकुञ्ज वन आया है, जिसके बीच में से बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें वट (वड़) रूप होकर पश्चिम की ओर निकली हैं। यह कुञ्ज-निकुञ्ज वन वट पीपल की चौकी व हौज़ कौसर ताल के मध्य से होकर पश्चिम दिशा में गया है। पुनः हौज़ कौसर ताल की परिक्रमा लगाकर अक्षर धाम के पूर्व तक गया है। कुञ्ज-निकुञ्ज की जमीन पर बहुत ही उज्ज्वल एवं तेजोमयी रेत बिछी हुई है।

किन विध लेवें सुख बन के, क्यों हिंडोलों हींचत।

किन विध रूहें अर्स में, माहों-माहें खेल करत॥१३॥

हे धनी! हमें बारम्बार परमधाम की लीलाओं की याद आ रही है कि हम किस प्रकार वनों में जाकर तरह-तरह की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करते हुए सुख लिया करती थीं और फूलों के हिण्डोलों में आनन्दपूर्वक झूला करती थीं।

मोहोल बने बेलियन के, सेज हिंडोले सिंघासन।

चेहेबच्चे फुहारे कई सुख, कब होसी रूहन॥१४॥

परमधाम के कुञ्ज-निकुञ्ज आदि वनों में पत्तियों, फूलों, तथा लताओं के ही महल, सेज्यायें (शय्यायें), हिण्डोले, सिंहासन आदि बने हुए हैं। इनमें अति सुन्दर चहबच्चे तथा फव्वारे चला करते हैं। हे प्राणेश्वर! हमें इन सुखों का पुनः अनुभव कब होगा?

इन मंदिरों सेज्या सिंघासन, छोटे चेहेबच्चे हिंडोले।

कई फुहारे नेहेरें चलें, धनी हमें कब सुख देओगे ए॥१५॥

हमें आप इन फूलों के मन्दिरों में स्थित शय्याओं पर सोने, सिंहासन और कुर्सियों पर बैठने, हिण्डोलों में झूलने, तथा फव्वारों, चहबच्चों, एवं नहरों में बहते हुए मनोरम जल-प्रवाह को देखने का सुख कब देंगे?

कहां सुख गलियां अर्स की, माहों-माहें बांध के होड़।

रूहें रेती में ठेकतियां, दौड़तियों कर जोड़॥१६॥

हे प्राणप्रियतम! हम सभी सखियाँ परमधाम की गलियों में आपस में होड़ बाँधकर साथ-साथ एक-दूसरे का हाथ पकड़कर दौड़ा करती थीं। सुन्दर एवं कोमल रेती में कूदा करती थीं, किन्तु अब वे सुख कहाँ चले गये हैं?

इन घाट आगूं पुल जोए पर, जाए पार पोहोंच्या पुल।

ए भी तिन बराबर, जो पेहेले कह्या अव्वल॥१७॥

वट घाट के आगे यमुना जी पर पुल बना हुआ है। इसी पुल द्वारा यमुना जी के उस पार जाया जाता है। इस पुल की शोभा भी वैसी ही है, जैसा पहले केल पुल के बारे में कहा गया है।

बन जो दोऊ किनारों, साम सामी सोभात।

हारें चौकी पांच हार की, पोहोंची पुल पर छत॥१८॥

यमुना जी के दोनों किनारों पर जो वन आये हैं, वे आमने-सामने शोभा देते हैं। दोनों पाल के ऊपर बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें आयी हैं, जिनकी पाँच भूमिका एवं छठी चाँदनी है। इनकी छत (चाँदनी) पुल की छत से मिली हुई है।

पुल तले नेहेरें चलें, दोऊ पुल मुकाबिल।

दोऊ बीच सोभा देय के, जाए ताल पोहोंच्या जल॥१९॥

दोनों पुल आमने-सामने हैं तथा इनके नीचे से १० घड़नालों से १० नहरों के रूप में जल प्रवाहित होता है। यमुना जी का अति उज्ज्वल जल दोनों पुलों के बीच से सुशोभित होता हुआ हौज़ कौसर ताल में जाकर मिल जाता है।

कहां गए सुख जोए के, जमुना जरी किनार।

कहां सुख जल कहां झीलना, कहां नित नए सिनगार॥२०॥

हे प्रियतम! यमुना जी के दोनों किनारे रत्नों से जड़े हुए हैं। आपके साथ हम जल में स्नान (जल-क्रीड़ा) किया करती थीं और जल के किनारे बनी हुई देहुरियों में नित्य ही नये-नये श्रृंगार किया करती थीं। अब वे सुख हमसे

छिन क्यों गये (अलग क्यों हो गये)?

दोऊ किनारे जोए के, एक मोहोल एक चबूतर।

कहूं हेम रंग कहूं जवेर, अति सोभित बन ऊपर॥२१॥

वट पुल से आग्नेय कोण के मरोड़ तक यमुना जी के दोनों किनारे पाल पर क्रमशः ५ महल और ४ चबूतरे आये हैं, जिन्हें एक महल एक चबूतरा कहा जाता है। कहीं पर ये स्वर्णमयी रंग के हैं, तो कहीं पर नूरमयी जवाहरातों के बने हुए हैं। इनकी बाहरी तरफ पुखराजी रौंस पर बड़ोवन के वृक्ष शोभायमान हैं, जिनकी डालियाँ "एक महल-एक चबूतरे" के ऊपर से होते हुए यमुना जी के जल चबूतरे तक गयी हैं।

जमुना दोऊ किनार के, मोहोल ढापिल दोऊ ओर।

तलाव तरफ जोए आए के, जाए मांहे मिली मरोर॥२२॥

एक महल—एक चबूतरा के आगे आग्रेय कोण में यमुना जी मरोड़ खाकर हौज़ कौसर ताल की तरफ मुड़ जाती हैं। मरोड़ से ताल तक, यमुना जी के दोनों किनारे पाल पर थम्भों की २-२ हारें आयी हैं, जिनकी छत पर ९०-९० देहुरियाँ सुशोभित हो रही हैं। पुखराजी रौंस के बड़ोवन के वृक्षों की डालियाँ इन देहुरियों के ऊपर से होते हुए यमुना जी के जल चबूतरे तक छायी हुई हैं। इस प्रकार, यमुना जी हौज़ कौसर ताल में मिल जाती हैं।

**प्रकरण ॥२१॥ चौपाई ॥११०९॥**

## हौज कौसर

इस प्रकरण में हौज़ कौसर की शोभा का मनोरम चित्रण किया गया है।

अब ताल पाल की क्यों कहूँ, बन पांच हार गिरदवाए।

फिरती दयोहरी चबूतरे, सोभा इन मुख कही न जाए॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि अब मैं हौज़ कौसर ताल के पाल की शोभा का वर्णन कैसे करूँ। इस पर बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें घेरकर आयी हैं। ताल की दो पालें हैं— चौरस पाल तथा ढलकती पाल। चौरस पाल पर वृक्षों की तीन हारें हैं तथा ढलकती पाल पर वृक्षों की दो हारें आयी हैं। चौरस पाल के पहले हिस्से (कटी पाल) में १२४ छोटी देहुरियाँ तथा चबूतरे (जिनसे दायें—बायें सीढ़ियाँ उतरी हैं) शोभायमान हैं। दूसरे हिस्से



(ताल की तरफ से) में १२८ बड़ी देहुरियाँ घेरकर आयी हैं, जिनकी शोभा का वर्णन इस मुख से हो पाना असम्भव है।

**भावार्थ-** चौरस पाल के प्रथम हिस्से में पाल कटी हुई है, वहाँ से चाँदों द्वारा दायें-बायें सीढ़ियाँ उतरी हैं, इसलिए इस भाग को कटी पाल कहते हैं।

**बड़े घाट ताल के चार हैं, चारों सनमुख बराबर।**

**दोऊ तरफ उतरती दयोहरी, तले आगूं चबूतरा॥२॥**

हौज़ कौसर ताल के चार बड़े घाट हैं, जो पूर्णतया आमने-सामने स्थित हैं। नौ देहुरी, तेरह देहुरी, और झुण्ड के घाट में चौरस पाल के तीसरे हिस्से में (बाहर की तरफ से) घाट की सीढ़ियाँ उतरी हैं, जिनके दायें-बायें (चौरस पाल पर) दो बड़ी-बड़ी देहुरियाँ हैं। दोनों

देहुरियों के सामने चौरस पाल के चौथे हिस्से (कटीपाल) में दो चबूतरे हैं, जिनसे दायें-बायें कटी पाल की सीढ़ियाँ उतरती हैं।

**पाल ऊपर जो दयोहरियां, आगूं हर दयोहरी चबूतर।**

**तिन दोऊ तरफों सीढ़ियां, जित होत चढ़ उतर॥३॥**

चौरस पाल पर तीसरे हिस्से में १२८ बड़ी देहुरियाँ हैं, जिनके सामने चौरस पाल के चौथे हिस्से में १२८ चबूतरे (चाँदे) हैं। इनके दायें-बायें कटी पाल की सीढ़ियाँ उतरती हैं, जहाँ से सखियाँ नीचे पाल अन्दर के महलों व जल रौंस में जाने के लिये चढ़ती उतरती हैं।

**विशेष-** इन १२८ चबूतरों के नीचे १२८ बड़े दरवाजे (२५० मन्दिर चौड़े) आये हैं।

सीढ़ी मुकाबिल सीढ़ियां, आए मिलत हैं जित।

दो दो बीच द्वार नें, सबों सोभित परकोटे इत॥४॥

आमने-सामने जहाँ कटी पाल की सीढ़ियाँ उतरती हैं, वहाँ उस चौक पर दो-दो महराबी द्वार हैं। एक द्वार ताल की तरफ है तथा एक द्वार पाल के अन्दर के महलों की तरफ है। कटी पाल की इन सीढ़ियों की बाहरी (ताल की) तरफ काँगरीयुक्त कमर-भर ऊँची दीवारें (परकोटे) शोभायमान हैं।

**भावार्थ-** इस चौक पर चारों कोनों में चार थम्भ आये हैं, जिनके ऊपर महराबें हैं। इनमें से दो महराबें सीढ़ियों की ओर, एक भीतर महलों की तरफ, तथा एक भीतर ताल की ओर है।

खिड़की मुकाबिल खिड़कियां, अंदर बाहेर जे।

जो सुख हैं मोहोलन के, कब लेसी हम ए॥५॥

जहाँ कटी पाल के आमने-सामने सीढ़ियाँ उतरी हैं, वहाँ बाहरी व भीतरी तरफ छोटे दरवाजे (खिड़कियाँ) हैं जो १२५ मन्दिर के चौड़े हैं। हे धनी! इन महलों के अखण्ड सुखों को हम पुनः कब प्राप्त करेंगी?

ऊपर परकोटे कांगरी, ऊपर हर द्वारनों।

कांगरी पाल किनार पर, सिफत आवे ना जुबां मों॥६॥

कटी पाल की सीढ़ियों की बाहरी (ताल की) ओर कमर-भर ऊँची दीवार (परकोटे) पर अति सुन्दर काँगरी की शोभा आयी है। पाल की बाहरी (ताल की तरफ की) किनार पर भी काँगरीयुक्त कमर-भर ऊँची दीवार है। १२८ बड़ी देहुरियों के सामने जो १२८ चाँदे

हैं, उनके ताल के तरफ की किनार पर भी काँगरीयुक्त कमर-भर ऊँची दीवार है। १२४ छोटी देहुरियों वाली छत पर भी तीन तरफ (चौरस पाल की तरफ छोड़कर) काँगरीयुक्त कमर-भर ऊँची दीवार की शोभा है, जिसका वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

**दोऊ द्वार बीच मेहेराब जो, ए सोभा कहूं क्यों कर।**

**पड़साल आगूं सबन के, गिरदवाए सोभा जल पर॥७॥**

छोटी देहुरियों वाले प्रत्येक दो द्वारों के मध्य, चबूतरे (चाँदे) के नीचे भी मेहेराब (द्वार) बने हैं। उनकी अद्वितीय शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। कटी पाल और इन द्वारों के बाहरी तरफ दूसरे हिस्से में १२८ बड़ी देहुरियाँ एवं घाट की सीढ़ियाँ हैं। इनके भी बाहरी तरफ तीसरे हिस्से में पड़साल की शोभा है। इस प्रकार, हौज़

कौसर ताल के चारों ओर चौरस पाल की शोभा  
दृष्टिगोचर हो रही है।

अब जल की सोभा क्यों कहूं, हम करती इत झीलन।

चित्त चाहे करें सिनगार, ए सुख कब लेसीं मोमिन॥८॥

हौज़ कौसर ताल के उस उज्ज्वल जल की शोभा का मैं  
कैसे वर्णन करूँ, जिसमें हम सभी सखियाँ आप युगल  
स्वरूप के साथ स्नान किया करती थीं और (पाल के  
महलों में) अपने हृदय की इच्छानुसार अपना श्रृंगार  
किया करती थीं। हे धनी! अब वे सुख हमें पुनः कब प्राप्त  
होंगे?

मासूक संग सुख मिल के, इत हिंडोले पाल पर।

सो सुख याद क्यों न आवहीं, जो हम लेती मिलकर॥९॥

कुल १२४ हिण्डोलों की ४ हारें हैं, जिनमें से चौरस पाल पर २ हारें हैं। १ हार संक्रमणिक सीढ़ियों के ऊपर है, तो एक हार ढलकती पाल के ऊपर आयी है। इन हिण्डोलों में हम सभी सखियाँ श्री राज जी साथ अति प्रेमपूर्वक झूला झूलती थीं। कितने आश्चर्य की बात है कि हमें अब उन सुखों की याद भी नहीं आती। इसका क्या कारण है?

सब एक हीरे की पाल है, टापू मोहोल याही के।

अनेक रंगों कई जुगत्तें, किन विध कहूं सुख ए॥१०॥

सम्पूर्ण पाल एक हीरे की आयी है। जल के अन्दर बना हुआ टापू महल भी हीरे का है, किन्तु इनकी बनावट में अनेक रंगों की शोभा दिखायी देती है, जिसका वर्णन मैं इस मुख से कैसे करूँ।

**भावार्थ-** वैज्ञानिक दृष्टि से श्वेत रंग में अनन्त (संसार के सात) रंगों की विद्यमानता होती है। हीरे का रंग भी श्वेत ही होता है। हीरे की पाल तथा टापू महल में अनेक रंगों की उपस्थिति यही दर्शाती है कि नूरमयी हीरे के श्वेत रंग में अनन्त रंग समाहित हैं।

**चांदनी झरोखे बैठ के, किन विध लेती सुख।**

**सो याद देत धनी इन जिमी, काल क्यों काटूं माहें दुख॥११॥**

टापू महल की चाँदनी की किनार पर कमर-भर ऊँचा चबूतरा चारों ओर घेरकर आया है। इसकी बाहरी किनार पर काँगरीयुक्त कमर-भर ऊँची दीवार है। इसे ही यहाँ झरोखा कहा गया है। इसी पर बैठकर हम सभी सखियाँ श्री राजश्यामा जी के साथ प्रेममयी लीला का आनन्द लेती थीं। अब धाम धनी अपनी तारतम वाणी द्वारा



उसकी याद दिला रहे हैं। ऐसी स्थिति में इस दुःखमय संसार में रहकर आखिर मैं अपना समय क्यों व्यर्थ करूँ?

**हकें सुख अर्स देखाइया, इलम दे करी बेसक।**

**हम क्यों रहें इन मासूक बिना, जो कछूए होए इस्क॥१२॥**

हे साथ जी! धाम धनी ने तारतम वाणी के ज्ञान से हमें पूर्णतया संशयरहित कर दिया है तथा परमधाम के अखण्ड सुखों की पहचान करायी है। यदि हमारे अन्दर अपने प्रियतम के प्रति थोड़ा सा भी प्रेम हो, तो हम इस मायावी संसार में भला कैसे रह सकते हैं?

**भावार्थ—** श्री राज जी से प्रेम हो जाने पर संसार में मन लगता ही नहीं, वह केवल युगल स्वरूप एवं पच्चीस पक्षों की शोभा में लग जाता है। इसी को संसार का परित्याग

करना कहते हैं। यहाँ शरीर छोड़ने का प्रसंग नहीं है।  
 "लगी वाली कछु और ना देखे, पिण्ड ब्रह्माण्ड वाको है  
 री नाही" का कथन इसी सन्दर्भ में है।

**इन मोहोल सुख रूहों के, और सुख घाटों चार।**

हाए हाए क्यों जाए हमें रात दिन, ए सुख बैठी रूहें हार॥१३॥

हौज़ कौसर ताल के टापू महल तथा चारों घाटों की  
 लीला में ब्रह्मात्माओं का अपार सुख विद्यमान है। हाय!  
 हाय! हमारा दिन-रात का समय माया में क्यों बीता जा  
 रहा है? इसी कारण तो हम परमधाम के सुखों को प्राप्त  
 नहीं कर पा रही हैं।

**भावार्थ-** जो जिसका चिन्तन करता है, वह उसी को  
 प्राप्त हो जाता है। युगल स्वरूप एवं पच्चीस पक्षों की  
 प्रेममयी चितवनि ही हमें परमधाम के सुखों का

रसास्वादन करा सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

याद देत हक ए सुख, हाए हाए तो भी न लगे घाए।

ऐसी बेसकी ले क्यों रहे, जो होए अर्स अरवाए॥१४॥

श्री राज जी हमें अपने तारतम ज्ञान द्वारा परमधाम के अनन्त सुखों की याद दिला रहे हैं, फिर भी हाय! हाय! हमारे इन निष्ठुर दिलों में चोट नहीं लग रही है। जो भी परमधाम की आत्मा होगी, वह तारतम वाणी से संशयरहित हो जाने के पश्चात् इस झूठे संसार के मोह-बन्धन में नहीं रहेगी।

**भावार्थ-** हृदय में चोट न लगने का तात्पर्य है – हृदय द्वारा उसको स्वीकार न करना, द्रवित न होना। केवल शाब्दिक ज्ञान को कथन का विषय बनाकर उसी को

सर्वोपरि उपलब्धि मान लेना बहुत बड़ी भूल है। इस चौपाई में यह बात स्पष्ट रूप से बतायी गयी है कि तारतम ज्ञान से संशयरहित होने के पश्चात् धनी के प्रेम में डूब जाना और संसार के मोह-बन्धन से अलग हो जाना ही ब्रह्मसृष्टि होने की कसौटी है।

**हक हुकम ऐसा करत है, ना तो तेहेकीक ना रहे तन।**

**अब हक इत रुहों राखत, कोई अचरज हांसी कारन॥१५॥**

यह सारी लीला श्री राज जी के हुक्म (आदेश) से ही हो रही है, अन्यथा धनी का प्रेम आने के बाद तो यह तन रह ही नहीं सकता। अब धाम धनी हमें जो इस संसार में रखे हुए हैं, तो उस पर कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए। ऐसा वे हमारे ऊपर हँसी करने के लिये ही कर रहे हैं।

**भावार्थ-** धाम धनी की पहचान होने के पश्चात् भी संसार के मोह-जाल में फँसे रहना हँसी का कारण है कि तुम्हें मेरी अपेक्षा संसार अधिक प्यारा लगा।

**याद करों सुख हाँसीय के, के याद करों सुखपाल।**

**के याद करों तले मोहोल के, हाए हाए अजूं ना बदलत हाल॥१६॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! आप परमधाम की उन लीलाओं को याद कीजिए कि आप किस प्रकार धाम धनी के साथ प्रेममयी हँसी की लीला करते थे। किस प्रकार सुखपालों में बैठकर धनी के साथ भ्रमण करते थे और किस प्रकार पाल के अन्दर के महलों में आनन्दमयी लीला में संलग्न रहते थे। यदि याद करने पर भी हमारी स्थिति नहीं बदलती, अर्थात् संसार से हमारा ध्यान हटकर परमधाम में नहीं लगता, तो हाय!

हाय! यह आत्म-मन्थन का विषय है कि ऐसा क्यों हुआ?

**भावार्थ-** इस चौपाई में एक बहुत ही गहन रहस्य को रेखांकित किया गया है। परमधाम की शोभा या लीला का बौद्धिक रूप से चिन्तन करना (याद करना) चर्चनी है, जबकि प्रेममयी अवस्था में उसमें खो जाना चितवनि है। उसमें बुद्धि की कोई भी क्रियाशीलता नहीं रहती। इस चौपाई में यही बात स्पष्ट की गयी है कि प्रेममयी चितवनि में डूबने पर ही हमारी (यहाँ की) रहनी (हाल) परमधाम की रहनी जैसी होने की राह पर अग्रसर हो सकती है। बौद्धिक चिन्तन तो केवल कथनी का विषय है। यह हमें ईमान पर खड़ा तो कर सकता है, किन्तु परमधाम के प्रेम में स्पष्टतः नहीं डुबो सकता।

**प्रकरण ॥२२॥ चौपाई ॥११२५॥**

## नेहेरें मोहोलों में

इस प्रकरण में परमधाम की नूरमयी नहरों का वर्णन है। इन नहरों को मात्र लौकिक जल की नहरों की तरह नहीं समझना चाहिए, बल्कि इनमें सागरों का जल (इश्क, इल्म, वहदत, निस्बत आदि के रूप में) प्रवाहित होता है।

**सुख नेहेरों का अलेखे, सबों ऊपर मोहोलात।**

**कई मिली कई जुदियां, तरफ चारों चली जात॥१॥**

नहरों का सुख अथाह है। इनके ऊपर महल बने हुए हैं, अर्थात् ये महलों के अन्दर भी हैं। बहुत सी नहरें किसी एक स्थान पर मिल जाती हैं, तो बहुत सी नहरें किसी स्थान विशेष से निकलती हैं और चारों ओर चली जाती हैं।

चार तरफ चार नेहरें, ऊपर सब ढांपेल।

कहूं चार आठ सोले मिली, कई विध मोहोलों खेल॥२॥

कहीं-कहीं पर तो स्थान विशेष से चार दिशाओं में चार नहरें निकलती हैं। ये ऊपर से ढकी होती है। कहीं स्थान विशेष पर चार नहरें आकर मिलती हैं, तो कहीं आठ और कहीं सोलह। इस प्रकार महलों में नहरों की अनेक प्रकार की दिव्य लीलायें होती हैं।

चारों खूटों मोहोल ढांपिल, जानूं कई रचिया सेहेर।

इन विध बराबर गलियां, आड़ी ऊंची गली बीच नेहेर॥३॥

महलों के चारों कोने ढँपे हुए हैं। ऐसा लगता जैसे कोई नगर बसा है। इस प्रकार महल रूप शहर में बराबर दूरी पर आड़ी-खड़ी गलियाँ आयी हैं, जिनके बीच में आड़ी-खड़ी नहरों की शोभा दिखायी दे रही है।



कई कोट अलेखे पदमों, सेहेर बसे पसुअन।

कई सेहेर हैं जानवर, सबों इस्क अकल चेतन॥४॥

परमधाम में करोड़ों और पदमों ही नहीं, बल्कि अनन्त पशु-पक्षी रहा करते हैं। इनके निवास के लिये सुन्दर-सुन्दर नगर बने हुए हैं। सबमें प्रेम है और चैतन्य निजबुद्धि है।

**भावार्थ-** "पद्म" संख्या का एक माप है, जिसमें १०,००,००० करोड़ होते हैं।

यों कई नेहरें बीच सेहेरन के, इन सेहेरों कई मोहोलात।

हर मोहोलों कई बैठकें, ए सोभा कही न जात॥५॥

इस प्रकार, इन सुन्दर नगरों में बहुत सी नहरें और महल बने हुए हैं। इन महलों में बैठने के बहुत ही मनोहर स्थान बने हुए हैं, जिनकी शोभा का वर्णन हो पाना

सम्भव नहीं है।

अब नेहेरें बरनन तो करूं, जो कछु होए हिसाब।

मोहोल मोहोल बीच कई कुंड बने, कई कारंजे छूटे ऊंचे आब॥६॥

अब मैं इन नहरों की संख्या का वर्णन तो तब करूं, जब इनकी कोई सीमा हो, अर्थात् नहरों की संख्या असीम है। प्रत्येक दो महलों के बीच में बहुत से कुण्ड बने हुए हैं, जिनमें जल के बहुत ऊँचे-ऊँचे फव्वारे छूटा करते हैं।

कई जल मोहोलों चढ़े, कई मोहोलों से उपरा ऊपर।

कई लाखों हजारों बैठकें, सुख इत के कहूं क्यों कर॥७॥

२४ हाँस के महल, जवेरों (जवाहरातों) के महल, रंगमहल आदि में पानी स्तूनों द्वारा ऊपर चढ़ता है। किसी-किसी जगह (पुखराज पहाड़ आदि में) पानी

चाँदनी से भी ऊपर (आकाशी महल की चाँदनी) चढ़ता है। इन महलों में हजारों-लाखों (अनन्त) बैठकें (बैठने के स्थान) हैं। यहाँ की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

**कई मोहोल ऊँचे अति बड़े, जैसे हक दिल चाहे।**

**हर मोहोलों बीच नेहेरें चलें, ए सुख बैठक कही न जाए॥८॥**

कुछ महल (बड़ी राँग की हवेलियाँ आदि) धाम धनी के हृदय की इच्छानुसार बहुत ऊँचे और विशाल हैं। ऐसे प्रत्येक महल के बीच में नहरें चलती हैं। इनमें स्थित बैठकों का सुख शब्दों में वर्णित नहीं हो सकता।

**हर जातों मोहोल जुदे जुदे, जुदी जुगतें पानी चलत।**

**जुदी जुदी जुगतें कारंजें, क्यों कर कहूं एह सिफत॥९॥**

प्रत्येक आकृति (जाति) के अलग-अलग प्रकार के

महल हैं, जिनमें स्थित नहरों में अलग-अलग प्रकार से जल का प्रवाह होता है। इन नहरों के कुण्डों में अलग-अलग प्रकार के बहुत से फव्वारे चलते हैं, जिनकी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**भावार्थ-** रंगमहल, पुखराज, माणिक पहाड़, बड़ी रांग की हवेलियों, २४ हाँस के महल, जवेरों के महल आदि में आकृति की दृष्टि से (बाह्य रूप में) भिन्नता प्रतीत होती है, किन्तु तत्त्वतः परमधाम में आन्तरिक रूप से भिन्नता कदापि नहीं होती, मात्र लीला रूप में ही ऐसा कहा गया है। इस चौपाई के प्रथम चरण का यही आशय है। जहाँ पर नहरें एक-दूसरे को काटती हैं (मिलती हैं), वहाँ पर कुण्ड बने होते हैं जिनसे फव्वारें छूटते हैं। फव्वारों का जल अलग-अलग आकृतियों में निकला करता है।

इन बड़े मोहोल सुख नेहरों के, हमें कब देओगे खसम।

मांगे मंगाए जो देओ, सब हुआ हाथ हुकम॥१०॥

प्राणेश्वर! परमधाम के इन विशाल महलों में प्रवाहित होने वाली रमणीय नहरों के सुख आप हमें कब देंगे ? आपके द्वारा मँगवाने (अन्तःप्रेरणा द्वारा) पर ही हम आपसे ऐसा माँग रही हैं। सब कुछ आपके दिल की इच्छा (हुकम) पर निर्भर करता है, इसलिये आप हमें उस सुख को (अनुभव कराइये) दीजिए।

सागर से नेहरें आवत, पानी जुदा जुदा फैलात।

कई विध मोहोलों होए के, फेर सागरों में समात॥११॥

आठों सागरों से नहरों में पानी आता है और अलग – अलग रूपों में चारों ओर फैल जाता है। यह महलों में अनेक प्रकार से गुजरते हुए पुनः सागरों में चला जाता है।

**भावार्थ-** अक्षरातीत के मारिफत (परमसत्य) स्वरूप हृदय में जो प्रेम, सौन्दर्य, ज्ञान, एकत्व, आनन्द, सम्बन्ध आदि के सागर लहरा रहे हैं, वही लीला रूप में आठ सागरों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। वही रस नहरों में प्रवाहित होते हुए सम्पूर्ण परमधाम में विचरण करता है। अनेक प्रकार से जल का प्रवाहित होना आगे की चौपाइयों में दर्शाया गया है।

**कई चलत चक्राव ज्यों, कई आड़ी ऊंची चलत।**

**कई चलत मोहोलों पर, कई मोहोलों से उतरत॥१२॥**

कई नहरें वृत्ताकार रूप में चलती हैं, तो कई आड़ी-खड़ी रूप में प्रवाहित होती हैं। कई महलों के ऊपर चलती हैं (चढ़ती हैं), तो कई नहरें महलों से नीचे उतरती हैं।

एक नेहर से कई नेहरें, जुदी जुदी फिरत।

कई जुदी जुदी नेहरें होए के, कई एक में अनेक मिलत॥१३॥

एक नहर से अनेक नहरें प्रकट होकर अलग-अलग स्थानों में विचरण करती हैं। इसी प्रकार, अलग-अलग बहती हुई बहुत सी नहरें किसी स्थान पर मिलकर एक ही नहर के रूप में हो जाती हैं।

कई नेहरें मोहोलों मिने, चारों तरफों फिरत।

कई मोहोल नेहरें कई, कई विध विध सों विचरत॥१४॥

परमधाम में बहुत से (अपार) महल हैं, जिनमें चारों ओर विचरण करने वाली नहरें भी बहुत सी (अनन्त) हैं। इस प्रकार, असंख्य महलों में असंख्य नहरें अनेक प्रकार से (रूपों में) प्रवाहित होती हैं।

**भावार्थ-** बड़ी रांग एवं छोटी रांग में महलों की संख्या

अपार है। इसी प्रकार सम्पूर्ण परमधाम में महलों और नहरों की संख्या को गिना नहीं जा सकता। नहरों का वृत्ताकार, आड़ी-खड़ी आदि रूपों में प्रवाहित होना ही अनेक प्रकार से विचरण करना है।

कहूँ चार नेहरें मिली चली, कहूँ चार से सोले निकसत।  
 कई नेहरें सुख इन मोहोलों, धनी कब करसी प्रापत॥१५॥  
 कहीं पर तो चार नहरें एक के रूप में दिखायी देने लगती हैं और कहीं चार से सोलह नहरें प्रकट हो जाती हैं। हे धाम धनी! महलों में प्रवाहित होने वाली इन अपार नहरों का सुख हम कब प्राप्त करेंगी।

कहूँ नेहरें जाहेर चली, कई पहाड़ों के माहें।  
 नेहरें पहाड़ों या सागरों, सोभा क्यों कहूँ इन जुबांए॥१६॥



कहीं (महलों तथा बागों आदि में ) पर ये नहरें प्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगोचर होती हैं और कहीं पहाड़ों में विचरण करने (चढ़ने-उतरने) लगती हैं। इस प्रकार मैं नहरों, पहाड़ों, या सागरों की अलौकिक शोभा का वर्णन इस मिथ्या जिह्वा से कैसे करूँ।

**प्रकरण ॥२३॥ चौपाई ॥११४१॥**

## मानिक पहाड़ के हिंडोले

इस प्रकरण में माणिक पहाड़ के हिण्डोलों का सुन्दर चित्रण किया गया है।

पहाड़ मानिक मोहोल कई, यों पहाड़ मोहोल अनेक।

सब अपार अलेखे इन जिमी, कहां लों कहूं विवेक॥१॥

माणिक पहाड़ में बहुत से महल हैं। ये पहाड़ों की तरह ऊँचे हैं। इन महलों की संख्या अनन्त है और शोभा शब्दातीत है। मैं इस संसार में इनका बुद्धिपूर्वक वर्णन कितना करूँ।

बड़े पहाड़ जो हिंडोले, बारे हजार बैठत।

एकै छप्पर खटके, हक हादी साथ हींचत॥२॥

इस माणिक पहाड़ में बहुत बड़े-बड़े हिण्डोले हैं, जिनमें १२००० सखियाँ एकसाथ बैठ जाती हैं। षट् छप्पर वाले एक ही हिण्डोले में श्री राजश्यामा जी के साथ सभी ब्रह्माँगनायें एकसाथ बैठकर झूला झूलती हैं।

**अनेक पहाड़ कई हिंडोले, जुदी जुदी कई जुगत।**

**जो सुख हिंडोले पहाड़ के, जुबां कर ना सके सिफत॥३॥**

माणिक पहाड़ में पहाड़ों जैसे बहुत ऊँचे-ऊँचे अनेक महल हैं, जिनमें अनेक प्रकार के बहुत से हिण्डोले हैं। माणिक पहाड़ के हिण्डोलों के सुख अपार हैं। यह जिह्वा उनकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकती।

**कई हिंडोले पहाड़ में, ऊपर से ढांपेल।**

**सुख लेवें कई विध के, रुहें करें कई खेल॥४॥**

माणिक पहाड़ के मध्य चबूतरे की किनार पर ११९८० भूमिका ऊँचे १२००० थम्भ हैं, जिनकी महाराबों में १२००० हिण्डोले लटक रहे हैं, जो ११९८० भूमिका ऊपर से लटक रहे हैं (अर्थात् ऊपर से ढँपे हुए हैं)। सखियाँ इन हिण्डोलों में तरह-तरह के खेल करती हैं और अनेक प्रकार से आनन्द लेती हैं।

**कई सुख लें मीठे पहाड़ के, कई विध हींचे हिंडोले।**

**कई सुख हिंडोले बाहेर, बीच पहाड़ के खुले॥५॥**

ब्रह्मात्मायें माणिक पहाड़ के इन हिण्डोलों में अनेक प्रकार से झूलती हैं और अनेक प्रकार के मधुर आनन्द का रसपान करती हैं। माणिक पहाड़ के चारों ओर बगीचों में जो ताल के महल आये हैं, उनमें महाबिलन्द हिण्डोले सुशोभित हो रहे हैं। ये खुले आकाश के वातावरण में हैं।

एक जरा इन जिमी का, जोत न माए आसमान।

जोत जवरेणें पहाड़ों की, इत कहा कहे जुबान॥६॥

इस धरती के एक ही कण में इतनी ज्योति है कि वह आकाश में समा नहीं पा रही है। ऐसी स्थिति में , जवाहरातों के पहाड़ों की अनन्त ज्योति के बारे में भला यह जिह्वा कैसे वर्णन कर सकती है।

कोई पहाड़ गिरदवाए का, कोई बराबर खूंटों चार।

जो सोभा पहाड़न की, सो न आवे माहें सुमार॥७॥

इस माणिक पर्वत की कोई हवेली (पहाड़) गोल है, तो कोई चौरस है। इन चौरस एवं गोल हवेलियों की असीम शोभा को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

जिमी गिरदवाए पहाड़ों की, सब देखत बराबर।

पहाड़ भी सीधे सब तरफों, जानों हकें किए दिल धर॥८॥

माणिक पहाड़ के महलों एवं हवेलियों के आसपास की धरती पूर्णतया समतल है। महलों एवं हवेलियों का समूह रूप यह माणिक पहाड़ भी चारों ओर से सीधा एवं मनोहर आकृति लिये हुए है। ऐसा लगता है कि जैसे स्वयं श्री राज जी ने इसे अपने मनोभावों के अनुसार ही बनाया है।

**भावार्थ-** केवल माणिक पहाड़ ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण परमधाम का कण-कण श्री राज जी के दिल का ही स्वरूप है।

कई मोहोल पहाड़ों मिने, कई मोहोल पहाड़ों ऊपर।

जो बन पहाड़ या जिमिएं, सो इन जुबां कहूं क्यों कर॥९॥

बहुत से महल तो माणिक पहाड़ के अन्दर हैं और बहुत से महल माणिक पहाड़ की चाँदनी में (टापू महल) आये हुए हैं। यहाँ की धरती में आये वन एवं पहाड़ों (हवेलियों) की शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

ना सुख कहे जाएं जिमी के, ना सुख कहे जाएं बन।

ना सुख कहे जाएं मोहोलों के, ना सुख कहे जाएं पहाड़न॥१०॥

यहाँ की धरती एवं वनों में अपार आनन्द भरा पड़ा है। यही स्थिति माणिक पहाड़ के महलों एवं हवेली रूप पहाड़ों की भी है। इनमें होने वाली प्रेममयी लीला का सुख शब्दों की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता।

कई पहाड़ झिरने झरें, कई ऊपर नेहेरें चली जाएं।

कई उतरें ऊपर से चादरें, कई तालों बीच आए समाए॥११॥

माणिक पहाड़ की चाँदनी में अनेक झरने गिरते हैं तथा अनेक नहरें भी प्रवाहित होती हैं। माणिक पहाड़ की चाँदनी से यह जल चारों ओर से चादरों के रूप में नीचे उतरता जाता है, जो अनेक तालों के माध्यम से महानद में आकर एकत्रित हो जाता है।

**भावार्थ—** माणिक पहाड़ की चाँदनी के मध्य में टापू महल, ताल, व दहलान आये हैं। दहलान के चबूतरे की दीवार में १२,००० जालीद्वार हैं, जिनसे ताल का पानी निकलकर धाराओं के रूप में नीचे १२,००० कुण्डों में गिरता है। फिर चाँदनी में अनन्त नहरों में विचरण करता हुआ गुर्जों के कुण्डों में पहुँचता है। गुर्जों के कुण्डों से पानी चारों ओर १२,००० धाराओं के रूप में एक भूमिका नीचे छज्जों में स्थित नहरों में गिरता है , फिर ताल के महलों के चाँदनी में बने ताल में पहुँचता है। इस



प्रकार चारों ओर से १२,००० धाराओं के रूप में पानी  
१-१ भूमिका नीचे गिरते हुए महानद में समा जाता है।

नेहेरें बन में होए चलीं, सो नेहेरें कई मिलत।

आगूं आए मोहोल बन के, इत चली कई जुगत॥१२॥

माणिक पहाड़ के चारों ओर बगीचों से होकर अनेक  
नहरें गुजरती हैं। ये सभी नहरें आगे जाकर महानद में  
मिल जाती हैं। आगे वन के महल आते हैं। वहाँ भी  
अनेक प्रकार से नहरें प्रवाहित होती हैं। इस प्रकार यहाँ  
अनेक प्रकार की अलौकिक शोभा विद्यमान है।

ए सुख हमारे कहां गए, ए जो खेल होत दिन रात।

हक के साथ हम सब रूहें, हंस हंस करती बात॥१३॥

परमधाम की लीला दिन-रात अबाध गति से चलती

रहती है। उस परमधाम में हम सभी आत्मायें अपने प्रियतम के साथ प्रेमपूर्वक हँसते हुए बातें किया करती थीं। इस खेल में आ जाने पर वे सुख अब कहाँ चले गये हैं?

**प्रकरण ॥२४॥ चौपाई ॥११५४॥**

## बन के मोहोल नेहरें

इस प्रकरण में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार परमधाम में वृक्षों की डालियों, तनों, फूलों, तथा फलों से महल बने हुए हैं और उनके बीच रमणीक नहरों का जाल बिछा हुआ है।

**बन छाया है मोहोल जो, इत मोहोल बने बन के।**

**जानो सोभा सबसे अतंत है, सब सुख लेती रूहें ए॥१॥**

माणिक पहाड़ के आगे (महावन की बाहरी ओर) चारों तरफ घेरकर वन के महल आये हैं। यहाँ महलों के रूप में वनों की ही छाया सर्वत्र सुशोभित हो रही है। ऐसा लगता है कि यह शोभा सबसे अधिक (अनन्त) है। सखियाँ यहाँ की प्रेममयी क्रीड़ाओं में हर प्रकार का सम्पूर्ण सुख लेती हैं।

नेहेरें सागर से खुली चलीं, सो भी भई बन माहें।

ए बन सोभा नेहेरों की, खूबी क्यों केहेसी जुबाएं॥२॥

सागर से नहरें आगे खुले रूप में चलती हैं। वे वनों के मध्य से होती हुई आगे बढ़ती हैं। नहरों से युक्त इन वनों (महलों) की शोभा इतनी अनुपम है कि मेरी यह जिह्वा भला उसका क्या वर्णन करेगी।

सागर किनारे जो बन, ए बन नेहेरें विवेक।

मोहोल बन जो देखिए, जानों सोई नेक से नेक॥३॥

सागरों के किनारे जो वन आये हैं, उनमें नहरों की अति सुन्दर शोभा दृष्टिगोचर हो रही है। इसके उपरान्त जब हम महल रूपी वनों की शोभा को देखते हैं, तो ऐसा लगता है कि हम जिस किसी की भी (नहरों, वनों, या महल रूपी वनों) शोभा को देखते हैं, वही सबसे अधिक

मनोहर है।

कई मोहोल ढिग सागरों, और कई मोहोल बनराए।

तिनों में नेहेरें चलें, हम सुख लेतीं इत आए॥४॥

सागरों के नजदीक बड़ी रांग की बहुत सी हवेलियाँ हैं तथा अनेक वन रूप महल भी हैं। उनमें अति सुन्दर नहरें बहा करती हैं, जिनमें हम सखियाँ तरह-तरह की लीलायें करके आनन्दित हुआ करती थीं।

ए बन नेहेरें दूर लों, जहां लों नजर फिरत।

ए सुख संग सुभान के, हम कई विध लेतीं इत॥५॥

जहाँ तक भी हमारी दृष्टि जाती है, वहाँ तक इन वन रूप महलों तथा नहरों की ही अलौकिक शोभा दिखायी पड़ती है। यहाँ पर आकर हम सभी सखियाँ अपने धनी

के साथ अनेक प्रकार की लीलाओं का सुख लिया करती थीं।

इन बन की और मोहोल की, और पहाड़ हिंडोले जे।

जिमी सब बराबर, अर्स लग देखिए ए॥६॥

इन वनों, महलों, और महाबिलन्द हिण्डोलों से युक्त माणिक पहाड़ तथा रंगमहल तक की सम्पूर्ण धरती पर जहाँ भी दृष्टि जाती है, सभी एक समान समतल ही नजर आती है।

बन बिगर की जो जिमी, जानों जरी दुलीचे बिछाए।

ए दूब जोत आसमान लों, रह्या नूरै नूर भराए॥७॥

वनों (वृक्ष समूह) से रहित जो धरती है, वह बेल-बूटेदार गलीचे (कालीन) के समान सुशोभित हो रही है।

इस दूब-दुलीचे की ज्योति आकाश तक छायी हुई है।  
आकाश में सर्वत्र नूर ही नूर दिखायी दे रहा है।

**भावार्थ-** यद्यपि रंगमहल के पश्चिम में दूब -दूलीचा अवश्य है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि केवल वहीं पर ही दूब (घास) का बना हुआ कोमल स्थान है, बल्कि सम्पूर्ण परमधाम में घने वृक्षों से रहित खाली जगह में वैसी ही शोभा आयी हुई है।

ए नेहरें अति दूर लग, अति दूर देखे सागर।

सागर नेहरें मोहोल जो, अति बड़े देखे सुंदर॥८॥

सागर से निकलने वाली ये नहरें सागर से बहुत दूर तक जाती हैं, जहाँ से सागर बहुत ही दूर दिखायी देता है। सागर, नहरें, व अत्यन्त ऊँचे महल (बड़ी रांग) अति सुन्दर दिखायी देते हैं।

सागर किनारे मोहोल जो, सो जाए लगे आसमान।

ए मोहोल जुदी जुदी जिनसों, इत सुख चाहिए सागर समान॥९॥

सागरों के किनारे जो बड़ी रांग की हवेलियाँ आयी हैं, वे इतनी ऊँची हैं कि लगता है जैसे वे आकाश को छू रही हैं। ये महल (हवेलियाँ) अलग-अलग प्रकार की शोभा वाले हैं। इनमें लीला का सुख भी सागरों के समान अथाह है।

**भावार्थ-** बड़ी रांग की हवेलियाँ १२००० भूमिका ऊँची हैं। इन एक-एक भूमिका में पुनः १२००० - १२००० भूमिकायें हैं। इस प्रकार , कुल १४,४०,००,००० भूमिकायें होती हैं। यहाँ के माप को माणिक पहाड़ के माप के समान नहीं माना जा सकता। परमहंस महाराज श्री युगलदास जी के कथनानुसार (मनमोहन रसानंद सागर किताब के अनुसार) तो बड़ी



रांग की हवेलियों के एक ही थम्भे में सम्पूर्ण माणिक  
पहाड़ का विस्तार आ जाता है।

कई मोहोल बराबर सागरों, मोहोल ऊंचे चढ़े अनेक।

कई जुगतें सोभा सुंदर, ए क्यों कहे जुबां विवेक॥१०॥

बड़ी रांग की हवेली रूप ये महल सागरों की ठीक सीध  
में आये हैं एवं चारों दिशाओं में सागरों के समान लम्बे –  
चौड़े हैं। ये सभी महल अत्यधिक ऊँचाई तक गये हुए हैं।  
अनेक प्रकार की शोभा को धारण करने वाले ये महल  
अति सुन्दर (कमनीय) हैं। मेरी यह जिह्वा इनकी  
मनोहारिता का भला कितना वर्णन कर सकती है।

कई मोहोल सुख सागरों, कई सुख टापू मोहोल।

ए सुख अपार अलेखे, सो क्यों कहूं इनकी तौल॥११॥

बड़ी रांग के इन महलों में सागर के समान कई प्रकार के अनन्त सुख विद्यमान हैं। इसी प्रकार, सागरों के अन्दर आये हुए टापू महलों में भी अनन्त सुख विद्यमान हैं। हमारी क्रीड़ा स्थली के रूप में प्रसिद्ध इन महलों में इतना अनन्त सुख है कि उसे वाणी (जिह्वा) द्वारा व्यक्त ही नहीं किया जा सकता। ऐसी अवस्था में मैं इनकी उपमा किससे दूँ?

महामत कहे सुनो मोमिनो, बीच टापू जल गिरदवाए।

ए अति ऊँचे मोहोल सुंदर, देखो अपनी रूह जगाए॥१२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! अति मनोहर बात सुनिए। सागरों के अन्दर १२००० टापू महलों की १२००० हारें आयी हैं। इनके चारों ओर जल लहरा रहा है। ये महल बहुत ऊँचे और सुन्दर हैं। आप अपनी

आत्मा को जाग्रत करके इनकी अनुपम शोभा को देखिए।

प्रकरण ॥२५॥ चौपाई ॥११६६॥

## पुखराज से पाट घाट ताँई

पुखराज पर्वत से यमुना जी के पाट घाट तक

इस प्रकरण में पुखराज पर्वत से लेकर यमुना जी के प्रवाहित होने एवं पाट घाट तक की शोभा का वर्णन किया गया है।

सुख क्यों कहूं पहाड़ पुखराज के, और कहा कहूं मोहोल तले।

ऊपर चौड़े मोहोल चढ़ते, मोहोल तीसरे तिन उपले॥१॥

पुखराज पर्वत के अनन्त सुखों का मैं कैसे वर्णन करूँ।  
नीचे चबूतरे पर आये हुए पाँच पेड़ों (आधार स्तम्भों, महलों) की शोभा को भी मैं किस मुख से व्यक्त करूँ।  
इन पाँच पेड़ों पर ही सम्पूर्ण पुखराज पर्वत स्थित है।  
पुखराज पहाड़ की ऊँचाई के साथ-साथ चौड़ाई भी बढ़ती जाती है और ऊपर जाकर (१००० भूमिका पर)

नीचे चबूतरे के बराबर चाँदनी हो जाती है। इसके मध्य तीसरे भाग में पुनः १००० भूमिका ऊँचा एक महल आया है, जिसे आकाशी महल कहते हैं।

**आठ पहाड़ तले मोहोल के, ऊपर ताल पुखराज।**

**कई मोहोलातें आठों पर, ऊँचे रहे मोहोल बिराज॥२॥**

पुखराज पहाड़ के नीचे आधार के रूप में आठ पहाड़ (पेड़, निसान) हैं— ५ पेड़, २ घाटियाँ, तथा एक पुखराजी ताल। इन आठों के ऊपर ही सम्पूर्ण पुखराज पर्वत स्थित है, जिसमें कई प्रकार के महल (आकाशी महल, हजार हाँस के महल, जवेरों के महल, खास महल) आये हुए हैं। इनसे पुखराज पर्वत की ऊँचाई और बढ़ गयी है। बंगलों के ऊपर पुखराजी ताल शोभायमान हो रहा है, जो ९८० भूमिका गहरा है।

ताल ऊपर मोहोलात जो, आठ पहाड़ तले जो इन।

मोहोल उपले आकास लों, किया निपट नूर रोसन॥३॥

पुखराजी ताल के ऊपर चारों ओर जवेरों (जवाहरातों) के महल आये हैं। उधर पुखराज पहाड़ के ऊपर आकाश को छूता हुआ आकाशी महल है, जिसकी मनोहर आभा चारों ओर अलौकिक प्रकाश कर रही है। इन सबके नीचे आठ पहाड़ (आधार के रूप में महल) सुशोभित हो रहे हैं।

निपट बड़े मोहोल पहाड़ के, निपट बड़े दरबार।

कब सुख लेसी इनके, ए धनी तुमहीं देवनहार॥४॥

निश्चित रूप से पुखराज पर्वत में बड़े-बड़े महल हैं, जिसमें बड़ी-बड़ी बैठकें हैं। हे धनी! अब आप ही बताइये कि पुखराज पहाड़ के सुखों को हम पुनः कब

प्राप्त करेंगी? इसे देने वाले एकमात्र आप ही हैं।

**भावार्थ-** "दरबार" का तात्पर्य उस बैठक (स्थान) से है, जिसमें राजा-महाराजा की सभा हुआ करती है।

इत बड़े जानवर खेलत, आगूं बड़े दरबार।

ए सुख कब हम लेयसी, मोमिन इत इंतजार॥५॥

इन बैठकों (दहलानों) के आगे बड़े-बड़े जानवर आकर तरह-तरह के खेल करते हैं। इस मायावी जगत में आकर हम सभी आत्मायें इस बात की प्रतीक्षा कर रही हैं कि हम इन सुखों को पुनः कब प्राप्त करेंगी।

कई रंगों कई विध खेलत, पहाड़ से सेत फील।

दम न रहें मासूक बिना, धनी क्यों डारी बीच ढील॥६॥

पुखराज पहाड़ में सफेद हाथी अनेक प्रकार के बहुत से आनन्दमयी खेल करते हैं। वे आपके बिना एक पल भी नहीं रह सकते। हे प्रियतम! अब हमें इस खेल से परमधाम ले चलने में देरी क्यों कर रहे हैं?

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में आत्माओं का नहीं, बल्कि पशु-पक्षियों का प्रसंग है। वे भी प्रेममयी हैं एवं धाम धनी के आशिक हैं। "ले दिल चाह्या दरसन, ऐसे आसिक हक के जोर" (परिकरमा २८/८) के कथन से यही स्पष्ट होता है।

कहां गए सुख आपके, हम कहां पुकारें जाए।

तुम बिना नहीं कोई कितहूं, मोमन बेसक किए बनाए॥७॥

प्राण प्रियतम! आपके जिन अखण्ड सुखों का हम सभी आत्मायें रसपान किया करती थीं, अब वे सुख कहाँ चले



गये? अब हम अपनी पीड़ा को किसके सामने व्यक्त करें? आपने तो अपनी तारतम वाणी से इस सम्बन्ध में हमें पूर्णतया संशयरहित कर दिया है कि आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी, कहीं भी हमारा प्रेमपात्र नहीं है।

**और सुख पहाड़ ताल के, तीनों तरफों मोहोलात।**

**पहाड़ सुख मोहोल अंदर, जो कई नेहेरें चली जात॥८॥**

पुखराजी ताल के तीन ओर जवाहरातों के महल हैं, जिनका सुख असीम है। पुखराज के महलों के अन्दर बहुत सी नहरें प्रवाहित होती हैं। इन महलों का सुख शब्दों में व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं है।

**गुरज दोऊ के बीच में, गिरत चादरें चार।**

**चार चार हर एक में, उतरत सोले धार॥९॥**

पुखराजी ताल के पूर्व में तथा अधबीच के कुण्ड के पश्चिम में दहलान आयी है। ये दहलानें नीचे चबूतरे से १००० भूमिका तक आपस में मिलकर आयी हैं। इनके पूर्व में (अधबीच के कुण्ड की तरफ) तथा पश्चिम में (ताल की तरफ) दोनों कोनों में १-१ गोल और १-१ चौरस गुर्ज है। पुखराजी ताल का पानी इस दहलान की ९८१वीं भूमिका से ४ धाराओं के रूप में पूर्व दिशा की ओर जाता है। वहाँ पर ४ छज्जों (१६०० कोस, १२०० कोस, ८०० कोस, तथा ४०० कोस) द्वारा १६ धाराओं में विभक्त होकर ४८४ भूमिका नीचे अधबीच के कुण्ड में गिरता है।

सो परत बीच ले कुंड में, इत चारों तरफों देहेलान।

ए सुख कब हम लेयसी, इन मेले साथ मेहेरबान॥१०॥

ये १६ धारायें बीच में कुण्ड (अधबीच के कुण्ड) में गिरती हैं। इसके चारों ओर दहलानें हैं। यहाँ बैठकर हम सभी सखियाँ इन धाराओं की मधुर कर्णप्रिय गर्जना व सुन्दर दृश्य का आनन्द लिया करती थीं। हे धनी! आप तो प्रेम के सागर हैं। हम आपके साथ पुनः कब उस सुख का रसास्वादन इस संसार में करेंगी?

**भावार्थ—** वैसे दहलानें तो पश्चिम में ही हैं, किन्तु चारों ओर बड़ोवन के वृक्ष आये हैं जिनकी चारों भूमिकाओं की डालियाँ छज्जों के रूप में अधबीच के कुण्ड तक छायी हुई हैं। इन्हें ही दहलान कहा गया है। परमधाम में लीला का साक्षात् विलास है, किन्तु इस संसार में उसका रसपान मात्र प्रेममयी चितवनि द्वारा ही सम्भव है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

कब सुख लेसी बंगलों, जित नेहरें चलें चक्राव।

बीच बीच बगीचे चेहेबच्चें, कई जल उतरे तले तलाव॥११॥

हे प्राण प्रियतम! हम उन बंगलों का सुख कब लेंगी, जिनमें नहरें वृत्ताकार (चक्राकार) रूप में प्रवाहित होती हैं? नहरों के बीच में बगीचे और चहबच्चें भी आये हैं। इन नहरों से जल अनेक मार्गों द्वारा होता हुआ नीचे तलहटी के ताल में चला जाता है।

**भावार्थ—** ४८ बंगलों की ४८ हारों के बीच में क्रमशः ४८ चहबच्चों की ४८ हारें भी आयी हैं।

इन मोहोलों इन बंगलों, इन चेहेबच्चों बगीचों।

ए सुख छाया बन की, कब देओगे हमकों॥१२॥

हे प्राणेश्वर! परमधाम के इन महलों, बंगलों, चहबच्चों, बगीचों, तथा वनों की मनोरम छाया के सुखों का

अहसास आप हमें कब करायेंगे?

कई सुख बीच बंगलों, कई सुख खूबी खुसाली खास।  
 सो दिल कब हम देखसी, हकसों विविध विलास॥१३॥

बंगलों के बीच होने वाली लीला का अपार सुख है। इसी प्रकार खूब खुशालियों द्वारा होने वाली सेवा के भी विशेष प्रकार के अनेक सुख हैं। हे धनी! आपके साथ होने वाली अनेक प्रकार की लीलाओं के आनन्द का अनुभव हमारे दिल को पुनः कब प्राप्त होगा?

एक सब्द सखी बोलते, कई ठौरों उठें जी जी कार।  
 मन सरूप कई सोहागनी, कई एक पाँउं खड़ियां हजार॥१४॥

खूब खुशालियाँ हमारी मनस्वरूपा हैं। जब हममें से कोई भी सखी सेवा के लिये कुछ भी कहती थी, तो कई

स्थानों से सेवा के लिये खूब खुशालियों की जी-जी की आवाज आती थी। हमारी प्रेम-भरी सेवा के लिये वे पल-पल हजारों की संख्या में एक पाँव पर खड़ी रहती हैं।

**भावार्थ-** "एक पाँव पर खड़े रहना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है- सेवा या कार्य करने में नाम मात्र के लिये भी प्रमाद या आलस्य को न आने देना।

**सखी कछुक मन में चाहत, सो आगूं खड़ी ले आए।**

**यों चित चाहे सुख धाम के, कब लेसी हम जाए॥१५॥**

परमधाम में हममें से कोई भी ब्रह्मांगना जब लीला रूप में किसी भी वस्तु की इच्छा करती थी, तो उसी क्षण उस वस्तु को लेकर खूब खुशालियाँ उपस्थित रहती थीं। इस प्रकार परमधाम में हमें मन की इच्छानुसार सुख प्राप्त

होता था। परमधाम जाकर उन सुखों को हम पुनः कब प्राप्त करेंगी?

**विशेष-** कुछ चौपाइयों में चितवनि द्वारा (आत्मा से) परमधाम की लीला के रसास्वादन का प्रसंग है, तो कुछ में परात्म द्वारा। खेल में आत्मा रस लेती है और परमधाम में परात्म।

जोए जितथें हुई जाहेर, कहां सुख इन चबूतर।

आगूं कुंड जल चलकत, बड़ा बन सोभा ऊपर॥१६॥

जिस ढँपे चबूतरे से यमुना जी प्रकट होती हैं, उसके सुख अब कहाँ चले गये हैं? ढँपे चबूतरे के आगे मूल कुण्ड है, जहाँ से श्री यमुना जी का जल लहराते हुए दृष्टिगोचर होता है। इसके दायें-बायें पुखराजी रौंस पर बड़ोवन के वृक्षों की दो हारें आयी हैं, जिनकी डालियाँ

यमुना जी के जल चबूतरे तक छायी हुई हैं।

ए बन गिरद पुखराज के, बड़ा बन खूबी लेत।

ए फेर मिल्या बन जोए के, नूर आकास भरयो जिमी सेत॥१७॥

इस बड़ोवन की शोभा अपार है। यह पुखराज पहाड़ को चारों ओर से घेरकर आया है तथा पुनः यमुना जी के दोनों ओर पाल पर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों से मिल गया है। उज्ज्वल धरती से लेकर आकाश तक सर्वत्र ही इस बड़ोवन की ज्योति फैली हुई है।

**विशेष-** यमुना जी की पाल पर बड़ोवन के वृक्षों की पाँच हारें (सातों घाटों के रूप में) तथा पुखराजी रौंस पर दो हारें आयी हैं।



इत अनेक वनस्पति, कई पसु पंखी करें जिकर।

हम इत सुख लेती हकसों, जानों बैठक एही खूबतर॥१८॥

इन वनों में अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ हैं, जिनमें अनन्त प्रकार के पशु-पक्षी बहुत ही मधुर आवाज किया करते हैं। हम सभी सखियाँ इन वनों में अपने प्राणवल्लभ के साथ प्रेममयी लीला का आनन्द लिया करती थीं। हमें ऐसा लगता था कि जैसे यही स्थान सबसे अच्छा है।

ए बन मोहोल कई विध के, बड़े बड़े कई बड़े रे।

मोहोल मंदिरों हिसाब नहीं, चौड़े चौड़े कई चौड़े रे॥१९॥

हे साथ जी! यहाँ के वन और महल अनेक प्रकार की आकृति एवं शोभा लिये हुए हैं। ये बहुत बड़े-बड़े (विशाल क्षेत्र वाले) हैं। इन महलों और मन्दिरों की कोई सीमा नहीं है। इनकी लम्बाई-चौड़ाई भी बहुत विस्तृत

है।

जब पीछल चले पुखराज के, अति चौड़ो बड़ो विस्तार।

ए बन खूबी क्यों कहूं, आवत नहीं सुमार॥२०॥

जब मूल कुण्ड से पीछे की ओर पुखराज के पास चलते हैं, तो यहाँ महावन के बहुत ऊँचे-ऊँचे एवं चौड़े-चौड़े (मोटे-मोटे) वृक्ष दिखायी पड़ते हैं। इस वन की विशेषताओं का मैं कैसे वर्णन करूँ। इनकी कोई सीमा ही नहीं है।

एक एक पेड़ पर कई भोमें, कई भोम कई जुगत।

पसु पंखी एक बिरिख पर, कई जुगतें बास बसत॥२१॥

एक-एक वृक्ष के ऊपर अनेक भूमिकायें हैं और एक – एक भूमिका में डालियों, पत्तों, तथा फूलों में अनेक

प्रकार की रचनायें हैं। इस प्रकार, एक-एक वृक्ष पर बहुत से पशु-पक्षी अनेक प्रकार से निवास करते हैं।

**कई तेज जोत प्रकास में, अवकास भरयो ताके नूर।**

**जिमी मोहोल बन पसु पंखी, ए कब देखें अर्स जहूर॥२२॥**

सभी (अनन्त) प्रकार के पशु-पक्षी अलौकिक तेज, ज्योति, एवं प्रकाश से ओत-प्रोत रहते हैं। उनका नूर (तेज, ज्योति, प्रकाश, सौन्दर्य आदि) सम्पूर्ण आकाश में फैला हुआ दिखायी देता है। हे प्रियतम! हम सभी आत्मायें परमधाम की नूरमयी धरती, महलों, वनों, एवं पशु-पक्षियों की अलौकिक शोभा को कब देखेंगी?

**ए बन जाए बड़े बन मिल्या, चल गया पुखराज पार।**

**अर्स बन सोभा क्यों कहूं, और बन दोऊ किनार॥२३॥**

यह महावन पुखराज के आगे जाकर बड़ोवन में मिल गया है। परमधाम के इन वनों (बड़ोवन, मधुवन, एवं महावन) तथा यमुना जी के दोनों किनारों पर आये हुए वनों (सात घाटों एवं बड़ोवन) की अनुपम शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

**कुंड आगे ढांपी चली, अद्भुत ऊपर मोहोलात।**

**अंदर बैठकें क्यों कहूं, दोऊ किनार लिए चली जात॥२४॥**

मूल कुण्ड के आगे (पूर्व में) मरोड़ तक यमुना जी के दोनों ओर पाल पर थम्भों की दो-दो हारें आयी हैं, जिनकी छत आधी दूरी तक यमुना जी पर भी है। इसे ढँपी यमुना जी कहते हैं। ढँपी यमुना जी पर ५ देहुरियाँ हैं तथा दायें-बायें पाल के थम्भों की छत पर १०-१० देहुरियाँ हैं। इस प्रकार ढँपी यमुना जी में महलों

(देहुरियों) की अद्भुत शोभा हो रही है। दोनों किनारों की पाल पर इन देहुरियों के नीचे सुन्दर बैठकें बनी हुई हैं, जिनकी मनोहारिता का वर्णन कैसे करूँ।

**किनारे कठेड़ा बैठक, अति सुंदर थंभ सोभात।**

**दोऊ तरफों चबूतरे, खूबी इन मुख कही न जात॥२५॥**

इन पालों के दोनों तरफ (जल रौंस व वन की रौंस पर) जगह-जगह तीन-तीन सीढ़ियाँ उतरी हैं। शेष जगह में पाल की किनार पर थम्भों के मध्य कठेड़ा आया है। ये थम्भ बहुत ही सुन्दर शोभा को धारण किये हुए हैं। इस प्रकार, यमुना जी के दोनों किनारों पर पालों (चबूतरों) की जो अनुपम शोभा है, उसका वर्णन इस मुख से हो पाना सम्भव नहीं है।

जाए आगूं भई जोए जाहेर, ढांपिल दोऊ किनार।

ऊपर कलस दोऊ कांगरी, और थंभ सोभे हार चार॥२६॥

आधी दूरी तक यमुना जी इसी प्रकार ढँपी हुई है (इस पर ५ देहुरियाँ हैं)। इसके आगे शेष आधी दूरी तक यमुना जी पर छत नहीं है, बल्कि दोनों तरफ पालों के ऊपर थम्भों की २-२ हारें (कुल ४ हारें) आयी हैं। इनकी छत पर देहुरियों की शोभा पूर्ववत् है। देहुरियों के ऊपर कलश और ध्वजा-पताकाओं की रमणीय शोभा दिखायी दे रही है। पाल की चाँदनी (छत) के दोनों किनारों पर कँगूरों व काँगरी की अद्भुत शोभा आयी है।

जड़ित किनारें दोऊ जल पर, दोऊ कठेड़े गिरदवाए।

ए सुख लेती मासूक संग, इत अचरज बनराए॥२७॥

यमुना जी के दोनों किनारे (जल रौंस एवं पाल) रत्नों

से जड़े हुए हैं। पाल के दोनों ओर कठेड़ा आया हुआ है। यहाँ पर वृक्षों की शोभा आश्चर्य में डालने वाली है। यहाँ पर हम सभी सखियाँ अपने धनी के साथ तरह-तरह की लीलाओं का आनन्द लिया करती थीं।

**इतथें चली तरफ ताल के, एक मोहोल एक चबूतर।**

**दोऊ किनारे कुसादी होए चली, इत सोभा लेत यों कर॥२८॥**

यमुना जी अपनी ढँपी-खुली शोभा के बाद मुड़कर दक्षिण दिशा में हौज़ कौसर ताल की ओर जाती है। मरोड़ से केल पुल तक यमुना जी के दोनों ओर पाल के ऊपर ५ महल-४ चबूतरे क्रमशः आये हैं, जिन्हें एक महल-एक चबूतरा कहते हैं। इन दोनों ओर के किनारों के मध्य यमुना जी का जल विस्तृत रूप में प्रवाहित होता है। इस प्रकार यमुना जी की अलौकिक शोभा दृष्टिगोचर

हो रही है।

आगूं पुल इत आइया, ऊपर बड़ी मोहोलात।

कई देहेलान झरोखे जल पर, जल चल्या घड़नाले जात॥२९॥

एक महल—एक चबूतरे की शोभा के आगे यमुना जी पर केल पुल आया है, जिस पर ५ भूमिका ऊँचा महल सुशोभित हो रहा है। इसमें ११ थम्भों की ११ हारें (दहलानें) पाँचों भूमिकाओं में हैं। दूसरी से पाँचवी भूमिका तक चारों ओर छज्जे (झरोखे) निकले हैं, जिनकी किनार पर पुनः थम्भों की एक हार आयी है। इन थम्भों के मध्य चारों तरफ किनार पर कठेड़े की शोभा है। जब जल की तरफ के झरोखों (छज्जों) में आकर देखते हैं, तो १० घड़नालों से निकलकर १० धाराओं में बहती हुई यमुना जी दिखायी देती हैं।



पुल पांच भोम छठी चांदनी, चारों तरफों बराबर।

ए कहां गए सुख रूहन के, ए हम क्यों गए ठौर बिसर॥३०॥

यह पुल पाँच भूमिका एवं छठी चाँदनी (छत) वाला है। चारों ओर इसकी शोभा समान आयी है। इस संसार में आने के बाद हमारे ये सुख कहाँ चले गये? प्रेममयी क्रीड़ा के इन मनोहर स्थानों को हमने क्यों भुला दिया है?

सात घाट बने बीच में, पुल दूजा तिनके पार।

दोऊ मोहोल झरोखे बराबर, इत हिंडोले ठंढ़ी बयार॥३१॥

केल पुल के आगे यमुना जी के दोनों ओर पाल पर सात-सात घाट आये हैं। उसके पश्चात् दूसरा पुल "वट का पुल" आता है। दोनों पुलों के महलों के झरोखे समान रूप से आमने-सामने हैं। इनमें हिण्डोले लगे हुए हैं तथा

शीतल हवा के झोंके आते रहते हैं।

पुल से आगे घाट केल का, ले चल्या जमुना जोए।

केल किनारे मिल्या मधुवन, पुखराज अर्स बीच दोए॥३२॥

केल पुल के आगे श्री यमुना जी के किनारे पश्चिम में सर्वप्रथम केल का घाट आता है। केल के वन यमुना जी की पाल से लेकर ताड़वन के उत्तर से होते हुए बड़ोवन तक आये हैं (केलवन में से होकर बड़ोवन के वृक्षों की पाँच हारें पाल से लाल चबूतरे वाले बड़ोवन तक गयी हैं)। इस केलवन (बड़ोवन) से लगकर इसके उत्तर में तथा केल पुल के पश्चिम में, मधुवन के वृक्षों की ५ हारें दिखायी देती हैं। इस प्रकार, पुखराज पर्वत और रंगमहल के मध्य केलवन एवं मधुवन दोनों की शोभा है।

लटक रही केलां जोए पर, अति खूबी खूबतर।

ए सुख कब लेसी इन घाट के, खेलें विध विध जानवर॥३३॥

केल घाट में यमुना जी के जल के ऊपर केलों के गुच्छे लटकते रहते हैं, जिनकी अपरम्पार सुषमा (शोभा) हो रही है। यहाँ तरह-तरह के जानवर मनोहर खेल किया करते हैं। हम ब्रह्मात्मायें इस केल घाट का सुख कब प्राप्त करेंगी?

इन आगूं घाट लिबोई का, लग्या हिंडोलों जाए।

क्यों कहूं छबि छत्रियन की, ए घाट अति सोभाए॥३४॥

केल के घाट के आगे (दक्षिण में) नींबू का घाट है। यह वन पश्चिम की ओर हिण्डोलों से युक्त ताड़वन तक आया है। इसके वृक्षों की डालियों, पत्तियों, तथा फलों-फूलों से बनी हुई छतरी के समान दिखने वाली छत की शोभा

का मैं कैसे वर्णन करूँ। यह घाट अनुपम सुन्दरता को धारण किये हुए है।

इत सुख लेवें सब मिलके, रूहें बड़ी रूह हकसों।

सो फेर सुख कब हम देखसी, लेसी बैठके हिंडोलों॥३५॥

श्यामा जी सहित हम सब सखियाँ श्री राज जी के साथ यहाँ पर होने वाली प्रेममयी लीला का आनन्द लिया करती थीं। उस आनन्द का रसपान हम पुनः कब करेंगी? लिबोई घाट में पाल के ऊपर बड़ोवन के वृक्षों की जो ५ हारें आयी हैं, उसकी पाँचों भूमिकाओं के हिण्डोलों में झूलने का आनन्द भी हमें कब प्राप्त होगा?

इन आगूं घाट सोभित, अति बिराजे जोए किनार।

काहूं काहूं बीच मोहोल है, बन सोभे हार अनार॥३६॥

नींबू के घाट के आगे अनार का घाट है, जो यमुना जी के किनारे बहुत अधिक सुशोभित हो रहा है। सातों घाटों की सन्धि में जल रौंस पर छोटी -छोटी देहुरियों (महलों) की शोभा दिखायी देती है। अनार वन के वृक्षों की पत्तियाँ बहुत आकर्षक लग रही हैं।

**जाए मिल्या अर्स दिवालों, सोले गुरज झरोखे बीस।**

**हर गुरज बीच बीच में, मोहोल सोभे झरोखे तीस॥३७॥**

यह अनार वन रंगमहल की दीवार से मिला हुआ है। रंगमहल की दीवार में अनार वन के सामने १६ गुर्जों के ५०० झरोखें आये हुए हैं। प्रत्येक गुर्ज के मध्य में ३० - ३० झरोखे और मन्दिरों की शोभा है।

**भावार्थ-** अनार का वन ५०० मन्दिर की चौड़ाई में है। इसके सामने रंगमहल के ५०० मन्दिर आते हैं। प्रत्येक

हाँस ३० मन्दिर का है और प्रत्येक हाँस के कोनों में गुर्ज शोभायमान हैं। अनार वन के सामने रंगमहल के १६ हाँस और २० मन्दिर आये हैं, अर्थात् १७वें हाँस में १० मन्दिर कम हैं। १६ हाँस के कोनों के १६ गुर्ज व २० मन्दिरों के २० झरोखे अनार वन के सामने हैं। प्रत्येक हाँस के ३० मन्दिरों के ३० झरोखे होते हैं। १६ हाँस के ४८० झरोखे हुए और २० मन्दिरों के २० झरोखे हुए। इस प्रकार ५०० मन्दिरों के कुल ५०० झरोखे सिद्ध होते हैं।

**इन घाट के ऊपर, रोसन पांच सै झरोखे।**

**इन बन मोहोलों मासूक संग, सुख कब लेसी हम ए॥३८॥**

अनार घाट के ऊपर रंगमहल के ५०० झरोखे जगमगा रहे हैं। हे धनी! वह मधुर घड़ी कब आएगी, जब हम सभी

सखियाँ इन वनों एवं महलों में आपके साथ लीला का सुख लेंगी?

ए झरोखे एक भोम के, यों भोम झरोखे नवों ठौर।

तिन ऊपर चाँदनी कांगरी, तापर बैठक विध और॥३९॥

ये ५०० झरोखे तो एक ही भूमिका में हैं, जो अनार वन की हद में हैं। इसी प्रकार से नवों भूमिकाओं में भी झरोखों की शोभा है (नवीं भूमिका में मन्दिरों की जगह छज्जे हैं, जिन्हें बड़े झरोखे कह सकते हैं)। इनके ऊपर दसवीं चाँदनी में बाहरी हार मन्दिरों की जगह दहलाने हैं, जिनकी चाँदनी पर चारों तरफ गुमटियों, कलशों, कँगूरों, तथा काँगरियों की अद्भुत शोभा है। दसवीं चाँदनी की किनार पर चारों ओर घेरकर एक मन्दिर का चौड़ा छज्जा निकला हुआ है, जिसकी बाहरी किनार पर सुन्दर

रत्नजड़ित कठेड़ा शोभायमान हो रहा है। यहाँ पर बैठक की शोभा कुछ अलग ही है।

आगूं पाट घाट मोहोल सुन्दर, जल पर अति सोभाए।

तले घड़नाले तिनमें, बीच तीन नेहरें चली जाए॥४०॥

अनार घाट के आगे (अमृत वन के सामने) श्री यमुना जी के जल पर पाट घाट की सुन्दर देहुरी (महल) शोभा दे रही है। पाट घाट के नीचे ३ घड़नाले (३ महाराबों की ४ हारें) हैं, जिनमें से यमुना जी की तीन नहरें प्रवाहित हो रही हैं।

**विशेष-** यमुना जी के दोनों किनारों के पाट घाटों के नीचे से ३-३ नहरें निकलती हैं। शेष ४ नहरें दोनों पाट घाटों के बीच से स्वतन्त्र रूप से प्रवाहित होती हैं।



थंभ बारे पाट चांदनी, जल हिस्से तीसरे जोए।

चारों खूंटों थंभ नीलवी, थंभ आठ चार रंग सोए॥४१॥

पाट घाट में १५० मन्दिर लम्बे-चौड़े पाट के चारों ओर किनारे पर १२ थम्भ जगमगा रहे हैं, जिनकी चाँदनी में देहुरी शोभायमान है। यह पाट घाट यमुना जी के लगभग तीसरे हिस्से में है (यमुना जी के दोनों किनारों पर पाट आया है तथा मध्य का २०० मन्दिर का भाग खाली है)। पाट के चारों कोनों के थम्भ नीलम के हैं। पूर्व के दो थम्भ माणिक के हैं और पश्चिम के दो थम्भ पाच के हैं। उत्तर के दो थम्भ पुखराज के एवं दक्षिण के दो थम्भ हीरे के आये हैं।

लग कठेड़े रूहें बैठत, कई रंग जवेरों जोत।

बीच बैठे मासूक आसिक, जल बन आकास उद्योत॥४२॥

यह पाट घाट अनेक रंगों के जवाहरातों की ज्योति से जगमगा रहा है। इन थम्भों के मध्य तीन दिशा (उत्तर, पूर्व, व दक्षिण) में कठेड़े की शोभा है। सभी सखियाँ कठेड़े से लगकर बैठती हैं और उनके बीच में युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी सिंहासन पर विराजमान होते हैं। यमुना जी के उज्ज्वल जल तथा वनों से उठने वाली अलौकिक ज्योति से सम्पूर्ण आकाश प्रकाशित हो रहा है।

**इत सोभित बन अमृत, और कई बिध बन अनेक।**

**ए जाए मिल्या लग चांदनी, अर्स आगूं बन विवेक॥४३॥**

पाट घाट के सामने अमृत वन है, जिसमें आम के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के मेवों के भी वृक्ष हैं। यह वन आगे चाँदनी चौक तक गया है। इस प्रकार, रंगमहल के

सामने अमृत वन की शोभा दृष्टिगोचर हो रही है।

**भावार्थ-** अमृत वन २००० मन्दिर लम्बा व ५०० मन्दिर का चौड़ा है, जिसमें से रंगमहल से लगती हुई १६६ मन्दिर लम्बी-चौड़ी जगह चाँदनी चौक ने ले ली है। चाँदनी चौक के दायें-बायें १६७-१६७ मन्दिर की चौड़ी जगह में अमृत वन के वृक्ष रंगमहल तक आये हैं।

द्वार अर्स अजीम का, और नूर द्वार जोए पार।

ए सुख कब हम देखसी, इन दोऊ दरबार॥४४॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने ही यमुना जी के उस पार अक्षर धाम का भी मुख्य द्वार आया हुआ है। हे प्रियतम! इन दोनों महलों की शोभा को देखने का सुख हम पुनः कब प्राप्त करेंगी?

नूर पार भी एह बन, और पहाड़ पुखराज।

इन आगूं बड़ा बन चल्या, रह्या सागरों लग बिराज॥४५॥

बड़ोवन के ये वृक्ष पुखराज पहाड़ को घेरकर अक्षर धाम के पूर्व तक गये हैं। इसके आगे और भी बड़े-बड़े (ऊँचे-ऊँचे) वन आये हैं, जो सागरों तक विद्यमान हैं।

नजर फिरी मेरी दूर लग, देख्या बन विस्तार।

नीला पीला स्याम सेत कई, कहीं कहां लग कहूं न सुमार॥४६॥

परमधाम में मेरी दृष्टि दूर तक जहाँ भी जा रही है, वहाँ तक वनों का अनन्त विस्तार दिखायी दे रहा है। मुझे नीले, पीले, श्याम, श्वेत आदि अनेक रंगों की शोभा दिखायी पड़ रही है। उसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। इसकी कोई सीमा ही नहीं है।

जिमी सब बराबर, बन पोहोंच्या सागर जित।

या बन या मोहोलों मिने, नेहेरें चली गैयां अतंत॥४७॥

वनों का विस्तार सागरों तक है, किन्तु सम्पूर्ण धरती समतल है, कहीं भी उबड़-खाबड़ नहीं है। वनों और महलों में अनन्त नहरों का जाल बिछा हुआ है।

पार ना पहाड़ों हिंडोलों, नहीं मोहोलों नेहेरों पार।

पार ना बन नेहेरें जिमी का, क्यों पसु पंखी होए निरवार॥४८॥

न तो पहाड़ों में लगे हुए हिण्डोले की संख्या की कोई सीमा है, और न महलों या वनों में प्रवाहित होने वाली मनोहर नहरों की। जब धरती का भी विस्तार अनन्त है, तो भला पशु-पक्षियों की संख्या कैसे निर्धारित की जा सकती है।

पार न आवे सागरों, और पार किनारों नाहें।

पार ना मोहोलों किनारों, कई नेहेरें आवें जाएं॥४९॥

न तो सागरों की गहराई की माप की जा सकती है और न उनके एक छोर (किनारे) से दूसरे छोर तक को नापा जा सकता है। बड़ी रांग की हवेलियों की संख्या को भी गिनना सम्भव नहीं है। इन महलों में अनन्त नहरें आती-जाती हैं।

मोहोल जिमी बन कहत हों, और पहाड़ नेहेरें बनराए।

ए कैसे होसी अर्स के, ए देखो रूह जगाए॥५०॥

हे साथ जी! मैं इस दुनिया के भावों के अनुसार ही परमधाम के नूरी महलों, वनों, धरती, पहाड़ों, नहरों, तथा वृक्षों की अलौकिक शोभा का वर्णन करती हूँ, किन्तु उनका वास्तविक रूप तो आप अपनी आत्मा को

जाग्रत करके ही देख सकते हैं।

कई फौजें पसुअन की, कई फौजें जानवर।

जिमी खाली कहूं न पाइए, बसत अर्स लसकर॥५१॥

परमधाम में नूरमयी पशुओं (जानवरों) के अनन्त समूह (सेना, फौजें) हैं। कहीं भी धरती पशु-पक्षियों से रहित नहीं है। परमधाम में सर्वत्र ही उनके समूह दृष्टिगोचर होते हैं।

जिमी बन ए लसकर, जिमी बस्ती न कहूं वीरान।

सब आए मुजरा करत हैं, आगूं अर्स सुभान॥५२॥

वहाँ की सम्पूर्ण धरती एवं वनों में इन पशु-पक्षियों का समूह विद्यमान रहता है। धरती या बस्ती (महल, हवेली, या मन्दिर) में कहीं भी वीरानगी (सूनापन) नहीं है।

प्रत्येक पशु-पक्षी अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत का आ-आकर मधुर दर्शन किया करते हैं।

**भावार्थ-** पूर्ण परमधाम में किसी भी पदार्थ की न्यूनता नहीं है। जहाँ कण-कण में ब्रह्मरूपता के दर्शन होते हैं, वहाँ पशु-पक्षी या किसी भी पदार्थ को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। अक्षरातीत परब्रह्म की लीला, शोभा, गुण, शक्ति, और लीला रूप सभी पदार्थों की संख्या आदि सभी अनन्त हैं।

ए पातसाही अर्स की, केहेनी में आवत नाहें।

ए कह्या वास्ते मोमिन के, जानों दिल दौड़ावें ताहें॥५३॥

यह सब परमधाम की महिमा (स्वामित्व, श्रेष्ठत्व) है, जिसको यथार्थ रूप में शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह तो मेरे तन से धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों के



लिये ही कहलवाया है, जिससे वे अपना दिल तेजी से परमधाम से जोड़ सकें।

एक पात न गिरे बन का, ना खिरे पंखी का पर।

एक जरा जाया न होवहीं, ए अर्स जिमी यों कर॥५४॥

परमधाम की धरती ऐसी है कि वहाँ वन का एक पत्ता भी कभी गिरता नहीं है और न पुराना होता है। पक्षियों का पंख भी कभी उनके शरीर से अलग नहीं होता। यहाँ तक कि वहाँ का एक भी कण किसी रूप में नष्ट नहीं होता।

**भावार्थ—** जब सम्पूर्ण परमधाम अक्षरातीत श्री राज जी के हृदय का ही व्यक्त रूप है, तो वहाँ विनाश या जीर्णता की कल्पना भी नहीं हो सकती।

सब जिमी मोहोल हक के, और सब ठौरों दीदार।

सब अलेखे अखंड, कहे महामत अर्स अपार॥५५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! परमधाम की सम्पूर्ण धरती एवं महल श्री राज जी के ही स्वरूप हैं और प्रत्येक जगह उनका पल-पल दर्शन सबको होता है। लीला रूप सम्पूर्ण सामग्री अखण्ड है, शब्द से परे शोभा वाली है। परमधाम का विस्तार भी अनन्त है।

**भावार्थ-** युगल स्वरूप को मात्र रंगमहल के ही सीमित क्षेत्र (दायरे) में नहीं समझना चाहिए, बल्कि परमधाम के २५ पक्षों के कण-कण में उन्हीं का ही स्वरूप क्रीड़ा करता है, और इच्छा मात्र से किसी को भी (सखियों, खूब खुशालियों, पुतलियों, तथा पशु पक्षियों को) पल-पल दर्शन एवं प्रेम प्राप्त होता रहता है। निजधाम को कालमाया की दृष्टि से कदापि नहीं देखना चाहिए।

## प्रकरण ॥२६॥ चौपाई ॥१२२१॥

## पसु पंखियों की पातसाही

"पातसाही" शब्द का शुद्ध रूप बादशाही होता है, जिसका तात्पर्य है – गरिमा, स्वामित्व, प्रभुता, श्रेष्ठता, महानता इत्यादि। इस प्रकरण में यह दर्शाया गया है कि परमधाम के पशु-पक्षी भी श्री राज जी के हृदय के स्वरूप हैं और वे भी वहदत के आनन्द की रसधारा में डूबे रहते हैं।

एह निमूना ख्वाब का, किया कारन उमत।

कायम अर्स ख्वाब में, देखाया लेने लज्जत॥१॥

धाम धनी ने स्वप्न का यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही बनाया है, ताकि वे परमधाम को इस संसार में देखकर वहाँ का रसास्वादन कर सकें।

**भावार्थ—** यद्यपि खेल के बनने में प्राथमिकता

ब्रह्मसृष्टियों की इच्छा को ही दी जा सकती है, किन्तु इसमें अक्षर ब्रह्म को भी परमधाम के विलास के रहस्य को बताना था। "धनी जी ध्यान तुमारे, बैठे बुध जी बरस सहस्र चार" (किरंतन ५३/१) का कथन इसी सन्दर्भ में है।

परमधाम में परात्म के नूरी तनों से जहाँ लीला का विलास है, वहीं इस संसार में आत्मा चितवनि द्वारा युगल स्वरूप तथा परमधाम का साक्षात्कार करके आठों सागरों एवं ब्रह्मलीला का मात्र रसास्वादन ही कर पाती है, विलास नहीं, क्योंकि उसका यह मायावी तन विलास का बोझ सहन नहीं कर सकता। विलास का तात्पर्य है—विशेष रूप से प्रकाशित होना या सुशोभित होना। प्रेम और आनन्द का क्रीड़ामग्न हो जाना ही विलास कहलाता है।

ब्रह्मसृष्ट कही वेद ने, अहेल-अल्ला कहे फुरमान।

निसबत सुख ख्वाब में, कर दई हक पेहेचान॥२॥

वेदों (हिन्दू धर्मग्रन्थों) में जिन्हें ब्रह्मसृष्टि कहा गया है, कुरआन में उन्हें अल्लाह तआला का वारिस कहा गया है। धाम धनी ने अपनी तारतम वाणी द्वारा ब्रह्मात्माओं को इस संसार में भी मूल सम्बन्ध के सुखों की पहचान करा दी है।

**भावार्थ-** मोमिनों (ब्रह्मात्माओं) को अल्लाह तआला का वारिस (उत्तराधिकारी) कहने का आशय ये है कि मात्र ये ही परमधाम की हकीकत एवं मारिफत (सत्य तथा परमसत्य, विज्ञान) को समझने का सामर्थ्य रखते हैं।

एक साहेबी अर्स की, और कोई काहूं नाहें।

आराम देने उमत को, देखाया ख्वाब के माहें॥३॥

एकमात्र परमधाम ही सर्वोपरि है। उसके समान अन्य कोई भी (धाम) अन्यत्र कहीं भी नहीं है। ब्रह्मसृष्टियों को आनन्द देने के लिये ही प्रियतम अक्षरातीत ने तारतम वाणी द्वारा उन्हें संसार में परमधाम की गरिमा (साहिबी) की पहचान करायी है।

**ख्वाब खाई साहेबी, और अर्स की हैयात।**

**ए दोऊ तफावत देख के, अंग में सुख न समात॥४॥**

श्री राज जी ने हमें इस संसार में ही परमधाम की सर्वोपरिता तथा अखण्डता की पहचान करायी है। झूठे संसार और परमधाम में भेद स्पष्ट हो जाने पर हमारे हृदय में इतना अधिक आनन्द हो रहा है कि वह समा नहीं पा रहा है, अर्थात् सहनशक्ति से भी अधिक आनन्द की अनुभूति हो रही है।

अब कहूं अर्स अजीम की, और बन का विस्तार।

नहीं इंतहाए जिमी जंगल का, ना पसु पंखी सुमार॥५॥

अब मैं सर्वोपरि परमधाम तथा वहाँ के वनों के विस्तार के विषय में बता रही हूँ। वहाँ की धरती तथा वनों के क्षेत्र की कोई सीमा नहीं है (अनन्त है)। इसी प्रकार वहाँ निवास करने वाले पशु-पक्षी भी अनन्त हैं।

इन रेत रंचक की रोसनी, आकास न मावे नूर।

तो रोसनी सब बन की, क्यों कर कहूं जहूर॥६॥

परमधाम में रेत के एक बहुत छोटे से कण में इतनी ज्योति है कि वह सम्पूर्ण आकाश में समा नहीं पाती है, अर्थात् चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखायी देता है। ऐसी स्थिति में मैं सम्पूर्ण वन की ज्योति को शब्दों द्वारा किस प्रकार से व्यक्त करूँ।



तेज ऐसो इन डार को, और पात को प्रकास।

सो रोसनी ऐसी देखत, मावत नहीं आकास॥७॥

निजधाम के एक वृक्ष की डाली और पत्ते में भी ऐसा तेज प्रकाश विद्यमान होता है कि उसकी ज्योति सम्पूर्ण आकाश में नहीं समा पाती अर्थात् सर्वत्र ज्योति ही ज्योति दिखायी देती है।

**भावार्थ-** तेज से ही प्रकाश का फैलाव (विस्तार, प्रकटीकरण) होता है। तेज में बीज रूप से ज्योति का वास वैसे ही होता है, जैसे अहंकार में अस्मिता, यश में कान्ति, पवन में वायु, तथा सौन्दर्य में कान्ति का होता है।

ए जुबां ना केहे सकत है, एक पात की रोसन।

तो इन डार की क्यों कहूं, जो प्रफुलित सब बन॥८॥

मेरी यह जिह्वा जब एक पत्ते की ज्योति का भी वर्णन नहीं कर पा रही है, तो वृक्षों की उन डालियों की शोभा का कैसे वर्णन कर सकती है जब सम्पूर्ण वन ही नूरी ज्योति से ओत-प्रोत हो रहा है।

**डार पात सब नूर में, फल फूल बेलों जोत।**

**केहे केहे मुख कहा कहे, सब आकास में उद्योत॥९॥**

परमधाम के वनों की डालियों, पत्तों, फलों, फूलों, तथा लताओं में अनन्त नूरी ज्योति जगमगाती रहती है। सम्पूर्ण आकाश में चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखायी दे रहा है। इतना कहने पर भी मैं यह निर्णय नहीं कर पा रही हूँ कि उसे दर्शाने के लिये अपने मुख से मैं क्या कहूँ।

बन गिरदवाए अर्स के, और एही गिरदवाए ताल।

एही गिरदवाए जोए के, जुबां कहा कहे खूबी जमाल॥१०॥

सम्पूर्ण रंगमहल, हौज़ कौसर ताल, और यमुना जी के चारों ओर इन्हीं नूरी वनों की अलौकिक शोभा आयी है। मेरी यह जिह्वा वनों की अनुपम सुन्दरता की विशेषताओं का कैसे वर्णन करे।

कह्या ऐसा ही बन नूर का, रेत ऐसे ही रोसन।

तो नूर मोहोल की क्यों कहूँ, जाको नामै नूर वतन॥११॥

अक्षर धाम के पास भी ऐसे ही सुन्दर वन आये हैं। वहाँ की रेत भी परमधाम की ही तरह जगमगा रही है। ऐसी स्थिति में अक्षर ब्रह्म के रंगमहल की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ, जिसका नाम ही नूर का वतन (धाम) है।

तो अर्स मोहोल की रोसनी, और अर्स मोहोल हौज जोए जे।

नूर मोहोल ना केहे सकों, तो क्या कहे जुबां नूर ए॥१२॥

जब मैं अक्षर ब्रह्म के रंगमहल की शोभा का वर्णन नहीं कर पा रही हूँ, तो परमधाम के रंगमहल, हौज कौसर ताल, एवं यमुना जी की नूरी ज्योति की शोभा का वर्णन कैसे कर सकती हूँ।

**भावार्थ—** इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब परमधाम में वहदत (एकत्व) है और अक्षर ब्रह्म का रंगमहल भी परमधाम के अन्दर ही है, तो परमधाम को अक्षर ब्रह्म के रंग महल से उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) ज्योति वाला क्यों कहा गया है जिसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है? क्या परमधाम में भी कहीं कम और कहीं अधिक ज्योति है और यदि ऐसा है, तो क्या यह वहदत के सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं है?

इसके समाधान में यही कहना उचित होगा कि यद्यपि सम्पूर्ण परमधाम (अक्षर ब्रह्म के रंगमहल सहित) श्री राज जी के हृदय का ही व्यक्त स्वरूप है और नूरी ज्योति भी समान ही है, किन्तु लीला की भिन्नता के कारण श्री महामति जी की आत्मा को अक्षर ब्रह्म के रंगमहल की अपेक्षा परमधाम के पच्चीस पक्षों में उत्कृष्ट ज्योति दिखायी दे रही है। यह कथन वैसे ही है जैसे श्री कृष्ण जी की बाल लीलाओं का सूरदास जी ने जो मधुर वर्णन किया है, वैसा सुन्दर वर्णन उनसे द्वारिकाधीश या मथुराधीश श्री कृष्ण के प्रति नहीं हो सका। इसका मूल कारण हृदय की भावात्मक अभिव्यक्ति है। जब अक्षर और अक्षरातीत का स्वरूप एक ही है (सरूप एक है लीला दोए) तो उन्हें भी कम या अधिक ज्योति वाला नहीं कहा जा सकता, किन्तु किसी भी ब्रह्मात्मा को श्री

राज जी ही अधिक सुन्दर प्रतीत होंगे, क्योंकि वे ही उसके हृदय के सर्वस्व हैं। इतना अवश्य है कि अक्षर ब्रह्म के रंगमहल तथा सत्स्वरूप या केवल ब्रह्म की ज्योति में बहुत अधिक अन्तर है।

**सिरदार सब बन में, पसु पंखी जात जेती।**

**खूबी बल हिकमत की, जुबां क्या कहेगी केती॥१३॥**

वनों में पशु-पक्षियों की जितनी भी जातियाँ हैं, वे सभी वनों में अपनी प्रमुखता (सरदारीपना, प्रभुत्व) दर्शाते हैं। उनकी सुन्दरता, शक्ति, तथा बुद्धिमता के विषय में मेरी यह जिह्वा कितना वर्णन कर सकती है, अर्थात् वास्तविक वर्णन नहीं कर सकती।

**भावार्थ-** यद्यपि परमधाम में सभी समान हैं, किन्तु इस चौपाई में प्रमुखता दर्शाने का भाव यह है कि कोई भी

पशु-पक्षी किसी से भी किसी क्षेत्र में हीन भावना से ग्रसित नहीं है, बल्कि सभी समान हैं।

जिमी अर्स की देखियो, हिसाब न काहूं सुमार।

देख देख के देखिए, अनेक अलेखे अपार॥१४॥

हे साथ जी! यदि आप परमधाम की धरती का विस्तार देखें, तो आपको विदित होगा कि उसका कोई ओर-छोर (सीमा) नहीं है। उसे बारम्बार देखने पर यही निष्कर्ष निकलेगा कि परमधाम की धरती का विस्तार अनन्त है, उसे किसी भी माप में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

तिन सब जिमी में बस्ती, कहूं पाइए नहीं वीरान।

पातसाही पसुअन की, और जानवरों की जान॥१५॥

निजधाम की सम्पूर्ण धरती पर पशु-पक्षियों की बस्तियाँ हैं। कहीं भी वीरानगी (सूनापन) दिखायी नहीं देती, चारों ओर पशु-पक्षियों का स्वामित्व (बादशाहत) दिखायी देता है।

**ए जो जिमी अर्स हक की, सो वीरान क्यों कर होए।**

**अबादान हमेसगी, आराम बिना नहीं कोए॥१६॥**

अक्षरातीत के परमधाम की यह नूरी धरती भला सूनी (वीरान) कैसे हो सकती है? यह हमेशा ही अनन्त प्रकार के पशु-पक्षियों से सुशोभित रहती है। कोई भी आनन्द के बिना नहीं है, अर्थात् सभी अखण्ड आनन्द में डूबे रहते हैं।



अखंड आराम सब में, चल विचल इत नाहें।

सब सुख हैं अर्स में, रहें याद हक के माहें॥१७॥

सभी पशु-पक्षी परमधाम के उस अखण्ड आनन्द में मग्न रहते हैं, जिसमें कभी भी घट-बढ़ नहीं होती। परमधाम में इन्हें हर प्रकार का सुख प्राप्त है और ये हमेशा ही श्री राज जी के प्रेम (याद) में डूबे रहते हैं।

अरस-परस हैं हक सों, आसिक हक के जोर।

आवें दीदार को दरिया लेहेर ज्यों, कई पदमों लाख करोर॥१८॥

ये पशु-पक्षी श्री राज जी के हृदय में ओत-प्रोत (अरस-परस) हैं, अर्थात् उन्हीं के अंगरूप हैं और धनी के बहुत बड़े आशिक (प्रेमी) हैं। जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार ये भी लाखों, करोड़ों, तथा पद्मों (अनन्त) की संख्या में प्रतिदिन श्री राजश्यामा जी

का दर्शन करने के लिये आते हैं।

कई लेहेरें आवत हैं, जो नहीं जिमी को पार।

पीछे आवें दरिया पसुअन के, तिन दरियाव नहीं सुमार॥१९॥

जिस प्रकार सागर में असंख्य लहरें उमड़ा करती हैं, उसी प्रकार परमधाम की अनन्त धरती पर रहने वाले पशु-पक्षी भी अनन्त सागर के समान हैं और झुण्ड के झुण्ड (लहर रूप में) अपने प्रियतम श्री राज जी का दर्शन करने के लिये आते हैं।

दौड़ इनों के मन की, क्यों कर कहूं छंछेक।

पोहोंचे सब कदमों तले, जित खावंद सबों का एक॥२०॥

इन पशु-पक्षियों के चलने की तीव्रता का मैं कैसे वर्णन करूँ। ये मन की गति से दौड़ते हैं और पल-भर में ही

श्री राज जी के चरणों में पहुँच जाते हैं, जो सभी के एकमात्र प्रियतम हैं, प्राणाधार हैं।

जो ठौर चित्त में चितवें, हम जाए पोहोंचें इत।

खिन एक बेर न होवहीं, जानों आगे खड़े हैं तित॥२१॥

ये पशु-पक्षी जिस किसी भी स्थान पर पहुँचने के लिये अपने हृदय में विचार करते हैं कि हमें वहाँ पहुँचना है, तो यही मान लेना चाहिए कि एक पल की भी देर किये बिना वे वहीं पर उपस्थित दिखायी देते हैं।

**भावार्थ-** जब पशु-पक्षी भी श्री राज जी के ही अंग हैं और ब्रह्मरूप हैं, तो उनकी गति को लौकिक माप से नहीं मापा जा सकता। वे समय की परिधि से परे हैं। जिस स्वलीला अद्वैत परमधाम में परब्रह्म की सर्वत्र उपस्थिति है, वहाँ आने-जाने में लगने वाले समय की माप कैसे

की जा सकती है?

एक हक अर्स के नजीक हैं, कोई दूर दूर से दूर।

आवत सब दीदार को, जानो आगे खड़े हजूर॥२२॥

भले ही कोई पशु-पक्षी रंगमहल में विराजमान श्री राज जी के निकट होता है और कोई बहुत दूर स्थित होता है, किन्तु धनी के दर्शन के लिये सभी आते हैं और ऐसा लगता है कि जैसे दूर वाले पहले ही पहुँच गये हैं, अर्थात् सभी एकसाथ ही पहुँचते हैं।

**भावार्थ-** स्वलीला अद्वैत परमधाम में समय और दूरी का कोई भी बन्धन नहीं है। यही कारण है कि बहुत दूर स्थित पशु-पक्षी को भी पहुँचने में उतना ही समय लगता है, जितना कि पूर्णतया निकट स्थित पशु-पक्षी को। इस चौपाई में उस लीला का सांकेतिक वर्णन किया

गया है, जब श्री राजश्यामा जी तीसरी भूमिका की पड़साल में खड़े होते हैं तथा सभी पशु-पक्षी चाँदनी चौक में आकर उनका दर्शन करते हैं।

हिकमत बल इनों के, क्यों कर कहे जुबान।

दीदार पावें अर्स हक का, सो देखो दिल आन॥२३॥

हे साथ जी! इन पशु-पक्षियों के बल-बुद्धि का वर्णन मेरी यह जिह्वा नहीं कर सकती। आप अपने दिल में इस बात का विचार करके देखिए कि ये किस प्रकार पल-भर में ही चाँदनी चौक पहुँचकर अपने प्रियतम का दर्शन करते हैं।

क्यों न होए बल इनको, जाको अमृत हक सींचत।

ए पाले-पोसे खावंद के, अर्स तले आवत॥२४॥

जिन पशु-पक्षियों को स्वयं धाम धनी अपनी प्रेम भरी अमृतमयी दृष्टि से सिंचित करते हैं, उनके पास अपार बल क्यों नहीं होगा। धनी के लाड़-प्यार में पले ये पशु उनका दर्शन करने के लिये चाँदनी चौक में आते हैं।

**विचार किए पाइयत हैं, इनों बल हिकमत।**

**ए किया निमूना पावने, इन कादर की कुदरत॥२५॥**

तारतम वाणी के प्रकाश में गहन चिन्तन करने पर ही इनकी बुद्धि एवं बल का पता चलता है। इसे बताने के लिये ही धाम धनी के हुक्म (आदेश) से अक्षर ब्रह्म की शक्ति योगमाया द्वारा कालमाया का यह स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड बनाया गया है।

**भावार्थ-** इस मायावी जगत् में आने पर ब्रह्मसृष्टियों ने जीवन तथा मृत्यु के बीच झूलने वाले प्राणियों को देखा

है तथा तारतम वाणी के प्रकाश में परमधाम की अखण्ड लीला को भी देखा है, जिससे उन्हें अपने धनी एवं परमधाम की महिमा का पता चला है।

**हकें देखाई इन वास्ते, अपनी जो कुदरत।**

**अर्स बड़ाई पाइए, ए देखें तफावत॥२६॥**

यह बताने के लिये ही प्रियतम अक्षरातीत ने हमें यह माया की दुनिया दिखायी है। संसार और परमधाम की तुलना करने पर ही उनमें भेद समझ में आता है तथा निजधाम की महिमा भी ज्ञात होती है।

**भावार्थ—** इस खेल में ही सबको पता चला है कि यह संसार जहाँ असत, जड़, और दुःखमयी है, वहीं परमधाम सत्, चित, और आनन्दमयी है। हमारे धाम धनी एवं परमधाम से परे कुछ भी नहीं है।

करत सबे साहेबियां, जिमी जुगत भरपूर।

दोऊ बखत आवत हैं, देखन हक का नूर॥२७॥

ये पशु-पक्षी सम्पूर्ण परमधाम की धरती पर बहुत ही गरिमापूर्ण तरीके से रहते हैं, और प्रातः (छः बजे) तथा सायं (३ बजे) अपने प्रियतम की शोभा का दर्शन करने चाँदनी चौक में आते हैं।

पातसाही पसु पंखियन की, करत बिना हिसाब।

अखंड अलेखे अति बड़े, पिएं नूर हैयाती आब॥२८॥

परमधाम में पशु-पक्षियों का स्वामित्व (गरिमामय रहन-सहन) अनन्त है, अखण्ड है, और शब्दों की परिधि में न आने वाला अत्यधिक श्रेष्ठ है। ये सीमातीत प्रभुत्व का सुख लेते हैं और धनी के नेत्रों से निकलने वाले अखण्ड प्रेम का रस पीते हैं।



हिसाब नहीं पसुअन को, हिसाब नहीं पंखियन।

नाहीं हिसाब बन जिमी को, जो बीच कायम वतन॥२९॥

अखण्ड परमधाम के अन्दर पशु-पक्षियों की संख्या की कोई सीमा ही नहीं है। वहाँ के वनों एवं धरती का विस्तार भी अनन्त है।

बसत सबे अर्स तले, कई पदमों लाख करोर।

करत पूरी पातसाहियां, पसु पंखी दोऊ जोर॥३०॥

परमधाम में लाखों, करोड़ों, और पद्मों क्या, अनन्त की संख्या में पशु-पक्षी रहते हैं। ये पूर्णतया निर्भीक होकर अपनी क्रीड़ाओं द्वारा अपना पूर्ण स्वामित्व दर्शाते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई की दूसरी पंक्ति का आशय यह है कि परमधाम के पशु-पक्षी अपने पूर्ण अधिकार के साथ कहीं भी आ-जा सकते हैं तथा धनी का अंग होने के

कारण प्रेम और आनन्द का रसपान अन्य (सखियों तथा खूब खुशालियों) की तरह ही कर सकते हैं। वे दीन, हीन, अनाथ, या किसी पर भी आश्रित नहीं हैं। स्वलीला अद्वैत परमधाम में मूलतः अक्षरातीत श्री राज जी के अतिरिक्त और कोई है ही नहीं। अतः पशु-पक्षियों को भी उसी दृष्टि से देखना चाहिए।

**जो कोई दूर बसत हैं, सो जानों आगे हजूर।**

**बोहोत बल हिकमत, सब अंगों निज नूर॥३१॥**

लीला रूप में भले ही कोई पशु-पक्षी श्री राज जी से दूर प्रतीत होता है, किन्तु यही मानना चाहिए कि वह धाम धनी के बिल्कुल सामने है। इन पशु-पक्षियों में अपार बल एवं बुद्धि है। इनके सभी अंगों में अक्षरातीत श्री राज जी का ही नूर (प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य) क्रीड़ा करता है।

जित मन में चितवें, तित पोहोंचें तिन बखत।

ऐसा बल रखें हक का, कायम जिमी में बसत॥३२॥

ये पशु-पक्षी अखण्ड परमधाम के रहने वाले हैं। इनमें धाम धनी का ऐसा बल विद्यमान है कि कहीं पर भी रहकर ये अपने मन में जहाँ भी जाने का विचार करते हैं, तो उसी पल वहाँ उपस्थित हो जाते हैं।

पसु पंखी इन बन में, जो जिमी बन सोभित।

और सोभा पर नकस की, क्यों कर करूं सिफत॥३३॥

यहाँ की नूरमयी धरती पर जो वन सुशोभित हैं, उनमें अनन्त पशु-पक्षी वास करते हैं। उनके परों पर जो अद्भुत चित्रकारी की शोभा है, उसकी प्रशंसा मैं कैसे करूँ।

**द्रष्टव्य-** परमधाम में पक्षियों के अतिरिक्त पशुओं के भी पंख होते हैं। "घोड़े पर राखत हैं, आकास में उड़त"

(परिकरमा २९/५) का कथन यह सिद्ध करता है।

पसु सुन्दर अति सोहनें, मीठी बान बोलत।

इनों सिफत जुबां क्यों कहे, जो खावंद को रिझावत॥३४॥

सभी पशु बहुत ही सुन्दर एवं मनमोहक हैं। ये जिस प्रकार अति मीठी वाणी बोलकर श्री राज जी को रिझाते हैं, उसकी प्रशंसा इस जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है।

कई भातें कई खेलौने, कई खेल खुसाली करत।

कई विधों निरत नाच के, मासूक को हँसावत॥३५॥

ये पशु-पक्षी अनेक प्रकार के मोहक खेलौनों की तरह हैं, जो तरह-तरह के आनन्दमयी खेल करते हैं। ये अनेक प्रकार के आकर्षक नृत्य करके अपने प्राणेश्वर श्री राज जी को हँसाते हैं।

अनेक बानी मुख बोलहीं, अनेक अलापें गाए।

ऐसे बचन कई बोलहीं, किसी आवे न औरों जुबाएं॥३६॥

ये पशु-पक्षी अपने मुख से अनेक प्रकार की वाणी बोलते हैं और राग अलापकर मधुर गीत गाते हैं। ये इतने प्रेम-भरे, मधुर वचन बोलते हैं कि कोई भी और व्यक्ति वैसा बोल ही नहीं सकता।

छोटे बड़े पसु पंखी, सब रिझावें साहेब।

लड़े खेलें बोलें बानी, विद्या कई विध साधें सब॥३७॥

छोटे-बड़े सभी पशु-पक्षी अपने धाम धनी को तरह-तरह से रिझाते हैं। प्रेम भरी लड़ाई करके खेलते हैं और मीठी वाणी बोलते हैं। इस प्रकार वे अनेक प्रकार की कलाओं से अपने प्राणप्रियतम को रिझाते हैं।

कई जुदी जुदी विद्या जानवर, कई चढ़ें ऊंचे कूदें फांदें।  
टेढ़े आड़े सीधे उलटे, कई विध गत साधें॥३८॥

पशु-पक्षियों में अलग -अलग प्रकार की बहुत सी कलायें हैं। कई ऊँचाई पर चढ़ते हैं, तो कई कूदते हैं। बहुत से ऐसे भी हैं जो छलांगे लगाते हैं। कुछ टेढ़ी चाल चलते हैं, तो कुछ आड़ी (तिरछी) चलते हैं। कुछ सीधे चलते हैं, और कुछ उल्टे। इस प्रकार, वे कई प्रकार की कलायें दिखाते हैं।

कई विध करें लड़ाइयां, कई विध नाचें मोर।

कई विध हँसावें धनी को, खेल करें अति जोर॥३९॥

ये पशु-पक्षी कई प्रकार की प्रेम-भरी लड़ाइयाँ करके अपने धनी को रिझाते हैं। मोर अनेक प्रकार से अपनी नृत्य-कला को दर्शाते हैं और बहुत ही मनमोहक खेल

करके अनेक प्रकार से अपने प्राणप्रियतम को हँसाते हैं।

निरमल नेत्र अति सुन्दर, परों पर चित्रामन।

मीठी बानी खूबी खेल की, कहां लो कहूं रोसन॥४०॥

इन पशु-पक्षियों के नेत्र बहुत ही स्वच्छ और सुन्दर हैं। उनके परों (पँखों) पर मनमोहक चित्र बने हुए हैं। इनकी वाणी में अप्रतिम (अतुलनीय) मिठास है। धनी को रिझाने के लिये इनके द्वारा की जाने वाली तरह-तरह की लीलाओं की विशेषताओं को मैं कैसे बताऊँ।

और गत पसुअन की, खेल बोल इनों और।

क्यों कहूं सिफत इनों की, जो बसत सबे इन ठौर॥४१॥

परमधाम में जो भी पशु-पक्षी रहते हैं, उनकी अवस्था, खेलना, और बोलना इस संसार से अलग प्रकार का

होता है। मैं इनकी महिमा को शब्दों में कितना बताऊँ।

**भावार्थ-** जहाँ इस संसार के पशु-पक्षी मात्र आहार, निद्रा, प्रजनन, राग, द्वेष, एवं गन्दगी से भरे होते हैं, वहीं परमधाम के पशु-पक्षी इन दुर्गुणों के पूर्णतया विपरीत होते हैं, जो इस प्रकरण में दर्शाया जा रहा है।

कई लड़ के देखावहीं, कई उड़ देखावें कूद।

क्यों कहूं सिफत कायम की, इन जुबां जो नाबूद॥४२॥

कुछ पशु-पक्षी लड़कर अपनी कला दिखाते हैं और धनी को रिझाते हैं, तो कुछ उड़कर, और कुछ कूदकर। इस नश्वर जिह्वा से भला मैं परमधाम के इन नूरी पशु-पक्षियों की महिमा का वर्णन कैसे कर सकती हूँ।



कई देत गुलाटियां, कई अनेक करें फैल हाल।

सौ सौ गत देखावहीं, ज्यों हक हादी रूहें होत खुसाल॥४३॥

बहुत से पशु-पक्षी आकाश में कलाबाजियाँ करते हैं। धनी को रिझाने के लिये वे कई प्रकार की क्रियाओं और अवस्थाओं में संलग्न होते हैं। वे सौ-सौ कलायें करके दिखाते हैं, जिससे श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ आनन्दित हो सकें।

**भावार्थ-** हवा में उल्टा मुँह करके लटकना या छलांग लगाना उल्टबाजी (कलाबाजी) करना कहलाता है। धनी को रिझाने के लिये किसी कला आदि का प्रदर्शन करना "फैल" है, और उनके प्रेम में डूबे रहना "हाल" है।

कई हंस गरुड़ केसरी, कई बाघ चीते घोड़े।

ए ऐसे कहे जानवर, उड़ आकास में दौड़ें॥४४॥

हँस और गरुड़ आदि पक्षी तो आकाश में उड़ते ही हैं, केशरी (सिंह), बाघ, चीते, और घोड़े भी ऐसे जानवर हैं जो आकाश में पक्षियों की तरह उड़ा करते हैं।

**भावार्थ**— यद्यपि लीला रूप से घोड़ों आदि के पंख भी हैं, किन्तु परमधाम में उड़ने के लिये पंख आदि की कोई भी आवश्यकता नहीं है। मन में उड़ने का विचार आते ही शरीर उड़ने लगता है, चाहे वह पशु-पक्षियों का शरीर हो, या खूब-खुशालियों का, अथवा सखियों आदि का।

**हाथी इत कई रंग के, अस्वारी के सिरदार।**

**कबूँ कबूँ राजस्यामाजी रूहें, बड़े बन करत विहार॥४५॥**

परमधाम में कई रंगों के हाथी हैं, जो सवारी में अग्रणी भूमिका निभाते हैं। इन हाथियों पर बैठकर सखियाँ और राजश्यामा जी कभी-कभी बड़ोवन में घूमते हैं।

कबूँ कबूँ राज रुहन सों, मनवेगी सुखपाल।

बड़े वन मोहोलन में, करत खेल खुसाल॥४६॥

कभी-कभी धाम धनी श्यामा जी और सखियों के साथ मन के वेग से गमन करने वाले सुखपालों पर बैठकर बड़ोवन एवं कई महलों में जाते हैं, और वहाँ तरह-तरह की आनन्दमयी क्रीड़ाएँ करते हैं।

इत और बिरिख कई बड़े, निपट बड़े हैं बन।

बन पर बन अति विस्तरे, कहां लग करूं रोसन॥४७॥

परमधाम में (बड़ोवन के अतिरिक्त) और भी कई वृक्ष हैं जो बहुत ऊँचे हैं, जिनका विस्तार बहुत अधिक है। वनों के ऊपर भी और वन आये हैं, अर्थात् वनों की कई भूमिकायें (मन्जिलें) दिखायी देती हैं, जिनके बारे में मैं कितना वर्णन करूँ।

**एक पेड़ लम्बी डारियां, तिन डारों पर पेड़ अपार।**

**पेड़ डारों कई भोम रची, जुबां कहा कहे ए विस्तार॥४८॥**

यहाँ के वृक्षों की इतनी लम्बी-लम्बी डालियाँ होती हैं कि उन डालियों पर अनन्त पेड़ स्थित होते हैं। वृक्षों की डालियों ने एक के ऊपर एक कई भूमिकायें बना दी हैं, जिनका विस्तार बताने में मेरी जिह्वा असमर्थ है।

**इन भोम-भोम कई मंदिर, पेड़ डारी कई दीवार।**

**छाया बनी पात फूल की, कई बन मंदिर इन हाल॥४९॥**

यहाँ के वृक्षों की एक-एक भूमिका में बहुत से मन्दिर बन गये हैं तथा वृक्षों की बहुत सी डालियों ने दीवारों का रूप धारण कर लिया है। उन पर पत्तों तथा फूलों की छत बन जाती है। इस प्रकार वनों में वृक्षों से बने हुए अपार मन्दिरों का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

विस्तार बड़ा एक पेड़ पर, कहां लग कहूं जुबान।

देखो विध एक बिरिख की, ए मंदिर न होए बयान॥५०॥

एक वृक्ष पर बने हुए मन्दिरों का इतना अधिक विस्तार है कि मैं कहाँ तक उसका वर्णन करूँ। हे साथ जी! एक वृक्ष के विस्तार की वास्तविकता देखिये कि उस पर बने हुए मन्दिरों का वर्णन नहीं हो पा रहा है।

एक बिरिख को बरनन, ऐसे कई बिरिख तिन बन माहें।

तिन पर विस्तार अति बड़ो, सेहेर बसत जानों ताहें॥५१॥

जब एक वृक्ष का विस्तार इतना अधिक कहा गया है, तो परमधाम के वनों में अनन्त वृक्ष आये हैं। उन सभी वृक्षों के समूह रूप वन में मन्दिरों का इतना अधिक विस्तार है कि उन्हें महानगर ही कहा जा सकता है।

एक पेड़ दरखत का, कई दरखत तिन पर।

तिन पर कई मंदिर रचे, कई रहेत अंदर जानवर॥५२॥

एक वृक्ष पर उपरा-ऊपर अनेक वृक्ष आये हैं। इनमें से प्रत्येक वृक्ष पर बहुत से मन्दिर बने हुए हैं, जिनमें बहुत से पशु-पक्षियों का वास है।

किनके पेड़ जिमी पर, कई पेड़ पेड़ ऊपर।

यों पेड़ पर पेड़ आसमान लों, कई सोभा देत सुन्दर॥५३॥

परमधाम की धरती पर जो वृक्ष आये हैं, उनके ऊपर भी अनेक वृक्ष आये हैं। इस प्रकार, भूमिका रूप में बढ़ते हुए वृक्ष आकाश में बहुत ऊँचाई तक चले गये हैं, जो अपार शोभा को धारण किये हुए हैं।

इन बिध बन विस्तार है, उपरा ऊपर अतंत।

सोभा अमान पसु पंखी, इन मंदिरों में बसत॥५४॥

इस प्रकार यहाँ के वनों का विस्तार है, जिसमें वृक्षों के ऊपर वृक्ष आने से उन पर बने हुए मन्दिरों की संख्या अनन्त है। उनमें रहने वाले अनन्त पशु-पक्षियों की शोभा की कोई भी उपमा नहीं दी जा सकती।

बोहोत दूर लों ए बन, आगूं आगूं बड़े देखाए।

चढ़ते चढ़ते चढ़ते, लग्या आसमानों जाए॥५५॥

यह बड़ोवन बहुत दूर तक चला गया है। इसमें हम जितना आगे जाते हैं, उतने ही वृक्ष और बड़े दिखायी देते हैं, अर्थात् मधुवन एवं महावन के वृक्ष दिखने लगते हैं। उनमें एक-एक वृक्ष के ऊपर दूसरे वृक्ष भूमिका रूप में इस प्रकार चढ़ते गये हैं कि ऐसा लगता है जैसे वे

आकाश को छू रहे हैं।

एक पंखी जिमी पर, एक बसत इन मोहोलन।

एक बसत बल परन के, आकास में आसन॥५६॥

कुछ पक्षी धरती पर रहते हैं, तो कुछ वृक्षों पर बने हुए महलों में रहते हैं। कुछ ऐसे भी पक्षी हैं, जो अपने पंखों द्वारा हमेशा आकाश में ही रहते हैं अर्थात् सदा उड़ते ही रहते हैं।

**भावार्थ-** पक्षियों का मात्र लीला रूप में ही धरती, वृक्ष, या आकाश में रहना दर्शाया गया है, किन्तु वहाँ कोई बन्धन नहीं है। कोई भी पक्षी कहीं भी अपनी इच्छानुसार रहकर क्रीड़ा कर सकता है।



ए बड़े खेल की खुसाली, बड़े बन कबूँ करत।

अस्वारी पसु पंखियन पर, कई कूदत उड़ावत॥५७॥

बड़ोवन में रहने वाले ये पशु-पक्षी खेल के आनन्दमयी स्वरूप हैं। धाम धनी कभी-कभी बड़ोवन में इन पशु-पक्षियों पर सवारी करते हैं। उन्हें रिझाने के लिये कई पशु कूदते हैं, तो कुछ को अपने हाथों से पकड़कर स्वयं धाम धनी आकाश में उड़ाते हैं।

हाथी ऊँचे पहाड़ से, मुख सुन्दर दंत सुढाल।

मन वेगी कबूँ न काहिली, तेज तीखी चलें चाल॥५८॥

परमधाम के हाथी पहाड़ों की तरह ऊँचे हैं। उनके मुख बहुत सुन्दर हैं तथा दाँत सुडौल हैं। वे मन के वेग से बहुत तीव्र चाल से चलते हैं और कभी भी सुस्ती (आलस्यपन) नहीं दिखाते।

बाघ गूजें अति बली, कूवत ले कूदत।

देखे आवत दूर से, जानों आसमान से उतरत॥५९॥

यहाँ के बाघ बहुत शक्तिशाली हैं। वनों में उनकी मधुर गर्जना गूँजती रहती है। ये बहुत शक्ति से छलांग लगाते हैं। इनको दूर से आते हुए देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे ये आकाश से उतर रहे हैं।

**भावार्थ—** आकाश अति सूक्ष्म पदार्थ है। उससे उतरने का भाव आलंकारिक है। बाघों का आकाश में उँची छलांग लगाकर चलना ही अलंकारिक रूप में आकाश से उतरना कहा गया है।

चीते अतंत सुन्दर, ऐसे ही बलवान।

कमी काहू में नहीं, सोभित जोड़ समान॥६०॥

चीतों की सुन्दरता और शक्ति अनन्त है। ये शक्ति और

सुन्दरता में हाथियों तथा बाघों के ही समान हैं। किसी में भी किसी की अपेक्षा कोई भी कमी नहीं है, क्योंकि एकत्व (वहदत) में सभी समान हैं।

जरे जानवर के वाओ सों, ब्रह्मांड उड़ावे कोट।

तो अर्स जिमी के फील की, कहूं सो किन पर चोट॥६१॥

परमधाम के एक छोटे से पशु-पक्षी के एक बाल की हवा से जब करोड़ों ब्रह्माण्ड उड़ सकते हैं, तो वहाँ के हाथियों की शक्ति की उपमा किससे दूँ। उनके प्रहार को इस स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड में भला कौन झेल (सहन कर) सकता है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में लीला रूप में पशुओं के एक बाल की हवा तथा हाथी के बल की उपमा देकर परब्रह्म की अनन्त शक्तिमत्ता तथा संसार की नश्वरता का बोध

कराया गया है।

ब्रह्मांड बड़ा इन दुनी में, कोई नहीं दूसरा ठौर।

तो अर्स बाघ के बल को, कहूं न निमूना और॥६२॥

कालमाया के इस स्वप्नमयी संसार में चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड बहुत बड़ा है, जिसमें पृथ्वी, सूर्य, और चन्द्रमा आदि अनेक ग्रह-नक्षत्र हैं। इनसे बड़े पदार्थ और कोई भी नहीं हैं। ऐसे अनेक लोक जब परमधाम के पशु के एक बाल की हवा मात्र से उड़ सकते हैं, तो परमधाम के बाघों के बल की उपमा इस संसार में किसी से भी नहीं दी जा सकती।

बोहोत बातें हैं इनकी, सो केती कहूं जुबान।

ए नेक इसारत करत हों, है बेसुमार बयान॥६३॥

इन पशु-पक्षियों की बातें बहुत हैं, जिन्हें अपनी जिह्वा से कितना कहूँ। इनकी बातें तो अनन्त हैं, किन्तु मैंने संकेत मात्र में बहुत थोड़ा सा ही कहा है।

**अलेखे बल अकल, अलेखे हिकमत।**

**अलेखे पेहेचान है, इस्क अलेखे इत॥६४॥**

इनकी बुद्धि एवं बल असीम है। धनी को रिझाने की इनकी कला भी अथाह है। श्री राज जी के प्रति इनकी पहचान और प्रेम भी अनन्त है।

**ख्वाब बल पसुअन का, देखलाया तुम को।**

**कैसा बल अर्स पसुअन का, विचार देखो दिल मों॥६५॥**

हे साथ जी! आपको इस मायावी जगत में लाकर प्रियतम अक्षरातीत ने प्रत्यक्ष रूप में इस संसार के पशु-

पक्षियों की शक्ति को दिखा दिया है। अब आप ही अपने दिल में इस बात का विचार करके देखिए कि इनके समक्ष परमधाम के पशु-पक्षियों की शक्ति कितनी है।

**झूठ देखे सांच पाइए, इस्क बल हिकमत।**

**ए तीनों तौल देखो दोऊ ठौर के, अंदर अपने चित्त॥६६॥**

झूठ को देखने पर ही सत्य की वास्तविक पहचान होती है। अब आप ही अपने दिल में परमधाम के पशु-पक्षियों तथा संसार के पशु-पक्षियों के बल, प्रेम, एवं कला को तौल (मूल्यांकन) करके देखिए कि दोनों में कितना अन्तर है।

**ए झूठा अंग झूठी जिमी में, झूठी इन अकल।**

**पूछ देखो याही झूठ को, कोई अर्स की है मिसल॥६७॥**

हे साथ जी! इस नश्वर संसार में हमारे शरीर के सभी अंग झूठे (विनाश को प्राप्त होने वाले) हैं तथा हमारी बुद्धि भी भ्रान्ति वाली (झूठी) है। अब आप अपने हृदय में इस बात का विचार कीजिए कि क्या इस मिथ्या जगत् में स्वलीला अद्वैत परमधाम की उपमा योग्य कोई भी वस्तु है?

**अर्स मिसाल कोई है नहीं, तौल देखो तुम इत।**

**ए झूठा पसु बल देख के, तौलो जिमी बल सत॥६८॥**

यदि आप विचार करके देखें, तो इस मिथ्या जगत् में परमधाम की उपमा योग्य कोई भी वस्तु नहीं है। इस नश्वर संसार के शक्तिशाली पशु-पक्षियों की शक्ति को देखकर परमधाम के पशु-पक्षियों के बल से इनकी तुलना कीजिए।

सांच झूठ पटंतरो, कबहूँ नाहीं कित।

तो धनिएं देखाई कुदरत, लेने अर्स लज्जत॥६९॥

सत्य और झूठ के भेद को आज दिन तक कभी भी किसी ने कहीं पर भी नहीं जाना था, इसलिये धाम धनी ने हमें परमधाम का रसास्वादन कराने के लिये ही यह माया का संसार दिखाया है।

**भावार्थ-** परमधाम में झूठ (माया) का बोध किसी को नहीं था और तारतम ज्ञान के न होने से संसार में भी किसी को परमधाम (सत्य) का ज्ञान नहीं था। अब इस जागनी लीला में तारतम वाणी द्वारा ही सत्य और झूठ (ब्रह्म और माया या परमधाम और संसार) का भेद स्पष्ट हुआ है।



विचार किए इत पाइए, अर्स बुजरकी इत।

धनी बुजरकी पाइए, और बुजरकी उमत॥७०॥

हे साथ जी! यदि आप तारतम वाणी के प्रकाश में इस पर विचार करते हैं तो आपको परमधाम , प्रियतम अक्षरातीत, और उनकी अँगरूपा ब्रह्मांगनाओं की महिमा (श्रेष्ठता) का पता चलता है।

महामत कहे ए मोमिनो, एही उमत पेहेचान।

बिध बिध बान जो बेधहीं, हक बका अर्स बान॥७१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! ब्रह्मसृष्टियों की यही पहचान है कि अक्षरातीत प्रियतम तथा अखण्ड परमधाम की अमृतमयी बातों के तीर उनके हृदय को अनेक प्रकार से बींध (छेद) डालते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में इस बात का संकेत है कि

परमधाम या अक्षरातीत की शोभा-श्रृंगार एवं लीला की बातें मात्र ब्रह्मांगनाओं को ही प्रिय लगती हैं, जीव सृष्टि को नहीं।

**प्रकरण ॥२७॥ चौपाई ॥१२९२॥**

## पशु पंखियों का इस्क सनेह

इस प्रकरण में यह दर्शाया गया है कि परमधाम के पशु-पक्षी धाम धनी से किस प्रकार प्रेम करते हैं।

खावंद इनों में खेलहीं, धन धन इनों के भाग।

अर्स के जानवरों को, कायम है सोहाग॥१॥

परमधाम के ये पशु-पक्षी कितने सौभाग्यशाली हैं कि स्वयं अक्षरातीत परब्रह्म इनके बीच क्रीड़ा करते हैं। निःसन्देह ये पशु-पक्षी धन्य-धन्य हैं। परमधाम के पशु-पक्षियों का सुहाग अखण्ड है, अर्थात् ये माधुर्य (अँगना) भाव से ही धनी को रिझाते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह संशय होता है कि पूर्व में जिन पशु-पक्षियों (हाथी, घोड़े, बाघ, केशरी (सिंह), चीते आदि) का वर्णन किया गया है, उनमें नर वर्ग का

भी समावेश है। इनमें अँगना भाव कैसे हो सकता है, जबकि इस चौपाई के अनुसार (चौथे चरण में) उन्हें सुहागिन कहा गया है?

इसके समाधान में संक्षिप्त रूप में यही कहा जा सकता है कि विशुद्ध प्रेम में आकृति से कोई भी लेना – देना नहीं है। अँगना भाव सर्वस्व समर्पण की भावना को अभिव्यक्त करता है। अन्य भावों (वात्सल्य, दास, सखा आदि) में समर्पण की वह अवस्था कदापि नहीं प्राप्त नहीं हो सकती, जो अँगना भाव में है। सर्वस्व समर्पण के बिना परमधाम के प्रेम की कल्पना ही नहीं हो सकती।

मात्र आत्मिक धरातल पर ही प्रेम का फूल खिलता है। आत्मिक प्रेम होने पर शारीरिक सौन्दर्य या आकर्षण उसमें वृद्धि तो कर सकता है, किन्तु हृदय के प्रेम से रहित शारीरिक आकर्षण मात्र वासना को जन्म देता है।

प्रेम और वासना में वही सम्बन्ध है, जो ब्रह्म और माया में होता है। प्रजनन कार्य के लिये तो पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग का होना आवश्यक है, किन्तु विशुद्ध प्रेम में नहीं। श्यामा जी सहित सभी सखियों का श्रृंगार स्त्रीलिंग में इसलिये वर्णित किया गया है, ताकि परमधाम के माधुर्य एवं समर्पण की रसधारा में गोता लगाया जा सके, अन्यथा प्रेम रूपी अमृत फल की प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं हो पायेगी।

पुरुष अहंकार प्रधान होता है, तथा स्त्री समर्पण एवं माधुर्य प्रधान। यही कारण है कि पुरुष प्रधान (सखा, वात्सल्य, दासादि) भावों से परमधाम के प्रेम की राह पर चलना सम्भव नहीं है। "सो इस्क बिना न पाइए, ए जो नूर तजल्ला हक" (किरंतन ७४/३७) से यह स्पष्ट है प्रियतम और निजधाम का साक्षात्कार करने के लिये प्रेम

आवश्यक है, जिसके लिये अँगना भाव को धारण करना ही होगा।

रामकृष्ण परमहंस जी ने जब राधा-भाव की साधना की थी, तो उनकी भाव-भंगिमा में भी राधा-भाव की झलक आ गयी थी। यही स्थिति चैतन्य महाप्रभु की भी थी। तारतम वाणी के प्रकाश में सभी ब्रह्ममुनियों (सर्वश्री लालदास जी, युगलदास जी, रामरतन दास जी, दयाराम जी आदि) ने अँगना भाव लेकर ही परमधाम का प्रेम पाया और अध्यात्म के शिखर पर पहुँचे। परमधाम के पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में भी यही सिद्धान्त कार्य करता है।

सब जिमी में बसत हैं, करत हैं कलोल।

रात दिन जिकर हक की, करें मीठे मुख बोल॥२॥

ये पशु-पक्षी परमधाम की सम्पूर्ण धरती में वास करते हैं और तरह-तरह की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करते हैं। अपने मुख से अति मीठे शब्दों में वे केवल अपने प्राणेश्वर श्री राज जी की ही चर्चा करते हैं।

जस नया जुबां जुदी जुदी, रात दिन रटन।

याही अंग इस्क में, छोड़त नहीं खिन॥३॥

ये दिन-रात अलग-अलग भाषाओं (बोलियों) में अपने प्रियतम की महिमा को नये-नये रूपों में रटते रहते हैं। अपने अंग-अंग में धनी का प्रेम भरे रहते हैं और पल-भर के लिये भी उनसे अलग नहीं होते।

खावंद के दीदार को, पसु और जानवर।

आवत हैं गुन गावते, अपने समें पर॥४॥

प्रियतम श्री राज जी का दर्शन करने के लिये सभी पशु-पक्षी उनका गुणगान करते हुए अपने समय पर अवश्य आते हैं।

किस्सा इनों के इस्क का, किन मुख कह्यो न जाए।

दीदार न होवे बखत पर, तो जानो अरवा देवें उड़ाए॥५॥

धनी के प्रति इनके हृदय में इतना प्रेम भरा होता है कि इस प्रसंग को किसी के भी मुख से व्यक्त कर पाना सम्भव ही नहीं है। यदि समय पर उन्हें धाम धनी का दर्शन न मिले, तो इनकी स्थिति ऐसी हो जाती है कि जैसे ये अभी ही अपने प्राण छोड़ने वाले हैं (मर जाने वाले हैं)।



अरवा इनों की ना छूटे, पर ऊपर होए बेहोस।

अंग अरवा क्यों छूटहीं, अन्दर धनी को जोस॥६॥

यद्यपि इनकी आत्मा इनके शरीर से निकल तो नहीं सकती, किन्तु ऊपर से बेहोश जैसे हो जाते हैं। इनके अन्दर प्रियतम का जोश विद्यमान होता है, इसलिये मर जाना इनके लिये सम्भव नहीं हो पाता।

एक रोम न गिरे इनों का, हक नजर सींचेल।

आठों पोहोर अंग में, करत धनी सो केलि॥७॥

इन पशु-पक्षियों के शरीर का एक भी रोम कभी नहीं गिरता। ये हमेशा ही धनी की प्रेम-भरी दृष्टि से आनन्दित होते रहते हैं (सींचे जाते हैं) और अपने हृदय में धनी का प्रेम भरकर आठों प्रहर उनसे प्रेममयी क्रीड़ा करते हैं।

धनी इनों के कारने, सरूप धरें कई करोर।

लें दिल चाह्या दरसन, ऐसे आसिक हक के जोर॥८॥

इन पशु-पक्षियों की इच्छा पूरी करने के लिये स्वयं श्री राज जी एकसाथ करोड़ों रूप धारण करके उन्हें दर्शन देते हैं। ये धनी के ऐसे प्रेमी हैं कि अपने दिल की इच्छानुसार ही उनका दर्शन प्राप्त कर लेते हैं।

सो मैं कह्यो न जावहीं, जो इस्क इनों के अंग।

रोम रोम इनों के कायम, क्यों कहूं इस्क तरंग॥९॥

इनके अन्दर धनी के प्रति इतना प्रेम है कि मुझसे उसका वर्णन ही नहीं हो सकता। इनका रोम-रोम अखण्ड और नूरी है। उसमें उमड़ने वाले इश्क (प्रेम) की तरंगों का वर्णन मैं कैसे करूँ।

एक इस्क धनी बिना, और कछू जानत नाहें।

खेलें बोलें गाएं लरें, सो सब इस्क माहें॥१०॥

धनी और उनके प्रेम के अतिरिक्त इन्हें और कोई भी बात मालूम नहीं है। इनका आपस में खेलना, बोलना, गाना, और लड़ना भी इश्क की लीला का ही अंग है।

क्यों कहूं पसु पंखियन की, इनके इस्क को बल।

एक जरे को न पोहोंचहीं, इन अंग की अकल॥११॥

परमधाम के पशु-पक्षियों के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम (इश्क) के बल को मैं कैसे बताऊँ। इस पञ्चभौतिक तन की बुद्धि से तो परमधाम के एक कण की भी शोभा या प्रेम की शक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता।

मैं देख्या अर्स के लोकों को, कोई अंग न बिना इस्क।  
 क्यों न होए गंज इस्क के, जित जरा नहीं सक॥१२॥

मैंने परमधाम के पशु-पक्षियों को गहराई से देखा।  
 इनके शरीर का कोई भी अंग ऐसा नहीं है जो इस्क से  
 भरा न हो, अर्थात् इनके रोम-रोम में प्रेम भरा हुआ है।  
 इनके अन्दर भला गंजानगंज इस्क क्यों न होगा, क्योंकि  
 इनमें तो अपने प्रियतम अक्षरातीत के प्रति नाममात्र भी  
 संशय नहीं है।

कह्यो क्यों ए न जावहीं, इन अंगों के इस्क।  
 कई कोट जुबां ले कहूं, तो कह्यो न जाए रंचक॥१३॥

इन पशु-पक्षियों के अंग-अंग में जो प्रेम भरा है, उसका  
 वर्णन किसी भी प्रकार से नहीं हो पाता। यदि मैं करोड़ों  
 जिह्वाओं से उनके प्रेम का वर्णन करना चाहूँ, तो नाम

मात्र (थोड़ा अंश) भी नहीं कहा जा सकता।

जेता बल जिन अंग में, तेता इस्क हक का जान।

सक जरा ना मिले, पिउ सों पूरी पेहेचान॥१४॥

इनके अंग-अंग में जो प्रेम का बल है, वह धाम धनी का ही है, अर्थात् इनके अन्दर वह स्वयं विराजमान रहते हैं। इन्हें अपने प्राणप्रियतम अक्षरातीत की पूर्ण पहचान है और नाम मात्र के लिये भी इनमें कभी संशय पैदा नहीं होता।

**भावार्थ-** "ना अर्स जिमिएं दूसरा, कोई और धरावे नाहिं" (खुलासा १६/८३) के इस कथन से यह स्पष्ट है कि परमधाम में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है। इस प्रकार वहाँ के पच्चीस पक्षों के कण-कण में तथा पशु-पक्षियों के रोम-रोम में अलग-अलग रूपों

में मात्र श्री राज जी ही लीला कर रहे हैं।

पिउ की पेहेचान बिना, कछुए न जाने कोए।

जरा सक तो उपजे, जो कोई दूसरा होए॥१५॥

अपने प्राणेश्वर की पहचान और उन्हें रिझाने के अतिरिक्त ये अन्य कोई बात जानते ही नहीं। यदि परमधाम में धाम धनी के अतिरिक्त कोई और होता, तब तो थोड़ा संशय भी पैदा हो सकता था।

**भावार्थ-** स्वलीला अद्वैत परमधाम में प्रत्येक कण श्री राज जी से अभिन्न है। ऐसी स्थिति में वहाँ किसी भी प्रकार के संशय की कल्पना मात्र दिवास्वप्न है और खरगोश के सींग के समान मिथ्या है।

**इस्क पूरा इनो अंगों, और पेहेचान पूरन।**

**सब वजूदों एही रोसनी, कछु जानें ना हक बिन॥१६॥**

इनके अंग-अंग में भरपूर (लबालब) इश्क भरा हुआ है। धनी की भी इन्हें पूर्ण पहचान है कि ये ही हमारे सर्वस्व हैं। धाम धनी के अतिरिक्त ये अन्य किसी को भी नहीं जानते। सभी पशु-पक्षियों के शरीर में प्रेम और पहचान का अखण्ड उजाला विद्यमान है।

**कछू कह्यो तो जावहीं, जो कछू जरा कहावे कित।**

**ब्रह्मांड तो खेल कबूतर, एक जरा न पाइए इत॥१७॥**

परमधाम के एक कण के विषय में भी यदि कुछ कहना सम्भव होता, तब तो परमधाम के विषय में कुछ कहा भी जा सकता था। कालमाया का यह ब्रह्माण्ड तो खेल के कबूतर के समान स्वप्नमयी (मिथ्या, काल्पनिक) है।

निजधाम के एक कण की भी उपमा यहाँ नहीं दी जा सकती।

ताथें अंबार इस्क के, इन जिमी सब जान।

हक का कायम वतन, सब अंग इस्क पेहेचान॥१८॥

इसलिये परमधाम के सभी पदार्थों में इश्क का भण्डार है। वह अक्षरातीत का अखण्ड धाम है, फलतः वहाँ सबके अंग-अंग में प्रेम की लीला है और धनी की पूर्ण पहचान है।

एक जरा जो इन जिमी का, सो सब इस्क की सूरत।

आसमान जिमी जड़ चेतन, पेहेचान इस्क दोऊ इत॥१९॥

परमधाम का एक-एक कण अखण्ड प्रेम (इश्क) का ही स्वरूप है। जड़ कहे जाने वाले आकाश एवं धरती भी



वहाँ चेतन हैं। इनके अन्दर भी धनी की पूर्ण पहचान तथा प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है।

**पार नहीं जिमीन को, और पार नहीं आसमान।**

**पार नहीं जड़ चेतन, पार ना इस्क रहेमान॥२०॥**

वहाँ की धरती और आकाश का कोई ओर-छोर (सीमा) नहीं है। जड़ के रूप में दिखायी देने वाले चेतन स्वरूप सभी पदार्थों में श्री राज जी का अनन्त इश्क भरा हुआ है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में धरती, आकाश, महल आदि को स्थिर रहने के कारण (लौकिक दृष्टि से) जड़ कहा गया है, किन्तु परमधाम में जड़ नामक कोई वस्तु है ही नहीं।

**छोटा बड़ा अर्स का, सो सब हैं चेतन।**

**पेहेचान इस्क अंग में, इन विध बका वतन॥२१॥**

अखण्ड परमधाम की वास्तविकता यह है कि वहाँ चाहे कोई छोटा पदार्थ हो या बड़ा, सभी चेतन हैं। उनके अन्दर धनी का प्रेम तथा उनकी यथार्थ पहचान दोनों ही विद्यमान हैं।

**जल में जीव बसत हैं, सो सुन्दर सोभा अमान।**

**फौज बांध आगूं धनी, खेल करें कई तान॥२२॥**

परमधाम में जल में जो प्राणी रहते हैं, वे इतने सुन्दर हैं कि उनकी शोभा का कथन करने में इस संसार की कोई भी उपमा नहीं दी जा सकती। वे अपने समूह (झुण्ड, सेना) के साथ धाम धनी के सामने आकर तरह-तरह के खेल करते हैं और संगीतमय मधुर गायन करते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के प्रथम चरण में कथित "जीव" शब्द का तात्पर्य जीव सृष्टि से नहीं, बल्कि जल में रहने वाले पशु-पक्षियों से है जो आत्मस्वरूप हैं।

**मच्छ कच्छ मुरग मेंडक, कई रंग करें अपार।**

**जुदी जुदी बानी बोलत, स्वर राखत एक समार॥२३॥**

मछलियाँ, कछुए, जलमृग, मेंढक आदि अनेक रंगों के बहुत से जानवर हैं, जो अनन्त प्रकार की आनन्दमयी लीलायें करते हैं। ये अपने स्वर को एक ही ताल में रखते हुए अलग-अलग प्रकार की बोली बोलते हैं।

**कई रंगों गुन गावते, सब स्वर बांधे रसाल।**

**जस धनी को गावहीं, जिकर करें माहें हाल॥२४॥**

अनेक रंगों वाले जल के सभी पशु-पक्षी बहुत ही मीठे

स्वरों में धनी की महिमा का गायन करते हैं। वे प्रेम में भरकर श्री राज जी का अनन्त यश गाते हैं और उनकी चर्चा (बातें) करते हैं।

जीव छोटे बड़े कई जल के, अपने अपने ख्याल।

खेलें बोलें दौड़ें कूदें, खावंद को करें खुसाल॥२५॥

जल में रहने वाले छोटे-बड़े सभी पशु-पक्षी अपने-अपने भावों (विचारों) के अनुसार तरह-तरह के खेल-खेलकर, मीठे वचन बोलकर, दौड़कर, एवम् कूदकर अपने प्रियतम श्री राज जी को रिझाते हैं।

अनेक जानवर जल के, सो केते लेऊं नाम।

जल किनारे रटत हैं, पिउ जस आठों जाम॥२६॥

जल में अनन्त पशु-पक्षी हैं। मैं उनमें से कितनों के

नाम बताऊँ। वे जल के किनारे आकर धाम धनी की महिमा को आठों प्रहर (दिन-रात) गाते रहते हैं।

**ए देखो नेक नीके कर, इनमें जरा सक नाहें।**

**क्यों न होए इस्क के अंबार, तुम विचार देखो दिल माहें॥२७॥**

हे साथ जी! आप अच्छी तरह से विचार करके थोड़ा सा देखिये (समझिये, जानिये) कि इन पशु-पक्षियों में नाममात्र भी संशय नहीं है। ऐसी अवस्था में इनके अन्दर प्रेम (इश्क) के भण्डार क्यों नहीं होंगे। आप अपने दिल में इस बात का विचार करके देखिए (निर्णय कीजिए)।

**भावार्थ-** इस चौपाई में एक गहन रहस्य की ओर संकेत किया गया है। परमधाम के पशु-पक्षियों में नाम मात्र के लिये भी धनी के प्रति कोई संशय नहीं है, इसलिये उनमें प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है। जबकि हम सुन्दरसाथ ब्रह्मवाणी

का गहन ज्ञान रखकर भी संशयों से मुक्त नहीं हो पाते।  
परिणामतः समर्पण के मार्ग से हम भटक जाते हैं और  
प्रेम हमारे पास फटकता ही नहीं। इस खेल में हमारी यह  
दयनीय स्थिति हमारी हँसी की भूमिका तैयार कर रही  
है। श्रीमुखवाणी के शब्दों में—

सब अंग हमारे हक हाथ में, इस्क मांगें रोय रोय।

सब अंग हमारे बांध के, हक आप करे हांसी सोय॥

श्रृंगार २७/५७

स्याबास तुमारी अरवाहों को, स्याबास तुमारे हैड़े सखत।

स्याबास तुमारी बेसकी, स्याबास तुमारी निसबत॥

धन धन तुमारे ईमान, धन धन तुमारे सहूर।

धन धन तुमारी अकलें, भले जागे कर सहूर॥

श्रृंगार २९/१२०, १२१

ये मर्मभेदी चौपाई जागनी के पथ पर तीव्र गति से चलने के लिये हमें झकझोर रही है। यह विचारणीय तथ्य है कि हमारा आध्यात्मिक स्तर परमधाम के पशु-पक्षियों से भी नीचे क्यों हो गया है?

**जो जरा इन जिमी का, तिन सब में इस्क।**

**ए चेतन इन भांत के, कछू जानें न बिना हक॥२८॥**

परमधाम की धरती के प्रत्येक कण में प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है। वहाँ के कण-कण में इस प्रकार की चेतनता है कि वे श्री राज जी के अतिरिक्त और किसी को जानते ही नहीं हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में कथित श्री राज जी के अतिरिक्त और किसी को न जानने का भाव यह है कि उनका सम्पूर्ण प्रेम केवल श्री राजश्यामा जी के लिये

ही है।

पसु पंखी बन जिमिएं, तले ऊपर हैं जित।

क्या जाने मूढ़ मुसाफ की, रमूजें इसारत॥२९॥

परमधाम के पशु-पक्षियों, वन, धरती, तथा ऊपर या नीचे के सभी पदार्थों में धनी का प्रेम ही प्रेम विद्यमान है। संसार के मूढ़ लोग भला ईश्वरीय धर्मग्रन्थों के अन्दर संकेतों में कहे हुए रहस्यों को क्या जान सकते हैं।

**भावार्थ-** मुसहाफ (मुसाफ) का तात्पर्य केवल कतेब परम्परा के चारों ग्रन्थ (तौरेत, इंजील, जंबूर, तथा कुरआन) से ही नहीं है, बल्कि सभी ईश्वरीय धर्मग्रन्थों (चारों वेदों) तथा जोश द्वारा अवतरित ग्रन्थ जैसे बीजक, गीता, महारास का वर्णन आदि को भी मुसहाफ कहा गया है।



देखो अंबार इस्क के, या जड़ या चेतन।

जो कछू नजरों श्रवनों, सो इस्कै को वतन॥३०॥

निजधाम में जड़ (स्थिर रहने वाले) या चेतन सभी पदार्थों में प्रेम (इश्क) का ही भण्डार भरा हुआ है। यह इश्क का ऐसा धाम है, जहाँ आँखों से दिखायी देने वाले या कानों से सुनायी देने वाले प्रत्येक पदार्थ में इश्क ही इश्क विद्यमान है।

दरखत करत हैं सिजदा, छोटा बड़ा घास पात।

पहाड़ जिमी जल सिजदे, इस्क न इनों समात॥३१॥

वहाँ पर वृक्ष भी धाम धनी को प्रेमपूर्वक प्रणाम करते हैं। छोटी-छोटी घास, पौधे, पहाड़, धरती, जल आदि सभी श्री राज जी को अभिवादन करते हैं। इन सभी के अन्दर इतना इश्क भरा हुआ है कि वह उनमें समा ही नहीं पा

रहा है।

यों अर्स सारा इस्क में, एक जरा न जुदा होए।

खावंद सबों पिलावहीं, क्यों कहिए इस्क बिना कोए॥३२॥

इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम ही प्रेम के रंग में डूबा हुआ है। एक कण भी प्रेम (इश्क) से रहित नहीं है। जब स्वयं अक्षरातीत ही सबको प्रेम का रस पिलाते हैं, तो किसी को भी प्रेम से रहित कैसे कहा जा सकता है अर्थात् बिना प्रेम के कोई भी कैसे हो सकता है।

आसिक सबे इस्क में, या चांद या सूर।

या तारा या आकास, सब इस्कै का जहूर॥३३॥

परमधाम का कण-कण धनी से प्रेम करता है। चाहे चन्द्रमा हो या सूर्य, तारागण हों या आकाश सभी

अखण्ड प्रेम के ही प्रकट रूप हैं।

जो सरूप इन जिमी के, सो सब रूह जिनस।

मन अस्वारी सबन को, आए पिएं प्रेम रस॥३४॥

परमधाम में जो भी वस्तु है, वह सब आत्म-स्वरूपा है। सभी मन की अनन्त गति से चलते हैं और धनी का दर्शन करके प्रेम का रसपान करते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के प्रथम चरण में कथित "जो सरूप" का तात्पर्य श्यामा जी सहित सभी सखियाँ, खूब खुशालियाँ, जवेरों की पुतलियाँ, पशु-पक्षी, तथा २५ पक्षों के सभी पदार्थों से है।

सो भी रूह मन अर्स के, ए तूं नीके जान।

बल देख झूठे मन को, अर्स मन बल पेहेचान॥३५॥

हे मेरी आत्मा! तू इस बात को अच्छी तरह से जान ले कि यहाँ जिस आत्मा और मन की बात कही जा रही है, वे परमधाम के हैं, इस मायावी जगत् के नहीं। पहले इस झूठे संसार के मन की शक्ति को तू देख कि वह पल-भर से भी कम समय में कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है। इसके पश्चात् तू परमधाम के मन की शक्ति को जान जायेगी।

**ए झूठ हक को न पोहोंचहीं, तो क्यों देऊं निमूना ए।**

**कछुक तो कह्या चाहिए, गिरो समझावने के॥३६॥**

यह झूठा मन अक्षरातीत तक नहीं पहुँच पाता, तो परमधाम के मन से इसकी कैसे उपमा दी जा सकती है। किन्तु ब्रह्मसृष्टियों को समझाने के लिये कुछ तो कहना ही पड़ता है।

**भावार्थ—** इस चौपाई में जिस मन की बात कही गयी है,

वह उस जीव का मन है, जो आदिनारायण की चेतना का प्रतिभास है। ऐसी स्थिति में मन द्वारा परमधाम पहुँचने की बात सम्भव ही नहीं हो पाती। इसी को उपनिषदों में "अप्राप्य मनसा सह" (तैत्तरीयोपनिषद्) तथा "नमनो न विद्मो न विजानीयो" (केनोपनिषद्) कहा गया है। तारतम वाणी के प्रकाश में धनी के प्रेम के बल पर केवल आत्म-दृष्टि (सुरत) ही परमधाम में जा पाती है।

**चारों तरफों अर्स जिमिएं, जो कोई हैं सूरत।**

**बखत पर दीदार को, मन वेगी पोहोंचत॥३७॥**

परमधाम की भूमिका में चारों दिशाओं में जो भी स्वरूप होते हैं, वे अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के मधुर दर्शन (दीदार) के लिये मन के वेग से चलकर दर्शन के दोनों

समय (प्रातः ६ बजे एवं दोपहर ३ बजे) में तुरन्त ही पहुँच जाते हैं।

कोई दूर बसत हैं, सो दूर दूर से दूर।

सो भी जान कदमों तले, इन मन बल ऐसा जहूर॥३८॥

भले ही पशु-पक्षी रंगमहल से दूर रहते हैं और कुछ उनसे भी बहुत दूर (बड़ी रांग की हवेलियों आदि में) रहते हैं, किन्तु उनके मन की ऐसी शक्ति है कि वे पल-भर से भी कम समय में धनी के चरणों में उपस्थित हो जाते हैं।

इन जिमी की क्यों कहूं, जिनको नहीं पार।

उत पार जो बसत हैं, इन मन बल को नहीं सुमार॥३९॥

परमधाम की धरती अनन्त है। उसके विस्तार का मैं

कैसे वर्णन करूँ। यमुना जी के उस पार रहने वाले पशु-पक्षियों के मन की शक्ति भी इतनी ही है (असीम है)।

जो कोई जहां बसत हैं, सो तहां से आवत।

समें-सिर दीदार को, कोई नाहीं चूकत॥४०॥

परमधाम में कोई भी पशु-पक्षी चाहे वह कहीं भी क्यों न रहता हो, किन्तु वह धनी के दीदार करने का अवसर चूकता (छोड़ता) नहीं है। वह अपने निवास से मन वेग से चलकर पल-भर से भी कम समय में प्रियतम अक्षरातीत के चरणों में पहुँच जाता है।

ज्यों मन एक निमख में, पोहोंचत पार के पार।

तो क्यों न पोहोंचे बका जिमी को, जिन मन बल नहीं सुमार॥४१॥

जिस प्रकार यहाँ का मन एक ही क्षण में बहुत दूर से दूर

(पार के पार) पहुँच जाता है, उसी प्रकार परमधाम के स्वरूपों का मन, जिसकी शक्ति की कोई सीमा ही नहीं है, पल-भर में धनी के चरणों में क्यों नहीं पहुँच जायेगा।

दसों दिस बसत हैं, सब में खावंद बल।

रोम रोम अंग इस्क के, इन हक इस्कै के सींचल॥४२॥

दसों दिशाओं में सभी रूपों में श्री राज जी के प्रेम का बल ही क्रीड़ा कर रहा है। इन पशु-पक्षियों के अंग-अंग के रोम-रोम में इश्क ही इश्क भरा हुआ है। इन्हें स्वयं धाम धनी अपने इश्क के रस से सींचते हैं (सराबोर या ओत-प्रोत करते हैं)।

कोई न निमूना पाइए, या इस्क या बल।

एह खिलौने तिनके, जो खावंद अर्स असल॥४३॥



इन पशु-पक्षियों में जो धनी के प्रति इश्क या पहचान का बल है, उसकी इस संसार में कोई भी उपमा नहीं मिल सकती। ये तो उस अक्षरातीत के आनन्दमयी खिलौने हैं, जो यथार्थतः सम्पूर्ण परमधाम के प्रियतम हैं, प्राणेश्वर हैं।

**एक जरा कह्या जुबां माफक, इत अलेखे विवेक।**

**रुहें अर्स का बल अर्स के, जो हक जात हैं एक॥४४॥**

मैंने अपनी जिह्वा के अनुकूल पशु-पक्षियों के इश्क के सम्बन्ध में बहुत थोड़ा सा ही कहा है। इनके अन्दर धाम धनी को रिझाने की अनन्त बुद्धि है। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों में परमधाम का ही बल होता है, क्योंकि ये धाम धनी की साक्षात् अङ्गरूपा हैं।

ख्वाब बैठ इन अर्स में, हकें देखाया तुमको।

महामत कहे ए मोमिनों, पेहेचान लीजो दिलमों॥४५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! धाम धनी ने आपको मूल मिलावा में ही बैठाकर स्वप्न का यह मिथ्या ब्रह्माण्ड दिखाया है। आप अपने दिल में इसकी पहचान कीजिए।

प्रकरण ॥२८॥ चौपाई ॥१३३७॥

## पसु पंखियों की अस्वारी

इस प्रकरण में श्री राजश्यामा जी एवं सखियों द्वारा पशु-पक्षियों के ऊपर बैठकर सवारी करने की मनोहर लीला का चित्रण किया गया है।

अस्वारी पसु पंखियन पर, धनी करत हैं जब।

जो जहां बसत हैं, सो आए मिलत हैं सब॥१॥

श्री राज जी पशु-पक्षियों के ऊपर बैठकर सवारी करने की जब भी इच्छा करते हैं, तो सभी पशु-पक्षी तत्क्षण उनके चरणों में आ जाते हैं, भले ही वे कहीं भी क्यों न रह रहे हों।

अस्वारी को रूहन को, जिन पर हुआ दिला।

तिन आगूं ही जानिया, सो आए खड़े सब मिल॥२॥

सखियों के दिल में जिन पशु-पक्षियों के ऊपर बैठकर सवारी करने की इच्छा होती है, उन पशु-पक्षियों को पहले ही (तत्क्षण) मालूम हो जाता है। वे सभी आकर सेवा में खड़े हो जाते हैं।

केसरी बाघ चीते हाथी, और जातें कई अनेक।

कह्या जीन बने अंग उत्तम, सो कहां लों कहूं विवेक॥३॥

केशरी (सिंह), बाघ, चीते, हाथी, और अन्य बहुत सी जातियों के जानवर अपनी पीठ पर बैठने की उत्तम गद्दी सजाये हुए सेवा में प्रस्तुत हो जाते हैं। इस लीला की मनोहारिता का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

कई बिध अस्वारी होत है, बुजरक जो जानवर।

जीन जुगत क्यों केहे सकों, जो असल बने इन पर॥४॥

ऐसे कई प्रकार के बड़े जानवरों पर सवारी की लीला होती है। इनकी पीठ पर बैठने की गद्दी मूलतः बनी ही होती है, उसकी शोभा का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ। यह बैठने की गद्दी इनके नूरी अंगों की ही शोभा है।

घोड़े पर राखत हैं, आकास में उड़त।

कमी करें ना कूदते, सुख अस्वारी के अतंत॥५॥

घोड़ों के भी पंख होते हैं और ये आकाश में उड़ते भी हैं। कूदने में किसी भी प्रकार की कमी नहीं करते। इन पर सवारी करने का सुख अनन्त होता है।

कई बिध खेल रूहन के, मन वेगी जानवर।

तिन पर अस्वारी करके, चढ़त आसमान पर॥६॥

मन की गति के समान चलने वाले जानवरों पर सवारी

करके सखियाँ तरह-तरह की क्रीड़ायेँ करती हैं। वे उन पर सवार होकर आकाश में बहुत ऊँचाई तक उड़ान भरती हैं।

सोभा लेत बन में रूहें, अस्वार होत मिल कर।

पसु पंखी दौड़ें मन ज्यों, जित जिमी बन बिगर॥७॥

जब सभी सखियाँ मिलकर वनों में पशु-पक्षियों के ऊपर सवारी करती हैं, तो उस समय उनकी अलौकिक शोभा होती है। पश्चिम की चौगान, जहाँ केवल नूरमयी रेती के मैदान हैं, वहाँ पर वन न होने के कारण पशु-पक्षी मन की गति से दौड़ते हैं।

जब अस्वारी साहेब करें, होवें बड़ीरूह रूहें अस्वार।

पसु पंखी सबे मिले, हर जातें फौजें न पार॥८॥

जब श्री राज जी पशु-पक्षियों पर सवारी करते हैं, तब श्री श्यामा जी एवं सखियाँ भी पशु-पक्षियों पर सवार हो जाती हैं। उस समय सभी जातियों के पशु-पक्षी झुण्ड के झुण्ड इतनी संख्या में साथ चलते हैं कि उनकी कोई सीमा ही नहीं होती।

**कई जातें पसुअन में, हर जातें गिनती अपार।**

**यों जातें जानवरों में, हर जातें नहीं सुमार॥९॥**

पशु-पक्षियों की इतनी जातियाँ हैं कि उनकी गिनती हो ही नहीं सकती। वे संख्या में असीम हैं।

**द्रष्टव्य—** इस चौपाई में कथित पशु और जानवर समानार्थक शब्द हैं। इनमें मात्र भाषा भेद है।

पसु पंखी जो बन में, सब आवें करने दीदार।

राज स्यामा जी रूहें, जब कबूं होवें अस्वार॥१०॥

श्री राजश्यामा जी और सखियाँ पशु-पक्षियों पर जब भी सवारी करते हैं, उस समय वनों में रहने वाले सभी पशु-पक्षी उनके दर्शन करने अवश्य आते हैं।

हर फौजों बाजे बजें, हर फौजों निसान।

भांत भांत रंग राखत हैं, आप अपनी पेहेचान॥११॥

प्रत्येक पशु-पक्षी की सेना के चलने पर बाजे बजते हैं एवं अपनी पहचान देने के लिये प्रत्येक सेना के अलग-अलग रंगों के झण्डे होते हैं।



**एह जुबां केती कहूं, अलेखे विस्तार।**

**एक जात की फौज ना गिन सकों, तिन हर फौजों कई सिरदार॥१२॥**

पशु-पक्षियों की सेना का विस्तार अनन्त हैं। उसका वर्णन मैं इस जिह्वा से कितना करूँ। पशु-पक्षियों की किसी भी जाति की सेनाओं की संख्या को मैं गिन नहीं सकती। प्रत्येक सेना में कई सेनापति (प्रेमुख) होते हैं।

**कई फौजें तिन सिरदार की, हर फौजों कई जमातदार।**

**गिनती तिन जमात की, होवे नहीं सुमार॥१३॥**

उन सेनापतियों की भी सेनायें हैं और उस प्रत्येक सेना में बहुत से प्रमुख भी हैं। उन सेनापतियों की सेनाओं की गिनती हो पाना सम्भव नहीं है। ये भी अनन्त की संख्या में हैं।

**भावार्थ—** उपरोक्त चौपाइयों में जिस प्रकार सैनिक ,

सेनापति, तथा प्रधान सेनापति का वर्णन किया गया है, उसे कालमाया की लौकिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। यह मात्र लीलारूप है और लीला में सैनिक, सेनापति, या प्रधान सेनापति का पद बदलता रहता है क्योंकि वहदत में कोई भी ऊँचा-नीचा नहीं होता।

**यों जुदी जुदी जातें चलते, दाएं बाएं मिसल।**

**इंतमाम सबों में अति बड़ा, या आगूं या पीछल॥१४॥**

इस प्रकार, अलग-अलग जातियों के समूह श्री राज जी के दायें-बायें, आगे या पीछे चलते हैं। सभी समूहों में चलते समय बहुत ही अच्छी व्यवस्था होती है।

**आगे पीछे फौज के, चोपदार बड़े बांदर।**

**दाएं बाएं मिसल अपनी, फौज रखें बराबर॥१५॥**

सेना के आगे-पीछे बड़े-बड़े बन्दर हजुरी की भूमिका निभाते हैं। वे अपने समूह को सेना के दायें-बायें रखते हुए सम्पूर्ण सेना को व्यवस्थित रूप से चलाते हैं।

**कई फौजें पसुअन की, और कई फौजें जानवर।**

**सुआ मैना नकीब तिनमें, फौज रखें मिसल पर॥१६॥**

श्री राजश्यामा जी की सवारी के साथ पशु-पक्षियों की जो बहुत सी सेनायें चलती हैं, उनमें तोता और मैना चारण की लीला करते हैं अर्थात् धाम धनी की महिमा गाते हुए चलते हैं। ये सारी सेना को समूहबद्ध किये रहते हैं (बिखरने नहीं देते, सीध में चलाते हैं)।

**कई जातें देखे जवेर, अर्स के भूखन।**

**जंग करें जानवरों, जो परों पर चित्रामन॥१७॥**

पशु-पक्षियों के पँखों की अनन्त शोभा दिखाई दे रही है। उनकी शोभा के सामने जवाहरातों के आभूषणों की शोभा फीकी पड़ जाती है।

पर जो पसुअन के, सो अतंत सोभा लेत।

कहा करें ए भूखन, पसु ऐसी सोभा देत॥१८॥

पशु-पक्षियों के पँखों की अनन्त शोभा दिखाई दे रही है। उनकी शोभा के सामने जवाहरातों के आभूषणों की शोभा फीकी पड़ जाती है।

इनों रोम की जो रोसनी, सो उठत माहें आसमान।

जंग करें जवेरों सों, कोई सके न काहू भान॥१९॥

इन पशु-पक्षियों के रोम-रोम से अति सुन्दर ज्योति आकाश में उठ रही है। यह ज्योति जवाहरातों के

आभूषणों की ज्योति से टकराकर युद्ध का दृश्य उपस्थित कर रही है, किन्तु कोई भी ज्योति किसी को समाप्त नहीं कर पाती।

**भावार्थ-** परमधाम में एक कण का भी विनाश सम्भव नहीं है, इसलिये दो ज्योतियों के टकराव में किसी का भी समाप्त हो जाना या एक-दूसरे में लीन हो जाना सम्भव नहीं है।

**एक रोम जोत आसमान में, रही रोसनी भराए।**

**तो जो एते पसु पंखी, सो जोत क्यों कही जाए॥२०॥**

जब इन पशु-पक्षियों के मात्र एक रोम की ज्योति से सम्पूर्ण आकाश मण्डल ढक जाता है, तो अनन्त की संख्या में जो पशु-पक्षी हैं, उनके शरीरों से निकलने वाली ज्योति का वर्णन कैसे किया जा सकता है।

ए दिल जाने रूहसों, मुख जुबां पोहोंचे नाहें।

ए मोमिन होए सो विचारसी, अपने हिरदे माहें॥२१॥

इस रहस्य को आत्मा का दिल ही जानता है। इस मुख और जिह्वा की वहाँ तक पहुँच नहीं है। जो ब्रह्ममुनि होंगे, वे ही अपने हृदय में इस बात का विचार करेंगे।

**भावार्थ**— परमधाम की नूरी ज्योति का अनुभव प्रेममयी चितवनि द्वारा केवल आत्मा के धाम—हृदय में ही होता है, जिसे इस जिह्वा द्वारा यथार्थ रूप में व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं होता। सागर ग्रन्थ में कहा गया है – "तार्थे हिरदे आत्म के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।" शास्त्रों की प्रणालिका (किरंतन ११/४६) के अन्दर कहा गया है कि जो आत्मा को अनुभव में आता है, वह जीव को पूर्णतया प्राप्त नहीं हो पाता और जीव से वह ज्ञान अति अल्प रूप में बुद्धि तथा मन में आता है। इस

प्रकार वाणी (जिह्वा) द्वारा उसे उसी मूल रूप (आत्मानुभव) में व्यक्त करना असम्भव होता है।

सो भूखन जो अर्स के, सब पेहेरे मन चाहे।

सिनगार किया सब लसकरें, ए देखो मन ल्याए॥२२॥

परमधाम में जो भी आभूषण हैं, सभी मन की इच्छानुसार पहने जाते हैं। हे साथ जी! आप एकाग्र मन से इस बात पर विचार कीजिए कि पशु-पक्षियों की सारी सेना आभूषणों का श्रृंगार करके आती है।

एक जरे जिमी की रोसनी, सो ढांपे कई कोट सूर।

तो जिमी पहाड़ मोहोलन को, सब कैसा होसी नूर॥२३॥

जब परमधाम की धरती के एक कण की ज्योति से करोड़ों सूर्य ढक जाते हैं (मन्द दिखते हैं, ओझल से हो

जाते हैं), तो वहाँ की सम्पूर्ण धरती, पहाड़ों, तथा महलों का तेज कैसा होगा?

**बन जंगल या जिमी, एक दूजे से प्रकास।**

**विचार देखो ए मोमिनो, नूर कैसा भया आकास॥२४॥**

चाहे वन हो या धरती, सभी एक-दूसरे से अधिक प्रकाशमान दिखते हैं। हे साथ जी! आप इस बात का विचार करके देखिए कि आकाश में इनके सम्मिलित तेज से कैसी अनुपम जगमगाहट हो रही होगी।

**भावार्थ-** वन और जंगल शब्द एकार्थवाची हैं, अन्तर केवल भाषा का है। "जंगल" फारसी भाषा का और "वन" संस्कृत का शब्द है।



ए नूर जिमी बन लसकर, कहा कहूं रूहों रोसन।

और तखत जो हक का, तुम विचार देखो मोमिन॥२५॥

सम्पूर्ण परमधाम की नूरी धरती, वनों, और पशु-पक्षियों की ज्योति कैसी होगी? इसी प्रकार सखियों की अलौकिक आभा के विषय में मैं क्या कहूँ। जिस सिंहासन पर स्वयं श्री राज जी विराजमान होते हैं, उसकी तेजोमयी ज्योति कैसी होगी? हे साथ जी! आप इन बातों पर गहराई से विचार कीजिए।

अब नूर बिलंद जो हक का, ले उठ्या सबका नूर।

बन जिमी आकास सब, ए देखो एक जहूर॥२६॥

अब अक्षरातीत धाम धनी के उस नूरी स्वरूप को देखिए, जो सर्वोपरि है और जिसमें वन, धरती, आकाश आदि सबके नूर समाहित हो जाते हैं। ऐसा लगता है,

जैसे सभी (आकाश, धरती, पशु-पक्षी, वन आदि) में  
श्री राज जी का ही नूर क्रीड़ा कर रहा है।

आगूं केसरी कोतल, अति खूबी ले खेलत।

बाघ चीते घोड़े हाथी, नट ज्यों नाचत॥२७॥

श्री राज जी की सवारी के आगे साथ-साथ केशरी सिंह  
चलता है। वह बहुत सुसज्जित रहता है और तरह-तरह  
की क्रीड़ाएँ करता है। सवारी के साथ-साथ चलने वाले  
बाघ, चीते, हाथी, तथा घोड़े नटों की तरह नाचते हुए  
चलते हैं।

अव्वल हार केसरिन की, दूजी हार बाघन।

हार तीसरी सियाहगोस की, चौथी हार चीतन॥२८॥

सवारी में सबसे आगे केशरी सिंहों की पंक्ति चलती है।

दूसरी पंक्ति बाघों की चलती है। तीसरी पंक्ति वनबिलावों की है, और चौथी पंक्ति में चीते चलते हैं।

दीप सुअर रोझ रीछड़े, बैल साम्हर मृग मेढ़े।

हरन अरन बकर कूकर, फील गिमल घोड़े गैंड़े॥२९॥

तेंदुए, सुअर, ऋक्ष (रीछ), नीलगाय, बैल, साम्भर (हिरन), मृग, मेढ़े (भेड़ जैसा जानवर), हिरन, जँगली भैंसा, गाय, कुत्ता, हाथी, खच्चर, घोड़े, गैंडे आदि क्रमशः पंक्तिबद्ध होकर चलते हैं।

केसरी कूवत ज्यादा कही, निपट अति बलवान।

ए ख्वाब देखाया तिन वास्ते, करने अर्स पेहेचान॥३०॥

केशरी सिंह की शक्ति बहुत अधिक कही जाती है। निश्चित रूप से वह बहुत अधिक शक्तिशाली होता है। हे

साथ जी! आपको स्वप्न का यह मिथ्या ब्रह्माण्ड इसलिये दिखाया गया है, जिससे आपको परमधाम की पूर्ण पहचान हो जाये।

**भावार्थ-** परमधाम में केवल लीला की हकीकत (सत्य) का ही बोध था। निस्बत, खिल्वत, इश्क, वहदत आदि की मारिफत (परम सत्य, ऋत्) का बोध नहीं था। अब धाम धनी ने तारतम वाणी के प्रकाश में सब कुछ बता दिया है। जब इस संसार की नश्वर चीजों को देखकर हम अखण्ड परमधाम की प्रेममयी और आनन्दमयी वस्तुओं को देखते हैं, तो हमें अपने परमधाम की गरिमा (अर्स की पातसाही) का ज्ञान होता है, जो परमधाम में नहीं था। इस प्रकार खेल बनने के ये ही मुख्य कारण हैं।

केसरी कूवत कूदते, गरजत बिना हिसाब।

बिन मन आवे आसमान में, ऐसी उठक सिताब॥३१॥

केशरी सिंह जब छलाँग लगाता है और असीम गर्जना करता है, तब उसकी बेशुमार शक्ति का पता चलता है। वह आकाश में इतनी शीघ्रता से छलाँग लगाता है कि मन की गति भी उसका मुकाबला नहीं कर सकती।

**भावार्थ—** मन की गति को सिंह की छलाँग की गति से कम बताना अतिशयोक्ति अलंकार है, जिसमें किसी बात को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है।

ए गिनती बेसुमार है, और बोलत मिलकर जब।

गरजत अर्स अंबर जिमी, बल देत देखाई तब॥३२॥

केशरी सिंहों की संख्या अनन्त है और जब ये सभी मिलकर एकसाथ बोलते हैं (गर्जना करते हैं), तो उस

समय सम्पूर्ण परमधाम की धरती और आकाश में इनकी गर्जना सुनायी पड़ती है। इनकी शक्ति ऐसे समय में दिखायी देती है।

सब्द केसरी जब काढ़ीं, अंबर जिमी रहे गाज।

पड़घा उठे पृथ्वी पर्वतों, उठे उनथें अधिक आवाज॥३३॥

जब केशरी सिंह गर्जते हैं, तो उनकी ध्वनि धरती और आकाश में सर्वत्र सुनायी पड़ती है। सिंहों की गर्जना धरती और पहाड़ों (माणिक एवं पुखराज) से टकराकर प्रतिध्वनि के रूप में और अधिक तीव्र ध्वनि के रूप में सुनायी देती है।

क्यों कहूं बल बाघन को, ए जो ख्वाब में ऐसे जोर।

देह छोटी बड़ी कूवत, देत फीलों मद तोर॥३४॥

इस सपने के संसार में जब बाघों में इतनी शक्ति होती है कि वे स्वयं शरीर से छोटे होते हुए भी बड़े-बड़े हाथियों का अहंकार तोड़ देते हैं, तो मैं परमधाम के बाघों की शक्ति का कैसे वर्णन करूँ।

**बोलत बाघ विस्तार के, सब मिल एकै सोर।**

**गरजे सेती जानिए, इनों अंगों का जोर॥३५॥**

जब परमधाम में सभी बाघ मिलकर लम्बे एवं एक ही स्वर में बोलते हैं, तो इनकी गर्जना ही यह दर्शाती है कि इनके अंग-अंग में कितनी शक्ति है।

**छंछेक देखे छैल चीते, जुगत जलदी जोर।**

**काहिली ना अंग कबहूँ, होत नहीं मन मोर॥३६॥**

सुन्दर चीतों की उछल-कूद, चतुराई, शीघ्रता, और

शक्ति देखने योग्य होती है। इनके अंगों में सुस्ती और मन में भय कभी भी नहीं होता।

**अस्व आगूं अति बड़े, अस्वारी के सिरदार।**

**सिर ऊँचे गरदन थांभत, थंभक थंभक थेई कार॥३७॥**

श्री राज जी की सवारी में बहुत बड़े-बड़े (ऊँचे-ऊँचे) घोड़े चलते हैं, जो इस सवारी के प्रमुख माने जाते हैं। ये अपनी गर्दन उठाकर शिर को ऊँचा किये हुए तुमक-तुमककर संगीत के मधुर स्वरों की तरह ध्वनि करते हुए चलते हैं।

**जब बोलत बदन विकास के, होत सबे हेहंकार।**

**दसों दिसा सब गरजत, पड़त सबे पुकार॥३८॥**

जब सभी घोड़े अपना मुख खोलकर हिनहिनाते हैं, तो



दसों दिशाओं में उनकी गर्जना सुनायी पड़ती है। चारों ओर उनकी आवाज गूँजने लगती है।

**सब्द फील जब उठहीं, गरजत गंज गंभीर।**

**जिमी पहाड़ सब गाजत, और सैन्या सोहे सूर धीर॥३९॥**

बड़े-बड़े हाथी जब गम्भीर स्वरों में गर्जना करते हैं, तो उनकी आकर्षक ध्वनि चारों ओर सुनायी पड़ने लगती है। उस समय धरती एवं पहाड़ आदि सभी में उनकी गर्जना सुनायी देती है। गर्जना करने वाले शूरवीर हाथियों की सेना बहुत अधिक सुशोभित होती है।

**यों कई जातें पसुअन की, कई खूबी बल कहूं केता।**

**अपार बल खूबी अर्स की, नहीं जुबां माफक है एता॥४०॥**

इस प्रकार, पशु-पक्षियों की अनन्त जातियाँ हैं। उनकी

शोभा एवं शक्ति अथाह है, जिसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। परमधाम की शोभा और शक्ति का वर्णन कर पाना मेरी जिह्वा के वश में नहीं है।

कई जातें हैं जानवर, चलते आगूँ उड़त।

कई लेवें गुलाटियां, अनेक खेल खेलत॥४१॥

जानवरों की बहुत सी जातियाँ हैं। ये जानवर आगे – आगे चलते हैं और आकाश में उड़ने भी लगते हैं। कई उल्टबाजियाँ (कलाबाजियाँ) करते हैं और तरह – तरह के अनेक खेल खेलते हैं।

छोटे छोटा या बड़े बड़ा, खेल देखावें सब।

सब सुख तबहीं पावहीं, धनी को रिझावें जब॥४२॥

चाहे कोई छोटा से छोटा पशु-पक्षी हो या बड़ा से बड़ा,

हर कोई अपना खेल दिखाता है। सबको तभी सुख मिलता है, जब वे मनचाहे ढंग से अपने धाम धनी को रिझा लेते हैं।

**कई मुख बानी उचरें, तान मान गुन गान।**

**आठों जाम करत हैं, सुन्दर ध्यान बयान॥४३॥**

बहुत से जानवर अपने मुख से अति मीठे स्वरों में सुर और ताल से युक्त धनी के गुणों का गायन करते हैं। वे आठों प्रहर अपने प्राणेश्वर की मनमोहक छवि का ही ध्यान करते हैं और उसका वर्णन करते हैं।

**नैन नीके चोंच सोभित, मीठी जुबां मुख बान।**

**खुसबोए गूंजें कई भमरे, कई तिमर अलापें तान॥४४॥**

इन पशु-पक्षियों के नेत्र बहुत सुन्दर हैं। चोंच की भी

छवि अलौकिक है। इनके सुन्दर मुख से अमृत से भी अधिक मीठी बोली निकलती है। इनका सम्पूर्ण शरीर सुगन्धि से भरा होता है। बहुत से भौंरे और झींगुर अति मीठे स्वरों में राग अलापा करते हैं।

**आसमान छाया पंखियों, सब खूबी देखावत।**

**आप अपनी साधना, सब खेल की साधत॥४५॥**

सवारी के समय सम्पूर्ण आकाश पक्षियों से छाया रहता है। धनी को रिझाने के लिये सभी अपनी-अपनी कलायें दिखाते हैं तथा तरह-तरह के खेल दिखाने की साधना करते हैं।

**द्रष्टव्य-** साध्य को प्राप्त करने के लिये जो भी प्रक्रिया की जाती है, उसे साधना कहते हैं। इसी दृष्टि से पशु-पक्षी धाम धनी को रिझाने के लिये जो भी खेल करते हैं,

उसे इस चौपाई में साधना कहा गया है।

बिना हिसाबें बाजंत्र, पड़े एक ताली घोर।

जिमी अंबर सब गाजत, ए जुगत सोभा जोर॥४६॥

जैसे ही नगाड़े पर एक जोर की ताली पड़ती है, तो अनन्त बाजे बजने लगते हैं जिनकी गूँज सम्पूर्ण धरती और आकाश में सुनायी देती है। इस समय की शोभा बहुत अधिक होती है।

बाजे सब बजावहीं, बंदे बांदर बलवंत।

ओतो आपे बाजहीं पर, ए सेवा न छोड़त॥४७॥

सेवा करने वाले बन्दर बहुत ही शक्तिशाली होते हैं। ये सभी बाजों को बजाते हैं। यद्यपि परमधाम के सभी बाजे स्वतः ही बजने वाले हैं, किन्तु ये अपनी सेवा नहीं

छोड़ते।

बाजे आपे चलहीं, पर पसु सेवा को उठाए।

इन बखत खूबी कहा कहूँ, ए केहे न सके जुबाँए॥४८॥

बाजे अपने आप चलने वाले हैं, किन्तु पशुओं के मन में सेवा की प्रबल भावना होती है, इसलिये वे उन्हें उठाकर चलते हैं। इस समय की अनुपम शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। मेरी यह जिह्वा उसे कहने का सामर्थ्य नहीं रखती।

आगूं पीछूं सैन्या चले, खूबी देत बराबर।

जो दाँ बाँ मिसलें, कोई छोड़े ना क्यों कर॥४९॥

श्री राज जी का सवारी के आगे-पीछे हमेशा अत्यधिक शोभा के साथ सेना चलती है। दायें-बायें पशु-पक्षियों का समूह चलता है। कोई भी अपनी इस प्रेममयी सेवा

को किसी भी स्थिति में छोड़ता नहीं है।

अस्वारी सबे सोभावत, मिसल अपनी जान।

हर जातें फौज अपनी बांधके, चले सब समान॥५०॥

श्री राजश्यामा जी सहित सभी सखियों की सवारियाँ उस समय अत्यधिक शोभा को धारण करती हैं, जब सभी पशु-पक्षियों की जातियों की सेना अपने-अपने समूह में पंक्तिबद्ध होकर समान रूप से चलती है।

ऐसे बड़े हाथी अर्स के, और बड़े कई पसुअन।

जेता पसु पंखी अर्स का, तिन सबों अस्वारी मन॥५१॥

परमधाम में हाथी बहुत बड़े-बड़े हैं। ऐसे ही जितने बड़े-बड़े पशु या छोटे से छोटे पक्षी हैं, सभी मन की सवारी करते हैं अर्थात् मन की गति से चलते हैं।

देखो दिल विचार के, ए पसुओं का चलन।

उड़त हैं आसमान में, ए चारों तरफों सब धरन॥५२॥

हे साथ जी! अपने हृदय में इन पशु-पक्षियों के व्यवहार के विषय में विचार करके देखिए। प्रेम में डूबे हुए ये पशु-पक्षी आकाश में उड़ते हैं तथा धरती पर चारों ओर स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते हैं।

ऐसे सबे लसकर, सुमार नहीं बल।

चिन्हार इस्क सबों को, बंदे कायम कदम तल॥५३॥

पशु-पक्षियों की सम्पूर्ण सेना का व्यवहार ऐसा ही है। इनकी शक्ति की कोई सीमा नहीं है। सभी को धाम धनी के प्रेम की पहचान है, अर्थात् प्रियतम अक्षरातीत के प्रति अखण्ड प्रेम ही इनका जीवन है। धनी के चरणों में इनकी अखण्ड प्रेम-भक्ति (इश्क-बन्दगी) है।



एक देखी जात फीलन की, तिन फीलों जात अनेक।

कई रंगों कई रूप हैं, सो कहां लों कहुं विवेक॥५४॥

मैंने परमधाम में हाथियों की एक जाति देखी। पुनः उस जाति के हाथियों की भी अनेक जातियाँ देखीं। निजधाम में इतने रूप और रंग के हाथी हैं कि मैं अपनी बुद्धि से उनका कितना वर्णन करूँ।

कई फौजें कई जिनस रंग, हर फौजें कई सिरदार।

तिन सिरदार तले कई फौजें, तिन एक फौज को नहीं सुमार॥५५॥

बहुत सी जातियों तथा रंगों वाले हाथियों की अलग – अलग सेनायें हैं। प्रत्येक सेना में बहुत से सेनापति हैं। इसी प्रकार प्रत्येक सेनापति के अधीनस्थ बहुत सी सेनायें हैं, जबकि किसी भी एक सेना के हाथियों की संख्या अनगिनत है।

अब फौज गिनो दिल अपने, पीछे गिनो सिरदार।

सो सिरदार कई एक फौज में, तिन फौज करो निरवार॥५६॥

हे साथ जी! अब अपने दिल में पहले हाथियों की सेनाओं की संख्या गिनिए। इसके पश्चात् इनके सेनापतियों की संख्या गिनिए। जब एक ही सेना में बहुत से सेनापति हैं, तो उस सेना के सैनिकों (हाथियों) की संख्या का निर्णय कीजिए।

यों गिनती न होए एक जात की, जो कहे फील रंग अपार।

रंग रंग जातें कई कहीं, सो क्योंए न होए सुमार॥५७॥

परमधाम में एक भी जाति के हाथियों की संख्या नहीं गिनी जा सकती, तो वहाँ अनन्त रंगों के हाथी कहे गए हैं, जबकि प्रत्येक रंग में हाथियों की बहुत सी जातियाँ बतायी गयी हैं। इस प्रकार सभी हाथियों की संख्या कैसे

गिनी जा सकती है?

गिनती न होए एक जात की, तो क्यों कहूं इनों को बल।

एक चिड़िया उड़ावे कोट ब्रह्मांड, तो कौन बल फीलों मिसल॥५८॥

जब निजधाम में किसी एक जाति के हाथियों की संख्या भी नहीं गिनी जा सकती, तो इनकी शक्ति (ताकत) का वर्णन मैं कैसे करूँ। वहाँ की एक छोटी सी चिड़िया जब अपने पँखों की हवा से करोड़ों ब्रह्माण्डों को उड़ा सकती है, तो हाथियों की शक्ति की उपमा किससे दी जा सकती है।

इन सब फीलों को पाखरे, और सिरिए जड़ाव रतन।

सो जवेर हैं अर्स के, और अर्से का कुंदन॥५९॥

इन सभी हाथियों ने पाखर (झूल) तथा शिर के ऊपर

रत्नजड़ित सिर-पट्टी धारण की हुई है। ये नूरी जवाहरात परमधाम के हैं तथा जिस स्वर्ण में ये जड़े गये हैं वे भी परमधाम के ही हैं।

**और सबन की क्यों कहूं, ए एक कही मैं जात।**

**ए कैसी सोभा लेत हैं, दे दिल देखो साख्यात॥६०॥**

परमधाम के सभी हाथियों के विषय में मैं क्या कहूँ। यहाँ पर तो मैंने केवल एक ही जाति के हाथियों के विषय में बताया है। हे साथ जी! आप अपने दिल में इस बात का विचार कीजिए कि निजधाम में समस्त हाथियों की शोभा कैसी होगी?

**अब और जात की क्यों कहूं, जो है फीलों से बुजरक।**

**ए बुजरक साहेबी देखाईं रुहों, पावने पटंतर हक॥६१॥**

अब हाथियों से भी बड़े-बड़े जो जानवर हैं, उनकी जातियों तथा संख्या के विषय में कैसे कहूँ। तारतम्य वाणी द्वारा धाम धनी ने हमें इस संसार में परमधाम की इतनी बड़ी गरिमा दिखायी है, जिससे हम इस झूठे जगत् तथा परमधाम के अन्तर (भेद) को समझ सकें।

**लेत सोभा अर्स जिमिएं, जब साहेब होत अस्वार।**

**ए जिन देख्या सो जानहीं, औरों पोहोंचे नहीं विचार॥६२॥**

जब स्वयं श्री राज जी पशु-पक्षियों पर सवारी करते हैं, उस समय परमधाम की धरती की शोभा अनुपम होती है। इस शोभा को जिसने प्रेममयी चितवनि की गहराइयों में डूबकर देखा है, एकमात्र वही इसे जानता है। दूसरे तो इसके बारे में सोच भी नहीं सकते।

**भावार्थ-** जिन सुन्दरसाथ की यह मान्यता है कि श्री

राजश्यामा जी या परमधाम को देखना सम्भव नहीं है, उनके लिये इस चौपाई में बहुत कुछ कह दिया गया है। आवश्यकता है निष्पक्ष हृदय से अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनने की।

**कहा कहूं जात लसकर, एक जात को नहीं पार।**

**तिन जात में अनेक फौजें, एक फौज को नहीं सुमार॥६३॥**

पशु-पक्षियों की सेना में जातियों के विषय में क्या कहूँ। उनकी किसी भी एक जाति में संख्या की कोई सीमा नहीं है। उस एक ही जाति में अनेक सेनायें (लघु) हैं, जबकि एक सेना में भी पशु-पक्षियों की संख्या की कोई सीमा नहीं है।

**भावार्थ—** जिस प्रकार किसी राजा की मुख्य सेना में कई भाग होते हैं और प्रत्येक भाग को सेना (लघु) ही

कहा जाता है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए।

तिन हर फौजों कई साहेबियां, करें पातसाहियां अनेक।

तिन पातसाहियों की क्यों कहूं, लवाजमें विवेक॥६४॥

उन सेनाओं में से प्रत्येक सेना को अनेक प्रकार की गरिमा प्राप्त है और वे अनेक प्रकार का स्वामित्व भी दर्शाते हैं। अनेक तरह की शोभा-सामग्रियों से सुसज्जित इन पशु-पक्षियों के स्वामित्व को मैं कैसे दर्शाऊँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई में पशु-पक्षियों के स्वामित्व (बादशाही) का अर्थ यह है कि वे कालमाया के पशु-पक्षियों की तरह पराश्रित नहीं हैं, बल्कि स्वतन्त्रतापूर्वक कहीं भी आ जा सकते हैं। धनी के अंगरूप होने से वे सखियों की तरह ही प्रेम और आनन्द के रस में डूबे रहते हैं।

जब चले सैर जिमीय की, जो बन बिगर थोड़ी रेत।

साफ जिमी अति दूर लों, तरफ पछिम की सुपेत॥६५॥

जब श्री राजश्यामा जी भ्रमण करने के लिये रंगमहल की पश्चिम दिशा में पश्चिम के चौगान में पहुँचते हैं, तो वहाँ की धरती श्वेत रेत-कणों से कुछ युक्त होने के कारण बहुत दूर तक अति उज्ज्वल और श्वेत रंग की दिखायी देती है। यहाँ पर वृक्षों की शोभा नहीं है।

इत दूर लों बन है नहीं, बोहोत बड़ो मैदान।

अस्वरी होए इसही तरफ, जब कबूं करें सुभान॥६६॥

इस पश्चिम की चौगान में कहीं दूर-दूर तक वन नहीं है। यह बहुत बड़ा रेतीला मैदान है। यही कारण है कि धाम धनी जब कभी पशु-पक्षियों पर सवारी करते हैं, तो यहाँ पर ही करते हैं।



मैदान अति दूर लो, दूर दूर अति दूर।

सूर आकास रोसनी, और उज्जल जिमी सब नूर॥६७॥

इस मैदान (पश्चिम की चौगान) का विस्तार बहुत दूर-दूर तक है। यहाँ खुले आकाश में नूरी सूर्य का प्रकाश फैला हुआ है तथा अति उज्ज्वल धरती पर भी सर्वत्र नूर ही नूर दिखायी दे रहा है।

आगे सैर विध विध की, जब करें ऊपर सागर।

कई विध के रस पूरन, सब पैरत हैं जानवर॥६८॥

जब श्री राज जी सागरों की सैर (भ्रमण) करते हैं, तो वहाँ तरह-तरह की प्रेममयी लीलायें होती हैं, जो अनेक प्रकार के आनन्द की वर्षा करने वाली होती हैं। सभी जानवर प्रेम में भरकर जल के अन्दर तैरने की लीला करते हैं।

जल किनारे बन हैं, कई विध की बैठक।

कई जल टापू पहाड़ में, कई मोहोलों माहें छूटक॥६९॥

सागरों के किनारे बड़े-बड़े वन आये हैं, जिनमें अनेक प्रकार की बैठकें हैं। जल के अन्दर बहुत से टापू महल आये हैं, जो पहाड़ के समान ऊँचे हैं। इनमें अलग-अलग बहुत से महल आये हैं।

**भावार्थ-** १२ हजार टापू महलों की १२ हजार हारें हैं। सभी आपस में अलग-अलग हैं। जितनी लम्बी-चौड़ी जगह में महल हैं, उतनी ही लम्बी-चौड़ी उनके बीच में पानी की जगह है।

चलत पैरत कूदत, उड़ना याको काम।

मन की अस्वारी सबको, मन चाह्या करें विश्राम॥७०॥

अत्यधिक मोहक चाल से चलकर, तैरकर, कूदकर,

तथा आकाश में उड़कर श्री राज जी को रिझाना ही इन पशु-पक्षियों का मुख्य काम हैं। सभी मन के वेग से चलते हैं और इच्छानुसार आराम करते हैं।

जो दिल चाहे तखतरवा, हजार बारे ले बैठत।

राज स्यामाजी बीच में, आकास में उड़त॥७१॥

जब कभी इच्छा होती है, तो श्री राजश्यामा जी १२००० सखियों के साथ वृहद् विमान (तखतरवा) पर एकसाथ बैठ जाते हैं। युगल स्वरूप सबके बीच में बैठते हैं और आनन्दपूर्वक आकाश में उड़कर पल भर में इच्छित जगह पर पहुँच जाते हैं।

कबूँ सैर इन खेल को, ऊपर चढ़े आसमान।

दिल चाहे सुख सबन को, देत रूहें प्यारी जान॥७२॥

श्री राज जी कभी-कभी भ्रमण करते हुए क्रीड़ा करने के लिये आकाश में ऊपर चले जाते हैं। सभी अँगनाओं को अति प्यारी जानकर उनके दिल की इच्छानुसार सुख देते हैं।

मन ऊपर चलत हैं, या जिमी जल बन।

या चढ़े आसमान में, ठौर फिरवले सबन॥७३॥

चाहे धरती हो या जल या वन, हर जगह सभी मन की गति से पहुँच जाते हैं। इच्छा होने पर आकाश में बहुत ऊँचाई तक भी चले जाते हैं और हर जगह घूमकर पुनः वापस आ जाते हैं।

पार नहीं आसमान को, जहांलो जानें तहांलो जाएं।

खेल कर पीछे फिरें, देखें पर्वत आए॥७४॥

परमधाम का आकाश तो अनन्त हैं, किन्तु मन में जहाँ तक इच्छा होती है, वहाँ तक जाते हैं, और तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करके पुनः वापस आ जाते हैं, तथा पर्वतों की शोभा को देखते हैं।

दिल चाह्या रूहन को, हक दें हमेसा सुख।

पहाड़ बन मोहोल आकास जिमी, जित रूहों का होवे रूख॥७५॥

धाम धनी अपनी अँगनाओं को हमेशा उनके दिल की इच्छानुसार सुख देते हैं। पर्वतों, वनों, महलों, आकाश, या धरती पर जहाँ कहीं भी सखियों की जाने की इच्छा होती है, वहीं पर वे ले जाते हैं।

जो रूख होवे जल पर, या जोए या ताल।

या सुख मोहोलन में, देवें दायम नूरजमाल॥७६॥

जब सखियों को जल-क्रीड़ा की इच्छा होती है, तब श्री राज जी उन्हें यमुना जी या हौज़ कौसर ताल में ले जाते हैं, या रंगमहल में प्रेममयी क्रीड़ा का अखण्ड सुख देते हैं।

ए खूबी इन बखत की, हकें दर्ई देखाए।

ए ख्वाब में प्यारी लगी, अर्स की ठकुराए॥७७॥

पशु-पक्षियों के ऊपर धनी के विराजमान होकर सवारी करने की लीला के समय की विशेषताओं को स्वयं अक्षरातीत ने अपनी तारतम वाणी से हमें दर्शा दिया है। अब इस मायावी जगत् में परमधाम का यह ऐश्वर्य रूप स्वामित्व बहुत प्यारा लग रहा है।

मैं तुमें कहूँ मोमिनों, देखो दिल लगाए।

ऐसी साहेबी खसम की, जो रूह देख सुख पाए॥७८॥

हे साथ जी! मैं आपसे जो बात कह रही हूँ, उसके विषय में दिल लगाकर (ध्यान से) विचार कीजिए। प्रियतम श्री राज जी का स्वामित्व अनुपम है। जो भी आत्मा उसका अनुभव करेगी, वह निश्चय ही आनन्द का रसपान करेगी।

**भावार्थ-** युगल स्वरूप एवं सखियों सहित परमधाम के २५ पक्षों की शोभा तथा लीला ही धनी का स्वामित्व है, जिसका ज्ञान तारतम वाणी द्वारा हो जाता है। चितवनि में उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है, जिसका सुख शब्दों से परे है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

इस वास्ते निमूना, ए जो करी कुदरत।

साहेबी अपनी जान के, करी बकसीस ऊपर उमत॥७९॥

इसलिये प्राणेश्वर श्री राज जी ने हम अँगनाओं को अपना अंग जानकर विशेष कृपा की है। परमधाम की तुलना में माया का यह झूठा खेल दिखाकर हमें अपने स्वामित्व की पूर्ण पहचान दे दी है।

तो क्या निमूना झूठ का, पर लेसी रूहों लज्जत।

ख्वाब बड़ाई देख के, विचारसी निसबत॥८०॥

अन्यथा परमधाम की तुलना में इस झूठे संसार को दिखाने की आवश्यकता ही क्या थी, किन्तु धाम धनी ने इसलिये दिखाया है कि तारतम वाणी के प्रकाश में ब्रह्मसृष्टि परमधाम की मारिफत (परम सत्य) का रसास्वादन कर सके। वे इस स्वप्नमयी संसार में



परमधाम की अनन्त महिमा को देखकर अपने मूल सम्बन्ध के विषय में सोचेंगी (पहचानेंगी) कि यदि धाम धनी से हमारा अखण्ड सम्बन्ध नहीं होता, तो तारतम ज्ञान की यह अलौकिक निधि (नेमत) कदापि नहीं मिल सकती थी।

**ए साहेबियां देखाइयां, ख्वाब में उमत।**

**और देखाई साहेबी अपनी, सुख देने को इत॥८१॥**

इसलिये इस स्वप्नमयी जगत में श्री राज जी ने ब्रह्मात्माओं को सुख देने के लिये ही तारतम वाणी द्वारा अपने, सखियों के, तथा पशु-पक्षियों के भी स्वामित्व (साहेबी) की पहचान करा दी है।

तफावत ए झूठ की, क्यों आवे बराबर सांच के।

पर रूहें सुख पावत हैं, देख अपनी साहेबी ए॥८२॥

यदि परमधाम तथा संसार में अन्तर देखा जाये, तो यह स्पष्ट होता है कि अखण्ड परमधाम के समक्ष भला इस झूठे ब्रह्माण्ड की क्या उपमा हो सकती है। किन्तु इस मिथ्या जगत् में भी ब्रह्मवाणी के प्रकाश में ब्रह्मसृष्टियों ने अपनी गरिमा को पहचाना है, इसलिये उन्हें सुख का अनुभव हो रहा है।

कहा कहूं ठकुराई की, और क्यों कहूं बुध बल।

क्यों कहूं इस्क पेहेचान की, और क्यों कहूं सुख नेहेचल॥८३॥

ब्रह्मात्माओं का परमधाम में जो अनन्त स्वामित्व (गरिमा), बुद्धि, और बल है, उसके विषय में मैं क्या कहूँ। इनके हृदय में अपने प्राणेश्वर की जो अखण्ड

पहचान और प्रेम है, उसे भी व्यक्त करना मेरे लिये सम्भव नहीं है। इनके शाश्वत सुखों के विषय में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता।

क्यों कहूं मोहोल अर्स के, क्यों कहूं जिमी बन।

क्यों कहूं इन लसकर की, मिने पातसाहियां पूरन॥८४॥

परमधाम के नूरी महलों, धरती, तथा वनों की अनुपम शोभा को मैं कैसे बताऊँ। निजधाम में अपना पूर्ण स्वामित्व रखने वाले पशु-पक्षियों की सेनाओं की विशिष्ट शोभा को मैं कैसे व्यक्त करूँ।

ए बात है विचार की, कई जातें जानवर।

कई जातें पसुअन की, याको बल कहूं क्यों कर॥८५॥

पशु-पक्षियों की अनन्त स्वामित्व की बातें विचारणीय

हैं। इनकी अनन्त जातियों एवं शक्ति का वर्णन कर पाना तो किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

**एक जात बाघन की, कहूं केते रंग तिन माहें।**

**इन रंग सुमार ना आवहीं, क्यों होवे हिसाब जुबांए॥८६॥**

यदि बाघों की केवल एक ही जाति के विषय में देखा जाये, तो इसमें इतने रंग हैं कि उनका वर्णन हो ही नहीं सकता। समस्त बाघों के रंगों की तो कोई सीमा ही नहीं हो सकती। यह सम्भव ही नहीं है कि इस जिह्वा से समस्त बाघों की संख्या बतायी जा सके।

**अब कैसा बल समूह का, पसु और जानवर।**

**देखो साहेबी अर्स की, ले ब्रह्मांड बल नजर॥८७॥**

हे साथ जी! अब यह विचार करने योग्य बात है कि

परमधाम के समस्त पशु-पक्षियों की सामूहिक शक्ति कैसी होगी। उनकी तथा इस समस्त ब्रह्माण्ड की शक्ति का ध्यान रखते हुए (तुलना करते हुए) अपने परमधाम की गरिमा का चिन्तन कीजिए।

**ए निमूना इन वास्ते, देखलाया रूहन।**

**झूठ कौन आगूं सांच के, पर बल न पाइए या बिन॥८८॥**

इसलिये ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम के स्वामित्व (गरिमा) की पहचान देने के लिये ही धाम धनी ने झूठे ब्रह्माण्ड का यह नमूना दिखाया है। भला सत्य स्वरूप परमधाम के समक्ष यह मिथ्या ब्रह्माण्ड कैसे ठहर सकता है, किन्तु ऐसा किये बिना (झूठ को देखे बिना) सत्य की पहचान कैसे हो सकती है।

**इन सुपन जिमी में बैठ के, क्यों कहूं ठकुराई अर्स।**

**ए गिरो विचारें सुख पावसी, जो होसी अरस-परस॥८९॥**

इस सपने के संसार में रहकर मैं परमधाम की गरिमा को कैसे बताऊँ। मात्र धनी के अंगरूप ब्रह्ममुनि ही इस बात का (परमधाम की महिमा) का विचार करेंगे और आत्मिक आनन्द को प्राप्त करेंगे।

**ए विचार विचार विचारिए, तो पाइए लसकर बल।**

**सुमार तो भी न पाइए, जिमी अपार नेहेचल॥९०॥**

हे साथ जी! यदि आप परमधाम के स्वामित्व (साहिबी) का बार-बार विचार करें, तो आपको वहाँ के पशु-पक्षियों के बल की पहचान हो सकती है। फिर भी उसकी सीमा नहीं पायी जा सकती क्योंकि निजधाम की धरती अनन्त और अखण्ड है।

क्यों कहूं जिमी अपार की, क्यों कर कहूं मोहोलात।

क्यों कहूं जोए हौज की, क्यों कहूं नूर जात॥९१॥

परमधाम की असीम धरती तथा महलों की अथाह शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। यमुना जी, हौज कौसर ताल, तथा अन्य सभी नूरी पदार्थों की शोभा का वर्णन कर पाना मेरे लिये सम्भव नहीं है।

क्यों कहूं अर्स जिमी की, क्यों कहूं हक सूरत।

क्यों कहूं खासी रूह की, क्यों कहूं रूहें उमत॥९२॥

परमधाम की नूरी धरती, श्री राज जी के अनुपम सौन्दर्य, तथा श्यामा जी एवं सखियों की अलौकिक शोभा का वर्णन मेरी जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है।

क्यों कहूं इन सुख की, क्यों कहूं इन विलास।

क्यों कहूं इस्क आराम की, क्यों कहूं रमूजें हाँस॥९३॥

ब्रह्मसृष्टियों के अखण्ड सुखों को मैं कैसे बताऊँ। धनी के साथ होने वाली आनन्दमयी लीलाओं का भी वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। वहाँ के शाश्वत प्रेम के मधुरतम क्षणों की अभिव्यक्ति भी कदापि नहीं हो सकती। नेत्रों के इशारों (संकेतों) से होने वाली प्रेम-भरी हँसी की लीला को मेरी इस जिह्वा से नहीं बताया जा सकता।

इन अर्स का खावंद, सो धनी अपना हक।

ए देखो साहेबी अर्स की, ए मोमिनोँ बुजरक॥९४॥

हे साथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी सम्पूर्ण परमधाम के प्रियतम हैं। आप अपने परमधाम की महान गरिमा का विचार कीजिए।



देखो साहेबी अपनी, मेरा खसम नूरजमाल।

जब देखत हों दिल ल्याए के, मेरी रूह होत खुसाल॥९५॥

हे साथ जी! आप अपनी गरिमा का चिन्तन कीजिए। श्री राज जी मेरे प्राण प्रियतम हैं। जब मैं उनसे अपने मूल सम्बन्ध का भाव को लेकर अपनी गरिमा के विषय में ध्यानपूर्वक सोचती हूँ, तो मुझे बहुत आनन्द आता है।

**भावार्थ-** यदि हम संसार का चिन्तन छोड़कर स्वयं को परात्म की भावना से मूल मिलावा में देखें और परमधाम में धनी के साथ अपने अखण्ड प्रेम-आनन्द तथा एकत्व (वहदत) के विषय में ही सोचें, तो आनन्द की प्राप्ति स्वाभाविक है।

क्यों न होए खुसालियां, देख अपनी ठकुराए।

और नाहीं कोई कहूं, ए मैं देख्या चित्त ल्याए॥९६॥

परमधाम के अपने स्वामित्व का अनुभव करने पर भला आनन्द क्यों नहीं होगा। यह तो मैंने बहुत ध्यानपूर्वक गहराई से देखा है कि निजधाम में हमारे प्राणेश्वर के अतिरिक्त और कोई भी कहीं नहीं है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में अध्यात्म तथा मनोविज्ञान के एक बहुत ही गहन रहस्य को रेखांकित किया गया है। वस्तुतः मनुष्य का व्यक्तित्व अपने विचारों का ही प्रतिफल (परिणाम) है। जो जैसा सोचता है, वह वैसा ही बन जाता है। अतः हमें स्वयं को कामी, क्रोधी, लोभी, अहंकारी, पापी, पुण्यात्मा, योगी, मूर्ख, विद्वान आदि न सोचकर मात्र परब्रह्म की अङ्गरूपा-ब्रह्मात्मा ही समझना चाहिए। तभी हम संसारिकता के धरातल से ऊपर उठकर अध्यात्म के शिखर तक पहुँच सकेंगे।

जब परमधाम में प्रियेश्वर श्री राज जी के अतिरिक्त

और कोई है भी नहीं तथा वे ही स्वयं हमारे रूप में लीला कर रहे हैं, तो इस संसार में अहंकार के किले में स्वयं को कैद किये रखना कितनी बड़ी नादानी है। इसका उत्तर हम स्वयं अपनी अन्तरात्मा से पूछ सकते हैं।

**मेरे खसम का नूर है, नूर अंग नूरजलाल।**

**सो आवत दायम दीदार को, मेरा खसम नूरजमाल॥९७॥**

श्री राज जी मेरे प्राणेश्वर हैं। उन्हीं के नूरी अंग अक्षर ब्रह्म हैं, जो प्रतिदिन उनका दर्शन करने के लिये चाँदनी चौक में आया करते हैं।

**भावार्थ—** अक्षर ब्रह्म को अक्षरातीत का नूरी अंग कहने का भाव यह है कि श्री राज जी में जो अखण्डता, किशोरावस्था, निर्विकारिता, तथा सौन्दर्य आदि गुण हैं, वे सभी अक्षर ब्रह्म में भी निहित हैं, अर्थात् अक्षर—

अक्षरातीत में अंग-अंगी का सम्बन्ध है।

सांची साहेबी खसम की, जो कायम सुख कामिल।

ऐसा आराम अपने हकसों, इत नहीं चल विचल॥९८॥

अक्षरातीत का स्वामित्व अखण्ड है। उनसे मिलने वाला अखण्ड सुख पूर्णात्पूर्ण है। प्रियतम से प्राप्त होने वाला आनन्द ऐसा है, जिसमें कभी भी रञ्जमात्र भी अस्थिरता नहीं है अर्थात् वह सर्वदा अखण्ड-एकरस रहता है।

बड़ी बड़ाई बड़ी साहेबी, बुजरक सदा बेसक।

और सब याके खेलौने, सब पर एकै हक॥९९॥

प्रियतम अक्षरातीत की महिमा अनन्त है और स्वामित्व भी अनन्त है। महान कही जाने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ हमेशा ही संशयरहित होती हैं। सभी पशु-पक्षी युगल स्वरूप

तथा सखियों के खिलौने हैं। सबके प्रियतम एकमात्र अक्षरातीत ही हैं।

**भावार्थ-** यद्यपि परमधाम के एकत्व (वहदत्त) में किसी भी प्रकार का भेद नहीं है, क्योंकि सभी धाम धनी के ही अंग हैं, किन्तु पशु-पक्षियों को खिलौना कहने का आशय यह है कि युगल स्वरूप तथा सखियाँ इनसे खेलते हैं।

**महामत साहेबी हक की, मैं खसम अंग का नूर।**

**अंग रूहें मेरा नूर हैं, सब मिल एक जहूर॥१००॥**

श्री महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान श्यामा जी कहती हैं कि श्री राज जी का स्वामित्व सर्वोपरि है। मैं उनके अंग का नूर हूँ अर्थात् मैं उनकी हृदय-स्वरूपा हूँ, और सभी सखियाँ मेरे अंग का नूर हैं (मेरी हृदय-

स्वरूपा हैं)। हम सभी मिलकर श्री राज जी के ही स्वरूप हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण का तात्पर्य यह है कि श्री राज जी का दिल ही श्यामा जी एवं सखियों, पशु-पक्षियों, तथा २५ पक्षों के रूप में लीला कर रहा है। इस प्रकार सभी किसी न किसी रूप में एकमात्र श्री राज जी के स्वरूप हैं।

**प्रकरण ॥२९॥ चौपाई ॥१४३७॥**

## तीन सरूपों की पेहेचान, बल अर्स की तरफ का

इस प्रकरण में तीनों स्वरूपों (बशरी, मल्की, तथा हकी) की पहचान दी गयी है तथा यह भी बताया गया है कि आत्म-जाग्रति होने पर हमारी आत्मा अपने वास्तविक बल का अनुभव करने लगती है।

पेहेले किया बरनन अर्स का, रूह अल्ला का केहेल।

अब चितवन सें केहेत हों, जो देत साहेदी अकल॥१॥

अब तक मैंने परमधाम का जो भी वर्णन किया है, वह सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र पहले कह चुके हैं। अब चितवनि में डूबकर अपनी बुद्धि की साक्षी से निजधाम की शोभा का वर्णन कर रही हूँ।

**भावार्थ-** यदि इस चौपाई के शब्दों के बाह्य अर्थ के आधार पर ऐसा कहा जाये कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र

जी के मुखारविन्द से श्री मिहिरराज जी ने जो सुन रखा था, वही इस परिक्रमा ग्रन्थ में अब तक वर्णित किया गया है, तथा अब जो कुछ भी कहा जा रहा है, वह स्वयं श्री महामति जी साक्षात् देखकर कह रहे हैं, तो ऐसा कहना अनुचित है। यदि श्री मिहिरराज जी अब तक सुना हुआ ज्ञान कह रहे थे, तो यह श्री मिहिरराज जी की वाणी हो जायेगी। ऐसी अवस्था में प्रकाश ग्रन्थ के इन कथनों का आशय क्या होगा—

आ वचन मेहराजें प्रगट न थाय।

प्रकास गु. ४/१४

ए वचन महामति से प्रगट न होए।

प्रकास हि. ४/१४

मेरी बुधें लुगा न निकसे मुख, धनी जाहेर करें अखंड घर सुख।

प्रकास हि. २९/७



यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि दोनों तनों (श्री देवचन्द्र जी तथा श्री मिहिरराज जी) के अन्दर विराजमान होकर श्री राज जी ने ही परमधाम का ज्ञान दिया है। इसलिये कथनों में समानता होने के कारण ही यह बात कही जा रही है कि अब तक आपने परमधाम का यह जो भी वर्णन सुना है, वह सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी पहले कह चुके हैं।

चितवनि से देखकर कहने का आशय यह है कि जिस शोभा का वर्णन किया जा रहा है, उसे चितवनि में श्री महामति जी की आत्मा प्रत्यक्ष रूप से देख अवश्य रही है, किन्तु कहने वाले स्वयं अक्षरातीत श्री राज जी (श्री प्राणनाथ जी) हैं। यह कथन इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं—

महामत कहे सुनो साथ, देखो खोल बानी प्राणनाथ।

धनी ल्याए धाम से वचन, जिनसे न्यारे न हो चरन॥

किरंतन ७६/७५

हिरदे बैठ केहेलाया रास, पेहेले फेरे के दोऊ किए प्रकास।

प्रकास हि. ४/१८

स्पष्ट है कि श्रीमुखवाणी का प्रत्येक शब्द धाम धनी के आवेश से कहा गया है, इसलिये इसे ब्रह्मवाणी की शोभा प्राप्त है। यदि सुनकर पुनः उसे मन-बुद्धि के धरातल पर दोहरा दिया जाये, तो तारतम्य वाणी "सन्त वाणी" कहलायेगी जिसे कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

जब जानों करूं बरनन, तब ऐसा आवत दिल।

जब रूह साहेदी देत यों, इत ऐसा ही चाहिए मिसल॥२॥

जब मैं परमधाम की शोभा का वर्णन करने का विचार करती हूँ, तो मेरे दिल में ऐसी बात आती है कि परमधाम में भी वैसा ही होना चाहिए जैसा मेरी आत्मा के अन्दर से साक्षी आ रही है।

**भावार्थ-** इस चौपाई की प्रथम पंक्ति में श्री मिहिरराज जी के जीव के दिल (हृदय) की भावना का वर्णन है, जबकि दूसरी पंक्ति में आत्मा के हृदय का प्रसंग है। आत्मा के धाम-हृदय में धनी द्वारा ही कुछ उपजता है। संकल्प-विकल्प जीव के हृदय में होते हैं, जो पहली पंक्ति में दर्शाया गया है।

इन विध हुआ है अव्वल, दई रूह साहेदी तेहेकीक।

जो कही बानी जोस में, सो साहेब दई तौफीक॥३॥

इस प्रकार, प्रारम्भ से ही ऐसा होता रहा है कि मेरी

आत्मा निश्चित रूप से हमेशा साक्षी देती रही है। धाम धनी ने मेरे ऊपर मेहर करके अपने जोश द्वारा मेरे तन से अपनी वाणी कहलवायी है।

**भावार्थ-** अन्तरात्मा की साक्षी श्री राज जी की ओर से होती है, जबकि जीव का मन तरह-तरह के विचारों के झंझावातों (तूफानों) से जूझता रहता है। धाम धनी के जोश एवं आवेश द्वारा अवतरित ज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है, इसे किसी मानवीय बुद्धि की देन नहीं कहा जा सकता। श्री मिहिरराज जी के तन को मात्र शोभा मिली है। "केहेने की शोभा कालबुत को दर्ई" का यही आशय है।

हकें दर्ई किताबें मेहेर कर, जो जिस बखत दिल चाहे।

सोई आयत आवत गई, जो रूह देत गुहाए॥४॥

मेरे हृदय में जिस समय भी जैसे ज्ञान की आवश्यकता

हुई, धाम धनी ने अपनी मेहर से उसके अनुकूल ग्रन्थ मेरे तन से अवतरित कराया। मेरी आत्मा जैसी साक्षी देती गयी, वैसी ही चौपाइयाँ भी अवतरित होती गयीं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह स्पष्ट किया गया है कि आत्मा की साक्षी का तात्पर्य है- धनी की प्रेरणा से कहा हुआ कथन। "केहेत केहेलावत तुम ही, करत करावत तुम" (खिलवत ३/१३) का कथन इसी सन्दर्भ में है। साक्षी का तात्पर्य ही है कि आत्मा उस सत्य को प्रत्यक्ष रूप से देख रही है, उसमें मन-बुद्धि की किसी कल्पना का प्रवेश नहीं है।

सब्द जो सारे इन विध, कही आगे से आखिरत।

बिना फुरमान देखें कहे, ना हादिँ कही हकीकत॥५॥

इस प्रकार प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मेरे तन से जो

भी वाणी उतरी है, इसी तरह धनी के जोश-आवेश एवं आत्मा की साक्षी द्वारा उतरी है। मैंने कुरआन आदि धर्मग्रन्थों को पढ़कर कुछ भी नहीं कहा है और न सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुख से सुनकर अपनी लौकिक बुद्धि द्वारा व्यक्त किया है।

**कहें सब्द रूह साहेदी, पर दिल देत कछू सक।**

**मुसाफ देखे भागी सक, सब आयतें इसी माफक॥६॥**

यद्यपि अन्तरात्मा की साक्षी के साथ मेरे मुख से ब्रह्मवाणी का अवतरण होता रहा है, पर मेरे जीव के दिल में कुछ संशय रहता था। कुरआन को देखने पर मेरे (जीव के दिल के) संशय समाप्त हो गये और अब तक की सभी चौपाइयाँ उसी भाव से अवतरित हुई हैं।

**भावार्थ—** सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी द्वारा प्रदत्त ज्ञान

मात्र वेद पक्ष का था। जब तक कतेब पक्ष से भी साक्षी न मिले, तब तक मन में संशय बना रहना स्वाभाविक था कि क्या सम्पूर्ण विश्व उन्हें पूर्णब्रह्म का स्वरूप मानेगा , जैसा कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने उनसे कहा था। दिल्ली में कायमुल्ला द्वारा तफसीर-ए-हुसैनी सुनने के पश्चात् किसी के भी मन में संशय नहीं रहा। सनंध ग्रन्थ ४१/२ के कथन "सुनियो भीम मकुन्द, ऊद्धव केसव स्याम। हम पाती पढ़ी महंमद की, सब पाई हकीकत धाम" से यही भाव स्पष्ट होता है।

कुरआन के १६वें पारे सूरे मरियम में उल्लेख है कि मेरी तीन सूरतें होंगी, जो अलग-अलग भाषाओं में एक ही सत्य को प्रकट करेंगी। इस साक्षी के पश्चात् श्री महामति जी के जीव के दिल में स्वयं के स्वरूप के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रह गया।

इसके पश्चात् जो भी चौपाइयाँ (सनन्ध से कियामतनामा तक) उतरी हैं, सबमें श्री प्राणनाथ जी को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी के रूप में दर्शाया गया है। आगे की चौपाइयाँ इसी सन्दर्भ में कही गयी हैं।

**और फुरमान में ऐसा लिख्या, ओ केहेसी मेरे माफक।**

**आवसी मेरी उमत में, करने कायम दीन हक॥७॥**

कुरआन में (१६वें पारे सूरे मरियम) लिखा है कि वक्त आखिरत में आने वाले आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुजमाँ मेरे कथनों के अनुकूल ही बोलेंगे। परब्रह्म के शाश्वत धर्म को स्थापित करने के लिये वे मेरी उम्मत (नाजी फिरके) में आयेंगे।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "मेरी उमत" का तात्पर्य मुसलमानों से नहीं है , बल्कि



परमधाम की उन ब्रह्मसृष्टियों से है जो भारतवर्ष में उतरी हैं। इन्हें ही कुरआन में अहल-ए-वेत और मेहेरम कहा गया है। यद्यपि कहीं-कहीं उनके अनुयायियों को भी उम्मत कहकर सम्बोधित किया गया है, किन्तु यह कथन उस नाजी फिरके (श्री निजानन्द सम्प्रदाय) से सम्बन्धित है, जो एक परब्रह्म की प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा आराधना करता है।

**सोई सुध दई फुरमानें, सोई ईसे दई खबर।**

**मेरे मुख सोई आइया, तीनों एक भए यों कर॥८॥**

आध्यात्मिक ज्ञान का जो सन्देश कुरआन ने दिया है, वही सन्देश सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने दिया है। मेरे मुख से भी वैसा ही आया है। इस प्रकार हम तीनों का कथन एक जैसा ही है।

**भावार्थ-** कलमे का कथन "ला, इलाह, इल्लिह्लाह" ही सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का "क्षर, अक्षर, अक्षरातीत" है, जिसकी विशद विवेचना तारतम वाणी के अन्दर है। इस प्रकार तीनों सूरतों (बशरी, मल्की, हकी) के कथनों की समानता कुरआन के सूरे मरियम को सत्य सिद्ध करती है। वेद-कतेब की दोनों धाराओं का सत्य स्पष्टीकरण भी तारतम वाणी में ही विद्यमान है।

**रूहअल्ला ने मेहेर कर, दिया खुदाई इलम।**

**सब सुध भई अर्स की, रूहें बड़ी रूह खसम॥९॥**

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मेरे ऊपर मेहर करके ब्रह्मज्ञान (तारतम) दिया, जिससे परमधाम, श्री राजश्यामा जी, एवं ब्रह्मसृष्टियों की सम्पूर्ण पहचान हो गयी।

सब काम भए उमत के, देखें हक फुरमान।

सोई इलम दिया रुह अल्ला, मैं लई नसीहत तीनों पेहेचान॥१०॥

कुरआन के अवलोकन से ब्रह्मसृष्टियों के सभी कार्य पूर्ण हो गये। ऐसा ही ज्ञान सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने भी दिया है। इस प्रकार तीनों स्वरूपों (बशरी, मल्की, हकी) की पहचान करके उनके सिखापन को ग्रहण किया।

**भावार्थ-** कुरआन में विभिन्न घटनाओं के माध्यम से सांकेतिक रूप में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी , श्री प्राणनाथ जी, महाराजा छत्रसाल जी, औरंगज़ेब, तथा सुन्दरसाथ के प्रसंगों का वर्णन है। इन रहस्यों को जानने तथा वेद-कतेब के एकीकरण से किसी के मन में कोई भी संशय नहीं रहा। इसे ही सुन्दरसाथ का सारा कार्य सिद्ध होना कहा गया है।

हकी सूरत का तात्पर्य उस स्वरूप से है जो साक्षात् परब्रह्म का स्वरूप हो, जबकि श्री इन्द्रावती जी एक आत्मा का नाम है, और महामति उनकी शोभा का नाम है। इमाम महदी और प्राणनाथ समानार्थक शब्द हैं। इस प्रकार, जब इस चौपाई में श्री इन्द्रावती जी (श्री महामति जी) द्वारा हकी सूरत से सिखापन लेने की बात कही जाती है, तो उचित ही है।

**अब जो केहेती हों अर्स की, सो दिल में यों आवत।**

**बिना देखे केहेत हों, जित रूह जो चाहत॥११॥**

अब मैं परमधाम की जिस भी शोभा का वर्णन कर रही हूँ, वह मेरे दिल में अनायास ही आता जा रहा है। मुझे वर्णन करने के लिये उस शोभा को प्रत्यक्ष देखने की भी आवश्यकता नहीं पड़ रही है, बल्कि मेरी आत्मा जैसा

चाह रही है वैसा ही वर्णन होता जा रहा है, क्योंकि स्वयं धाम धनी मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर कह रहे हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह जिज्ञासा पैदा होती है कि यहाँ कहा गया है कि मैं परमधाम को बिना देखे ही कह रही हूँ, जबकि इसी प्रकरण की पहली चौपाई में कहा गया है कि मैं चितवनि से प्रत्यक्ष देखकर कह रही हूँ। ब्रह्मवाणी के कथनों में इस प्रकार विरोधाभास क्यों है?

इसका समाधान यह है कि ब्रह्मवाणी के कथनों में कहीं भी रंचमात्र भी विरोधाभास नहीं है, आवश्यकता है उचित समायोजन की। श्री महामति जी की आत्मा इस प्रकरण की पहली चौपाई में जो कहती हैं कि अब मैं चितवनि से देखकर कह रही हूँ, तो इसका आशय यह है कि वे युगल स्वरूप की चितवनि में डूब जाती हैं तथा श्री

राज जी के दिल में डूबकर ओत-प्रोत (अरस-परस) हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में धनी के आवेश और जोश से परमधाम की शोभा का वर्णन होने लगता है। इस तथ्य को प्रकट करने के लिये ही चितवनि से देखकर वर्णन करने की बात कही गयी है।

मारिफत की अवस्था में श्री इन्द्रावती जी और धाम धनी एक हो जाते हैं। उस समय श्री महामति जी को देखकर कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती, बल्कि अनायास ही आत्मा के धाम-हृदय में उसका ज्ञान आता जाता है और धनी के जोश-आवेश से उसका वर्णन होता जाता है। इसी स्थिति का वर्णन चौपाई ११ में किया गया है।

श्री लालदास जी तथा श्री युगलदास जी ने निजधाम की शोभा का जो भी वर्णन किया है, वह

चितवनि में देखकर किया है। धाम धनी के जोश ने उस ज्ञान को शब्दों में कहने का सामर्थ्य दिया, किन्तु उनके वर्णन में आवेश की कोई भी लीला नहीं है।

अर्स के बरनन की, कही हादियों इसारत।

सो दोऊ साहेदी लेयके, जाहेर करुं सिफत॥१२॥

परमधाम की जिस शोभा का वर्णन रसूल मुहम्मद (सल्ल.) एवं सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने संकेतों में (सूक्ष्म रूप से) किया है, उसकी साक्षी लेकर मैं परमधाम की शोभा सहित अखण्ड महिमा को उजागर कर रही हूँ।

मेरी बानी जुदी तो पड़े, जो वतन दूसरा होए।

कहे हादी बल माफक, उरे सिफत सब कोए॥१३॥

पूर्वोक्त दोनों हादियों के कथन से मेरा कथन अलग तो तब होता, जब हमारा वतन कोई और होता, अर्थात् हम तीनों स्वरूपों का निजधाम एक ही है। दोनों हादियों ने अपनी शक्ति के अनुसार परमधाम का वर्णन अवश्य किया है, किन्तु इनके पहले जिसने भी परमधाम की महिमा गायी है, उन सबके शब्द निराकार-बेहद से आगे नहीं जा सके।

**भावार्थ-** "रास लीला खेल के, आए बरारब स्याम" (बीतक २/८) के इस कथन से स्पष्ट है कि मुहम्मद साहब के अन्दर अक्षर ब्रह्म की आत्मा थी। इसी प्रकार "यामें सुरत आई स्यामा जी की सार, मतू मेहता घर अवतार" (प्रकास हि. ३७/६६) से भी यह लक्षित होता है कि मल्की सूरत में श्यामा जी की आत्मा थी। इस प्रकार तीनों स्वरूपों की आत्मायें (अक्षर ब्रह्म,



श्यामा जी, एवं श्री इन्द्रावती जी) परमधाम की ही हैं।  
अतः इनके कथनों में कोई भी विरोधाभास नहीं हो सकता।

बेसुमार बुजरकी अर्स की, नेक कहूं अकल माफक।

ए रूहें नीके जानत हैं, जो अपार अर्स है हक॥१४॥

यद्यपि परमधाम की गरिमा अनन्त है, फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुकूल थोड़ा सा कह पा रही हूँ। धाम धनी के अनन्त परमधाम के विषय में मात्र ब्रह्माँगनायें ही अच्छी तरह से जानती हैं।

ए सुख न आवे जुबां मिने, तो भी केहेना अर्स बन सुख।

रूहें बैठत उठत सुख सनेह सो, कई गिरो को देत श्रीमुख॥१५॥

परमधाम की अनुपम शोभा का यह सुख शब्दों में वर्णित

नहीं हो सकता, फिर भी सुन्दरसाथ को आनन्द देने के लिये परमधाम एवं उसमें स्थित वनों की शोभा और मोहकता का वर्णन करना पड़ रहा है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी अति स्नेहपूर्वक बहुत से सुन्दरसाथ को उठते-बैठते अपने श्रीमुख से यह ज्ञान दिया करते थे।

**धनिएं आगूं अर्स के, कहे तीन चबूतर।**

**दाहिनी तरफ तले तीसरा, हरा दरखत तिन पर॥१६॥**

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मुझसे रंगमहल के आगे तीन चबूतरों का वर्णन किया था। मुख्य द्वार के दायें-बायें दोनों ओर रंगमहल की दीवार से लगते हुए दो चबूतरे तथा तीसरा चबूतरा चाँदनी चौक में दायीं ओर दक्षिण दिशा में स्थित बताया था, जिस पर हरे रंग का (अशोक का) वृक्ष आया है।

चौथी तरफ नाहीं कहा, सो मेरी परीछा लेन।

जाने मेरे इलम से रूह आपै, केहेसी आप मुख बैन॥१७॥

मेरी परीक्षा लेने के लिये उन्होंने चौथे चबूतरे का वर्णन नहीं किया। उन्होंने ऐसा इसलिये किया कि उनके तारतम ज्ञान से श्री इन्द्रावती जी की आत्मा स्वतः जान जायेगी और अपने मुख से स्वयं उसका वर्णन करेगी।

ना तो ए लड़का सो भी जानहीं, जो कछू कर देखे सहूर।

एक तरफ क्यों होवहीं, आगूं अर्स तजल्ला नूर॥१८॥

अन्यथा एक नादान बालक भी यदि थोड़ा सा विचार करे, तो वह भी जान सकता है कि श्री राज जी के रंगमहल के आगे चाँदनी चौक में केवल एक तरफ ही चबूतरा क्यों हैं, उसे तो दोनों तरफ होना चाहिए।

खूब देखाई क्यों देवहीं, चबूतरा एक तरफ।

जाने केहेसी आपे दूसरा, मेरे इलम के सरफ॥१९॥

यदि रंगमहल के आगे चाँदनी चौक में केवल एक तरफ ही चबूतरा रहे, तो भला अच्छा कैसे दिखायी दे सकता है। उन्होंने यही समझा था कि मैं उनके तारतम ज्ञान की शक्ति से स्वयं ही दूसरे चबूतरे का वर्णन कर दूँगी।

तले चौथा चाहिए, आगूं अर्स द्वार।

दरखत दोऊ चबूतरों, सोभा लेत अपार॥२०॥

अक्षरातीत के रंगमहल के मुख्य द्वार के आगे चाँदनी चौक में चौथा चबूतरा अवश्य होना चाहिए। चाँदनी चौक में दोनों चबूतरों के ऊपर अलग-अलग वृक्षों के होने से यहाँ अपार शोभा दिखायी देगी।

आगूं इन चबूतरों, खेलावत जानवर।

नए नए रूप रंग ल्यावहीं, अनेक विध हुनर॥२१॥

चाँदनी चौक के इन दोनों चबूतरों के सामने पशु-पक्षी अनेक प्रकार की कलाओं से अपने नये-नये रूप-रंग धारण कर (श्रृंगार कर) तरह-तरह की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करते हैं।

आगूं इन दरबार के, दायम विलास है बन।

कई विध खेल करें जानवर, हक हँसावें रुहन॥२२॥

रंगमहल के सामने सातों वन आये हैं, जिनमें अखण्ड आनन्द की लीला होती है। इन वनों में पशु-पक्षी अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करके श्री राजश्यामा जी एवं सखियों को हँसाते हैं।

इन चौक खुली जो चाँदनी, आगूं बड़े दरबार।

उज्जल रेती झलकत, जोत को नहीं पार॥२३॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने जो खुले आकाश से युक्त चौक आया है, उसे चाँदनी चौक कहते हैं। चाँदनी चौक में मोती के सूक्ष्म कणों की तरह अति उज्ज्वल रेती झलकार कर रही है, जिसकी ज्योति की कोई सीमा ही नहीं है।

जोत लगी जाए आसमान, थंभ बंध्यो चौखून।

आकास जिमी बीच जोत को, इनको नहीं निमून॥२४॥

चाँदनी चौक के इन दोनों चौरस चबूतरों पर आये हुए वृक्षों से निकलने वाली ज्योति मनोहर थम्भों के समान दिखायी पड़ रही है। यह ज्योति आकाश तक छायी हुई है। यह इतनी सुन्दर है कि आकाश और धरती के बीच

में किसी से भी इसकी उपमा नहीं दी जा सकती (तुलना नहीं की जा सकती)।

और जोत जो बिरिख की, सो भी बीच आकास और बन।

पार नहीं इन जोत की, पर एह रंग और रोसन॥२५॥

यद्यपि चाँदनी चौक के सामने और भी वृक्ष आये हैं, जिनकी ज्योति आकाश और वनों में छायी हुई है। यह ज्योति भी असीम है, किन्तु चबूतरों पर आये हुए लाल और हरे रंग की ज्योति कुछ अलग ही प्रकार की है।

जेता कोई रंग बन में, तिन रंग रंग हर हार।

इन विध आगूं अर्स के, बन पोहोंच्या जोए किनार॥२६॥

सातों वनों में जितने भी रंगों के वृक्ष हैं, सबकी अलग-अलग पंक्तियाँ (हारें) आयी हैं। इस प्रकार रंगमहल के

आगे आये हुए इन वनों की शोभा यमुना जी के किनारे तक चली गयी है।

कहूं हारें कहूं चौक गुल, कहूं नकस कटाव।

जाए न कही इन जुबां, ज्यों चंद्रवा जुगत जड़ाव॥२७॥

इन वनों में कहीं पर वृक्षों की हारें सुशोभित हो रही हैं, तो कहीं चौकों पर खिले हुए फूल दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वृक्षों की डालियों, फलों, फूलों, पत्तियों आदि ने मिलकर रत्नजड़ित सुन्दर चन्द्रवा के समान छत बना दी है, जिसमें कहीं-कहीं पर फूलों और पत्तियों के बेल – बूटेदार रंगबिरंगे चित्र दिखायी पड़ रहे हैं। इनकी अनुपम शोभा का वर्णन इस जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है।



ए देखे ही बनत है, केहेनी में आवत नाहें।

अकल में न आवत, तो क्यों बानी माहें॥२८॥

यह अलौकिक शोभा देखने योग्य है। इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। जब इसकी अनुपम सुन्दरता को बुद्धि ही ग्रहण नहीं कर पा रही है, तो इसे जिह्वा द्वारा कैसे वर्णित किया जा सकता है।

चारों तरफों बन में, कई जिनसें कई जुगत।

नई नई भांत ज्यों चंद्रवा, बन में केती कहूं विगत॥२९॥

वनों में चारों ओर अलग – अलग प्रकार की संरचना दिखायी देती है। चन्द्रवा के रूप में वनों की छत पर नयी-नयी शोभा आयी है, जिसका मैं कितना वर्णन करूँ।

चारों तरफों अर्स के, कई बैठक चौक चबूतर।

जुदे जुदे कई विध के, ए नेक कहूं दिल धर॥३०॥

रंगमहल के चारों ओर बहुत सी बँठकें, चौक, तथा चबूतरे आये हैं। इनकी बनावट अलग-अलग कई प्रकार की है। मैं उनका थोड़ा सा वर्णन करती हूँ, जिससे उन्हें अपने धाम-हृदय में धारण किया जा सके।

सात घाट आगूं अर्स के, ए है बड़ो विस्तार।

नेक कहूं हिंडोले चौकियां, फेर कहूं आगूं अर्स द्वार॥३१॥

रंगमहल के आगे सात घाट आये हैं, जिनका बहुत अधिक विस्तार है। अब मैं वट-पीपल की चौकियों तथा यहाँ पर आये हुए हिण्डोलों के विषय में थोड़ा सा वर्णन करती हूँ। इसके पश्चात् पुनः रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने की शोभा का वर्णन करूँगी।

बट पीपल चारों चौकियां, ऊपर छतें भी चार।

अंबराए बिरिख अनेक बन, निहायत रोसन झलकार॥३२॥

वट-पीपल के १५ वृक्षों की ५ हारों के मध्य ४ चौकियों की १४ हारें आयी हैं। इनकी उपरा-ऊपर ४ भूमिकायें हैं। इसके आसपास (दक्षिण में) अनेक प्रकार के वृक्ष (बड़ोवन) हैं, जो बहुत अधिक ज्योति से पूर्ण हैं और झलकार कर रहे हैं।

चल्या गया चौथी तरफ लों, अतंत खूबी विस्तार।

तले चेहेबच्चे नेहेरें चलें, जुबां केहे न सके सुमार॥३३॥

ये बड़ोवन के वृक्ष कुञ्ज-निकुञ्ज के मध्य से होते हुए पश्चिम दिशा की (चौथी) ओर गये हैं, जिनका अनन्त विस्तार है। बड़ोवन के वृक्षों के नीचे (आस-पास) यहाँ कुञ्ज-निकुञ्ज वन में बहुत सी नहरों और चहबच्चों की

शोभा है, जिसका वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

याही बन के चबूतरे, याही बन की मोहोलात।

ए खूबी इन बन की, इन जुबां कही न जात॥३४॥

कुञ्ज-निकुञ्ज वनों में वृक्षों की डालियों, फलों, फूलों, पत्तियों, एवं बेल-लताओं के ही महल, मन्दिर, सिंहासन, हिण्डोले, चबूतरे आदि बने हुए हैं। इस वन की शोभा का वर्णन इस जिह्वा से हो पाना कदापि सम्भव नहीं है।

एक एक चौकी देखिए, रूहें बैठत बारे हजार।

बीच बीच सिंघासन हक का, ए सोभा अति अपार॥३५॥

वट-पीपल की चौकी के एक-एक बगीचे में चबूतरे पर १२००० सखियाँ एकसाथ बैठ जाती हैं। उनके बीच में

श्री राजश्यामा जी सिंहासन पर विराजमान होते हैं। यह अपार शोभा अत्यन्त मनमोहक है।

ए बन हांस पचास लो, सेत हरे पीले लाल।

ए बन खूबी देख के, मेरी रूह होत खुसाल॥३६॥

वट-पीपल के वृक्ष रंगमहल के दक्षिण में ५० हांस के सामने आये हैं, जो श्वेत, हरे, पीले, लाल आदि अनेक रंगों के हैं। इस वन की शोभा को देखकर मेरी आत्मा को बहुत आनन्द आता है।

जित बन जैसा चाहिए, तहां तैसा ही तिन ठौर।

नकस बेल फूल बन के, एक जरा न घट बढ़ और॥३७॥

वन की जहाँ पर जैसी शोभा चाहिये, वहाँ वैसी ही शोभा दिखायी देती है। इस वन में बेलों तथा फूलों की

अद्भुत चित्रकारी है। रञ्जमात्र भी शोभा में कहीं कमी या अधिकता नहीं है।

एह बन देखे पीछे, उपज्यो सुख अनंत।

ए ठौर रूह से न छूटहीं, जानों कहां देखूं मैं अंत॥३८॥

वट-पीपल की चौकी की शोभा को देखने पर अनन्त सुख मिलता है। आत्मा के हृदय से इस स्थान की शोभा कभी भी अलग नहीं होती। ऐसा लगता है कि इससे अच्छी शोभा भला कहाँ देखने को मिलेगी।

तले जिमी अति रोसनी, और रोसन चारों छात।

चारों चौक देखे आगूं चल के, ए सुख रूहें जाने बात॥३९॥

वट-पीपल की चौकी की धरती अत्यधिक ज्योति से जगमगा रही है। यही स्थिति उसकी चारों भूमिकाओं की

भी है। मैंने अपनी आत्मिक दृष्टि को आगे करके चार चौकों की चौदह हारों की रमणीयता को भी देखा। अखण्ड सुख की मनोहारी बातों को तो मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, संसारी जीव नहीं जानते।

**तले बन निकुन्ज जो, तिन पर ए मोहोलात।**

**मिल गए मोहोल अर्स के, रुहें दौड़त आवत जात॥४०॥**

वट-पीपल की चौकी की चार भूमिका एवं पाँचवी चाँदनी है। इनके दक्षिण में कुञ्ज-निकुञ्ज वन है, जिसकी दो भूमिका और तीसरी चाँदनी है। कुञ्ज-निकुञ्ज वनों के मध्य से बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें गयी हैं, जिनकी पाँच भूमिका और छठी चाँदनी है। इनकी डालियाँ वट-पीपल के वृक्षों से मिली हुई हैं तथा वट-पीपल के वृक्षों की डालियाँ रंगमहल के झरोखों से मिली हुई हैं, जिनमें से

निकल कर सखियाँ बड़ोवन तक दौड़ती हुई जाती हैं।

**भावार्थ-** वट-पीपल के वृक्षों की डालियों, पत्तियों, फलों, तथा फूलों ने मिलकर सुन्दर चन्द्रवा के समान आकृति धारण कर ली है। इस प्रकार वट-पीपल की चौकी की चार भूमिका एवं पाँचवी चाँदनी एक महल के समान सुशोभित होती है। बड़ोवन के वृक्षों की पाँच भूमिका एवं छठी चाँदनी की शोभा भी महलों के समान दिखायी देती है।

ज्यों ऊपर हिंडोले अर्स के, भोम सातमी आठमी जे।

जब इन बन हिंडोलों बैठिए, देखिए बड़ी खुसाली ए॥४१॥

जिस प्रकार रंगमहल की सातवीं तथा आठवीं भूमिका में हिण्डोले आये हैं, वैसे ही इन वनों (वट-पीपल की चौकी) में भी आये हैं, जिनमें बैठने पर बहुत आनन्द



आता है।

जैसे हिंडोले अर्स के, ऐसे ही हिंडोले बन।

रुहें बारे हजार बैठत, ए समया अति रोसन॥४२॥

रंगमहल के हिण्डोले जैसी शोभा लिये हुए हैं, वैसी ही शोभा से युक्त वट-पीपल की चौकी के हिण्डोले भी हैं। जब युगल स्वरूप के साथ १२००० सखियाँ एकसाथ बैठकर झूला झूलती हैं, तो वह दृश्य बहुत मनोहारी होता है।

इन बन में जो हिंडोले, छप्पर-खटों की जिनस।

सांकरें जंजीरां इनइनें, जानों सबथें एह सरस॥४३॥

वट-पीपल की चौकी में जो हिण्डोले आये हैं, वे रंगमहल में आये षटछप्पर के हिण्डोलों जैसे ही हैं। इनमें

अति सुन्दर साँकले, जंजीरें, और घुँघरू लगे हुए हैं,  
जिनकी रमणीयता एक से बढ़कर एक है।

**इत घाट नारंगी पोहोंचिया, दोऊ तरफों इत।**

**बट घाट निकुन्ज ले, इन हद से आगूं चलत॥४४॥**

वट-पीपल की चौकी के पूर्व में, इसकी चौड़ाई में, यमुना जी के दोनों ओर नारंगी वन है। नारंगी वन वट-पीपल की चौकी दोनों के दक्षिण में कुञ्ज-निकुञ्ज वन है, जिसके बीच-बीच में से होकर वट घाट से बड़ोवन के वृक्षों की पाँच हारें वट रूप होकर निकली हैं। ये कुञ्ज-निकुञ्ज वन और बड़ोवन इसी प्रकार वट-पीपल की चौकी की सीमा से आगे (पश्चिम तरफ) निकले हैं।

**भावार्थ-** वट-पीपल की चौकी केवल परमधाम के रंगमहल के दक्षिण में आयी है, जबकि कुञ्ज-निकुञ्ज वन

वट घाट से लगता हुआ यमुना जी के दोनों ओर आया हुआ है। इसी प्रकार नारंगी वन यमुना जी के दोनों किनारों पर आया हुआ है।

**तरफ बाईं सोभा ताल की, बीच चांदनी चारों घाट।**

**जल बन मोहोल पाल की, अति सोभित ए ठाट॥४५॥**

कुञ्ज-निकुञ्ज वन की बायीं ओर दक्षिण दिशा में हौज़ कौसर ताल की शोभा है। इसके चारों घाटों तथा टापू महल की चाँदनी अत्यधिक सुन्दरता लिये हुए है। हौज़ कौसर ताल का जल, इसके पाल के ऊपर आये हुए वृक्षों, तथा पाल के महलों की अत्यधिक शोभा दृष्टिगोचर हो रही है।

कई मोहोल मानिक बन पहाड़ के, कई नेहरें मोहोल बन।

मोहोल पहाड़ कई सागरों, फेर आए दूब बन अन॥४६॥

माणिक पहाड़ के कई प्रकार के महलों और चारों तरफ के वनों, वन की नहरों में वृक्षों के बने हुए महलों, सागरों के पास पहाड़ के समान ऊँची बड़ी रांग की हवेलियों को देखती हुई मैं पुनः रंगमहल के पश्चिम में आये हुए अन्न वन और दूब दुलीचे में आ गयी।

अतंत सोभा इन बन की, ए जो आए मिल्या फूलबाग।

फूलबाग हिंडोले ए बन, तूं देख खूबी कछू जाग॥४७॥

इस अन्न वन की शोभा बहुत अधिक है। यह फूलबाग से आकर मिल गया है। फूलबाग से लगकर अन्न वन में से गुजरने वाले बड़ोवन के वृक्षों की पाँच हारों में लगे हुए हिण्डोले बहुत सुन्दर हैं। हे मेरी आत्मा! तू जाग्रत होकर

इनकी कुछ शोभा को तो देख।

चौकी हांस पचास लो, फूलबाग हद जित।

और पचास हांस फूलबाग, बड़े चेहेबच्चे पोहोंचत॥४८॥

वट-पीपल की चौकी ५० हांस लम्बी है तथा फूलबाग की सीमा से लगी हुई है। फूलबाग भी ५० हांस की लम्बाई में रंगमहल के पश्चिम में आया है। इन दोनों के बीच में १६ हांस का चहबच्चा शोभायमान हो रहा है।

**भावार्थ-** जिस प्रकार रंगमहल के चारों कोनों में १६ हांस का चहबच्चा आया है, उसी प्रकार फूलबाग के चारों कोनों में भी आया है।

ए बड़ा चेहेबच्चा बाहेर, एक हांस को लगत।

बड़ी कारंज पानी पूरन, कई नेहेरें चलत॥४९॥

१६ हाँस का यह बड़ा चहबच्चा रंगमहल के चबूतरे की एक हाँस (३० मन्दिर) से लगकर चबूतरे की बाहरी ओर आया है। इस चहबच्चे में हमेशा जल भरा रहता है और यहाँ से बड़ी-बड़ी धाराओं में अनेक नहरों के रूप में जल प्रवाहित होता है।

**ए फूलबाग चौड़ा चबूतरा, निपट बड़ा निहायत।**

**फूलबाग बगीचे चेहेबच्चे, बिस्तार बड़ो है इत॥५०॥**

फूलबाग में नहरों के चबूतरे बहुत अधिक लम्बे-चौड़े आये हैं। इस फूलबाग में छोटे-बड़े बगीचों तथा चहबच्चों का बहुत अधिक विस्तार है।

**भावार्थ-** फूलबाग में नहरों का एक चबूतरा पौने तीन मन्दिर का चौड़ा है। इसके मध्य में पौन मन्दिर की जगह में नहरें आयी हैं। इसके दायें-बायें की एक-एक मन्दिर

की जगह (पाल) के मध्य में फुलवारी और दायें-बायें रौंसें आयी हैं।

फूलबाग के बगीचे भी बड़े-बड़े आये हैं। कुल १०० बड़े बगीचे हैं, जिनमें से प्रत्येक में १६-१६ छोटे बगीचे हैं। नहरें और चहबच्चे भी बहुत अधिक हैं।

**मोहोल झरोखे अर्स के, फूलबाग के ऊपर।**

**जोत झरोखे अर्स के, ए नूर कहूं क्यों कर॥५१॥**

रंगमहल की पश्चिम दिशा के बाहरी हार मन्दिरों (१५००) के सामने फूलबाग है। इन मन्दिरों के जगमगाते झरोखों के सामने नीचे की ओर फूलबाग दिखायी देता है। इन झलझलाते झरोखों की अलौकिक शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

जहां लग हद फूलबाग की, ए जिमी जोत अपार।

ए जोत रोसनी जुबां तो कहे, जो आवे माहें सुमार॥५२॥

जहाँ तक फूलबाग की सीमा आयी है, वहाँ तक की धरती अनन्त ज्योति से जगमगा रही है। यदि इस नूरी ज्योति की कोई सीमा हो, तो उसका वर्णन भी सम्भव हो सके, अर्थात् यह ज्योति इतनी अधिक है कि इसका वर्णन हो पाना सम्भव ही नहीं है।

**भावार्थ-** परमधाम की सम्पूर्ण धरती ही ज्योतिर्मयी है। यहाँ फूलबाग की धरती को ज्योति से जगमगाते हुए कहने का आशय फूलबाग की अनन्त शोभा को दर्शाना है।

इत दीवार तले दस खिड़कियां, जित रूहें आवें जाएं।

ए खूबी आवे तो नजरों, जो विचार कीजे रूह माहें॥५३॥



फूलबाग के नीचे धाम चबूतरे की दीवार में १० दरवाजे (छोटे दरवाजे, खिड़कियाँ) बने हैं, जहाँ पर रंगमहल की बाहरी हार मन्दिरों से १० सीढ़ियाँ उतरी हैं। यहाँ से सखियाँ नूरबाग में आती-जाती हैं। यदि हम अपनी आत्मा के धाम-हृदय में इसका विचार करते हैं, तो यह शोभा दिखायी पड़ती है।

**भावार्थ-** नैऋत्य कोने के १६ हाँस के चहबच्चे से उत्तर दिशा में ७४वें तथा ७५वें मन्दिरों की सन्धि की दीवार सीढ़ियों के लिये चौड़ी है। इस दीवार के दरवाजे से धाम चबूतरे के अन्दर होते हुए पहली सीढ़ी उतरी है। इसी प्रकार १४७-१४७ मन्दिर की दूरी पर १० सीढ़ियाँ उतरी हैं। जीव के हृदय में विचार बुद्धि से होता है, जबकि आत्मा के हृदय में विचार चितवनि की गहराइयों में होता है। इसमें बुद्धि से कुछ भी सोचा नहीं जाता,

बल्कि आत्मा की इच्छा के अनुरूप स्वयं धाम धनी ज्ञान की ज्योति प्रकाशित करते हैं।

**इन आगूं लाल चबूतरा, ले चल्या अर्स दीवार।**

**खूबी देख बन छाया, ए बैठक बड़ी विसाल॥५४॥**

फूलबाग के आगे रंगमहल की उत्तर दिशा में धाम चबूतरे से लगकर ४० हाँस में (वायव्य कोने से पूर्व की ओर) लाल चबूतरा आया है, जो एक हाँस अर्थात् ३० मन्दिर का चौड़ा है। लाल चबूतरे से लगती हुई ४१ वृक्षों की जो पहली हार है, उसकी डालियाँ रंगमहल की दसवीं चाँदनी से मिली हुई हैं। इन वृक्षों से चबूतरे पर अति शीतल छाया हो रही है। ४० हाँस में प्रत्येक हाँस में सिंहासन सहित कुर्सियाँ हैं। इस प्रकार लाल चबूतरे पर युगल स्वरूप सहित सुन्दरसाथ के लिये विशाल (४०)

बैठकें हैं।

ए जो भोम चबूतरा, बन आगूं बिराजत।

इत केतेक जिमी में जानवर, रुहें हक हादी खेलावत॥५५॥

इस एक भूमिका ऊँचे लाल चबूतरे के सामने जमीन पर बड़ोवन के ४१ वृक्षों की ४१ हारें आयी हैं, जिनके मध्य ४० अखाड़ों की ४० हारें सुशोभित हो रही हैं। जब श्री राजश्यामा जी और सखियाँ लाल चबूतरे पर आकर सिंहासन तथा कुर्सियों पर विराजमान हो जाते हैं, तब सामने इन अखाड़ों में अनेक जातियों तथा अनेक रंगों के सुन्दर-सुन्दर पशु-पक्षी अपने-अपने अखाड़ों में अनेक कलाओं से नाच-गाकर तथा खेल दिखाकर उन्हें रिझाते हैं।

ऊपर लाल चबूतरे, सब दरवाजे मेहेराब।

एही झरोखे इन भोम के, खूबी आवे न माहें हिसाब॥५६॥

लाल चबूतरे से लगते हुए जो बाहरी हार के १२०० मन्दिर हैं, उनकी बाहरी दीवारों में झरोखों की जगह भी दरवाजे हैं। १२०० मन्दिर लम्बा तथा ३० मन्दिर चौड़ा जो लाल चबूतरा है, उसकी किनार पर सीढ़ियों (चाँदों) की जगह छोड़कर बाकी जगह में कठेड़ा है। यहाँ पर युगल स्वरूप के साथ बैठकर सखियाँ पशु-पक्षियों के खेल देखा करती हैं, इसलिये इसे ही झरोखा कहा गया है। इनकी सुन्दरता की कोई सीमा नहीं है।

बड़ी बैठक इन चबूतरे, अति खूबी तिन पर।

इत खूबी खुसाली होत है, जब खेलें बड़े जानवर॥५७॥

लाल चबूतरे के ऊपर युगल स्वरूप के साथ सखियों

की जो विशेष बैठक होती है, उसकी शोभा अनुपम होती है। यहाँ अखाड़ों में जब बड़े-बड़े पशु-पक्षी तरह-तरह के खेल करते हैं, तो उस समय का दृश्य बहुत अधिक आनन्ददायी होता है।

**एही झरोखे एही चबूतरा, दोऊ तरफ चेहेबच्चे दोए।**

**एक पीछल जो छोड़िया, आगूं दूजी भोम का सोए॥५८॥**

यह चबूतरा झरोखे के रूप में है (मन्दिरों में झरोखों की आवश्यकता नहीं है)। लाल चबूतरे के दोनों ओर (पूर्व तथा पश्चिम में) दो चहबच्चे हैं। पीछे पश्चिम में एक चहबच्चा १६ हाँस का है तथा पूर्व में (आगे) खड़ोकली है, जो रंगमहल की दूसरी भूमिका में खुलती है।

**विशेष-** भले ही खड़ोकली ताड़वन की जमीन में है, किन्तु रंगमहल से जुड़ी होने के कारण इसकी गणना

रंगमहल में ही की जाती है।

जो बन आया चेहेबच्चे, सोभा अति रोसन।

छाया करी जल ऊपर, तीनों तरफों तिन॥५९॥

खड़ोकली के आसपास ताड़वन के वृक्ष आये हैं। उन वृक्षों ने तीन तरफ (पूर्व, उत्तर, एवं पश्चिम) से अपनी डालियाँ फैलाकर खड़ोकली के जल चबूतरे तक अपनी छाया प्रदान की है, जिसकी अति सुन्दर शोभा झलकार कर रही है।

ऊपर झरोखे मोहोल के, जल पर बने जो आए।

इन चेहेबच्चे की सिफत, या मुख कही न जाए॥६०॥

खड़ोकली की चौथी दिशा में रंगमहल के ऊपर की भूमिकाओं के झरोखे (३३ हाथ चौड़े छज्जे एवं प्रत्येक

मन्दिरों के झरोखे) जल के ऊपर सुशोभित हो रहे हैं। इस खड़ोकली की शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

**भावार्थ-** यद्यपि खड़ोकली के जल और झरोखों में बहुत दूरी है, किन्तु जल के नीचे भाग में होने के कारण झरोखों को जल के ऊपर (दीवारों में स्थित) कहा गया है।

कई बन हैं इत ताड़ के, कई खजूरी नारियल।

और नाम केते लेऊं, बट पीपल सर ऊमर॥६१॥

इस ताड़वन में ताड़, खजूर, तथा नारियल के बहुत से वृक्ष हैं। मैं कितने वृक्षों के नाम लेकर बताऊँ। वट, पीपल, खस, तथा गूलर भी बहुतायत से शोभायमान हो रहे हैं।

इत केतेक बन में हिंडोले, ए जो रूहें लेत इत सुख।

लिबोई घाट इत आए मिल्या, सो सोभा क्यों कहूं या मुख॥६२॥

इस ताड़वन में कई प्रकार के (१ भूमिका एवं १० भूमिका के ऊँचे) अधिक संख्यक हिण्डोले आये हैं, जिनमें सखियाँ झूला झूलने का आनन्द लिया करती हैं। ताड़वन से लगकर पूर्व में नींबू (लिबोई) का वन है, जिसकी अपार शोभा का वर्णन मैं इस मुख से कैसे करूँ।

हिंडोले इन बन के, ए बन बड़ा विस्तार।

इन आगूं घाट केल का, और बड़ा बन तिन पार॥६३॥

इस ताड़वन का विस्तार बहुत है। इसमें हिण्डोले भी बहुत आये हैं। ताड़वन की उत्तर दिशा में केलवन है, जिसमें मध्य से होकर बड़ोवन के वृक्षों की पाँच हारें यमुना जी के पाल के ऊपर गयी हैं।



अब जो बन है केल का, सो आगूं पोहोंच्या जाए।

तिन परे बन पहाड़ का, सब दोरी बंध सोभाए॥६४॥

यह केलवन लाल चबूतरे के सामने स्थित बड़ोवन से लगकर पूर्व में यमुना जी के किनारे पाल तक (लिबोई वन के उत्तर से होते हुए) आया है। इसके आगे उत्तर दिशा में मधुवन तथा महावन के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष हैं, जो पुखराज पर्वत को चारों ओर से घेरकर आये हैं। ये सभी वृक्ष पंक्तिबद्ध रूप में सुशोभित हो रहे हैं।

बन बड़ा पुखराज का, कई मोहोल बड़े अतंत।

तिन परे बड़े बन की, जुबां कहा करसी सिफत॥६५॥

पुखराज पहाड़ के आसपास मधुवन और महावन के बहुत ऊँचे-ऊँचे वृक्ष आये हैं। इसी प्रकार, पुखराज पर्वत में भी बहुत ऊँचे-ऊँचे अनन्त महल हैं। महावन

एवं मधुवन के आगे (बाहरी ओर) बड़ोवन के वृक्ष चारों ओर घेरकर आये हैं, जिनकी शोभा का वर्णन करने में मेरी यह जिह्वा पूर्णतया असमर्थ है।

जाए मिल्या बन नूर के, नूर परे कहूं क्यों कर।

जित ए न्यामत देखिए, सो सब सुमार बिगर॥६६॥

यह बड़ोवन अक्षरधाम के पूर्व तक गया है। यमुना जी के उस पार अक्षरधाम के आस-पास वनों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। जहाँ भी दृष्टि जाती है, वहीं पर अपार शोभा दिखायी देती है।

अब कहूं आगूं अर्स के, और जोए किनार।

बन मोहोल नूर मकान, सोहे जोए के पार॥६७॥

अब रंगमहल के आगे एवं यमुना जी के किनारे की

शोभा का वर्णन करती हूँ। यमुना जी के उस पार भी वनों, महलों (देहुरियाँ, पाट घाट इत्यादि), एवं अक्षर धाम (रंगमहल जैसे भवन) की अनुपम शोभा आयी है।

दोए पुल जोए ऊपर, ए अति खूबी मोहोलात।

पांच पांच भोमें मोहोल की, ऊपर छठी चांदनी छत॥६८॥

यमुना जी के ऊपर दो पुल (केल तथा वट) आये हैं। इनमें आये हुए महलों की अति सुन्दर शोभा दृष्टिगोचर हो रही है। ये दोनों पुल-महल ५-५ भूमिकाओं (मन्जिलों) के हैं और इनके ऊपर छठवीं चाँदनी (छत) आयी है।

ए जोत धरत हैं झरोखे, करें साम सामी जंग।

जोत कही न जाए एक तिनका, ए तो मोहोल अर्स के नंग॥६९॥

दोनों पुल-महलों के झरोखे (किनार के थम्भ कठेड़े)

बहुत अधिक ज्योतिर्मयी हैं तथा आमने-सामने हैं। इनसे उठने वाली किरणें आपस में टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती हैं। परमधाम के एक तिनके की भी ज्योति का वर्णन नहीं हो सकता। ये दोनों पुल (महल) तो परमधाम के नूरी जवाहरातों के बने हुए हैं।

**तले चलता पानी जोए का, दस घड़नाले जल।**

**नेहेरें चली जात दोरी बंध, ए जल अति उज्जल॥७०॥**

इन पुलों के नीचे से यमुना जी का जल दस घड़नालों से होकर गुजरता है। केल पुल के घड़नालों से निकलने वाला जल १० नहरों के रूप में एक सीध (पंक्तिबद्ध रूप) में बहता है। यह जल दूध से भी अधिक उजला है।

चार चौकी बन माफक, छात पांचमी ऊपर किनार।

ए जुगत बनी जोए मोहोल की, सोभित अति अपार॥७१॥

यमुना जी के पाल के ऊपर बड़ोवन के वृक्षों की जो ५ हारें आयी हैं, उनकी ५ हारों के मध्य चार चौकियों की १० हारें बनती हैं। इनकी पाँचवी भूमिका के ऊपर (छत) के किनारे दोनों पुलों की छत से लगते हैं। इस प्रकार दोनों पुल-महलों की यह बनावट अत्यधिक शोभा को धारण किये हुए है।

जोए ऊपर बन झरोखे, सो निपट सोभा है ए।

फल फूल पात जल ऊपर, ए बने तोरन नंग जे॥७२॥

दोनों पुलों के बीच में यमुना जी के दोनों तरफ सातों घाटों में बड़ोवन के जो वृक्ष आये हैं, उनकी पाँचों भूमिकाओं की डालियाँ अति सुन्दर छज्जों (झरोखों) के

रूप में यमुना जी के जल चबूतरे तक छायी हुई हैं। इनकी अपरम्पार शोभा हो रही है। इन वृक्षों की डालियों में लगे हुए फलों, फूलों, तथा पत्तियों ने मिलकर जल के ऊपर ही जवाहरातों के बने हुए तोरणद्वार (बन्दनवार) जैसी शोभा धारण कर रखी है।

**साम सामी दोऊ किनारे, तरफ दोऊ बराबर।**

**दो बन की दो जवेर की, मोहोल चारों अति सुन्दर॥७३॥**

इस प्रकार यमुना जी के दोनों किनारे (पूर्व-पश्चिम के) आमने-सामने एकसमान रूप से सुशोभित हो रहे हैं। यमुना जी के पूर्व-पश्चिम में वनों के महल (बड़ोवन की ५ भूमिकाओं के) तथा उत्तर-दक्षिण में विद्यमान दोनों पुल-महल, चारों अनुपम शोभा से युक्त हैं।

इन पुल दोऊ के बीच में, बीच बने सातों घाट।

तीन बाएं तीन दाहिने, बीच बनी चांदनी पाट॥७४॥

इन दोनों पुलों के बीच में श्री यमुना जी के दोनों ओर सात-सात घाट हैं। तीन-तीन घाट दायें-बायें हैं तथा मध्य में अमृत वन के सामने पाट-घाट आया है, जिसके १२ थम्भों पर गुम्मत से युक्त सुन्दर चाँदनी सुशोभित हो रही है।

ए तुम सुनियो बेवरा, सात घाटों का इत।

ए नेक नेक केहेत हों, सोभा अति अर्स सिफत॥७५॥

हे साथ जी! अब आप यहाँ सातों घाटों का संक्षिप्त विवरण सुनिये। वैसे तो परमधाम की शोभा अनन्त है, परन्तु फिर भी मैं इन सातों घाटों की थोड़ी-थोड़ी शोभा का वर्णन कर रही हूँ।

बनके मोहोल से चलिया, जानों तले ऊपर एक छात।

छात दूजी घर पंखियों, बन ऊपर बन मोहोलात॥७६॥

पाल पर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों (महलों) के सामने जो सात वन आये हैं, उनकी दो भूमिका तथा तीसरी चाँदनी है। ये दो भूमिकायें इस प्रकार हैं कि तले की भूमिका और ऊपर की भूमिका बिल्कुल एक जैसी है। समान रूप से तथा समान ऊँचाई से डालियाँ निकलकर समान दूरी तक फैली हैं। इन्होंने रंग-बिरंगी चित्रकारी से युक्त सुन्दर चन्द्रवा के समान छत का निर्माण कर दिया है। वनों की दूसरी भूमिका की छत में (डालियों, पत्तों, तथा फूलों) में पक्षियों के घर हैं। इस प्रकार यहाँ वृक्षों के ऊपर वृक्ष की शोभा आयी है, जो महलों की भांति दिखायी देती है।



ए जो पसु पंखी नजीकी, हक हादी खेलौने अतंत।

बोल खेल सोभा सुंदर, सो इन मोहोलों बसत॥७७॥

रंगमहल के पास इन सातों वनों में रहने वाले अनन्त पशु-पक्षी श्री राजश्यामा जी के खिलौने हैं। उनका बोलना-खेलना तथा शोभा-सुन्दरता अत्यन्त मनमोहक है। ये पशु-पक्षी इन वन महलों में रहते हैं।

रात दिन गूँजे अर्स में, हक की करें जिकर।

क्यों कहूं इनों चित्रामन, सोभा अति सुन्दर॥७८॥

ये पशु-पक्षी दिन-रात धाम धनी की महिमा का गायन करते रहते हैं, जिसकी गूँज हमेशा निजधाम में सुनायी देती है। इनके शरीर के ऊपर बने हुए अति सुन्दर चित्रों के विषय में क्या कहूँ। यह शोभा शब्दातीत है।

बानी सुनें तें सुख उपजे, और देखें सुख अपार।

या पसु या जानवर, सोभा न आवे माहें सुमार॥७९॥

इन पशु-पक्षियों की अति मधुर वाणी को सुनने तथा इन्हें देखने से अपार सुख होता है। इनकी शोभा को किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

तीन घाट आगूं अर्स के, जांबू अमृत अनार।

सो अनार पोहोंच्या अर्स को, दो दोऊ भर किनार॥८०॥

सात घाटों में से तीन घाट – जम्बू, अमृत, और अनार घाट – रंगमहल के ठीक सामने आये हुए हैं। केल और लिबोई के बाद अनार का जो वन है, उसके दोनों पश्चिमी किनारे रंगमहल से लगते हुए हैं। इसी प्रकार अन्य दोनों वनों – अमृत तथा जाम्बू – की भी यही स्थिति है।

घाट तीन हांस पचास लों, बीच बड़े दरबार।

दो घाट लगे दोऊ हिंडोलों, दो घाट हिंडोलों पार॥८१॥

ये तीनों (अमृत, जम्बू, तथा अनार) घाट रंगमहल के सामने पचास हाँस में आये हैं। नारंगी का घाट हिण्डोलों से युक्त वट-पीपल की चौकी से लगा हुआ है तथा नींबू का घाट हिण्डोलों से युक्त ताड़वन के हिण्डोलों से लगा हुआ है। शेष दो (वट और केल) घाट, इन दोनों (वट पीपल की चौकी तथा ताड़वन) से आगे आये हैं।

ए जो पाट घाट अमृत का, सो आया आगूं चबूतर।

चौक चौड़ा हिस्से तीसरे, इत दीदार होत जानवर॥८२॥

अमृतवन, जिसके सामने यमुना जी पर पाट घाट आया है, सातों वनों के मध्य में, रंगमहल के मुख्य द्वार और दायें-बायें के चबूतरों के ठीक सामने आया है। यह

अमृतवन ५०० मन्दिर के लगभग तीसरे हिस्से के बराबर लम्बा-चौड़ा (१६६ मन्दिर) चाँदनी चौक रंगमहल के मुख्य द्वार के ठीक सामने आया है। यहाँ से सभी पशु-पक्षी प्रातःकाल श्री राजश्यामा जी का दीदार करते हैं।

**ता बीच चौड़े दो चबूतरे, ऊपर हरा लाल दरखत।**

**छाया बराबर चबूतरे, ए निपट सोभा है इत॥८३॥**

इस चाँदनी चौक में काफी लम्बे-चौड़े (३३ मन्दिर के) दो चबूतरे हैं। इनमें से उत्तर दिशा के चबूतरे में लाल रंग का वृक्ष है तथा दक्षिण दिशा के चबूतरे में हरे रंग का वृक्ष है। इन वृक्षों की डालियाँ इस प्रकार फैली हैं कि इनकी छाया सम्पूर्ण चबूतरे पर समान रूप से होती है। इस प्रकार यहाँ की शोभा अनन्त है।

लंबा चौड़ा चारों हांसों, बराबर दोरी बंध।

अनेक रंग बन इतका, सोभित अनेक सनंध॥८४॥

इस प्रकार, चाँदनी चौक लम्बा-चौड़ा समचौरस है। यहाँ अमृत वन में अनेक रंगों के वृक्ष पंक्तिबद्ध रूप से सुशोभित हो रहे हैं।

**भावार्थ-** चाँदनी चौक चौकोर है। इसके प्रत्येक भाग को हाँस कहा गया है। इस प्रकार चाँदनी चौक को चार हाँसों वाला कहा गया है।

बन गिरदवाए अर्स के, देख आए आगूं द्वार।

केहे ना सकों हिस्सा कोटमा, अर्स बन कहा अपार॥८५॥

रंगमहल के चारों ओर आये हुए वनों की शोभा को देखती हुई मैं मुख्य द्वार पर आयी। रंगमहल के सामने इन वनों की शोभा अनन्त है। मैं उस शोभा के करोड़वें

भाग का भी वर्णन नहीं कर सकती।

बन में फिर के देखिया, अर्स अजीम के गिरदवाए।

एकल छाया बन की, तले जिमी जोत कही न जाए॥८६॥

मैंने रंगमहल के चारों ओर घूम-घूमकर वनों की अलौकिक शोभा को देखा। वनों की डालियों, पत्तियों, फलों, तथा फूलों से बनी हुई छत (चाँदनी) में कहीं भी छिद्र नहीं है। इस छाया के नीचे स्थित धरती में इतनी नूरी ज्योति जगमगा रही है कि उसका वर्णन ही नहीं हो सकता।

बन छाया दीवाल लग, झूमत झरोखों पर।

ठाढ़े होए के देखिए, आवत चांदनी लो नजर॥८७॥

रंगमहल के पास के वृक्षों की डालियाँ रंगमहल के

झरोखों से आकर लगी हैं, जिससे परिक्रमा की रौंस पर मनोहर छाया हो रही है। जब हम खड़े होकर देखते हैं, तो ऊपर चाँदनी (दसवीं आकाशी) तक का सम्पूर्ण दृश्य नजर आता है।

**फिरती गिरदवाए चाँदनी, नवों भोम झरोखे।**

**गिरदवाए विचारी गिनती, छे हजार हर हार के॥८८॥**

गुम्मत, कलश, तथा काँगरियों की शोभा से युक्त रंगमहल की चाँदनी की किनार है। रंगमहल के चारों ओर नवों भूमिकाओं के झरोखे दिखायी देते हैं। प्रत्येक भूमिका में गिनने पर बाहरी हार मन्दिरों में ६००० झरोखे हैं।

**भावार्थ—** यद्यपि ६००० की गिनती सामान्य रूप से कही जाती है, किन्तु कहीं-कहीं थोड़ी बहुत कमी या

अधिकता हो जाती है, जैसे- ६००० सुखपाल कहे जाते हैं, किन्तु होते हैं ६००१ सुखपाल। १२००० हिण्डोलें सातवीं भूमिका में तथा १८००० हिण्डोले आठवीं भूमिका में कहे जाते हैं, किन्तु यहाँ भी कुछ कम हो जाते हैं, क्योंकि २८ थम्भ के चौक की वजह से थम्भों की हार में भी कुछ थम्भ कम हो जाते हैं। दोनों हार मन्दिरों में भी ६००० - ६००० मन्दिर कह दिया जाता है, किन्तु बाहरी हार में ५९९९ मन्दिर होते हैं तथा दूसरी हार में ५९८८ मन्दिर होते हैं।

नवमी भूमिका में बाहरी हार मन्दिरों की जगह में २०१ छज्जे आये हैं। इन्हें ही झरोखा भी कहा जाता है।

एही आतम को पूछ के, नवों भोम करो विचार।

ले भोम से लग चांदनी, ए भी हारें छे हजार॥८९॥



हे साथ जी! अपनी आत्मा से पूछकर नवों भूमिकाओं की शोभा का विचार कीजिए। प्रथम भूमिका से दसवीं आकाशी तक बाहरी हार मन्दिरों में लगभग ६००० मन्दिर आये हैं।

**हर हार चढ़ती नव नव, छे हजार फिरती हर हार।**

**जमा भए नव भोम के, अर्ध लाख चार हजार॥९०॥**

एक हार के ६००० मन्दिरों में ६००० झरोखे आते हैं। प्रत्येक झरोखे के ऊपर नवों भूमिकाओं में झरोखे शोभायमान हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर गणना करने पर ५४००० झरोखे होते हैं।

**द्रष्टव्य—** नवीं भूमिका के ६००० मन्दिरों के चौड़े छज्जों को ६००० झरोखों के रूप में गिना गया है। यह अगली चौपाई से स्पष्ट हो जाता है।

झरोखे कई विध के, गिनती होए क्यों कर।

कहूं जुदे जुदे कहूं सामिल, ए लीजो दिल धर॥९१॥

परमधाम में झरोखें कई प्रकार के हैं। भला इनकी गिनती कैसे हो सकती है। हे साथ जी! आप इस बात को अपने दिल में बसा लीजिए कि ये कहीं अलग-अलग हैं, तो कहीं पर मिले हुए हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "सामिल" शब्द से तात्पर्य नवीं भूमिका के छज्जों से है, जो आपस में मिले हुए हैं। दूसरी भूमिका से आठवीं भूमिका तक दस मन्दिर के हाँस में जो पड़सालें आयी हैं, उन्हें भी झरोखे कहा जाता है।

ए जो एक एक लीजे दिल में, तो हर हांसें तीस तीस।

कहूं एक झरोखा तीस का, कहूं दस कहूं बीस॥९२॥

यदि प्रत्येक तरह के झरोखों का अपने दिल में विचार करें, तो हर हाँस में ३०-३० झरोखे बाहरी हार मन्दिरों के हैं। दरवाजे के हाँस में तीसरी भूमिका से दसवीं चाँदनी तक १० मन्दिर का चौड़ा झरोखा (पड़साल, छज्जा) है। नवमी भूमिका में २०१ छज्जे हैं, जिनमें से १९८ छज्जे (झरोखे) ३०-३० हाँस के लम्बे हैं। दरवाजे के हाँस का छज्जा १० मन्दिर का तथा इसके दायें-बायें का छज्जा २५-२५ मन्दिर का लम्बा है। रंगमहल की उत्तर दिशा में खड़ोकली के पूर्व में २० मन्दिर का लम्बा और ३३ हाथ का चौड़ा छज्जा आया है।

**गिरदवाए कठेड़ा चांदनी, क्यों कहूं खूबी जुबांन।**

**अर्स एकै जवेर का, एकै विध रंग रस जान॥९३॥**

चाँदनी की किनार पर चारों ओर घेरकर कठेड़ा आया

है, जिसकी शोभा को मैं अपनी इस जिह्वा से कैसे व्यक्त करूँ। सम्पूर्ण रंगमहल एक ही लाल रंग के जवाहरात का बना हुआ दिखायी देता है, जिसमें प्रेम और आनन्द का रस एकदिली (वहदत) के सांचे में ओत-प्रोत हो रहा है।

कई विध की इत बैठकें, जुदे जुदे कई ठौर।

चारों तरफों अर्स के, देखी एक पे एक और॥९४॥

रंगमहल के अन्दर अलग-अलग स्थानों पर अनेक प्रकार की शोभा वाली बैठकें हैं। मैंने रंगमहल के अन्दर चारों ओर एक से एक अच्छी शोभा देखी है।

हर खांचों साठ गुमटियां, सोभित फिरती हार।

ए झरोखे कंगूरे, बैठक बारे हजार॥९५॥

रंगमहल की चाँदनी की किनार पर बाहरी हार मन्दिरों

की जगह में ६००० दहलाने हैं। प्रत्येक दहलान के ऊपर २-२ गुमटियाँ हैं। इस प्रकार एक हाँस में ३० दहलानों की छत पर ६०-६० गुमटियाँ हैं। दहलानों की चाँदनी की बाहरी व भीतरी किनार पर कँगूरों तथा काँगरियों की अद्भुत शोभा दिखायी देती है। चाँदनी की किनार पर एक मन्दिर का चौड़ा छज्जा चारों तरफ घेरकर आया है, जिसकी किनार पर कठेड़ा लगा हुआ है। इसे ही झरोखा कहा गया है। यहाँ पर श्री राजश्यामा जी और १२००० सखियाँ बैठकर चारों ओर की शोभा निहारने (देखने) का आनन्द लेते हैं।

**दो सौ खांचों ऊपर, सोभें नगीने सौ दोए।**

**बुजरक बीच गुमटियां, खूबी केहे न सके कोए॥९६॥**

२०० हाँसों की सन्धि में आये २०० गुर्जों के ऊपर

२०० बड़े गुम्मत आये हैं। इनके बीच-बीच में ही १२००० गुम्मतियाँ (छोटे गुम्मत) हैं। इनकी शोभा का वर्णन करने का सामर्थ्य किसी (ब्रह्मात्मा) में भी नहीं है।

**भावार्थ-** एक हाँस ३० मन्दिर का माना जाता है। अतः मोटे तौर पर ६००० मन्दिर को २०० हाँस कह दिया जाता है, किन्तु पूर्व में दरवाजे का १० मन्दिर की हाँस बनने से कुल हाँस २०१ हो जाते हैं। इस प्रकार बड़े गुम्मत भी २०१ हो जाते हैं, जो अगली चौपाई से स्पष्ट है।

ए जो दो सै एक नगीने, कलस बने इन पर।

इन विध की ए रोसनी, ए जुबां कहे क्यों कर॥९७॥

ये जो २०१ बड़े गुम्मत आये हैं, इनके ऊपर अति सुन्दर कलश बने हुए हैं। इनमें ऐसी मनोहर ज्योति

झलकार करती है कि उसकी अनुपम शोभा का वर्णन मेरी यह जिह्वा नहीं कर सकती।

और कलस ऊपर गुमटियों, ए जो कहे कंगूरे बारे हजार।

ए जोत जुबां ना केहे सके, झलकारों झलकार॥९८॥

१२००० गुम्मतियों के ऊपर १२००० कलश आदि शोभायमान हो रहे हैं। दहलान की चाँदनी की बाहरी और भीतरी किनार पर लगभग ६-६ हजार कँगूरे (कुल १२०००) सुशोभित हो रहे हैं। इन कँगूरों पर भी कलश तथा ध्वजा-पताकाओं की शोभा है। इनकी अलौकिक ज्योति की झलझलाहट का वर्णन करने की शक्ति मेरी जिह्वा में नहीं है।

कलसों पर जो बेरखे, सो क्यों कहूं रोसन नूर।

ए जो बनी बराबर गिरदवाए, हुआ बीच आसमान जहूर॥९९॥

कलशों के ऊपर जो झण्डे लगे हुए हैं, उनकी अनुपम जगमगाहट का मैं कैसे वर्णन करूँ। यह सम्पूर्ण शोभा चाँदनी की किनार पर चारों ओर आयी हुई है, जिसकी अलौकिक आभा सारे आकाश में फैली हुई है।

केहे केहे मुख जेता कहे, सो सब हिसाब के माहें।

और हक हुकम यों केहेत है, ए सिफत पोहोंचत नाहें॥१००॥

परमधाम की शोभा के सम्बन्ध में भले ही मेरे मुख से कितना भी क्यों न कहा जाये, किन्तु यह सीमाबद्ध है। श्री राज जी का आदेश (हुकम) तो यही कहता है कि परमधाम की अनन्त मनोहारिता (सुन्दरता) का वर्णन करने में इस संसार के शब्दों का सामर्थ्य ही नहीं है।



महामत कहे ए मोमिनोँ, ए छोड़िए नहीं एक दम।

अब कहूं अंदर अर्स की, जो दिए निसान खसम॥१०१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! परमधाम की इस शोभा को एक क्षण के लिये भी अपने हृदय से अलग न कीजिए। अब मैं रंगमहल के अन्दर की उस कल्पनातीत शोभा का वर्णन करने जा रही हूँ, जिसका अनुभव स्वयं धाम धनी ने मेरे धाम-हृदय में कराया है।

**भावार्थ-** जब आत्मा के धाम-हृदय में परमधाम की शोभा बस जाती है, तो वह अखण्ड हो जाती है। इसे ही "एक पल के लिये भी न छोड़ने" का कथन किया गया है।

प्रकरण ॥३०॥ चौपाई ॥१५३८॥

## दसों भोम बरनन

इस प्रकरण में रंगमहल की दसों भूमिकाओं की शोभा तथा लीला का मनोरम वर्णन किया गया है।

### भोम पेहेली

पहली भूमिका

बड़ा चौक सोभा लेत है, बड़े दरवाजे अंदर।

बड़ी बैठक इत गिरोह की, आगूं रसोई के मन्दिर॥१॥

रंगमहल के बड़े दरवाजे (धाम दरवाजे) के अन्दर सर्वप्रथम एक बड़ा चौक शोभायमान है, जो १० मन्दिर का लम्बा तथा ५ मन्दिर का चौड़ा है। इसमें कुल २८ थम्भ हैं, इसलिये इसे २८ थम्भ का चौक भी कहते हैं। यहाँ पर सुन्दर पशमी गिलम बिछी हुई हैं, जिस पर बैठने के लिये अनेक प्रकार के सिंहासन, कुर्सियाँ आदि

विद्यमान हैं। श्री राजश्यामा जी और सखियाँ रंगमहल से आते-जाते समय यहाँ कई बार बैठ जाते हैं तथा हास-परिहास करते हैं। इसके आगे पश्चिम में रसोई की हवेली है।

**दस स्याम सेत के लगते, दस मंदिर सामी हार।**

**इन चौक की रोसनी, मावत नहीं झलकार॥२॥**

रसोई की चौरस हवेली की उत्तर दिशा में, मध्य में जो मुख्य द्वार है, उसके पूर्व में श्याम (रसोई) व श्वेत (भण्डार के) मन्दिर सहित कुल १० मन्दिर हैं। इस मुख्य द्वार के पश्चिम में १० मन्दिर हैं। इस दरवाजे के पश्चिम में १० मन्दिर की दहलान है। इसी प्रकार हवेली की दक्षिण दिशा में भी मुख्य दरवाजा है, जिसके पूर्व में १० मन्दिर तथा पश्चिम में दहलान हैं। हवेली के पश्चिम में

मध्य में बड़ा दरवाजा और दायें-बायें १०-१० मन्दिर हैं। हवेली के पूर्व में, मध्य में ११ मन्दिर की दहलान और दायें-बायें ५-५ मन्दिर हैं। इनके भीतरी तरफ थम्भों की एक हार आयी है। मध्य में चौरस चबूतरा है, जिसकी किनार पर पुनः थम्भों की हार है। इस प्रकार इस हवेली में स्थित मन्दिरों, चबूतरों, थम्भों आदि की तेजोमयी ज्योति की झलकार आकाश में भी नहीं समा पा रही है।

**कई नकस कई कटाव, इन भोम में देखत।**

**दिन पंद्रा खेलें बन में, पंद्रा आरोगें इत॥३॥**

प्रथम भूमिका की इस हवेली में अनेक प्रकार के मनोरम चित्र तथा बेल-बूटे बने हुए हैं। श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ शुक्ल पक्ष के १५ दिन सायंकाल ६ से ९ बजे

तक वनों में ही भोजन करके खेलते हैं। कृष्ण पक्ष के १५ दिन सायंकाल के ६ बजे वनों से आकर रसोई की हवेली में भोजन करते हैं।

**इन चौक में साथजी, बोहोत बेर बैठत।**

**आवत जात बनथें, बैठत इत अलबत॥४॥**

रसोई की इस हवेली में चबूतरे पर सखियाँ अनेक बार बैठती हैं। वन से आते-जाते समय तो प्रायः यहाँ अवश्य ही बैठती हैं।

**लाड़बाई के जुत्थ की, इत बोहोत खेल करत।**

**बाहेर अंदर चौक में, बन मोहोलों सुख लेवत॥५॥**

लाड़बाई के (जुत्थ) समूह की सखियाँ यहाँ पर भोजन बनाने तथा खिलाने की लीला करती हैं। वे प्रत्येक जगह

इस प्रकार की सेवा कर श्री राज जी को रिझाती हैं और सुख लेती हैं, चाहे वह रसोई की हवेली के बाहर कोई दूसरी हवेली हो या रसोई की हवेली हो, चाहे वनों में हों या महलों में हों।

**बन मोहोल विलास को, सुख गिनती में आवत नाहें।**

**ए न कछू जुबां केहे सके, चुभ रहत चित माहें॥६॥**

पन्द्रह दिन वनों में तथा पन्द्रह दिन रसोई की हवेली में जो भोजन लीला होती है, उसके अपार सुख का आंकलन हो पाना सम्भव नहीं है। यह सुख तो केवल हृदय-पटल पर ही अंकित रहता है। इसे जिह्वा से व्यक्त कर पाना सम्भव ही नहीं है।

राज स्यामाजी बैठत, बनथें फिरती बखत।

इन ठौर आरोग के, चौथी भोम निरत॥७॥

वनों से लौटते समय श्री राजश्यामा जी भी इस रसोई की हवेली में बैठते हैं और यहाँ भोजन करके चौथी भूमिका में नृत्य की हवेली में नृत्य देखते हैं।

जैसा चौक तले का, तैसा ही ऊपर।

आगूं झरोखे दूजी भोम के, इत चौक बीस मंदिर॥८॥

रसोई की हवेली के समान ही चौरस हवेलियाँ प्रथम से लेकर ऊपर की भूमिकाओं में भी आयी हैं, किन्तु अन्य चौरस हवेलियों में अन्तर केवल इतना ही है कि इनमें चारों दिशाओं में ही बड़े दरवाजों के दायें-बायें १०-१० (कुल २०) मन्दिर आये हैं अर्थात् तीनों दहलानें नहीं हैं। दूसरी भूमिका में प्रथम चौरस हवेली तथा २८ थम्भों

के चौक के पूर्व में, नीचे के चबूतरों (४ मन्दिर लम्बे तथा २ मन्दिर चौड़े) के ऊपर झरोखे इतने ही लम्बे-चौड़े हैं।

**इसी भांत भोम तीसरी, ऊपर चढ़ती चढ़ती जे।**

**खूबी लेत अति अधिक, चौक ऊपर चौक ए॥९॥**

इसी प्रकार की शोभा तीसरी तथा ऊपर की सभी भूमिकाओं में भी आयी है और क्रमशः अधिक सुन्दर प्रतीत होती है। ऊपर की भूमिकाओं में २८ थम्भ के चौक के ऊपर चौरस हवेली तथा गोल हवेली के ऊपर गोल हवेली आयी है, जो बहुत अधिक सुशोभित हो रही है।



नवों भोम इन विध की, आगूं उपरा ऊपर बड़े द्वार।

आगे चौक सबन के, सबों फिरते थंभ हार॥१०॥

नवों भूमिकाओं में इसी प्रकार धाम दरवाजे के ऊपर क्रमशः मुख्य दरवाजे आये हैं तथा इनके सामने २८ थम्भों के चौक, चौरस हवेली इत्यादि हैं। इनमें इसी प्रकार चबूतरे एवं थम्भों की हार आदि भी शोभायमान हो रहे हैं।

**विशेष—** ८८ हाथ का चौड़ा व ऊँचा धाम दरवाजा दो भूमिका की ऊँची एक ही महराव के नीचे है। तीसरी भूमिका में ४ मन्दिर की दहलान है। चौथी भूमिका से नवीं भूमिका तक धाम दरवाजे के समान ही लम्बे-चौड़े दरवाजे आये हैं।

और विध केती कहूं, भोम भोम ठौर अनेक।

ए कोट जुबां ना केहे सके, तो कहा कहे रसना एक॥११॥

इन हवेलियों की शोभा का मैं कितना वर्णन करूँ।  
प्रत्येक भूमिका में बहुत सुन्दर-सुन्दर स्थान (हवेलियाँ,  
चौक आदि) हैं। जब इनके विस्तार एवं सुन्दरता का  
वर्णन करोड़ों जिह्वाओं से नहीं हो सकता, तो भला मेरी  
एक जिह्वा कितना कह सकती है।

## भोम दूसरी

### दूसरी भूमिका

स्याम सेत के बीच में, सीढ़ियां सुन्दर सोभित।

बोहोत साथ इत आए के, चढ़ उतर करत॥१२॥

रसोई की हवेली के ईशान कोने से पश्चिम तरफ पहला  
मन्दिर श्याम रंग का रसोई का है, जिसमें लाडबाई तथा

उनके युत्थ की सखियाँ भोजन बनाने की लीला करती हैं। तीसरा मन्दिर श्वेत रंग का भण्डार का है। इन दोनों मन्दिरों के मध्य में सीढ़ियों का मन्दिर है, जिससे बहुत सखियाँ ऊपर की भूमिकाओं में आती-जाती हैं।

**इतथें चले खेलन को, आगूं मंदिर जहां भुलवन।**

**जब जात चेहेबच्चे झीलने, तब खेलें ठौर इन॥१३॥**

इन सीढ़ियों से दूसरी भूमिका में आकर, दूसरी हार मन्दिरों की भीतरी तरफ के त्रिपोलिया से उत्तर दिशा में चलते हुए, भुलवनी के मन्दिरों में भुलवनी का खेल खेलने जाते हैं। जब खड़ोकली में स्नान करने के लिये जाते हैं, तो भुलवनी के मन्दिरों में भी लीला करते हैं।

**भावार्थ-** दूजी भोम में, रंगमहल के उत्तर दिशा में, वायव्य कोने (के गुर्ज) से पूर्व दिशा में १२०० मन्दिर

(लाल चबूतरे के) छोड़कर तथा ईशान कोने (के गुर्ज) से पश्चिम दिशा में १९० मन्दिर छोड़कर, बीच के ११० मन्दिरों की दोनों हारों के भीतरी तरफ चार चौरस हवेलियों की चार हारों (१६ हवेलियों) की जगह में, भुलवनी के ११० मन्दिरों की ११० हारें सुशोभित हैं। इन ११० मन्दिरों में से दायें-बायें ४०-४० मन्दिर छोड़कर मध्य के ३० मन्दिरों के सामने, मन्दिरों की दोनों हारों के बाहरी तरफ ताड़वन की जमीन पर खड़ोकली (तरण-ताल) शोभायमान है।

**खेल करें इत भुलवनी, मंदिर एक सौ दस की हार।**

**सो हर तरफों गिनिए, एही गिनती तरफ चार॥१४॥**

इस भुलवनी के मन्दिरों में सखियाँ युगल स्वरूप के साथ भुलवनी की लीला करती हैं। इसमें ११० मन्दिरों

की ११० हारें हैं। चारों तरफ (दिशाओं) से गिनने पर भी ११० मन्दिरों की ११० हारें ही आती हैं (ये सभी मन्दिर नूरमयी शीशे के हैं)।

**ए भुलवनी ऐसी भई, देखी चारों किनार।**

**द्वार सबों बराबर, भए मंदिर बारे हजार॥१५॥**

भुलवनी की शोभा ऐसी है कि चारों दिशाओं से ११० मन्दिरों की ११० हारें हैं, जो गिनती में १२१०० मन्दिर होते हैं। इनके मध्य में १० मन्दिर का लम्बा-चौड़ा चौक (१०० मन्दिर, जिसमें १ गली और ८ मन्दिर का लम्बा-चौड़ा चबूतरा) आया है, जिससे कुल मन्दिर १२००० ही होते हैं। चारों ओर से देखने पर सभी मन्दिरों के दरवाजे एक ही सीध में एक जैसे आये हैं।

मंदिर जुदे कर गिनिए, हर मंदिर दरवाजे चार।

यों गिनती बारे हजार की, भए अड़तालीस सहस्र द्वार॥१६॥

यदि प्रत्येक मन्दिर के दरवाजों की संख्या अलग – अलग गिनी जाये, तो प्रत्येक मन्दिर में ४ दरवाजे होते हैं। इस प्रकार १२००० मन्दिरों में दिखने में कुल ४८००० दरवाजे होते हैं।

सो ए भई इत भुलवनी, भए द्वार चौबीस हजार।

एक दूजे में गिनात है, खेलें हँसें रूहें अपार॥१७॥

किन्तु इस प्रकार की गणना में भूल हो जाती है। वस्तुतः १२००० मन्दिरों में २४००० ही दरवाजे आये हैं क्योंकि एक ही दरवाजा दूसरे मन्दिर में भी संयुक्त होने से दोनों में गिन लिया जाता है। भुलवनी के इन मन्दिरों में सखियाँ अपार प्रसन्नता के साथ हँसती-खेलती हैं।

रुहें द्वार एक दौड़ के, चौथे जाए निकसत।

प्रतिबिंब उठें कई तरफों, कोई काहूँ ना पकरत॥१८॥

भुलवनी की इस लीला में सखियाँ मन्दिरों के एक दरवाजे से प्रवेश करके चौथे दरवाजे से निकल जाती हैं। चूंकि इन मन्दिरों के दीवार एवं दरवाजे सभी नूरमयी शीशे के हैं, अतः इनमें एक-एक सखी के अनेक दिशाओं में लाखों प्रतिबिम्ब बन जाते हैं। असल और प्रतिबिम्ब में अन्तर न समझ में आने से कोई भी किसी को पकड़ नहीं पाता।

भागत एक मंदिर से, प्रतिबिंब उठें अपार।

पकड़न कोई न पावहीं, निकस जाएं कई द्वार॥१९॥

जैसे ही कोई सखी एक मन्दिर से भागती है, तो अनन्त प्रतिबिम्ब दिखायी देते हैं। भागने वाली सखियाँ मन्दिरों

के कई दरवाजों से होते हुए आगे निकल जाती हैं। पकड़ने के लिए पीछे दौड़ने वाली सखियाँ प्रतिबिम्ब को देखकर भूल जाती हैं। इस प्रकार कोई भी किसी को पकड़ नहीं पाती।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि जब परमधाम पूर्णतया जाग्रत भूमिका है, तो उसमें भूलने की लीला कैसे सम्भव है? क्या ब्रह्मस्वरूपता में भी अज्ञानता की भावना आ सकती है? यदि ऐसा होता है, तब तो वहाँ पर भी कालमाया जैसी ही स्थिति मानी जा सकती है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि प्रेम और आनन्द के रस में डूब जाने पर स्वयं का भूलना स्वाभाविक है, किन्तु इसे अज्ञानजनित भूल (कालमाया जैसी) नहीं कह सकते। परमधाम की अनन्त प्रेममयी एवं



आनन्दमयी लीलाओं का निर्देशन धाम धनी के दिल के द्वारा होता है। इसलिये भुलवनी की लीला में यदि कोई सखी किसी को पकड़ने में भूलती है, तो वह श्री राज जी की इच्छा से ही भूलती है। उसमें मायाजनित अज्ञान का प्रभाव नहीं होता, बल्कि वह भी प्रेममयी लीला का एक अंग ही है।

**इन ठौर खेल रूह के, बोहोत भई भुलवन।**

**होत हाँसी इत खेलते, रंग रस बढ़त रूहन॥२०॥**

इन मन्दिरों में भुलवनी के खेल में सखियों द्वारा एक – दूसरे को पहचानने में बहुत अधिक भूल हो जाती है। इस प्रकार, इस खेल में एक – दूसरे की बहुत अधिक हँसी होती है तथा सखियाँ अपार आनन्द के रस में डूब जाती हैं।

इनहूँ बीच चबूतरा, हक हादी मध बैठत आए।

ए सोभा इन बखत की, इन मुख कही न जाए॥२१॥

भुलवनी के मन्दिरों के बीच में आया हुआ चबूतरा ८ मन्दिर का लम्बा-चौड़ा है, जिसके चारों ओर १ मन्दिर की परिक्रमा (गली) है। कुल जगह १० मन्दिर की लम्बी-चौड़ी है। इस चबूतरे पर आकर सखियों के मध्य में श्री राजश्यामा जी विराजमान हो जाते हैं। इस समय की अनुपम शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

दूजी भोम का चेहेबच्चा, धनी बैठत इत अन्हाए।

सिनगार समें रूहन के, इन जुबां कह्यो न जाए॥२२॥

खड़ोकली दूसरी भूमिका में आयी है। उसमें स्नान करके धाम धनी इस चबूतरे पर विराजमान हो जाते हैं

और सखियाँ उनका श्रृंगार करती हैं। उस समय की शोभा तथा आनन्द का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

इत खेल के आए चेहेबच्चे, अन्हाए के कियो सिनगार।

पीछे चरनों लागें जुगल के, माहें माए ना मंदिरों झलकार॥२३॥

भुलवनी के मन्दिरों में क्रीड़ा करके श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ खड़ोकली में स्नान करते हैं और चबूतरे पर बैठकर श्रृंगार करते हैं। इसके पश्चात् सभी सखियाँ युगल स्वरूप के चरणों में प्रणाम करती हैं। इस समय श्री राजश्यामा जी तथा सखियों की अनन्त शोभा की झलकार भुलवनी के मन्दिरों में भी समा नहीं पाती।

ए नेक कही इन ठौर की, इत हिसाब बिना बैठक।

सुख देत इत कायम, जैसा बुजरक हक॥२४॥

दूसरी भूमिका की शोभा के बारे में मैंने बहुत ही थोड़ा सा कहा है, किन्तु यहाँ की छवि तो अनन्त है। श्री राज जी की महिमा अपरम्पार है। वे इस नश्वर जगत में भी अपनी तारतम वाणी से हमें परमधाम के अखण्ड सुखों का अनुभव करा रहे हैं।

ए दूजी भोम जो अर्स की, इत बोहोत बड़ो विस्तार।

ए नेक नेक केहेत हों, जुबां कहा कहे सिफत सुमार॥२५॥

रंगमहल की दूसरी भूमिका का विस्तार बहुत अधिक (अथाह) है। मैंने तो बहुत थोड़ा ही कहा है, क्योंकि इस भूमिका की असीम महिमा का वर्णन करने का सामर्थ्य मेरी जिह्वा में है ही नहीं।

## भोम तीसरी

### तीसरी भूमिका

बैठ हक हादी भोम तीसरी, जित आवत नूरजलाल।

इत दोए पोहोर की बैठक, और सेज्या सुख हाल॥२६॥

श्री राजश्यामा जी जब तीसरी भूमिका की पड़साल में बैठते हैं, तब उनका दर्शन करने के लिये अक्षर ब्रह्म चाँदनी चौक में आते हैं। रंगमहल की तीसरी भूमिका में श्री राजश्यामा जी और सखियाँ दो प्रहर (प्रातः ६ बजे से १२ बजे तक) बैठते हैं। पुनः श्री राजश्यामा जी १२ बजे से ३ बजे तक (नीलो-पीलो मन्दिर में) सुख-सेज्या पर शयन (आराम) की लीला करते हैं।

बीच बन्या दरवाजा दो हांस का, बीच दस झरोखे।

पांच बने बाईं हांस के, पांच दाहिनी से॥२७॥

रंगमहल की पूर्व दिशा में मध्य में जो दरवाजे का १० मन्दिर का हाँस बना है, वह दायें-बायें के हाँसों से ५-५ मन्दिर की जगह लेकर बना है। तीसरी भूमिका में इस हाँस में १० झरोखे हैं।

**भावार्थ-** १० मन्दिर की लम्बी तथा एक मन्दिर की चौड़ी छज्जे की किनार को यहाँ १० झरोखे कहा गया है। इसकी बाहरी किनार पर १० थम्भ, ९ महाराबें, और कठेड़े की मनोहर शोभा दिखायी दे रही है। यह बात आगे की २९, ३०, तथा ४० चौपाई से स्पष्ट हो जाती है। ये १० झरोखे आपस में अलग-अलग नहीं हैं।

**बड़े झरोखे तिन पर, तिन पर बड़े देहेलान।**

**इत आए फजर पसु पंखियों, दीदार देत सुभान॥२८॥**

इन १० झरोखों (१० मन्दिर लम्बे तथा १ मन्दिर चौड़े

छज्जे) की भीतरी ओर इतना ही लम्बा-चौड़ा चौक है, जिससे झरोखों की चौड़ाई बढ़ जाती है। इसलिये इन्हें बड़े झरोखे कहा गया है। इसके पूर्व की ओर १० मन्दिर की लम्बी तथा १ मन्दिर की चौड़ी दहलान है। इन्हीं झरोखों पर आकर श्री राजश्यामा जी पशु-पक्षियों को दर्शन देते हैं।

**भावार्थ-** दहलान की संरचना इस प्रकार है- दहलान की पूर्वी किनार पर १० थम्भों के ऊपर ९ महाराबे हैं तथा पश्चिमी किनार पर मध्य में ४ थम्भों पर ३ महाराबे हैं। इनके दायें-बायें ३-३ अक्शी महाराबे (दीवारें) ४-४ अक्शी थम्भों पर हैं। इन अक्शी महाराबों के नीचे ३-३ दरवाजे हैं, जिनके सामने (पश्चिम में) गली में चाँदों द्वारा ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। मध्य के ४ थम्भों और ३ महाराबों के सामने गली में ४ मन्दिर का लम्बा और १

मन्दिर का चौड़ा चबूतरा है, जिससे दायें-बायें गली में तथा पश्चिम में २८ थम्भ के चौक में ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं।

**देहेलान दस मंदिर का, झरोखे दस सामिल।**

**माहें चौक दस मंदिर का, हुए तीनों मिल कामिल॥२९॥**

इस प्रकार १० मन्दिर की लम्बी तथा १ मन्दिर की चौड़ी दहलान है, जो धाम दरवाजे तथा दायें-बायें के ४-४ मन्दिरों के ऊपर है। दहलान के पूर्व में १० मन्दिर का लम्बा और १ मन्दिर का चौड़ा चौक आया है। चौक के पूर्व में इतनी ही लम्बी-चौड़ी जगह में १० झरोखे हैं, जिनकी बाहरी किनार पर १० थम्भ व कठेड़ा है। ये तीनों (दहलान, चौक, पड़साल) एक समान स्तर के हैं।

**द्रष्टव्य-** यहाँ पर १० मन्दिर की पूरी दहलान कही जा



रही है, जबकि श्रीमुखवाणी में दूसरी जगह यह भी कहा गया है—

दाहिनी तरफ दूजा जो मन्दिर, आए बैठे ताके अन्दर।

नीला न पीला रंग, ताकी उठत कई तरंग॥

अर्थात् मध्य में ४ मन्दिर की दहलान है, जिसके दायें— बायें ३-३ मन्दिर हैं। दायीं तरफ (दक्षिण दिशा में) दूसरा मन्दिर नीले (हरे) व पीले रंग का है (देखिए परिकरमा ४/९३)। इस प्रकार एक चौपाई में दहलान कहा जा रहा है तथा एक चौपाई में मन्दिर कहा जा रहा है, तो इसका रहस्य यह है कि आवश्यकता पड़ने पर पूर्व के थम्भों में जालीदार दीवार बन जाती है।

तीसरा हिस्सा एक हांस का, ए जो दस झरोखे।

द्वार थंभ आगूं इन, ना दीवार बीच इनके॥३०॥

तीसरा हिस्सा जो १० मन्दिर (१ हाँस) का लम्बा और १ मन्दिर का चौड़ा है, उसमें १० झरोखे हैं (किनार पर १० थम्भों पर ९ महराबें व कठेड़ा है)। इन १० थम्भों के ठीक सामने, दहलान की पूर्वी किनार पर १० थम्भ और ९ महराबी द्वार (महराबें) आये हैं। यहाँ थम्भों के मध्य दीवार नहीं है अर्थात् यह दहलान के रूप में है।

**और सुख इन भोम के, बोहोत बड़ो विस्तार।**

**सो मुख बानी क्यों कहूँ, जिनको नहीं सुमार॥३१॥**

तीसरी भूमिका के सुखों का विस्तार बहुत अधिक है। जिन सुखों की कोई सीमा ही नहीं है, उन्हें मैं अपने मुख से कैसे कहूँ।

**मंदिर दस का बेवरा, दस का एकै देहेलान।**

**माहें बाहेर बराबर, जानें मोमिन अर्स बयान॥३२॥**

इस प्रकार तीसरी भूमिका के १० मन्दिर के हाँस का विवरण है, जिसमें १० मन्दिर की लम्बी और १ मन्दिर की चौड़ी दहलान है। दहलान, चौक, और झरोखे (अन्दर-बाहर) सभी एक समान स्तर (ऊँचाई) और एक समान लम्बे-चौड़े हैं। रंगमहल की इस बात को ब्रह्मात्मायें ही जानती हैं।

**और जो झरोखे गिरदवाए के, तिनही के सरभर।**

**एता ऊंचा जिमी से, देखें हुकमें रूहें नजर॥३३॥**

और दहलान के आगे किनार पर जो झरोखे हैं, वे भी दहलान व चौक के बराबर लम्बे-चौड़े और जमीन से उतने ही ऊँचे हैं। इस शोभा को धाम धनी के हुक्म से

ब्रह्मसृष्टियाँ अपनी आत्मिक दृष्टि से देखती हैं।

**छे मंदिर आगूं सीढ़ियां, दोऊ तरफ चढ़ाए।**

**चौक छोटे आगूं देहरी, सोभा इन मुख कही न जाए॥३४॥**

दहलान की पश्चिमी किनार पर मध्य के ४ थम्भों एवम् ३ महाराबों के दायें-बायें ३-३ अक्शी महाराबों के नीचे दीवारों में ३-३, कुल ६ दरवाजे हैं। इनके सामने (पश्चिम में) गली में चाँदों द्वारा दायें-बायें ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। १० मन्दिर के हाँस के दायें-बायें जो दो गुर्ज हैं (जिनके ऊपर दसवीं चाँदनी में गुम्मत बने हैं), उन गुर्जों के आने से वहाँ चौक का हिस्सा छोटा हो गया है। यहाँ की शोभा का वर्णन इस मुख से हो पाना सम्भव नहीं है।

**द्रष्टव्य-** ये गुर्ज ६६ हाथ के लम्बे-चौड़े हैं, जो दायें-बायें के मन्दिरों के ३३-३३ हाथ की जगह के सामने हैं,

अर्थात् इन गुर्जों ने चौक की जगह में से ३३ - ३३ हाथ की जगह ले ली है।

और चौक बड़ा जो बीच का, सीढ़ी सनमुख आगूं द्वारा।

सोए बराबर द्वार के, सोभा कहूं जो होए सुमार॥३५॥

दहलान की पश्चिमी किनार पर मध्य में ३ महाराबें (द्वार) हैं और दायें-बायें ३ - ३ अक्शी महाराबों के दरवाजों के सामने ६ सीढ़ियाँ (चाँदे) हैं। इन सबके ठीक सामने १० मन्दिर का लम्बा और ५ मन्दिर का चौड़ा २८ थम्भों का चौक आया है, जिसकी अनन्त शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

दोऊ तरफों खिड़कियां, तिन आगूं बढ़ती पड़साल।

ए रूहें नजरों नीके देखहीं, तो तेहेकीक बदले हाल॥३६॥

१० मन्दिर की हाँस के दायें-बायें जो मन्दिरों की बाहरी हार आयी है, उनमें प्रत्येक मन्दिर में २-२ दरवाजे और १-१ झरोखे (खिड़कियाँ) हैं। इनके सामने चारों ओर घेरकर ३३ हाथ का चौड़ा छज्जा निकला है (पड़साल निकली है)। हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से इस शोभा को अच्छी तरह से देख लें, तो निश्चय ही आपकी रहनी बदल जायेगी अर्थात् परमधाम वाली प्रेममयी रहनी हो जायेगी।

**और आरोगें भी इतहीं, इत बैठें नूरजमाल।**

**दौड़त रूहें निहायत, ए क्यों कहूं खुसाली ख्याल॥३७॥**

श्री राजश्यामा जी १० मन्दिर की लम्बी पड़साल (झरोखे) में सिंहासन पर विराजमान होते हैं और दोपहर का भोजन भी यहीं करते हैं। सखियाँ दौड़-दौड़कर अति

प्रेम-भरी भावना से उन्हें भोजन कराती हैं। अत्यन्त आनन्द में मग्न होकर सेवा करने के उनके अलौकिक भावों का मैं कैसे वर्णन करूँ।

**बड़ी बैठक पड़साल की, इत मेवा मिठाई आरोगत।**

**कर सिनगार चरणों लगे, सबे इत बैठत॥३८॥**

पड़साल (दहलान, चौक, पड़साल, व चबूतरे) में युगल स्वरूप बहुत देर तक बैठते हैं। यहीं (चबूतरे) पर वे मेवे-मिठाइयाँ भी ग्रहण करते हैं। सखियाँ अपना श्रृंगार करके उनके चरणों में प्रणाम करती हैं और उनके पास अति प्रेमपूर्वक बैठ जाती हैं।

**सिनगार करें देहेलान में, आरोगें और मंदिर।**

**इतहीं दीदार नूर को, दिन पौढ़ें पलंग अंदर॥३९॥**

दहलान के मध्य में श्री राज जी का आभूषणों का श्रृंगार होता है। भोजन करने की लीला नीले-पीले मन्दिर के सामने पड़साल में होती है। पड़साल में ही ७:३० बजे जब युगल स्वरूप सिंहासन पर विराजमान होते हैं, तब अक्षर ब्रह्म चाँदनी चौक में आकर श्री राज जी का दर्शन करते हैं। दोपहर १२ से ३ बजे तक श्री राजश्यामा जी नीले-पीले मन्दिर में शयन लीला करते हैं (इस समय दीवारें आ जाती हैं, जिससे दहलान मन्दिर के रूप में हो जाती है)।

दो हांस बीच तीसरा हिस्सा, तिनके झरोखे दस।

एक हांस तिनकी बढ़ी, ए भी सोभा एक रस॥४०॥

बीच के दो हाँसों में से ५-५ मन्दिर लेकर यह मुख्य द्वार का १० मन्दिर का हाँस बना है। इस हाँस में तीसरी



भूमिका में १० मन्दिर की लम्बी तथा १ मन्दिर की चौड़ी पड़साल के किनारे १० थम्भों पर ९ महाराबें व थम्भों के मध्य कठेड़े बने हैं। इन्हें ही यहाँ १० झरोखे कहा गया है। दस झरोखों वाले हाँस के बढ़ जाने से रंगमहल के कुल हाँस २०१ हो जाते हैं। यह सम्पूर्ण शोभा एक समान सुन्दर आयी है।

**बड़ा दरवाजा इनमें, बीच दोए हांस इन।**

**भोम तले लग चाँदनी, ए खूबी अति रोसन॥४१॥**

दोनों हाँसों के मध्य जो १० मन्दिर का हाँस है, इसी हाँस में प्रथम भूमिका में धाम दरवाजा (बड़ा दरवाजा) आया है। रंगमहल की प्रथम भूमिका से लेकर १०वीं चाँदनी (आकाशी) तक दस मन्दिर वाला हाँस अपार शोभा के साथ जगमगा रहा है।

अंदर चौड़ाई चौक की, और भी हैं कई ठौर।

जुदे जुदे सुख लेत हैं, रंग रस कई और और॥४२॥

इस दरवाजे की हाँस के भीतर रंगमहल का बहुत अधिक विस्तार है। इस रंगमहल में बहुत से अति सुन्दर स्थान हैं, जहाँ पर सखियाँ प्रेम और आनन्द के रस से भरे हुए अलग-अलग तरीकों से अखण्ड सुख का रसपान करती हैं।

## भोम चौथी

### चौथी भूमिका

निरत होत चौथी भोम में, जित मोहोल बन्यो विसाल।

चौक मध्य अति सुन्दर, क्यों कहूं मंदिर द्वार॥४३॥

चौथी भूमिका की चौथी चौरस हवेली में नृत्य की लीला होती है। यह हवेली बहुत ही विशाल है। हवेली के मध्य

आया हुआ चबूतरा (कमर भर ऊँचा) अति सुन्दर है।  
मन्दिरों एवं द्वारों की अनुपम शोभा का मैं क्या वर्णन  
करूँ।

तीनों तरफों मंदिर, आगू दो दो थंभों की हार।

बड़ा मोहोल अति सोभित, सुन्दर अति सुखकार॥४४॥

इस हवेली की तीनों दिशाओं उत्तर, पश्चिम, तथा  
दक्षिण में मन्दिर हैं। पूर्व की दिशा में मध्य के बड़े दरवाजे  
और दायें-बायें के १०-१० मन्दिरों की जगह में २०  
थम्भों की दो हारें (२१ मन्दिर की दहलान) हैं। नृत्य की  
यह हवेली अतिशय सुन्दर और सुखदायी है। इसकी  
शोभा अपरम्पार है।

**थंभ द्वार अति सोभित, तरफ तीनों साठ मंदिर।**

**बीस बीस हर तरफों, चौक बैठक अति अंदर॥४५॥**

पूर्व दिशा में दहलानों के थम्भ और महराबी द्वार अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं। शेष तीनों दिशाओं में कुल ६० मन्दिर हैं। प्रत्येक दिशा के मध्य में बड़ा दरवाजा आया है तथा दायें-बायें १०-१० (कुल २०) मन्दिर आये हैं। इन सबके मध्य में अति सुन्दर चबूतरा (चौक) है, जिस पर बैठक के रूप में नृत्य की लीला होती है।

**द्वार सोभित कमाड़ियों, साठों करें झलकार।**

**और जोत थंभन की, सुख कहूं जो होए सुमार॥४६॥**

इस हवेली की तीनों दिशाओं के साठों मन्दिरों के दरवाजों के पल्ले अत्यधिक झलकार कर रहे हैं। मन्दिरों तथा दहलानों की भीतरी तरफ थम्भों की एक हार है

और इनके भीतरी ओर चबूतरे की किनार पर थम्भों की एक और हार है। इन थम्भों से निकलने वाली ज्योति के दीदार का सुख इतना अधिक है कि उसे व्यक्त ही नहीं किया जा सकता।

**पीठ पीछे जो मंदिर, कई रंग सेत दीवार।**

**दाहिनी तरफ लाखी मंदिर, क्यों कहूं नकस मिसाल॥४७॥**

पीछे (पश्चिम दिशा) के मन्दिर और थम्भ श्वेत रंग के हैं, जिसमें अनेक रंगों की चित्रकारी है। दाहिनी तरफ (दक्षिण दिशा) के मन्दिर तथा थम्भ लाल रंग के हैं। इस भाग की चित्रकारी की जो सुन्दरता है, उसकी कोई भी उपमा मैं नहीं दे सकती।

**बांई तरफ दीवार जो, मंदिर लिबोई रंग।**

**बेल नकस कटाव कई, सो केते कहूं तरंग॥४८॥**

बायीं ओर (उत्तर दिशा) के मन्दिरों की दीवारें एवं थम्भे नीम्बू की तरह पीले रंग की आये हैं। इस भाग में लताओं के अति सुन्दर-सुन्दर चित्र हैं तथा मनोहर बेल-बूटे बने हैं। इनसे निकलने वाली ज्योतिर्मयी तरंगों की शोभा का मैं कितना वर्णन करूँ।

**हरी दीवार जो मंदिर, सो सामी है नेक दूर।**

**चारों तरफों अर्स जवेर, करें जंग नूर सों नूर॥४९॥**

सामने पूर्व दिशा में मन्दिर न होने से तीसरी हवेली के पश्चिम दिशा के मन्दिरों की दीवार दिखाई देती है, जो अपेक्षाकृत थोड़ी दूर है। यह दीवार तथा बीच के थम्भों की हारें हरे रंग के हैं। इस प्रकार इन हवेलियों के थम्भों

तथा दीवारों में सुशोभित जवाहरातों से निकलने वाली  
नूरी किरणें आपस में युद्ध सी करती हुई दिखायी पड़ती  
हैं।

एह ठौर है निरत की, सो केता कहूं मजकूर।

चारों तरफों ऊपर तले, कहूं मावत नहीं जहूर॥५०॥

इस चौथी हवेली में नृत्य की लीला होती है, जिसके  
आनन्द का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। इस हवेली में  
ऊपर-नीचे, चारों ओर, नृत्य का ही अखण्ड रस फैला  
हुआ दिखायी देता है।

राज स्यामाजी बीच में, बैठक सिंघासन।

रुहें बारे हजार को, हक देत सुख सबन॥५१॥

नृत्य की लीला के समय श्री राजश्यामा जी चबूतरे के

मध्य में, सिंहासन के ऊपर, विराजमान होते हैं। वे नृत्य-लीला के माध्यम से सभी सखियों को अपने हृदय की अमृतधारा में डुबो देते हैं।

**कई विध के बाजे बजें, नवरंग बाई नाचत।**

**हाथ पांउ अंग बालत, कही न जाए सिफत॥५२॥**

जब नवरंगबाई नृत्य करती हैं, तो अनेक प्रकार के बाजे बजते हैं। नृत्य के समय नवरंग बाई जी अपने हाथों तथा पैर आदि अंगों को इस प्रकार मोड़ती हैं कि उसकी प्रशंसा यहाँ के शब्दों में नहीं की जा सकती।

**ले बाजे रूहें खड़ी, मृदंग जंत्र ताल।**

**रंग रबाब चंग तंबूरा, बोलत बेन रसाल॥५३॥**

सखियाँ नृत्य के समय मृदंग, जन्त्र, ताल, रबाब, चंग,



और तम्बूरा लेकर आनन्दपूर्वक खड़ी रहती हैं अर्थात् बजाती हैं। उस समय बाँसुरी से बहुत ही मोहक एवं सुरीली आवाज सुनायी देती है।

**भावार्थ-** "जन्त्र" एक प्रकार का तन्तुवाद्य (तार से बजाने वाला बाजा) है, जो प्रायः सारंगी के सिद्धान्त से बना होता है। "ताल" एक प्रकार का वाद्य है, जो काँसे या पीतल की उभरी छोटी सी तश्तरी जैसे युगल रूप में होता है। दोनों को मिलाकर बजाने से मधुर ध्वनि निकलती है। "रवाब" सारंगी से कुछ मिलता-जुलता है। इसी प्रकार "चंग" खंजड़ी की तरह का एक वाद्य यन्त्र है। "तम्बूरा" वीणा के सिद्धान्तों पर आधारित है, किन्तु इसमें मात्र दो ही तार होते हैं, जबकि सितार में सात और तानपुरे में चार तार होते हैं।

पांउं झांझर घूंघर बोलहीं, कांबी कड़लो बाजत।

याही तरह अनवट बिछुआ, संग लिए गाजत॥५४॥

नवरंग बाई जी के पैरों में झांझरी, घूंघरी, काँबी और कड़ला की अति मधुर ध्वनि बजती रहती है। उनके साथ अनवट एवं बिछुआ भी बहुत ही मोहक स्वर में बजते हैं।

हाथ कंकन नंग नवघरी, स्वर एकै रस पूरत।

और भूखन सबों अंगों, सोभित सब सूरत॥५५॥

नवरंग बाई के हाथों में कंगन एवं नगों से जड़ी हुई नवघरी समान स्वरों में बज रही है तथा वातावरण में आनन्द घोल रही है। उनके सम्पूर्ण स्वरूप के सभी अंगों में अति मनोहर आभूषण बजते हुए सुशोभित हो रहे हैं।

जिन विध पाउं चलावहीं, सोई भूखन बोलत।

जो बजावें झांझरी, तो घूंघरी कोई ना चलत॥५६॥

नवरंग बाई पैरों के किसी भी आभूषण को बजाने के लिये इस प्रकार से अपने पाँव चलाती हैं कि केवल वही आभूषण बजता है। यदि वह मात्र झांझरी को बजाना चाहती हैं, तो पाँव चलाने पर केवल झांझरी ही बोलती है। उस समय घूंघरी आदि अन्य आभूषणों से कोई भी आवाज नहीं होती है।

जो बोलावत घूंघरी, तो नहीं झांझरी बान।

जो सबे बोलावत, तो बोलें सब समान॥५७॥

जब वे घूंघरी की आवाज चाहती हैं, तो केवल घूंघरी ही बोलती है। उस समय झांझरी आदि से कोई भी आवाज नहीं निकलती। जब वे सभी आभूषणों से बुलवाना

चाहती हैं, तो सभी आभूषण समान स्वर में बोलने लगते हैं।

**प्रेम रसायन गावत, अति प्यारी मीठी बान।**

**याही विध हस्त देखावहीं, फेर फेर देत हैं तान॥५८॥**

जीवन के आधार रूप प्रेम के रस में डुबोकर श्री नवरंग बाई जी अति प्यारी मीठी वाणी में गायन करती हैं। वे उन्हीं भावों के अनुसार अपने हाथों से नृत्य की भिन्न – भिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन करती हैं और बार – बार संगीत के स्वर भरती हैं।

**भावार्थ–** "रसायन" शब्द का तात्पर्य होता है – जीवन वृद्धि करने वाला। ब्रह्मात्माओं के लिये प्रेम ही जीवन है, इसलिये इस चौपाई में प्रेम को रसायन कहकर वर्णित किया गया है। चौथी भूमिका का नृत्य कालमाया का

लौकिक नृत्य नहीं है, बल्कि ब्रह्मात्माओं द्वारा धनी को रिझाने के लिये अपने हृदय के माधुर्य, प्रेम, एवं समर्पण की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है।

यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि नृत्य की यह कला सभी सखियों में समान रूप से है, केवल नवरंग बाई में ही नहीं है। खेल में आने के दिन नवरंगबाई के नृत्य की बारी थी, इसलिये उनका नाम विशेष रूप से लिया जाता है। यही स्थिति अन्य सभी प्रमुख सखियों (शाकुण्डल, शाकुमार, लाडबाई आदि) के साथ भी माननी चाहिए। स्वलीला अद्वैत के एकत्व (वहदत) में गुणों के आधार पर किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं है, बल्कि सभी में समान रूप से प्रत्येक गुण की समानता है।

कई जुदे जुदे बोलें भूखन, सब बाजे मिलावत संग।

एक रस सब गावत, नवरंग बाई के रंग॥५९॥

नवरंग बाई के सभी आभूषणों से एक स्वर में अलग – अलग प्रकार की मधुर आवाज आती है। सभी वाद्य यन्त्र (बाजे) उनके स्वर में मिलकर ही बजते हैं। इसी प्रकार, सभी आभूषण एवं सभी बाजे नवरंग बाई के नृत्य एवं गायन के रंग में रंगकर ही एकरस होकर गाते हैं।

हाथ धरत मृदंग पर, जब अव्वल स्वर करत।

निरत करें कई विधसों, कई गुन कला ठेकत॥६०॥

मृदंग बजाने वाली सखी जब शुरु में मृदंग के दोनों पुड़ियों पर अपना हाथ रखती है, तो उससे अति गम्भीर एवं मधुर स्वर निकलता है। नवरंग बाई उसी स्वर के अनुसार अनेक प्रकार से नृत्य करती हैं तथा अनेक गुणों

(मोहकता, माधुर्यता आदि) से परिपूर्ण कलाओं से पैरों से ठेक देती हैं।

**विशेष-** नृत्य में हाथों को विभिन्न मुद्राओं में घुमाना तथा पैरों से माधुर्यतापूर्ण तरीके से प्रेम-भरे भावों में ठेक लगाना नृत्य का प्रमुख आकर्षण है। इस चौपाई में इसी तथ्य की ओर संकेत किया गया है।

कई गत भांत रंग ल्यावत, ए तो कामिल निरत कमाल।  
 इन छेक बालन की क्यों कहूं, जो देखत नूर जमाल॥६१॥

चौथी हवेली में होने वाला यह नृत्य प्रेम की माधुर्यता से परिपूर्ण नृत्य है और सबको आश्चर्य में डालने वाला है। इसमें नवरंग बाई अनेक प्रकार की कलारूप अवस्थाओं से आनन्द का रस प्रवाहित करती हैं। उनके पैरों की मधुर ठेक का मैं कैसे वर्णन करूँ, जिसे स्वयं श्री राज

जी भी मुग्ध होकर देखा करते हैं।

कई विध कहूं बाजंत्र की, कई विध नट नाचत।

कई विध की फेरी कहूं, कई रंग रस गावत॥६२॥

संगीत के वाद्य यन्त्र (बाजे) अनेक प्रकार से बजते हैं तथा नवरंगबाई नट की भांति (चलायमान मुद्रा में) अति मनोहर नृत्य करती हैं। वे प्रेम-आनन्द की उमंग में अनेक प्रकार से घूम-घूमकर नृत्य करती हैं और अति मोहक स्वरों में गाती हैं।

नामै जाको नवरंग, ताकी निरत कहूं क्यों कर।

अनेक गुन रंग ल्यावहीं, नए नए दिल धर॥६३॥

जिसका नाम ही नवरंग बाई अर्थात् "नये नये रंगों (भावों, कलाओं) से नृत्य एवं गायन करने वाली" है,



उसके नृत्य की विशेषताओं का मैं कैसे वर्णन करूँ।  
अपने प्राणेश्वर को रिझाने के लिये वे अपने हृदय में प्रेम  
तथा आनन्द के नये-नये भाव लेकर नृत्य करती हैं।

**मुरली बजावत मोरबाई, बेनबाई बाजंत्र।**

**तानबाई तान मिलावत, निरत जामत इन पर॥६४॥**

मोरबाई बाँसुरी बजाती हैं और बेनबाई तरह-तरह के  
बाजे बजाती हैं। तानबाई सुर के अनुसार तालबद्ध होकर  
मधुर स्वरों में गायन को नियन्त्रित करती हैं। इस प्रकार,  
नृत्य की यह लीला बहुत अधिक मनमोहक हो जाती है।

**कंठ केलबाई अलापत, स्वर पूरत बाईसेन।**

**सब मिल गावें एक रस, मुख बानी मीठी बैन॥६५॥**

केलबाई अपने मधुर कण्ठ से राग अलापती हैं तथा

सेनबाई गायन में अपना स्वर देती हैं। इस प्रकार सभी सखियाँ मिलकर एक ही समान सुर एवं ताल में अति मीठी वाणी में गायन करती हैं।

**झरमरबाई बजावत, माहें झरमरी अमृती।**

**कई बाजे कई रंग रस, ए रंग अलेखे कहूं केती॥६६॥**

झरमरबाई झरमरी बजाती हैं, जो करताल में जड़ी होती है। इसके साथ ही आनन्दमयी रस को प्रवाहित करने वाले अनेक प्रकार के बहुत से बाजे बजते हैं। इस अलौकिक आनन्द को किसी भी प्रकार से व्यक्त नहीं किया जा सकता, मैं कितना वर्णन करूँ।

**खड़ियां रूहें निरत में, इत उछरंग होत।**

**तरफ चारों जवेरन में, निरत देखे अधिक जोत॥६७॥**

नवरंग बाई के नृत्य के समय अन्य सखियाँ भी नृत्य करने के लिये खड़ी रहती हैं। इस समय सभी के अन्दर प्रेम एवं आनन्द की उमंग भरी होती है। हवेली के चारों ओर नूरी जवाहरातों की दीवारों, थम्भों, छत आदि में सर्वत्र ही नृत्य की यह लीला स्पष्ट रूप से दिखायी देती है।

**भावार्थ—** परमधाम की दीवारें, थम्भे आदि सभी चेतन हैं और आत्म-स्वरूप हैं, इसलिये नृत्य की लीला में उनकी भी संलग्नता रहती है। नवरंग बाई जी का यह नृत्य परमधाम के प्रत्येक महल, थम्भ, पहाड़, तथा कण-कण में प्रतिबिम्बित होता है, जो आगे की चौपाइयों में वर्णित है।

निरत कला सब नाच के, फेर फेर देत पड़ताल।

यों स्वर मीठे मोहोलन के, चलत आगूं मिसाल॥६८॥

नवरंग बाई सभी कलाओं से नृत्य करती हैं। इस प्रक्रिया में वे बार-बार अपने पाँवों की ठेक (पड़ताल) देती हैं, जिसकी अति मधुर ध्वनि उसी रूप में परमधाम के सभी महलों में गूँजा करती है।

ऐसे ही प्रतिबिंब इनके, मोहोल बोलें कई और।

बानी बाजे निरत अवाजे, होत निरत कई ठौर॥६९॥

चौथी भूमिका की चौथी हवेली में होने वाले नृत्य का प्रतिबिम्ब सम्पूर्ण परमधाम के महलों में पड़ता है। सभी जगहों पर वैसा ही नृत्य दिखायी देता है, वैसे ही बाजे बजते हैं, और नृत्य की वैसी ही सुमधुर ध्वनि सुनायी पड़ती है।

**भावार्थ-** जब इस नश्वर जगत् में किसी स्थान विशेष पर होने वाले कार्यक्रम (खेल, समारोह आदि) को सारे विश्व में करोड़ों स्थानों पर दूरदर्शन (television) के माध्यम से देखा जाता है, तो परमधाम में क्यों नहीं देखा जा सकता। परमधाम का कण-कण चेतन है और श्री राज जी के हृदय का स्वरूप है, इसलिये रंगमहल की चौथी भूमिका में होने वाली यह लीला सम्पूर्ण रंगमहल में तो दिखायी पड़ती ही है, परमधाम के सभी २५ पक्षों में भी दिखायी पड़ती है। सारा धाम प्रेम और आनन्द के रस में डूब जाता है। चौथी भूमिका की यह नृत्य लीला, मनोहर गायन तथा वादन के साथ परमधाम के कण-कण में छा जाती है।

यहाँ यह संशय होता है कि जब परमधाम के कण-कण में चौथी भूमिका की नृत्य-लीला का रस प्रवाहित

होता है, तो अक्षर ब्रह्म उससे अनभिज्ञ क्यों रहते हैं?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि लीला की क्रिया या लीला का ग्रहण स्वभाव के अनुकूल होता है। जिस प्रकार, किसी कथा में विरह रस के प्रसंग में भावुक व्यक्ति रोने लगते हैं, जबकि शुष्क हृदय वाले लोग भाव-शून्य बने रहते हैं। इसे दूसरे रूप में इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी और अपनी प्रिय पुत्री से गले मिलता है, किन्तु दोनों अवस्थाओं में उसके भावों में अन्तर होता है। पत्नी से वह अलग भावों में गले मिलता है तथा पुत्री से अलग भावों में।

इसी प्रकार अक्षर और अक्षरातीत एक ही स्वरूप हैं, किन्तु स्वभाव और लीला अलग-अलग है। अक्षर ब्रह्म का स्वभाव सत् है, इसलिये लीला भी वैसी ही

करेंगे। इसी प्रकार, अक्षरातीत चिद्धन स्वरूप होने से प्रेम और आनन्द की लीला करते हैं। जब तक अक्षर ब्रह्म के स्वरूप एवं स्वभाव में (मेयराज की तरह) प्रेम का प्रवेश नहीं होता, तब तक वे अक्षरधाम में रहकर भी प्रेमलीला का रसपान नहीं कर सकते और न प्रेम लीला ही कर सकते हैं। इस तथ्य को नवरंग वाणी के इन कथनों से समझा जा सकता है—

याते भोगी भोग के, लखे स्वाद सब रंग।

ना लखे भोग भोगी याके, स्वाद रस तरंग॥

जैसे अंगी अंग के, जाने स्वाद रंग रूप।

अंगी के निज चिद की, न जाने अंग सरूप॥

ऐसे मूल सरूप के, अंतर की निरधार।

ना लखे सत आनंद सों, अंतर कीजे लगार॥

ऐसे चिद्धन सरूप के, अंतर की जो कोय।

ना लखी सत आनंद ने, जानो निस्चे सोय॥

याते सत आनंद दोऊ, अंतरजामी नाहें।

है सदा चिद्धन अंतरजामी, सत आनंद के माहें॥

नवरंग वाणी ९ / ३५-३९

साम सामी पसु पंखी नंग के, जंग करें जवेरों दोए।

एक ठौर निरत नाचत, ठौर ठौर सामी होए॥७०॥

रंगमहल की दीवारों तथा थम्भों पर जवाहरातों के नगों के पशु-पक्षी आमने-सामने विद्यमान हैं। नृत्य की प्रतिध्वनि उनसे टकराती है, अर्थात् उनके मुख से भी वैसा ही गायन होने लगता है। भले ही चौथी भूमिका में नृत्य होता है, किन्तु समस्त परमधाम में जगह-जगह वही नृत्य दृष्टिगोचर होता है।



यों सब ठौर जंग अर्स में, कहूं केती विध किन।

अपार अखाड़े सब दिसों, होत सब में रोसन॥७१॥

इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम में नृत्य की यह लीला प्रतिबिम्बित (चैतन्य रूप में) होती है। मैं किस प्रकार से उसकी यथार्थता का कितना वर्णन करूँ। परमधाम में सभी दिशाओं में अनन्त महल हैं और सभी में यह लीला दिखायी देती है।

ए रूह की आंखों देखिए, असल बका के तन।

तो देखो चित्रामन धाम की, करत निरत सबन॥७२॥

हे साथ जी! परमधाम में विद्यमान अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर आप अपनी आत्मिक दृष्टि से यदि इस नृत्य लीला को देखें, तो आपको यह दिखायी देगा कि परमधाम के चित्र रूपी सभी स्वरूप ही इस नृत्य में

संलग्न हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण से ऐसा भाव नहीं लेना चाहिए कि हमें परात्म की दृष्टि से परमधाम दिखायी देगा। परात्म इस समय फरामोशी में है और वहदत में होने से सबकी फरामोशी एकसाथ ही समाप्त होगी। वस्तुतः इसका भाव यह है कि हम अपने इस पञ्चभौतिक तन को भूलकर परात्म का श्रृंगार सजें।

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम लेय के, विलसिए संग खसम॥

सागर ७/४९ का यह कथन यही सिद्ध करता है। इस जागनी लीला में मात्र आत्मिक दृष्टि से ही देखा जा सकता है, परात्म से नहीं।

एह खेल एक पोहोर लग, होत हमेसां इत।

पंद्रा दिन जब घर रहें, तब देखें दुलहा निरत॥७३॥

इस हवेली में हमेशा ही रात्रि ६ से ९ बजे तक तीन घण्टे (एक प्रहर) नृत्य की लीला होती है। शुक्ल पक्ष में १५ दिन वनों में लीला होती है, तथा कृष्ण पक्ष के १५ दिन (वनों से आकर ६ से ९ बजे तक) जब श्री राजश्यामा जी रंगमहल में ही रहते हैं, तो वे नृत्य की लीला को देखते हैं।

मेहेबूब को रिझावने, अनेक कला साधत।

और नजर ना कर सकें, बंध ऐसे ही बांधत॥७४॥

अपने प्रियतम को रिझाने के लिये नवरंग बाई अनेक कलाओं से नृत्य करती हैं। वे अपने मनमोहक नृत्य द्वारा ऐसा समां बाँध देती हैं कि किसी की भी नजर वहाँ से

हटकर और कहीं जा ही नहीं सकती।

थंभ दिवालें सिंघासन, सब में होत निरत।

इन समें पसु पंखी चित्रामन के, सब ठौरों केलि करत॥७५॥

थम्भों, दीवारों, सिंहासन आदि सभी जगह में नृत्य प्रतिबिम्बित होता है। इस समय सभी दीवारों तथा थम्भों पर बने हुए पशु-पक्षियों के चित्र भी नृत्य करते हुए दिखायी देते हैं।

बोहोत बातें बीच अर्स के, किन विध कहूं इन मुख।

जो बैठीं इन मेले मिने, सोई जानें ए सुख॥७६॥

परमधाम की लीला की बहुत रहस्य और आनन्द से भरपूर बातें हैं, जिन्हें इस मुख से मैं कैसे कहूँ। नृत्य की लीला के सुख को तो मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं,

जो मूल मिलावा में अपने मूल तन से बैठी हुई हैं।

ऐसी चारों तरफों कई बैठकें, अंदर या गिरदवाए।

ए सुख अखंड अर्स के, क्यों कर कहे जाए॥७७॥

नृत्य की इस हवेली के समान ही रंगमहल के अन्दर या बाहर चारों ओर बहुत सी बैठकें हैं। परमधाम की नृत्य – लीला के सुख अखण्ड एवं अलौकिक हैं, जिनका वर्णन हो पाना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

**भोम पांचमी पौढ़न की**

शयन की पाँचवी भूमिका

सुख बड़ो भोम पांचमी, मध्य मंदिर बारे हजार।

बीच मोहोल स्यामाजीय को, इन चारों तरफों द्वार॥७८॥

पाँचवी भूमिका के ठीक मध्य में जो नौ चौक हैं, उनमें से मध्य के चौक (महाहवेली) में श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के शयन के लिये १२००० मन्दिर हैं। इस महाहवेली (१२००० मन्दिरों) के मध्य में श्री श्यामा जी के शयन का मन्दिर (रंग प्रवाली) है, जिसकी चारों दिशाओं में चार द्वार हैं। इस भूमिका का सुख अनन्त है।

**विशेष-** श्री राजश्यामा जी के शयन का मन्दिर प्रवाल का बना हुआ अत्यधिक लाल रंग का है, इसलिये इसे रंग प्रवाली मन्दिर कहते हैं।

**चौखूंनी बाखर बनी, तिन विस्तार है बुजरक।**

**चारो तरफों बराबर, कहूं बेवरा बुध माफक॥७९॥**

यह महाहवेली चौरस है और इसका विस्तार बहुत अधिक है। यह चारों ओर एकसमान आयी है, जिसका

विवरण मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कह रही हूँ।

बराबर मोहोल के गिरद, बीच बीच पौरी द्वार।

पौरी के तरफ सामनी, मोहोल दरवाजे चार॥८०॥

इस चौक (महाहवेली) की चारों दिशायें (किनार) एक जैसे (बराबर) आये हैं। मन्दिरों की हार के बीच में पौरी द्वार बने हैं। इन पौरियों से अन्दर आने पर सामने (मध्य के चौक में) रंग प्रवाली मन्दिर दिखायी देता है, जिसकी चारों दिशाओं में चार दरवाजे हैं।

**द्रष्टव्य**— पौरी का अर्थ महाराबी द्वार होता है, जो मन्दिरों की कतार के बीच में बड़े दरवाजों की जगह में भी होते हैं, तथा बाहर गलियों में थम्भों के मध्य में भी होते हैं।

मोहोल के चारों खूने, सोले सोले हवेली।

जमे जो चौसठ कही, तिन द्वार द्वार एक गली॥८१॥

रंग प्रवाली मन्दिर के चारों कोनों पर सोलह –सोलह (१६-१६) हवेलियाँ आयी हैं अर्थात् कुल ६४ हवेलियाँ हैं। इन प्रत्येक हवेलियों के दरवाजे से अन्दर प्रवेश करने पर एक गली चारों ओर आयी है।

**विशेष-** रंग प्रवाली मन्दिर की चारों दिशाओं में गलियाँ (६-६) हैं, जिससे सम्पूर्ण चौक के चार भाग मानकर, प्रत्येक भाग में १६-१६ हवेलियों का वर्णन किया गया है। इन हवेलियों में सर्वप्रथम मन्दिरों की एक हार है, जिसमें चारों दिशाओं में मिलाकर कुल ४३ मन्दिर व एक दिशा में एक बड़ा दरवाजा है। इसके भीतरी तरफ एक गली है। इस गली के भीतरी तरफ कमर-भर ऊँचा चबूतरा है, जिसकी किनार पर थम्भों की एक हार है।



**ओगन-पचास चौपुड़े, ताके कहूं मंदिर।**

**हर एक के एक सौ चौबीस, जमे छे हजार छेहत्तर॥८२॥**

चौराहों (चौपुड़ों) की ७-७ हारे हैं अर्थात् इनकी कुल संख्या ४९ है। अब उनके मन्दिरों की संख्या बताती हूँ। प्रत्येक चौराहे के अन्तर्गत १२४ मन्दिर आते हैं। इस प्रकार, ४९ चौराहों के ६०७६ मन्दिर होते हैं।

**चौक अठाईस त्रिपुड़े, हर एक के एक सौ दोए।**

**अठाईस सै छप्पन, जमें मंदिरन को सोए॥८३॥**

चौक (महाहवेली) की चारों दिशाओं में ७-७, कुल २८ त्रिपुड़े (तिराहे) हैं। प्रत्येक तिराहे के अन्तर्गत १०२ मन्दिर हैं। इस तरह से २८ त्रिपुड़ों के कुल मन्दिरों की संख्या २८५६ होती है।

चौक चार खूने के दोपुड़े, हर एक के ओनासी मंदर।

तीन सै सोले एह जमें, लगते दीवार अंदर॥८४॥

चौक के चारों कोनों पर चार दोपुड़े (दोराहे) हैं। प्रत्येक दोराहे में ७९ मन्दिर हैं। इन चारों दोपुड़ों में कुल मिलाकर ३१६ मन्दिर होते हैं, जो दीवार से लगते हुए (किनार पर दीवार के रूप में) तथा अन्दर की तरफ आये हैं।

चौसठ दरम्यान हवेलियां, सो हिसाब कहूं मंदिरन।

हर एक के तैंतालीस, जमे सताईस सै बावन॥८५॥

दोपुड़े, त्रिपुड़े, और चौपुड़े के बीच-बीच में ८ हवेलियों की ८ हारें हैं, अर्थात् कुल ६४ हवेलियाँ आयी हैं। अब इनके मन्दिरों की संख्या बताती हूँ। प्रत्येक हवेली में ४३ मन्दिर हैं। इस प्रकार, ६४ हवेलियों में २७५२ मन्दिर

होते हैं।

जमे कियो मंदिरन को, सब बारे हजार भए।

दरवाजे थंभ गलियां, अब कहूं जो बाकी रहे॥८६॥

सब मिलाकर मन्दिरों (६०७६ + २८५६ + ३१६ + २७५२) की कुल संख्या १२००० होती है। इसके आगे मैं दरवाजों, थम्भों, तथा गलियों की संख्या बताती हूँ, जो बताना बाकी है।

ओगन पचास चौपुड़े, ताके जमे कियो थंभन।

एक सौ चवालीस हर एकों, जमे सात हजार छप्पन॥८७॥

४९ चौपुड़े हैं, जिनके थम्भों की संख्या कहती हूँ। प्रत्येक चौराहे में १४४ थम्भ हैं, जिससे कुल थम्भों की संख्या  $४९ \times १४४$  अर्थात् ७०५६ होती है।

हर एक के एक सौ पंद्रा, ए जो त्रिपुड़े अठाईस।

थंभ जमे बत्तीस सै, और ऊपर भए जो बीस॥८८॥

२८ त्रिपुड़े हैं और प्रत्येक त्रिपुड़े के ११५ थम्भ हैं। इस प्रकार कुल  $२८ \times ११५ = ३२२०$  थम्भ होते हैं।

चार खूने चार दोपुड़े, पचासी हर एक के।

जमे तीन सै चालीस, एते थंभ भए॥८९॥

चौक के चारों कोनों पर चार दोपुड़े हैं। प्रत्येक दोपुड़े के ८५ थम्भ होते हैं। इस प्रकार ४ दोपुड़ों के कुल थम्भ  $४ \times ८५ = ३४०$  होते हैं।

ए जो चौसठ हवेलियां, तिन हर एक के थंभ चालीस।

तिनके सब जमा कहे, साठ अगले सौ पचीस॥९०॥

इस चौक के अन्दर ६४ हवेलियाँ हैं। प्रत्येक हवेली के ४० थम्भ होते हैं। इस तरह से कुल  $६४ \times ४० = २५६०$  थम्भ होते हैं।

जमे सब थंभन को, एक सौ तेरे हजार।

छेहत्तर तिनके ऊपर, एते भए सुमार॥९१॥

इस प्रकार सभी थम्भों का कुल योग  $७०५६ + ३२२० + ३४० + २५६० = १३१७६$  होता है।

ओगन-पचास चौपुड़े, तिन गली गिनो यों कर।

हर एक की चौबीस कही, जमे अग्यारे सै छेहत्तर॥९२॥

४९ चौपुड़ों की गलियों को भी मैं इस प्रकार गिनती हूँ। प्रत्येक चौपुड़े में २४ गलियाँ होती हैं। इस प्रकार कुल  $४९ \times २४ = ११७६$  गलियाँ होती हैं।

**भावार्थ-** चौपुड़ों की चारों दिशा में ६ - ६ गलियाँ हैं। इसी प्रकार त्रिपुड़े की तीन ओर तथा दोपुड़े के दोनों ओर ६ - ६ गलियाँ आती हैं।

**चौक त्रिपुड़े अठाईस, गली हर एक की अठार।  
तिनकी ए जमे भई, पांच सै ऊपर चार॥९३॥**

चौक में २८ त्रिपुड़े हैं। प्रत्येक त्रिपुड़े की १८ गलियाँ आती हैं। इस प्रकार कुल  $२८ \times १८ = ५०४$  गलियाँ होती हैं।

**चौक चार खूने के दोपुड़े, गली बारे हर एक।  
अड़तालीस ए जमे, ए जो गली दिवालों देख॥९४॥**

चौक के चारों कोनों में चार दोपुड़े आये हैं। इसमें प्रत्येक दोपुड़े की १२ गलियाँ होती हैं। इस प्रकार कुल

४ x १२ = ४८ गलियाँ होती हैं, जो दीवारों (चौक के किनार के मन्दिरों) से लगी हुई हैं।

**और जो चौसठ हवेलियां, एक एक गली गिरदवाए।**

**एक एक द्वार दो दो पौरी, इन बिध ए सोभाए॥९५॥**

चौक में जो ६४ हवेलियाँ हैं, उनमें से प्रत्येक में मन्दिरों की हार के भीतरी तरफ एक गली आयी है। मन्दिरों की हारों के मध्य केवल १-१ ही मुख्य द्वार (एक ही दिशा में) आये हैं, जिसके बाहरी किनार और भीतरी किनार पर एक-एक महराब है। इस प्रकार महराब तो दो हैं, किन्तु दरवाजा एक ही है। इस प्रकार से यह अनुपम शोभा आयी है।

जमे सब गलियन को, सत्रह सै बानबे।

आठों जाम देखिए, ज्यों रूह याही में रहे॥९६॥

इस प्रकार, सभी गलियों की कुल संख्या  $११७६ + ५०४ + ४८ + ६४ = १७९२$  होती है। हे साथ जी! आप इन गलियों की शोभा को दिन-रात (आठों प्रहर) देखा कीजिए, जिससे आपकी आत्मा उसी में हमेशा डूबी रहे (संसार को न देखे)।

बड़े दरवाजे चौक के, एक सौ चवालीस।

तैंतीस सै बारे जमे, हर द्वार पौरी तेईस॥९७॥

इस चौक में १४४ बड़े दरवाजे आये हैं। प्रत्येक बड़े द्वार में २३ महराबें (महराबी द्वार) आयी हैं। इस प्रकार कुल महराबें ३३१२ होती हैं।

**भावार्थ-** दरवाजों तथा महराबों का स्पष्टीकरण इस



प्रकार है—

१४४ दरवाजे— एक हवेली के मुख्य दरवाजे से दूसरी हवेली के मुख्य दरवाजे तक एक ही दरवाजा माना जाता है। उत्तर से दक्षिण की ओर ८ दरवाजों की ९ हारें कुल ७२ दरवाजे होते हैं, और पूर्व से पश्चिम की ओर भी ८ दरवाजों की ९ हारें कुल ७२ दरवाजे होते हैं। इस प्रकार, कुल दरवाजे १४४ होते हैं।

२३ महाराबें— एक बड़े दरवाजे (एक हवेली के दरवाजे से दूसरी हवेली के दरवाजे तक) में २३ खुली महाराबें हैं, जिनमें ११ महाराबें आड़ी तथा १२ महाराबें खड़ी (दायें-बायें) हैं।

११ महाराबें— पहली हवेली के द्वार की २ महाराबें + ३ गलियों के मध्य थम्भों पर २ महाराबें + जुड़ाफे के मन्दिरों के दरवाजों में ३ महाराबें + त्रिपोलिया में थम्भों

पर २ महराबें + दूसरी हवेली के द्वार की २ महराबें = ११ महराबें।

१२ महराबें— दोनों त्रिपोलियों (दोनों हवेलियों तथा जुड़ाफे के मन्दिरों के बीच) में खड़ी ६-६ महराबें हैं। प्रत्येक त्रिपोलिये में दायें-बायें ३-३ महराबें हैं।

यामें बत्तीस द्वार बाहेर के, एक सौ बारे अंदर।

तैंतीस सै बारे जमे, यामें आओ साथ सुंदर॥९८॥

इसमें ३२ दरवाजे बाहर दीवारों (किनारे के मन्दिरों के मध्य) के हैं, और ११२ अन्दर की ओर हैं। इस प्रकार, इन मुख्य दरवाजों की कुल संख्या १४४ होती है तथा महाराबी द्वारों की कुल संख्या ३३१२ होती है। हे साथ जी! आप इनकी शोभा को अपनी आत्मिक दृष्टि से देखिए।

**भावार्थ-** १४४ दरवाजों को यहाँ दूसरी विधि से गिना जा रहा है। यहाँ भी उसी प्रकार एक हवेली के दरवाजे से दूसरी हवेली तक एक ही दरवाजा माना गया है। चौक (महाहवेली) की चारों दिशाओं में (किनार पर) ८-८ दरवाजे हैं। इस तरह कुल ३२ दरवाजे होते हैं। इनके मध्य में पूर्व से पश्चिम  $७ \times ८ = ५६$  दरवाजे होते हैं। उत्तर से दक्षिण  $७ \times ८ = ५६$  दरवाजे होते हैं। इस प्रकार कुल दरवाजे  $३२ + ५६ + ५६ = १४४$  होते हैं, जिनमें ३३१२ खुली महाराबें (पौरियाँ) हैं।

**चौखूंनी चौसठ बाखरे, इनों बीच बीच दरम्यान।**

**दो दो पौरी तिनकी, याको रूहें जानें बयान॥९९॥**

ये ६४ हवेलियाँ चौरस हैं। इनके मन्दिरों की हारों के बीच-बीच में (एक दिशा में) एक-एक मुख्य दरवाजे

आये हैं और प्रत्येक द्वार के ऊपर दो-दो महराबें (बाहरी व भीतरी किनार पर) सुशोभित हो रही हैं। इनकी शोभा का वास्तविक ज्ञान केवल ब्रह्मसृष्टियों को ही होता है।

**मंदिरों माहें खिड़कियां, बाहेर दिवालों के।**

**चारों खूने गुरज से, तित दो दो झरोखे॥१००॥**

हवेलियों की बाहरी ओर जो मन्दिरों की हार है, उनकी मात्र बाहरी दीवार में छोटे दरवाजे (खिड़कियाँ) हैं (प्रत्येक मन्दिर में १-१ दरवाजा आया है तथा सन्धि की ओर भीतरी दीवार में दरवाजा नहीं है। ये मन्दिर हवेलियों में नहीं गिने जाते हैं, बल्कि दोपुड़े, त्रिपुड़े, या चौपुड़े में गिनाते हैं)। मन्दिरों की हार के भीतर जो हवेली के मन्दिरों की हार है (जिसमें ४३ मन्दिर व एक दिशा में १ बड़ा दरवाजा है), उसके चारों कोनों के मन्दिर गुर्ज के

रूप में हैं। इनमें दो-दो दरवाजे झरोखों के रूप में हैं, अर्थात् ये दरवाजे जमीन से कमर-भर ऊँचे हैं, जिनमें सीढ़ी चढ़कर जाना होता है। गुर्ज की जमीन भी कमर-भर ऊँची है।

**भोम पांचमी मध की, इत पौढ़त हैं रात।**

**स्याम स्यामा जी साथ सब, जोलों होए प्रभात॥१०१॥**

पाँचवी भूमिका के मध्य के चौक में श्री राजश्यामा जी तथा सभी सुन्दरसाथ (ब्रह्मात्मायें) रात्रि से लेकर प्रातःकाल तक शयन करते हैं।

**भावार्थ-** परमधाम में निद्रा या शयन नाम की कोई वस्तु नहीं है। पाँचवी भूमिका के अतिरिक्त अन्य सभी लीलायें हकीकत के धरातल पर होती हैं, किन्तु पाँचवी भूमिका की यह प्रेममयी लीला मारिफत (ऋत्,

परमसत्य) के स्तर पर होती है, जिसमें आशिक और माशूक (प्रेमी और प्रेमास्पद) का कोई भी भेद नहीं रह जाता। इसे ही झूठी दुनिया के शब्दों में शयन करना कहा गया है।

ए तो मन्दिर कहे मध के, गिरद मन्दिरों हार।

नेक नेक कही अंदर की, और कई विध मोहोल किनार॥१०२॥

यह तो मैंने मध्य के नवें चौक के मन्दिरों की शोभा एवं लीला का वर्णन किया है, किन्तु इसके चारों ओर और भी मन्दिरों की हारें आयी हैं। मैंने यहाँ अन्दर की लीला का बहुत थोड़ा-थोड़ा सा वर्णन किया है। शयन लीला के इस चौक के अगल-बगल (किनारे) और भी चौक के बहुत से महल (मन्दिर) आये हुए हैं।

## भोम छठी सुखपाल

सुखपालों की छठीं भूमिका

घरों आए पीछे सबन के, छठी भोम सुखपाल।

बने बिराजे मोहोल में, अति बड़ी पड़साल॥१०३॥

छठी भूमिका में बाहरी हार मन्दिरों एवम् थम्भों की पहली हार के मध्य की गली (दहलान, पड़साल) में ६००१ सुखपाल रहते हैं। वनों से सायंकाल आने के पश्चात् सभी सुखपाल यहीं विराजमान हो जाते हैं (२८ थम्भों के चौक में तख्तरवा अर्थात् बृहद् विमान रहता है)।

**द्रष्टव्य—** ५९९९ सुखपाल बाहरी हार ५९९९ मन्दिरों की पाँखे (सन्धि) की दीवार के सामने रहते हैं। शेष २ सुखपाल मुख्य दरवाजे के दायें-बायें की आधी-आधी दीवार के सामने रहते हैं।

**भोम छठी बड़ी जाएगा, है बैठक इत विस्तार।**

**बीच सिंघासन कई विध के, और झरोखे किनार॥१०४॥**

छठी भूमिका में भी बहुत अधिक विस्तार है। यहाँ काफी बैठकें व अन्य स्थान हैं, जिनमें कई प्रकार के सिंहासन और कुर्सियाँ रखी हुई हैं। बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवार पर झरोखे (एवं ३३ हाथ के चौड़े छज्जे) चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं।

**जुदी जुदी जुगतों जाएगा, बहु विध सिंघासन।**

**छोटे बड़े कई माफक, कई छत्र मनी रतन॥१०५॥**

इस भूमिका में अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग प्रकार की बनावट के बहुत से सिंहासन रखे हुए हैं। परिस्थितियों के अनुकूल कुछ सिंहासन छोटे हैं और कुछ बड़े हैं। कई के ऊपर छत्र शोभायमान हैं और वे



रत्नजड़ित मणियों से युक्त होकर जगमगा रहे हैं।

सुख अलेखे देत हैं, चारों तरफों झरोखे।

ए कायम सुख कैसे कहूं, देत दायम हक जे॥१०६॥

बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवार में चारों ओर आये हुए झरोखे अपार सुख देते हैं। जिस सुख को हमेशा स्वयं अक्षरातीत ही अपनी अँगनाओं को देते हैं, उस अखण्ड सुख को यहाँ के शब्दों से मैं कैसे व्यक्त कर सकती हूँ।

सुख देवें जब अंदर, तब ए बातें मीठी बयान।

रंग रस करें रूहन सों, कोई ना सुख इन समान॥१०७॥

इस भूमिका के अन्दर बैठकर धाम धनी अपनी अँगनाओं से जब प्रेम और एकत्व (वहदत) के भावों में

अति मीठी बातें करते हैं, तो इस समय सखियों को जो सुख मिलता है, उसकी कोई भी उपमा नहीं दी जा सकती।

कई चौक कई गलियां, कई हवेलियां अनेक।

देख देख के देखिए, जानों एही विध विसेक॥१०८॥

यहाँ अनेक चौक, गलियाँ, और हवेलियाँ हैं, जिनको बार-बार देखने पर ऐसा लगता है कि एकमात्र यही सबसे अधिक सुन्दर है।

बीच तरफ या गिरदवाए, किन विध कहूं मोहोलन।

एह अर्स की रोसनी, क्यों कहे जुबां इन॥१०९॥

इस छठी भूमिका के बीच वाले भाग में (अन्दर) या बाहर चारों ओर आये हुए महलों की अनुपम शोभा का मैं

कैसे वर्णन करूँ। यह तो अखण्ड परमधाम की अद्वितीय शोभा है, जिसका वर्णन मेरी यह जिह्वा कैसे कर सकती है।

अनेक विध हैं अर्स में, केती विध कहूं जुबान।

कह्या न जाए एक नकस, मुख कहा करे बयान॥११०॥

परमधाम में अनन्त प्रकार की सुन्दरता है, जिसका वर्णन मैं इस जिह्वा से कैसे करूँ। जब परमधाम के एक चित्र की सुन्दरता का भी यथार्थ वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है, तो इस मुख से सम्पूर्ण परमधाम की वास्तविक शोभा कैसे दर्शायी (कही) जा सकती है।

झरोखे इन भोम के, बने बराबर हर हार।

खूबी नूर रोसनी, क्यों कहूं सोभा अपार॥१११॥

छठी भूमिका में बाहरी हार मन्दिरों के झरोखे पंक्तिबद्ध रूप से ऊपर और नीचे की भूमिकाओं के झरोखों की सीध में आये हुए हैं। तेजोमयी ज्योति की आभा से जगमगाते हुए इन झरोखों की अनन्त शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**तेज तेज सों लरत हैं, जहूर जहूर सों जंग।**

**केते कहूं रंग रंग सों, तरंग संग तरंग॥११२॥**

इस छठी भूमिका की प्रत्येक सामग्री (झरोखों, हवेलियों, थम्भों आदि) से निकलने वाला तेज आपस में टकराकर युद्ध सा करता हुआ प्रतीत हो रहा है। इसी प्रकार, नूरी आभा भी आपस में टकराकर अति मनोहर दृश्य उपस्थित कर रही है। प्रत्येक सामग्री के रंग (कान्ति) दूसरे रंगों की कान्ति से सौन्दर्य का युद्ध सा

कर रही है। यही स्थिति इन रंगों से निकलने वाली तरंगों के संघर्ष में भी है, जिसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

## भोम सातमी हिंडोले

सातवीं भूमिका के हिण्डोले

कहा कहूं भोम सातमी, मध्य मोहोल अनेक।

कई विध गलियां हवेलियां, एक दूजी पे नेक॥११३॥

मैं सातवीं भूमिका की अनुपम शोभा का कैसे वर्णन करूँ। इसके अन्दर बहुत से महल बने हुए हैं। इसके अतिरिक्त एक से एक सुन्दर गलियाँ तथा हवेलियाँ भी आयी हैं।

**कई मोहोल कई मालिए, सोई झरोखे सुन्दर।**

**द्वार बार सीढ़ी खिड़कियां, अति सोभा लेत मन्दिर॥११४॥**

इस भूमिका में बहुत से महल तथा अटारी हैं। इसमें बहुत सुन्दर-सुन्दर झरोखे भी आये हैं। मन्दिरों के दरवाजों के पल्ले, सीढ़ियाँ, तथा खिड़कियाँ (अति छोटे दरवाजे) अत्यधिक शोभा को धारण किये हुए हैं।

**कई सुख सातमी भोम के, कई हिंडोले हजार।**

**रुहें आप मन चाहते, अर्स आराम नहीं पार॥११५॥**

इस सातवीं भूमिका में विद्यमान १२००० हिण्डोलों पर झूलने का अनन्त सुख है। इन हिण्डोलों पर सखियाँ अपने प्राणेश्वर के साथ इच्छानुसार झूला झूलती हैं। रंगमहल के आनन्द की तो कोई सीमा ही नहीं है।

**भोम सातमी किनार में, मन्दिर झरोखे जित।**

**दोनों हारों हिंडोले, छप्पर-खटों के इत॥११६॥**

सातवीं भूमिका में बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवार में १-१ झरोखा है। उन मन्दिरों की भीतरी तरफ थम्भों की जो दो हारें आयी हैं, उनकी महाराबों में ६००० - ६००० (कुल १२०००) हिण्डोले षट छप्पर वाले आये हैं।

**साम सामी बैठी रूहें, हेत में सब हींचत।**

**कड़े हिंडोले कई स्वर, बहु विध बोलत॥११७॥**

इन हिण्डोलों में सखियाँ आमने-सामने बैठकर बहुत प्रेम से झूलती हैं। हिण्डोलों में लगे हुए कड़ों से अनेक प्रकार के बहुत से मीठे स्वर सुनायी देते हैं।

गिरदवाए सब हिंडोले, जुदी जुदी जिनसों अनेक।

बारे हजार बोलत, स्वर एक दूजे पे विसेक॥११८॥

सातवीं भूमिका में चारों ओर आये हुए ये हिण्डोले अनेक प्रकार की अलग-अलग शोभा वाले हैं। सभी १२००० हिण्डोलों से अति मधुर ध्वनि निकलती है। ऐसा लगता है जैसे प्रत्येक हिण्डोले की ध्वनि अन्य से अधिक मीठी है।

हांसी होत है इन समें, सुन सुन स्वर खुसाल।

हंस हंस के हंसत, सब संग हींचें नूरजमाल॥११९॥

हिण्डोलों के रस-भरे स्वरों को सुनकर इस समय सभी सखियाँ प्रसन्नता के आवेश में बहुत अधिक हँसती हैं। सभी अपने प्राणप्रियतम के साथ झूला झूलती हैं और बारम्बार हँसती हैं।



ए सुख आनन्द अति बड़ो, रंग रस बढ़त अति जोर।

भूखन हांसी कड़े हिंडोले, ए क्यों कहूं अर्स सुख सोर॥१२०॥

झूला झूलने की इस लीला में सखियों की आत्मा एवं हृदय को बहुत अधिक आनन्द और सुख की अनुभूति होती है। आनन्द का रस बढ़ता ही जाता है। सखियों की मुक्त हँसी, उनके आभूषणों तथा हिण्डोलों के कड़ों से निकलने वाली अति मधुर ध्वनि का कोलाहल इतना सुखदायी होता है कि उसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

अतंत सुख इन बखत को, जो कदी आवे रूह माहें।

तो नींद निज अंग असल की, उड़ जावे कहूं काहें॥१२१॥

इस समय की लीला का सुख अनन्त होता है। यदि इसका थोड़ा सा भी अनुभव इस जागनी ब्रह्माण्ड में

आत्मा को हो जाये, तो उसके हृदय में मूल से जो नींद (फरामोशी) आयी है, वह समाप्त हो जाती है। उसे ऐसा लगता है कि वह थी ही नहीं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में एक गहन रहस्य की ओर संकेत किया गया है। परमधाम में वहदत (एकत्व) होने से परात्म के सभी तनों की जागनी एकसाथ ही होगी। इस जागनी के ब्रह्माण्ड में जागनी केवल आत्मा की होनी है। आत्मायें जिन जीवों के ऊपर विराजमान होकर इस खेल को देख रही हैं, उनके स्वभाव अलग-अलग होने से सबकी जागनी एकसाथ हो पाना सम्भव नहीं है।

परात्म श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर इस संसार के खेल को देख रही है, तो आत्मा अपने जीव के दिल रूपी पर्दे पर स्वयं को तथा खेल को देख रही है। तारतम

वाणी के प्रकाश में जीव स्वयं में आत्म-स्वरूप की भावना करने लगता है तथा चितवनि द्वारा विरह की अवस्था में वह स्वयं को संसार से भी अलग कर लेता है। इसी अवस्था में आत्मा प्रेम का रस लेकर स्वयं को संसार, शरीर, और जीव से अलग मानने लगती है, और युगल स्वरूप तथा परमधाम की शोभा या लीला में डूबकर परात्म जैसी अवस्था को प्राप्त कर लेती है। इसे ही आत्मा की जागनी कहते हैं।

"हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोय" (श्रृंगार ४/१) के कथन से यही निष्कर्ष निकलता है। यदि परात्म श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर माया का खेल न देखे, तो आत्मा में परामोशी का प्रश्न ही नहीं है। चितवनि द्वारा परमधाम की शोभा या लीला को देख लेने के पश्चात् संसार से सम्बन्ध टूट जाता है और आत्मा की

नींद उड़ जाती है, जिसे असल (मूल) की नींद का उड़ जाना कहते हैं।

## भोम आठमी हिंडोले

आठवीं भूमिका के हिण्डोले

इसी भांत भोम आठमी, चार चार खटछप्पर।

चारों तरफों हींचत, ए सोभा कहूं क्यों कर॥१२२॥

आठवीं भूमिका में सातवीं भूमिका के समान १२००० हिण्डोले हैं, किन्तु मध्य गली की महराबों में भी ६००० हिण्डोलों के होने से कुल हिण्डोले १८००० हो जाते हैं। सातवीं भूमिका में आमने –सामने हिण्डोले झूलते हैं, जबकि आठवीं भूमिका में प्रत्येक चौक में चार हिण्डोलों की ताली पड़ती है। यहाँ चारों दिशाओं से झूले एकसाथ आते हैं। चार सखियाँ ताली बजाती हैं। पुनः एकसाथ

सभी हिण्डोले पीछे चले जाते हैं और मध्य के हिण्डोले दूसरी तरफ घूम जाते हैं। फिर दूसरे चौक में इसी प्रकार चार हिण्डोलों की ताली पड़ती है। इस अनुपम शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**चारों तरफों बातें करें, मुख मुख जुदी बान।**

**रंग रस हांस विनोद की, पिउ सों प्रेम रसान॥१२३॥**

इस भूमिका में सखियाँ झूला झूलते हुए चारों दिशाओं में बातें करती हैं, क्योंकि चारों दिशाओं से झूले एकसाथ आते हैं। प्रत्येक सखी के मुख में अलग-अलग बातें होती हैं। प्रियतम के प्रेमरूपी रस में डूबी हुई ये सखियाँ झूला झूलते समय अपने धनी से प्रेम और आनन्द को प्रकट करने वाले हास्य-विनोद (हँसी-मजाक) की बातें किया करती हैं।

चार हिंडोले जुदे जुदे, झूला लेवें सब एक।

एकै बेर सब फिरत हैं, फेर खेल होत विसेक॥१२४॥

झूला झूलते समय चार हिण्डोले एकसाथ चार अलग-अलग दिशाओं से आते हैं तथा एक ही साथ वापस घूम जाते हैं। यही प्रक्रिया बारम्बार चलती रहती है। इस प्रकार की विशेष लीला वहाँ होती है।

और विध बीच हवेलियों, जुदी जुदी कई जिनस।

देख देख के देखिए, एक पे और सरस॥१२५॥

इस आठवीं भूमिका में अलग-अलग कई प्रकार की शोभा लिये हुए हवेलियाँ आयी हैं। इन्हें बारम्बार देखने पर सभी एक-दूसरे से अधिक सुन्दर प्रतीत होती हैं।

**भावार्थ-** कालमाया के ब्रह्माण्ड में किसी सुन्दर वस्तु को लगातार देखने पर उसकी सुन्दरता से अरुचि हो

जाती है, किन्तु परमधाम में इसके विपरीत स्थिति है। वहाँ किसी वस्तु को जितना अधिक देखा जाता है, वह वस्तु उतनी अधिक सुन्दर दिखाई देती है तथा उससे प्रेम और अधिक गहरा होता जाता है।

यद्यपि कालमाया के ब्रह्माण्ड में भी पवित्र प्रेम में इसकी कुछ झलक मिल जाती है, जिसमें अपने प्रेमास्पद को जितना अधिक देखा जाता है उतना अधिक प्रेम और सौन्दर्य की वृद्धि का अनुभव होता है। यद्यपि परमधाम में सभी वस्तुएँ समान रूप से सुन्दर हैं, किन्तु सौन्दर्य के चित्रण में वर्णित वस्तु को सर्वोपरि बताया ही जाता है।

**मंदिर जुदे द्वार जुदे, कई चौक चबूतर।**

**ए सनंध इन मंदिरन की, जुबां सके न बरनन कर॥१२६॥**

इस भूमिका में बहुत से मन्दिर, दरवाजे, चौक, और

चबूतरे हैं, जिनकी शोभा अलग-अलग प्रकार की आयी है। इन मन्दिरों की शोभा तो कुछ इस प्रकार की है कि मेरी यह जिह्वा उनका वर्णन कर ही नहीं सकती।

**भावार्थ-** हवेलियों की शोभा कई प्रकार की है, जैसे- चौरस, गोल, या पञ्चमहल। इसी प्रकार, चबूतरे भी गोल व चौरस होते हैं। यही स्थिति चौकों और दरवाजों के भी सम्बन्ध में है। मन्दिरों में आकृति, माप, रंग, तथा लीला भेद से भी अन्तर होता है। उपरोक्त चौपाइयों में हवेलियों, मन्दिरों, चबूतरे आदि को अलग-अलग शोभा वाला कहने का यही आशय है।

कोटान कोट ले जुबां, जानों बरनन करुं एक द्वार।

ए बरनन तो होवहीं, जो आवे माहें सुमार॥१२७॥

यदि मैं करोड़ों जिह्वायें लेकर इस भूमिका के किसी



मन्दिर के एक दरवाजे की भी शोभा का वर्णन करना चाहूँ, तो यह सम्भव नहीं है। यदि एक दरवाजे की शोभा सीमाबद्ध होती, तब तो उसका वर्णन होता। भला अनन्त शोभा को शब्दों के बन्धन में कैसे बाँधा जा सकता है।

इन ठौर विलास बोहोत है, सो इन जुबां कह्यो न जाए।

ए लीला अर्स खावंद की, केहे केहे रूह पछताए॥१२८॥

इस आठवीं भूमिका की लीला में इतना अधिक आनन्द है कि मेरी यह जिह्वा उसे व्यक्त करने का सामर्थ्य नहीं रखती। यहाँ के हिण्डोलों में झूलने की लीला तो स्वयं हमारे प्राणेश्वर अक्षरातीत ही करते हैं। इसलिये इस लीला के आनन्द का वर्णन करने के पश्चात् मेरी आत्मा के हृदय में पश्चाताप होता है कि अरे! मैंने यह क्या कर दिया, अनन्त को भी शब्दों में प्रकट करने का मेरा यह

साहस! यह तो वैसे ही है, जैसे महासागर की अथाह जलराशि को एक बूँद के रूप में वर्णित करना।

बल तो जुबां को है नहीं, ना कछू बुध को बल।

ए जोगवाई झूठे अंग की, क्यों कहे सुख नेहेचल॥१२९॥

परमधाम के अखण्ड सुखों का वर्णन करने के लिये न तो मेरी जिह्वा में कोई शक्ति है और न ही बुद्धि में कुछ बल है। इस नश्वर शरीर के साधनों (मन, बुद्धि, रसना आदि) से भला अखण्ड सुखों का वर्णन कैसे हो सकता है।

जो कछू हिरदे में आवत, सो आवे नहीं जुबान।

चुप किए भी ना बने, चाहें साथ सुजान॥१३०॥

मेरी आत्मा के धाम-हृदय में जो कुछ भी अनुभव में

आता है, वह जिह्वा द्वारा व्यक्त नहीं हो पा रहा है। किन्तु यदि मैं पूर्ण रूप से चुप भी रहती हूँ तो भी काम नहीं चल सकता, क्योंकि विवेकवान सुन्दरसाथ परमधाम का वर्णन सुनना चाहते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब अक्षरातीत के आवेश से ही यह वाणी अवतरित हुई है, तो उपरोक्त चौपाइयों में श्री महामति जी द्वारा परमधाम की शोभा का वर्णन करने में अपनी असमर्थता क्यों जतायी (बतायी) जा रही है?

इसके समाधान में यही कहना उचित होगा कि अक्षरातीत के आवेश का सम्बन्ध श्री महामति जी के धाम-हृदय से है। उसमें सम्पूर्ण परमधाम की शोभा तो बसी हुई है, किन्तु उसे अल्पांश में ही जीव ग्रहण कर पाता है। जीव के हृदय में आये हुए ज्ञान को भी

पश्यन्ती, मध्यमा, और बैखरी वाणी से गुजरना पड़ता है। ऐसी स्थिति में ज्ञान का अति अल्पांश ही शब्दों में व्यक्त हो पाता है। मायावी जगत् में प्राकृतिक नियमों की विवशता उपरोक्त चौपाइयों में दर्शायी गयी है। यही कारण है कि परमधाम की शोभा का यथार्थ वर्णन इस संसार में नहीं हो सकता।

**कहे रूह सुख पावत, और सुख विचारे अतंत।**

**पर दुख पाऊं इन विध का, कछू पोहोंच न सके सिफत॥१३१॥**

परमधाम के अनन्त सुखों का विचार करने पर और उसे शब्दों में कहने पर मेरी आत्मा के हृदय में बहुत सुख होता है, किन्तु इस संसार में परमधाम की उपमा में जब कोई वस्तु नहीं मिलती, तो उसकी वास्तविक शोभा को न कह पाने का हृदय में दुःख भी होता है।

चारों तरफों हिंडोले, अर्स के गिरदवाए।

सब हिंडोलों हक संग, ए सुख अंग न समाए॥१३२॥

रंगमहल के अन्दर इस आठवीं भूमिका में चारों ओर घेरकर हिण्डोले आये हैं। इन हिण्डोलों में सभी सखियाँ श्री राज जी के साथ झूलने का आनन्द लेती हैं। यह आनन्द इतना अधिक होता है कि हृदय में नहीं समा पाता।

**भोम नवमी गोख (छज्जे) की बैठक**

नवमी भूमिका में छज्जों पर बैठकर निजधाम की शोभा देखना

छज्जे बड़े नौमी भोम के, बोहोत बड़ो विस्तार।

बैठक धनी साथ की, बाहेर की किनार॥१३३॥

नवमी भूमिका में बड़े-बड़े छज्जे आये हैं, जिनका बहुत

अधिक विस्तार है। किनार पर बाहरी हार मन्दिरों की जगह में आये हुए छज्जों पर सखियाँ युगल स्वरूप के साथ बैठकर परमधाम के सम्पूर्ण दृश्यों का आनन्द लेती हैं।

**भावार्थ—** नवमी भूमिका में बाहरी हार मन्दिरों की भीतर की दीवारें और दरवाजे तो हैं, किन्तु सन्धि की एवं बाहर की दीवारें नहीं हैं। बाहरी दीवारों की जगह थम्भों की हार है। इसके बाहरी ओर १ मन्दिर का चौड़ा छज्जा चारों ओर घेरकर निकला है, जिसकी बाहरी किनार पर पुनः थम्भों की एक हार है। इनके मध्य कठेड़ा शोभायमान हो रहा है। २०१ गुर्जों की वजह से २०१ हाँस में २०१ छज्जे दिखायी पड़ रहे हैं। यहाँ पर विराजमान होकर श्री राजश्यामा जी और सखियाँ दूर-दूर के सुन्दर दृश्यों को देखने का आनन्द लेते हैं।

नजरोँ सब आवत है, इन ऊपर की बैठक।

देख दूर की बातें करें, रंग रस उपजावें हक॥१३४॥

इन छज्जों पर बैठने पर सम्पूर्ण परमधाम दिखायी पड़ता है। श्री राज जी यहाँ पर बैठकर परमधाम के दूर-दूर के दृश्यों को दिखाकर उनका वर्णन सुनाते हैं, और सखियों के हृदय में प्रेम और आनन्द का रस प्रवाहित करते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में मात्र लीला रूप में ही दूर की वस्तुओं को देखने की बात कही गयी है, अन्यथा परमधाम में कोई भी वस्तु दूर नहीं है। जिस परमधाम के कण-कण में अक्षरातीत का स्वरूप क्रीड़ा करता है, वहाँ पर कोई भी वस्तु दूर कही ही नहीं जा सकती।

जब बैठें जिन तरफ, तब तितहीं की जुगत।

बातें करें बनाए के, नूर अपने अपनायत॥१३५॥

नवमी भूमिका में धाम धनी जिस तरफ के छज्जों पर भी बैठते हैं, उस तरफ की सम्पूर्ण शोभा के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें अपनी नूरी अँगरूपा अँगनाओं से अति प्यारपूर्वक (अपनेपन से) कहते हैं।

**जब बैठें तरफ नूर की, तब तितहीं का विस्तार।**

**जित सिफत जिन चीज की, तिन सुख नहीं सुमार॥१३६॥**

जब श्री राजश्यामा जी अक्षरधाम की ओर छज्जे पर बैठते हैं, तो वहीं की शोभा का विस्तृत वर्णन करके बताते हैं। स्वयं अक्षरातीत ही जिसकी शोभा का वर्णन करते हैं, उसमें (वर्णित स्थान में) निहित सुखों की कोई सीमा नहीं है।



जब बैठें तरफ पहाड़ की, तब बरनन करें अति दूर।

तिन भोम के सुख को, सुमार नहीं जहूर॥१३७॥

जब धाम धनी माणिक पहाड़ की दिशा में बैठते हैं, तब वे माणिक पहाड़ तथा उसके पास के दूर-दूर के स्थानों की शोभा का वर्णन करते हैं। माणिक पर्वत की सभी भूमिकाओं के सुखों के विस्तार की तो कोई सीमा ही नहीं है।

जब बैठें तरफ दरियाव की, घृत दूध दधी असल।

कायम सुख कायम भोम के, आवें न माहें अकल॥१३८॥

जब श्री राज जी घृत (इश्क), दुग्ध (वहदत), या दधि (युगल स्वरूप के श्रृंगार) सागर की ओर क्रमशः वायव्य, नैऋत्य, या पश्चिम दिशा में बैठते हैं, तो वे वहाँ के अखण्ड सुखों का वर्णन करते हैं। अखण्ड धाम के

अखण्ड सुखों का वर्णन इस संसार की बुद्धि से नहीं हो सकता।

जब बैठें तरफ बड़े बन की, तब सोई सुख बरनन।

पसु पंखियों के इस्क की, कई विध करें रोसन॥१३९॥

जब धाम धनी उत्तर दिशा में बड़ोवन और लाल चबूतरे की ओर छज्जों में बैठते हैं, तब वे वहाँ के अलौकिक सुखों का वर्णन करते हैं। श्री राज जी पशु-पक्षियों के प्रेम की गहन बातों को भी कई प्रकार से स्पष्ट करते हैं।

और पहाड़ जोए जित के, कई विध की मोहोलात।

ताल कुण्ड कई चादरें, इन जुबां कही न जात॥१४०॥

और जब प्रियतम अक्षरातीत पुखराज पर्वत की ओर बैठते हैं, जहाँ से यमुना जी प्रकट होती है, तो वे कई

प्रकार के महलों (आकाशी महल, हजार हाँस के महल, जवैरों के महल, खास महल आदि) की शोभा का वर्णन करते हैं। इसके अतिरिक्त वे पुखराजी ताल, अधबीच के कुण्ड, ४ और १६ धाराओं (झरनों) आदि की शोभा दिखाते हुए वर्णन करते हैं। इस संसार में इनकी शोभा का वर्णन इस जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है।

**या हौज या जोए के, कई विध देवें सुख।**

**जब हक आराम देवहीं, तब सोई करें रूहें रूख॥१४१॥**

श्री राज जी नवमी भूमिका में हौज कौसर ताल या यमुना जी की शोभा का अनेक प्रकार से वर्णन करके असीम सुख देते हैं। धाम धनी जब किसी शोभा का वर्णन करके सुख देते हैं, उस समय सखियों के हृदय में उसी स्थान पर जाने की इच्छा होती है। उनकी दृष्टि भी

उसी ओर होती है।

मोहोल मन्दिर जो मध्य के, सो हैं अति रोसन।

थंभों बेल फूल पांखड़ी, एक पात ना होए बरनन॥१४२॥

इस नवमी भूमिका के मध्य में (दोनों हार मन्दिरों के भीतरी तरफ) जो महल और मन्दिर आये हैं, वे अपनी अलौकिक छटा से जगमगा रहे हैं। इनके थम्भों पर बनी हुई बेलों, फूलों, तथा पँखुड़ियों की शोभा अनुपम है। इस संसार की बुद्धि से नवमी भूमिका के थम्भों पर बनी हुई लताओं के एक पत्ते की शोभा का वर्णन हो पाना भी सम्भव नहीं है।

तो मोहोल मन्दिर की क्यों कहूं, और क्यों कर कहूं दीवार।

कई लाख खिड़की हवेलियां, कई लाखों पौरी पड़साल॥१४३॥

ऐसी अवस्था में महलों, मन्दिरों, और दीवारों की सम्पूर्ण शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है। यहाँ तो लाखों खिड़कियाँ, हवेलियाँ, महाराबें, और पड़सालें हैं, जिनकी यथार्थ शोभा का वर्णन कर पाना कदापि सम्भव नहीं है।

**बैठ बीच नासूत के, अंग नासूती जुबान।**

**अर्स का बरनन कीजिए, सो क्यों कर होए बयान॥१४४॥**

यदि कोई इस नश्वर पृथ्वी लोक में रहकर यहाँ की जिह्वा तथा बुद्धि आदि से स्वलीला अद्वैत परमधाम की अखण्ड शोभा का वर्णन करना चाहे, तो भला यथार्थ (वास्तविक) वर्णन हो पाना कैसे सम्भव है।

## दसमी भोम चांदनी

दसवीं भूमिका आकाशी

दसमी भोमें चांदनी, ए सोभा है अतंत।

कई कदेले कुरसियां, बीच सोभा लेत तखत॥१४५॥

दसवीं भूमिका (छत) में मध्य चबूतरे पर चाँदनी की शोभा अनन्त है। यहाँ पर सखियों के लिये बहुत से गद्दे और कुर्सियाँ विद्यमान हैं, जिनके बीच में युगल स्वरूप के लिये अति सुन्दर सिंहासन भी रखा हुआ है।

कई बैठक मोहोल चांदनी, हक हादी इत आवत।

साथ सब रूहन को, सुख मन चाहे देवत॥१४६॥

रंगमहल की चाँदनी में कई तरह की बैठकें व महल (दहलान व गुम्मटियाँ) हैं। श्री राजश्यामा जी सब सखियों के साथ यहाँ पधारते हैं और तरह-तरह की

प्रेममयी लीलाओं द्वारा उन्हें मनोवांछित सुख देते हैं।

क्यों कहूं इन सुपेती की, उज्जल जोत अपार।

दो सै हांसों चांदनी, नाहीं रोसन नूर सुमार॥१४७॥

इस दसवीं भूमिका में चन्द्रमा की अति उज्ज्वल अनन्त ज्योति फैली हुई है, जिसकी अनुपम सफेदी का मैं कैसे वर्णन करूँ। यहाँ दो सौ एक हाँसों की चाँदनी की अति मनोहर एवं असीम आभा सर्वत्र ही फैली हुई है।

ए जो गुमटियां गिरदवाए की, नगीने एक अगले सौ दोए।

बारे हजार गुमटियां, सोभा लेत अति सोए॥१४८॥

२०१ गुर्जों की चाँदनी पर २०१ रत्नमयी बड़ी गुमटियाँ सुशोभित हो रही हैं। बाहरी हार मन्दिरों की जगह पर जो दहलान आयी है, उसकी चाँदनी में १२००० गुमटियाँ

हैं, जो बहुत अधिक शोभा को धारण किये हुए हैं।

**विशेष-** १-१ मन्दिर की जगह में २-२ गुमटियाँ आयी हैं।

चारों तरफों चेहेबच्चे, ए सोभा अति सुंदर।

जल गिरत फुहारे मोतियों, चारों चांदनी अंदर॥१४९॥

मध्य के चबूतरे के चारों कोनों में चार चहबच्चे आये हैं। इनकी अत्यधिक मनोहर शोभा दृष्टिगोचर हो रही है। इन चारों चहबच्चों से मोतियों की तरह अति उज्ज्वल जल फव्वारों के रूप में चाँदनी के अन्दर गिरते हुए सुशोभित होता है।

गिरदवाए फूल चेहेबच्चे, ए सोभा जुदी जुगत।

अन्तर आंखे खोल के, ए सुख देखो अतंत॥१५०॥



इस चबूतरे और चारों कोनों के चहबच्चों को चारों ओर घेरकर बगीचे, नहरें, और चहबच्चे शोभायमान हो रहे हैं। यह शोभा कुछ अलग प्रकार की है। हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से इस अनुपम रमणीयता (सुन्दरता) को देखें, तो आपको अथाह सुख का अनुभव होगा।

**भावार्थ—** दसवीं आकाशी में पञ्चमहलों की जगह में मेवों के वृक्ष हैं तथा गोल हवेलियों की जगह घास के उद्यान हैं। इसी प्रकार चौरस हवेलियों के स्थान पर फूलों के अति सुन्दर बाग आये हैं, गलियों की जगह में नहरें, एवं कोनों की जगह में चहबच्चे आये हैं। यह चौपाई सब सुन्दरसाथ को परमधाम की प्रेममयी चितवनि के लिये प्रेरित कर रही है।

**सोभा जल फूलन की, गिरद चारों किनार।**

**ए सोभा अतंत देखिए, जो कछू रूह करे विचार॥१५१॥**

चाँदनी में चारों ओर किनार पर चौरस हवेलियों की जगह में फूलों के बाग हैं। प्रत्येक बाग की चारों दिशाओं की नहरों तथा चारों कोनों के चहबच्चों में विद्यमान जल की अति सुन्दर शोभा देखने में आ रही है। हे साथ जी! यदि इस अद्वितीय शोभा के सम्बन्ध में आपकी आत्मा अपने हृदय में कुछ चिन्तन करती है, तो आप इस अनन्त शोभा को अपनी अन्तर्दृष्टि (आत्मिक दृष्टि) से अवश्य देखिए।

**बोहोत बड़ी इत बैठक, विध विध बेसुमार।**

**रात उज्जल अर्स चांदनी, ए सोभा अर्स अपार॥१५२॥**

मध्य चबूतरे की यह बैठक बहुत अधिक सुन्दर है।

इसकी शोभा कई प्रकार से अनन्त है। पूर्णिमा की रात्रि में नूरी चन्द्रमा की अति उज्ज्वल चाँदनी में रंगमहल की असीम शोभा दृष्टिगोचर होती है।

जब हक हादी बीच बैठत, ले रूहें बारे हजार।

नंग जवेर इन जिमी के, गिरद बैठत साज सिनगार॥१५३॥

पूर्णिमा की रात्रि में चबूतरे पर विद्यमान सिंहासन पर जब श्री राजश्यामा जी विराजमान होते हैं और उनके चारों ओर (घेरकर) १२००० सखियाँ अपना श्रृंगार सजकर बैठती हैं, तो उस समय दसवीं आकाशी (चाँदनी) के जवाहरातों के नगों की झलझलाहट देखने योग्य होती है।

राज स्यामाजी बीच में, बैठें सिंघासन ऊपर।

ए तखत हक अर्स का, ए सिफत करूं क्यों कर॥१५४॥

उस समय श्री राजश्यामा जी सिंहासन के ऊपर सभी सखियों के मध्य में बैठे होते हैं। रंगमहल की चाँदनी में धाम धनी जिस सिंहासन पर विराजमान होते हैं, उसकी अपरिमित (असीम) शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

कबूं रूहें निकट, बैठें मिलावा कर।

हाँसी रमूज सनमुख, पिएं प्याले भर भर॥१५५॥

कभी सभी सखियाँ मिलकर श्री राजश्यामा जी के बहुत निकट सामने बैठ जाती हैं तथा हँसते हुए अति प्रेम-भरी बातें करती हैं। इस प्रकार वे अपने हृदय रूपी प्यालों में धाम धनी के नेत्रों से प्रेम का रस भर-भर कर पीती हैं।

कई विध की इत बैठक, जुदी जुदी जिनस।

चारों तरफों अर्स के, देखी और पे और सरस॥१५६॥

अलग-अलग प्रकार की शोभा से युक्त यहाँ अनेक प्रकार की बैठकें (मध्य चबूतरे पर, किनारे छज्जों पर, बगीचों में) हैं। इस चाँदनी से रंगमहल के चारों ओर एक से बढ़कर एक सुन्दर शोभा दिखायी देती है।

बड़ा मोहोल चौक चांदनी, चांद पूरन रह्या छिटक।

रात बीच सिर आवत, जब कबूं बैठे इत हक॥१५७॥

रंगमहल की चाँदनी पर विद्यमान चबूतरे के ऊपर पूर्णमासी के चन्द्रमा का अति सुन्दर एवं शीतल प्रकाश छिटक रहा है। जब आधी रात के समय श्री राजश्यामा जी व सखियाँ चबूतरे के ऊपर बैठे होते हैं, उस समय चन्द्रमा सबके सिर के ऊपर आ जाता है।

अर्स आए लग्या आकासैं, उठ्या जोत अपनी ले।

चांद सितारे अंबर, आए मुकाबिल अर्स के॥१५८॥

उस समय, चन्द्रमा रंगमहल के ऊपर आकाश में अपनी शीतल एवं मनोहारी ज्योति के साथ चमक रहा होता है। उस मनोहर घड़ी में ऐसा प्रतीत होता है, जैसे चन्द्रमा, सितारे, आकाश आदि रंगमहल की चाँदनी के एकदम नजदीक (आमने-सामने) आ गये हों।

चारों तरफों देखिए, रूहें बारे हजार।

जिमी अंबर में रोसनी, उठें किरनें नूर अंबार॥१५९॥

हे साथ जी! यदि आप इस शोभा को देखें, तो आपको दसवीं चाँदनी में चारों ओर १२००० सखियाँ (खेलती, घूमती, बैठी हुयी) दिखायी देती हैं। उस समय धरती से लेकर आकाश तक चारों ओर अनन्त नूरी किरणों की

ज्योति फैली हुई दिखायी देती है।

ऊपर चांदनी बैठक, देखिए नूर द्वारा।

जोत नूर दोऊ सनमुख, अम्बर न माए झलकार॥१६०॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मिक दृष्टि से दसवीं चाँदनी के किनारे छज्जे पर (पूर्व में) बैठकर अक्षरधाम के मुख्य द्वार की शोभा को देखिए। दोनों धामों (परमधाम तथा अक्षरधाम) की नूरी ज्योति आमने –सामने जगमगाती हुई दिखायी पड़ती है। इनकी जगमगाहट इतनी अधिक है कि वहाँ के अनन्त आकाश में भी समा नहीं पाती।

देखों तरफ पुखराज की, या देखों तरफ ताल।

या जोत मानिक देखिए, होए रही अम्बर जिमी सब लाल॥१६१॥

दसवीं चाँदनी से यदि आप पुखराज पहाड़ या हौज़ कौसर ताल की ओर देखें, तो आपको अद्वितीय शोभा दिखायी पड़ेगी। यदि आप ज्योति से भरपूर माणिक पहाड़ की ओर देखें, तो आपको धरती से लेकर आकाश तक चारों ओर उसकी अनुपम लालिमा ही लालिमा दिखायी देती है।

**क्यों कहूं रोसनी चांद की, क्यों कहूं रोसनी हक।**

**क्यों कहूं रोसनी समूह की, जुबां रही इत थक॥१६२॥**

उस समय रंगमहल के ऊपर अपनी शीतल किरणों के प्रकाश को बिखेरने वाले मनोहर चन्द्रमा की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। चबूतरे पर स्थित अति सुन्दर सिंहासन पर विराजमान श्री राज जी की अद्वितीय आभा का वर्णन कर पाना तो किसी भी प्रकार से सम्भव ही



नहीं है। इसी प्रकार, वहाँ पर बैठे हुए सब सुन्दरसाथ की शोभा का वर्णन भी मुझसे नहीं हो सकता। मेरी जिह्वा की शक्ति इसमें थक जाती है।

केहे केहे जुबां इत क्या कहे, तेज जोत रोसन नूर।

सो तो इन जिमी जरे की, आकास न माए जहूर॥१६३॥

परमधाम की धरती के एक कण में भी इतनी ज्योति है कि वह आकाश में समा नहीं पाती। ऐसी स्थिति में , दसवीं आकाशी के नूरी तेज , ज्योति, और प्रकाश से भरपूर शोभा का मेरी यह जिह्वा चाहे कितना भी वर्णन क्यों न करें, किन्तु वह पूर्ण कथन नहीं कर सकती, यह ध्रुव सत्य है।

तार्थे महामत कहे ए मोमिनो, क्यों कहे जुबां इन देह।

रुहअल्ला खोले अन्तर, लीजो लज्जत सब एह॥१६४॥

इसलिये श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी! परमधाम की शब्दातीत शोभा का यथार्थ वर्णन भला इस नश्वर शरीर की जिह्वा कैसे कर सकती है। श्यामा जी ने मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर परमधाम की शोभा एवं लीला के सभी रहस्यों को स्पष्ट कर दिया है, जो श्रीमुखवाणी (तारतम वाणी) के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत है। अब आप इसका रसास्वादन कीजिए।

प्रकरण ॥३१॥ चौपाई ॥१७०२॥

## बाब अर्स अजीम का मता जाहेर किया

### याने एक जवेर का अर्स

इस प्रकरण में यह बात दर्शायी गयी है कि श्री महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान होकर युगल स्वरूप ने परमधाम का ज्ञान प्रकट किया है। यह परमधाम लौकिक दृष्टि से उस जवाहरात की तरह है, जिससे अनेक प्रकार की किरणें (शोभा रूपी सामग्री) निकलती हैं।

गैब बातें बका अर्स की, कहूं सुनी न एते दिन।

हम आए अर्स अजीम से, करें जाहेर हक वतन॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि आज दिन तक इस सृष्टि में किसी ने भी अखण्ड परमधाम के गुह्यतम रहस्यों को नहीं सुना था। हम सभी आत्मायें परमधाम से

आयी हैं, इसलिये मैं धाम धनी की मेहर की छत्रछाया में परमधाम के ज्ञान को प्रकट कर रही हूँ।

**भावार्थ**— यद्यपि संसार में परमधाम की कल्पना तो थी, किन्तु उसके (परब्रह्म के) धाम, स्वरूप, और लीला के सम्बन्ध में किसी को भी वास्तविक बोध नहीं था। सबने वैकुण्ठ, निराकार, या बेहद मण्डल को ही परमधाम मान रखा था।

**दुनियां चौदे तबक की, सब दौड़ी बुध माफक।**

**सुरिया को उलंघ के, किन पाया न बका हक॥२॥**

चौदह लोक के प्राणियों ने अपनी बुद्धि के अनुकूल परमधाम को खोजने का प्रयास किया है, किन्तु कोई भी ज्योति स्वरूप (आदिनारायण, ओ३म्, ईश्वर) को छोड़कर अक्षरातीत के अखण्ड परमधाम को नहीं जान

सका।

**भावार्थ-** चौदह लोक के सभी प्राणी आदिनारायण की चेतना के प्रतिभास (चिदाभास) हैं। इसलिये वे सम्पूर्ण प्रयास करने पर भी अपने बिम्ब (आदिनारायण) से आगे नहीं जा सकते। यही कारण है कि प्रायः सभी मनीषियों ने परब्रह्म को या तो आदिनारायण (ओ३म्) के रूप में माना है या निराकार (मोहसागर) के रूप में। केवल पञ्चवासनायें ही निराकार को पार करके बेहद मण्डल में पहुँची हैं, किन्तु वे भी परमधाम का अनुभव नहीं कर सकी। वेदों में "त्रिपादध्रुवं उदैत्पुरुषः" (यजुर्वेद) त्रिपाद अमृत (बेहद मण्डल) से भी परे परमधाम का वर्णन है, किन्तु तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण कोई भी इस रहस्य को नहीं जान सका।

पढ़ पढ़ वेद कतेब को, नाम धरे आलम।

एती खबर किन ना परी, कहां साहेब कौन हम॥३॥

इस संसार में चारों वेदों तथा कतेब ग्रन्थों (तौरेत, इंजील, जंबूर, तथा कुरआन) का अध्ययन करके बहुत से लोगों ने स्वयं को ज्ञानी होने का दावा किया है, किन्तु तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण कोई भी यह नहीं जान सका कि सच्चिदानन्द परब्रह्म (अल्लाहतआला) कहाँ है और हमारा निज स्वरूप क्या है।

ऊपर तले माहें बाहेर, ए जो कादर की कुदरत।

सो कादर काहू न पाइया, जिनके हुकमें ए होवत॥४॥

इस ब्रह्माण्ड के ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर केवल शून्य (कालमाया) है, जो अक्षर ब्रह्म के स्वप्न में प्रकट हुआ है। जिस अक्षर ब्रह्म के आदेश से सभी ब्रह्माण्ड बनते हैं,

उस अक्षर ब्रह्म को आज दिन तक कोई भी पा नहीं सका है।

**भावार्थ—** अक्षर ब्रह्म चेतन है और उसकी निज शक्ति योगमाया भी चेतन एवं अखण्ड है। अक्षर ब्रह्म के अन्तःकरण अव्याकृत, सबलिक, केवल, और सत्स्वरूप की शक्तियों को क्रमशः सद्रूपमाया, चिद्रूपमाया, आनन्द योगमाया, और मूलमाया कहते हैं। कालमाया वस्तुतः अव्याकृत की सद्माया का प्रतिबिम्बित रूप है, जिसे मोहसागर, महाशून्य, अज्ञान, काल, निराकार आदि नामों से जाना जाता है। इसे नियन्त्रित करने वाला भी अक्षर के मनस्वरूप अव्याकृत का स्वाप्लिक रूप आदिनारायण है, जिसका स्थूल रूप अव्याकृत के स्थूल रूप (ओ३म्) का प्रतिबिम्बित रूप है। अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनायें भी विभूति रूप अक्षर (चतुष्पाद) को ही

जानती हैं, परमधाम में विराजमान मूल अक्षर ब्रह्म को नहीं।

ए गुझ भेद जो गैब का, पाया न चौदे तबक।

कथ कथ सब खाली गए, पर छूटी न काहू सक॥५॥

निराकार-बेहद से परे स्वलीला अद्वैत परमधाम के गुह्य रहस्यों को चौदह लोक के जीव नहीं पा सके। सबने सच्चिदानन्द परब्रह्म की महिमा तो बहुत गायी है, किन्तु किसी को भी उनके धाम, स्वरूप, एवं लीला का कुछ भी अनुभव नहीं हो सका। वे ब्रह्मानन्द से वन्चित रह गये और उनके संशय भी कभी समाप्त नहीं हुए।

ए तले ला मकान के, चार चीजें जिमी आसमान।

ज्यों कबूतर खेल के, आखिर फना निदान॥६॥



आकाश में स्थित यह जगत् चार तत्वों वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी से बना हुआ है। इस स्थूल-सूक्ष्म-कारण जगत् से भी परे निराकार (मोहसागर) का मण्डल है। जिस प्रकार किसी जादूगर के खेल में कबूतर काल्पनिक होते हैं, उसी प्रकार यह संसार भी स्वप्नवत् होने से अन्ततोगत्वा महाप्रलय में लय हो जाने वाला है।

**विशेष-** वैदिक परम्परा में पाँच तत्वों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) से ब्रह्माण्ड की रचना मानी गयी है, जबकि कतेब परम्परा में केवल चार तत्वों (वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) से जगत् की रचना मानी गयी है। आकाश तत्व के अति सूक्ष्म होने के कारण उसे तत्व रूप में नहीं माना गया। इस चौपाई में कतेब की मान्यता के अनुसार ही चार तत्वों से सृष्टि की उत्पत्ति मानी गयी है।

मोहे मेहेर करी रुहअल्ला ने, कुन्जी अर्स की ल्याए।

अर्स बका पट खोल के, इलम दिया समझाए॥७॥

मेरे ऊपर श्यामा जी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) ने अपार कृपा की है। उन्होंने परमधाम का ज्ञान देने वाले तारतम ज्ञान को मेरे हृदय में प्रवेश कराया और माया का पर्दा हटाकर अखण्ड परमधाम की पहचान करा दी। अपने तारतम से उन्होंने सारा अखण्ड ज्ञान मुझे समझा दिया।

गिरो उतरी लैलत कदर में, कहा तिनमें का है तूं।

खोल दे पट अर्स का, ज्यों आए मिले तुझको॥८॥

उन्होंने मुझसे कहा कि माया का खेल देखने के लिये परमधाम की जो आत्मायें इस झूठे जगत् में आयी हैं, उन्हीं आत्माओं में से तुम भी हो। अब तुम तारतम ज्ञान

द्वारा निराकार का पर्दा हटाकर अखण्ड परमधाम का दरवाजा खोल दो, जिससे सभी आत्मायें तुमसे आकर मिल सकें (तुम्हारी सान्निध्यता में परमधाम का ज्ञान प्राप्त कर सकें)।

**जो अरवाहें अर्स की, सो आए मिलेंगी तुझ।**

**तुझ अन्दर मैं आइया, ए केहे फुरमाया मुझ॥९॥**

परमधाम की जो भी आत्मायें हैं, वे तुम्हारे ज्ञान से आकर्षित होकर तुमसे अवश्य मिलेंगी। अब मैं तुम्हारे धाम-हृदय में ही आकर विराजमान हो गया हूँ। यह कहकर उन्होंने मुझे आदेश दिया।

**भावार्थ-** यह प्रसंग मूलतः हब्शा का है। यद्यपि हब्शा में यह कथन श्री राज जी ने किया था, किन्तु उनके साथ श्यामा जी भी विराजमान थीं। युगल स्वरूप पहले सद्गुरु

धनी श्री देवचन्द्र जी के तन में लीला कर रहे थे ,  
इसलिये इस चौपाई में श्री देवचन्द्र जी (श्यामा जी) को  
लक्ष्य करके कहा गया है।

**किन कायम अर्स न पाइया, ए गुझ रही थी बात।**

**अब तू उमत जगाए अर्स की, बीच बका हक जात॥१०॥**

आज तक कोई भी अखण्ड परमधाम को नहीं जानता  
था। परमधाम की बात आज दिन तक छिपी ही रही थी।  
अब तुम परमधाम की उन आत्माओं को जाग्रत करो,  
जिनके मूल तन अखण्ड परमधाम के मूल मिलावा में  
विद्यमान हैं और वे साक्षात् धनी के तन हैं।

**और करी मेहेर महंमदे, अन्दर बैठे आए।**

**कई विध करी बका रोसनी, सो इन जुबां कही न जाए॥११॥**

श्यामा जी ने मेरे ऊपर अपार मेहर की है, जो मेरे धाम-हृदय में आकर विराजमान हो गयी हैं। उन्होंने मेरे हृदय में परमधाम के अनेक गुह्य रहस्यों को उजागर किया है, जिनका वर्णन इस जिह्वा से हो ही नहीं सकता।

**चौदे तबक कर कायम, भिस्त द्वार दीजो खोल।**

**मैं साहेब के हुकम से, अव्वल किया है कौल॥१२॥**

धाम धनी ने मुझे हब्शा में आदेश दिया था कि हे इन्द्रावती! तुम चौदह लोक के सभी प्राणियों को अखण्ड मुक्ति दो और उनके लिये अखण्ड बहिश्तों का दरवाजा खोल दो। मैंने अपने प्रियतम के आदेश से यह कार्य करने के लिये सुन्दरसाथ से पहले वायदा किया है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में मुहम्मद साहब या कुरआन का कोई भी प्रसंग नहीं है, बल्कि यह सारा

घटनाक्रम जागनी लीला से सम्बन्धित है। इस सम्बन्ध में तारतम वाणी की ये चौपाइयाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं—

सो कुंजी दर्ई मेरे हाथ, तू खोल कारन अपने साथ।

प्रकास हि. ३७/९९

चौदे तबक एक होएसी, सब हुकम के परताप।

ए सोभा होसी तुझे सोहागनी, जिन जुदी जाने आप॥

कलस हि. ९/३६

सारों के सुख कारने, तू जाहेर हुई महामत।

कलस हि. ९/३८

मोहे दिल में ऐसा आइया, ए जो खेल देख्या ब्रह्मांड।

तो क्या देखी हम दुनिया, जो इनको न करे अखंड॥

किरंतन ९६/१९

के ये कथन ही वायदा हैं।

सो ढूँढ़ों प्यारी उमत, मेरे हक जात निसबत।

जो रूहें भूली वतन, ताए देऊँ हक बका न्यामत॥१३॥

इसलिये अब मैं परमधाम की अति प्यारी उन ब्रह्मसृष्टियों को ढूँढ़ रही हूँ, जो धाम धनी की अँगरूपा हैं और उनसे परमधाम का अनादि काल से सम्बन्ध है। जो आत्मायें परमधाम को भूल गयी हैं, उन्हें मैं श्री राज जी की अखण्ड सम्पदा (धाम, स्वरूप, और लीला का ज्ञान आदि) दे रही हूँ।

निमूना इन जिमी का, हक को दिया न जाए।

पर कछुक तो कहे बिना, गैब की क्यों समझाए॥१४॥

इस झूठे संसार की किसी भी वस्तु की उपमा अक्षरातीत के परमधाम की किसी भी वस्तु से नहीं दी जा सकती, किन्तु बिना कुछ कहे निजधाम की बातों को

कैसे समझाया जा सकता है।

ज्यों जड़ाव एक मोहोल है, जवेर जड़े कई संग।

कुंदन माहें सोभित, नए नए अनेक रंग॥१५॥

जिस प्रकार शुद्ध सोने में बहुत से जवाहरात जड़े होते हैं और उनमें अनेक प्रकार के नये-नये रंग सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार परमधाम भी एक ऐसे नूरी जवाहरात का महल है, जिसमें अनेक रंगों की शोभा दिखायी पड़ती है।

**भावार्थ-** परमधाम अक्षरातीत के हृदय का ही व्यक्त स्वरूप है, इसलिये वहाँ की शोभा को किसी भी रंग विशेष के बन्धन में नहीं बाँधा जा सकता। पुखराज पहाड़ का पीला रंग, माणिक पहाड़ का लाल रंग, और हौज़ कौसर ताल का श्वेत रंग तो मात्र आधार रूप है। परमधाम रूपी जवाहरात के अन्दर अनन्त प्रकार के रंग



हैं, जिनका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

ए सब एक जवेर का अर्स है, तामें कई तरंग उठत।

जुदे जुदे रंगों झरोखे, अनेक भांत झलकत॥१६॥

यह सम्पूर्ण परमधाम एक ऐसे जवाहरात का है, जिसमें अनेक रंगों की शोभा स्वरूपी तरंगें उठा करती हैं। इस परमधाम (जवाहरात) के अन्दर अलग-अलग रंगों के अनेक प्रकार के झरोखे झलकार करते हैं।

अनेक रंग थंभन में, अनेक सीढ़ियां पड़साल।

कई रंग भोम चबूतरे, कई रंग द्वार दीवार॥१७॥

परमधाम में अनेक रंगों के थम्भ आये हैं। सीढ़ियाँ तथा पड़सालें भी अनेक रंगों की हैं। सभी भूमिकाओं और चबूतरों में बहुत रंग आये हैं। इसी प्रकार, दरवाजों तथा

दीवारों में भी अनेक रंग सुशोभित हो रहे हैं।

इन विध समझो अर्स को, एक जवेर कई रंग।

द्वार दिवालें पड़सालें, और थंभों उठत तरंग॥१८॥

हे साथ जी! आप अपने परमधाम को भी उस जवाहरात के समान समझिए, जिसमें अनेक रंग विद्यमान रहते हैं। निजधाम के दरवाजों, दीवारों, पड़सालों, और थम्भों में अनेक रंगों की तरंगें उठा करती हैं।

जित जैसा रंग चाहिए, तहां तैसा ही देखत।

ना समारे नए किन, ना पुराने पेखत॥१९॥

परमधाम में शोभा के अनुकूल जहाँ कहीं भी जिस रंग की आवश्यकता होती है, वहाँ उस रंग की शोभा स्वतः ही दिखने लगती है। वहाँ कभी भी कोई नयी वस्तु नहीं

बनायी जाती और न किसी वस्तु को आज तक कभी पुराना होते हुए ही देखा गया है।

**जवेर जुदे जुदे सोभित, अनेक रंग अपार।**

**एक जवेर को अर्स है, ज्यों रंग रस बन विचार॥२०॥**

जिस प्रकार किसी वन में अनेक रंग और रस वाले बहुत से वृक्ष होते हैं, उसी प्रकार परमधाम भी एक ऐसा जवाहरात है जिसमें अलग-अलग प्रकार की आकृति है और अनेक तरह की शोभा वाले अनन्त रंग विद्यमान हैं।

**बन सबे एक रस हैं, कई रंग बिरिख अनेक।**

**रंग रस स्वाद जुदे जुदे, कहां लो कहां विवेक॥२१॥**

परमधाम के सभी वन एक समान शोभा वाले हैं, यद्यपि उनमें अनेक रंगों के असंख्य वृक्ष होते हैं। उनके फलों –

फूलों का रंग, रस, तथा स्वाद भी अलग-अलग है, फिर भी सभी एक ही वन की शोभा स्वरूप हैं। इस प्रकार मैं परमधाम के वनों की वास्तविक शोभा का वर्णन किस बुद्धि से करूँ।

**हर जातें कई बिरिख हैं, रंग रस निरमल नेक।**

**स्वाद अलेखे अपार हैं, पर असल बन रस एक॥२२॥**

परमधाम के वनों में प्रत्येक जाति के बहुसंख्यक वृक्ष हैं। उनके रंग भी अति स्वच्छ (सुन्दर) हैं और रस भी अत्युत्तम है। वहाँ के फलों में अनन्त प्रकार के स्वाद हैं, जो इतने अच्छे हैं कि उन्हें इस जिह्वा से व्यक्त ही नहीं किया जा सकता। इतनी विभिन्नता दिखने पर भी सम्पूर्ण वन एकरस है।

गिरद अर्स के देखिया, जहां लो नजर पोहोचत।

एकल छत्री बन की, छेदर ना गेहेरा कित॥२३॥

मैंने रंगमहल के चारों ओर वनों की अपार शोभा को देखा। मेरी दृष्टि जहाँ तक पहुँची, वहीं पर वनों की एक समान छतरी जैसी शोभा दिखायी दी। इस छतरी (चाँदनी) में न तो कहीं पर पत्तियों की कमी से छिद्र दिखायी दिया और न कहीं पत्तियों की अधिकता से ज्यादा घना दिखायी दिया, बल्कि सभी जगह समान रूप से घना है।

**भावार्थ**— बाह्य रूप से देखने पर बड़ोवन, मधुवन, तथा महावन की ऊँचाई क्रमशः १ लाख, २ लाख, और ४ लाख कोस है, किन्तु यदि हम आन्तरिक रूप से देखें तो ऐसा लगेगा कि सभी वृक्षों की ऊँचाई समान है, तभी एक समान छतरी बन सकती है। यद्यपि लीला रूप में वनों

की ऊँचाई में विभिन्नता अवश्य है, किन्तु परमधाम की शोभा को किसी भी सीमाबद्ध ऊँचाई के बन्धन में नहीं बाँधा जा सकता, अन्यथा उसकी ब्रह्मरूपता पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो जायेगा। परमधाम की प्रत्येक वस्तु की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, और रंग-रूप इच्छानुसार घटता-बढ़ता रहता है। वहाँ किसी लौकिक नियम जैसा बन्धन नहीं है।

**ज्यों जड़ाव एक चंद्रवा, जवेर जड़े कई बिध।**

**बन बेली कटाव कई, सोभित सोने की सनंध॥२४॥**

जिस प्रकार किसी चन्द्रवा में अनेक प्रकार के जवाहरात जड़े होते हैं, उसी प्रकार वनों में लतायें सोने के बेल – बूटों की तरह वृक्षों की छतरी (छत) में सुशोभित हो रही हैं।

अनेक रंगों के जवेर, जो जिन संग सोभित।

तिन ठौर बने तिन मिसलें, कई हुए कटाव जुगत॥२५॥

जिस प्रकार चन्द्रवा में शोभा के अनुकूल अनेक रंगों के जवाहरात जड़े होते हैं, उसी तरह वनों की छतरी (चन्द्रवा) में भी रंग और आकृति के अनुसार जहाँ जैसी शोभा चाहिए, वहाँ लताओं द्वारा अनेक प्रकार के बेल-बूटों की वैसी ही शोभा दृष्टिगोचर हो रही है।

एक जिमी जरे की रोसनी, मावत नहीं अकास।

तिन जिमी के जवेर को, क्यों कर कहूं प्रकास॥२६॥

जिस परमधाम की धरती के एक कण में इतनी ज्योति है कि वह सम्पूर्ण आकाश में भी नहीं समा पा रही है, तो वहाँ के जवाहरातों के अनुपम प्रकाश की शोभा को कैसे वर्णित किया जा सकता है।

एह चंद्रवा बन का, नूर रोसन गिरदवाए।

तले जिमी अति रोसनी, ऊपर बन सोभाए॥२७॥

वनों के चन्द्रवा की अद्वितीय शोभा परमधाम में चारों ओर फैली हुई है। नीचे की धरती अत्यधिक ज्योतिर्मयी आभा के साथ जगमगा रही है, तो ऊपर वन की मोहिनी शोभा दिखायी दे रही है।

जरे जरा सब नूर में, छजे दीवार सब नूर।

जिमी बन बीच आकास में, मावत नहीं जहूर॥२८॥

परमधाम का एक-एक कण नूरी शोभा से ओत-प्रोत है। यहाँ के छजे तथा दीवारें सभी नूरमयी हैं। धरती और वनों का प्रकाश तो इतना अधिक (अनन्त) है कि वह आकाश में भी नहीं समा पा रहा है।



सोभा जानवर अर्स के, ताके एक बाल की रोसन।

मावत नहीं आकास में, जुबां क्या करे सिफत इन॥२९॥

परमधाम के जानवरों के एक बाल में भी जब इतना नूरी प्रकाश है कि वह आकाश में नहीं समा पाता, तो उनकी सम्पूर्ण शोभा का वर्णन मेरी यह जिह्वा कैसे कर सकती है।

सिफत न होए एक बाल की, तो क्यों होए सिफत वजूद।

ए केहेनी में न आवत, तो क्यों कहे जुबां नाबूद॥३०॥

जब पशुओं के एक बाल की भी शोभा का वर्णन हो पाना असम्भव है, तो उनके सम्पूर्ण शरीर की शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है। पशु-पक्षियों की जो शोभा शब्दातीत है, वह मेरी इस नश्वर जिह्वा से कैसे कही जा सकती है।

एक बाल ना गिरे पसुअन का, ना खिरे पंखी का पर।

पात पुराना ना होवहीं, अर्स जंगल या जानवर॥३१॥

सम्पूर्ण परमधाम स्वलीला अद्वैत है। वहाँ न तो किसी पशु का कोई (एक भी) बाल गिरता है और न ही किसी पक्षी का पंख झड़ता है। वहाँ के वनों के वृक्षों का एक पत्ता भी कभी पुराना नहीं होता। सम्पूर्ण शोभा में नित्य नवीनता दृष्टिगोचर होती है।

इन जिमी के जानवर, ताए देखत हक नजर।

ए दिल में तो आवहीं, जो रूह देखे विचार कर॥३२॥

परमधाम के पशु-पक्षियों को भी धाम धनी अपनी प्रेममयी दृष्टि से ही देखते हैं। यदि हमारी आत्मा का हृदय इस बात को तारतम वाणी के प्रकाश में बहुत गहराई से विचार करे, तभी यह बात हमें आत्मसात् (स्वीकृत) हो

सकती है, समझ में आ सकती है।

**भावार्थ-** प्रेम शब्दातीत और त्रिगुणातीत होता है। वह शरीरों के बन्धन में नहीं रहता , बल्कि उसका सम्बन्ध मूलतः दिल से होता है। यही कारण है कि धाम धनी जिस प्रेम-भरी दृष्टि से सखियों को देखते हैं, उसी प्रेम-भरी दृष्टि से वे पशु-पक्षियों को भी देखते हैं, क्योंकि पशु-पक्षी भी धनी के ही अंग रूप हैं, आत्म-स्वरूप हैं, और उनके आशिक (प्रेमी) भी हैं। इतना ही नहीं, परमधाम की धरती, आकाश, हवा, पेड़-पौधे सभी आत्म-स्वरूप हैं। इसलिये उन्हें भी वहदत (एकत्व) के रस से भीना हुआ वही प्रेम मिलता है, जो सखियों को मिलता है। वहाँ की लीला को कभी भी लौकिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

पार ना खूबी खुसबोए को, पार ना पसु पंखियन।

मीठी बानी अति बोलत, अंग सोभित चित्रामन॥३३॥

परमधाम की शोभा और सुगन्धि की कोई सीमा नहीं है। यहाँ के पशु-पक्षी भी अनन्त की संख्या में हैं। ये सभी बहुत प्रेम-भरी वाणी बोलते हैं और इनके अंगों पर अति सुन्दर चित्र सुशोभित होते हैं।

सोभा क्यों होए रंग सुरंग की, नैन श्रवन चोंच बान।

सुख देवें कई भांत सों, कई बोलें मीठी जुबान॥३४॥

इन पशु-पक्षियों के नेत्र, श्रवण, और चोंच बहुत सुन्दर रंगों से सुशोभित हो रहे हैं। इनकी विशेष शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। इनकी बोली भी बहुत मोहक है। ये पशु-पक्षी बहुत प्रेम-भरी मीठी वाणी बोलते हैं तथा तरह-तरह की लीलायें करके सखियों एवं युगल स्वरूप

को रिझाते हैं (आनन्दित करते हैं)।

**भावार्थ-** यद्यपि सबको सुख देने वाले तो एकमात्र श्री राज जी ही हैं, किन्तु ये पशु-पक्षी धाम धनी के आशिक (प्रेमी) बनकर उनको रिझाते हैं। इसलिये इस चौपाई में उन्हें सुख देने वाला कहा गया है। "सुख देऊं सुख लेऊं, सुख में जगाऊं साथ" (कलस हि. २३/६८) के कथन से भी प्रेम लीला में श्री राज जी को सुख लेने वाला और देने वाला दोनों कहा गया है।

एक हक को हंसावें खेलके, कई हँसावें मुख बोल।

कोई नहीं निमूना इनका, जो दीजे इनकी तौल॥३५॥

कुछ पशु-पक्षी तरह-तरह के खेल करके, तो कुछ अपने मुख से विचित्र प्रकार की प्रेम भरी बोली बोलकर धाम धनी को हँसाते हैं। इस मायावी जगत् में इनके

समकक्ष (समान) ऐसा कोई भी नहीं है, जिससे इनके प्रेम की उपमा दी जा सके।

**सोभा लेत जिमी जंगल, माहें टोले कई खेलत।**

**ए खूब खेलौने हक के, ए बुजरक इन निसबत॥३६॥**

अलग-अलग टोलियों (समूहों) में क्रीड़ा करने वाले इन पशु-पक्षियों से परमधाम की धरती तथा वन बहुत अधिक सुशोभित होते हैं। यद्यपि ये धाम धनी के आनन्दमयी खिलौने हैं, किन्तु मूल सम्बन्ध की दृष्टि से ये बहुत बड़े हैं।

**भावार्थ-** ये भी सखियों की तरह ही धाम धनी के अंग हैं। "जो सरूप इन जिमी के, सो सब रूह जिनस" (परिकरमा २८/३४) का कथन यही सिद्ध करता है। इस चौपाई में पशु-पक्षियों के लिये "बुजरक" शब्द के

कथन का भी यही आशय है।

**कई पिउ पिउ कर पुकारहीं, कई करें खसम खसम।**

**कई धनी धनी मुख बोलहीं, कई कहें भी तुम भी तुम॥३७॥**

कुछ पशु-पक्षी श्री राज जी को प्रियतम (पिया) कहकर बुलाते हैं, तो कुछ खसम कहकर, और कुछ धनी-धनी कहकर। कुछ के मुख से केवल तू ही तू की आवाज निकलती है।

**भावार्थ-** पिया, खसम, धनी आदि सभी शब्द एकार्थवाची हैं। अपने भावों की अभिव्यक्ति किसी भी भाषा के शब्दों से की जा सकती है। यही दर्शाने के लिये विभिन्न भाषाओं में पिया (हिन्दी), खसम (अरबी), तथा धनी (गुजराती) शब्द का प्रयोग इस चौपाई में किया गया है। "तुम ही तुम" का कथन समर्पण की पराकाष्ठा

(अन्तिम सीमा) का परिचायक है।

इन विध में केते कहूं, बोलें जुबां अनेक।

पर सबों एही जिकर, कहें मुख वाहेदत एक॥३८॥

इस प्रकार मैं पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में कितना कहूँ। भले ही वे अनेक प्रकार की बोलियाँ बोलते हैं, किन्तु सभी के मुख से एकमात्र श्री राज जी की ही चर्चा होती है।

घास करत है सिजदा, करें सिजदा दरखत।

तो क्यों न करें चेतन, यों फुरमान फुरमावत॥३९॥

परमधाम में घास भी श्री राज जी को प्रणाम करती है। वृक्ष भी प्रणाम करते हैं, तो चेतन कहे जाने वाले पशु-पक्षी भला धनी को क्यों नहीं प्रणाम करेंगे अर्थात् अवश्य



करेंगे। कुरआन आदि धर्मग्रन्थों में भी ऐसा ही लिखा है।

**भावार्थ-** परमधाम में जड़ नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। इस चौपाई में पेड़-पौधों और घास को जड़ कहने का आशय स्थावर (एक ही जगह स्थित रहने वाले) होने से है।

घास पसु सब नूर के, जिमी जंगल सब नूर।

आसमान सितारे नूर के, क्यों कहूं नूर चांद सूर॥४०॥

परमधाम में घास, पशु-पक्षी सभी नूरमयी हैं। धरती और वन भी नूरी हैं। यहाँ तक कि आकाश, चन्द्रमा, और तारे भी नूरमयी हैं। ऐसी स्थिति में मैं चन्द्रमा और सूर्य के नूरी स्वरूप का क्या वर्णन करूँ।

आगूं जरे घास अर्स के, ख्वाब हैवान इन्सान।

क्यों दीजे निमूना झूठ का, कायम जिमी जरा रेहेमान॥४१॥

परमधाम की धरती के एक कण या घास के सामने इस स्वप्नमयी जगत के चेतन कहे जाने वाले पशु-पक्षियों या मानवों की कोई तुलना नहीं हो सकती। अक्षरातीत के धाम का एक-एक कण अखण्ड है। उसकी तुलना में इस झूठे संसार का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

इत जरा छोटा बड़ा नूर का, या हौज जोए मोहोलात।

अर्स जरे की इन जुबां, सिफत न कही जात॥४२॥

परमधाम का चाहे कोई छोटा कण हो या बड़ा, सब कुछ नूरमयी है। हौज़ कौसर ताल, यमुना जी, तथा अनन्त महल तो नूरमयी हैं ही। सच तो यह है कि परमधाम के एक कण की भी शोभा का वर्णन यहाँ की

जिह्वा से नहीं हो सकता।

आगूं द्वार अर्स के, चौक बन्या चबूतर।

कबूं हक तखत बैठहीं, आगे खेलें जानवर॥४३॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के आगे चाँदनी चौक में दो चबूतरे आये हैं। इन पर विद्यमान सिंहासन पर कभी-कभी श्री राजश्यामा जी विराजमान होते हैं। उस समय उनके सामने पशु-पक्षी तरह-तरह के खेल करते हैं।

कई कदेलें कुरसियां, ऊपर रूहें बैठत।

सुमार नहीं पसु पंखियों, कई विध खेल करत॥४४॥

चबूतरों पर बहुत से गद्दे और कुर्सियाँ रखी हुई हैं, जिनके ऊपर सखियाँ बैठा करती हैं। उस समय उनके सामने उपस्थित पशु-पक्षियों की कोई सीमा नहीं होती।

अपने प्राणेश्वर को रिझाने के लिये वे तरह-तरह के खेल करते हैं।

**इन दरगाह की रूहन सों, दोस्ती हक की हमेसगी।**

**इन जुबां सों सिफत, क्यों होवे इनकी॥४५॥**

रंगमहल में रहने वाली सखियों (ब्रह्माँगनाओं) से श्री राज जी की अनादि काल से अखण्ड प्रीति है। उनके शाश्वत प्रेम की महिमा का वर्णन इस मिथ्या जिह्वा से नहीं होता।

**भावार्थ-** लौकिक दृष्टि से दो दोस्तों (मित्रों) में हृदय की निश्छल प्रीति (दोस्ती) होती है। अक्षरातीत और सखियों का दिल एक ही है, अतः उनके दिल में अखण्ड प्रेम का होना स्वाभाविक है। इसी तथ्य को दर्शाने के लिये इस चौपाई में "दोस्ती" शब्द का प्रयोग हुआ है।

इसे सांसारिक "दोस्ती" के भाव में नहीं लेना चाहिए।

जो नजीकी निस दिन, हक हादी हमेस।

क्यों कहूं अर्स अरवाहों को, ए जो कायम खुदाई खेस॥४६॥

जो अँगनायें श्री राजश्यामा जी की सान्निध्यता (निकटता) में रहकर पल-पल प्रेम का रसपान करती हैं, उनके इस अखण्ड ब्राह्मी सम्बन्ध (मूल सम्बन्ध) के विषय में मैं क्या कहूँ।

**भावार्थ-** श्री राजश्यामा जी की ही अँगरूपा सभी सखियाँ हैं। इनका दिल आपस में एक-दूसरे में ओत-प्रोत है। ऐसी अवस्था में इनके मूल सम्बन्ध को दर्शाने के लिए निकट (नजीकी) शब्द का प्रयोग मात्र लौकिक दृष्टि से ही किया गया है।

सोभा जाए न कही रूहन की, जो बड़ी रूह के अंग नूर।  
 कहा कहे खूबी इन जुबां, जो असल जात अंकूर॥४७॥

श्यामा जी के अंग की नूर स्वरूपा ब्रह्मसृष्टियों की शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। जो सखियाँ श्री राज जी की अँगरूपा हैं और जिनका उनके चरणों से मूल सम्बन्ध है, उनकी शोभा का वर्णन मेरी इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

**भावार्थ-** इस चौपाई में "अंग" का तात्पर्य हृदय है। श्यामा जी के हृदय में जो प्रेम, आनन्द, ज्ञान, सौन्दर्य, एकत्व आदि गुण हैं, वे सभी सखियों के अन्दर भी हैं। इसलिये उन्हें "अंग नूर" कहा गया है।

अब देखो अंतर विचार के, कैसा सुन्दर सरूप रूहन।  
 किन विध खूबी रूहन की, क्यों वस्तर क्यों भूखन॥४८॥

हे साथ जी! अब आप अपने हृदय में इस बात का विचार करके देखिए कि ब्रह्माङ्गनाओं का स्वरूप कितना सुन्दर है। उनकी कैसी विशेषता है तथा उनके वस्त्र एवं आभूषण कैसी शोभा से युक्त हैं।

देखो कौन सरूप बड़ी रूह का, आपन रूहें जाको अंग।  
हक प्याले पिलावत, बैठाए के अपने संग॥४९॥

आप इस बात का विचार कीजिए कि हम सभी सखियाँ जिन श्यामा जी की अङ्गरूपा हैं, स्वयं उनका स्वरूप कैसा होगा? इन्हीं श्यामा जी को धाम धनी अपने पास बैठाकर अखण्ड प्रेम का रसपान कराते हैं।

कायम हमेसा बुजरकी, सिरदार इन रूहन।

ए जुबां झूठे वजूद की, क्यों करे सिफत इन॥५०॥

ब्रह्मसृष्टियों की प्रमुख (सरदार) श्यामा जी की गरिमा हमेशा ही अखण्ड है। उनकी अनन्त महिमा का वर्णन इस नश्वर शरीर की जिह्वा नहीं कर सकती।

ए सिरदार कदीम रूहन के, हक जात का नूर।

तिन नूर को नूर सब रूहें, ए वाहेदत एकै जहूर॥५१॥

श्यामा जी अनादि काल से सखियों की प्रमुख हैं और श्री राज जी के हृदय का नूर हैं। उस नूर स्वरूप की नूर सभी सखियाँ हैं अर्थात् श्यामा जी श्री राज जी की हृदय-स्वरूपा हैं और श्यामा जी की हृदय-स्वरूपा सखियाँ हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम में एकमात्र श्री राज जी का दिल ही लीला कर रहा है, जिसे वहदत (एकत्व) कहते हैं।



अर्स जरे की सिफत को, पोहोंचत नहीं जुबान।

तो अर्स रूहें सिरदार की, क्यों होवे सिफत बयान॥५२॥

जब परमधाम के एक कण की शोभा का भी वास्तविक वर्णन करने में मेरी जिह्वा असमर्थ हो जाती है , तो ब्रह्मसृष्टियों की प्रमुख श्यामा जी की अनुपम शोभा का वर्णन भला कैसे कर सकती है।

इन अर्स का खावंद, ताकी सिफत होवे क्यों कर।

एह जुबां क्यों केहेवहीं, इन अकल की फिकर॥५३॥

ऐसी अवस्था में तो परमधाम के प्रियतम अक्षरातीत की अद्वितीय शोभा का यथार्थ वर्णन हो पाना कदापि सम्भव नहीं है। माया की इस बुद्धि की सोच से मेरी जिह्वा धनी की शोभा के विषय में कुछ कह ही नहीं सकती।

सूरत हक के जात की, सिफत करूं मुख किन।

जुबां न पोहोंचे जरे लग, तो कैसा सब्द कहूं इन॥५४॥

मैं अक्षरातीत की अँगरूपा ब्रह्मसृष्टियों की सुन्दरता का किस मुख से वर्णन करूँ। जब यहाँ की जिह्वा परमधाम के एक कण की शोभा का भी वर्णन नहीं कर सकती, तो ब्रह्मात्माओं की मनोहर छवि का वर्णन करने के लिये मैं किन शब्दों का प्रयोग करूँ।

सिफत हक सूरत की, क्योंए न आवे जुबांए।

कछू लज्जत तो पाइए, जो आवे फैल हाल माहें॥५५॥

अक्षरातीत श्री राज जी की शोभा का यथार्थ वर्णन तो इस जिह्वा से किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता, किन्तु यदि हम कथनी को करनी और रहनी में रूपान्तरित कर लें तो उनकी अद्वितीय शोभा का अनुभव (रसास्वादन)

हो सकता है।

**भावार्थ-** "करनी" का तात्पर्य है- प्रेममयी चितवनि की राह पर चलना। "रहनी" से आशय है- प्रेम में इस प्रकार डूब जाना कि शरीर और संसार की कोई सुध न रहे।

**कैसा सरूप है हक का, जो इन सबों का खावंद।**

**क्यों देऊं निमूना इनका, इन जुबां मत मंद॥५६॥**

सभी आत्माओं के प्राणवल्लभ श्री राज जी की अति मनोहर छवि कैसी है, उसका कथन नहीं हो पा रहा है। मैं इस नश्वर जिह्वा तथा अपनी (जीव की) अल्प बुद्धि से श्री राज जी के अनन्त सौन्दर्य की उपमा संसार में किससे देकर बताऊँ।

सोभा सुन्दरता जात की, एक हक जात सूरत।

अंतर आंखें खोल तू, अपनी रूह की इत॥५७॥

श्यामा जी सहित सभी सखियों की शोभा – सुन्दरता एक समान है। हे मेरी आत्मा! इस जागनी लीला में अब तू अपनी अन्तर्दृष्टि खोल ले।

**भावार्थ-** इस चौपाई में अपनी आत्मिक दृष्टि को खोलने के लिये प्रेरित किया गया है, जिससे अपनी परात्म को देखा जा सके और जागनी के स्वर्णिम लक्ष्य को पाया जा सके।

रहे ठाढ़ी इन जिमी पर, देख अपना खसम।

देख मिलावा अर्स का, और देख अपनी रसम॥५८॥

भले ही तू इस मायावी जगत् में आयी है, लेकिन अपनी आत्मिक दृष्टि से तू अपने प्राणवल्लभ को देख। रंगमहल

के मूल मिलावा में विराजमान सभी सखियों की परात्म के तनों तथा अष्ट प्रहर की लीला को भी देख।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रेममयी चितवनि करने के लिये स्पष्ट निर्देश दिया गया है। इसलिये अब सुन्दरसाथ को किसी भी प्रकार का बहाना बनाने का अवसर नहीं मिल सकता कि जब धाम धनी का आदेश होगा, तब चितवनि करेंगे या चितवनि करने पर जब शरीर ही छूट जायेगा तो हम चितवनि क्यों करें।

देख तले तरफ जिमीय के, उज्जल जोत अपार।

बन रोसन भरया आसमान लों, किरना नहीं सुमार॥५९॥

हे मेरी आत्मा! अब तू परमधाम की उस नूरी धरती की ओर देख, जो अनन्त उज्ज्वल ज्योति से जगमगा रही है। वनों का अति सुन्दर प्रकाश आकाश में चारों ओर फैला

हुआ है। उनकी किरणों की तो कोई सीमा ही नहीं है।

ऊपर देख तरफ बन के, फल फूल बेली रंग रस।

कहूं जड़ाव ज्यों चंद्रवा, कई कटाव कई नकस॥६०॥

अब तू वनों के ऊपरी भाग की शोभा को तो देख। वृक्षों की डालियों, पत्तियों, रसीले फलों, रंग-बिरंगे फूलों, एवं लताओं ने मिलकर अति सुन्दर छतरी का रूप धारण कर लिया है, जो उस मनोहर चन्द्रवा के समान दिखायी पड़ रहा है जिसमें तरह-तरह के सुन्दर बेल-बूटे एवं चित्र जड़े हुए हैं।

चारों तरफों चंद्रवा, अर्स के यों कर।

दौड़ दौड़ के देखिए, आवत यों ही नजर॥६१॥

रंगमहल के चारों ओर इस प्रकार का चन्द्रवा दिखायी

पड़ रहा है। चारों ओर दौड़-दौड़कर भी देखा जाये, तो भी सर्वत्र यही दृश्य नजर आता है।

फेर फेर बन को देखिए, भांत चन्द्रवा जे।

केहे केहे फेर पछतात हों, ऐसे झूठे निमूना दे॥६२॥

हे साथ जी! आप बार-बार वन की शोभा को देखिए, जिसका ऊपरी भाग अति सुन्दर चन्द्रवा के समान दिखायी दे रहा है। इस झूठे संसार के नगों से जड़े चन्द्रवा की वनों की शोभा से झूठी उपमा देकर मुझे बारम्बार पछताना पड़ता है।

एक जरा कायम देखिए, उड़े चौदे तबक वजूद।

सिफत अर्स की क्यों करे, ए जुबां जो नाबूद॥६३॥

अखण्ड परमधाम के एक कण के तेज के समक्ष

(सामने) चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह नश्वर जिह्वा परमधाम की अनुपम शोभा का वर्णन कैसे कर सकती है।

**कहे सूरज सोना जवेर, ख्वाब में बुजरक ए।**

**क्यों पोहोंचे निमूना झूठ का, अर्स कायम हक के॥६४॥**

इस स्वप्न के संसार में सूर्य, स्वर्ण, और जवाहरात अपनी चमक और तेज की दृष्टि से श्रेष्ठ माने जाते हैं। किन्तु, इस झूठे संसार के इन पदार्थों से श्री राज जी के अखण्ड परमधाम के किसी भी पदार्थ की उपमा नहीं दी जा सकती।

**ए मैं देख दुख पावत, दिल में विचारत यों।**

**जो कदी यों जान बोलों नहीं, तो कहे बिना बने क्यों॥६५॥**



यह स्थिति देखकर मुझे दुःख होता है। मेरे हृदय में ऐसा विचार आता है कि यदि परमधाम की शोभा का वर्णन हो पाना असम्भव मानकर मैं कुछ बोलूँ ही नहीं, तो आत्माओं की जागनी कैसे होगी।

**इन कहे होत है रोसनी, रूह पावत है सुख।**

**और इस्क अंग उपजे, हक सों होत सनमुख॥६६॥**

धाम धनी के आदेश से परमधाम की शोभा के बारे में मैं जो कुछ भी कह रही हूँ, उससे परमधाम के ज्ञान का उजाला फैलता है और आत्माओं के हृदय में सुख होता है। धाम धनी के प्रति प्रेम प्रकट होता है और उनका प्रत्यक्ष दर्शन भी प्राप्त होता है।

उमंग अंग में रोसनी, अलेखे उपजत।

इन कहे अरवाहें अर्स की, अनेक सुख पावत॥६७॥

मेरे द्वारा परमधाम की शोभा का वर्णन होने से ब्रह्मात्माओं के हृदय में ज्ञान का अथाह उजाला प्रकट होता है, जिससे जाग्रत होने की उमंग पैदा होती है। इस प्रकार आत्माओं को मेरे (धनी द्वारा कहलाये) कथनों से अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

जित जित देखों नजरों, हक जिमी अर्स वतन।

कहे सेती कई कोट गुना, आवत अन्दर रोसन॥६८॥

मेरी आत्मिक दृष्टि परमधाम में जहाँ-जहाँ भी पहुँचकर धाम धनी या वहाँ की नूरी धरती आदि की शोभा का वर्णन कर रही है, उससे करोड़ों गुना मुझे दर्शन का अनुभव हो रहा है, जो शब्दों में व्यक्त नहीं हो पाता।

कई कोट गुना बढ़त है, बड़ा नफा रूह जान।

बढ़त बढ़त हक अर्स की, आवत इस्क पेहेचान॥६९॥

किन्तु अनुभव के अंश रूप मेरे कथनों से भी आत्माओं को करोड़ों गुना लाभ पहुँचता है। यह लाभ बढ़ते-बढ़ते अक्षरातीत तथा परमधाम की पहचान देता है, जिससे आत्मा में प्रेम प्रकट होता है।

**भावार्थ-** परमधाम का ज्ञान मिले बिना जागनी के पथ पर एक कदम भी चल पाना सम्भव नहीं है। परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार ग्रन्थ का ज्ञान प्राप्त करके जिस अवस्था को प्राप्त किया जाता है, सामान्य अवस्था की अपेक्षा वह करोड़ों गुना श्रेष्ठ अवस्था कही जाती है। इसके पश्चात् ही करनी, रहनी (फैल-हाल) की स्थिति आती है। इस प्रकार इस चौपाई में परमधाम के उस ज्ञान की महत्ता दर्शायी गयी है, जो श्री महामति जी के धाम-

हृदय से प्रकट हुआ है।

इन कहे से ऐसा होत है, पीछे आवत फैल हाल।

तो ख्वाब में कायम अर्स का, सुख लीजे नूरजमाल॥७०॥

श्री राज जी मेरे द्वारा परमधाम की अखण्ड शोभा का जो वर्णन करवा रहे हैं, उसे आत्मसात् करने के पश्चात् ही करनी तथा रहनी की अवस्था आती है। हे साथ जी! इस स्थिति को प्राप्त करके आप इस नश्वर संसार में अक्षरातीत तथा अखण्ड परमधाम के दर्शन का आनन्द प्राप्त कीजिए।

ए मेहेर देखो मेहेबूब की, बड़ी रूह भेजी इत।

इन जिमी रूहें जगाए के, कर दर्ई ए निसबत॥७१॥

हे साथ जी! आप श्री राज जी की अपार मेहर को तो

देखिए कि उन्होंने श्यामा जी को हमारे बीच संसार में भेज दिया। श्यामा जी ने अपने तारतम ज्ञान द्वारा (मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर ) इस संसार में आत्माओं को जाग्रत किया है और धाम धनी तथा परमधाम से हमारे मूल सम्बन्ध की पहचान करा दी है।

**ए हक का दिया पाइए, कौल फैल या हाल।**

**ए साहेब कायम देवहीं, केहेनी अर्स कमाल॥७२॥**

कथनी (ज्ञान का ग्रहण), करनी, और रहनी धाम धनी की मेहर की छाँव तले ही होती है। अखण्ड सुख देने वाले एकमात्र धाम धनी ही हैं। परमधाम की शोभा एवं लीला (कहनी) आश्चर्य में डालने वाली है, जो आज दिन तक इस संसार में नहीं थी।

जब केहेनी आई अंग में, तब फैल को नाहीं बेर।

फैल आए हाल आइया, लेत कायम रोसनी घेर॥७३॥

जब हृदय में परमधाम की शोभा तथा लीला का ज्ञान आ जाता है, तो चितवनि (करनी) की ओर उन्मुख होने (लग जाने) में देर नहीं लगती। युगल स्वरूप तथा परमधाम की चितवनि में लगे रहने पर प्रेममयी अवस्था (रहनी) आ जाती है, जिससे आत्मा को अखण्ड सुखों का अनुभव होने लगता है (अखण्ड का प्रकाश आ जाता है)।

तले से ऊपर चढ़त है, जिमी की रोसनी।

और जिमी पर उतरत है, ऊपर का नूर बन॥७४॥

परमधाम में धरती की नूरी ज्योति नीचे से ऊपर आकाश में चढ़कर फैल जाती है। इसी प्रकार, वनों की

नूरी आभा भी धरती के ऊपर चारों ओर फैली हुई दिखायी देती है।

देखों जहां जहां दौड़ के, इसी भांत बन छाहें।

जिमी बन नूर देख के, सुख उपजत रूह माहें॥७५॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मिक दृष्टि को परमधाम में जहाँ कहीं भी दौड़ाकर देखें, तो आपको इसी प्रकार वनों की मनोहर छाया दिखायी देगी। वहाँ के वनों तथा धरती की नूरी आभा देखकर आत्मा के धाम-हृदय में सुख पैदा होता है।

ए बाग गिरद अर्स के, और एही गिरदवाए जोए।

एही बाग गिरद हौज के, सब नूर पूर खुसबोए॥७६॥

रंगमहल के चारों ओर इसी प्रकार के (गहरी छाया तथा

तेज से युक्त) वन आये हैं (पूर्व में अमृत, अनार, तथा जाम्बू वन, दक्षिण में वट-पीपल की चौकी, पश्चिम में फूलबाग, तथा उत्तर में बड़ोवन एवं ताड़वन)। यमुना जी तथा हौज़ कौसर ताल को भी घेरकर इसी प्रकार वनों (बड़ोवन) की अति सुन्दर शोभा आयी है। ये सभी वन नूरी हैं और अनन्त सुगन्धि से भरपूर हैं।

**जिमी भी सब एक रस, तिनमें कई जुगत।**

**जित जैसा रंग चाहिए, तित तैसा ही देखत॥७७॥**

परमधाम की सम्पूर्ण धरती भी एक समान दिखाई दे रही है, किन्तु उसमें भी कई प्रकार की शोभा है। जहाँ पर शोभा के अनुकूल जैसा रंग दिखायी देना चाहिए, वहाँ धरती का वैसा ही रंग दिखायी दे रहा है।



रेत किनारे जोए पर, और रेत जिमी पर जेती।

ताल पाल कई मोहोलों पर, कहूं जल खूबी केती॥७८॥

यमुना जी के किनारे तथा वनों की धरती पर जो रेती आयी है, उसकी मनभावन शोभा का वर्णन कैसे करूँ।  
हौज़ कौसर ताल की पाल, टापू महल, एवं तालाब के जल की अलौकिक शोभा को मैं कैसे व्यक्त करूँ।

पहाड़ जवेर केते कहूं, तले बीच ऊपर।

कई जवेर कई रंग के, क्यों कहूं सोभा सुन्दर॥७९॥

माणिक तथा पुखराज पहाड़ में नीचे, बीच, तथा ऊपर अनन्त जवाहरात जड़े हुए हैं, जिनके बारे में मैं कितना बताऊँ। ये जवाहरात अनेक रंगों के हैं, जिनकी शोभा-सुन्दरता को कह पाना सम्भव ही नहीं है।

एही जिमी नूरजलाल की, जिन जानो बाग और।

याही जवेर को मन्दिर, तार्थें एक रस सब ठौर॥८०॥

अक्षरधाम की धरती तथा बागों को भी अन्य किसी प्रकार का नहीं समझना चाहिए। रंगमहल की तरह ही यहाँ भी जवाहरातों के मन्दिर हैं। इस प्रकार, अक्षरधाम तथा रंगमहल की सम्पूर्ण शोभा एक समान ही आयी है।

**भावार्थ—** परमधाम में स्थित अक्षर ब्रह्म का रंगमहल (अक्षरधाम) भी परमधाम के अन्तर्गत ही माना जायेगा। अक्षर ब्रह्म की लीला-स्थली बेहद मण्डल है, जबकि परमधाम में स्थित अक्षरधाम उनका धाम है क्योंकि वे अक्षरातीत के ही सत् के स्वरूप हैं। प्रेममयी धाम में होते हुए भी वे प्रेम की लीला न कर सत्ता की लीला करते हैं। परब्रह्म सच्चिदानन्दमयी हैं, इसलिये सत् के स्वरूप में वे अक्षरधाम में हैं, चिद्धन स्वरूप में स्वयं (श्री राज जी)

हैं, तथा आनन्द स्वरूप में श्यामा जी हैं।

नूर, नीर, रस, तथा सर्वरस सागर भले ही अक्षरधाम की तरफ पड़ते हैं, किन्तु इनमें लीला अक्षर ब्रह्म की नहीं, बल्कि श्री राजश्यामा जी एवं सखियों की ही होती है। किन्तु शोभा की दृष्टि से अक्षरधाम (अक्षर ब्रह्म के रंगमहल) एवं अक्षरातीत के रंगमहल में कोई भी अन्तर नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण परमधाम श्री राज जी के ही हृदय का व्यक्त स्वरूप है।

ना समारया अर्स को, ना किए नूर मन्दिर।

ना किए हौज जोए को, ना पर्वत बन जानवर॥८१॥

रंगमहल को किसी ने बनाया नहीं है। इसी प्रकार यहाँ के नूरमयी मन्दिरों की रचना भी किसी ने नहीं की है। यहाँ तक कि हौज कौसर ताल, यमुना जी, पर्वतों

(माणिक एवं पुखराज), वनों, तथा जानवरों को भी किसी ने बनाया नहीं है, बल्कि ये भी अक्षरातीत की तरह ही अनादि स्वरूप हैं।

**भावार्थ-** जिस प्रकार अग्नि में दाहकता , जल में शीतलता, तथा सूर्य में तेजस्विता का गुण स्वाभाविक है और तभी से है जबसे इन पदार्थों का अस्तित्व है, उसी प्रकार परमधाम के सभी पच्चीस पक्षों के रूप में अक्षरातीत का हृदय ही क्रीड़ा कर रहा है। दूसरे शब्दों में यही कह सकते हैं कि परमधाम का एक भी कण न तो कभी बना है और न कभी नष्ट होगा, बल्कि वह भी अक्षरातीत की तरह सच्चिदानन्दमयी है।

ना समारी जिमी जल को, ना आकास चांद सूर।

वाओ तेज सब हक के, हैं कायम हमेसा नूर॥८२॥

इसी प्रकार, परमधाम की धरती, जल, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य आदि को भी किसी ने बनाया नहीं है। वायु, तेज आदि लीला रूप सभी पदार्थ श्री राज जी के ही अखण्ड नूर के स्वरूप हैं। वहाँ सब कुछ शाश्वत तथा अनादि है।

**है नूर सब नूरजमाल को, फरिस्ते नूर सिफात।**

**रुहें नूर बड़ीरुह को, ए सब मिल एक हक जात॥८३॥**

सम्पूर्ण परमधाम श्री राज जी का ही नूर है। इसी प्रकार फरिश्ते (जिबरील तथा इस्त्राफील) भी श्री राज जी के नूर की ही महिमा के स्वरूप हैं। ब्रह्मसृष्टियाँ श्यामा जी का नूर हैं। इस प्रकार श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म सभी श्री राज जी के ही अंग हैं।

**भावार्थ—** जिस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम श्री राज जी का

हृदय (दिल) है, उसी प्रकार सम्पूर्ण बेहद मण्डल भी अक्षर ब्रह्म का दिल है। जिबरील तथा इस्राफील का निवास सत्स्वरूप (बेहद) है। ये दोनों जोश तथा जाग्रत बुद्धि के स्वरूप (फरिश्ते) हैं। सम्पूर्ण योगमाया का ब्रह्माण्ड भी नूरी है, किन्तु उसमें परमधाम का वहदत का इश्क नहीं है। "जबराईल जोस धनीय का" (खुलासा १२/४५) के कथन से जिबरील को भी धाम धनी का अंग माना गया है। सनंध ग्रन्थ के अनुसार ५ फरिश्ते अक्षर ब्रह्म के नूर से प्रकट होते हैं—

पांच फरिस्ते नूर से, खड़े मिने हुकम। सनंध ३७/२

अजाजील, इस्राफील, तथा जिबरील को अक्षर से प्रकट हुआ माना गया है।

ए नूरी तीनों फरिस्ते, इनों की असल एक।

मारफत सागर ४/२५

अजाजील असराफील, इन दोऊ की असल एक।

सनंध ३७/६

ना तो अजाजील भी नूर से, दे गुमाने डारया दूर।

मारफत सागर ५/५७

श्रीमुखवाणी के इन कथनों से स्पष्ट होता है कि जिसे "हक जात" कहते हैं, वे श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, और महालक्ष्मी हैं। पाँचों फरिश्ते नूर से उत्पन्न हुए हैं, इसलिये इन्हें "नूर जात" कहना उचित होगा। अक्षरातीत के रंगमहल में इन पाँचों फरिश्तों का प्रवेश नहीं है। ये पाँचों फरिश्ते अवश्य धाम धनी की महिमा के स्वरूप हैं, किन्तु परमधाम के इश्क से दूर हैं। इनका सम्बन्ध अक्षर ब्रह्म से है। मूल सम्बन्ध के बिना "हक जात" कहलाने की शोभा नहीं मिल सकती। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी के ये कथन देखने योग्य हैं—

और न पावे पैठने, इत बका बीच खिलवत।

बका अर्स अजीम में, कौन आवे बिना निसबत॥

और तो कोई है नहीं, बिना एक हक जात।

जात मांहें हक वाहेदत, हक हादी गिरो केहेलात।

श्रृंगार २३/२,३

दूसरा इत कोई है नहीं, एकै नूरजमाल।

ए सब में हक नूर है, याही कौल फैल हाल॥८४॥

इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं। दृश्यमान सभी स्वरूपों (पच्चीस पक्ष, श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, खूब खुशालियाँ, एवं पशु-पक्षी) में श्री राज जी का नूर ही क्रीड़ा कर रहा है। इनकी कथनी, करनी, और रहनी भी श्री राज जी के दिल से जुड़ी हुई है, अर्थात् परमधाम की



प्रत्येक क्रिया (कहनी, करनी, और रहनी) में श्री राज जी के दिल की लीला ही दृष्टिगोचर होती है।

**महामत कहे ए मोमिनों, जो अरवा अर्स अजीम।**

**इस्क प्याले लीजियो, भर भर नूर हलीम॥८५॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! आपमें से जो भी परमधाम की आत्मा है, वह अपने हृदय रूपी प्याले में धनी का प्रेम भर-भरकर बहुत अधिक (गहरे) आनन्द से रसपान करे।

**प्रकरण ॥३२॥ चौपाई ॥१७८७॥**

## खिलवत में हांसी फरामोसी दई

अब देखो अन्दर अर्स के, रूहें बैठी बारे हजार।

उतरी लैलत-कदर में, खेल देखन तीन तक़रार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! अब आप अपनी आत्मिक दृष्टि से रंगमहल के मूल मिलावा में देखिए, जहाँ बारह हजार ब्रह्मात्मायें बैठी हुई हैं। वे ब्रज, रास, तथा जागनी लीला को देखने के लिये इस मायावी जगत् में सुरता से आयी हुई हैं।

वास्ते हांसी के मने किए, किया हाँसी को दिल हुक़म।

तो हाँसी को दिल उपज्या, मांग्या हाँसी को खेल खसम॥२॥

धाम धनी ने एक तरफ जहाँ अपनी अँगनाओं के ऊपर हँसी करने के लिये उन्हें खेल देखने से मना किया, वहीं

दूसरी तरफ उनके दिल में खेल देखने की इच्छा भी पैदा की (हुक्म दिया), ताकि उनकी बहुत हँसी की जा सके। धनी के आदेश (हुक्म) के कारण ही सखियों के दिल में खेल देखने की इच्छा पैदा हुई और उन्होंने श्री राज जी से यह हँसी का खेल माँगा।

**भावार्थ-** धाम धनी ने हँसी करने के लिये खेल दिखाने से मना इसलिये किया, ताकि जाग्रत होने के पश्चात् वे यह न कह सकें कि हम तो माया से अनभिज्ञ थीं, आपने हमें मना क्यों नहीं किया ? दूसरी ओर उनके हृदय में खेल देखने की इच्छा भी इसलिये पैदा की, ताकि वे माया में जाकर मुझे पूरी तरह से भूल जायें और उन पर अच्छी तरह से हँसी की जा सके।

ए देखो भोम तले की, बैठा हक मिलावा जित।

आप अर्स में अरवाहों को, खेल मेहेर का दिखावत॥३॥

हे साथ जी! आप प्रथम भूमिका मूल मिलावा में देखिए, जहाँ धाम धनी सखियों के बीच में बैठे हुए हैं। वे परमधाम में अपने चरणों में ही अपनी अँगनाओं को बैठाकर मेहर का खेल दिखा रहे हैं।

**भावार्थ—** अपने दिल की पूर्ण पहचान (मारिफत) का ज्ञान देने के लिये ही धाम धनी ने माया का यह खेल दिखाया है। यह पहचान परमधाम में नहीं थी, जो तारतम वाणी से इस जागनी ब्रह्माण्ड में हुई है। इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कहा गया है कि "मेहर का दरिया" दिल में लिया तो रुहों के दिल में खेल देखने का ख्याल उपजा। धाम धनी की कोई भी लीला आत्माओं को आनन्द देने के लिये ही होती है। इसे श्रीमुखवाणी के

इस कथन से समझा जा सकता है—

सुख हक इस्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सो करो विचार॥

सागर १२/३०

साहेब बैठे तखत पर, खेलावत कर प्यार।

ऐसी हाँसी फरामोसीय की, कबूँ देखी ना बेसुमार॥४॥

धाम धनी मूल मिलावा में सिंहासन पर बैठकर बहुत ही प्यार से माया का यह खेल दिखा रहे हैं। अनन्त हँसी वाला माया का यह खेल ऐसा है, जिसे आज दिन तक सखियों ने कभी भी परमधाम में नहीं देखा था।

उठके गिर गिर पड़सी, फरामोसी हाँसी के खेल।

ए जो तीनों तकरार, हकें देखाए माहें लैल॥५॥

श्री राज जी ने इस मायावी जगत् में अपनी अँगनाओं को जो ब्रज, रास, एवं जागनी का खेल दिखाया है, उसमें सखियाँ जागने के प्रयास में बार-बार उठकर भी गिर जाया करेंगी। इस मायावी नींद में हाँसी का खेल ही ऐसा है।

**भावार्थ-** उठने का तात्पर्य है- शरीर और संसार से परे होकर अपने मूल स्वरूप, निज घर, तथा अपनी आत्मा के प्राण प्रियतम की पहचान कर लेना। इन्हें भुलाकर शरीर और संसार के मोहजाल में फँसे रहना ही नींद है।

क्यों कहूं सुख रुहन के, हकें यों कहा उतरते।

जो केहेता हों तुमको, जिन भूलो खेल में ए॥६॥

इस मायावी जगत् में आते समय श्री राज जी ने सखियों से कहा था कि मैं तुमसे जो विशेष बात कह रहा हूँ, उसे माया में जाने पर भूल नहीं जाना। जिन आत्माओं से धाम धनी इतना प्रेम करते हैं, उनके अखण्ड सुखों का मैं कैसे वर्णन करूँ।

**भावार्थ—** श्री राज जी ने खेल में आते समय यही बात कही थी कि किसी भी स्थिति में मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को अपना प्रियतम न बना लेना।

क्यों कहूँ सुख रूहन के, हक इन विध हांसी करत।

आप देत भुलाए के, आपै जगावत॥७॥

जिन ब्रह्मात्माओं से श्री राज जी इस प्रकार हँसी करते हैं, उनके अनन्त सुख के बारे में मैं क्या कहूँ। वे हँसी करने के लिये भुलाते भी हैं और स्वयं जगाते भी हैं।

क्यों कहूं सुख रुहन के, हकें कौल से किए हुसियार।

दिल नींद दे ऊपर जगावत, करने हाँसी अपार॥८॥

उन ब्रह्मसृष्टियों के अपार सुखों का मैं कैसे वर्णन करूँ, जिनसे धाम धनी इतना प्रेम करते हैं कि उनके मायावी जगत् में उतरते समय ही अपने वचनों से सावचेत कर देते हैं। पुनः उनके ऊपर बहुत अधिक (अपार) हाँसी करने के लिये दिल में नींद देकर ऊपर से ज्ञान द्वारा जगाते भी रहते हैं।

खेल किया हाँसी वास्ते, वास्ते हाँसी किए फरामोस।

वास्ते हाँसी ऊपर पुकारहीं, वास्ते हाँसी न आवत होस॥९॥

धाम धनी ने अपनी प्रियाओं पर हाँसी करने के लिये ही यह माया का झूठा खेल बनाया है। हाँसी करने के लिये ही उन्हें पूरी तरह से संसार में भुला दिया है। ऊपर –



ऊपर से केवल ज्ञान द्वारा जो जगा रहे हैं, वह भी मात्र हँसी के लिये। अखण्ड ज्ञान सुनने पर भी जो माया में सावचेत नहीं हो पा रही हैं (होश में नहीं आ रही हैं), उसमें भी धनी उनकी हँसी करना चाहते हैं।

**भावार्थ—** बिना प्रेम के प्रियतम का दीदार नहीं हो सकता और आत्मा यथार्थ रूप से जाग्रत नहीं हो सकती। ज्ञान द्वारा जागनी अधूरी होती है। प्रेम से रहित ज्ञान हृदय को शुष्क बना देता है और ऐसा सुन्दरसाथ केवल कथनी को ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य मान लेता है। इस भूल की भी बहुत अधिक हँसी होनी है। दूसरी तरफ, कुछ सुन्दरसाथ पर माया की नींद इस प्रकार हावी है कि वे तारतम वाणी का रसपान करना ही नहीं चाहते। यदि थोड़ा बहुत सुनने-पढ़ने का अवसर भी मिलता है, तो वे अपने धनी के प्रति निष्ठा और समर्पण

रख नहीं पाते। परिणाम स्वरूप, वे माया की गहरी निद्रा में सोते रहते हैं। यह होश में नहीं आना ही हँसी का कारण बनेगा।

**आप फरामोसी ऐसी दर्ई, जो भूलियां आप हक घर।**

**ऊपर कई विध केहे केहे थके, पर जाग न सके क्योंकर॥१०॥**

धाम धनी ने सखियों को माया की ऐसी नींद दे दी है कि वे इस संसार में अपने मूल स्वरूप को, धनी को, तथा परमधाम को भी भूल गयी हैं। बाह्य रूप से श्री राज जी अपनी तारतम वाणी द्वारा कई प्रकार से जगा-जगाकर थक गये हैं, किन्तु ये ऐसी निद्रा से ग्रस्त हैं कि किसी भी प्रकार से पूर्ण रूप से जाग नहीं पा रही हैं।

**भावार्थ-** अक्षरातीत का थक जाना सम्भव नहीं है। इस प्रकार के कथन आलंकारिक होते हैं और भावुक प्रसंगों

में प्रयुक्त किये जाते हैं। वस्तुतः सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी तथा श्री प्राणनाथ जी द्वारा जागनी के लिये किये गये अतिशय (अत्यधिक) प्रयासों को ही यहाँ थक जाना कहा गया है।

**ऐसी दारू ल्याए रूहअल्ला, जासों मुरदा जीवता होए।**

**पर फरामोसी इन हाँसी की, उठ न सके कोए॥११॥**

श्यामा जी तारतम ज्ञान रूपी ऐसी औषधि लेकर आयी हैं, जिससे माया में भूला हुआ (मुर्दा) जीव भी जाग्रत हो सकता है। किन्तु हँसी की इस लीला में माया की नींद इतनी शक्तिशाली है कि कोई भी उठ नहीं पा रहा है।

**भावार्थ—** इस चौपाई में तारतम ज्ञान का तात्पर्य केवल १ या ६ चौपाइयाँ नहीं है, बल्कि श्री महामति जी के धाम—हृदय में विराजमान होकर उन्होंने जो परमधाम का

रस उड़ेला है, वही तारतम ज्ञान है। "ए इलम ले रूहअल्ला आया, खोल माएने इमाम केहेलाया" का कथन इसी सन्दर्भ में है। "ए रसना स्यामाजीय की, पिलावत रस रब्ब का" (बीतक ७१/१२) के कथन का भी आशय यही है।

**इन विध हाँसी न जाए कही, कई कोट विधों जगावत।**

**कई दारु उपाय कर कर थेके, दिल ठौर क्योंए न आवत॥१२॥**

इस प्रकार ब्रह्मसृष्टियों की ऐसी रोमाञ्चक हँसी होगी कि उसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। धाम धनी आत्माओं को अनेक प्रकार से जगा रहे हैं। तारतम ज्ञान रूपी औषधि का भी अनेक प्रकार से प्रयोग कर-कर थक चुके हैं, किन्तु सुन्दरसाथ के कठोर हृदय में जागनी का प्रकाश किसी भी प्रकार से पहुँच नहीं पा रहा है।

**विशेष-** करोड़ों प्रकार से जगाना अतिशयोक्ति अलंकार है।

हाँसी होसी अति बड़ी, ए खेल किया वास्ते इन।

औलिया लिह्ला दोस्त कहावहीं, पर बल न चल्या इत किन॥१३॥

यह खेल हँसी के लिये ही बनाया गया है, इसलिये ब्रह्मसृष्टियों की हँसी तो बहुत होगी। ये सुन्दरसाथ श्री राज जी के ऊपर अपना सर्वस्व समर्पण करने वाले सच्चे प्रेमी तो कहलाते हैं, किन्तु इस माया में किसी का भी बल नहीं चल पा रहा है।

हाँसी इसही बात की, फेर फेर होसी ए।

उठ उठ गिर गिर पड़सी, बखत जागने के॥१४॥

ब्रह्मसृष्टियों की बार-बार इस बात की हँसी होनी है कि

जागनी लीला में जब जागने का समय होगा, तब तारतम वाणी के प्रकाश में कुछ जागेंगी लेकिन माया की नींद में पुनः बेसुध हो जाया करेंगी।

**आपन को फरामोस की, नींद आई निहायत।**

**अर्स अजीम में कूदते, कछू चल्या न हकसों इत॥१५॥**

हे साथ जी! यह तो निश्चित है कि हमें माया की बहुत गहरी निद्रा ने जकड़ रखा है। परमधाम में हम सभी इश्क की मस्ती में कूदा करती थीं, किन्तु इस खेल में धाम धनी के हुक्म के आगे हमारा कुछ भी वश नहीं चल पा रहा है।

**अरवाहें हमेसा अर्स की, कहावें खास उमत।**

**पर कछू बल चल्या नहीं, ना तो रखते हक निसबत॥१६॥**

परमधाम की हम आत्मायें हमेशा ही धनी की अर्धांगिनी ब्रह्मसृष्टि कहलाती हैं। श्री राज जी से हमारा अखण्ड सम्बन्ध भी है, फिर भी माया में हम सभी असहाय सी हो गयी हैं। हमारे पास कुछ भी शक्ति नहीं रही।

**भावार्थ-** आत्म-जाग्रति से पूर्व ब्रह्मसृष्टियों का जीवन भी सांसारिक जीवों के निकटस्थ ही होता है, किन्तु प्रियतम को पा लेने के पश्चात् उनकी स्थिति ही बदल जाती है। उस समय यही कहा जा सकता है-

मोमिन बल धनीय का, दुनी तरफ से नाहें।

तो कहे धनी बराबर, जो मूल सरूप हैं धाम के माहें॥

किरंतन ९०/१९

हँसते हँसते उठसी, ऐसी हुई न होसी कब।

हक हंससी आपन पर, ऐसी हुई जो हाँसी अब॥१७॥

परमधाम में सखियाँ अपने परात्म के तनों में हँसते –  
हँसते उठेंगी। इसी प्रकार, श्री राज जी भी हमारी भूलों  
पर हँसेंगे। इस जागनी लीला के पश्चात् परमधाम में जो  
हँसी होनी है, ऐसी हँसी आज दिन तक न तो कभी  
परमधाम में हुई थी और न कभी पुनः होगी।

**कई हांसी खुसाली अर्स में, करी मिनो मिने रुहन।  
पर ए हांसी ऐसी होएसी, जो हुई नहीं कोई दिन॥१८॥**  
सखियों ने धाम धनी के साथ मिलकर आपस में बहुत  
सी आनन्दमयी हँसी की लीलायें की हैं, किन्तु हँसी की  
यह लीला परमधाम में ऐसी होगी जो आज दिन तक  
कभी भी नहीं हो सकी है।



ऐते दिन हाँसी खुसाली, करी रुहों दिल चाही जे।

पर ए हाँसी हक दिल चाही, ताथे बड़ी हाँसी हुई ए॥१९॥

आज दिन तक सखियाँ परमधाम में धाम धनी को रिझाने के लिये अपने दिल की इच्छानुसार हाँसी की आनन्दमयी लीलायें किया करती थीं, किन्तु अबकी बार होने वाली यह हाँसी की लीला श्री राज जी के हृदय की इच्छानुसार है। इसलिये यह सबसे अधिक गरिमा वाली हाँसी की लीला है।

रुह अपनी इन मेले से, जुदी करो जिन खिन।

न्यारी निमख न होए सके, जो होए अरवा मोमिन॥२०॥

हे साथ जी! अब आप अपनी आत्मिक दृष्टि को एक क्षण के लिये भी मूल मिलावा से अलग न कीजिए। यथार्थतः जिसके अन्दर परमधाम का अँकुर होगा, वह

मूल मिलावा से क्षण भर के लिये भी अलग नहीं होगा।

**भावार्थ-** एक बार भी जिसकी आत्मा के धाम-हृदय में मूल मिलावा की शोभा बस जाती है, वह कभी पल-भर के लिये भी उसकी आत्मिक दृष्टि से अलग नहीं हो सकती। अवश्य उसके जीव के हृदय (मन, चित्त, बुद्धि) से स्नान, निद्रा, भोजन, तथा अन्य कार्यों में मूल मिलावा की छवि अलग रहेगी, किन्तु आत्मा से नहीं। जीव के अन्दर भी उसके आनन्द का प्रकाश अष्ट प्रहर बना ही रहता है, भले ही शरीर सो क्यों न रहा हो। इसे ही मूल मिलावा से पल-भर के लिये भी अलग न होना कहा गया है।

इन ठौर ए मिलावा, जिन जुदी जाने आप।

इतहीं तेरी कयामत, याही ठौर मिलाप॥२१॥

हे मेरी आत्मा! तू इस मूल मिलावा में ही अपने प्राणप्रियतम के सम्मुख बैठी हुई है। तू अपने को धाम धनी और मूल मिलावा से अलग न मान। इसी मूल मिलावा में तेरी आत्म-जाग्रति का अखण्ड सुख विद्यमान है और इसी में तुझे अपनी आत्मिक दृष्टि से श्री राजश्यामा जी से मिलना (दर्शन करना) भी है।

**हक हादी इतहीं, इतहीं असलू तन।**

**खोल आंखें इत रूह की, एह तेरा बका वतन॥२२॥**

श्री राजश्यामा जी इसी मूल मिलावा में बैठे हैं। तेरा मूल तन भी यहीं है। तू अपनी आत्मिक दृष्टि खोलकर जरा देख, तो यह परमधाम ही तेरा अखण्ड घर है।

**भावार्थ-** यह ध्रुव सत्य है कि आत्म-जाग्रति के लिये हमारी सुरता की दृष्टि का मूल मिलावा में पहुँचना

अनिवार्य है, किन्तु जब हमारी आत्मिक दृष्टि खुल जाती है तो हमें अपनी आत्मा के धाम-हृदय में ही मूल मिलावा सहित सम्पूर्ण परमधाम नजर आने लगता है। "ऊपर तले अर्स न कह्या, अर्स कह्या मोमिन कलूब" (श्रृंगार २३/७६) का कथन यही सिद्ध करता है। श्रृंगार ग्रन्थ के दूसरे प्रकरण में इस विषय पर बहुत गहरा प्रकाश डाला गया है।

ए ठौर नजर में लीजिए, लगने न दीजे पल।

कौल फैल या हाल सों, देख हक हांसी असल॥२३॥

हे साथ जी! मूल मिलावा की ओर अपनी दृष्टि कीजिए। इस महान कार्य में अब एक पल की भी देरी न कीजिए। अपनी कथनी, करनी, या रहनी की दृष्टि से मूल मिलावा में सिंहासन पर विराजमान श्री राज जी की वास्तविक

हँसी को देखिए कि वे किस प्रकार हमारी भूलों पर हँसी कर रहे हैं।

**भावार्थ**— हमारे मुख से निकले हुए शब्दों में जब केवल सिंहासन पर विराजमान श्री राजश्यामा जी ही होते हैं, तो इसे "कथनी" की दृष्टि से देखना कहते हैं। चितवनि में युगल स्वरूप को लक्ष्य करना "करनी" की दृष्टि से देखना है, तथा प्रेममयी चितवनि की गहन स्थिति में युगल स्वरूप के मुस्कराते हुए मुखारविन्द को देखना "रहनी" की दृष्टि से देखना है।

इत देख फेर फेर तूं, अपनी रूह की आंखां खोल।  
 कर कुरबानी आपको, आए पोहोंच्या कयामत कौल॥२४॥  
 हे मेरी आत्मा! अब तू अपनी आँखे (अन्तर्दृष्टि) खोल  
 और अपने प्राणेश्वर को बार-बार देख। धनी के प्रेम में तू

अपने अस्तित्व को मिटा दे। धनी द्वारा तेरी आत्म-जाग्रति की पुकार हो रही है, अर्थात् श्री राज जी तुझे जाग्रत होने के लिये पुकार रहे हैं।

**ए हांसी करी हक ने, फरामोसी की दे।**

**क्यों न विचारें आपन, ए तरंग इस्क के॥२५॥**

धाम धनी ने हमें माया की नींद में डालकर हमारे ऊपर हँसी की यह विचित्र लीला की है। जिस मूल मिलावा की चितवनि (ध्यान) से हमारे अन्दर इश्क की तरंगें आती हैं, उसके विषय में हम क्यों नहीं विचार रहे अर्थात् हम चितवनि के मार्ग पर क्यों नहीं चल रहे।

**याथें देखो हक इस्क, हेत प्रीत मेहेरबान।**

**ए हकें करी ऐसी हांसियां, खोल आंखें दिल आन॥२६॥**

इसलिये हे साथ जी! मेहर के सागर अक्षरातीत हमारे साथ कितना प्रेम-प्रीति और लाड-प्यार करते हैं, उसके बारे में विचार कीजिए। अपने अन्तःचक्षुओं को खोलकर दिल में इसका विचार कीजिये कि श्री राज जी ने हमारे ऊपर मूल सम्बन्ध के प्रेम से ही इस तरह हँसी की लीला की है।

ऐसा हेत देख्या हक का, तो भी लगे न कलेजे घाए।

ऐसी रब रमूजें सुन के, हाए हाए उड़त नहीं अरवाए॥२७॥

हे साथ जी! धनी का इतना प्यार देखकर भी हमारे इन कठोर कलेजों में चोट क्यों नहीं लगती। धनी के इस प्रकार के प्रेम-भरे हँसी मजाक को सुनकर भी हाय-हाय हमारी आत्मा इस संसार को छोड़कर धनी के अखण्ड प्रेम में क्यों नहीं डूब जाती।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में आत्मा का शरीर छोड़ने का तात्पर्य मृत्यु को प्राप्त होना नहीं है , बल्कि धनी के प्रेम में इतना डूब जाना है कि शरीर और संसार के प्रति रञ्जमात्र भी मोह न रह जाये। "ये दोऊ तन तले कदम, आतम परआतम के" के अनुसार दोनों तन जब धनी की छत्रछाया में हैं, तो बिना उनके आदेश के इस नश्वर तन का छूट पाना सम्भव नहीं है। यदि देहान्त के पश्चात् भी देह और संसार के प्रति मोह बना रहा, तो शरीर छोड़ने की उपयोगिता ही क्या है। इसलिये इस चौपाई में शरीर और संसार के मोह के त्याग का निर्देश किया है। इसे ही जीवित रहते हुए मर जाना कहते हैं। "जीवते मारिये आपको, शब्द पुकारत हक" के कथन का भी यही आशय है।



ए सुख जरा याद न आवहीं, याद न एक एहेसान।

हक देत याद कई विध सों, हाए हाए ऐसी लगी नींद निदान॥२८॥

हाय! हाय! हमें माया की गहरी नींद ने ऐसा कर दिया है कि न तो हमें धनी के परमधाम वाले प्रेम-भरे सुखों की जरा भी याद आ रही है और न उनके एक भी उपकार की याद आ रही है। यद्यपि वे अपनी तारतम वाणी द्वारा हमें कई प्रकार से उनकी याद अवश्य दिला रहे हैं।

**भावार्थ-** "एहसान" का वास्तविक आशय धनी का माया में हमारे प्रति किया हुआ प्रेम-भरा व्यवहार ही होता है। नेकी, उपकार, गुण आदि शब्द एहसान के वास्तविक आशय को प्रकट नहीं कर सकते।

ना तो ऐसी मेहेर इस्क सों, हक करत आपन सों।

जगाए के पेहेचान सब दई, हाए हाए आवत ना होस मौं॥२९॥

अन्यथा श्री राज जी तो हम सभी आत्माओं पर अति प्रेम-भरी अपार मेहर कर रहे हैं। उन्होंने अपने तारतम ज्ञान से हमें अपनी सारी पहचान भी दे दी है, फिर भी हम इतने निष्ठुर हृदय वाले हो गये हैं कि माया की नींद को छोड़कर जाग्रत नहीं हो पा रहे हैं (होश में नहीं आ पा रहे हैं)।

**महामत कहे ए मोमिनो, ए देखो हक की मेहेर।**

**जो एक एहेसान हक का लीजिए, तो चौदे तबक लगे जेहेर॥३०॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! धाम धनी इस मायावी जगत में भी हमारे ऊपर जो असीम मेहर कर रहे हैं, उसकी पहचान कीजिए। यदि आप श्री राज जी के अनन्त उपकारों (एहसानों) में से केवल एक उपकार की भी पहचान कर लें, तो आपको चौदह लोक का यह

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विष के समान कष्टकारी लगने लगेगा  
तथा आप इसे छोड़कर केवल धाम धनी से ही प्रेम करने  
लगेगे।

**प्रकरण ॥३३॥ चौपाई ॥१८१७॥**

## परिकरमा नजीक अर्स के

रंगमहल के निकट की परिक्रमा

इस प्रकरण में रंगमहल के आस-पास की शोभा का अति मनोहर वर्णन किया गया है।

बेवरा अगली भोम का, मेहेराव और झरोखे।

खूबी क्यों कहूं दीवार की, सोभा लेत इत ए॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि मैं रंगमहल की प्रथम भूमिका का विवरण दे रही हूँ, जिसमें महाराबों तथा झरोखों की अनुपम शोभा आयी है। जिस प्रकार दीवार अपनी अति मनोहारिणी शोभा से जगमगा रही है, उसका वर्णन मैं कैसे करूँ।

गिरदवाए मेहेराव झरोखे, फेर देखिए तरफ चार।

इन मुख खूबी तो कहूं, जो होवे कहूं सुमार॥२॥

रंगमहल के चारों ओर बाहरी हार मन्दिरों की महाराबों (दरवाजे) एवं झरोखों की शोभा को आप पुनः देखिए। अपने इस मुख से इनकी शोभा का वर्णन तो तब करूँ, जब इस शोभा की कोई सीमा हो।

बेसुमार जो फेर फेर कहिए, तो आवत नहीं हिरदे।

तो सब्द में ल्यावत, ज्यों दिल आवे मोमिनों के॥३॥

यदि परमधाम की शोभा को बारम्बार केवल अनन्त ही कहा जाये, तो वह शोभा हृदय में नहीं आ सकती है। मैंने असीम शोभा को सीमाबद्ध करके शब्दों के बन्धन में इसलिये बाँधा है, जिससे ब्रह्मसृष्टियों के दिल में उतर सके।

पार ना कहूं अर्स का, सो कह्या बीच दिल मोमिन।

ए विचार कर देखिए बका, सो ल्याए बीच दिल इन॥४॥

परमधाम का कहीं भी ओर-छोर नहीं है, वह अनन्त है। ऐसा असीम परमधाम भी आत्माओं के धाम-हृदय में स्थित कहा गया है। हे साथ जी! आप इस बात का विचार करके देखिए कि धाम धनी ने अनन्त परमधाम को भी आपके अति छोटे से धाम-हृदय में बसा दिया है।

**भावार्थ-** "बालाग्रशतभागस्यशतिधा कल्पितस्य च" (श्वेताश्वेतर उपनिषद) के कथनानुसार जीव बाल की नोक के १००००वें भाग से भी छोटा होता है। इसी प्रकार उसका हृदय (दिल) भी बहुत सूक्ष्म होता है। ऐसी स्थिति में आत्मा का धाम - हृदय कितना सूक्ष्म है, उसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। जिस प्रकार पानी के एक बुलबुले में पृथ्वी से १३ लाख गुना

बड़ा सूर्य प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्रकार अति सूक्ष्म आत्मा के धाम-हृदय में अनन्त परमधाम की छवि प्रतिबिम्बित होती है।

**हिसाब बीच लिया बिना, हक आवें नहीं दिल माहें।**

**हक देत लदुनी मेहेर कर, हक अर्स आवे बीच जुबां॥५॥**

असीम परमधाम को सीमाबद्ध किये बिना श्री राजश्यामा जी की शोभा को दिल में बसाया ही नहीं जा सकता। धाम धनी ने हमारे ऊपर अपार मेहर कर परमधाम का यह अलौकिक ज्ञान दिया है, जिससे श्री राज जी तथा परमधाम का वर्णन हो पा रहा है।

**दोऊ तरफ बड़े द्वार के, ए जो हांसैं कही पचास।**

**सामी चौक चांदनी, क्यों कहूं खूबी खास॥६॥**

रंगमहल की पूर्व दिशा में ५१ हाँस हैं, जिनके मध्य में १० मन्दिर का लम्बा मुख्य दरवाजे का हाँस है। इसके दायें-बायें २५-२५ (कुल ५०) हाँस हैं। मुख्य द्वार के सामने चाँदनी चौक है, जिसकी विशेष शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

देहेलान ऊपर द्वार के, जो ऊपर चबूतरे दोए।

चार चार मंदिर दोऊ तरफ के, ऊपर लग चांदनी सोए॥७॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के दायें-बायें के ४-४ मन्दिरों के सामने दो चबूतरे आये हैं, जो ४-४ मन्दिर के लम्बे और २-२ मन्दिर के चौड़े हैं। इस मुख्य द्वार व दायें-बायें के ४-४ मन्दिरों के ऊपर तीसरी भूमिका में दहलान की शोभा है। नीचे चबूतरों पर बाहरी और भीतरी तरफ ५-५ थम्भ हैं। इस प्रकार ये थम्भ चाँदनी



तक आये हुए हैं (ऊपर की भूमिकाओं में चबूतरों की जगह में झरोखे-पड़सालें आयी हैं)।

**हांस पचास अगली दिवालें, दोऊ तरफों पचीस पचीस।**

**दो मेहेराव बीच झरोखे, हर हांसें मंदिर तीस॥८॥**

रंगमहल की पूर्व दिशा में, मुख्य दरवाजे के हाँस के दायें-बायें २५-२५ (कुल ५०) हाँस हैं (ये गिनती में ५० हाँस हैं, किन्तु देखने में ५१ हाँस हैं, क्योंकि सामने के दो हाँसों से ५-५ मन्दिर लेकर ही मध्य में १० मन्दिर का लम्बा मुख्य दरवाजे का हाँस बना है)। प्रत्येक हाँस में ३०-३० मन्दिर हैं (मध्य में दरवाजे का हाँस १० मन्दिर लम्बा है तथा इसके दायें-बायें के हाँस २५-२५ मन्दिर के हैं। बाकी सभी हाँस ३०-३० मन्दिर लम्बे हैं)। इन बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी

दीवार में २-२ महराब (दरवाजे) और इनके मध्य में १-१ झरोखे हैं (दरवाजे के हाँस के मन्दिरों की बाहरी दीवार में १-१ झरोखा नहीं है, क्योंकि यहाँ प्रत्येक भूमिका में बड़े झरोखे (पड़सालें) हैं)।

**हर मंदिर एक झरोखा, याकी सोभा किन मुख होए।**

**आए लग्या बन दिवालें, देत मीठी खुसबोए॥९॥**

बाहरी हार के प्रत्येक मन्दिर की बाहरी दीवार में एक झरोखा आया हुआ है, जिसकी शोभा इतनी अधिक है कि मुख से उसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। वनों की डालियाँ रंगमहल की दीवारों (झरोखों) से लगी हुई हैं, जिससे मीठी-मीठी सुगन्धि आती रहती है।

दोए भोम कही जो बन की, खिड़की मोहोल तिन बन।

भोम दूजी मोहोल झरोखे, इत बसत पसु पंखियन॥१०॥

रंगमहल के पूर्व में जो तीन वन (अनार, अमृत, और जाम्बू) आये हैं, उनकी दो भूमिका एवं तीसरी चाँदनी है। इनकी दोनों भूमिकाओं की डालियाँ रंगमहल के झरोखों से मिली हुई हैं, अर्थात् इन वनों की प्रथम भूमिका की डालियाँ (छत) रंगमहल की प्रथम भूमिका के झरोखों से मिली हुई हैं। इसी प्रकार दूसरी भूमिका की डालियाँ (छत) दूसरी भूमिका के ३३ हाथ चौड़े छज्जे (झरोखे) से मिली हुई हैं। इन वनों में अनन्त प्रकार के पशु-पक्षी निवास करते हैं।

उतर झरोखों से जाइए, दूजी भोम बन माहें।

बन सोभे पसु पंखियों, कई हक जस गावें जुबांए॥११॥

रंगमहल की प्रथम भूमिका के झरोखों से वनों की दूसरी भूमिका में पहुँच जाते हैं। वनों में अपार संख्या में पशु – पक्षी रहते हैं, जो अपने मुख से निरन्तर धनी की महिमा का गायन करते रहते हैं।

**चल जाइए सातों घाट लग, खूबी देख होइए खुसाल।**

**कई विध हक जिकर करें, पसु पंखी अपने हाल॥१२॥**

वनों की दूसरी भूमिका से होते हुए सातों घाटों तक जा सकते हैं, क्योंकि इन वनों की डालियाँ पुखराजी रौंस पर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों से मिली हुई हैं। पुखराजी रौंस पर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों की डालियाँ पाल पर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों से मिली हुई हैं। इन सातों घाटों में रहने वाले पशु-पक्षी प्रेम में डूबकर अनेक प्रकार से धाम धनी की महिमा का गायन करते हैं। हे साथ जी!

आप यहाँ की अनुपम शोभा को देखकर आनन्दित होइए।

इस्क जुबां बानी गावहीं, खूब सोभित अति नैन।

मगन होत हक सिफत में, मुख मीठी बानी बैन॥१३॥

ये पशु-पक्षी प्रेम से भरी हुई वाणी गाते हैं। इनके नेत्र बहुत अधिक सुशोभित हो रहे हैं। अपने मुख से अति मीठी वाणी द्वारा धाम धनी की महिमा के गायन में मग्न रहते हैं।

किन बिध कहूं पसु पंखियों, परों पर चित्रामन।

मुख बोलें हक के हाल में, तिन अंबर भरे रोसन॥१४॥

मैं पशु-पक्षियों के शरीर तथा पंखों पर बने हुए चित्रों की शोभा का वर्णन कैसे करूँ। श्री राज जी के प्रेम में

डूबकर ये बहुत मीठी वाणी बोलते हैं, जिसकी गूँज सम्पूर्ण आकाश में सुनायी पड़ती है।

जैसी सोभा पसु पंखियों, सोभा तैसी भोम बीच बन।

सो सोभा मीठी हक जिकर, यों हाल खुसाल रात दिन॥१५॥

जैसी शोभा पशु-पक्षियों की है, वैसी ही शोभा वनों की धरती की भी है। ये पशु-पक्षी बहुत मीठी भाषा में धनी की महिमा का वर्णन करते हैं और रात-दिन आनन्दित रहते हैं।

सोभा जाए ना कही बन पंखियों, और जिकर करत हैं जे।

तो हक हादी रूहें मिलावा, कहूं किन विध सोभा ए॥१६॥

जब धनी की महिमा का गायन करने वाले वनों के पशु-पक्षियों की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता, तो

मूल मिलावा में युगल स्वरूप सहित सभी सखियों की बैठक की अनुपम शोभा का वर्णन किस प्रकार से करूँ।

इतथें चलके जाइए, ऊपर दोऊ पुलन।

ए खूबी मैं क्यों कहूँ, जो नूरजमाल मोहोलन॥१७॥

हे साथ जी! इन सातों घाटों से होते हुए यमुना जी के ऊपर स्थित दोनों पुलों पर आ जाइये और यहाँ की शोभा को देखिए। धनी की प्रेममयी क्रीड़ा के स्थल रूप इन दोनों पुलों (महलों) की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**भावार्थ—** केल वन के वृक्षों की डालियाँ केल पुल के छज्जों से मिली हुई हैं तथा वट घाट के वट वृक्ष की डालियाँ वट पुल के छज्जों से मिली हुई हैं। इनके द्वारा सातों घाटों से होते हुए दोनों पुलों पर आ-जा सकते हैं।

सात घाट कहे बीच में, माहें पसु पंखी खेलत।

तले भोम या ऊपर, बन में केलि करत॥१८॥

इन दोनों पुलों के बीच यमुना जी के दोनों ओर पाल पर सात घाट आये हैं, जिनमें अपार पशु-पक्षी हैं जो तरह-तरह की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करते हैं। वनों में, धरती पर या वृक्षों के ऊपर, इनकी क्रीड़ा अनवरत होती रहती है।

केल लिबोई अनार, बाईं तरफ खूबी देत।

जांबू नारंगी बट दाहिने, नूर सनमुख सोभा लेत॥१९॥

रंगमहल के मुख्य दरवाजे की बायीं ओर (उत्तर में) केला, नीम्बू, तथा अनार के वन (घाट) शोभायमान हो रहे हैं। दायीं ओर (दक्षिण में) जामुन, नारंगी, तथा वट के वन (घाट) हैं। ये सभी घाट (वन) अक्षर धाम की ओर भी आये हैं।



**भावार्थ-** वनों का वह हिस्सा जो नदी के किनारे होता है, वह घाट कहलाता है। रंगमहल के पूर्व में जो सात वन आये हैं, उनका यमुना जी के किनारे का हिस्सा (पाल पर आये बड़ोवन के वृक्ष) घाट कहलाता है।

**दोए पुल सात घाट बीच में, पाट घाट बिराजत।**

**बीच दोऊ दरबार के, बन अंबर जोत धरत॥२०॥**

दोनों पुलों के बीच में यमुना जी के दोनों ओर सात घाट हैं। इन सातों घाटों के मध्य में अमृत वन के सामने यमुना जी पर पाट घाट आया है (ऐसा पाट घाट अक्षर धाम की तरफ भी यमुना जी पर है)। इस प्रकार रंगमहल तथा अक्षरधाम के मध्य वनों (घाटों) की अपरम्पार शोभा है। इन वनों की अपार ज्योति आकाश में चारों ओर फैली हुई है।

जो घड़नाले पुल तले, दस दस दोऊ के।

दस नेहेरें चलें दोरी बंध, बड़ी अचरज खूबी ए॥२१॥

दोनों पुलों के नीचे से यमुना जी का जल १०-१० घड़नालों में से होकर प्रवाहित होता है। इनसे निकलने वाला जल १० नहरों के जल की तरह पंक्तिबद्ध रूप में बहते हुए दिखायी देता है। यह बहुत ही आश्चर्यजनक शोभा है।

दोऊ पुल देख के आइए, निकुंज मंदिरों पर।

इत देख देख के देखिए, खूबी जुबां कहे क्यों कर॥२२॥

हे साथ जी! दोनों पुलों की शोभा को देखकर कुञ्ज-निकुञ्ज मन्दिरों की ओर आइए। यहाँ की शोभा को बारम्बार देखिए। यहाँ की शोभा का वर्णन भला यह जिह्वा कैसे कर सकती है।

आगूं इतथें हिंडोले, जित चौकी बट पीपल।

चार चौकी बट हिंडोलें, इतथें ना सकिए निकल॥२३॥

अब यहाँ से आगे चलकर वट-पीपल की चौकी के हिण्डोलों की शोभा को देखिए। यहाँ वट-पीपल के वृक्षों की पाँच हारों के मध्य चौकियों की चार हारें हैं , जहाँ चार हिण्डोलों की ताली पड़ती है। यहाँ की शोभा को छोड़कर आप आगे नहीं निकल सकेंगे।

दूजी भोम जो चौकियों, दौड़ जाइए तितथें।

बीच मेहेरावों कूद के, उतर आइए अर्स में॥२४॥

वट-पीपल की चौकी की प्रथम भूमिका की डालियाँ (दूसरी भूमिका) रंगमहल की प्रथम भूमिका के झरोखों से मिली हुई हैं। अतः वट-पीपल की चौकी की दूसरी भूमिका से दौड़ते हुए आइये और रंगमहल की प्रथम

भूमिका के झरोखों से होते हुए २२ हाथ की सीढ़ियाँ (गोलाई) उतरकर रंगमहल की प्रथम भूमिका में आ जाइये।

**पहेली भोम के झरोखे, सो दूजी भोम लग बन।**

**ए झरोखे के बराबर, भोम दूजी हिंडोलन॥२५॥**

वट-पीपल की चौकी की दूसरी भूमिका रंगमहल के चबूतरे के बराबर ऊँचाई पर है। इसी प्रकार दूसरी भूमिका के हिण्डोले रंगमहल की प्रथम भूमिका के झरोखों के बराबर की ऊँचाई में हैं।

**भावार्थ-** वट-पीपल का चौकी जमीन पर है। इस कारण, इसकी एक भूमिका रंगमहल के चबूतरे के बराबर है। वट-पीपल के वृक्षों की प्रथम भूमिका की डालियाँ सीढ़ियों के रूप में २२ हाथ ऊपर जाकर रंगमहल की

प्रथम भूमिका के झरोखों से मिल गयी हैं।

पेहेली भोम फूल बाग लों, दीवार देखिए दिल धर।

फिरते मेहेराव झरोखे, बन आवे अंदर थे नजर॥२६॥

रंगमहल की दक्षिण दिशा में वट-पीपल की चौकी के सामने फूलबाग तक (नैऋत्य कोण के चहबच्चे तक) जो बाहरी हार मन्दिर हैं, उनकी बाहरी दीवारों की शोभा को ध्यानपूर्वक देखिये। इनमें दरवाजे (महराब) व झरोखे शोभायमान हैं। इन दरवाजों व झरोखों से सामने वट-पीपल के सुन्दर वृक्ष दिखायी पड़ते हैं।

फेर देखिए फूल बाग लों, हर मंदिर मेहेराव दोए।

बीच बीच उचेरा झरोखा, कहूं किन मुख सोभा सोए॥२७॥

पुनः नैऋत्य कोण के १६ हाँस के चहबच्चे तक

(फूलबाग के पास तक) बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवारों की शोभा देखिए। प्रत्येक मन्दिर की बाहरी दीवार में २-२ दरवाजे (महराब) और १-१ ऊँचे झरोखे शोभायमान हो रहे हैं।

**द्रष्टव्य-** प्रथम भूमिका में २२ हाथ की ऊँचाई पर स्थित होने से इन्हें "उचेरा झरोखा" कहा गया है।

**भोम तले बन हिंडोले, अति सोभित इतथें।**

**मेहेराव झरोखे सुन्दर, जब बैठ देखिए बन में॥२८॥**

बाहरी हार मन्दिरों की प्रथम भूमिका (धाम चबूतरे) से वट-पीपल की चौकी के प्रथम भूमिका के वृक्ष और हिण्डोले अति सुन्दर दिखायी देते हैं। जब वट-पीपल की चौकी की भूमिकाओं में बैठकर रंगमहल की ओर देखते हैं, तो बाहरी हार मन्दिरों की महराबें और सुन्दर

झरोखे दिखायी देते हैं।

कई जिकर करें जानवर, मीठे स्वर बयान।

इस्क खूबी अति बड़ी, सिफत बका सुभान॥२९॥

इस वन (वट-पीपल की चौकी) में बहुत से पशु-पक्षी अति मीठे स्वरों में श्री राजश्यामा जी की चर्चा करते हैं। इनके प्रेम में बहुत अधिक गहराई है, जो दिन-रात धाम धनी की महिमा के गायन में ही लगे रहते हैं।

इत क्यों कहूं खूबी हिंडोले, जित हींचें रूहें हादी हक।

बयान न होए एक जंजीर, जो उमर जाए मुतलक॥३०॥

वट-पीपल की चौकी में लगे हुए हिण्डोलों की शोभा का वर्णन कैसे करूँ, जिन पर स्वयं श्री राजश्यामा जी सखियों के साथ झूला करते हैं। यदि सारी उम्र भी लगा

दी जाये, तो भी हिण्डोलों की किसी एक जंजीर की भी सुन्दरता का वर्णन नहीं हो सकता।

ए भोम तले की दीवार में, मेहेराव आवे न सिफत मों।

देख देख के देखिए, फेर चलिए फूल बाग लों॥३१॥

रंगमहल की प्रथम भूमिका में बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवार में जो महराबें (दरवाजे) दिखायी देती हैं, उनकी शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता। हे साथ जी! इस मनोहर शोभा को बारम्बार देखिए और पुनः फूलबाग (नैऋत्य कोण के १६ हाँस के चहबच्चे) तक चलिए।

दूसरी भोम जो अर्स की, सो तीसरी भोम लग बन।

जाइए झरोखे से हिंडोले, ए सोभा कहूं मुख किन॥३२॥



रंगमहल की दूसरी भूमिका का ३३ हाथ का चौड़ा छज्जा, वट-पीपल की चौकी की तीसरी भूमिका (दूसरी भूमिका की छत) से मिला हुआ है। अतः रंगमहल की दूसरी भूमिका के छज्जे (झरोखे) से वट-पीपल की चौकी की तीसरी भूमिका में जाया जा सकता है, क्योंकि रंगमहल एक भूमिका ऊँचे चबूतरे पर स्थित है। मैं इस शब्दातीत शोभा का वर्णन किस मुख से करूँ।

**चौथी भोम के बन से, जाइए तीसरी भोम अर्स।**

**ए भोम झरोखे बराबर, ए बन मोहोल अरस-परस॥३३॥**

इसी प्रकार वट-पीपल की चौकी की चौथी भूमिका से रंगमहल की तीसरी भूमिका (३३ हाथ चौड़े छज्जे से होकर) में जा सकते हैं। रंगमहल की तीसरी भूमिका के छज्जे और वट-पीपल की चौकी की चौथी भूमिका की

ऊँचाई बराबर आयी है। रंगमहल की भूमिकायें और वट-पीपल की चौकी की भूमिकायें आमने-सामने एक-दूसरे से लगकर आयी हैं।

**पांचमी भोम बन चांदनी, अति खूबी लेत इत ए।**

**चल जाइए चौथी भोम अर्स, मोहोल देखो बैठ झरोखे॥३४॥**

वट-पीपल की चौकी की पाँचवी भूमिका, अर्थात् चाँदनी, अत्यन्त शोभायमान हो रही है। यहाँ से रंगमहल की चौथी भूमिका में जा सकते हैं। चौथी भूमिका के बाहरी हार मन्दिरों के झरोखों से वट-पीपल की चौकी की पाँचवी चाँदनी की शोभा को देखिये, जो रंग-बिरंगी चित्रकारी से युक्त अति सुन्दर गलीचे के समान दिखायी देती है।

बट पीपल की चौकियां, एक घाट लग हद।

लंबी चांदनी फूल बाग लों, ए सोभा न आवे माहें सब्द॥३५॥

वट-पीपल की चौकी की चौड़ाई एक घाट (नारंगी) की चौड़ाई के बराबर है, अर्थात् ५०० मन्दिर की चौड़ाई है (वट पीपल की चौकी के पूर्व में नारंगी वन है)। वट-पीपल की चौकी की चाँदनी अत्यन्त लम्बी (१५०० मन्दिर) है, जो फूलबाग (नैऋत्य कोण के चहबच्चे) तक गयी है। इस विशिष्ट शोभा को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

हर हाँस तीस मंदिर, हर मंदिर झरोखा एक।

दोऊ तरफ दो मेहेराव, मन्दिरों खूबी विसेक॥३६॥

रंगमहल के प्रत्येक हाँस में ३० मन्दिर आये हैं और प्रत्येक मन्दिर की बाहरी दीवार में एक झरोखा आया है।

इसके दोनों ओर १-१ कुल दो दरवाजे (महराबें) हैं। इस प्रकार इन मन्दिरों की यह विशेष शोभा दृष्टिगोचर होती है।

हर हांस साठ मेहेराव, इनों बीच बीच झरोखा।

भोम तले अति रोसनी, खूबी क्यों कहूं सोभा बका॥३७॥

इस प्रकार, प्रत्येक हांस (३० मन्दिर) में ६० दरवाजे दिखायी देते हैं। प्रत्येक मन्दिर में दो-दो दरवाजों के मध्य १-१ झरोखे आये हैं। रंगमहल की इस प्रथम भूमिका में अपार ज्योति जगमगा रही है। रंगमहल की इस अखण्ड शोभा की विशेषताओं का मैं कैसे वर्णन करूँ।

इन विध हांसैं फिरतियां, चारों तरफों सौ दोए।

चारों तरफ का बेवरा, नेक केहेत हुकम सोए॥३८॥

इस प्रकार रंगमहल के चारों ओर २०० हाँस आये हैं। धाम धनी के हुक्म (आदेश) से चारों ओर के इन हाँसों का मैं थोड़ा सा विवरण देती हूँ।

**भावार्थ-** गिनती में २०० हाँस हैं, किन्तु देखने में २०१ हाँस हैं। प्रत्येक हाँस में ३०-३० मन्दिर आये हैं। पूर्व में दरवाजे का अतिरिक्त हाँस बन गया है, जो मध्य के दोनों हाँसों से ५-५ मन्दिर लेकर बना है। इसलिये इसे गिनती में कई बार छोड़ दिया जाता है।

एक तरफ आगूं द्वारने, तरफ दूजी चौकी हिंडोले।

फूल बाग तरफ तीसरी, चौथी चबूतरे चेहेबच्चे॥३९॥

रंगमहल के पूर्व में मुख्य (बड़ा) दरवाजा है, तो दूसरी

ओर दक्षिण दिशा में हिण्डोलों से युक्त वट – पीपल की चौकियाँ हैं। तीसरी ओर पश्चिम दिशा में फूलबाग की अद्भुत शोभा है, तो चौथी ओर उत्तर दिशा में लाल चबूतरा, ताड़वन, एवं खड़ोकली (चहबच्चा) आया है।

**चार चार नेहरें जंजीर ज्यों, मिल मिल फिरें गिरदवाए।**

**बीच बीच सोभित बगीचों, अचरज एह देखाए॥४०॥**

प्रत्येक बगीचे की चारों दिशाओं में ४ – ४ नहरें हैं, जो आपस में जंजीर के समान मिलकर चारों ओर बह रही हैं। इन नहरों के बीच-बीच में बगीचों की शोभा आयी है, जो बहुत आश्चर्यजनक दिखायी दे रही है।

**भावार्थ—** प्रत्येक चार नहरों के मध्य एक बगीचा है। प्रत्येक नहर दोनों ओर के बगीचों में गिनी जाती है।

बीच झरोखें कारंजे, चारों तरफों चार चलत।

ए चारों बीच चेहेबच्चे, एकै ठौर पड़त॥४१॥

पश्चिम दिशा में बाहरी हार मन्दिरों के झरोखों से देखने पर सामने चहबच्चों तथा फव्वारों की अद्भुत शोभा दिखायी पड़ती है। चारों दिशाओं के चार चहबच्चों से चार फव्वारे उछलते हैं और मध्य के एक ही चहबच्चे में आकर गिरते हैं।

**भावार्थ—** प्रत्येक बड़े बगीचे के चारों कोनों में चार चहबच्चे हैं, जिनमें से प्रत्येक में ५-५ फव्वारे हैं। मध्य में एक व चारों दिशाओं में चार फव्वारे हैं। मध्य के फव्वारे का पानी उछलकर उसी में गिर जाता है, जबकि चारों दिशाओं के फव्वारों का पानी उछलकर चारों दिशाओं के अन्य चहबच्चों में जाकर गिरता है।

कहूं कारंज एक बीच में, एक ठौर उछलत।

सो चारों फुहारे होए के, चारों खूटों गिरत॥४२॥

मध्य के एक ही चहबच्चे से चार फव्वारे उछलते हैं और चारों तरफ के चार चहबच्चों में जाकर गिरते हैं।

सो ए फूलबाग की, सोभा इन मुख कही न जाए।

नूर जोत फूल पातन की, जानो अंबर में न समाए॥४३॥

इस प्रकार, फूलबाग की अनुपम शोभा को इस मुख से व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसके फूलों और पत्तियों से इतनी अधिक नूरी ज्योति छिटक रही है कि वह आकाश में भी नहीं समा पाती।



चार खूंट चारों हांसों, कई जिनसों फूल देखाए।

कई जुगतें पात सोभित, सब खुसबोए रही भराए॥४४॥

फूलबाग के चारों कोनों तथा चारों दिशाओं में अनेक प्रकार के फूल दिखायी दे रहे हैं। इनमें अलग-अलग प्रकार की पत्तियाँ भी सुशोभित हो रही हैं। चारों ओर इनकी सुगन्ध ही सुगन्ध फैली हुई है।

फूल कहूं कई रंग के, गिनती न आवे सुमार।

ना गिनती रंग पात की, खूबी क्यों कहूं इनों किनार॥४५॥

इस फूलबाग में अनन्त रंगों के फूल हैं, जिनकी गिनती हो पाना सम्भव नहीं है। इन फूलों की पत्तियों के रंगों की भी गिनती नहीं हो सकती। पत्तियों के किनारे के भागों की अनुपम सुन्दरता का मैं कैसे वर्णन करूँ।

जानो के गंज नूर को, भराए रह्यो आकास ।

जब नीके नजर दे देखिए, तब कछू पाइए खूबी खास॥४६॥

फूलबाग की शोभा को देखने पर ऐसा लगता है, जैसे नूर का भण्डार ही आकाश में सर्वत्र छाया हुआ है। इसकी विशेष शोभा का तब कुछ अनुभव हो सकता है, जब आप इसे बहुत ध्यानपूर्वक देखें।

विवेक कर जब देखिए, तब पाइए फूल पांखड़ी पात।

कई जिनसें जुगतें कांगरी, नूर आगे देखी न जात॥४७॥

यदि आप चिन्तन की गहराइयों से देखें, तो आपको फूलों, पँखुड़ियों, तथा पत्तियों की अलौकिक शोभा दिखायी पड़ती है। इनमें कई प्रकार की आकृति वाली काँगरी भी बनी है, जो अत्यधिक ज्योति के कारण दिखायी नहीं पड़ रही थी।

**भावार्थ-** इस चौपाई में एक बहुत गहन रहस्य की ओर संकेत किया गया है। इस चौपाई के प्रथम चरण में बौद्धिक धरातल पर शोभा देखने का प्रसंग नहीं है, क्योंकि चितवनि की गहराइयों में लौकिक बुद्धि का कोई उपयोग नहीं होता। मात्र आत्म-दृष्टि द्वारा प्रेममयी भावों में ही परमधाम की शोभा को देखा जाता है।

इस चौपाई में प्रेममयी चितवनि की उस गहन अवस्था का वर्णन किया गया है, जब हमारी आत्मिक दृष्टि किसी शोभा विशेष पर केन्द्रित हो जाती है, और जब तक शोभा में गहराई तक प्रवेश नहीं कर जाती तब तक अन्यत्र दृष्टि नहीं करती।

कई जिनस जुगत रंग फूल में, कई जिनस जुगत पात रंग।  
नूर बाग खासी हक हादी रूहें, खूबी क्यों कहूं जुबां इन अंग॥४८॥

नूरबाग में प्रत्येक फूल में अनेक प्रकार के रंग आये हैं। इसी प्रकार, एक ही पत्ते में अनेक प्रकार के रंग सुशोभित हो रहे हैं। जब युगल स्वरूप के साथ सखियाँ नूरबाग में आती हैं, तो उस समय यहाँ की ऐसी अद्वितीय शोभा होती है जिसे मैं इस नश्वर शरीर की जिह्वा से व्यक्त नहीं कर सकती।

**भावार्थ—** नूरबाग फूलबाग के नीचे जमीन पर है। फूलबाग व नूरबाग की शोभा एक जैसी है, किन्तु फर्क सिर्फ इतना है कि नूरबाग में ६६,००० नूर के थम्भ आये हैं जिनके ऊपर फूलबाग स्थित है।

ए बाग चौड़ा लंबा सोहना, माहें जुदी जुदी कई जिनस।

कई एक रंगों बगीचे, जानों एक से और सरस॥४९॥

यह नूरबाग १५०० मन्दिर का लम्बा-चौड़ा अति

सुन्दर है। इसमें अलग-अलग कई प्रकार के मनोहर फूलों की शोभा दृष्टिगोचर हो रही है। इसमें अनेक रंगों वाले फूलों के बगीचें आये हैं। ऐसा लगता है जैसे ये सभी एक-दूसरे से ज्यादा सुन्दर हैं।

एक एक दरखत में कई रंग, यों कई बगीचे विवेक।

कई बगीचे चेहेबच्चे, जानों जो देखों सोई विसेक॥५०॥

इस नूरबाग में एक-एक वृक्ष में अनेक रंग आये हैं। इस प्रकार की शोभा से युक्त अनेक बगीचे आये हैं। हर बगीचे में बहुत से चहबच्चे हैं। बगीचों और चहबच्चों में जिस किसी को भी देखते हैं, वही सबसे अधिक सुन्दर लगता है।

नेहेरें चलत कई बीच में, चेहेबच्चे बगीचों।

कई बैठकें कारंजों, जल उछलत फुहारों॥५१॥

फूलों के इन बगीचों के मध्य में कई तरह से नहरें चलती हैं। कई तरह के चहबच्चे भी इन बगीचों में शोभायमान हो रहे हैं। फव्वारों के बीच में बहुत सुन्दर-सुन्दर बैठकें बनी हुई है। इन फव्वारों से जल की बारीक धारायें (फुहारों के रूप में) उछलती हुई दिखायी देती हैं।

कई मोहोल मन्दिरों चबूतरे, इत बने हैं बनके।

इत हक हादी रूहें बैठक, अति ठौर खुसाली ए॥५२॥

इस नूरबाग में फूल के वृक्षों से ही बहुत से महल, मन्दिर, और चबूतरे बने हुए हैं। अत्यन्त आनन्दमयी इस नूरबाग में सखियाँ युगल स्वरूप के साथ बैठकर तरह-

तरह की लीलाओं का आनन्द लेती हैं।

चारों खूंटों बड़े चार चेहेबच्चे, तिन हर एक में कई कारंज।  
 सब नेहरें तहां से चलें, वह चेहेबच्चों भरया जल गंज॥५३॥  
 फूलबाग के चारों कोनों में चार बड़े चहबच्चे आये हैं  
 (इसमें से दो चहबच्चे रंगमहल के चहबच्चे माने जाते हैं)।  
 इन चहबच्चों से अनेक फव्वारे छूटते हैं। चहबच्चों में अथाह  
 जल भरा हुआ है। इन्हीं चहबच्चों का जल फूलबाग की  
 सभी नहरों में प्रवाहित होता है।

पांच पांच हांसों बगीचा, भए पचास हांसों बाग दस।  
 ए सोभा इन जुगतें, याको क्यों कहूं रूप रंग रस॥५४॥  
 फूलबाग का प्रत्येक बगीचा ५-५ हांस (१५० मन्दिर)  
 का लम्बा-चौड़ा है। इस प्रकार रंगमहल के ५० हांस

(१५०० मन्दिर) के सामने १० बाग आये हैं (इतनी ही चौड़ाई भी है अर्थात् १० बाग की १० हारें हैं)। यह शोभा इस प्रकार अलौकिक दिखायी दे रही है कि इसके रंग और आनन्दमयी स्वरूप के विषय में वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

**ए बड़ा बाग ऊपर चबूतरे, तापर बन की दीवार।**

**ए नूर फूलन का क्यों कहूं, सेत स्याम नीले पीले लाल॥५५॥**

यह फूलबाग रंगमहल के पश्चिम में नूरबाग की छत रूपी चबूतरे पर आया हुआ है (यह छत ६६,००० नूर के थम्भों पर स्थित है)। इसकी तीन दिशाओं (उत्तर, पश्चिम, तथा दक्षिण) में बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें आयी हैं, जो ५ भूमिका की ऊँची हैं (इसलिए उसे दीवार कहा है)। इस फूलबाग में सफेद, काले, नीले, पीले, लाल



आदि अनेक रंगों के फूल सुशोभित हो रहे हैं, जिनकी अनुपम सुन्दरता का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

तले तीन तरफ मेहेराव, ए जो कही दीवार गिरदवाए।

ऊपर दिवालें बनकी, ए सिफत कही न जाए॥५६॥

फूलबाग की तीन दिशाओं (उत्तर, पश्चिम, तथा दक्षिण) में नीचे (जमीन पर) बड़ोवन के वृक्षों की जो ५ हारें आयी हैं, वे दीवार की तरह प्रतीत होती हैं, जिसमें डालियों से सुन्दर महाराबें बनी हुई हैं। ५ भूमिका तक बड़ोवन के वृक्षों की दीवार की शोभा आयी है, जिसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

इन सौ बगीचों चेहेबच्चे, जुदी जुदी जिनस जुगत।

ए बाग नेहेरें देखते, नैना क्योंए ना होए तृपित॥५७॥

इन सौ बगीचों के चहबच्चों में अलग –अलग प्रकार की शोभा आयी है। इन बागों तथा नहरों की मोहिनी छवि को देखने पर नेत्र किसी भी प्रकार से तृप्त नहीं होते। इन्हें निरन्तर देखते रहने की इच्छा होती है।

**भावार्थ-** सौ बड़े बगीचे हैं, जिनमें से प्रत्येक के चारों कोनों में चार बड़े चहबच्चे हैं। इनमें से प्रत्येक में ५ –५ फव्वारे हैं। प्रत्येक बड़े बगीचे में १६ छोटे बगीचे हैं, जिनमें ९ छोटे चहबच्चे हैं। इनमें भी ५ –५ फव्वारे हैं।

**जो बाग तले चबूतरा, सो छाया बीच दरखत।**

**बीच अर्स के उसी जुबां, हक आगूं होए सिफत॥५८॥**

फूलबाग के चबूतरे के नीचे नूरबाग आया है। नूरबाग में फूलों के जो पौधे हैं, वे फूलबाग के चबूतरे की छाया तले हैं। इस शोभा का वर्णन तो मात्र परमधाम में, श्री राज जी

के सामने, वहाँ की वाणी में ही हो सकता है।

ए बिरिख जो अर्स भोम के, सो अर्से के हैं नंग।

ए जोत कहूं क्यों इन जुबां, और किन विध कहूं तरंग॥५९॥

परमधाम में जो वृक्ष आये हैं, वे परमधाम के ही नूरी जवाहरातों के नग हैं। इन वृक्षों से निकलने वाली ज्योति की तरंगों की शोभा का वर्णन इस नश्वर शरीर की जिह्वा से कैसे करूँ।

जिमी तले जो दरखत, एह जिनस कछू और।

खूबी फल फूल पात की, किन मुख कहूं ए ठौर॥६०॥

फूलबाग के चबूतरे के नीचे धरती पर जो नूरबाग के वृक्ष आये हैं, उनकी शोभा ही कुछ और है। इस नूरबाग के फलों, फूलों, तथा पत्तियों की शोभा इतनी अद्वितीय है

कि मैं किस मुख से उसका वर्णन करूँ।

रंग जोत खूबी खुसबोए की, क्यों कर कहूँ ए बन।

फल फूल पात तले जिमी, जानों सूर हुए रोसन॥६१॥

चबूतरे के नीचे धरती पर आये हुए नूर वन के फूलों के मनोहर रंगों, ज्योति, सुगन्धि आदि विशेषताओं का मैं कैसे वर्णन करूँ। इन नूरबाग के फलों, फूलों, तथा पत्तियों की ज्योतिर्मयी शोभा को देखकर तो ऐसा लगता है कि ये फूलों के वृक्ष नहीं, बल्कि नूरमयी सूर्य उगे हुए हैं।

कई नेहेरें कई चेहेबच्चे, कई कारंजें जल उछलत।

कई मोहोल माहें बैठकें, हक हादी रूहें खेलत॥६२॥

इस नूरबाग में बहुत से चहबच्चे एवं बहुत सी नहरे हैं।

बहुत से फव्वारों से जल उछलता रहता है। इस बाग में बहुत से महल और बैठकें हैं, जिनमें श्री राजश्यामा जी और सखियों की प्रेममयी क्रीड़ा होती है।

तले बाग जो दरखत, बड़ा बन गिरदवाए।

चारों खूंटों बराबर, खूबी जरे की कही न जाए॥६३॥

नूरबाग की तीन दिशाओं में बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें आयी हैं। यह नूरबाग समचौरस है, अर्थात् लम्बाई-चौड़ाई की दृष्टि से बराबर है। इस बाग की छवि इतनी सुन्दर है कि इसके एक कण की शोभा का भी वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

तो क्यों कहूं सारे बाग की, जिन की खूबी कही ए।

ऐसा जरा कहा जिनका, तो क्यों कहूं ठौर हक के॥६४॥

ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण बाग की शोभा कैसे कही जा सकती है, जिनकी इतनी अधिक मनोहारी विशेषता है। जब धूल के एक कण की शोभा का भी वर्णन नहीं हो सकता, तो नूरबाग में धाम धनी की क्रीड़ा-स्थली रूप बैठकों एवं महलों की शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है।

**जेता बाग ऊपर, तेता तले विस्तार।**

**चारों खूंटों बराबर, ए सिफत न आवे सुमार॥६५॥**

ऊपर फूलबाग का जितना विस्तार है, उतना ही विस्तार नीचे नूरबाग का भी है। दोनों बाग समचौरस हैं। इनकी शोभा की कोई सीमा ही नहीं है।

**अति खूबी बाग ऊपर, तले तिनसे अधिकाए।**

**वह खूबी इन मुख से, मोपे कही न जाए॥६६॥**

फूलबाग की शोभा तो अत्यधिक है ही, किन्तु नूरबाग की छवि उससे भी अधिक (अनन्त) है। उस शोभा का वर्णन हो पाना मुझसे सम्भव नहीं है।

**भावार्थ-** वहदत (एकत्व) के सिद्धान्त के अनुसार परमधाम में सबकी शोभा बराबर है, किन्तु जिसकी सुन्दरता का वर्णन किया जाता है, उसे ही सबसे अधिक मनोहर कहा जाता है। यही स्थिति इस चौपाई में भी है।

**बाग पांच पांच हांस के, हैं दस बाग हांस पचास।**

**यों मोहोलातें सौ बाग की, कहूं किन विध खूबी खास॥६७॥**

सभी बाग १५०-१५० मन्दिर (५-५ हाँस) के लम्बे-चौड़े हैं। इस प्रकार, रंगमहल के पश्चिम में ५० हाँस (१५०० मन्दिर) के सामने १० बगीचों की १० हारे हैं। इस प्रकार कुल १०० बगीचे आये हैं। इन बागों

की विशेष शोभा का वर्णन मैं किस प्रकार करूँ।

चारों तरफों चलती, नेहरें बीच बाग के।

बीच मेहेरावों से देखिए, सोभित बिरिखों तले॥६८॥

फूलबाग के चारों ओर तथा मध्य में नहरें प्रवाहित हो रही हैं। हे साथ जी! रंगमहल के पश्चिम की बाहरी हार मन्दिरों के दरवाजों और झरोखों से फूलबाग की ओर देखिए कि किस प्रकार फूलों के वृक्षों के नीचे बहती हुई नहरें शोभायमान हो रही हैं।

पचास हांस तरफ बाग के, हर हांसें तीस मन्दिर।

मेहेराव बीच झरोखा, तीन तीन सबों अन्दर॥६९॥

रंगमहल की पश्चिम दिशा में (फूलबाग की ओर) पचास हांस आये हैं, जिसमें प्रत्येक हांस में ३०-३० मन्दिर



हैं। प्रत्येक मन्दिर की बाहरी दीवार में दो-दो दरवाजे (महराबें) तथा एक-एक झरोखा सुशोभित होता है।

इन हांस चेहेबच्चे से चलिए, दूसरे पोहोंचिए जाए।

मोहोल मेहेरावों देखिए, बाग इतथें और सोभाए॥७०॥

हे साथ जी! रंगमहल के नैऋत्य कोने में स्थित १६ हाँस के चहबच्चे से चलकर वायव्य कोने के (दूसरे) चहबच्चे तक जाइये। यदि आप दोनों चहबच्चों के बीच में आये हुए रंगमहल के मन्दिरों के दरवाजों से देखें, तो फूलबाग और अधिक सुन्दर दिखायी देता है।

एक एक मन्दिर में आए के, फेर देखिए गिरदवाए।

इन विध रुहें देखिए, उलट अंग न समाए॥७१॥

हे साथ जी! इस प्रकार, यदि आप एक-एक मन्दिर में

आकर पुनः चारों ओर की शोभा को देखें, तो आपको इतना अधिक आनन्द होगा कि वह हृदय में समा नहीं पायेगा।

ए बाग मेहेराव देखके, आए बड़े चेहेबच्चे।

आया आगूं लाल चबूतरा, खूबी किन विध कहूं मैं ए॥७२॥

फूलबाग तथा रंगमहल के दरवाजों की शोभा को देखते हुए वायव्य कोने के बड़े चहबच्चे के पास आते हैं। इसके आगे उत्तर दिशा में लाल चबूतरा आता है, जिसकी अतुलनीय शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

चालीस हांसों चबूतरा, बड़े मेहेराव इन पर।

देख देख के देखिए, खूबी क्यों कहूं इन चबूतरा॥७३॥

वायव्य कोने के गुर्ज से लेकर पूर्व की ओर ४० हाँस

(१२०० मन्दिर) के सामने रंगमहल की एक भूमिका ऊँचे चबूतरे से लगकर एक हाँस (३० मन्दिर) का चौड़ा लाल चबूतरा आया है। इस चबूतरे के सामने रंगमहल की बाहरी हार के जो १२०० मन्दिर हैं, उनकी बाहरी दीवारों में बड़े दरवाजे आये हैं (झरोखों की जगह भी दरवाजे आये हैं), अर्थात् प्रत्येक मन्दिर में ३-३ दरवाजे आये हैं। आप इनकी शोभा को बार-बार देखिए। इन चबूतरों की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**तीन हजार छे सै बने, मेहेराव बराबर।**

**सोभा हांसों चालीस, इन जुबां कहूं क्यों कर॥७४॥**

यहाँ एक-एक मन्दिर में ३-३ दरवाजे होने से ४० हाँसों के १२०० मन्दिरों में कुल मिलाकर  $१२०० \times ३ = ३६००$  दरवाजे दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इनकी असीम

शोभा का वर्णन मैं इस जिह्वा से कैसे करूँ।

ए ठौर सोभा अति बड़ी, और बन विस्तार।

ए ठौर बैठक बड़ी, पसु पंखी खेलें अपार॥७५॥

इस स्थान की शोभा बहुत अधिक है। लाल चबूतरे के आगे बड़ोवन का बहुत अधिक विस्तार है, अर्थात् ४९ वृक्षों की ४९ हारें आयी हैं। इनके मध्य ४० अखाड़ों की ४० हारें हैं, जिनमें अनन्त प्रकार के पशु-पक्षी तरह-तरह की क्रीड़ायेँ करते हैं। लाल चबूतरे के ४० हाँसों में ४० अति सुन्दर बैठकें बनी हुई हैं।

अति खूबी आगूँ कठेड़े, हांसों चालीसों सोभित।

देखत अर्स आंखन सों, खूबी उत जुबां बोलत॥७६॥

लाल चबूतरे की बाहरी किनार पर चाँदों (सीढ़ियों) की

जगह छोड़कर बाकी जगह में कठेड़ा है। प्रत्येक हाँस में एक-एक सिंहासन और इनके दायें-बायें ६००० – ६००० कुर्सियाँ शोभायमान हैं। यहाँ से बड़ोवन के वृक्षों के मध्य आये ४० अखाड़ों के ४० हारों की सुन्दर शोभा दिखायी देती है। इस अलौकिक शोभा को मात्र आत्मा या परात्म के चक्षुओं से ही देखा जा सकता है और परमधाम की जिह्वा से ही यहाँ की शोभा का वर्णन किया जा सकता है।

**भावार्थ-** इस जागनी लीला में मात्र आत्मिक नेत्रों से ही परमधाम को देखा जा सकता है। परात्म में परामोशी (नींद) होने के कारण, वह परमधाम को देख नहीं पा रही है। आत्मा भी परात्म का ही प्रतिबिम्ब है, इसलिये आत्मिक दृष्टि को भी परमधाम का ही माना जायेगा।

जुदी जुदी जिनसों सोभित, जुदी जुदी जिनसों फल फूल।

पात रंग जुदी जिनसों, देख देख होइए सनकूल॥७७॥

यहाँ अलग-अलग प्रकार की बहुत ही सुन्दर शोभा दिखायी पड़ रही है। अलग-अलग रंगों तथा आकृति के फल, फूल, एवं पत्ते सुशोभित हो रहे हैं, जिनकी मनोहर छवि को बारम्बार देखकर आप आनन्दित होंगे।

हर मन्दिर माहें आए के, चढ़िए हर झरोखे।

जब आइए हर झरोखे, तब खूबी देखो बाग ए॥७८॥

हे साथ जी! लाल चबूतरे के सामने आये बाहरी हार मन्दिरों की ऊपर की भूमिकाओं में जाकर आप प्रत्येक मन्दिर में आये हुए झरोखे से बड़ोवन के वृक्षों की सुन्दर शोभा को देख सकते हैं, जो १० भूमिका ऊँचे आये हैं। इनकी चाँदनी रंगमहल की चाँदनी से मिली हुई है।

बड़े मेहेराव बराबर, एक दूजे को लगता।

हांस चालीस ऊपर चबूतरे, सोभा न आवे सब्द में बका॥७९॥

४० हाँसों वाले इस लाल चबूतरे के सामने (धाम चबूतरे के ऊपर) बाहरी हार के एक-एक मन्दिर की बाहरी दीवार में तीन-तीन दरवाजे (महराबें) पास-पास आये हैं। इन सबकी अखण्ड शोभा एक समान ही आयी है, जिसका वर्णन यहाँ के शब्दों में नहीं हो सकता।

एह भोम एह चबूतरा, लगते पेड़ दरखत।

ए ठौर बरनन करते, हाए हाए छाती नहीं फटत॥८०॥

बड़ोवन की मनोहर धरती, लाल चबूतरा, एवं लाल चबूतरे से लगते हुए बड़ोवन के ४१ वृक्षों की पहली हार की शोभा का वर्णन करते समय, हाय-हाय मेरी छाती क्यों नहीं फट जाती।

**भावार्थ-** इस चौपाई में विरह एवं करुण रस की प्रधानता है। छाती फट जाने का कथन आलंकारिक है। विरह के गहन क्षणों में इस प्रकार का कथन किया जाता है। इसमें यही भाव दर्शाया गया है कि सम्भवतः हमारा हृदय बहुत कठोर है, जो यहाँ की अनुपम शोभा को शब्दों के माध्यम से प्रकट कर रहा है।

प्रेम-भरा कोमल हृदय सौन्दर्य में डूबना जानता है। उसके पास व्यक्त करने की मानसिकता नहीं होती। सामान्यतः शुष्क एवं कठोर हृदय वाला व्यक्ति ही सौन्दर्य को शब्दों में बारम्बार कहा करता है।

छाती के नीचे हृदय का स्थान होता है, इसलिये इस चौपाई में छाती फटने की बात कही गयी है।



आगूं भोम चबूतरे, चारों तरफों चौगान।

गिरदवाए परे पुखराज के, जिमी रोसन खेलें रेहेमान॥८१॥

एक भूमिका ऊँचे लाल चबूतरे के सामने बड़ोवन के ४१ वृक्षों की ४१ हारों के मध्य ४० अखाड़ों (चौगान, रेती का मैदान) की ४० हारे हैं। इस प्रकार की नूरमयी रेती से युक्त धरती सभी वनों, पुखराज के चारों ओर, उस पार (उत्तर दिशा में) मधुवन एवं महावन में भी आयी है, जहाँ श्री राज जी सखियों के साथ तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करते हैं।

जिमी ऊंची नीची कहूं नहीं, बराबर एक थाल।

पसु पंखी सब में खेल हीं, ए खेलौने नूर जमाल॥८२॥

यहाँ की धरती कहीं भी ऊँची-नीची नहीं है, बल्कि पूर्णतया समतल है। इन सभी स्थानों की धरती पर पशु-

पक्षी तरह-तरह के प्रेममयी खेल खेला करते हैं। ये पशु-पक्षी धाम धनी के खिलौने हैं, जो अनेक प्रकार से अपने प्रियतम को रिझाया करते हैं।

**बड़ा बन ऊँचे हिंडोले, तले हाथी जात आवत।**

**कहूँ केते बड़े जानवर, इन चौगान खेल करत॥८३॥**

लाल चबूतरे के आगे बड़ोवन के ४१ वृक्षों की जो पहली १७ हारे हैं, इनकी रंगमहल की १०वीं चाँदनी के बराबर एक ही भूमिका है। इनकी डालियों की महराबों में १० भूमिका ऊपर सुन्दर हिण्डोले लटक रहे हैं, जो झूलते समय नीचे आ जाते हैं। इन वृक्षों के नीचे से हाथी जैसे बड़े-बड़े जानवर आते-जाते हैं और अनेक प्रकार के खेल करते हैं, जिनका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

**भावार्थ—** बड़ोवन के वृक्षों की शेष २४ हारें २५०

भूमिका ऊँची हैं।

बाघ केसरी चीते खेलहीं, और मोर मुर्ग बांदर।

हर जातें जातें कई जिनसें, कहूँ कहां लग खेल जानवर॥८४॥

इन अखाड़ों में बाघ , केशरी सिंह, चीते, मोर, मुर्गे, बन्दर आदि तरह-तरह के खेल करते हैं। यहाँ प्रत्येक जाति के हर प्रकार के जानवर खेल करते हैं, जिसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

हर जिनसें कई खेलत, एक एक में खेल अपार।

खेलें कूदें नाचें उड़ें, गावें कई विध जुबां न सुमार॥८५॥

यहाँ प्रत्येक अखाड़े में हर प्रकार की जातियों के अनन्त पशु-पक्षी तरह-तरह के सुन्दर खेल खेला करते हैं। वे खेल के रूप में कूदते हैं, नाचते हैं, उड़ते हैं, और अनेक

प्रकार की इतनी बोलियों में गाते हैं कि जिनकी कोई सीमा ही नहीं है।

इन मुख सोभा क्यों कहूं, और क्यों कहूं सोभा जिकर।  
सोभा पर चित्रामन, ए जुबां फना कहे क्यों कर॥८६॥

इन पशु-पक्षियों की मनोहर क्रीड़ाओं तथा इनकी अति मीठी बोली की शोभा का वर्णन मैं इस मुख से कैसे करूँ। इनके पँखों पर इतने सुन्दर चित्र बने हुए हैं कि उनका वर्णन इस नश्वर संसार की जिह्वा कर ही नहीं सकती।

सोभा कही न जाए दरखतों, और कही ना जाए इन भोम।  
जो देखो सोभा पसुअन की, करे रोसन अति एक रोम॥८७॥

यहाँ की नूरमयी धरती तथा वृक्षों की अनुपम शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। यदि आप पशुओं की शोभा को

देखें, तो उनके एक ही रोम से बहुत अधिक प्रकाश निकलता दिखायी देता है।

**कई नाचत नट बांदर, कई बाजे बजावत।**

**ए खेलौने हक हादीय के, केहेनी जुबां क्यों पोहोंचत॥८८॥**

बहुत से बन्दर नटों की तरह नाचते हैं, तो कुछ बाजे बजाते हैं। ये श्री राजश्यामा जी के खिलौने हैं। इनके रिझाने की कला का वर्णन करने में मेरी यह जिह्वा असमर्थ है।

**चढ़ ऊंचे लेत गुलाटियां, फेर गुलाटियों उतरत।**

**ए नट विद्या बहुविध की, क्यों कर करूं सिफत॥८९॥**

ये हवा में उल्टी कलाबाजियाँ खाते हुए वृक्षों पर बहुत ऊँचाई तक चढ़ते हैं तथा पुनः कलाबाजियाँ खाते हुए ही

उतरते हैं। इनमें अनेक प्रकार की नट-विद्या है, जिसका गुणगान मैं कितना करूँ।

**भावार्थ-** शरीर द्वारा अनेक प्रकार की कलाबाजियाँ खाना तथा नृत्य आदि करना नट-विद्या के अन्तर्गत आता है।

कूदत फांदत नाचत, लेत भमरियां दे पड़ताल।

नई नई विद्या देख के, हक हादी रूहें होत खुसाल॥९०॥

ये बन्दर बहुत कूदते हैं, छलांग लगाते हैं, और नाचते भी हैं। गोलाई में घूमते हुए नृत्य की मुद्रा में ये पैरों की पड़ताल भी देते हैं। इनकी नयी-नयी कलाओं को देखकर श्री राजश्यामा जी और सखियाँ आनन्दित होते हैं।

चढ़ कूदें कई दरखतों, पेड़ पेड़ से पेड़ ऊपर।

तले जो अंत्रीख आए के, फिरत चढ़त ऊँचे उतर॥११॥

बहुत से बन्दर वृक्षों पर चढ़कर कूदते हैं। वे उछलते हुए एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर आते-जाते रहते हैं। वे आकाश (वृक्षों की बहुत ऊँचाई) से नीचे आते हैं ओर पुनः घूमते-फिरते नीचे से ऊपर चढ़कर तेजी से उतरते हैं।

जंत्र बेन बजावहीं, रबाब ताल मृदंग।

अमृत सारंगी झरमरी, झांझ तंबूरा चंग॥१२॥

बहुत से बन्दर यन्त्र, बाँसुरी, रबाब, ताल, मृदंग, अमृत, सारंगी, झरमरी, झांझ, तम्बूरा, और चंग बजाते हैं।

सरनाई भेरी नफेरी, और बाजे कई बजाए।

तुरही रनसिंघा महुअर, और नगारे करनाए॥९३॥

कुछ बन्दर शहनाई, भेरी, नफेरी, तुरही, रणसिंहा, तूम्बी, नगाड़े, बिगुल आदि अनेक प्रकार के बाजे बजाते हैं।

**भावार्थ-** "नफेरी" नगाड़े से मिलता-जुलता एक वाद्य है, जो आकाश में गर्जने वाले बादलों की तरह ध्वनि करता है। तुरही, रणसिंहा, और बिगुल लगभग समान आकृति और समान सिद्धान्त पर बजने वाले बाजे हैं।

लेत तले से गुलाटियां, चढ़त जात आसमान।

उतरें भी गुलाटियों, फेर फेर गुलाटों दे तान॥९४॥

नीचे (धरती) से कलाबाजियाँ खाते हुए बन्दर आकाश में बहुत ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं। पुनः वैसी ही



कलाबाजियाँ खाते हुए नीचे उतर आते हैं। संगीत के वाद्यों की तान पर वे अनेक प्रकार की कलाबाजियाँ बार-बार करते हैं।

**अंत्रीख मिने गुलाटियां, देत जात फिरत।**

**इन विध लेत भमरियां, यों कई विध केलि करत॥९५॥**

इस प्रकार बन्दर आकाश में कलाबाजियाँ खाते हुए विचरण करते हैं, और नृत्य की मुद्रा में गोलाई में घूमते हैं। वे ऐसी ही अनेक प्रकार की मनोरम क्रीड़ाएँ करते हैं।

**देखो बन्दर खेल अर्स में, बड़ा देख्या अचरज ए।**

**ए खूबी खुसाली क्यों कहूं, हक हादी आगूं होत है जे॥९६॥**

हे साथ जी! आप देखिए कि बन्दर परमधाम में किस प्रकार के बहुत आश्चर्यजनक खेल किया करते हैं। श्री

राजश्यामा जी और सखियों को रिझाने के लिये उनके सामने इन बन्दरों द्वारा जो आनन्दमयी क्रीड़ाएँ की जाती हैं, उनकी प्रशंसा मैं कैसे करूँ, वह शब्दातीत हैं।

ए नट विद्या कई नाचत, बाजे दिल चाहे बजावत।

ए खेल अचम्भा देख के, हक हादी रूहें राचत॥९७॥

ये बन्दर नृत्य कला के अनुसार, कई प्रकार से नाचते हैं और अपनी इच्छानुसार बाजे भी बजाते हैं। आश्चर्य में डालने वाले इनके मनोरञ्जक खेलों को देखकर श्री राजश्यामा जी और सखियाँ बहुत प्रसन्न होते हैं।

**द्रष्टव्य—** श्री राजश्यामा जी और सखियाँ तो सर्वदा ही प्रसन्नता के सागर में डूबे रहते हैं, किन्तु इस चौपाई में मात्र लीला को दर्शाने के लिये ही प्रसन्न होने की बात कही गयी है।

इत आगूं लाल चबूतरे, भोम क्यों कहूं बन विस्तार।

खेल पसु पंखियन को, जुबां कहे जो होवे कहूं पार॥९८॥

लाल चबूतरे के आगे आये हुए अखाड़ों (धरती) तथा बड़ोवन के वृक्षों की शोभा का मैं क्या वर्णन करूँ। इन पशु-पक्षियों की अति मनोरम क्रीड़ाओं का वर्णन तो तब हो सकता है, जब इनकी कोई सीमा हो (अनन्त को इस संसार के शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता)।

बाघ केसरी खेलहीं, चीते खेलें सियाहगोस।

सब विद्या अपनी साधहीं, सब खेलें इस्क के जोस॥९९॥

इन अखाड़ों में बाघ , केशरी सिंह, चीते, और वनबिलाव आदि बड़े-बड़े जानवर तरह-तरह के खेल करते हैं। सभी पशु-पक्षी प्रेम के जोश में क्रीड़ा करते हैं और अपनी-अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते हैं।

हर खांचे जातें जुदी जुदी, आप अपनी विद्या खेलत।

गाए नाचें जिकर करें, हर भातें रूहों रिझावत॥१००॥

प्रत्येक अखाड़े में अलग-अलग जातियों के पशु-पक्षी अपनी-अपनी कला से खेल दिखाते हैं। वे मधुर स्वरों में गाते हैं, मनोहर नृत्य करते हैं, तथा युगल स्वरूप की चर्चा करके हर प्रकार से सखियों को आनन्दित करते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह संशय होता है कि मात्र १६०० अखाड़ों में अनन्त प्रकार के पशु-पक्षी कैसे आ सकते हैं?

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि १६०० की संख्या मात्र आधार है, वास्तविक नहीं है। यह तो अथाह सागर को एक बूँद के रूप में दर्शाने का प्रयास-भर है। परमधाम में कोई भी वस्तु छोटी-बड़ी हो जाती है। इसलिये चाहे चाँदनी चौक हो या लाल चबूतरे के सामने

आये हुए अखाड़े, सभी में अनन्त पशु-पक्षियों के लिये स्थान रहता है। वस्तुतः परमधाम में कमी शब्द की कल्पना ही नहीं है।

हाथी घोड़े बैल बकर, साम्हर चीतल हरन।

मेढ़े पाड़े पस्वड़े, कई खेलें ऊँट अरन॥१०१॥

इन अखाड़ों में हाथी , घोड़े, बैल, गाय, साम्भर, चीतल, हिरन, मेढ़े, भैंसे (छोटे), पस्वड़े, ऊँट, और जँगली भैंसे आदि अनेक प्रकार के जानवर तरह-तरह के खेल करते हैं।

चालीस हांसों की ए कही, करें आप अपना खेल।

छोड़ें न हांस मरजादा, हक आगे करें सब केलि॥१०२॥

लाल चबूतरे के ४० हाँसों के सामने आये हुए अखाड़ों

की शोभा एवं लीला का मैंने यह वर्णन किया है। इन अखाड़ों में सभी पशु-पक्षी अपना-अपना खेल दिखाते हैं। इनमें से कोई भी अपने अखाड़े की सीमा से बाहर नहीं जाता है। इस प्रकार यहाँ सभी पशु-पक्षी श्री राजश्यामा जी के आगे अपनी-अपनी क्रीड़ा दर्शाते हैं।

**दस हांसें बाकी रही, ताके मंदिर झरोखे।**

**तित ढिग दो दो मेहेराव, खूबी लेत बन पर ए॥१०३॥**

रंगमहल की उत्तर दिशा में लाल चबूतरे तथा ईशान कोने के गुर्ज के बीच १० हाँस (३०० मन्दिर) बचते हैं। इन सभी मन्दिरों की बाहरी दीवार में १-१ झरोखे हैं, जिनके दायें-बायें १-१ (कुल दो) दरवाजे हैं। ताड़वन के सामने ये मन्दिर, झरोखे, और दरवाजे अत्यन्त शोभायमान हो रहे हैं।

एक सौ दस छेल्ली हार के, ए जो मोहोल भुलवनी के।

एक सौ दस चारों तरफों, ए जो बारे हजार कहे॥१०४॥

वायव्य कोने के गुर्ज से पूर्व दिशा में १२०० मन्दिर (लाल चबूतरे के) छोड़कर तथा ईशान कोने के गुर्ज से पश्चिम दिशा में १९० मन्दिर छोड़कर, मध्य के ११० मन्दिरों की दोनों हारों के भीतरी तरफ रंगमहल की दूसरी भूमिका में १६ चौरस हवेलियों की जगह में भुलवनी के ११० मन्दिरों की ११० हारें सुशोभित हो रही हैं। सभी मन्दिर आपस में जुड़े हुए हैं। यद्यपि गिनती में १२१०० होते हैं, किन्तु मध्य में १०० मन्दिर की जगह में १० मन्दिर का लम्बा-चौड़ा चौक है, जिससे मन्दिरों की कुल संख्या १२००० होती है।

**भावार्थ-** चौक में चारों ओर एक मन्दिर की चौड़ी रौंस की जगह छोड़कर ८ मन्दिर का लम्बा-चौड़ा कमर-भर

ऊँचा चबूतरा है, जिसकी किनार पर थम्भों की एक हार आयी है।

**चबूतरे चेहेबच्चे लग, बीच चालीस मंदिर।**

**चालीस चेहेबच्चे परे, अस्सी बीच तीस अंदर॥१०५॥**

उत्तर दिशा में भुलवनी के ११० मन्दिरों में से दायें – बायें ४०–४० मन्दिर छोड़कर मध्य के ३० मन्दिरों के सामने, मन्दिरों की दोनों हारों की बाहरी ओर ताड़वन की जमीन में खड़ोकली शोभायमान है। इस प्रकार, चहबच्चे (खड़ोकली) तथा लाल चबूतरे के मध्य ४० मन्दिर की जगह है। खड़ोकली के पूर्व में भी भुलवनी के ४० मन्दिर आये हैं।



तीस चेहेबच्चे ऊपर, बने जो झरोखे।

चार चार द्वार हर मंदिरों, मुख क्यों कहूं सोभा ए॥१०६॥

खड़ोकली के दक्षिण में बाहरी हार ३० मन्दिरों के ३० झरोखे शोभायमान हो रहे हैं। भुलवनी के मन्दिरों में ४ - ४ दरवाजे (चारों दिशाओं में १ - १) आये हैं। इस अलौकिक शोभा का वर्णन मैं इस मुख से कैसे करूँ।

**भावार्थ-** सभी मन्दिर आपस में जुड़े हुए हैं, अतः भीतर के सभी दरवाजे दोनों तरफ के मन्दिरों में गिने जाते हैं।

इत लगते जो मंदिर, हारें भुलवनी।

केहे केहे मुख कहा कहे, सोभा अतंत घनी॥१०७॥

खड़ोकली के सामने ही मन्दिरों की दोनों हारों की भीतरी तरफ भुलवनी के ११० मन्दिरों की ११० हारें

आयी हैं। इनकी शोभा अनन्त है और इनके वर्णन में भला यह मुख क्या कहे, कुछ भी कहना सम्भव नहीं है।

छे हांस ऊपर दस मंदिर, हांसें पोहोंची लग पचास।

एक झरोखा दो मेहेराव, ए जो फिरती खूबी खास॥१०८॥

भुलवनी के मन्दिरों के आगे (पूर्व में) ईशान कोने के गुर्ज तक कुल ६ हांस व १० मन्दिर (१९० मन्दिर) होते हैं। इस प्रकार रंगमहल के उत्तर में (वायव्य कोने के गुर्ज से ईशान कोने के गुर्ज तक) कुल ५० हांस की यह विशेष शोभा है। इन १९० मन्दिरों की बाहरी दीवारों में १-१ झरोखे और २-२ दरवाजे शोभायमान हो रहे हैं।

ए मोहोल फिरते बन ऊपर, ए जो सोभा लेत हैं इत।

बन झरोखे सोभा तो कहूं, जो होए निमूना कहूं कित॥१०९॥

इन बाहरी हार मन्दिरों के सामने जो ताड़वन के वृक्षों की शोभा आयी है, उनकी डालियाँ रंगमहल की दसवीं चाँदनी से मिली हुई हैं। वृक्षों की इन डालियों की छाँव तले बाहरी हार मन्दिरों के झरोखों की शोभा का वर्णन तो मैं तब करूँ, जब इसकी संसार में कहीं उपमा होती।

**ए जो घाट अनार का, आए मिल्या दीवार।**

**ए खूबी क्यों कहूँ इन जुबां, रूह देखत बदले हाल॥११०॥**

रंगमहल की पूर्व दिशा में तीन वन हैं – अनार, अमृत और जम्बू। अनार घाट के वृक्ष (यमुना जी की पाल से ५०० मन्दिर की चौड़ाई लेकर) रंगमहल तक आये हैं। इनकी दोनों भूमिकाओं की डालियाँ क्रमशः रंगमहल की प्रथम भूमिका की बाहरी हार मन्दिरों के झरोखों तथा दूसरी भूमिका के छज्जों से मिली हुई हैं। इनकी विलक्षण

शोभा को मैं इस जिह्वा से कैसे व्यक्त करूँ। इसकी शोभा को देखने पर तो आत्मा की अवस्था ही बदल जाती है, अर्थात् संसार की ओर देखना उसे नहीं भाता, वह मात्र परमधाम को ही देखने की चाहत रखने लगती है।

घाट लिबोई हिंडोलों, आए मिल्या इत ए।

खूबी ताड़ बन की, क्यों कहूं बल जुबां के॥१११॥

नीम्बू (लिबोई) घाट (वन) अनार वन के उत्तर में आया है, जो हिण्डोलों से युक्त ताड़वन से आकर मिला है (नीम्बू वन के पश्चिम में ताड़वन है)। मैं संसार की जिह्वा से ताड़वन की मनोरम छवि का कैसे वर्णन करूँ।

केल बन आगूं चल्या, मधु बन मिल्या आए।

इत सोभा बड़े बन की, इन अंग मुख कही न जाए॥११२॥

लिबोई घाट के आगे (उत्तर में) केल का वन है। केल वन के उत्तर में मधुवन के वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं। केल वन में से होकर बड़ोवन के वृक्षों की ५ हारें पश्चिम दिशा में गयी हैं। इन वृक्षों की शोभा का वर्णन इस नश्वर शरीर के मुख से नहीं हो सकता।

**और हांसें पचास जो, आगूं बड़े दरबार।**

**सोभित झरोखे मेहेराव, आगूं चौक सोभे बन हार॥११३॥**

रंगमहल के सामने (पूर्व दिशा में) पचास हाँस (१५०० मन्दिर, ५१ हाँस) आये हैं। इन मन्दिरों की बाहरी (दीवारों) में झरोखे (१-१) और दरवाजे (२-२) सुशोभित हो रहे हैं। मुख्य द्वार के सामने चाँदनी चौक और अमृत वन के वृक्षों की हारें शोभायमान हो रही हैं।

**भावार्थ-** यद्यपि गिनती में ५० हाँस हैं,  $५० \times ३० =$

१५०० मन्दिर, किन्तु देखने में ५१ हाँस हैं, क्योंकि मध्य के दोनों हाँसों से ५-५ मन्दिर लेकर दरवाजे का १० मन्दिरों का नया हाँस बना है।

ए जो बड़ी कही पड़साल, ऊपर बड़े द्वार।

दोऊ तरफों तले दस थंभ, एक एक रंग के चार चार॥११४॥

धाम दरवाजे के ऊपर तीसरी भूमिका में बड़ी पड़साल (१० मन्दिर लम्बा तथा २ मन्दिर चौड़ा छज्जा) है। इस पड़साल के नीचे प्रथम भूमिका में मुख्य दरवाजे के दायें-बायें जो दो चबूतरे (४ मन्दिर लम्बे तथा २ मन्दिर चौड़े) हैं, उनमें १०-१० थम्भ हैं (बाहरी किनार पर ५-५ थम्भ हैं तथा भीतरी किनार पर भी ५-५ अक्शी थम्भ हैं)। इस प्रकार कुल २० थम्भ हैं। यहाँ एक-एक रंग के ४-४ थम्भ हैं, अर्थात् ५ रंगों के २० थम्भ हैं।

सामी दस थंभ दीवार में, करे जोत जोत सो जंग।

बीस थंभ रंग रंग मुकाबिल, तिन रंग रंग कई तरंग॥११५॥

दोनों चबूतरों की बाहरी किनार पर कुल १० थम्भ हैं, जिनके सामने दीवार में भी १० अक्शी थम्भ आये हैं। इनसे निकलने वाली ज्योतियाँ आपस में टकराकर युद्ध करती हुई सी प्रतीत होती हैं। इस प्रकार कुल बीस थम्भ आये हैं। इनके रंग आमने-सामने हैं, अर्थात् जिस रंग का थम्भ चबूतरे की किनार पर है, उसके सामने दीवार में अक्शी थम्भ भी उसी रंग का है। इन प्रत्येक रंगों (श्वेत, लाल, पीले, हरे, नीले) से अनेक रंगों की तरंगें निकलती हैं।

जो थंभ आगूं द्वार ने, अति उज्जल हीरों के।

दोऊ तरफों जोड़े चार थंभ, ए चारों मानिक रंग लगते॥११६॥

धाम दरवाजे के चौक से लगते हुए दायें-बायें के २-२ थम्भ (चबूतरे की बाहरी व भीतरी किनार पर) कुल ४ थम्भ हीरों के हैं, जिनका रंग अति उज्ज्वल है। इनसे लगते हुए आगे दोनों तरफ के २-२ (कुल ४) थम्भ माणिक के हैं।

तिन जोड़े भी चार थंभ, सो पीत रंग पुखराज।

तिन परे चारों पाच के, दोऊ तरफों रहे बिराज॥११७॥

माणिक के थम्भों से लगते हुए आगे के २-२ (कुल ४) थम्भ पुखराज के पीले रंग के हैं। इसके आगे दोनों तरफ के २-२ (कुल ४) थम्भ पाच के हरे रंग के हैं।

चारों खूंटों थंभ नीलवी, सोभा लेत इत ए।

पांच थंभों के लगते, हुए बीस दस जोड़े॥११८॥



चारों कोने पर नीलम के ४ थम्भ शोभायमान हो रहे हैं।  
इस प्रकार, ५ रंग के दोनों चबूतरों पर १०-१० कुल  
२० थम्भ दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

ए बीस थम्भों का बेवरा, इनों क्यों कहूं रोसन नूर।  
कटाव किनारे कांगरियों, क्यों कहूं इन द्वार जहूर॥११९॥  
चबूतरे पर आये हुए इन २० थम्भों का यह विवरण है।  
इनकी नूरी आभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। मुख्य दरवाजे  
की किनार पर बेल-बूटों तथा काँगरियों की आकर्षक  
शोभा आयी है। इनकी सुन्दरता का वर्णन मैं कैसे करूँ।

चार चार मेहेराव दाएं बाएं, आठ हुए तरफ दोए।  
सोभा आगूं बड़े द्वार के, सो इन मुख खूबी क्यों होए॥१२०॥  
मुख्य दरवाजे के दायें-बायें जो ५-५ थम्भ (चबूतरे

की बाहरी किनार पर) हैं, इनके मध्य ४-४ महराबें हैं। चबूतरे की बाहरी किनार पर दोनों ओर की कुल ८ महराबें होती हैं (भीतरी किनार पर भी ८ अक्शी महराबें हैं)। इस प्रकार मुख्य द्वार के सामने शोभायमान चबूतरों, थम्भों, और महराबों की शोभा का वर्णन इस मुख से कैसे हो सकता है।

**दोऊ तरफ दोए चबूतरे, ए जो लगते दीवार।**

**तीनों तरफों कठेड़ा, क्यों देऊं इन मिसाल॥१२१॥**

मुख्य द्वार के दायें-बायें के ४-४ मन्दिरों से लगकर सामने ये दो चबूतरे हैं। इनकी तीन दिशाओं- उत्तर, पूर्व, एवं दक्षिण- में थम्भों के मध्य कठेड़ा आया हुआ है। मैं किसी भी वस्तु से इनकी सुन्दरता की उपमा नहीं दे सकती।

कठेड़ा रंग कंचन, जानों के मीना माहें।

सोभा लेत थंभ कठेड़े, ए केहे न सके जुबांए॥१२२॥

कठेड़ा कञ्चन रंग का है। इसमें अति सुन्दर चित्रकारी की हुई है। थम्भों के मध्य में कठेड़ा इस प्रकार शोभायमान हो रहा है कि उसकी शोभा को यह जिह्वा शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती।

कई रंग जवेर चबूतरों, कई दिवालें रंग नंग।

ऊपर तले का नूर मिल, करत अंबर में जंग॥१२३॥

दोनों चबूतरों में अनेक रंगों के जवाहरात झलकार कर रहे हैं। इसी प्रकार दीवारों में भी अनेक रंगों के नग जगमगा रहे हैं। नीचे के चबूतरों तथा ऊपर की दीवारों की ज्योति आकाश में टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत हो रही है।

ए अर्स नूरजमाल का, तिन अर्स बड़ा दरबार।

एह जोत आकास में, मावत नहीं झलकार॥१२४॥

यह रंगमहल अक्षरातीत का धाम है और ये दोनों चबूतरे इस रंगमहल के बड़े दरबार के रूप में हैं। इनकी अलौकिक ज्योति से इतनी झलकार हो रही है कि वह आकाश में भी नहीं समा पा रही है।

**भावार्थ-** इन चबूतरों पर युगल स्वरूप सहित सखियाँ बैठा करते हैं और पशु-पक्षी उनके सामने तरह-तरह के खेल करते हैं, इसलिये इन्हें रंगमहल का दरबार कहते हैं।

आठ भोम इन ऊपर, तिन आठों भोम पड़साल।

जाए पोहोंच्या लग चांदनी, ऊपर गुमटियां लाल॥१२५॥

इन चबूतरों के ऊपर आठों (दूसरी से नवमीं तक)

भूमिकाओं में पड़सालें सुशोभित हो रही हैं। इनके ऊपर चाँदनी में भी इसी प्रकार थम्भ (दहलानें) शोभायमान हैं, जिनकी छत पर लाल गुमटियाँ विद्यमान हैं।

**भावार्थ-** दोनों चबूतरों के ऊपर दूसरी भूमिका में ४ मन्दिर की लम्बी और २ मन्दिर की चौड़ी २ पड़सालें (झरोखे) हैं। तीसरी से नवमी भूमिका तक १० मन्दिर की लम्बी और २ मन्दिर की चौड़ी पड़सालें हैं। दरवाजे के १० मन्दिर के हाँस की चाँदनी में १० थम्भों की ४ हारे हैं, जिसकी चाँदनी के चारों कोनों में ४ गुम्मत हैं, तथा बाहरी हार मन्दिरों के ऊपर इस दहलान की चाँदनी में २० गुम्मत हैं।

ए सोभा अचरज अदभुत, जानें अर्स अरवाए।

इन भोम रूह सो जान हों, जिन मोमिन कलेजे घाए॥१२६॥

रंगमहल की यह शोभा अत्यन्त अद्भुत है, जिसे मात्र परमधाम की आत्मायें ही जानती हैं। जिन आत्माओं के हृदय में विरह की चोट लगती है, एकमात्र उन्हीं को यहाँ की शोभा का अनुभव होता है।

आगूं तले चौक चांदनी, उतर जाइए सीढ़ियन।

आगूं दोए चबूतरे चौक के, ऊपर हरा लाल दोऊ बन॥१२७॥

इस मुख्य द्वार के आगे जमीन पर (नीचे) चाँदनी चौक है। सौ सीढ़ियों से उतरकर आप नीचे जाइये, सामने चाँदनी चौक में दो चबूतरे शोभायमान हैं, जिन पर लाल तथा हरे रंग के वृक्ष (आम एवं अशोक) शोभायमान हैं।

इत सोभा चौक चांदनी, इन मोहोलों मुजरा जानवर।

इन जुबां खूबी क्यों कहूं, ए जो बन में करें जिकर॥१२८॥

इन दोनों चबूतरों पर युगल स्वरूप के साथ सखियाँ विराजमान होती हैं और सभी पशु-पक्षी आकर जब उनका दर्शन करते हैं, तो इस समय की शोभा अद्भुत ही होती है। जब पशु-पक्षी वनों में धाम धनी की महिमा का गायन करते हैं, तो उस समय की शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

ए जो रस्ता बन का, जोए जमुना लग किनार।

सात घाट दोए पुल बीच में, कई चौक बने कई हार॥१२९॥

रंगमहल के मुख्य दरवाजे (सीढ़ियों) के सामने से २ मन्दिर का चौड़ा रास्ता अमृत वन के मध्य से होते हुए यमुना जी के किनारे (पुखराजी रौंस) तक गया है। दोनों पुलों के बीच सातों घाट में वृक्षों के चौकों की कई हारें आयी हैं।

**भावार्थ-** चार वृक्षों के मध्य का यह भाग, जिसमें बैठने या खेलने के स्थान होते हैं, चौक कहलाता है।

द्वार सामी पाट घाट का, सो रस्ता बराबर।

जोए परे रस्ता नूर लग, आवे साम सामी द्वार नजर॥१३०॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने से जाने वाला मार्ग सीधे पाट घाट तक जाता है। यमुना जी के पार, इसी प्रकार २ मन्दिर की चौड़ी रौंस (मार्ग) है, जो सीधे अक्षरधाम तक जाती है। अक्षरधाम तथा रंगमहल के मुख्य द्वार आमने-सामने दिखायी देते हैं।

ऊपर पाट चौक चांदनी, चारों खूंटों अति सोभाए।

नंग जंग करें रंग पांच के, बारे थंभ गिरदवाए॥१३१॥

१५० मन्दिर के लम्बे-चौड़े पाट की चारों दिशाओं की



किनार पर १२ थम्भों की शोभा है, जिनके ऊपर सुन्दर चाँदनी (छत) आयी है। इस पर मध्य में सुन्दर देहुरी (गुम्मत) की शोभा है तथा किनार पर चारों ओर कठेड़ा आया हुआ है। पाट पर आये हुए १२ थम्भ कुल पाँच प्रकार के रंग के नगों के हैं। इनसे निकलने वाली किरणें आपस में युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती हैं।

**चारों तरफों थंभ दो दो, जानों बने चार द्वार।**

**मानिक हीरे पाच पोखरे, ए चारों द्वार नंग चार॥१३२॥**

पाट घाट की चारों दिशाओं में २-२ थम्भ विद्यमान हैं, जो ४ महराबी द्वार के समान सुशोभित हो रहे हैं। महराब रूपी चारों द्वारों में चार नगों – मानिक, हीरा, पाच, पुखराज – के दो-दो थम्भ आये हैं।

नूर दिस थंभ दोए मानिक, बट दिस हीरा थंभ दोए।

दोए थंभ पाच दिस अर्स के, थंभ पोखरे केल दिस सोए॥१३३॥

पाट घाट में अक्षरधाम की ओर के दो थम्भ माणिक के हैं। वट घाट की ओर के दो थम्भ हीरे के हैं। रंगमहल की ओर के दो थम्भ पाच के हैं, तथा केल घाट की ओर के दो थम्भ पुखराज के दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

चार थंभ चार खूंट के, नीलवी के झलकत।

ए बारे थंभों का बेवरा, माहें जल सों जंग करत॥१३४॥

पाट घाट के चारों कोनों के चार थम्भ नीलम के आये हैं। इस प्रकार जल के ऊपर आये इन बारह थम्भों का विवरण है। इनसे निकलने वाली किरणें जल से टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती हैं।

सोभा लेत अति कठेड़ा, ऊपर ढांप चली किनार।

सोभा जल में झलकत, जल नंग तरंग करे मार॥१३५॥

पाट घाट की तीनों दिशाओं (उत्तर, दक्षिण, तथा पूर्व) में किनार पर थम्भों के मध्य कठेड़ा शोभायमान है। पाट घाट ने यमुना जी की दोनों किनार (रंगमहल एवं अक्षरधाम की तरफ) को ऊपर से ढक लिया है तथा इसके नीचे से यमुना जी दोनों ओर (रंगमहल तथा अक्षरधाम के पाट में) ३-३ घड़नालों में बहती हैं। इस सम्पूर्ण पाट घाट की शोभा जल में झलकार कर रही है। इसके नगों से निकलने वाली तरंगे जल की लहरों से टकराकर प्रहार सी करती हुई सुशोभित हो रही हैं।

ए दोऊ द्वार के बीच में, भरी जोत जिमी अंबर।

और उठत जोत बन की, नूर अर्स कहुं क्यों कर॥१३६॥

रंगमहल तथा अक्षरधाम, दोनों तरफ के मुख्य द्वारों के बीच में आये हुए पाट घाट की ज्योति धरती से लेकर आकाश तक में छायी हुई है। दोनों ओर के सातों घाटों के वृक्षों की भी अनुपम ज्योति आकाश में दृष्टिगोचर होती है। परमधाम की ऐसी नूरमयी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**नूर और नूरतजल्ला, आकास जिमी सब नूर।**

**देत देखाई सब नूरै, नूर जहूर भर पूर॥१३७॥**

अक्षरधाम तथा परमधाम की सम्पूर्ण धरती और आकाश में जो कुछ भी दिखायी पड़ता है, सब नूर ही नूर है। चारों ओर धनी के नूर की ही क्रीड़ा होती हुई दिख रही है।

सब्द न अब आगे चले, जित पर जले जबराईल।

इत आवें रूहें अर्स की, जो होए अरवा असील॥१३८॥

मैंने परमधाम की शोभा के सम्बन्ध में अब तक जो कुछ भी कहा है, उससे अधिक कह पाना सम्भव नहीं है। इस परमधाम में तो ज़िबरील का भी प्रवेश नहीं है (पर जलते हैं)। जो यथार्थ में परमधाम की ब्रह्मसृष्टि है, एकमात्र वह ही यहाँ पर आने का अधिकार रखती है।

महामत कहे सुनो मोमिनो, ए अर्स नूरजमाल।

एही अर्स अजीम है, रहें इन दरगाह रूहें कमाल॥१३९॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! मेरी बात सुनिये। अक्षरातीत का यह परमधाम सर्वोपरि धाम है, और यहाँ मात्र वे ब्रह्मात्मायें ही रहती हैं जो पूर्ण ब्रह्म अक्षरातीत की अङ्गरूपा हैं और उन्हीं के समान पूर्ण हैं।

प्रकरण ॥३४॥ चौपाई ॥१९५६॥

## नूर परिकरमा अंदर दस भोम

### ॥ मंगला चरन ॥

इस प्रकरण में रंगमहल की दसों भूमिकाओं में क्रीड़ा करने वाले "नूर" की वास्तविक व्याख्या की गयी है। मंगलाचरण के इस प्रकरण में नूर का स्वरूप सर्वविदित हो जाता है। सच्चिदानन्द परब्रह्म के स्वरूप को दर्शाने के लिये अरबी भाषा में जिस "नूर" शब्द का प्रयोग होता है, वही वेद का आदित्य वर्ण, भर्गः, एवं शुक्र शब्द है। परब्रह्म में जो अनन्त गुण प्रेम, सौन्दर्य, कान्ति, आभा, उल्लास, आनन्द, अखण्डता, ऐश्वर्य, जीवन, माधुर्य, तेज, ज्योति आदि हैं, वे सभी "नूर" के अन्दर समाहित हैं।

अक्षरातीत के परम सत्य, ऋत्, विज्ञानमय (मारिफत) स्वरूप हृदय का प्रकटीकरण ही सत्य

(हकीकत) के रूप में परमधाम के २५ पक्षों, श्यामा जी, सखियों, खूब खुशालियों, पशु-पक्षियों, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी आदि के स्वरूप में क्रीड़ा कर रहा है। दूसरे शब्दों में यही कहा जा सकता है कि श्री राज जी का स्वरूप ही नूर के स्वरूप में परमधाम में अन्दर-बाहर सभी पदार्थों के रूप में क्रीड़ा कर रहा है। कालमाया के नश्वर सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत आदि की जड़ ज्योतियों को नूर समझने की भूल नहीं करनी चाहिए।

**बड़ीरुह रुहें नूर में, ले अर्स नूर आराम।**

**नूरजमाल के नूर में, नूर मगन आठों जाम॥१॥**

असीम सौन्दर्य सागर में डूबी हुई श्यामा जी सहित सभी सखियाँ परमधाम के अनन्त प्रेम और आनन्द के रस में ओत-प्रोत हैं। श्री राज जी के अखण्ड प्रेम में ये

सखियाँ आठों प्रहर डूबी रहने वाली हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में नूर का तात्पर्य सौन्दर्य, प्रेम, और ज्योतिर्मयी स्वरूप से लिया गया है।

तिनका जरा सब नूर में, नूर जिमी बिरिख बाग।

नूर फल फूल पात नूर, रूहें निसदिन नूर सोहाग॥२॥

परमधाम का चाहे कोई तिनका हो या धूल का कण हो, सभी ज्योतिर्मयी शोभा से युक्त हैं। वहाँ की धरती, वृक्ष, बाग, फूल, तथा पत्ते भी अनन्त नूरी आभा से परिपूर्ण हैं। सखियाँ दिन-रात अपने प्रियतम के प्रेम में मग्न रहा करती हैं।

नूर किनार नूर जोए के, नूर जल तरंग।

नूर जल पर मोहोलातें, क्यों कहूं नूर के रंग॥३॥



नूरमयी यमुना जी का किनारा (जल-रौंस) भी नूरमयी है। जल की लहरें भी नूरी हैं। नूरी जल पर बने हुए महल (पाट घाट) भी नूरी हैं। नूर के अलग-अलग स्वरूपों का मैं कैसे वर्णन करूँ।

**नूर जिमी निकुंज बन, नूर जिमी जल ताल।**

**नूर टापू मोहोलात नूर, और नूर मोहाल बन पाल॥४॥**

कुञ्ज-निकुञ्ज वन की धरती नूरमयी है तथा हौज़ कौसर ताल, उसका जल, एवं धरती सभी कुछ अखण्ड तेज से परिपूर्ण हैं। टापू महल भी नूरमयी है। पाल अन्दर के महल और पाल के ऊपर आये हुए बड़ोवन के वृक्ष भी नूरी ज्योति से ओत-प्रोत हैं।

नूर जल किनारे सीढ़ियां, नूर चबूतरा गिरदवाए।

नूर मोहोल मेहेराव फिरते, नूर झांई जल में बनराए॥५॥

हौज़ कौसर ताल के किनारे चारों ओर जल रौंस से लगती हुई कटी पाल की नूरमयी सीढ़ियाँ उतरी हैं। ये सीढ़ियाँ १२८ बड़ी देहुरियों के सामने आये हुए नूरमयी चबूतरों से (दायें-बायें) उतरी हैं। चबूतरे के नीचे तथा जहाँ सीढ़ियाँ आमने-सामने उतरी हैं, वहाँ पर महाराबें (द्वार) आई हैं, जहाँ से पाल अन्दर के महलों में जाया जाता है। चौरस पाल पर आयी हुई देहुरियों, वृक्षों, सीढ़ियों, तथा महाराबों के सुन्दर प्रतिबिम्ब जल में झलकार करते हैं।

नूर जरे तिनके का, मैं नूर कह्या दिल धर।

नूर समूह की क्यों कहूं, रुहें नूर देखें सहूर कर॥६॥

परमधाम के एक तिनके में ही इतना नूर है कि उसका वर्णन भी दिल में बहुत विचार करके कहना पड़ा क्योंकि इस संसार में उसकी भी कोई उपमा नहीं है। ऐसी अवस्था में मैं परमधाम के समस्त नूर की शोभा का वर्णन कैसे कर सकती हूँ। नूरी सौन्दर्य का अनुभव तो परमधाम की आत्मायें मात्र चितवनि की गहराइयों में डूबकर ही पा सकती हैं।

**सुपेत जिमी नूर झलके, नूर आकास लग भरपूर।**

**नूर सामी आकास का, क्यों कहूं जोर जंग नूर॥७॥**

हौज़ कौसर ताल की पाल श्वेत हीरे की है, जिसकी सफेद नूरी ज्योति बहुत अधिक झलकार कर रही है और सम्पूर्ण आकाश में फैली हुई है। आकाश भी नूरमयी है। इस प्रकार पाल की जमीन के नूर तथा आकाश के नूर

की टकराहट से युद्ध जैसा अति मनोहर दृश्य उपस्थित हो जाता है, जिसकी शोभा का वर्णन कर पाना बहुत कठिन है।

नूर बाग हिंडोले रोसन, बिना हिसाबें नूर के।

हक हादी रूहें नूर में, नूर हींचें अर्स लगते॥८॥

वट-पीपल की चौकी तथा ताड़वन रंगमहल की दीवार से लगते हुए आये हैं। इनमें असंख्य नूरी हिण्डोले हैं। इनमें नूरी स्वरूप वाले श्री राजश्यामा जी तथा सखियाँ झूला झूलते हैं।

हक बड़ी रूह हींचें नूर में, और रूहें नूर बारे हजार।

जोत नूर आकास में, नूर भरयो करे झलकार॥९॥

श्री राजश्यामा जी तथा सखियों का स्वरूप अति सुन्दर

नूरमयी है। जब ये हिण्डोलों में झूलते हैं, तो उनकी नूरी ज्योति आकाश में फैलकर झलझलाती रहती है।

**खोल आंखें रूह नूर की, क्यों नूर न देखे बेर बेर।**

**क्यों न आवे बीच नूर के, ज्यों नूर लेवे तोहे घेर॥१०॥**

हे मेरी आत्मा! अब तू अपनी मनोहर आँखों को खोल! तू परमधाम की इस नूरमयी शोभा को बार-बार क्यों नहीं देख रही है? तू मायावी जगत को छोड़कर इस नूरी धाम में क्यों नहीं आ जाती, जहाँ तेरे चारों ओर नूर ही नूर घिरा (फैला) हुआ है?

**भावार्थ—** परात्म का स्वरूप नूरमयी है। यद्यपि इस संसार में परमधाम का नूर नहीं आ सकता, क्योंकि "इस अर्स की एक कंकरी, उड़ावे चौदे तबक" (श्रृंगार २१/३९)। आत्मा प्रतिबिम्ब है परात्म की, इसलिये

आत्मा के नेत्रों को अति सुन्दर (नूरमयी) कहा गया है। इस चौपाई में स्वयं के प्रति कथन करके श्री महामति जी ने सब सुन्दरसाथ को अपने आत्मिक नेत्रों को खोलने का निर्देश दिया है।

**ए रोसन करत कौन नूर की, नूर केहेत आगे किन।**

**केहेत है नूर किन का, नूर रूह केहे चली मोमिन॥११॥**

परमधाम की नूरमयी शोभा को कौन प्रकट कर रहा है? अखण्ड प्रकाश से युक्त ज्ञान (नूर) किससे कहा जा रहा है? किसका तेज (नूर) ज्ञान की इस अमृतधारा को मेरी आत्मा के धाम-हृदय में विराजमान होकर नूरी आत्माओं से कह रहा है?

**भावार्थ-** परमधाम की नूरमयी शोभा का वर्णन स्वयं श्री राज जी अपने आवेश स्वरूप से श्री महामति जी के

धाम-हृदय में विराजमान होकर कर रहे हैं। यह अमृतधारा परमधाम की आत्माओं के हृदय में प्रवाहित की जा रही है। श्री राज जी के आवेश का तेज (नूर) ही इस ज्ञान को प्रकट कर रहा है। इस सम्बन्ध में कलस हिंदुस्तानी २४/३४ का यह कथन देखने योग्य है—

ए नूर आगे थें आइया, अछर ठौर के पार।

ए सब जाहेर कर चल्या, आया निज दरबार॥

**देखो मोहोलातें नूर की, अंदर सब पूर नूर।**

**कहां लग कहूं माहें नूर की, नूर के नूर जहूर॥१२॥**

हे साथ जी! परमधाम के उन नूरमयी महलों की शोभा को देखिये, जिनके अन्दर केवल तेज ही तेज भरा हुआ है। सम्पूर्ण परमधाम की ज्योति (नूर) सौन्दर्य के सागर रूप अक्षरातीत श्री राज जी के उस नूरी मुखारविन्द से

प्रकट हुई है। उसकी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

सब चीजें इत नूर की, बिना नूर कछुए नाहें।

नूर माहें अंदर बाहेर, सब नूर नूर के माहें॥१३॥

परमधाम की लीला रूप प्रत्येक सामग्री नूरमयी है। यहाँ बिना नूर के कुछ है ही नहीं। प्रत्येक वस्तु के अन्दर-बाहर केवल नूर ही नूर विद्यमान है। नूरी परमधाम के अन्दर सब कुछ नूरमयी है।

नूर नजरोँ नूर श्रवनों, नूर को नूर विचार।

नूर सेज्या सुख नूर अंग, नूर रोसन नूर सिनगार॥१४॥

निजधाम में आँखों से जो कुछ भी देखा जाता है या कानों से जो कुछ भी सुना जाता है, वह मात्र नूर का ही स्वरूप है। सभी नूरी स्वरूपों (श्री राजश्यामा जी,



सखियों, खूब खुशालियों, आदि) के हृदय में नूर का ही विचार आता है। नूरी सेज्या पर सुख भी नूरी अंगों को ही मिलता है। सभी के अंगों में नूर की ही कान्ति है और वस्त्र-आभूषण के रूप में नूर का ही श्रृंगार है।

**नूर खाना नूर पीवना, नूर मुख मजकूर।**

**इस्क अंग सब नूर के, सब नूर पूर नूर॥१५॥**

भोजन लीला में नूर ही भोज्य पदार्थ है तथा पीने के लिये भी जल आदि के रूप में नूर ही है। सभी के मुख से केवल नूर (लीला रूप सभी पदार्थों आदि) के ही विषय में बात होती है। इश्क (प्रेम) से भरे हुए सबके अंग नूरमयी हैं। सभी नूरी स्वरूप (युगल स्वरूप, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, खूब खुशालियाँ, पशु-पक्षी, एवं सम्पूर्ण २५ पक्ष) अन्दर-बाहर नूर से ही ओत-प्रोत

(सराबोर) हैं।

गुन अंग सब नूर के, नूर इंद्री नूर पख।

रीत रसम सब नूर की, प्रीत प्रेम नूर लख॥१६॥

परमधाम में सबके गुण, अंग (अन्तःकरण), इन्द्रियाँ, तथा पक्ष नूरमयी हैं। यहाँ की सभी रीतियाँ भी नूरमयी हैं। प्रेम-प्रीति को भी नूरी ही जानना चाहिए।

**भावार्थ-** इस चौपाई में "पक्ष" का तात्पर्य स्वभाव से है। यहाँ सबका एक ही स्वभाव है, धनी के प्रेम में डूबे रहना। "रीति" और "रस्म" समानार्थक शब्द हैं, इनमें केवल भाषा भेद है। रस्म शब्द अरबी भाषा का है। प्रेममयी व्यवहार ही यहाँ की रीति (रस्म) है।

आसमान जिमी तारे नूर के, नूर चांद और सूर।

रंग रूत नूर वाए बादल, गाजे बीज नूर भरपूर॥१७॥

परमधाम की धरती तथा आकाश भी नूरी हैं। सूर्य, चन्द्रमा, और तारे भी नूरमयी हैं। यहाँ के सभी रंग, ऋतुएँ, हवा, तथा बादल भी नूरी हैं। इन बादलों में नूरी विद्युत (बिजली) चमकती रहती है।

मोहोल मन्दिर सब नूर में, झांखन झरोखे नूर।

द्वार दिवालें नूर सब, सब नूर हजूर या दूर॥१८॥

निजधाम के महल-मन्दिर सभी नूर में ओत-प्रोत हैं। जिन झरोखों में बैठकर बाहर का दृश्य देखा जाता है, वे सभी नूरी हैं। महल-मन्दिरों के द्वार एवं दीवारें भी नूरमयी हैं। चाहे कोई वस्तु अति निकट हो या बहुत दूर, सबका स्वरूप नूर का ही है।

थंभ दिवालें नूर की, नूरै के झरोखे।

नूर सरूप माहें झांकत, नूर सब नूर देखें ए॥१९॥

यहाँ के थम्भ, दीवारें, तथा मनोहर झरोखे सभी नूरमयी हैं। नूरी स्वरूप वाली सखियाँ इन्हीं झरोखों से झाँका (देखा) करती हैं। इस प्रकार देखने वाले भी नूरी हैं और जिन पदार्थों को झरोखों से देखा जाता है, वे भी नूरी हैं।

मोहोल मन्दिर सब नूर के, नूर मेहेराव खिड़कियां द्वार।

नूर सीढ़ियां सोभा नूर की, बीच गिरदवाए नूर झलकार॥२०॥

परमधाम के महल, मन्दिर, महाराबें, खिड़कियाँ, तथा दरवाजे सभी नूरमयी हैं। यहाँ की नूरी सीढ़ियाँ नूरी छवि से भरपूर हैं। उनके चारों ओर नूर ही नूर झलकार कर रहा है।

कहा कहूं नूर नवे भोम का, नूर क्यों कहूं नूर बिसात।  
 नूर वस्तर कहे न जावहीं, तो क्यों कहूं नूर हक जात॥२१॥

रंगमहल की नवीं भूमिका की अपार नूरी शोभा के विषय में मैं क्या कहूँ। इस भूमिका में नूरी सामग्रियों (सामानों) की मनोहर छवि कहने में नहीं आती। जब नूरी वस्त्रों की मनोहारिता का वर्णन नहीं हो पाता, तो श्री राज जी की अँगस्वरूपा श्यामा जी एवं सखियों के अपरिमित सौन्दर्य का वर्णन हो पाना कैसे सम्भव है।

रहें नूर सरूप पानी मिने, तो भीजें ना नूर तन।  
 नूर तन रहें जो आग में, तो भी नूर न जलें अगिन॥२२॥

परमधाम के सभी नूरी स्वरूप (श्री राजश्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, खूब खुशालियाँ आदि) यदि जल में रहते, तो भी वे भीगते नहीं हैं। इसी प्रकार

यदि अग्नि के भी सम्पर्क में आते हैं, तो भी वे जलते नहीं हैं।

**भावार्थ—** निजधाम में कण-कण में अक्षरातीत का ही स्वरूप लीला कर रहा है, इसलिये सभी कुछ नूरमयी है। वहाँ जब जल एवं अग्नि भी नूरमयी तथा चेतन हैं, तो सखियों आदि के नूरी स्वरूपों को कैसे भिगा सकते हैं या जला सकते हैं।

कहे हक नूर बैठ नासूत में, करें नूर लाहूत के काम।

नूर रुहें जिमी दुख में, लेवें नूर लाहूती आराम॥२३॥

इस पृथ्वी लोक में अक्षरातीत अपने आवेश स्वरूप से मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर मुझसे तारतम ज्ञान (नूर) का प्रकटन करा रहे हैं और यह तारतम ज्ञान परमधाम की आत्माओं को जाग्रत करने का कार्य कर

रहा है। इस दुःखमयी संसार में नूरी आत्मायें जाग्रत होकर नूरी परमधाम के आनन्द का भी अनुभव कर रही हैं।

**भावार्थ-** इस प्रकरण की १४वीं चौपाई के दूसरे चरण (नूर को नूर विचार) में जब नूरी सखियों के विचार को भी नूरी कहा जा सकता है, तो परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्माओं को नूरी क्यों नहीं कहा जा सकता ? इस प्रकार इस चौपाई (२३वीं) में "नूर रूहें" का तात्पर्य नूरी आत्माओं से होगा।

**दिल मोमिन अर्स नूर में, नूर इस्क आग जलाए।**

**एक नूर वाहेदत बिना, और नूर आग काहूं न बचाए॥२४॥**

ब्रह्मात्माओं का दिल नूरी परमधाम की शोभा में ही डूबा रहता है। उन्हें परमधाम के प्रेम की अग्नि जलाती रहती

है। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी नूरी परमधाम की वहदत (एकत्व) की अग्नि से बच नहीं पाता , अर्थात् वहदत में प्रवेश नहीं कर पाता।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे और तीसरे चरण के बातिनी अर्थों में बहुत भेद है। यह भेद निस्वत (मूल सम्बन्ध) के भेद से है। प्रेम और विरह की अग्नि में जलने का सौभाग्य मात्र आत्माओं को ही प्राप्त होता है। इसलिये "विरहा नहीं ब्रह्माण्ड में, बिना सोहागिन नार" (कलस हि. ९/२३), "हक इस्क आग जोरावर, इनमें मोमिन बसत" (श्रृंगार २२/४) के कथन किये गये हैं।

किन्तु, इस चौपाई (२४वीं) के चौथे चरण में यह बात दर्शायी गयी है कि मूल सम्बन्ध के बिना परमधाम की वहदत में प्रवेश करने का अधिकार किसी को भी नहीं है। इस्क की जिस वहदत का रस स्वयं अक्षर ब्रह्म



नहीं ले पाते, तो अन्य (जिबरील, इस्राफील, ईश्वरी सृष्टि, या जीवसृष्टियों) के लिये कैसे सम्भव है। इसे श्रीमुखवाणी में इस प्रकार दर्शाया गया है—

जित चल न सके जबरईल, कहे मेरे पर जलत।

नूर तजल्ला की तजल्ली, ए जोत सेहे ना सकत॥

खुलासा ९/१४

हक देखे वजूद न रहे, ज्यों दारु आग से उड़त।

यों वाहेदत देखें दूसरा, पाव पल अंग न टिकत॥

श्रृंगार २२/३

कई गलियां नूर पौरियां, कई नूर चौक चौबट।

नूर बसे जो इन दिलों, तो नूर खुल जावे पट॥२५॥

परमधाम में असंख्य नूरमयी गलियाँ, महाराबें, चौक,

और चौराहे हैं। जब इन ब्रह्मात्माओं के हृदय में तारतम ज्ञान का प्रकाश आ जाता है, तो इनकी आत्मा के हृदय का पट खुल जाता है।

**नूर सीढ़ियां नूर चबूतरे, नूर के थंभ दीवार।**

**बीच खाली सोभा नूर की, ए नूर कहूं किन हाल॥२६॥**

यहाँ नूर की सीढ़ियाँ हैं तथा नूर के ही चबूतरे हैं। थम्भ और दीवारें भी नूरमयी हैं। थम्भों और दीवारों के बीच (खाली जगह) में भी नूर की ही शोभा झलझलाती हुई दृष्टिगोचर होती है। ऐसे विलक्षण नूर की छवि का मैं कैसे वर्णन करूँ।

**बाजे बासन सब नूर के, पलंग चौकी सब नूर।**

**नूर बिना जरा नहीं, नूर नूर में नूर जहूर॥२७॥**

संगीत के सभी वाद्य-यन्त्र एवं बर्तन नूरमयी हैं। पलंग और चौकियाँ भी नूरी स्वरूप वाले हैं। एक कण भी नूर से रहित नहीं हैं। चारों ओर दृश्यमान ज्योतियों में श्री राज जी की ही आभा दिखायी देती है।

**दसों दिसा सब नूर की, नूरै का आकास।**

**इन जुबां नूर बिलंद की, क्यों कहूं नूर प्रकास॥२८॥**

दसों दिशायें (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊपर, नीचे) अखण्ड नूर से ज्योतिर्मयी हैं। आकाश भी नूरी हैं। मैं इस जिह्वा से उस सर्वोपरि परमधाम की अनन्त शोभा का वर्णन कैसे करूँ।

**बाग जंगल राह नूर के, पसु पंखी नूर पूर।**

**ख्वाब जिमी में नूर अर्स की, नूर जुबां कहा करे मजकूर॥२९॥**

परमधाम के बाग, वन, और मार्ग सभी नूरी हैं। सभी पशु-पक्षी अलौकिक सुन्दरता से युक्त हैं। भला, इस सपने के संसार में परमधाम की नूरी छवि की बात मेरी यह जिह्वा कैसे कर सकती है।

**होत नूर थें दूजा बोलते, दूजा नूर बिना कछू नाहें।**

**एक वाहेदत नूर है, सब हक नूर के माहें॥३०॥**

निजधाम में श्री राज जी के नूर (सौन्दर्य, आभा) के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। नूर के अतिरिक्त किसी और स्वरूप की बात करने पर वहाँ द्वैत की स्थिति बन जायेगी। इसलिये संक्षेप में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि स्वलीला अद्वैत परमधाम में श्री राज जी के दिल का प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, एकत्व आदि ही नूर के रूप में क्रीड़ा कर रहा है और वहाँ दृश्यमान सभी स्वरूप श्यामा

जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, पशु-पक्षी, २५ पक्ष आदि श्री राज जी के नूर की ही शोभा के अलग – अलग रूप हैं।

**नूर कहे महामत रूहें, देखो नजरों नूर इलम।**

**वाहेदत आप नूर होए के, पकड़ो नूरजमाल कदम॥३१॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! आप तारतम ज्ञान की दृष्टि से परमधाम को देखिए तथा अपनी नूरी परात्म का श्रृंगार सजकर चितवनि द्वारा धनी को अपने धाम-हृदय में बसा लीजिए (पकड़ लीजिए)।

**भावार्थ-** परात्म के सभी तनों में वहदत (एकत्व) है। इस चौपाई के तीसरे चरण में स्वयं को नूर वहदत के रूप में मानने का भाव यह है कि इस पञ्चभौतिक शरीर, संसार, और जीव-भाव से अलग होकर स्वयं को

परात्म-स्वरूपा मानना। इस भाव में भावित होकर एकमात्र प्रेममयी चितवनि द्वारा ही उस प्रियतम के स्वरूप (चरण कमल) को अपने धाम-हृदय में बसाया जा सकता है।

**प्रकरण ॥३५॥ चौपाई ॥१९८७॥**

## नूर परिकरमा अन्दर ताँई

इस प्रकरण में सम्पूर्ण परमधाम के अन्दर की नूरी शोभा का संक्षिप्त रूप में चित्रण किया गया है।

नूर तरफ पाट घाट नूर का, बारे थंभ नूर के।

ऊपर चाँदनी नूर रोसन, नूर क्यों कहूं किनार बन ए॥१॥

अक्षरातीत के रंगमहल के आगे अक्षरधाम की ओर यमुना जी पर नूरी पाट घाट (दोनों किनारे पर) आया है। इसके किनार पर १२ नूरी थम्भे आये हैं। इन थम्भों के ऊपर नूरी चाँदनी जगमगा रही है। यमुना जी के किनारे आये हुए वनों की नूरी छवि का वर्णन मैं कैसे करूँ।

नूर घाट जांबू बन का, और नूर घाट नारंग।

बट घाट छत्री बन हिंडोले, पुल सोभे मोहोल नूर रंग॥२॥

जाम्बू वन का घाट नूरमयी है। इसके दक्षिण में अति सुन्दर नूरमयी नारंगी घाट है। नारंगी घाट की दक्षिण दिशा में वट का घाट है, जिसमें वट के विशाल वृक्ष में पाँच छत्रियाँ (भूमिकायें) हैं तथा इनके बड़वाइयों के मध्य हिण्डोले सुशोभित हो रहे हैं। इसके सामने यमुना जी के ऊपर वट का पुल है, जो महल के समान नूरमयी रंगों से युक्त है तथा पाँच भूमिकाओं (मन्जिलों) वाला है।

नूर किनारे रेती नूर में, मोहोल चबूतरे नूर किनार।

ताल हिंडोले बीच नूर बन, नूर सोभा निकुंज अपार॥३॥

यमुना जी की किनार पर, मरोड़ के पास, पुखराजी रौंस की बाहरी तरफ २५० मन्दिर की चौड़ाई में नूरमयी



रमण-रेती है। वट पुल से लेकर मरोड़ तक यमुना जी के दोनों ओर पाल पर नूरी शोभा वाले ५ महल तथा ४ चबूतरे क्रमशः सुशोभित हो रहे हैं। हौज़ कौसर ताल और वट-पीपल की चौकी (हिण्डोलों) के बीच में नूरी कुञ्ज-निकुञ्ज वनों की असीम शोभा दृष्टिगोचर हो रही है।

**नूर नेहरें मोहोलों तले, नूर ढांपे चले अनेक।**

**नूर चले नूर चक्राव ज्यों, नूर सुख पाइए देख विवेक॥४॥**

महलों के नीचे नूरमयी नहरें प्रवाहित हो रही हैं। इनमें बहुत सी नहरें ढकी हुई हैं। इन नूरी नहरों में नूरी जल चक्र की भांति घूमते हुए प्रवाहित होता है। हे साथ जी! इस नूरी शोभा को विवेकपूर्वक (आत्म-चक्षुओं से) देखकर आप अखण्ड सुख का अनुभव कर सकते हैं।

मोहोल मानिक पहाड़ नूर के, कई नेहरें चादरें नूर ताल।

कई मोहोल हिंडोले नूर के, ए नूर देखे बदले हाल॥५॥

माणिक पहाड़ के महल नूरी शोभा से ओत-प्रोत हैं। इसकी चाँदनी में कई प्रकार से नूरी नहरें बहती हैं। बहुत सी धारायें (चादरें) गिरती हैं, कई नूरमयी तालाब चारों तरफ आये हैं। इस माणिक पहाड़ में बहुत से नूरी महल तथा हिण्डोले हैं। इस विलक्षण शोभा को देखकर हमारी रहनी बदल जाती है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में रहनी बदलने का अर्थ यह है कि माणिक पहाड़ की अनुपम शोभा को देख लेने के पश्चात् इस झूठे संसार की ओर देखने की इच्छा नहीं करती है। पल-पल धाम-हृदय में वही शोभा दृष्टिगोचर होती रहती है।

कहा कहूं हिंडोले नूर के, नूर रूहें झूलें बारे हजार।

इन बिध नूर हिंडोले, नाहीं न नूर सुमार॥६॥

माणिक पहाड़ के उन महाबिलन्द हिण्डोलों का वर्णन क्या करूँ, जो नूरी (ज्योतिर्मयी) हैं और छठी चाँदनी के ऊपर लटक रहे हैं। इनमें प्रत्येक हिण्डोले के ऊपर १२००० सखियाँ एकसाथ झूलती हैं। इन हिण्डोलों में झलझलाने वाले नूर की कोई सीमा नहीं है।

बन नूर नेहेरें ढांपी चली, कई नेहेरें बन नूर विस्तार।

कई नूर नेहेरें मिली सागरों, कई नूर नेहेरें आवें वार॥७॥

वनों में बहुत सी नूरमयी नहरें ढाँपी चलती हैं, तो कई खुली चलती हैं। इस प्रकार इन नहरों का बहुत अधिक विस्तार है। कई नूरी नहरें सागरों में जाकर समा जाती हैं, तो बहुत सी ऐसी नूरमयी नहरें हैं जो सागरों से

निकलकर आती हैं।

कई मोहोलातें इत नूर की, कई टापू नूर मोहोलात।

ए निपट बड़े मोहोल नूर के, मोहोल नूर आकास में न समात॥८॥

सागरों में कई नूरमयी महल (बड़ी रांग की हवेलियाँ) आये हैं। सागरों के अन्दर अनेक टापू महलों की शोभा दिखायी देती है, जो नूरमयी हैं। निश्चय ही ये बहुत बड़े-बड़े महल हैं। इन महलों का नूर इतना अधिक है कि वह आकाश में नहीं समा पाता।

**भावार्थ-** टापू महलों की हवेलियों की ऊँचाई भी बड़ी रांग की हवेलियों के समान है। इनकी भी ऊपरा-ऊपर चौदह करोड़ चालीस लाख भूमिकायें हैं। इसलिये इन्हें भी बहुत बड़े महल कहकर सम्बोधित किया गया है।

नूर परिकरमा दीजिए, फिरते जाइए नूर बन में।

बाग परे नूर अंन बन, आगूं बन बिना नूर जिमी ए॥९॥

हे साथ जी! इस सम्पूर्ण नूरी शोभा को देखते हुए नूरबाग में आ जाइए। नूरबाग के परे (पश्चिम में) नूरी अन्न वन है। इसके आगे दूब दुलीचा है, जहाँ केवल नूरी घास आयी है। यहाँ पर वृक्ष नहीं है।

दूब दुलीचे नूर में, नूर लग्या जाए आसमान।

दूर लग नूर या विध, नूर खेलें इत चौगान॥१०॥

सम्पूर्ण दूब दुलीचा नूर से ओत-प्रोत है। इसका नूर सम्पूर्ण आकाश में फैला हुआ है। इसके आगे पश्चिम की चौगान है, जिसकी धरती का नूर बहुत दूर तक फैला हुआ है। यहाँ पर श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ तरह-तरह के खेल खेलते हैं।

आगूं बड़ा बन नूर का, आए नूर मधुबन।

कई हिंडोले नूर के, हुआ आसमान नूर रोसन॥११॥

रंगमहल की उत्तर दिशा में (लाल चबूतरे के सामने) नूरमयी बड़ोवन है। इसके आगे (उत्तर में) नूरी मधुवन है। इन वनों में नूरी हिण्डोले लगे हुए हैं, जिनकी ज्योति से सम्पूर्ण आकाश जगमगा रहा है।

नूर पांच पेड़ पुखराज के, दो नूर सीढ़ी तीसरा ताल।

ए आठों पहाड़ तले नूर में, ऊपर नूर मोहोल ना मिसाल॥१२॥

पुखराज के पाँचों नूरी पेड़, उत्तर-पश्चिम की नूरी सीढ़ियाँ (घाटियाँ), तथा नूरी पुखराजी ताल से आठों पहाड़ नीचे अलग-अलग हैं, किन्तु ऊपर एकरूप हो गये हैं। इनकी नूरी शोभा इतनी सुन्दर है कि इसकी कोई उपमा (मिसाल) नहीं दी जा सकती।

हजार गुरज नूर चांदनी, चांदनी नूर आसमान।

तापर मोहोल नूर आकासी, ए नूर आकास मोहोल सुभान॥१३॥

पुखराज की चाँदनी की किनार में १००० हाँस के नूरी महलों की सन्धि में बाहरी तरफ १००० नूरमयी गोल गुर्ज हैं। चाँदनी की आभा (नूर) सम्पूर्ण आकाश में फैली हुई है। चाँदनी के मध्य में नूरमयी आकाशी महल है। आकाश को छूता हुआ यह नूरमयी आकाशी महल श्री राज जी के नूर से ओत-प्रोत है और जगमगा रहा है।

इत बड़े जानवर नूर में, नूर खेलत रूहें खुसाल।

इत निपट बड़ा खेल नूर का, हँसे रूहें हादी नूर जमाल॥१४॥

यहाँ पर नूरी स्वरूप वाले बड़े-बड़े जानवर तरह-तरह के अति सुन्दर खेल खेला करते हैं। निश्चय ही ये खेल अति आनन्ददायी होते हैं। इन्हें देख - देखकर श्री

राजश्यामा जी एवं सखियाँ बहुत आनन्दित होते हैं और हँसते हैं।

चारों तरफ मोहोल नूर ताल के, नूर जल चादरों गिरत।

सो परत बीच नूर कुंड के, रूहें देख देख नूर हंसत॥१५॥

नूरी पुखराजी ताल के चारों ओर नूरी महल हैं (पूर्व-पश्चिम में दहलानें हैं और शेष जगह में जवाहरातों के महल हैं)। ताल के पश्चिम में आयी दहलानों की २१वीं चाँदनी से ४ धारायें ताल पर गिरती हैं, फिर यह जल ताल के पूर्व की दहलानों से चार नहरों के रूप में आगे जाता है, और १६ धाराओं के रूप में नूरी अधबीच के कुण्ड में गिरता है। इस अलौकिक नूरी शोभा को देखकर सखियाँ अति आनन्द से हँसती हैं।



तले बंगले नेहेरें नूर की, चले चक्राव नूर इत।

चारों तरफ बड़ी नूर पौरी, नूर सोभा न देखी कित॥१६॥

पुखराजी ताल के नीचे चबूतरे पर नूरमयी ४८ बंगलों की ४८ हारें एवं ४८ चहबच्चों की ४८ हारें हैं , जिनके मध्य नूरमयी नहरें प्रवाहित होती हैं। इन नहरों का जल चक्र की भांति घूमते हुए बहता है। बंगलों एवं चहबच्चों के चारों ओर फीलपायों तथा वृक्षों के मध्य में बड़ी –बड़ी नूरमयी महाराबें सुशोभित हो रही हैं। ऐसी नूरी शोभा कहीं भी देखने में नहीं आती है।

इत बंगले बगीचे नूर के, नूर कारंजें कई उछलत।

खूब खुसाली नूर भरी, नूर हँसें खेलें रमत॥१७॥

बंगलों के बगीचे नूर से भरपूर हैं। इनमें बहुत से नूरी फव्वारों से जल उछलता रहता है। नख से शिख तक

नूरी शोभा से युक्त खूब खुशालियाँ (अति आनन्दमयी सखियाँ) यहाँ हास्य-विनोद करती हैं तथा तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करती हैं।

नूर बाहेर नेहेर आई कुंड में, आगूं नूर चबूतरे।

जोए ढांपी चली मोहोल नूर के, नेहेर खुली नूर किनारे॥१८॥

अधबीच के कुण्ड की तलहटी से यमुना जी (नहर) ढँपे चबूतरे की तलहटी से होती हुई मूलकुण्ड की तलहटी में आती हैं। यहाँ से यमुना जी बाहर प्रकट होती हैं। आधी दूरी तक यमुना जी पाल पर आये हुए नूरमयी महलों (दहलानों) की छत द्वारा ढँपी हैं। उसके बाद आधी दूरी तक खुली हैं। खुली यमुना जी के भी दोनों किनारों में पाल के ऊपर नूरमयी दहलानें सुशोभित हो रही हैं।

दोऊ ढांपे किनारे नूर के, जोए फिरी नूर तरफ ताल।

नूर एक मोहोल एक चबूतरा, ए नूर देख होइए खुसाल॥१९॥

खुली यमुना जी के दोनों किनारों पर पालें दहलानों की छत से ढकी हुई हैं। यहाँ से यमुना जी दक्षिण दिशा में हौज़ कौसर ताल की ओर मुड़ जाती हैं। मरोड़ से केल पुल तक यमुना जी के दोनों तरफ पाल पर ५ महल और ४ चबूतरे क्रमशः आये हैं, जिन्हें एक महल-एक चबूतरा कहते हैं। हे साथ जी! इस नूरी शोभा को देख-देखकर आप आनन्दित होइये।

बड़ा बन मोहोल नूर का, ए नूर अति सोभित।

जोए नूर आई पुल तले, सो क्यों कही जाए नूर सिफत॥२०॥

पुखराजी रौंस पर आये हुए बड़ोवन के वृक्षों की डालियाँ इन महलों के ऊपर से होते हुए यमुना जी के जल चबूतरे

तक छापी हुई हैं। इनकी अत्यन्त नूरमयी शोभा दिखायी दे रही है। इस प्रकार की अनुपम सुन्दरता को धारण की हुई यमुना जी केल पुल के नीचे प्रवेश करती हैं। इस अद्वितीय छवि का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

**ए मोहोल नूरजमाल के, दोए नूर पुल जोए ऊपर।**

**नूर नेहेरें दस घड़नाले, ए खूबी नूर जुबां कहे क्यों कर॥२१॥**

यमुना जी के ऊपर दो नूरमयी पुल महल (केल पुल तथा वट पुल) हैं, जो श्री राज जी के ही नूरी स्वरूप हैं। इनके नीचे ११ थम्भों की १० हारों के मध्य १० घड़नाले हैं, जिनसे यमुना जी का जल १० नहरों के रूप में विभक्त होकर प्रवाहित हो रहा है। मेरी यह जिह्वा इस विलक्षण मनोहारिता का वर्णन कैसे करे।

केल घाट नूर कतरे, चौकी सोभित नूर किनार।

पोहोंची नूर पुल बराबर, आगूं लिबोई नूर अनार॥२२॥

केल घाट में केलों के नूरी गुच्छे यमुना जी के जल के ऊपर लटक रहे हैं। यमुना जी की किनार पर (पाल में) आये हुए केले के नूरी वृक्षों की ५ हारों के मध्य चौकों की ४ हारें अत्यधिक शोभा को धारण किये हुए हैं। केल वन के दक्षिण में क्रमशः नीम्बू व अनार के नूरी वन हैं। यह केल घाट नूरी केल पुल के दक्षिणी किनार की सीध तक आया है। यहाँ इनकी डालियाँ केल पुल के छज्जों से मिल गई हैं।

ए नूर चौकी भोम चार की, नूर पुल से आए तीन घाट।

अति सोभा आगूं छत्री नूर की, ऊपर जल नूर पाट॥२३॥

नूरमयी केल पुल से तीन घाट (केल, लिबोई, अनार)

के नूरी वृक्षों की चारों चौकियों की भूमिकाओं की शोभा को देखते हुए अमृत वन के सामने यमुना जी के जल पर बने हुए नूरी पाट घाट में आते हैं। यमुना जी की पाल के ऊपर आये हुए बड़ोवन के नूरी वृक्षों की डालियों, पत्तों, फलों, तथा फूलों ने मिलकर अति सुन्दर छतरी का रूप धारण कर लिया है, जो यमुना जी के जल चबूतरे तक छायी हुई है। यह छवि बहुत ही मनमोहक दिखायी दे रही है।

नूर मानिक हीरे पाच पोखरे, नूर द्वार से आए फेर द्वार।  
 चारों खूंटों नूर थंभ नीलवी, नूर पाच रंग बारे सुमार॥२४॥  
 पाट घाट में अक्षरधाम की तरफ (पूर्व) के दो थम्भ (महराबी द्वार) माणिक के हैं। दक्षिण के दो थम्भ हीरे के हैं, पश्चिम के दो थम्भ पाच के हैं, और उत्तर के दो थम्भ

पुखराज के हैं। इस प्रकार अक्षरधाम की तरफ के (पूर्व के) द्वार से घूमकर यदि वापस पूर्व के द्वार पर आयें, तो क्रमशः माणिक, हीरा, पाच, और पुखराज के थम्भ आते हैं। इसके चारों कोनों पर नीलम के चार थम्भ आये हैं। इस तरह पाट घाट (दोनों ओर के) में ५ रंगों के कुल १२ थम्भ आये हुए हैं।

**नूर नेहेरें तीन तले चलें, नूर पाट एता जल पर।**

**ठौर खेलन नूर जमाल के, ए नूर रूहें देखें दिल धर॥२५॥**

पाट घाट के नीचे से यमुना जी की १० नहरों में से ३ नहरें प्रवाहित होती हैं। पाट घाट ३ नहरों (५० x ३ = १५० मन्दिर) के बराबर लम्बा-चौड़ा है। ये सभी स्थान श्री राज जी के प्रेममयी क्रीड़ा-स्थल हैं। परमधाम की आत्मायें इन नूरी स्थानों को बहुत ही प्रीतिपूर्वक अपने

दिल में बसाये रखती हैं।

दोऊ पुल नूर सात घाट में, रूहें देखें नूर रोसन।

हक जिकर नूर पंखियों, होत नूर में रात दिन॥२६॥

सखियाँ दोनों पुलों के बीच में यमुना जी के दोनों ओर  
आये हुए सातों घाटों में जगमगाते हुए नूर की क्रीड़ा देखा  
करती हैं। यहाँ नूरमयी पशु-पक्षी दिन-रात अपने  
प्राणेश्वर अक्षरातीत की महिमा का गायन करते रहते हैं।

नूर भोम दूजी बैठक, पसु पंखियों एह नूर ठौर।

कई जिनसें नूर जिकर, बिना हक न बोले नूर और॥२७॥

इन नूरी वनों की दूसरी भूमिका में नूरमयी पशु-पक्षी  
निवास करते हैं। वे तरह-तरह से धाम धनी की महिमा  
का गायन करते हैं। इसके अतिरिक्त उनके मुख से और



कोई बात निकलती ही नहीं है।

आगूं द्वार नूर चांदनी, रेती रोसन नूर आसमान।

नूर जंग होत सबों बीचों, कोई सके न नूर काहूं भान॥२८॥

रंगमहल के नूरमयी मुख्य द्वार के आगे नूरी चाँदनी चौक है, जिसकी नूरमयी रेती की अलौकिक ज्योति आकाश में जगमगा रही है। आकाश की नूरी किरणें तथा रेती की किरणें आपस में टकराकर युद्ध का मनोहर दृश्य उपस्थित कर रही हैं, किन्तु कोई भी किरण अन्य किसी किरण को नष्ट नहीं कर पाती है।

आगूं दोए नूर चबूतरे, दोऊ पर नूर दरखत।

लाल हरे रंग नूर के, ए नूर जानें हक सिफत॥२९॥

मुख्य द्वार के आगे चाँदनी चौक में दो नूरी चबूतरे हैं,

जिन पर लाल और हरे रंग के दो नूरमयी वृक्ष शोभायमान हैं। धनी के इन नूरी स्वरूपों की शोभा को मात्र आत्मायें ही यथार्थ रूप से जानती हैं।

**नूर आगूं दरबार के, नूर लग चांदनी झलकार।**

**हांस पचासों नूर पूरन, नूर जोत न कहूं सुमार॥३०॥**

रंगमहल की नूरी ज्योति की झलकार मुख्य द्वार के आगे चाँदनी चौक तक दिखायी दे रही है। इसी प्रकार चाँदनी चौक के सामने रंगमहल के ५० हाँसों में नूर ही नूर दिखायी दे रहा है। इस अलौकिक ज्योति की कोई सीमा ही नहीं है।

**नूर सामी नूर द्वार का, होत नूर नूर सों जंग।**

**खड़ियां आगूं नूर चांदनी, नूर देखे अर्स नूर अंग॥३१॥**

रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने अक्षरधाम का भी मुख्य द्वार आया है। दोनों दरवाजों से उठने वाली किरणें आपस में टकराकर युद्ध का रोमाञ्चक दृश्य उपस्थित कर रही हैं। रंगमहल के आगे चाँदनी चौक में खड़ी होकर सखियाँ इस अपार नूरी शोभा को मुग्ध होकर देखा करती हैं।

**नूर हीरे मानिक पोखरे, पाच नीलवी नूर थंभ।**

**नूर पांच रंग दोऊ तरफों, दस दिवालें नूर अचंभ॥३२॥**

धाम दरवाजे के दायें-बायें दोनों चबूतरों के बाहरी व भीतरी तरफ (चौक से बाहर की ओर) क्रमशः हीरा, माणिक, पुखराज, पाच, नीलम के थम्भ शोभायमान हो रहे हैं। इस प्रकार दोनों तरफ चबूतरों में पाँच-पाँच रंग के थम्भ हैं, जिनके मध्य नूरमयी किरणों की १० दीवारें

प्रतीत होती हैं, जो आश्चर्य में डालने वाली हैं।

**भावार्थ—** १० थम्भों के मध्य ९ महाराबों के नीचे ९ दीवारें आती हैं। आधी-आधी दीवार बाहर की मिलाकर कुल १० दीवारें हो जाती हैं।

अंदर आओ नूर द्वार के, फेर देख नूर अर्सी।

नूर मंदिर चौक चबूतरे, नूर एक पे और सरस॥३३॥

हे मेरी आत्मा! अब तू नूरी धाम दरवाजे से अन्दर आ और रंगमहल की अलौकिक नूरी शोभा को देख। तू रंगमहल के नूरमयी मन्दिरों, चौकों, चबूतरों की शोभा को देख, जो शोभा की दृष्टि से एक से बढ़कर एक हैं।

नूरै के मोहोल मन्दिर, नूर दिवालें द्वार।

नूर नकस कटाव नूर, नूर क्यों कहूं बड़ो विस्तार॥३४॥

रंगमहल के अन्दर सभी महल, मन्दिर, दीवारें, तथा दरवाजे नूरमयी स्वरूप वाले हैं। इन पर बने हुए रमणीय चित्र तथा बेल-बूटे भी नूरमयी हैं। मैं इस अनन्त नूरी शोभा का वर्णन किस प्रकार करूँ।

**चलो नूर द्वार से नूर ले, दे नूर तवाफ गिरदवाए।**

**देख मेहेराव नूर झरोखे, नूर बाग देख फेर आए॥३५॥**

हे मेरी आत्मा! तू नूरमयी धाम दरवाजे से बाहर निकलकर रंगमहल की नूरी शोभा को चारों ओर परिक्रमा देते हुए देख। रंगमहल की नूरी महाराबों तथा झरोखों को देखते हुए नूरबाग को देख। पुनः रंगमहल के मुख्य द्वार के पास आ जा।

नूर चेहेबच्चे नूर चबूतरे, ए नूर फेर फेर देख।

फेर नूर चौक द्वारने, नूरै नूर वैसेख॥३६॥

अब तू अपने सामने नूरी चहबच्चों (१६ हाँस के) तथा चबूतरों की शोभा को बार-बार देख। पुनः रंगमहल की बाहरी हार मन्दिरों के दरवाजों तथा चौकों की शोभा को विशेष रूप से देख, जहाँ नूर ही नूर की क्रीड़ा हो रही है।

दो दो मन्दिर हारें नूर की, बीच दो दो नूर थंभ हार।

यों नवे भोम नूर मन्दिर, नूर झरोखे किनार॥३७॥

रंगमहल में मन्दिरों की २ नूरी हारें हैं। दोनों हारों के मध्य में नूरमयी थम्भों की दो हारें हैं। इस प्रकार नवों भूमिकाओं में नूरमयी मन्दिर एवं किनारे के नूरमयी झरोखे शोभायमान हो रहे हैं।

यों सब भोमें नूर गिरदवाए, थंभ गलियां नूर मन्दिर।

मेहेराव झरोखे नूर के, देख नूर लगता इनों अन्दर॥३८॥

इस प्रकार, नवों भूमिकाओं में चारों तरफ किनार पर नूरमयी मन्दिर, थम्भ, गलियाँ, महाराबें, तथा झरोखे दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अब इनके अन्दर की नूरी शोभा को देखो।

इन अन्दर नूर हवेलियां, नूर मोहोल फिरते लग तिन।

साम सामी मोहोल नूर के, दो दो चौक आगूं नूर इन॥३९॥

मन्दिरों की दोनों हारों की भीतरी ओर नूरमयी चौरस हवेलियों की चार हारें हैं। इनके भीतरी ओर इनसे लगती हुई नूरी गोल हवेलियों (महलों) की हारें हैं। गोल हवेलियों (महलों) के दरवाजे जहाँ आमने-सामने हैं, वहाँ पर दो-दो नूरमयी चौक सुशोभित हो रहे हैं।

**भावार्थ-** प्रत्येक दरवाजे के सामने चौक है, जिसके दायें-बायें चबूतरे हैं। दोनों हवेलियों के मध्य चार चबूतरे और दो चौक हैं। इस प्रकरण की चौपाई ३९, ४०, ४३, ४४, ५२ से प्रतीत होता है कि "हवेली" शब्द का प्रयोग चौरस हवेलियों के लिये तथा "महल" शब्द गोल हवेलियों के लिये प्रयुक्त हुआ है। इस सम्बन्ध में परिक्रमा ४४/१६ का यह कथन "एक हवेली चौरस, दूजा मोहोल गिरदवाए" देखने योग्य है।

इन अन्दर हवेलियां नूर की, नूर हवेलियों दोए हार।

नूर चौक बीच तिन हारों, नूर चौक आगूं दोए द्वार॥४०॥

इन नूरी गोल हवेलियों की भीतरी तरफ पुनः नूरमयी चौरस हवेलियाँ हैं। इन हवेलियों की प्रत्येक दो हारों के मध्य दो थम्भों की हारें और तीन गलियाँ आती हैं ,



जिनमें दोनों हवेलियों के दरवाजों के सामने १ - १ (कुल २) नूरी चौक हैं। इनके दायें-बायें एक-एक चबूतरा आया है।

ए जो फिरती नूर हवेलियां, नूर लग लग बराबर।

आगूं नूर द्वार चबूतरे, नूर सिफत अति सुन्दर॥४१॥

ये जो चौरस नूरी हवेलियों की हारें घेरकर आयी हैं, इनके मन्दिर, थम्भ, दरवाजे आदि सभी एक सीध में आमने-सामने हैं। चारों दिशाओं के मध्य में जो बड़े दरवाजे आये हैं, उनके सामने चौक और दायें-बायें नूरी चबूतरे हैं। इनकी नूरी शोभा अति सुन्दर है।

आए फिरते नूर द्वार लग, सोभा फिरती नूर लेत।

नूर द्वार सामी नूर द्वारने, सामी हवेली नूर सोभा देत॥४२॥

इन चौरस हवेलियों की शोभा को घूमकर देखते हुए क्रमशः चारों दिशाओं के मुख्य दरवाजे के पास आइये। इसके चारों ओर अत्यन्त ज्योतिर्मयी (नूरमयी) शोभा आयी है। चारों दिशाओं के बड़े दरवाजे के सामने दूसरी चौरस हवेली का मुख्य दरवाजा है। नूरी हवेली के सामने नूरी हवेली शोभा दे रही है।

**द्वार द्वार नूर मुकाबिल, नूर चबूतरों चबूतरे।**

**नूर मोहोल मोहोल मुकाबिल, दोऊ तरफों सोभा नूर ए॥४३॥**

नूरी दरवाजों के सामने नूरी दरवाजे तथा नूरी चबूतरों के सामने नूरी चबूतरे शोभायमान हैं। इसी प्रकार महलों (गोल हवेलियों) के सामने महल आये हैं। दोनों तरफ (गोल एवं चौरस हवेलियों में) इसी प्रकार की नूरमयी शोभा दृष्टिगोचर हो रही है।

दोऊ मोहोलों बीच नूर गली, नूर चबूतरे चौक चार।

नूर गली आई बीच में, दोऊ साम सामी नूर द्वार॥४४॥

प्रत्येक दो गोल हवेलियों (महलों) के मध्य में दो थम्भों की हार तथा तीन गलियाँ हैं। उनके मुख्य दरवाजें जहाँ आमने-सामने आये हैं, वहाँ चार नूरी चबूतरे एवं दो नूरी चौक आये हैं। इनके बीच में एक नूरमयी गली आयी है। इस प्रकार आमने-सामने नूरी दरवाजे सुशोभित हो रहे हैं।

जेते फिरते नूर द्वार ने, आगूं नूर चबूतरे दोए दोए।

नूर चौक चारों चबूतरों, दोऊ नूर द्वार बीच सोए॥४५॥

हवेलियों की चारों दिशाओं के सभी बड़े दरवाजों के सामने नूरी चौक व दायें-बायें नूरी चबूतरे आये हैं। इस प्रकार आमने-सामने की दोनों हवेलियों के चार नूरी

चबूतरे और दो चौक होते हैं।

नूर चौक ऐसे ही गिरदवाए, नूर फिरते आए सब में।

बीच फिरती आई नूर गली, नूर गली सोभा पौरी ए॥४६॥

ऐसे ही नूरी चौक सभी हवेलियों की चारों दिशाओं के मुख्य दरवाजों के सामने आये हैं। दोनों ओर के चौकों के बीच में एक नूरी गली आयी है, जिसके थम्भों में नूरी महाराबों की मनोहर शोभा दिखायी देती है।

एक पौरी चौर नूर से, आइए और चौर नूर किनार।

दोऊ चौर नूर गली पर, नूर बनी पौरी चार॥४७॥

एक चबूतरे की महाराब से दूसरी ओर के चबूतरे के पास आइये। दोनों चबूतरों के सामने नूरमयी गली है। इस गली में चार महाराबे हैं, जो दोनों हवेलियों के चबूतरों के

मध्य हैं।

**चार थंभ नूर हर चौरे, चार पौरी आगूं नूर द्वार।**

**नूर पौरी चार हर चौरे, ए नूर सोभा ना किन सुमार॥४८॥**

प्रत्येक चबूतरे पर चार नूरी थम्भ आये हैं। दरवाजे के आगे चौक पर चारों ओर चार महराबे हैं (दो महराबें चौक की और दो दायें-बायें चबूतरे की)। प्रत्येक चबूतरे पर भी चारों थम्भों के मध्य चार महराबे हैं। यह अनन्त नूरी शोभा है।

**हर दोऊ द्वार आगूं नूर चौक, नूर चौकों चार चबूतर।**

**हर चौकों नूर पौरी चौबीस, यों चौक बने नूर भर॥४९॥**

प्रत्येक दो हवेलियों के मध्य, जहाँ आमने-सामने दो मुख्य दरवाजे आये हैं, उनके मध्य (सामने) नूरमयी

चौक है। यहाँ चार नूरमयी चबूतरे शोभायमान हैं, जिनके थम्भों में आड़ी-खड़ी  $१२ + १२ =$  कुल २४ महराबे हैं। इस प्रकार इन चौकों की नूरमयी शोभा दृष्टिगोचर हो रही है।

दो हार नूर थंभन की, नूर गली चली गिरदवाए।

बीच नूर गली कई पौरियां, ए नूर सोभा क्यों कही जाए॥५०॥

दो हवेलियों के मध्य नूरी थम्भों की दो हारें आयी हैं तथा इनके बीच में तीन नूरी गलियाँ शोभायमान हैं। इन नूरी गलियों के मध्य बहुत सी महराबे हैं। भला इस अनुपम नूरी शोभा का वर्णन हो पाना कैसे सम्भव है।

आड़ी आवत नूर गलियां, नूर चौक होत तिन से।

नूर गली दोए दाएं बाएं, गली चली नूर हवेलियों में॥५१॥

हवेलियों के कोनों में जहाँ आड़ी व खड़ी गलियाँ मिलती हैं, वहाँ पर नूरमयी चौक की शोभा हो जाती है। इस चौक के दायें-बायें १-१ (कुल २) गली चलती है तथा आगे और पीछे की तरफ भी हवेलियों के मध्य गली जाती है।

**इन विध नूर गलियां, बीच नूर हवेलियों निकसत।**

**ए नूर गली दोऊ तरफों, आखिर नूर मोहोलों पोहोंचत॥५२॥**

इस प्रकार नूरमयी गलियाँ चौरस हवेलियों के मध्य से, आगे से, और दायें-बायें होकर निकलती हैं। आगे महलों (गोल हवेलियों) के मध्य से होती हुई अन्त में पंचमहलों के मध्य पहुँच जाती हैं।

याही विध नूर गिरदवाए, चौक हुए नूर गलियों के।

नूर तवाफ दे देखिए, यों चौक गली सोभे नूर ए॥५३॥

इसी प्रकार, हवेलियों के चारों ओर नूरी चौक तथा नूरी गलियाँ आयी हैं। हे साथ जी! यदि आप इन हवेलियों (गोल तथा चौरस) की परिक्रमा करके देखें, तो आपको इसी प्रकार नूरी चौकों तथा गलियों की अलौकिक शोभा दिखायी देगी।

यों नूर फिरती चार मोहोलातें, ए नूर खूबी अतंत।

ए हुकम कहावे नूर गंज के, ए नूर ना सुमार सिफत॥५४॥

इसी प्रकार नूरी पंचमहलों की भी चार हारें घेरकर आयी हैं। रंगमहल की हवेलियों की यह नूरमयी शोभा अनन्त है। धाम धनी का हुकम ही मुझसे इन गंजानगंज नूरी हवेलियों की शोभा का वर्णन करवा रहा है, अन्यथा



इनकी असीम शोभा को कह पाना सम्भव नहीं है।

इन अंदर मोहोल कई नूर के, कई जुदी जुदी नूर जिनस।

कई मोहोल मंदिर नूर गलियां, नूर देखों सोई सरस॥५५॥

इन पंचमहलों की भीतरी ओर, नौ चौकों में कई तरह के नूरमयी महल हैं। इनकी नूरी शोभा अलग-अलग प्रकार की आयी है, जैसे- दोपुड़े, त्रिपुड़े, चौपुड़े, तथा चौरस हवेलियाँ। इनके अन्दर बहुत से नूरमयी महल (हवेलियाँ), मन्दिर, और गलियाँ हैं। इनमें से आप जिस किसी की भी शोभा को देखिए, वही अधिक सुन्दर प्रतीत होती है।

इन अंदर नूर कई जुगतें, नूर कई मंदिर मोहोलात।

नूर जिनसें कई जुगतें, नूर अर्स गंज कह्यो न जात॥५६॥

इन नौ चौकों के अन्दर अनेक प्रकार की बनावट के बहुत से महल और मन्दिर हैं। इनमें अलग-अलग नूरी शोभा वाली बहुत सी वस्तुएँ भी हैं। रंगमहल में नूर का अथाह भण्डार क्रीड़ा कर रहा है, जिसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

**फेर देख नूर भोम दस का, होए हिरदे नूर जहूर।**

**महामत मोमिन नूर का, नूर देखे अर्स सहूर॥५७॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! अब तू पुनः रंगमहल की दसों भूमिकाओं की नूरी शोभा को देख, जिससे तुम्हारे धाम-हृदय में वह नूरी शोभा बस जाये। अपनी परात्म की नूरी छवि का अवलोकन ही आत्मिक दृष्टि से परमधाम का वास्तविक विवेक है।

**भावार्थ—** मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से परमधाम का

विवेक (सहूर) वास्तविक लक्ष्य नहीं है। जब तक आत्म-चक्षुओं से न देखा जाये, तब तक जीवन का चरम लक्ष्य अपूर्ण मानना चाहिए।

**प्रकरण ॥३६॥ चौपाई ॥२०४४॥**

## भोम पेहेली नूर खिलवत

प्रथम भूमिका में नूरी मूल मिलावा

जैसा कि इस प्रकरण से पूर्व के प्रकरण की अन्तिम चौपाई में संकेत कर दिया था, उसके अनुसार ही इस प्रकरण में नूरी रंगमहल की दसों भूमिकाओं की शोभा का वर्णन किया गया है।

कहे आमर नूर अर्स का, ए जो अर्स नूरजमाल।

दिल अर्स मोमिन नूर का, नूर सुनके बदले हाल॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि श्री राज जी का हुक्म (आवेश स्वरूप) मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर रंगमहल की नूरी शोभा का वर्णन कर रहा है। ब्रह्मात्माओं का प्रेम-भरा हृदय (दिल) ही धनी का धाम होता है। इस नूरी शोभा का वर्णन सुनकर ब्रह्मसृष्टियों की

अवस्था (रहनी) बदल जाती है, अर्थात् उनकी दृष्टि संसार से हटकर परमधाम एवं श्री राज जी में केन्द्रित हो जाती है।

ताथें नेक कहूं नूर बीच का, नूर भोम तले खिलवत।

हक हादी नूर मोमिन, ए नूर गंज हक वाहेदत॥२॥

इसलिये मैं प्रथम भूमिका में विद्यमान उस नूरमयी मूल मिलावा की शोभा का संक्षिप्त रूप से वर्णन करती हूँ, जिसमें श्री राजश्यामा जी एवं सखियों की बैठक है। अलौकिक ज्योति के असीम भण्डार वाले इस मूल मिलावा में विराजमान सभी स्वरूपों में श्री राज जी का एकत्व (वहदत) ही क्रीड़ा कर रहा है।

**बीच नूर चबूतरा, चौसठ थंभ नूर के।**

**फिरता कठेड़ा नूर का, नूर क्यों कहूं नूर बीच ए॥३॥**

इस गोल हवेली के मध्य सुन्दर नूरी चबूतरा है। इसकी किनार पर घेरकर ६४ नूरमयी थम्भ आये हैं। थम्भों के मध्य चारों ओर (सीढ़ियों की जगह छोड़कर) नूरी कठेड़ा आया है। इन नूरी थम्भों के बीच जगमगाते हुए नूर की शोभा का वर्णन कैसे करूँ।

**ऊपर चंद्रवा नूर का, और नूरै की झालर।**

**ऊपर तले सब नूर में, सब नूरै रूह नजर॥४॥**

थम्भों के मध्य चबूतरे के ऊपर नूरी चन्द्रवा तना हुआ है। इस चन्द्रवा में नूरी झालर लटक रही है। चबूतरे की सतह से लेकर चन्द्रवा तक नूरी ज्योति की लीला दिखायी दे रही है। यदि आत्मिक दृष्टि से देखा जाये, तो

यहाँ केवल नूर ही नूर की क्रीड़ा है।

बिछौने सब नूर में, और तकिए नूर गिरदवाए।

रुहें बैठी नूर भर पूर, रह्या नूरै नूर समाए॥५॥

चबूतरे के ऊपर बिछायी गयी पशमी गिलम (कालीन) अति नूरमयी है। चबूतरे की किनार पर चारों ओर थम्भों से लगते हुए जो तकिये आये हैं, वे भी नूरी शोभा से ओत-प्रोत हैं। इस चबूतरे पर वे सखियाँ बैठी हुई हैं, जो नख से शिख तक अनन्त सौन्दर्य से भरपूर हैं। यहाँ दिखायी देने वाले प्रत्येक स्वरूप में केवल नूर ही नूर दिखायी दे रहा है।

चरनी सीढ़ियां नूर की, चढ़ उतर नूर झलकार।

थंभ पड़सालें नूर की, नूरै के द्वार चार॥६॥

चबूतरे की चारों दिशाओं में तीन-तीन नूरी सीढ़ियाँ उतरी हैं। इनसे चढ़ते-उतरते समय नूर की झलकार होती है। इस मूल मिलावा के थम्भे एवं पड़सालें नूरमयी हैं। चारों दिशाओं में सीढ़ियों के ऊपर चार नूरी महराबी द्वार आये हैं।

**भावार्थ-** मूल मिलावा में थम्भों की तीन हारें तथा मन्दिरों की एक हार आने से तीन गलियाँ बनती हैं, जो पड़साल के रूप में सुशोभित होती हैं। सीढ़ियों के सामने कठेड़ा नहीं है, बल्कि सीढ़ियों की जगह छोड़कर शेष जगह में थम्भों के मध्य कठेड़ा आया है।

**नूर के मोहोल मंदिर, नूर दिवालें द्वार।**

**नूर नकस कटाव नूर, नूर क्यों कहूं बड़ो विस्तार॥७॥**

इस प्रथम भूमिका के सभी महल, मन्दिर, दीवारें, तथा



दरवाजे नूरी (ज्योतिर्मयी) हैं। इन पर बने हुए बेल-बूटे और चित्र भी नूरमयी हैं। इस मनोहारी छवि का बहुत अधिक विस्तार है, मैं कितना वर्णन करूँ।

मुखारबिंद सब नूर के, नूर वस्तर भूखन।

सब सिनगार साजे नूर के, नूर कहाँ लग कहूँ रोसन॥८॥

चबूतरे पर विराजमान श्री राजश्यामा जी तथा सखियों के मुखारविन्द नूरी छवि से ओत-प्रोत हैं। इनके सभी वस्त्र एवं आभूषण भी ज्योतिर्मयी हैं। इन सखियों के श्रृंगार के सभी साधन भी नूरी हैं। अनुपम आभा से जगमगाती हुई इस मनोहर शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

इत बीच सिंघासन नूर का, नूरै का बिछौना।

बैठे जुगल किसोर नूर में, कछू नाहीं न नूर बिना॥९॥

चबूतरे के ऊपर पशमी गिलम बिछी हुई है, जिसके मध्य में नूरमयी सिंहासन विद्यमान है। इस पर विराजमान श्री राजश्यामा जी का स्वरूप भी नूरमयी है। वास्तविकता तो यह है कि यहाँ पर नूर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

**कई बिध नूर सिंघासन, कई बिध बिछौने नूर।**

**कछू नजरों न आवे नूर बिना, सब दिसा नूर जहूर॥१०॥**

यह नूरमयी सिंहासन अनेक प्रकार की शोभा में झलझला रहा है। इसी प्रकार पशमी गिलम भी कई प्रकार के बदलते रंगों तथा चित्रों से सुशोभित हो रही है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यहाँ नूर के अतिरिक्त और कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा है। यहाँ सभी दिशाओं में ब्राह्मी ज्योति ही ज्योति (नूर ही नूर) दिखायी दे रही है।

**भावार्थ-** मात्र लीला रूप में ही परमधाम के २५ पक्ष प्रकट रूप में दिखायी देते हैं, किन्तु यदि मारिफत (परम सत्य) की सूक्ष्मतम दृष्टि से देखा जाये, तो श्री राज जी के नूर के अतिरिक्त परमधाम में और कुछ भी नहीं है।

**वस्तर भूखन नूर के, सब नूरै का सिनगार।**

**नूरै सागर होए रह्या, नूर वार न पार सुमार॥११॥**

सभी के वस्त्र, आभूषण, तथा श्रृंगार नूरमयी हैं। वस्तुतः यह मूल मिलावा नूर के उस अनन्त सागर की तरह लहरा रहा है, जिसके विस्तार या गहराई का कोई माप (ओर-छोर) नहीं है।

**नूर बोलत जुबां नूर की, नूर सुनत नूर श्रवन।**

**खुसबोए नूर नासिका, नूर नैन देखे ना नूर बिन॥१२॥**

सभी नूरी स्वरूप अपनी नूरी जिह्वा से नूर ही बोलते हैं। उनके नूरी कान भी नूरी बातों को सुनते हैं। नूरी नासिका नूरी सुगन्धि को ग्रहण करती है। सभी अपने नूरी (प्रेममयी) नेत्रों से परमधाम के नूरी (ज्योतिर्मयी) दृश्यों को ही देखते हैं।

**भावार्थ**— परमधाम की बातों में प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, उमंग आदि का रस भरा होता है, इसलिये उन्हें "नूर" शब्द से सम्बोधित किया गया है।

**अंग सारे नूर के, नूरै का नूर आहार।**

**कौल फैल हाल नूर का, हाल-चाल नूर वेहेवार॥१३॥**

श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के सभी अंग नूरी हैं। इनका आहार भी नूरी है। इनकी कथनी, करनी, रहनी, व्यवहार, और दशा सभी नूरमयी हैं।

**भावार्थ-** "करनी" और "व्यवहार" में सूक्ष्म अन्तर यह है कि करनी व्यक्तिगत होती है तथा व्यवहार सामूहिक होता है। इसी प्रकार रहनी का परिपक्व रूप ही "दशा" है।

**नूर मंदिर पेहेली भोम के, नूर रसोई चौक ठौर।**

**ए अंदर नूर द्वार के, कछू नूर बिना नहीं और॥१४॥**

प्रथम भूमिका में रसोई की हवेली के सभी मन्दिर नूरी शोभा से युक्त हैं। इसी प्रकार मध्य में आया हुआ चबूतरा भी अनुपम ज्योति से जगमगा रहा है। यह विलक्षण छवि रंगमहल के मुख्य द्वार के अन्दर (सामने) आयी है। यहाँ तो अनन्त नूरमयी शोभा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

## भोम दूजी नूर भुलवनी

दूसरी भूमिका में नूरमयी भुलवनी की शोभा

दूजी भोम जो नूर की, नूर चेहेबच्चे जल।

नूर मन्दिर भुलवन के, नूर एक सौ दस मोहोल॥१५॥

रंगमहल की दूसरी भूमिका बहुत अधिक प्रकाशमयी (नूरमयी) है। इसमें नूरी चहबच्चे (खड़ोकली) में अति उज्ज्वल जल शोभायमान हो रहा है। इसके सामने भुलवनी के उत्तर तरफ के ११० नूरी मन्दिर दिखायी दे रहे हैं।

एक सौ दस हारें नूर की, नूर ऐसे ही गिरदवाए।

ए बारे हजार मोहोल नूर के, बीच नूर चौक रह्या भराए॥१६॥

इन ११० नूरी मन्दिरों की ११० हारे हैं। इन सभी मन्दिरों में नूरी छटा फैली हुई है। इस प्रकार बारह हजार नूरी मन्दिर जगमगा रहे हैं। इनके बीच में १०० मन्दिरों की जगह में नूरी चौक शोभायमान हो रहा है।

**भावार्थ-** ११० मन्दिरों की ११० हारों में १२१०० मन्दिरों की जगह होती है, किन्तु मध्य में १०० मन्दिरों की जगह में चौक आ जाने से कुल मन्दिरों की संख्या १२००० ही होती है।

नूर भोम दूजी से तले लग, भरया चेहेबच्चा नूर जल।  
लंबा चौड़ा नूर एक हांस लग, ऊपर आया नूर बन चल॥१७॥  
खड़ोकली का जल तीन भूमिका का गहरा आया है।  
एक भूमिका जमीन से नीचे, दूसरी भूमिका रंगमहल के चबूतरे तक, तथा तीसरी भूमिका रंगमहल की प्रथम

भूमिका तक है। यद्यपि नूरमयी खड़ोकली की लम्बाई-चौड़ाई २८ मन्दिर की है, किन्तु चारों ओर की रौंस मिलाकर एक हाँस अर्थात् ३० मन्दिर की लम्बी-चौड़ी कह सकते हैं। खड़ोकली की तीन दिशा में आये ताड़वन के वृक्षों ने अपनी डालियाँ फैलाकर खड़ोकली के जल चबूतरे तक छाया कर रखी है।

**नूर तीनों तरफों झलूबिया, तरफ चौथी नूर झरोखे।**

**नूर बन छाया जल पर, खासी बैठक नूर ठौर ए॥१८॥**

इस नूरी खड़ोकली के जल के ऊपर तीन दिशा (उत्तर, पूर्व, पश्चिम) से ताड़वन की डालियाँ झूमा करती हैं, जिनकी नूरी छाया जल चबूतरे पर होती है। चौथी ओर रंगमहल के झरोखे आये हैं। खड़ोकली के चारों ओर रौंस पर सिंहासन तथा कुर्सियों की अद्भुत शोभा है,



जिन पर युगल स्वरूप तथा सखियाँ विराजमान होते हैं।

नूर झरोखे बैठक, नूर जल नूर ऊपर।

नूर झरोखे तीसों मिले, जितथें आवें नूर नजर॥१९॥

खड़ोकली की चौथी तरफ रंगमहल की ऊपर की भूमिकाओं में ३३ हाथ चौड़े जो छज्जे (झरोखे) आये हैं, वहाँ सुन्दर सिंहासन और कुर्सियाँ रखी हुई हैं। नूरी जल के ऊपर आये हुए इन नूरी झरोखों के ऊपर अति सुन्दर बैठक बनी हुई है। ३० मन्दिर (एक हाँस) की चौड़ाई में ३० झरोखे (छज्जे १ मन्दिर लम्बे तथा ३३ हाथ चौड़े) आये हैं, जो आपस में मिले हुए हैं। यहाँ से सामने खड़ोकली तथा ताड़वन की सुन्दर शोभा दिखायी देती है।

नूर मंदिर तीस इन तले, ताके चार चार नूर द्वार।

आगूं तीन गली नूर थंभ की, ए जो मंदिर नूर किनार॥२०॥

इन झरोखों के नीचे खड़ोकली के दक्षिण में बाहरी हार मन्दिरों के ३० मन्दिर हैं, जिनमें गिनती के अनुसार ४ – ४ (दिखने में ५ – ५) नूरमयी दरवाजे हैं। इनके भीतरी ओर नूरमयी थम्भों की दो हारें एवम् तीन गलियाँ शोभायमान हो रही हैं।

नूर मंदिर एक सौ दस, एक अन्दर की नूर हार।

चारों तरफों मंदिर नूर के, ए नूर गिनती बारे हजार॥२१॥

इन गलियों के भीतरी ओर नूरमयी ११० मन्दिरों की एक दूसरी हार दिखायी देती है। इनके ठीक सामने भीतरी तरफ ११० मन्दिरों की ११० हारें आयी हैं। इस प्रकार कुल १२००० मन्दिर हैं, क्योंकि बीच में १००

मन्दिर की जगह में १० मन्दिर का लम्बा-चौड़ा चौक आया है।

नूर मंदिर भोम गिनती का, बीच नूर चबूतरा।

हक हादी रूहें नूर बैठकें, अति रंग रस नूर भरया॥२२॥

गिनती में कुल १२००० नूरी मन्दिर हैं। मध्य के चौक में चारों ओर एक मन्दिर की चौड़ी रौंस की जगह छोड़कर ८ मन्दिर का लम्बा-चौड़ा कमर-भर ऊँचा नूरी चबूतरा है। इस चबूतरे पर श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के बैठने का स्थान है। अनन्त प्रेम एवं आनन्द के रस से ओत-प्रोत यह नूरी चबूतरा झलकार कर रहा है।

द्वार जो नूर मंदिर, नूरै के चार चार।

लगते द्वार जो नूर के, माहें भुलवनी नूर अपार॥२३॥

भुलवनी के नूरमयी प्रत्येक मन्दिर में ४-४ दरवाजे (चारों ओर) सुशोभित हो रहे हैं। ये सभी मन्दिर आपस में जुड़े हुए हैं, अतः सभी दरवाजे दोनों ओर के मन्दिरों में लगे हैं। दो मन्दिरों के मध्य की दीवार में दरवाजा है, जो दोनों ओर कार्य करता है। भुलवनी के इन नूरी मन्दिरों के दरवाजों पर अनन्त ज्योति क्रीड़ा कर रही है।

हक हादी रूहें नूर भरे, खेलें नूर में कर सिनगार।

नूर बिना कछू न पाइए, नूर झलकारों झलकार॥२४॥

श्री राजश्यामा जी तथा सखियों का स्वरूप असीम नूरी सौन्दर्य से भरा हुआ है। वे अपने नूरी श्रृंगार से सज-धजकर इन नूरमयी मन्दिरों में भुलवनी का खेल खेलते

हैं। यहाँ तो नूर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। चारों ओर नूर ही नूर (प्रकाश ही प्रकाश) क्रीड़ा कर रहा है।

वस्तर भूखन नूर के, नूर सरूप साज समार।

नूर ले खेलें नूर में, नूर झलकारों झलकार॥२५॥

सभी नूरी स्वरूपों (श्री राजश्यामा जी एवं सखियों) के वस्त्र, आभूषण, तथा इनसे होने वाला श्रृंगार भी नूरी हैं। सभी नूरी शोभा से युक्त होकर इन जगमगाते हुए नूरी मन्दिरों में क्रीड़ा करते हैं। चारों ओर नूर ही नूर की झलझलाहट हो रही है।

नूर सरूप देखत दिवालों, नूर सरूप देखत द्वार।

नूर सरूप देखत नूर बीच, नूर झलकारों झलकार॥२६॥

इस भुलवनी के खेल में जब श्री राजश्यामा जी एवं

सखियाँ एक-दूसरे को पकड़ने के लिये भागते हैं, तो उनके नूरी स्वरूप (प्रतिबिम्ब) नूरमयी शीशे की दीवारों एवं दरवाजों में दिखायी देते हैं। मन्दिरों के बीच खाली जगह में भी नूर ही विद्यमान है, जिसमें ये स्वरूप अन्य को खोजते हैं। चारों ओर ब्राह्मी ज्योति की झलकार हो रही है।

**नूर सरूप पैठें एक द्वार से, जाए निकसैं नूर किनार।**

**यों नूर सरूप दौड़ें सब में, नूर झलकारों झलकार॥२७॥**

जब एक-दूसरे को खोजने के लिये ये नूरी स्वरूप किसी मन्दिर के एक दरवाजे से प्रवेश करके दूसरे दरवाजे से निकलते हैं, तो शीशे की दीवारों एवं दरवाजों में उनके बहुत से स्वरूप दिखने लगते हैं। उनको पकड़ने के लिये वे सभी मन्दिरों में दौड़ लगाते हैं, किन्तु किसी

को भी पकड़ पाना बहुत कठिन होता है। इस प्रकार यह प्रेम-भरा भुलवनी का खेल होता है। इस स्थान पर केवल तेज ही तेज की जगमगाहट होती है।

**नूर सरूप सब नूर के, ले नूर दौड़ें बारे हजार।**

**बारे हजार नूर मन्दिरों, नूर झलकारों झलकार॥२८॥**

श्री राजश्यामा जी एवं सभी सखियों के नूरी स्वरूप अपनी पूर्ण शोभा के साथ क्रीड़ा करते हुए १२००० नूरी मन्दिरों में दौड़ते हैं। इन सभी मन्दिरों में नूर ही सर्वत्र झलझला रहा है।

**एक नूर मन्दिर से आवत, नूर निकसे परली हार।**

**नूर हँसे खेलें गिरें नूर में, नूर झलकारों झलकार॥२९॥**

एक सखी किसी एक मन्दिर से दौड़ती हुई मन्दिरों की

हार को पार कर जाती है। ऐसी स्थिति में उसके करोड़ों प्रतिबिम्ब बन जाते हैं। उसको पकड़ने की कोशिश में भागती हुई सखियाँ मन्दिरों की दीवारों से टकरा जाती हैं, फिर आपस में बहुत अधिक हँसती हैं, एक-दूसरे के ऊपर गिरती हैं, तथा प्रेममयी क्रीड़ा करती हैं। यहाँ सभी मन्दिरों में ज्योति ही ज्योति की चमक दिखायी पड़ रही है।

नूर सरूप पैठें एक तरफ से, नूर निकसे जाए नूर पार।

नूर फिरत बीच गिरदवाए, नूर झलकारों झलकार॥३०॥

नूरी स्वरूप वाली ये सखियाँ मन्दिरों की एक तरफ से प्रवेश करती हैं तथा दूसरी ओर से बाहर निकल जाती हैं। कुछ सखियाँ उन्हें बीच के ही मन्दिरों में चारों ओर खोजती रह जाती हैं। इस प्रकार हँसी की लीला होती है।



भुलवनी के इन मन्दिरों में सर्वत्र नूर ही नूर की झलकार हो रही है।

हार किनार पार नूर में, नूर सागर हुआ द्वार द्वार।

नूर वार पार या बीच में, नूर झलकारों झलकार॥३१॥

भुलवनी के मन्दिरों की हार के एक छोर से दूसरे छोर तक नूर ही नूर फैला हुआ है। मन्दिरों के सभी द्वारों पर ऐसा लगता है, जैसे नूर का सागर लहरा रहा है। मन्दिरों की हारों के प्रारम्भ में, मध्य में, या दूसरे छोर में, सभी जगह केवल नूर ही नूर सभी रूपों में जगमगा रहा है।

इन बिध नूर केता कहूं, नूर समें खेलन।

नूर बिना कछू न देखिए, नूर के नूर रोसन॥३२॥

इस प्रकार मैं भुलवनी की लीला के समय की नूरी

शोभा के विषय में कितना कहूँ। सभी रूपों में नूर ही क्रीड़ा कर रहा है। परमधाम में नूर के अतिरिक्त और कुछ दिखायी ही नहीं देता। सभी नूरी स्वरूपों में श्री राजश्यामा जी का ही नूर लीला कर रहा है।

**दूजी भोम सब नूर में, रूहें फेर देखें नूर ले।**

**नूर प्याले हक हादी नूर, रूहों भर भर नूर के दे॥३३॥**

रंगमहल की यह सम्पूर्ण दूसरी भूमिका नूरमयी है, जिसमें सखियाँ नूर प्रतिबिम्बों को ही वास्तविक समझकर पकड़ने के लिये बार-बार देखा करती हैं। श्री राजश्यामा जी अनन्त प्रेम (नूर) के सागर हैं। वे प्रेम के प्याले भर-भरकर अपनी अँगरूपा सखियों को पिलाते हैं।

## भोम तीसरी नूर झरोखा

तीसरी भूमिका में नूरमयी झरोखे का वर्णन

तीसरी भोम का नूर जो, नूर इन मुख कह्या न जाए।

बड़ी बैठक नूर इन भोमें, इत नूर आप दीदारें आए॥३४॥

तीसरी भूमिका में जो नूरी शोभा आयी है, उसका वर्णन इस मुख से नहीं हो सकता। इस भूमिका में श्री राजश्यामा जी एवं सखियों की बैठक बहुत अधिक समय तक होती है। यहीं पर जब श्री राजश्यामा जी झरोखे को पीठ देकर बैठते हैं, तब नूरी स्वरूप वाले अक्षर ब्रह्म उनका दर्शन करने आते हैं।

**भावार्थ-** प्रातःकाल ६ बजे से अपराह्न ३ बजे तक की लीला तीसरी भूमिका में होती है, इसलिये इसे बड़ी बैठक कहा गया है।

नूर द्वार नूर ऊपर, नूर बड़ी बैठक नूर भर।

कर दीदार नूर-जमाल का, फेर आए नूर-कादर॥३५॥

नूरमयी धाम दरवाजे के ऊपर तीसरी भूमिका में १० मन्दिर की लम्बी तथा २ मन्दिर की चौड़ी पड़साल है, जो नूरमयी बड़ी बैठक के रूप में सुशोभित हो रही है। यहीं पर विराजमान श्री राज जी का चाँदनी चौक से दर्शन करके अक्षर ब्रह्म वापस अपने धाम लौट जाते हैं।

ए बैठक कही जो नूर की, सो नूरै नूर गिरदवाए।

बीच चौक गली सब नूर की, रहे द्वार मन्दिर नूर भराए॥३६॥

जिस पड़साल में सखियों सहित श्री राजश्यामा जी विराजमान होते हैं, वह चारों ओर नूरी आभा से परिपूर्ण है। बीच का चौक तथा गली (बाहरी हार मन्दिरों के भीतर की) आदि सभी नूरमयी हैं। मन्दिरों तथा उनके

दरवाजों में केवल ब्राह्मी ज्योति ही ज्योति दिखायी दे रही है।

**मुख नूर चौक भर पूरन, नूर दस मन्दिर पड़साल।**

**इन भोम नूर रूहें देखहीं, तो नूर बदले नूर हाल॥३७॥**

श्री राज जी के मुखारविन्द का नूर सम्पूर्ण चौक (पड़साल) में फैला हुआ है। यह नूरी पड़साल १० मन्दिर की लम्बी है। इस भूमिका की नूरी शोभा का दर्शन जिस आत्मा को हो जाता है, उसकी अवस्था (रहनी) बदल जाती है।

**भावार्थ—** इस चौपाई के चौथे चरण का तात्पर्य यह है कि जब इस जागनी लीला में अपनी आत्मिक दृष्टि से तीसरी भूमिका में विराजमान युगल स्वरूप का दर्शन प्राप्त हो जाता है, तो आत्मा उसी में मग्न रहने लगती है।

उसकी दृष्टि पुनः मायावी लीला में नहीं भटकती।

अन्दर नूर पड़साल के, नूर द्वार मन्दिर दोए दोए।

नूर सीढ़ियां आगूं इन माहें, दोऊ तरफ मेहेराव नूर सोए॥३८॥

इस नूरी पड़साल की भीतरी ओर ४ मन्दिर लम्बी दहलान है, जिसके दायें-बायें ३-३ मन्दिर हैं। इनके पूर्व की दीवार में दो-दो दरवाजे हैं। इनके सामने पश्चिम की दीवार में १-१ दरवाजा है, जिसके सामने चाँदों द्वारा गली में ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। इन मन्दिरों में दायें-बायें (सन्धि की दीवार) १-१ नूरमयी महाराबें (दरवाजे) हैं।

नूर मेहेराव आगूं सीढ़ी नहीं, आगूं बढ़ती नूर पड़साल।

नूर मेहेराव इन ऊपर, नूर पड़साल माहें चाल॥३९॥

४ मन्दिर की दहलान में ४ थम्भों के बीच ३ महराबे हैं। इनके पश्चिम में तुरन्त ही सीढ़ी नहीं है, बल्कि पड़साल चबूतरे (४ x १ मन्दिर) के रूप में आगे बढ़ी है। इसकी किनार पर भी महराब (४ x २ मन्दिर) है, जो २८ थम्भों के चौक के थम्भों पर है। चबूतरे, दहलान, तथा पड़साल की ऊँचाई एक समान है। इन सभी में सीधे आ-जा सकते हैं।

**और नूर मन्दिर छे द्वार ने, नूर दोऊ तरफों के।**

**ए दसे भोम नूर मन्दिर, नूर पड़साल बराबर ए॥४०॥**

इस प्रकार दहलान के दायें-बायें ३-३ (कुल ६) मन्दिर हैं, जिनकी पश्चिम की दीवार में कुल छः द्वार हैं। १० मन्दिर के हाँस में १०वीं चाँदनी तक इसी प्रकार पड़साल (बाल्कनी) व बाहरी हार के मन्दिर हैं।

**भावार्थ-** पड़साल तो दसवीं चाँदनी तक इसी प्रकार है, किन्तु ४ मन्दिर की दहलान ऊपर की भोमों में नहीं है। चौथी से आठवीं भूमिका तक २ मन्दिर के चौड़े मुख्य दरवाजे के दायें-बायें ४-४ मन्दिर हैं। नवमीं भूमिका में दूरदर्शिका एवं दसवीं चाँदनी में दहलाने हैं।

**नूर द्वार दोऊ ओर बराबर, नूर द्वार सीढ़ी दोए तरफ।**

**नूर छे चौक आगूं देहरी, रूहें नूर देखें तो बोलें ना हरफ॥४१॥**

दहलान के दोनों ओर ६ मन्दिरों के पश्चिम दिशा के जो द्वार हैं, उनके सामने चाँदों से दोनों ओर सीढ़ियाँ उतरी हैं। इन ६ मन्दिरों के चौक के आगे (हाँसों की सन्धि की जगह में) गुर्ज हैं, जिनके ऊपर दसवीं चाँदनी में देहुरी बनती है। यहाँ की शोभा इतनी अनुपम है कि यदि आत्मायें इसे (चितवनि के द्वारा) देख लें, तो उनके मुख



से कहने के लिये एक शब्द भी निकल नहीं सकता क्योंकि यह शोभा ही अनन्त है।

ए छे नूर द्वार दाएँ बाएँ, नूर दोऊ तरफों तीन तीन।

ए रूहें देखें नूर विवेक, जो देवे हुक्म नूर आकीन॥४२॥

दहलान के दायें-बायें (मन्दिरों की पश्चिम दिशा की दीवार में) ६ द्वार हैं। दोनों ओर ३-३ द्वार आये हैं। धाम धनी के आदेश (हुक्म) से यदि इस अद्वितीय शोभा के प्रति अटूट विश्वास आ जाता है, तो ब्रह्मसृष्टियाँ प्रेममयी चितवनि द्वारा इसे देख सकती हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में "विवेक" शब्द का तात्पर्य बुद्धिजन्य विवेक नहीं मानना चाहिए, बल्कि धाम धनी की प्रेममयी चितवनि में आत्मा के अन्दर जो ज्ञान का प्रकाश आता है, उसे ही यहाँ विवेक कहा गया

है।

ए बड़ी बैठक नूर पड़सालें, नूर भोम आरोगें बेर दोए।  
 पूर नूर होए रूहें अर्स की, ए नूर बेवरा देखें सोए॥४३॥  
 इस नूरी पड़साल में बहुत महत्वपूर्ण बैठक होती है।  
 यहाँ श्री राजश्यामा जी दो बार भोजन ग्रहण करते हैं।  
 प्रातःकाल का जलपान (स्वल्पाहार, बालभोग) चबूतरे  
 पर होता है तथा दोपहर का भोजन पड़साल में होता है।  
 परमधाम की जिन आत्माओं के धाम-हृदय में प्रेम के पूर  
 (प्रवाह) बहते हैं, एकमात्र वही इस लीला के रस की  
 अनुभूति कर पाती हैं।

नूर सेज्या-पौढ़ें इतहीं, नूर मोहोल बड़ा ए।

इत नूर मेला पोहोर तीन लग, नूर हुकम कहावे जे॥४४॥

इसी पड़साल के दक्षिण के दूसरे नीले-पीले मन्दिर में श्री राजश्यामा जी दोपहर १२ से ३ बजे तक नूरी सेज्या पर विश्राम करते हैं। इस प्रकार तीन प्रहर (प्रातः ६ बजे से दोपहर ३ बजे) तक श्री राजश्यामा जी यहाँ पर विराजमान रहते हैं। श्री राज जी का आवेश स्वरूप (नूर हुक्म) ही मेरे धाम-हृदय में बैठकर इस लीला का वर्णन करा रहा है।

## भोम चौथी नूर निरत की

चौथी भूमिका में नृत्य की नूरी हवेली

भोम चौथी जो नूर की, नूर में नूर विस्तार।

ए नूर कह्या तो जावहीं, जो होवे नूर सुमार॥४५॥

नृत्य की हवेली से युक्त रंगमहल की चौथी नूरी भूमिका

में प्रेम का रस ओत-प्रोत है। यहाँ की शब्दातीत शोभा का वर्णन तो तब हो सकता है, जब उसकी कोई सीमा हो।

**नूर गंज मध्य मन्दिर, नूर चौक ठौर निरत।**

**नूर रात नूर बरसत, रूहें नूर देखें नूर की सूरत॥४६॥**

चौथी भूमिका की चौथी चौरस हवेली नृत्य की है। इस नूरी हवेली के मध्य में नूरी चबूतरा है, जिस पर नृत्य की लीला होती है। नूरी रात (रात्रि के प्रथम प्रहर) में नृत्य के रूप में प्रेम की बरसात होती है। नूरी स्वरूप वाली सखियाँ श्री राजश्यामा जी की अनुपम छवि को निहारा करती हैं।

नूर तखत नूर चौक में, बैठें नूर में जुगल किसोर।

नूर सरूप निरत नवरंग, बीच नूर बैठें भर जोर॥४७॥

इस नूरी हवेली में नूरी चबूतरे पर नूरी सिंहासन रखा हुआ है। श्री राजश्यामा जी अपनी नूरी शोभा के साथ सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं। अति सुन्दर स्वरूप वाली नवरंगबाई नृत्य करती हैं। नूरी शोभा से ओत-प्रोत सखियाँ चबूतरे की पश्चिम दिशा में पूर्व की ओर मुख करके कुर्सियों पर विराजमान हो जाती हैं और इस लीला को देखती हैं।

नूर खेलत नूर देखत, और नूरै नूर बरसत।

रुहें आइयां जो इत नूर से, सो नूर नूरै को दरसत॥४८॥

नूरी स्वरूप वाली नवरंग बाई नृत्य की क्रीड़ा करती हैं, जिसे श्री राजश्यामा जी और सखियाँ देखते हैं। इस नृत्य

की लीला में प्रेम और आनन्द की बरसात होती है। परमधाम से जो भी आत्मायें इस मायावी जगत में आयी हैं, वे प्रेममयी चितवनि में डूबकर परमधाम की शोभा को देखा करती हैं।

**नूर मन्दिर द्वार नूर, नूर जिमी चौक थंभ दीवार।**

**नूर भरपूर नूर में, सब नूरै की हाल चाल॥४९॥**

सभी मन्दिर और दरवाजे अखण्ड ज्योति से भरपूर हैं। धरती (सतह), चबूतरे, थम्भे, और दीवारें भी नूरी शोभा वाले हैं। श्री राज जी के नूर में परमधाम के लीला रूप सभी नूरी पदार्थ शोभायमान हो रहे हैं। सभी स्वरूपों की अवस्था और व्यवहार प्रेममयी (नूरमयी) है।

नूर नूर को देखहीं, नूर की नूर सुनत।

नूर नाचत नूर बाजत, नूर कहां लों को गिनत॥५०॥

नूरी शोभा को नूरी स्वरूप प्रेमपूर्वक देखते हैं। नूरी स्वरूपों के गायन को नूरी स्वरूप वाले (श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ) सुनते हैं। नवरंगबाई के रूप में श्री राज जी का नूर ही नृत्य कर रहा है तथा संगीत के वाद्यों के रूप में भी नूर ही बज रहा है। धनी के नूर की लीला को कहाँ तक व्यक्त किया जाये।

नूर बाजे नूर बजावहीं, नूर गावें नूर सरूप।

नूर देखें फेर फेर नूर को, नूर नाचत नूर अनूप॥५१॥

सभी वाद्य यन्त्र नूरी हैं। इन्हें बजाने वाले भी नूरी हैं। गायन के स्वर भी नूरी हैं तथा गायन करने वाले स्वरूप (सखियाँ) भी नूरी हैं। नूर स्वरूपा सखियाँ बारम्बार श्री

राजश्यामा जी (नूर) को देखा करती हैं। नूरी स्वरूप (नवरंगबाई) द्वारा किया जाने वाला नूरी नृत्य भी अनुपम है, अर्थात् ऐसा नृत्य परमधाम के अतिरिक्त अन्य कहीं भी नहीं हो सकता।

**ऊपर तले बीच नूर में, जानूं भरया सागर नूर।**

**दसों दिसा देखों नूर नजरों, जानों तीखे आवें नूर के पूर॥५२॥**

नृत्य की इस हवेली में ऊपर, नीचे, तथा बीच में सब जगह नूर ही नूर दिखायी पड़ रहा है। ऐसा लगता है, जैसे यहाँ नूर का सागर ही लहरा रहा है। मैं दसों दिशाओं में जिधर भी देखती हूँ, उधर नूर ही नूर दिखायी दे रहा है। ऐसा लगता है, जैसे नूर के अनन्त सागर की तीखी लहरें चारों ओर प्रवाहित हो रही हैं।



जानों नूर देखों मासूक का, तो जुगल नूर सब पर।

सब नूर देखों जित तितहीं, भरी नूरै नूर नजर॥५३॥

जब मैं श्री राज जी की नूरी शोभा को देखना चाहती हूँ, तो मुझे श्री राजश्यामा जी की ही छवि चारों ओर दृष्टिगत होती है। मैं जहाँ भी देखती हूँ, वहाँ नूर ही नूर नजर आता है। मेरी दृष्टि में धनी के नूर के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं।

हक नूर बिना जरा नहीं, नूर सब में रह्या भराए।

नूर बिना खाली कहूं नहीं, रह्या नूरै नूर जमाए॥५४॥

रंगमहल की इस भूमिका का एक कण भी श्री राज जी के नूर के बिना नहीं है, अर्थात् नूर के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। लीला रूप प्रत्येक पदार्थ में नूर ही नूर भरा हुआ है, नूर से रहित कुछ है ही नहीं। सब जगह

नूर ही नूर की क्रीड़ा नजर आ रही है।

फेर नूर दिवालों देखिए, नूर बन झरोखे जित।

नूर खिड़की नूर द्वारने, देख्या नूर बिना न कित॥५५॥

हे साथ जी! अब आप पुनः चौथी भूमिका में किनार पर चारों तरफ आये ३३ हाथ चौड़े छज्जे (झरोखे) में घूमकर बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवारों तथा चारों तरफ के वनों की नूरमयी शोभा को देखिए। यहाँ की खिड़कियों (दीवारों पर आये झरोखों) तथा दरवाजों की शोभा को देखने पर नूर से रहित कुछ भी नहीं दिखायी देता।

**भावार्थ—** जिस प्रकार तपाये हुए लोहे में अग्नि तत्व प्रविष्ट होकर लोहे को अपने समान ही दर्शाने लगता है, वैसी शोभा परमधाम के लीला रूप पदार्थों की नहीं है, बल्कि उस सूर्य के समान है, जिसमें मात्र अग्नि तत्व ही

दहक रहा है। परमधाम में श्री राज जी का नूर ही असंख्य रूपों में होकर क्रीड़ा कर रहा है। दिखने में भले ही परमधाम में मन्दिर, महल, पहाड़, नदी, पशु-पक्षी आदि हैं, किन्तु इनमें नूर के अतिरिक्त और कोई पृथक पदार्थ नहीं है। संक्षेप में कह सकते हैं कि परमधाम के कण-कण में श्री राज जी के नूर (सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द, तेज, ज्योति, छवि) की ही लीला है।

**रूहें दौड़ें नूर हाल में, नूर देखें सब ठौर।**

**फेर आइए नूर द्वार ने, नाहीं नूर बिना कछु और॥५६॥**

निजधाम की आत्मायें प्रेममयी अवस्था में सम्पूर्ण परमधाम में विचरण करती हैं और प्रत्येक जगह अपने प्राणेश्वर की नूरी शोभा का दीदार करती हैं। हे साथ जी! अब आप चौथी भूमिका के १० मन्दिर के हाँस में स्थित

मुख्य दरवाजे में आ जाइए, जहाँ नूर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

## भोम पांचमी नूर सेज्या पाँचवी भूमिका में नूरी शय्या

नूर देखो भोम पांचमी, जित मन्दिर नूर सेज।

बारे हजार मोहोल नूर के, सब नूरै रेजा रेज॥५७॥

हे साथ जी! पाँचवी भूमिका की उस नूरी शोभा को देखिये, जहाँ प्रवाली मन्दिर में श्री राजश्यामा जी के लिये नूरी सेज्या (शय्या) बिछी हुई है। इस भूमिका में नौ चौकों में से मध्य के चौक में सखियों के शयनकक्ष के रूप में १२००० नूरी मन्दिर हैं, इनके मध्य में चौपुड़े में प्रवाल के लाल रंग का श्यामा जी का मन्दिर है। यहाँ के

कण-कण में अपार नूर क्रीड़ा कर रहा है।

**नूर पौरी नूर द्वारने, नूर गलियां थंभ अर्स।**

**नूर प्याले रूहें पीवहीं, ले भर भर नूर सरस॥५८॥**

पाँचवी भूमिका के इस चौक में सभी महाराबें, दरवाजे, गलियाँ, तथा थम्भ नूरमयी हैं। इस पाँचवी भूमिका में सखियाँ श्री राज जी के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम के अति मीठे सागर से अपने नेत्र रूपी प्यालों में प्रेम का रस भर-भरकर पान करती हैं और आनन्द-सिन्धु में डूबी रहती हैं।

**भावार्थ-** यह पाँचवी भूमिका ही वह स्थान है, जहाँ हकीकत का इश्क अपने मारिफत स्वरूप में दृष्टिगोचर हो जाता है। इस अवस्था में आशिक-माशूक (श्री राज जी और सखियों) में किसी प्रकार का भेद नहीं रह जाता है।

ए नूर के चौक चबूतरे, माहें नूर के मोहोल मन्दिर।

नूर सरूप लेहेरें लेवहीं, माहें नूर बाहेर अन्दर॥५९॥

पाँचवी भूमिका के इस चौक (महाहवेली) में नूर के ही चौक (दोपूड़े, त्रिपुड़े, चौपुड़े) तथा चबूतरे हैं। यहाँ के महल एवं मन्दिर सभी अलौकिक ज्योति से परिपूर्ण हैं। सखियाँ इस भूमिका में धनी के प्रेम रूपी सागर की लहरों में डूब जाया करती हैं। यहाँ के लीला रूप प्रत्येक पदार्थ के अन्दर-बाहर नूर ही नूर विद्यमान है।

चौकी संदूकें नूर की, सब सुन्दर नूर सामान।

नूर भरे मोहोल सोभित, ए क्यों होए नूर बयान॥६०॥

इस भूमिका के मन्दिरों में चौकी, सन्दूक आदि सभी नूरी सामान बहुत सुन्दर हैं। सभी महल नूर से ओत-प्रोत हैं और शोभायमान हो रहे हैं। यहाँ की अनुपम नूरी

छवि का वर्णन भला कैसे हो सकता है।

सब जोगवाई नूर की, नूरै का सब साज।

कहां लग कहूं मैं नूर की, सब नूरै रह्या बिराज॥६१॥

यहाँ की प्रत्येक लीला रूप सामग्री एवं सजावट की प्रत्येक वस्तु नूरमयी है। मैं इस नूरी शोभा का वर्णन कैसे करूँ। चारों ओर नूर का ही अप्रतिम सौन्दर्य बिखरा हुआ नजर आ रहा है।

सब मोहोल एक नंग नूर के, ज्यों नूर सागर माहें तरंग।

यों कई बिध मोहोल नूर के, माहें कई नूर रस रंग॥६२॥

जिस प्रकार नूर के अनन्त सागर से असंख्य लहरें उठा करती हैं, उसी प्रकार यहाँ के महलों (मन्दिरों) की शोभा को देखकर ऐसा लगता है जैसे ये सभी एक ही

"नूर" नामक नग से बने हुए हैं। इस प्रकार, यहाँ अनेक तरह के नूरी महल जगमगा रहे हैं, जिनमें नूर के भिन्न-भिन्न रसों का आनन्द प्रवाहित हो रहा है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में नूर के अनेक प्रकार के रंग-रस (आनन्द एवं स्वरूप) प्रवाहित होने का अर्थ यह है कि इन नूरी मन्दिरों में सर्वत्र ही अपरिमित सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द, एकत्व, कोमलता आदि की अखण्ड रूप से क्रीड़ा हो रही है।

ए नूर भोम फेर देखिए, नूर झरोखे नूर बन।

नूर द्वार आए फेर, नूर नूरै नूर रोसन॥६३॥

हे साथ जी! अब आप पाँचवीं भूमिका की किनार के ३३ हाथ चौड़े छज्जे में होकर चारों तरफ के वनों की अद्भुत शोभा को देखिए। घूमकर सामने पूर्व दिशा के १०



मन्दिर के हाँस के बड़े दरवाजे के पास आ जाइये, जहाँ पर एकमात्र नूर ही नूर जगमगा रहा है।

कई चौक देखिए नूर के, कई सीढ़ियां नूर दीवार।

कई थंभ गलियां नूर की, कई मोहोल नूर पड़साल॥६४॥

इस भूमिका में नूर के बहुत से चौकों, सीढ़ियों, तथा दीवारों की अद्भुत, सुन्दर (कमनीय) शोभा को देखिये। यहाँ बहुत से नूरमयी थम्भों, गलियों, महलों, तथा पड़सालों की जगमगाहट दिखायी दे रही है।

नूर ऊपर तले माहें नूर, कई बेल फूल नूर नकस।

घोड़े कमाड़ी नूर चौकठ, भरया सागर नूर रस॥६५॥

इस भूमिका में ऊपर-नीचे तथा अन्दर सब जगह नूर ही नूर दृष्टिगोचर हो रहा है। जगह-जगह तरह-तरह की

नूरमयी लताओं तथा फूलों की चित्रकारी सुशोभित हो रही है। यहाँ दरवाजों के ऊपर बने हुए घोड़ों, दरवाजों, तथा चौकठों में इतनी शोभा दिखायी दे रही है कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे नूर के अनन्त सागर का रस ही यहाँ अठखेलियाँ कर रहा है।

**झरोखे नूर गिरदवाए, नूर सोभा कही न जाए।**

**कछू नूर स्वाद तो आवहीं, जो नूर लीजे दिल ल्याए॥६६॥**

बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवारों पर चारों ओर जो नूरी झरोखे आये हैं, उनकी शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। हे साथ जी! यदि आप अपने हृदय में धनी का प्रेम बसा लेते हैं, तो आपको परमधाम की इस शोभा का कुछ रस प्राप्त हो सकता है।

नूर मन्दिर फेर देखिए, फेर देखिए नूर झरोखे।

तब नूर बन आवे नजरों, नूर पसु पंखी खेलें जे॥६७॥

आप इन नूरी मन्दिरों की शोभा को बारम्बार देखिए। इसके पश्चात् बाहरी दीवारों पर आये हुए नूरी झरोखों की अपार मनोहारिता को देखिए। इन झरोखों से ही आपको जगमगाते हुए उन वनों की सुन्दरता दिखायी देगी, जिनमें नूरी पशु-पक्षी तरह-तरह की क्रीड़ायेँ करते हैं।

## भोम छठी नूर सुखपाल

छठीं भूमिका में नूरी सुखपालों का वर्णन

भोम छठी नूर झिलमिले, सब ठौरों नूर नाम।

नूर रूहें खेलें नूर में, सब रह्या नूर में जाम॥६८॥

रंगमहल की छठी भूमिका में सर्वत्र ही नूरी आभा की झिलमिलाहट दिखायी दे रही है। नूरी स्वरूप वाली ब्रह्मसृष्टियाँ इस नूरी भूमिका में क्रीड़ा करती हैं। यहाँ प्रत्येक पदार्थ नूरी ज्योति से परिपूर्ण है।

**नूर चौक मन्दिर फिरते, नूर चबूतरों बैठक।**

**नूर बरसत कई हवेलियां, नूर बैठक रूहें हादी हक॥६९॥**

इस भूमिका में चारों ओर नूरमयी चौक, मन्दिर, तथा चबूतरे आये हैं, जिन पर श्री राजश्यामा जी एवं सखियों की मनोहर बैठक हुआ करती है। यहाँ अनेक नूरी हवेलियाँ दिखायी देती हैं, जिनमें धनी के प्रेम-भरे नूर की बरसात होती रहती है।

**नूर बैठत नूर उठत, नूर चलते नूर निदान।**

**सब ठौरों नूर पूरन, जानों सब गंज नूर समान॥७०॥**

इस भूमिका में श्री राजश्यामा जी एवं सुन्दरसाथ (सखियाँ) अति प्रेमपूर्वक उठते-बैठते हैं। कभी-कभी इच्छानुसार घूमते भी हैं। ऐसा लगता है कि हर जगह समान रूप से गंजानगंज नूरी शोभा विद्यमान है।

**एक मध्य चौक भरया नूर का, और फिरते मोहोल नूर तिन।**

**तिन गिरद नूर हवेलियां, ए नूर गिनती करूं जुबां किन॥७१॥**

मध्य का चौक (नौ चौक) नूर से भरपूर है। इसके चारों ओर घेरकर आये हुए पंचमहल नूरी शोभा से भरपूर हैं। इनके भी आगे (बाहरी ओर) गोल तथा चौरस हवेलियों के फिरावे भी नूरी हैं। मैं किस जिह्वा से इन नूरमयी महलों तथा हवेलियों की गिनती करूँ।

तिन परे नूर नूर के परे, नूर मोहोल की गिनती नाहें।

नूर जिनसें कई जुदी जुदी, ए नूर आवे न हिसाब माहें॥७२॥

नूरी गोल हवेलियों के आगे चौरस हवेलियों के नूरमयी फिरावे हैं। पुनः गोल हवेलियों के फिरावे हैं। इस प्रकार एक के बाद एक गोल तथा चौरस हवेलियों के ४-४ फिरावे हैं, जिनमें प्रत्येक में ४-४ हारें आयी हैं। इस प्रकार हवेलियों की अलग-अलग प्रकार की शोभा आयी है। वस्तुतः इन नूरी हवेलियों की संख्या नहीं गिनी जा सकती।

जो मोहोल नूर किनार के, नूर लेखे में आवे क्यों कर।

ए नूर रूहें देखत, फेर फेर नूर नजर॥७३॥

इस भूमिका के बाहरी दोनों हार मन्दिरों की शोभा किसी भी प्रकार से (लिखकर या कहकर) व्यक्त नहीं की

जा सकती। इस विलक्षण शोभा को परमधाम की आत्मायें अपनी आन्तरिक दृष्टि से बारम्बार देखा करती हैं।

**मोहोल झरोखे जो नूर के, आवत नूर बयार।**

**इन जुबां इन नूर को, ए नूर आवे न माहें सुमार॥७४॥**

बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवार में जो झरोखे आये हैं, वहाँ से शीतल, मन्द, और सुगन्धित हवा आती है। इन झरोखों की सुन्दरता की कोई सीमा नहीं है और इसे शब्दों में भी नहीं कहा जा सकता।

**कई मोहोलों में नूर थंभ, तिन कई थंभों नूर नकस।**

**नेक नकस नूर देखिए, जानों ए नूर सबथें सरस॥७५॥**

इस भूमिका की हवेलियों में बहुत से नूरी थम्भ विद्यमान

हैं, जिन पर बहुत सुन्दर-सुन्दर चित्र बने हुए हैं। यदि आप इन चित्रों की थोड़ी सी भी शोभा को देख लें, तो आपको यही लगेगा कि मात्र यही शोभा सबसे अधिक सुन्दर है।

**कई बन बेली नूर की, कई नूर पसु जानवर।**

**कई नूर कटाव तिन बीच में, नूर कहां लग कहूं क्यों कर॥७६॥**

दीवारों तथा थम्भों आदि पर नूरमयी वृक्षों एवं लताओं के मनोरम चित्र हैं। नूरी पशु-पक्षियों के भी बहुत से चित्र हैं। बीच-बीच में अति सुन्दर बेल-बूटे बने हैं, जिनकी शोभा असीम है। मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

**कह्यो न जाए नूर पात को, कई नूर कांगरी पात माहें।**

**कई नूर बेली एक पात में, सो कब लग कहूं नूर काहें॥७७॥**



इन चित्रों की एक पत्ती के नूर की शोभा भी नहीं कही जा सकती। एक ही पत्ते में बहुत सी नूरी काँगरियां बनी हुई हैं और इन काँगरियों में बहुत सी छोटी – छोटी लताओं के मनोरम चित्र हैं। इनकी अद्वितीय शोभा का वर्णन मैं कब तक करती रहूँ।

**एक पात कांगरी नूर देखिए, नूर देखत उमर जाए।**

**तो सोभा देखत नूर कांगरी, रूहें नूर क्यों न तृपिताए॥७८॥**

हे साथ जी! यदि आप एक पत्ते की काँगरी की भी नूरी शोभा को देखें, तो आपकी सारी उम्र बीत जायेगी, फिर भी शोभा की थाह नहीं लगायी जा सकेगी। इस नूरी काँगरी की शोभा को देखकर आत्मायें किसी भी प्रकार से तृप्त नहीं हो सकतीं।

**भावार्थ—** सारी उम्र का व्यतीत हो जाना एक

आलंकारिक कथन है। इसका तात्पर्य है— बहुत अधिक समय का लग जाना। इस चौपाई में इस जागनी लीला का प्रसंग है, परमधाम का नहीं, क्योंकि परात्म का तन तो अनादि और अखण्ड है। उसकी उम्र के समाप्त हो जाने का प्रश्न ही नहीं है। इसी प्रकार तृप्ति न होने का आशय है, उस शोभा में इस प्रकार डूब जाना कि उससे हटने का अवकाश ही न मिले।

**छठी भोम नूर पूरन, जित रहेत नूर सुखपाल।**

**बड़ी बड़ी नूर हवेलियां, बड़े बड़े नूर पड़साल॥७९॥**

छठी भूमिका में नूरी सुखपाल रहते हैं। यहाँ चारों तरफ नूर ही नूर परिपूर्ण हो रहा है। इस भूमिका में बड़ी-बड़ी नूरी हवेलियाँ और नूरी पड़सालें जगमगा रही हैं।

फेर देखिए नूर द्वार को, मोहोल नूर चौक झलकत।

रूहें खेलें खुसाली नूर में, नूर नूरै में मलपत॥८०॥

हे साथ जी! आप पुनः छठीं भूमिका के १० मन्दिर के हाँस के मुख्य द्वार की शोभा को देखिए। दोनों हार मन्दिरों व २८ थम्भ के चौक में नूरमयी शोभा झलक रही है। सखियाँ नूरी परमधाम में आनन्दमयी क्रीड़ायेँ करती हैं तथा सभी नूरी स्वरूप (श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ) प्रेमपूर्वक मुस्कराते रहते हैं।

**भावार्थ-** २८ थम्भ के चौक में तख्तरवा (बृहद् विमान) विद्यमान है तथा बाहरी हार मन्दिरों और थम्भों की पहली हार के मध्य पहली गली में ६००१ सुखपाल रखे हैं।

## भोम सातमी नूर हिंडोले

सातवीं भूमिका में नूरी हिण्डोले

नूर भरी भोम सातमी, नूर मोहोल बिना हिसाब।

बिना हिसाब चौक नूर के, सो भरयो सागर नूर आब॥८१॥

यह सातवीं भूमिका नूर से भरपूर है। यहाँ के असंख्य महल और चौक अनन्त नूर से झिलमिला रहे हैं। इन्हें देखने से ऐसा लगता है कि जैसे यहाँ अनन्त नूर का सागर ही लहरा रहा है।

हिसाब नहीं नूर दिवालों, हिसाब नहीं नूर गलियां।

हिसाब नहीं बीच नूर थंभ, नूर आवे नूर बीच से चलियां॥८२॥

यहाँ की नूरमयी दीवारों तथा गलियों की गणना नहीं हो

सकती। इन गलियों में स्थित नूरी थम्भों की संख्या भी असीम है। इन्हीं नूरी गलियों से होकर सखियाँ आती – जाती हैं।

**नूर भरे ताक खिड़कियां, बारसाखें नूर द्वारा।**

**कई मोहोल मन्दिर नूर के, ना गिनती नूर सुमार॥८३॥**

यहाँ सभी ताक, खिड़कियाँ, जालीदार रोशनदान, दरवाजे, महल, मन्दिर आदि नूरी शोभा वाले हैं। न तो इनकी संख्या की गणना हो सकती है और न इनमें झलझलाने वाले नूर की सीमा का माप हो सकता है।

**भावार्थ-** दीवार में अन्दर की तरफ गोल, त्रिकोण, या चौकोर आकृति में ऐसा स्थान बना दिया जाता है जो वस्तुओं के रखने के काम में आता है, "ताक" कहलाता है। कहीं-कहीं खिड़की के नीचे की सतह को भी ताक

के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। बोलचाल की भाषा में ताक को "ताखा" भी कहते हैं।

कई छूटक मन्दिर नूर के, कई मन्दिरों नूर मोहोलात।  
 कई फिरते मन्दिर नूर के, बीच बैठक नूर बिसात॥८४॥

इस भूमिका में बहुत से नूरमयी मन्दिर अलग से (पञ्चमहलों) हैं, तो बहुत से मन्दिर हवेलियों (गोल-चौरस) में एकसाथ भी आये हैं। कहीं-कहीं वे घेरकर (बाहरी दोनों हार में) भी आये हैं। इनमें बैठने के नूरमयी सिंहासन तथा कुर्सियाँ आदि रखे हुए हैं।

नूर झरोखे किनार के, तिन में नूर मन्दिर।

नूर थंभ दो दो आगूं इन, हर मन्दिर नूर अन्दर॥८५॥

सातवीं भूमिका में बाहरी किनार पर ३३ हाथ का चौड़ा

छज्जा (झरोखा) घेरकर आया है। इसके भीतरी तरफ मन्दिरों की पहली हार है, जिनके अन्दर की ओर थम्भों की दो हारें घेरकर आयी हैं। पुनः इसी प्रकार मन्दिरों की दूसरी हार तथा इनके भीतरी तरफ थम्भों की दो हारें विद्यमान हैं। प्रत्येक मन्दिर के अन्दर तरह-तरह की नूरी सामग्री सुशोभित हो रही है।

इन अन्दर मोहोल कई नूर के, कई जुदी जुदी नूर जिनस।  
 कई मोहोल मन्दिर नूर गलियां, नूर देखूं सोई सरस॥८६॥

दोनों हार मन्दिरों की भीतरी तरफ कई प्रकार की (चौरस एवं गोल) बहुत सी नूरमयी हवेलियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। यहाँ के असंख्य नूरी महलों, मन्दिरों, तथा गलियों में जिसे भी देखती हूँ, उसी में अपार सुन्दरता दिखायी देती है।

ए जो मन्दिर नूर किनार के, दो हारें नूर मन्दिर।

साम सामी नूर हिंडोले, नूर झलकत है अन्दर॥८७॥

सातवीं भूमिका में किनार पर नूरी मन्दिरों की जो दो हारें आयी हैं, उनके मध्य में नूरी थम्भों की दो हारें आयी हैं। उनकी महराबों में ६०००-६००० हिण्डोलों की दो हारें (कुल १२०००) शोभायमान हैं। इस प्रकार, हिण्डोले आमने-सामने आये हैं। इनके अन्दर से नूर की मनोरम झलकार हो रही है।

यों फिरते नूर हिंडोले, नूरै के गिरदवाए।

नूर सरूप रूहें बैठत, झूलें नूर जुगल दिल ल्याए॥८८॥

इस प्रकार, घेरकर आये हुए नूरी थम्भों के बीच में नूरमयी हिण्डोले आये हैं, जिन पर बैठकर श्री राजश्यामा जी और सखियाँ अति प्रेमपूर्वक झूला झूलते हैं।



दो दो सरूप नूर झूलत, नूर साम सामी मुकाबिल।

कड़े इनइननें नूर के, नूर खेलें झूलें हिल मिल॥८९॥

प्रत्येक नूरी हिण्डोले में दो-दो स्वरूप आमने-सामने बैठकर झूला झूलते हैं। इनमें अति मीठी आवाज करने वाले कड़े और झुनझुने लगे हुए हैं। सभी अत्यन्त प्यार के साथ आपस में झूला झूलने की लीला करते हैं।

कई नूर चौक चबूतरे, कई नूर के थंभ दीवार।

कई बार साखे ताके नूर के, क्यों कहूं नूर बिना मिसाल॥९०॥

इस भूमिका में बहुत से नूरी चौक एवं चबूतरे हैं। नूर के ही असीम थम्भे और दीवारें हैं। बहुत सी नूरमयी जालीदार खिड़कियाँ हैं। इस संसार में जिस नूर की कोई उपमा ही नहीं है, उसकी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

कई रंगों नूर झलकत, कई नूर रंग तले ऊपर।

सब तरफों नूर जगमगे, ए नूर जोत कहूं क्यों कर॥९१॥

इस भूमिका में नीचे से लेकर ऊपर तक अनेक रंगों की शोभा में नूर झलकार कर रहा है। इस नूरी ज्योति की शोभा का वर्णन में कैसे करूँ। चारों ओर इसी की जगमगाहट है।

कई गलियां नूर चरनियां, कई नूर मेहेराव झरोखे।

कई नूर अर्स की रोसनी, क्यों सिफत कहूं नूर ए॥९२॥

यहाँ बहुत सी नूरमयी गलियाँ, सीढ़ियाँ, और महाराबें सुशोभित हो रही हैं। दीवारों में सुन्दर झरोखे आये हैं। रंगमहल की ज्योति अनेक प्रकार की शोभा में दृष्टिगोचर हो रही है। इस नूरी छवि का वर्णन मैं कैसे करूँ।

## भोम आठमी नूर हिंडोले

आठवीं भूमिका के नूरी हिण्डोले

नूर गंज भोम आठमी, नूर चार तरफ झूलन।

चारों चौक नूर हिंडोले, रूहें झूलत नूर रोसन॥९३॥

आठवीं भूमिका में गंजानगंज (अथाह भण्डार) नूर (अलौकिक, त्रिगुणातीत प्रकाश) भरा हुआ है। यहाँ दोनों हार मन्दिरों के मध्य दो थम्भों की हारों में १८००० हिण्डोले आये हैं। इनके चौकों में नूरी चार हिण्डोलों की ताली पड़ती है। प्रत्येक चौक में चारों ओर से नूरी हिण्डोले एकसाथ आते हैं। चार सखियाँ ताली बजाती हैं, पुनः एकसाथ सभी हिण्डोले पीछे चले जाते हैं। इस प्रकार सखियाँ इन जगमगाते हुए हिण्डोलों में झूला करती हैं।

**भावार्थ-** थम्भों की दोनों हारों में १२००० हिण्डोले तो हैं ही, साथ ही दोनों हारों के मध्य की महराबों में ६००० हिण्डोले हैं। इस प्रकार, कुल १८००० हिण्डोले आये हैं।

**गिरदवाए नूर हिंडोले, झलकत नूर जंजीर।**

**क्यों कहूं झूले नूर के, रुहें हँसत मुख नूर नीर॥९४॥**

इस आठवीं भूमिका में चारों ओर किनार पर नूरी हिण्डोले आये हैं। इनकी नूरमयी जंजीरें झलकार कर रही हैं। जिन झूलों पर अति सुन्दर मुख वाली सखियाँ हँसते हुए झूला झूलती हैं, उन झूलों (हिण्डोलों) की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। यह असम्भव कार्य है।

रुहें झूलें जब नूर में, तब अर्स नूर झलकार।

बोलें नूर पड़छंदे नूर मन्दिरों, होत हाँसी नूर अपार॥९५॥

जब सखियाँ इन नूरी हिण्डोलों में झूलती हैं, तो उस समय रंगमहल की नूरी झलकार देखने योग्य (असीम) होती है। झूलते समय हिण्डोलों की मधुर आवाज की प्रतिध्वनि सभी मन्दिरों में सुनायी पड़ती है। इस समय सभी स्वरूप (श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ) अनन्त प्रेम में डूबकर मधुर हास्य की लीला करते हैं।

यों गिरदवाए नूर सबन में, इनकत नूर झलकत।

ए जो हिंडोले नूर के, कही जाए ना नूर सिफत॥९६॥

इस प्रकार, इस भूमिका में चारों ओर घेरकर आये हुए नूरी हिण्डोलों के रूप में झलझलाता हुआ नूर अति मधुर झनकार कर रहा है। इन नूरी झूलों की अपार शोभा का

वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

हक हादी रूहें नूर में, झूलत नूर खुसाल।

इन समें नूर बिलंद का, किन विध कहूं नूर हाल॥९७॥

श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ सौन्दर्य के प्रतिमान स्वरूप में अति प्रसन्नतापूर्वक झूले झूलते हैं। इस समय परमधाम में जो आनन्दमयी स्थिति होती है , उसका वर्णन मैं किस प्रकार करूँ।

ए झूले भोम नंग नूर के, गंज जाहेर नूर अम्बार।

जब नूर मोहोलों इत खेलत, अर्स नूर न आवत पार॥९८॥

आठवीं भूमिका के इन हिण्डोलों को देखने से ऐसा लगता है कि जैसे ये नूर के नगों से ही बने हैं। इनमें नूर का अथाह भण्डार झलकार करता है। जब यहाँ की

हवेलियों में सखियाँ तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करती हैं, तो उस समय रंगमहल के नूर की कोई सीमा ही नहीं होती।

इन अंदर नूर कई बिध का, नूर बैठक मोहोल खेलन।  
जुदी जुदी विध नूर जुगतें, हक सुख देत नूर रुहन॥९९॥  
दोनों हार मन्दिरों की भीतरी ओर हवेलियों में अनेक प्रकार की बैठकें, महल, और खेलने के स्थान हैं, जिनकी शोभा कई प्रकार की है। यहाँ नूरी छवि अलग-अलग प्रकार की बनावटों में दृष्टिगोचर हो रही है। इन रमणीय स्थानों में श्री राज जी अपनी अँगनाओं को प्रेम का अनन्त सुख देते हैं।

कई विध नूर चबूतरे, कई विध नूर मंदिर।

कई विध रोसन नूर किनारे, कई बिध नूर अंदर॥१००॥

किनार पर चारों तरफ बाहरी हार मन्दिरों का नूर दिखायी दे रहा है, तो इनके भीतरी तरफ चौरस एवं गोल हवेलियों में अनेक प्रकार के नूरी चबूतरे तथा नूरमयी मन्दिर शोभायमान हो रहे हैं।

बारे हजार रूहें नूर हिंडोले, हर नूर रूहें हक संग।

इन समें नूर क्यों कहूं, नूर होत उछरंग॥१०१॥

जब १२००० सखियाँ नूरी हिण्डोलों में झूलती हैं, तो उस समय प्रत्येक चौक में सखियों के साथ श्री राज जी झूलते हुए दिखायी देते हैं। इस लीला में सबके अन्दर प्रेम की उमंग भरी होती है। इस समय की अनुपम शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।



चार चार हिंडोले नूर के, अर्स मावे ना नूर झनकार।

लेत लेहेरें नूर सागर, जानों नूर गंज भरे अंबार॥१०२॥

प्रत्येक चौक में (चारों दिशाओं में) ४-४ नूरी हिण्डोले शोभायमान हैं। इनकी मधुर झनकार रंगमहल में समा नहीं पा रही है। इन हिण्डोलों में नूर का इतना भण्डार भरा हुआ है कि ऐसा लगता है, जैसे यहाँ नूर का सागर ही अपनी लहरों के साथ क्रीड़ा कर रहा है।

नूर हिंडोलों जंजीरों, कड़े खटकत नूर जुगत।

ए घाए पड़घाए नूर पड़छंदे, नूर हर ठौरों बोलें बिगत॥१०३॥

हिण्डोलों की नूरी जंजीरों में जड़े हुए नूरी कड़े इस प्रकार टकराकर मधुर ध्वनि करते हैं कि उसकी मनोहर प्रतिध्वनि रंगमहल में हर जगह सुनायी पड़ती है।

**द्रष्टव्य-** जब कोई ध्वनि किसी दीवार या छत आदि से

टकराकर दुबारा सुनायी पड़ती है, तो उसे प्रतिध्वनि कहते हैं। "पड़घाए" और "पड़छंदे" समानार्थक शब्द हैं और इनका आशय प्रतिध्वनि से होता है।

## भोम नौमी नूर गोख बैठक

नूरमयी नवमी भूमिका की छज्जों में बैठक

भोम नौमी नूर नूरै, गिरदवाए नूर तखत।

ए नूर विचारे ना उड़े, हाए हाए नूर जीवरा बड़ा सखत॥१०४॥

नवमी भूमिका नूर ही नूर से भरपूर है, जिसमें चारों ओर छज्जों पर नूरी सिंहासन जगमगा रहे हैं। हाय! हाय! मेरा यह नूरी जीव बड़े कठोर हृदय वाला है, जो परमधाम की शोभा का विचार करके भी संसार को छोड़ नहीं पा रहा है।

**भावार्थ-** जिस प्रकार परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा होने से आत्मा को नूरी कहा जाता है, उसी प्रकार जिस जीव पर नूरी आत्मा विराजमान हो जाती है तथा वह जीव ब्रह्मवाणी के प्रकाश में इश्क-ईमान की राह पर चल पड़ता है, तो उसे भी नूरी कहलाने की शोभा मिल जाती है, क्योंकि वह अपना लौकिक भाव छोड़कर स्वयं को परात्म स्वरूप ही मानने लगता है। वह भी इसी भाव में खोया रहता है कि मैं श्री राजश्यामा जी की अँगरूपा हूँ। उसकी यही स्थिति नूरी कहलाने की शोभा प्रदान करती है।

यद्यपि यह शोभा उन जीवों को प्राप्त नहीं हो सकती, जो धनी के इश्क-ईमान से रहित हैं। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि जिस जीव पर आत्मा का निवास नहीं है, किन्तु यदि उसने अपने हृदय में प्रेम द्वारा

परमधाम और धनी की शोभा को बसा लिया है, तो उसे भी नूरी कहलाने की शोभा मिल जाती है।

इन नूर भोम की सिफत, कही जाए ना नूर मुख इन।

ए नूर मंदिर नूर झरोखे, कई नूर फिरते सिंघासन॥१०५॥

इस नूरी भूमिका की अद्वितीय शोभा का वर्णन इस मुख से हो पाना सम्भव नहीं है। इस भूमिका में अति मनोहर मन्दिर तथा २०१ नूरमयी छज्जों पर २०१ नूरी सिंहासन शोभायमान हैं।

ए मंदिर झरोखे नूर एकै, फिरती नूर पड़साल।

तो कहूं नूर रोसन की, जो होवे नूर इन मिसाल॥१०६॥

बाहरी हार मन्दिरों की जगह एवं नूरी छज्जे (झरोखे) एकसमान सुशोभित हो रहे हैं। यहाँ चारों ओर घेरकर

नूरी पड़सालें आयी हैं। यदि यहाँ की अप्रतिम नूरी छवि की उपमा हो सके, तब तो इसका कुछ वर्णन भी सम्भव होता, अर्थात् किसी भी प्रकार से इस शोभा का कथन हो पाना सम्भव नहीं है।

**भावार्थ**— यहाँ बाहरी हार मन्दिरों के भीतर की दीवार और दरवाजे तो हैं, किन्तु दायें-बायें सन्धि की तथा बाहर की दीवारें नहीं हैं। बाहर की दीवारों की जगह में थम्भों की हार है। इसके बाहरी तरफ एक मन्दिर का चौड़ा छज्जा चारों ओर घेरकर निकला है, जिसकी बाहरी किनार पर पुनः थम्भों की एक हार आयी है, जिसके मध्य में कठेड़ा शोभायमान है। यह एक मन्दिर का चौड़ा छज्जा (झरोखा) कहलाता है।

बाहरी हार मन्दिरों की जगह और यह छज्जा (झरोखा), दोनों मिलकर दो मन्दिर की चौड़ी पड़साल

कहलाते हैं। तीसरी भूमिका में भी इसी प्रकार पड़साल की किनार की थम्भों से लगती हुई एक मन्दिर चौड़ी जगह को झरोखा कहा है।

देहेलान दस मंदिर का, झरोखे दस सामिल।

माहें चौक दस मंदिर का, हुए तीनों मिल कामिल॥

परिकरमा ३१/२९

ए मंदिर झरोखे नूर के, भोम नूर बराबर।

नूर द्वार ज्यों और मंदिर, नूर रूहें आवें सीढ़ियों उतर॥१०७॥

बाहरी हार मन्दिरों की जगह एवं एक मन्दिर का चौड़ा छज्जा दोनों एकसमान ऊँचे हैं, किन्तु इनकी जमीन अन्दर की गली की अपेक्षा कमर-भर ऊँची है, जिसके कारण भीतरी दीवारों के दरवाजों से गली में चाँदों द्वारा ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। इनसे होकर सखियाँ छज्जों में

आती-जाती हैं।

हर हांसों हक नूर बैठक, हर हांसों नूर तखत।

हक हादी रूहें नूर मिलावा, हर हांसों नूर न्यामत॥१०८॥

प्रत्येक हाँस में श्री राजश्यामा जी के बैठने के लिये नूरी सिंहासन तथा सखियों के बैठने के लिये १२००० नूरमयी कुर्सियाँ रखी हुई हैं। श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ इन पर विराजमान होते हैं। यह नूरी शोभा प्रत्येक हाँस में समान रूप से आयी है।

**भावार्थ-** २०१ गुर्जों के कारण २०१ हाँस में २०१ छज्जे दिखायी पड़ रहे हैं। प्रत्येक छज्जे में १-१ नूरमयी सिंहासन और १२०००-१२००० कुर्सियाँ रखी हुई हैं।

**नूर थंभ गली देखिए, जानों नूर मंदिर द्वार।**

**माहें मंदिर झरोखे नूर एकै, हर बैठक नूर विस्तार॥१०९॥**

बाहरी हार मन्दिरों के भीतरी तरफ थम्भों की २ हारें व ३ गलियाँ आयी हैं। हे साथ जी! आप इस रमणीक शोभा को देखिए। बाहरी हार मन्दिरों की भीतरी दीवार में दरवाजे आये हैं। बाहरी हार मन्दिरों की जगह एवं एक मन्दिर का चौड़ा छज्रा, दोनों ही एकसमान शोभायमान हो रहे हैं। २०१ हाँसों के प्रत्येक हाँस में इसी प्रकार की नूरी बैठक जगमगा रही है।

**नूर दूर से देखत, सो नूर बैठक इत।**

**दो सै हांसें नूर की, हक मेले नूर बरकत॥११०॥**

इन छज्रों में विराजमान होकर श्री राजश्यामा जी व सखियाँ दूर-दूर के सुन्दर दृश्यों को देखने का आनन्द



लेते हैं। दो सौ नूरी हाँसों में दो सौ नूरी छज्जे शोभायमान हैं। जब श्री राजश्यामा जी सभी सखियों के साथ इनमें से किसी एक हाँस में विराजमान होते हैं, तो वहाँ की शोभा विलक्षण होती है।

**भावार्थ-** रंगमहल के २०१ हाँस हैं, किन्तु गिनती में २०० हाँस कह दिया जाता है, क्योंकि पूर्व में मध्य के दो हाँस से ५-५ मन्दिर लेकर एक अतिरिक्त हाँस १० मन्दिर का धाम दरवाजे का बना है।

**सोभा हक नूर सिंघासन, नूर इन भोम बिराजत।**

**ए बात केहेते हक नूर की, हाए हाए नूर जीवरा न उड़त॥१११॥**

इस नवीं भूमिका में जब श्री राज जी इन छज्जों पर स्थित नूरमयी सिंहासन पर विराजमान होते हैं, तो उस समय की अनुपम छवि का वर्णन करने का प्रयास करने

वाला मेरा यह नूरी जीव हाय-हाय इस संसार को क्यों नहीं छोड़ पा रहा है?

और नूर मोहोल कई अन्दर, सो नूर बड़ो विस्तार।

कई नूर भांत बिध जुगतेँ, नूर अलेखे बेसुमार॥११२॥

इस छज्जे के अन्दर की तरफ बहुत से नूरी महल हैं, जिनका अत्यधिक विस्तार है। यहाँ की अनुपम ज्योति में अनेक प्रकार की बनावट है, जिसकी शोभा अनन्त है और शब्दों की परीधि में नहीं आती।

नवे भोम नूर बरनन, नूर क्यों कहूं ख्वाब जुबांए।

ए नूर हक हुकम कहे, ना तो नूर आवे ना सब्द माहें॥११३॥

मैं इस स्वप्न की जिह्वा से नवीं भूमिका के नूर की अद्वितीय मनोहारिता का वर्णन कैसे करूँ। अब तक जो

कुछ भी वर्णन हुआ है, वह मात्र श्री राज जी के आदेश (हुक्म) से ही सम्भव हो सका है, अन्यथा "नूर" को तो शब्दों द्वारा व्यक्त किया ही नहीं जा सकता।

अर्स नूर जरा जुबां कहे, अर्स मता नूर अपार।

सो नूर बरनन क्यों होवहीं, जिन नूर को न कहूं सुमार॥११४॥

परमधाम के इस तारतम ज्ञान का प्रकाश भी अनन्त है, इसलिये निजधाम की नूरी शोभा का थोड़ा सा वर्णन यह जिह्वा (रसना) कर पा रही है। जिस नूरी सुन्दरता की कोई सीमा ही नहीं है, उसका वर्णन हो पाना कैसे सम्भव है।

**दसमी भोम नूर चांदनी**

दसवीं भूमिका में चाँदनी की शोभा

**नूर रूहें चढ़ चांदनी, नूर नवों भोमों पर।**

**खूबी नूर भोम दसमी, ए नूर सोभा ना काहूं सरभर॥११५॥**

नूरमयी नवों भूमिकाओं के ऊपर चढ़कर सखियाँ दसवीं चाँदनी पर पहुँच जाती हैं। इस दसवीं भूमिका की रमणीयता (सुन्दरता) इतनी अधिक है कि किसी से भी इसकी तुलना नहीं की जा सकती।

**ऊपर जल नूर चेहेबच्चे, नूर कारंजे उछलत।**

**ऊपर नूर इत बगीचे, नूर क्यों कहूं हक न्यामत॥११६॥**

दसवीं चाँदनी के मध्य में २०० हाँस का कमर-भर उँचा गोल चबूतरा विद्यमान है। चबूतरे के चारों कोनों में चार बड़े चहबच्चे शोभायमान हो रहे हैं, जो नीचे के स्तून (पाइप) के ऊपर स्थित हैं। इनमें ५-५ नूरमयी फव्वारे उछलते हुए दिखायी दे रहे हैं। चबूतरे के चारों ओर

(हवेलियों की चाँदनी में) मेवों, घास, तथा फूलों के नूरमयी बगीचे हैं। इनकी चारों दिशाओं में नूरमयी नहरें व चारों कोनों में चहबच्चे, फव्वारे आदि शोभायमान हैं। श्री राज जी की निधि (नेमत) रूप इस नूरी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**इत कई नूर सिंघासन, बीच नूर तखत बैठक।**

**हादी रूहें नूर मिलाए के, बैठत नूर ले हक॥११७॥**

मध्य के चबूतरे पर कई प्रकार के नूरमयी सिंहासन तथा कुर्सियाँ (आसन) विद्यमान हैं, जिन पर श्री राजश्यामा जी और सखियाँ अपनी सम्पूर्ण शोभा के साथ विराजमान होते हैं।

नूर भरया आकास में, सामी आया आकास नूर ले।

नूर भरया दरिया नूर का, माहें कई उठें तरंग नूर के॥११८॥

दसवीं चाँदनी का नूर आकाश में उठ रहा होता है तथा आकाश का नूर भी ऊपर से आकर उससे टकराता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यहाँ पर नूर का सागर ही प्रकट हो गया हो और उसमें से नूर की अनन्त लहरें उठ रही हैं।

दो सै एक गुरजें नूर की, नूर गुमटियां बारे हजार।

बीच नूर रूहें बैठक, थंभ नूर सोभा अपार॥११९॥

२०१ नूरमयी गुर्जों के ऊपर २०१ बड़े गुम्मत आये हैं। बाहरी हार मन्दिरों की जगह में ६००० दहलाने हैं, जिनकी चाँदनी पर १२००० नूरमयी गुमटियाँ हैं (प्रत्येक दहलान की चाँदनी में २-२ गुम्मत हैं)। इन

दहलानों के थम्भों की अपार नूरमयी शोभा है। मध्य में स्थित चबूतरे पर श्री राजश्यामा जी एवं सखियों की बैठक है।

दसमी भोमे नूर चांदनी, नूर गुमटियां देखत।

ए मोहोल गिरदवाए नूर के, नूर में हक हादी रूहें खेलत॥१२०॥

दसवीं भूमिका की नूरी चाँदनी पर बाहरी हार मन्दिरों की जगह में जो चारों ओर दहलानें आयी हैं , उनकी चाँदनी में अति सुन्दर नूरमयी गुमटियाँ दिखायी दे रही हैं। यहाँ युगल स्वरूप के साथ सखियाँ तरह-तरह की क्रीड़ा करती हैं।

नूर गुरज हांसों पर, बीच कांगरी नूर किनार।

बीच बीच बैरखें नूर की, मौजें आवत नूर झलकार॥१२१॥

२०१ हाँसों की सन्धि में २०१ गुर्ज आए हैं। दहलानों की चाँदनी की बाहरी एवं भीतरी किनार पर लाल रंग की काँगरी तथा कँगूरों की अद्भुत शोभा हो रही है। काँगरियों के बीच-बीच में कँगूरों पर नूरमयी पताकायें लहरा रही हैं, जिनकी नूरी झलकार बहुत आनन्द देने वाली है।

**इत सोभित नूर काँगरी, और सोभित नूर कलस।**

**ए कलस काँगरी नूर के, सोभित नूर पर सरस॥१२२॥**

गुम्मटों तथा कँगूरों पर नूरमयी कलशों की शोभा है। कँगूरे प्रत्येक मन्दिर (दहलान) की चाँदनी के चारों कोनों में हैं। दहलानों की चाँदनी में (बाहरी व भीतरी किनार पर) नूरी काँगरी की शोभा है। नूरमयी कलशों तथा काँगरियों की अति सुन्दर शोभा दृष्टिगोचर हो रही है।



दसों दिसा नूर नूर में, नूरै नूर खेलत।

नूर उठें बैठें नूर में, नूर नूरै में चलत॥१२३॥

नूरी आकाशी में दशों दिशायेँ भी नूरमयी हैं। चारों ओर नूर की ही लीला है। इस प्रकार की अलौकिक सुन्दरता से परिपूर्ण वातावरण (परिस्थितियों) में नूरमयी सखियाँ लीला रूप में (आसनों से) उठती हैं, बैठती हैं, तथा प्रेमपूर्वक चलती भी हैं।

नूर भरया आसमान में, नूर चांदनी नूर चौक।

नूर बिना कछू न देखिए, नूरै में नूर सौक॥१२४॥

सम्पूर्ण आकाश में नूर ही नूर भरा हुआ है। दसवीं चाँदनी तथा उसके मध्य में स्थित चबूतरा भी नूरी शोभा वाला है। यहाँ नूर (ब्राह्मी तेज ज्योति) के अतिरिक्त और कुछ दिखायी ही नहीं दे रहा है। इस नूरी आभामण्डल में

नूरी स्वरूपों की प्रेममयी लीला दृष्टिगोचर हो रही है।

नूर देख्या भोम दस में, नूर सबहीं के सिरे।

नूर ले नौमी भोम में, नूर नूरै में उतरे॥१२५॥

इस दसवीं भूमिका में नूर की जो अनुपम शोभा दिखायी दे रही है, वह सर्वोपरि है। इस अद्भुत शोभा को देखकर नूरी सखियाँ नीचे की नूरमयी नवमी भूमिका में आ जाती हैं।

ए नूर सुख बैठक देख के, नूर भोम आठमी आए।

लिए नूर सुख हिंडोले, ए चारों नूर सुखदाए॥१२६॥

नवमी भूमिका में बैठक (छज्जों) की नूरी शोभा को देखकर सखियाँ आठवीं भूमिका में आयीं, जहाँ पर उन्होंने चारों ओर से आने वाले चार ताली के नूरमयी

हिण्डोलों का सुख लिया।

**भावार्थ-** इस प्रकरण की चौपाई १२५ से १३४ तक में चितवनि द्वारा आत्मिक दृष्टि से देखने का वर्णन है, जो इस जागनी ब्रह्माण्ड से सम्बन्धित है। इसे ही सखियों द्वारा दसवीं भूमिका से क्रमशः प्रथम भूमिका (मूल मिलावा) तक आने की बात कही गयी है। यद्यपि सभी भूमिकाओं में आने-जाने की लीला तो परात्म के तनों से अखण्ड रूप में होती ही रहती है।

आए नूर भोम सुख सातमी, नूर सुख हिंडोले दोए दोए।  
ए सुख नूर रुहें बिना, नूर सुख लेवे जो होवे कोए॥१२७॥

आठवीं भूमिका से नूरमयी सातवीं भूमिका में आते हैं, जहाँ दो ताली के (आमने-सामने दो तरफ से आने वाले) हिण्डोलों का सुख लेते हैं। इन नूरमयी हिण्डोलों

पर झूलने का सुख मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही ले पाती हैं, अन्य कोई (ईश्वरी, जीव सृष्टि आदि) नहीं, क्योंकि स्वलीला अद्वैत परमधाम में उनके अतिरिक्त और कोई है ही नहीं।

नूर लिया छठी भोम में, भोम अर्स विवेक विचार।

मोहोल लिया सुख नूर का, नूर नूर में नूर न सुमार॥१२८॥

सातवीं भूमिका से उतरकर छठीं भूमिका में आये और रंगमहल की इस नूरमयी शोभा का विवेकपूर्वक विचार किया। यहाँ के उन नूरमयी महलों को देखने का सुख लिया, जिनमें ज्योति ही ज्योति (नूर ही नूर) विद्यमान है और उसकी सुन्दरता की कोई सीमा नहीं है।

नूर भरी भोम पांचमी, जित नूर सेज्या सुख।

रात सुख नूर अति बड़ा, हक सुख नूर सनमुख॥१२९॥

पाँचवीं भूमिका अनन्त शोभा से भरपूर है। यहाँ नूरी सेज्या (शय्या) में अपार सुख की लीला होती है। रात्रि में होने वाली प्रेममयी लीला का सुख बहुत अधिक (अथाह) है, जिसमें सखियाँ श्री राज जी के सम्मुख होकर प्रेम के अनन्त आनन्द में डूब जाती हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में सम्मुख होने का तात्पर्य दीदार (दर्शन) से है। दोनों (आशिक और माशूक) एक-दूसरे के दीदार में इतने में खो जाते हैं कि वे मारिफत के इश्क (परमसत्य प्रेम) में पहुँच जाते हैं। यही पाँचवीं भूमिका की लीला है।

**भोम चौथी नूर में, नट निरत नूर खेलत।**

**नूर बिना कछु न पाइए, सुख सनमुख नूर अतन्त॥१३०॥**

नूरमयी चौथी भूमिका में नवरंग बाई नृत्य करती हैं।

यहाँ नूर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। श्री राज जी के सम्मुख होने वाली इस नृत्य लीला का सुख अनन्त होता है।

तीसरी भोम जो नूर की, जित है नूर पड़साल।

हक हादी रूहें नूर बैठक, आवें दीदारें नूर जलाल॥१३१॥

तीसरी भूमिका अत्यन्त नूरमयी है, जिसमें अति सुन्दर पड़साल आयी है। इस पड़साल की नूरी बैठक में जब श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ विराजमान होते हैं, तो उस समय अक्षर ब्रह्म श्री राज जी का दर्शन करने के लिये आते हैं।

दूसरी भोम का नूर जो, चेहेबच्चा नूर झीलन।

हक हादी सुख नूर भुलवनी, देत नूर सुख अपने तन॥१३२॥

दूसरी भूमिका की शोभा नूरी खड़ोकली (चहबच्चा) है, जिसमें अति प्रेमपूर्वक स्नान किया जाता है। इसी भूमिका में भुलवनी के नूरमयी मन्दिर हैं, जिनमें श्री राजश्यामा जी अपनी अँगनाओं को भुलवनी की लीला का सुख देते हैं।

**नूर द्वार सुख पेहेली भोमें, सुख अव्वल भोम नूर पूर।**

**फिरता सुख सब नूर में, मध्य नूर नूर नूर॥१३३॥**

प्रथम भूमिका नूर से भरपूर है, जिसके मुख्य द्वार का सुख भी अद्वितीय है। इसके अन्दर प्रवेश करने पर नूरमयी मन्दिरों तथा हवेलियों (चौरस, गोल, एवं पञ्चमहलों) की जो हारें घेरकर आयी हैं, उनमें सर्वत्र नूर का ही सुख विद्यमान है। इन हवेलियों में केवल धनी का नूर ही नूर लीला कर रहा है।

इत नूर खिलवत हक की, रूहें नूर मोमिनो न्यामत।

नूर मेला मूल मोमिनो, बीच हक का नूर तखत॥१३४॥

इसी प्रथम भूमिका में चार नूरी चौरस हवेलियों के पश्चात् पाँचवीं गोल हवेली मूल मिलावा है, जो धाम धनी की खिलवत है। यह नूरी आत्माओं की अखण्ड निधि है। इस नूरी मूल मिलावा में सखियाँ चबूतरे पर बैठी हैं और उनके बीच में नूरमयी सिंहासन पर श्री राजश्यामा जी विराजमान हैं।

हक हादी रूहें नूर ठौर, हक जात नूर वाहेदत।

कहे महामत नूर बिलन्द में, ए अपनी नूर क्यामत॥१३५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि श्री राजश्यामा जी एवं अँगनायें इसी नूरमयी मूल मिलावा में विराजमान हैं। ब्रह्मात्माओं के मूल तनों में एकत्व (वहदत) की लीला



है। योगमाया से भी परे सर्वोपरि परमधाम में नूरी मूल मिलावा वह अखण्ड स्थान है, जहाँ हम अपने मूल तन से आज भी बैठे हैं।

॥ नूर की परिकरमा तमाम ॥

प्रकरण ॥३७॥ चौपाई ॥२१७९॥

## धाम बरनन

### रंगमहल का वर्णन

इस प्रकरण में सक्षिप्त रूप से रंगमहल की शोभा तथा लीला का वर्णन किया गया है।

बरनन धाम को, कहूं साथ सुनो चित्त दे।

कई हुए ब्रह्मांड कई होएसी, कोई कहे न हम बिन ए॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! अब मैं रंगमहल का वर्णन कर रही हूँ, आप उसे सावधान होकर सुनिए। अब तक इस ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त असंख्य ब्रह्माण्ड बनकर लय हो चुके हैं और भविष्य में भी नये ब्रह्माण्ड बनेंगे, किन्तु आज दिन तक किसी ने भी न तो परमधाम का वर्णन किया है और न ही भविष्य में कोई कर सकेगा।

क्यों कहूं धाम अन्दर की, विस्तार बड़ो अतन्त।

क्यों कहे जुबां झूठी देह की, अखण्ड पार के पार जो सत॥२॥

मैं रंगमहल के अन्दर की शोभा का वर्णन किस प्रकार करूँ, इसका विस्तार अनन्त है। बेहद और अक्षर से भी परे परमधाम के रंगमहल की शोभा का वर्णन भला इस नश्वर शरीर की जिह्वा से कैसे हो सकता है।

तो भी नेक केहेना साथ कारने, माफक जुबां इन बुध।

अद्वैत अखण्ड पार की, करूँ साथ के हिरदे सुध॥३॥

फिर भी, सुन्दरसाथ की आत्म-जाग्रति के लिये इस जिह्वा तथा बुद्धि के अनुकूल थोड़ा बहुत तो कहना ही होगा। सुन्दरसाथ के हृदय को शुद्ध करने के लिये मैं बेहद से भी परे स्वलीला अद्वैत परमधाम के रंगमहल की शोभा एवं लीला का वर्णन कर रही हूँ।

**भावार्थ-** जब सुन्दरसाथ के हृदय में परमधाम की शोभा एवं लीला का ज्ञान बस जायेगा, तो वे माया का ध्यान छोड़कर परमधाम के ध्यान में लग जायेंगे और मायावी विकारों से अपनी रक्षा कर लेंगे। इस चौपाई के चौथे चरण में हृदय को शुद्ध करने का यही आशय है।

**थंभ दिवालें गलियां, कई सीढ़ियां पड़साल।**

**मन्दिर कमाड़ी द्वार ने, माहें कई नंग रंग रसाल॥४॥**

रंगमहल में अति सुन्दर अनन्त थम्भ, दीवारें, गलियाँ, सीढ़ियाँ, और पड़सालें हैं। मन्दिरों के दरवाजों के पल्लों में बहुत सुन्दर-सुन्दर रंगों के असंख्य नग जड़े हुए हैं।

**गली माहें कई गलियां, कई चौक चबूतरे अनेक।**

**खिड़की माहें कई खिड़कियां, जित देखूं जानों सोई विसेक॥५॥**

यदि रंगमहल में गलियों को देखें, तो अनेक प्रकार की गलियाँ हैं। बहुत से चौक और चबूतरे हैं। खिड़कियों को देखें, तो अनेक प्रकार की खिड़कियाँ नजर आती हैं। जिस किसी भी शोभा को देखती हूँ, तो ऐसा लगता है कि जैसे वही सबसे अधिक सुन्दर है।

**दूजी भोम का चेहेबच्चा, जल पर झरोखे तिन।**

**सोभा लेत अति सुन्दर, तीनों तरफों बन॥६॥**

रंगमहल की दूसरी भूमिका में खड़ोकली (चहबच्चा) शोभायमान है। इसकी एक ओर (दक्षिण में) रंगमहल की तीसरी भूमिका का ३३ हाथ का चौड़ा छज्जा अति सुन्दर सुशोभित हो रहा है। शेष तीन दिशाओं में ताड़वन के वृक्ष दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

तीनों तरफ बन डारियां, करत छाया जल पर।

एक तरफ के झरोखे, जल छाए लिया अन्दर॥७॥

तीनों दिशाओं से ताड़वन के वृक्षों ने अपनी डालियाँ फैलाकर खड़ोकली के जल चबूतरे तक छाया की है। चौथी ओर रंगमहल के ऊपर की भूमिकाओं के छज्जे शोभायमान हैं, जिनके सुन्दर प्रतिबिम्ब खड़ोकली के जल में झलकते हैं।

तीनों तरफों कठेड़ा, नेक नेक पड़साल।

चारों तरफ उतरती सीढ़ियां, पानी बीच विसाल॥८॥

खड़ोकली की तीनों दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर) में १ मन्दिर तथा ३३ हाथ चौड़ी पड़साल (रौंस) है, जिसकी बाहरी किनार पर कठेड़ा आया है। चौथी दिशा में २ मन्दिर की दूरी पर रंगमहल के बाहरी हार के मन्दिर हैं।

जल रौंस (पड़साल) से भीतरी तरफ खड़ोकली के कमर-भर गहरे जल चबूतरे पर, चारों दिशाओं के मध्य से ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। इसके आगे (बीच में) खड़ोकली का जल तीन भूमिका तक गहरा आया है।

**आगूं मन्दिर चबूतरा, थंभ सोभित तरफ चार।**

**इत आवत रूहें नहाए के, बैठ करत सिनगार॥९॥**

खड़ोकली के सामने दोनों हार मन्दिरों की भीतरी ओर भुलवनी के मन्दिर हैं, जिनके मध्य में १० मन्दिर का लम्बा-चौड़ा चौक है। इस चौक में ८ मन्दिर का लम्बा-चौड़ा कमर-भर ऊँचा चबूतरा है, जिसकी किनार पर चारों दिशाओं में थम्भों की एक हार है। सखियाँ खड़ोकली में स्नान करने के पश्चात् इसी चबूतरे पर बैठकर अपना श्रृंगार करती हैं।

इत दाहिनी तरफ जो मन्दिर, गिनती बारे हजार।

इन मन्दिरों खेलें भुलवनी, हर मन्दिर द्वार चार॥१०॥

खड़ोकली की दायीं ओर (दक्षिण दिशा में) भुलवनी के १२००० मन्दिर हैं। प्रत्येक मन्दिर में ४-४ दरवाजे (चारों दिशा में १-१) आये हैं। इन मन्दिरों में भुलवनी की लीला होती है।

कर सिनगार इत खेलत, ए जो मन्दिर हैं भुलवन।

दौड़ें खेलें हँसें रुहें, देख अपनी आभा रोसन॥११॥

खड़ोकली में स्नान करने के पश्चात् सखियाँ चबूतरे पर श्रृंगार करती हैं, फिर भुलवनी के मन्दिरों में खेलती हैं। इन मन्दिरों की दीवार, दरवाजे आदि नूरमयी शीशे के हैं, जिनमें अपने नूरमयी प्रतिबिम्बों को देखकर वे बहुत हँसती हैं तथा दौड़ते हुए तरह-तरह के खेल करती हैं।



कई फिरते चबूतरे, फिरते मन्दिर गिरदवाए।

थंभ तिन आगूं फिरते, बीच फिरता चौक सोभाए॥१२॥

रंगमहल की भूमिकाओं में कई गोल हवेलियाँ हैं, जिनके मध्य में गोल चबूतरे हैं। इनके चारों ओर गोलाई में मन्दिरों की हार है। मन्दिरों की हार के बाहरी और भीतरी तरफ थम्भों की एक-एक हार है। इसी प्रकार, मध्य के गोल चबूतरे (चौक) की किनार पर भी थम्भों की एक हार आयी है।

कई चौखूने चबूतरे, चारों तरफों मंदिर।

थंभ फिरते चारों तरफों, ए सोभा अति सुन्दर॥१३॥

चौरस हवेलियों में चौरस चबूतरे आये हैं। इन चबूतरों की चारों दिशाओं में मन्दिरों की एक हार है, जिसकी बाहरी तथा भीतरी तरफ थम्भों की १-१ हार आयी है।

यह शोभा बहुत सुन्दर दिखायी दे रही है।

**कई चौखूने चबूतरे, मन्दिर आठों हार।**

**चली चार गलियां चौक थें, हार आठ थंभ गली बार॥१४॥**

कई चौरस चबूतरे चार चौरस हवेलियों के कोनों में मध्य गली की सन्धि में १ मन्दिर के लम्बे-चौड़े आये हैं। इन चबूतरों के चारों ओर मन्दिरों की आठ हारें (प्रत्येक हवेली की दो दिशाओं के मन्दिर) दिख रही हैं। इस चबूतरे (चौक) की चारों दिशाओं में ३-३ गलियाँ तथा थम्भों की २-२ हारें शोभायमान हैं। इस प्रकार, चारों दिशाओं को मिलाकर थम्भों की कुल ८ हारें तथा १२ गलियाँ होती हैं।

कही एक ठौर के चौक की, जित बैठत धनी आए।

चौक चबूतरे इन भोम के, कई जुगत क्यों कही जाए॥१५॥

यह तो मैंने केवल एक जगह के चौक की शोभा का ही वर्णन किया है, जहाँ आकर धाम धनी विराजमान होते हैं। इस भूमिका में बहुत से चौक एवं चबूतरे आये हैं, जिनकी अनेक प्रकार की शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

ऊपर थंभ झलकत, और तले भोम झलकार।

सामग्री सब झलकत, और थंभ दिवालों द्वार॥१६॥

ऊपर थम्भ जगमगाते हैं तथा नीचे धरती (सतह) झलझलाती है। इसी प्रकार थम्भे, दीवारें, दरवाजे, और शोभा रूप सम्पूर्ण सामग्री झलकार कर रही हैं।

क्यों कहूं हिसाब मन्दिरन को, दिवालां चौक थंभ कई लाख।  
 अमोल अतोल अन गिनती, कछू कह्यो न जाए मुख भाख॥१७॥

दीवारें, चौक, थम्भे लाखों की संख्या में हैं। मैं मन्दिरों की संख्या कैसे बताऊँ। न तो इस सम्पूर्ण शोभा का मूल्य आंका जा सकता है और न किसी सुन्दरता से इनकी तुलना की जा सकती है। यहाँ तक कि इनकी गिनती भी होना असम्भव है। इनके सम्बन्ध में इस मुख से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः इनकी संख्या, सुन्दरता, और कीमत शब्दों से परे है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में जो लाखों की संख्या बतायी गयी है, वह एक आधार मात्र है। जब तीसरे चरण में संख्या को अनगिनत कह दिया गया है, तो इस संसार की गणना में "लाखों" के कथन से सन्तुष्ट हो जाना उचित नहीं है, बल्कि परमधाम में मन्दिरों, दीवारों,

थम्भों, चौकों आदि की संख्या अनन्त में ही माननी चाहिए।

ए सुख इन मन्दिरन में, वाही सरूपों सुध।

विध विध विलास इन धाम को, कहा कहे जुबां इन बुध॥१८॥

इन अनन्त मन्दिरों में होने वाली प्रेममयी लीला का सुख तो मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं। इस रंगमहल में तरह-तरह की क्रीड़ाओं का जो अनन्त आनन्द है, उसे यहाँ की बुद्धि और जिह्वा से मैं कैसे व्यक्त करूँ।

जो वस्तु जिन मिसल की, सोई बनी ठौर तित।

सेज्या संदूक सिंघासन, कहूं केती कई जुगत॥१९॥

लीला में जहाँ पर जिस वस्तु के प्रयोग की आवश्यकता होती है, वहाँ पर वही वस्तु अति सुन्दर तरीके से बनी

हुई प्रस्तुत रहती है। आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार की शोभा वाली शय्याओं, सन्दूकों, तथा सिंहासनों की अद्भुत शोभा आयी है, जिसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

**भावार्थ-** परमधाम में सर्वत्र पूर्णता होने के कारण "आवश्यक" शब्द का प्रयोग उचित नहीं है। यथार्थतः इसका अभिप्राय "प्रयोग" से है।

कई जुगतें कई जिनसें, कई सामग्री सनंध।

क्यों करूँ बरनन धाम को, ए झूठी देह मत मंद॥२०॥

इस प्रकार, लीला रूप में रंगमहल में अनेक प्रकार की बनावट वाली अति सुन्दर शोभा से युक्त अनन्त सामग्री दिखायी दे रही है। मैं भला इस नश्वर शरीर की अल्प बुद्धि से रंगमहल की अनन्त शोभा का वर्णन कैसे करूँ।

कई बेली एक दीवार में, कई बेल फूल तिन पात।

तिन पात पात कई नंग हैं, एक नंग रंग कह्यो न जात॥२१॥

रंगमहल की नूरी दीवारों में अनेक प्रकार की लतायें हैं। इन लताओं में अति सुन्दर-सुन्दर फूलों एवं पत्तियों के चित्र अंकित हैं। उस एक-एक पत्ते में अनेक प्रकार के नंग जड़े हुए हैं। इनमें से किसी एक नंग के रंग की मनोहारिता का भी वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

पात पात को देख के, हँसत बेलि संग बेलि।

सैन करें पंखी पंखी सों, जानों दौड़ करसी अब केलि॥२२॥

पत्ता पत्ते को देखकर हँसता है तथा लतायें लताओं को देखकर हँसती हैं। चित्र का पक्षी एक दूसरे पक्षी के साथ प्रेम के संकेत इस प्रकार करता है, जैसे कि वह अभी ही दौड़कर प्रेमपूर्वक लिपट जायेगा।

फूल फूल कई पांखड़ी, तिन हर पांखड़ी कई नंग।

नंग देख नंग हँसत, फूल फूल के संग॥२३॥

प्रत्येक फूल में अनेक पँखुड़ियाँ हैं और प्रत्येक पँखुड़ी में अनेक नंग जड़े हुए हैं। नगों को देखकर अति प्रेमपूर्वक नंग हँसते हैं तथा फूलों के साथ फूल हँसते हैं।

अपनी अपनी जात ले, ठाड़े हैं सकल।

करने खुसाल धनीय को, करत हैं अति बल॥२४॥

धाम धनी को रिझाने के लिये अपने-अपने वर्ग के साथ सम्पूर्ण सामग्री प्रस्तुत है। इस कार्य में वे अपनी समस्त शक्ति लगा देती हैं।

**भावार्थ-** फूलों की अनेक जातियाँ हैं। इसी प्रकार पत्तों तथा नगों आदि की भी हैं। सम्पूर्ण परमधाम का कण – कण ही धनी को प्रेमपूर्वक रिझाना चाहता है। थम्भों और



दीवारों तक में यही प्रवृत्ति पायी जाती है। इस चौपाई में सम्पूर्ण सामग्री का आशय परमधाम की लीला रूप प्रत्येक पदार्थ से है।

**त्यों त्यों जोत बढ़त है, ज्यों ज्यों देखें नूरजमाल।**

**नाचत हरखत हँसत, देख धनी को खुसाल॥२५॥**

जैसे-जैसे ये वस्तुयें (फूल, पत्ते, नग आदि) धनी को प्रेमपूर्वक निहारती हैं (देखती हैं), वैसे-वैसे इनकी नूरी ज्योति और अधिक जगमगाने लगती है। धाम धनी को आनन्दमग्न देखकर ये सभी वस्तुयें अति प्रेमपूर्वक नाचने लगती हैं, और आनन्द में मग्न होकर हँसने लगती हैं।

**करें खुसाल धनीय को, होए आप खुसाली हाल।**

**ए सोभा इन मुख क्यों कहूं, ए देखे सब मछराल॥२६॥**

ये वस्तुयें प्रियेश्वर अक्षरातीत को हर्षित (रीझा) करके स्वयं भी आनन्दित होती हैं। मैं इस मुख से इनकी शोभा का वर्णन कैसे करूँ। इस अनुपम शोभा को मात्र सुन्दर मुख वाली ब्रह्मसृष्टियाँ ही देखा करती हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "मछराल" शब्द का तात्पर्य पञ्चभौतिक शरीर की सुन्दरता से नहीं है, बल्कि परात्म एवं आत्मा के नूरमयी स्वरूपों की सुन्दरता से है, जो सबकी एक समान है।

**कई पसु पंखी जवेरन के, कई रंग बिरंग कई विध।**

**जानों के खेल पर सब खड़े, ए क्यों कही जाए सनंध॥२७॥**

जवाहरातों के अनन्त प्रकार के पशु-पक्षी हैं, जो अनेक रंगों तथा वर्गों (जातियों) के हैं। इन्हें देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे ये किसी प्रकार की प्रेममयी लीला के

लिये तैयार खड़े हैं। इस मनोहर शोभा का वर्णन भला कैसे हो सकता है।

होत कछू पड़ताल पांउं से, बोलें सब स्वर अपनी बान।  
पसु पंखी देखे बोलते, सब आप अपनी तान॥२८॥

श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के पैरों की जरा सी आहट मिलने पर जवाहरातों (चित्रों) के सभी पशु-पक्षी उन्हें रिझाने के लिए अपनी बोली में अति मधुर स्वरों में बोलने लगते हैं। संगीत की मधुर स्वर-लहरी की तरह उन्हें बोलते हुए देखा जाता है।

कछू थोड़े ही पड़ताल से, धाम सब्द धमकार।  
बोलें पसु पंखी बानी नई नई, जुबां जुदी जुदी अनेक अपार॥२९॥  
पाँवों की जरा सी भी आहट होने पर इन चित्रों के पशु-

पक्षियों की गूँज सम्पूर्ण रंगमहल में फैल जाती है। सभी पशु-पक्षी अनन्त प्रकार की नयी-नयी बोलियों में अति मीठी वाणी बोलने लगते हैं।

जिमी चेतन बन चेतन, पसु पंखी सुध बुध।

थिर चर सबे चेतन, याकी सोभा है कई विध॥३०॥

यहाँ की धरती और वन सभी चेतन हैं। पशु-पक्षियों की बुद्धि पूर्णतया जाग्रत है और उन्हें सम्पूर्ण परमधाम की सुध है। स्थावर (स्थिर रहने वाले) तथा जंगम (चलायमान) सभी पदार्थ चेतन हैं। इनकी शोभा अनेक प्रकार की और अति मनमोहक है।

तो कह्या थावर चेतन, अपनी अपनी मिसल।

ए अन्तर आंखें खुले पाइए, परआतम सुख नेहेचल॥३१॥

इसलिये, परमधाम के सभी स्थावर पदार्थ अपने-अपने समूह के साथ चेतन ही कहे जाते हैं। परात्म के अखण्ड सुखों का अनुभव तो मात्र आत्मिक दृष्टि के खुलने पर ही होता है।

**एक थंभ कई चित्रामन, हर चित्रामन कई नकस।**

**नकस नकस कई पाँखड़ी, जो देखों सोई सरस॥३२॥**

रंगमहल के एक ही थम्भे में अनेक प्रकार की चित्रकारी सुशोभित है। प्रत्येक चित्रकारी में अनेक चित्र बने हैं। फूलों के प्रत्येक चित्र में अनेक पँखुड़ियां बनी हुई हैं। इनमें से जिस किसी भी पँखुड़ी को देखते हैं, वही अत्यधिक सुन्दर दिखायी देती है।

तिन हर पांखड़ी कई कांगरी, हर कांगरी कई नंग।

एक नंग को बरनन ना होवहीं, तो सारे थंभ को क्यों कहूं रंग॥३३॥

प्रत्येक पाँखुड़ी में अनेक प्रकार की काँगरियां बनी होती हैं तथा प्रत्येक काँगरी में बहुत से नग जड़े होते हैं। इन नगों में प्रत्येक नग इतना सुन्दर होता है कि उसकी शोभा का वर्णन किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण थम्भों में आये हुए भिन्न –भिन्न प्रकार के रंगों वाले नगों की सुन्दरता का वर्णन कैसे हो सकता है।

मोर मैना मुर्ग बांदर, कई जुदी जुदी सब जुबान।

नेक सब्द उठे भोम का, बोलें आप अपनी बान॥३४॥

मोर, मैना, मुर्गे, बन्दर आदि पशु-पक्षियों की अलग-अलग प्रकार की बोली है। इनमें इतनी सजगता है कि

यहाँ की धरती (सतह) से जरा सी भी ध्वनि होने पर ये अति मीठे स्वरों में अपनी-अपनी बोली में बोलने लगते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "भोम" शब्द से तात्पर्य भूमिका या सतह से है। मात्र प्रथम भूमिका में ही धरती का भाव लिया जायेगा। शेष अन्य भूमिकाओं (दूसरी से दसवीं) में इसका भाव सतह (floor) से लिया जायेगा।

एक सब्द के उठते, उठें सब्द अनेक।

पसु पंखी जो चित्रामन के, कई विध बोलें विवेक॥३५॥

रंगमहल में किसी भी एक शब्द की ध्वनि होने पर चित्रों के पशु-पक्षी अनेक प्रकार की बोलियों में बोलने लगते हैं, जिससे अनेक प्रकार के मीठे शब्दों की गूँज चारों

ओर सुनायी देने लगती है।

**द्रष्टव्य-** इस चौपाई के चौथे चरण में "विवेक" शब्द के प्रयोग का आशय यह है कि पशु-पक्षियों का बोलना उपयुक्त स्वरों में नियन्त्रित ढंग से होता है। ऐसा लगता है कि जैसे किसी महान् बुद्धि द्वारा अति उत्तम ढंग से बोला जा रहा है।

कई जुदे जुदे रंगों पुतली, कई बने चित्रामन।

कई विध खेल जो खेलहीं, मुख मीठी बान रोसन॥३६॥

रंगमहल में अलग-अलग रंगों में पुतलियों के बहुत से सुन्दर-सुन्दर चित्र बने हुए हैं। ये पुतलियाँ तरह-तरह के आकर्षक खेल खेलती हैं और अपने मुख से अति मीठी वाणी बोलती हैं।



सो भी खेल बोल स्वर उठत, रंग रस होत रमन।

सोभा सुन्दरता इनकी, केहे न सकों मुख इन॥३७॥

पुतलियों के खेलों में अनेक प्रकार की बोलियों के जो अति मीठे स्वर सुनायी पड़ते हैं, उनसे सर्वत्र प्रेम तथा आनन्द की वर्षा होने लगती है। इनकी शोभा-सुन्दरता का वर्णन मैं इस मुख से नहीं कह सकती।

चित्रामन सारे चेतन, सब लिए खड़े गुमान।

जोत लरत है जोत सों, कोई सके न काहूं भान॥३८॥

यहाँ के सभी चित्र चेतन हैं और अपने प्रेम के स्वाभिमान से भरे हैं। सभी चित्र ज्योतिर्मयी हैं। उनसे निकलने वाली ज्योतियाँ आपस में टकराकर युद्ध का मोहक दृश्य उपस्थित करती हैं, किन्तु कोई भी ज्योति अन्य किसी ज्योति को नष्ट नहीं कर पाती।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "गुमान" शब्द का भाव अहंकार या घमण्ड से नहीं लेना चाहिए। अपने प्रियतम को रिझाने में सजगता बनाये रखना और स्वयं को किसी हीन ग्रन्थि का शिकार न बनने देना ही प्रेम का स्वाभिमान है। इसमें प्रेमी अपने प्रेमास्पद के प्रति न तो समर्पण में कमी करता है और न प्रेम में कमी करता है, बल्कि अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए दूसरों से ईर्ष्या नहीं करता।

**करे जोत लड़ाई जोत सों, तेज तेज के संग।**

**किरन किरन सों लड़त हैं, आठों जाम अभंग॥३९॥**

यहाँ के चित्रों से उठने वाली ज्योतियाँ आपस में टकराती हैं तथा तेज से तेज टकराता है। किरणों से किरणें टकराती हैं और यह मनोहर लीला दिन – रात

अखण्ड रूप से चलती रहती है।

**भावार्थ-** सूर्य में तेज है और चन्द्रमा में ज्योति है। प्रकाश और किरणों का सम्बन्ध दोनों से ही होता है। इसी प्रकार नूर से, तेज और ज्योति, दोनों का ही प्रकटन होता है। "तेज जोत प्रकास जो नूर, सब ठौरों सीतल सत सूर" (परिकरमा ३/१६) का कथन इसी सन्दर्भ में है।

**नूर नूर जहूर जहूर सों, करत सफ जंग दोए।**

**एक दूजे के सनमुख, ठेल न सके कोए॥४०॥**

एक चित्र के नूरी प्रकाश से दूसरे चित्र का नूरी प्रकाश युद्ध करते हुए प्रतीत हो रहा है। दोनों एक-दूसरे को सामने से ढकेलने का प्रयास करते हैं, किन्तु कोई भी पीछे नहीं हो पाता।

जंग करत अंगों अंगें, साथ नंग के नंग।

रंग सों रंग लरत हैं, तरंग संग तरंग॥४१॥

पशु-पक्षियों के चित्रों के अंग-अंग से निकली हुई ज्योति आपस में टकराकर युद्ध का दृश्य उपस्थित कर रही है। यही स्थिति नगों की ज्योति में भी है, अर्थात् एक नग की ज्योति दूसरे नग की ज्योति से टकराती है। एक रंग का प्रकाश दूसरे रंग के प्रकाश से टकराता है। इसी प्रकार, प्रकाश की तरंगें भी आपस में टकराकर युद्ध का मोहक दृश्य प्रकट कर रही हैं।

एक रंग को नंग कहावहीं, तामें कई रंग उठत।

ताको एक रंग कह्यो न जावहीं, आगे कहा कहुं विध इत॥४२॥

भले ही कोई नग एक रंग का क्यों न दिखायी देता हो, किन्तु उससे निकलने वाली ज्योति में अनेक रंग

दिखायी पड़ते हैं। इन रंगों में से किसी एक भी रंग की शोभा का वास्तविक वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। अब इसके आगे मैं क्या कहूँ।

जित देखूं तित सूरमें, एक दूजे थें अधिक देखाए।

कई ऊपर तले कई बीच में, याको जुध न समाए॥४३॥

मैं जहाँ भी देखती हूँ, वहीं पर अति सुन्दर पशु-पक्षियों के चेतन चित्र दिखायी पड़ते हैं। शोभा-सुन्दरता में सभी एक-दूसरे से अधिक दिखायी पड़ते हैं। कुछ चित्र दीवारों और थम्भों के ऊपर हैं, कुछ नीचे हैं, और कुछ बीच में हैं। इनसे निकलने वाली किरणों का युद्ध अनवरत रूप से चलता रहता है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के प्रथम चरण में "सूरमें" शब्द का प्रयोग है तथा चौथे चरण में "जुध" (युद्ध) शब्द का।

वस्तुतः यहाँ लौकिक वीरों का वर्णन नहीं किया गया है, बल्कि शोभा, सुन्दरता, प्रेम, एवं आनन्द के क्षेत्र में वीरता दिखाने (प्रदर्शन करने) का प्रसंग है। इसी प्रकार, युद्ध करने का तात्पर्य अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करना नहीं है, बल्कि ज्योतिर्मयी किरणों का आपस में टकराना या दूसरे को धकेलने का प्रयास करना ही युद्ध है।

तेज जोत उद्योत आकास लों, किरना न काहूँ अटकाए।

देख देख जंग निरने कियो, कोई पीछा ना पाउं फिराए॥४४॥

इन चित्रों से उठने वाला तेज, ज्योति, और प्रकाश सम्पूर्ण आकाश में फैला हुआ है। इनसे उठने वाली किरणें कहीं भी अटकती नहीं हैं। ज्योतिर्मयी किरणों के युद्ध को देखकर तो यही कहना पड़ता है कि कोई भी किरण अपने कदम पीछे खींचने वाली नहीं है, अर्थात्

टकराने के पश्चात् भी पीछे नहीं हटती है बल्कि आगे ही बढ़ती जाती है।

चलते हलते धाम में, सबे होत चलवन।

कई कोट जुबां इत क्या कहे, कई बिध थंभ दिवालन॥४५॥

रंगमहल में तेजोमयी किरणों के चलायमान होने से ऐसा प्रतीत होता है, जैसे सभी चित्र चल रहे हैं अर्थात् इनकी चैतन्यता प्रकट होती है। यहाँ के थम्भों और दीवारों में कई प्रकार की ऐसी विचित्र शोभा है कि उसका वर्णन करोड़ों जिह्वाओं से भी नहीं हो सकता।

एक सरूप के नख की, सोभा बरनी न जाए।

देख देख के देखिए, तो नेत्र क्यों न तृपिताए॥४६॥

इन चित्रों में दिखायी देने वाले किसी भी पशु-पक्षी के

एक नख की सुन्दरता का भी वर्णन नहीं हो सकता। इन्हें बार-बार कितना भी क्यों न देखा जाये, किन्तु नेत्रों को तृप्ति नहीं होती अर्थात् हमेशा ही देखते रहने ही इच्छा होती है।

तो सारे सरूप की क्यों कहूं, और क्यों कहूं इनों के खेलि।

बन बेली पसु पंखी, माहें करें रंग रस केलि॥४७॥

ऐसी स्थिति में सभी पशु-पक्षियों की शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है। इनकी मनोहर क्रीड़ाओं को भी कैसे कहा जा सकता है। दीवारों तथा थम्भों पर बने हुए वृक्षों एवं लताओं पर विद्यमान पशु-पक्षियों के चेतन चित्र आपस में प्रेम तथा आनन्द की तरह-तरह की क्रीड़ायेँ किया करते हैं।



जात न कही एक सरूप की, अति सोभा सुन्दर मुख।

तेज जोत रंग क्यों कहूं, ए तो साख्यातों के सुख॥४८॥

इन पशु-पक्षियों के मुख की अति सुन्दर शोभा है। किसी भी पशु या पक्षी की जाति का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। चित्र के रूप में दिखायी देने वाले इन पशु-पक्षियों के तेज, ज्योति, तथा रंगों की सुन्दरता का मैं कैसे वर्णन करूँ। इनसे तो वास्तविक (साक्षात्) पशु-पक्षियों जैसा ही सुख प्राप्त होता है।

सोभा जाए ना कही बिरिख पात की, तो क्यों कहूं फल फूल बास।

क्यों होए बरनन सारे बिरिख को, ए तो सुख साथ को उलास॥४९॥

जब चित्रों में बने हुए वृक्षों के किसी एक पत्ते की भी शोभा वर्णित नहीं हो सकती, तो मैं चित्रों के फलों के स्वाद तथा फूलों की सुगन्धि के विषय में क्या कहूँ। ऐसी

अवस्था में सम्पूर्ण वृक्ष की शोभा का वर्णन भला कैसे हो सकता है। कदापि नहीं। इस प्रकार की शोभा के अनुभव का सुख सुन्दरसाथ के उल्लास में वृद्धि करने वाला है।

जो एता भी कह्या न जावहीं, तो क्यों कहूं थंभ चित्राम।  
परआतम हमारियां, ए तिनके सुख आराम॥५०॥

जब इतनी भी शोभा का कथन नहीं हो सकता, तो एक थम्भे पर बने हुए सभी चित्रों की शोभा कैसे व्यक्त की जाये। रंगमहल के ये सभी अखण्ड सुख हमारी परात्म को आनन्द देने के लिये हैं।

एक थंभ की एह विध कही, ऐसे कई थंभ दिवालें द्वार।  
फेर देखों एक भोम को, तो अतंत बड़ो विस्तार॥५१॥  
जब एक थम्भे की शोभा की यह स्थिति है तो हवेलियों

में ऐसे अनेक थम्भ, दीवारें, और दरवाजे शोभायमान हैं। यदि रंगमहल की किसी एक भूमिका को देखा जाये, तो इन थम्भों, दरवाजों आदि का अनन्त विस्तार पाया जाता है।

**पार नहीं थंभन को, नहीं दिवालों पार।**

**ना कछू पार सीढ़ियन को, ना पार कमाड़ी द्वार॥५२॥**

रंगमहल की किसी भी एक भूमिका में थम्भों और दीवारों की कोई सीमा नहीं है। इसी प्रकार सीढ़ियों तथा दरवाजों के पल्लों की भी संख्या अनन्त है।

**नवों भोमका तुम साथ जी, कर देखो आतम विचार।**

**क्यों आवे जुबां इन अकलें, ए जो अपारे अपार॥५३॥**

हे साथ जी! अब आप रंगमहल की नवों भूमिकाओं में

दरवाजों, थम्भों, दीवारों आदि की संख्या के सम्बन्ध में अपनी आत्मा के धाम-हृदय में विचार कीजिए। इनकी संख्या तो अनन्तानन्त है। भला इस असीम संख्या को यहाँ की बुद्धि और जिह्वा की शक्ति से कैसे व्यक्त किया जा सकता है।

**चित्रामन एक थंभ की, क्यों कहूं केते रंग।**

**बन बेली फूल पात की, जुदी जुदी जिनसों नंग॥५४॥**

एक थम्भ के ऊपर वृक्षों, लताओं, फूलों, तथा पत्तियों के अति मनोहर चित्र बने हुए हैं, जिनमें अलग-अलग प्रकार के इतने नग जड़े हैं कि यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि उनके इतने रंगों का वर्णन मैं कैसे करूँ।

पसु पंखी हाथ पांउं नैन के, कई विध केस परन।

कई खेल पुतलियन के, कई वस्तर कई भूखन॥५५॥

चित्रों के रूप में बने हुए पशु-पक्षियों के हाथ, पैर, नेत्र, और पंखों के बाल अति सुन्दर शोभा लिये हुए हैं। इसी तरह, चित्रों के रूप में बनी हुई पुतलियाँ कई प्रकार के खेल करती हैं। इनके भी वस्त्र और आभूषण अति सुन्दर दिखायी दे रहे हैं।

कई बिध सोभा भोम की, कई रंग नंग नकस अनेक।

कई ठौर अलेखे जड़ित में, जो देखो सोई नेक से नेक॥५६॥

रंगमहल की किसी भी भूमिका की शोभा अनेक प्रकार की है। इनमें अनेक रंगों के नगों से बने हुए मनोहर चित्र आये हैं। कई जगहों की शोभा में अनन्त प्रकार के नग जड़े हुए हैं। यहाँ जिस भी वस्तु की शोभा को देखते हैं,

वही सबसे अधिक सुन्दर दिखायी देती है।

ए कहीं न जाए एक जिनस, सो जिनस अखंड अलेखे।

सत सरूप सुख लेत हैं, देख देख के देखें॥५७॥

रंगमहल की किसी भी एक वस्तु की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। वह वस्तु भी अखण्ड है तथा उसकी शोभा भी शब्दों की परिधि से परे है। इनकी रमणीयता (सुन्दरता) को देख-देखकर अखण्ड स्वरूप वाली आत्मायें अनन्त सुख का रसपान करती हैं।

अति सोभा सुन्दर ऊपर की, कई नकस बेल फूल।

कई जिनसें कहा कहूं, होत परआतम सनकूल॥५८॥

थम्भों एवं दीवारों के ऊपर लताओं तथा फूलों के बहुत से चित्रों की अति सुन्दर शोभा आयी हुई है। मैं अनेक

प्रकार की उन वस्तुओं की शब्दातीत शोभा का कैसे वर्णन करूँ, जिन्हें देख-देखकर हमारी परात्म आनन्दित हुआ करती है।

कई जिनस जुगत थंभन में, कई जिनस जुगत दीवार।  
 कई जिनसें द्वार क्यों कहूँ, ए जो जिनस जुगत पड़साल॥५९॥  
 थम्भों में नगों द्वारा जड़ित अनेक प्रकार की लताओं ,  
 वृक्षों, फूलों, पत्तियों, एवं पशु-पक्षियों के अति मनोहर  
 चित्र बने हैं। यही शोभा दीवारों, दरवाजों, तथा पड़सालों  
 में भी है। मैं इस अद्भुत कमनीयता (सुन्दरता) का वर्णन  
 कैसे करूँ।

कई जिनसें जुगत सीढ़ियां, कई जुगतें जिनसें मंदिर।  
 कई जिनस झरोखे जालियां, कई जिनस जुगत अंदर॥६०॥

सीढ़ियों में भी अनेक प्रकार के नगों से लताओं, फूलों, पशु-पक्षियों आदि के सुन्दर चित्रों की शोभा आयी है। यह शोभा मन्दिरों, झरोखों (छज्जों), जालियों (जालीदार दीवारों), तथा कक्षों के आन्तरिक भागों में भी दृष्टिगोचर हो रही है।

**सामग्री कई सनंधें, कई जिनसें सेज्या सिंघासन।**

**कई सनंधें चौकी सन्दूकें, कई बिध भरे भूखन॥६१॥**

इन मन्दिरों (कक्षों) में अनेक प्रकार की शोभामयी सामग्रियों की सजावट दिखायी दे रही है। यहाँ अनेक प्रकार की शोभा से युक्त शय्या (सेज्या), सिंहासन, चौकी, व सन्दूक हैं। इन सन्दूकों में अनेक प्रकार के मनोहर आभूषण भरे हुए हैं।



कई जिनसें वस्तर भरे, कई विध विध के विवेक।

वस्तर भूखन किन विध कहूं, कई विध जुगत अनेक॥६२॥

इन सन्दूकों में अनेक प्रकार के नूरी वस्त्र भरे हुए हैं, जो अनेक प्रकार की लताओं, फूलों, पत्तियों आदि की मनोहर चित्रावलियों से भरपूर हैं। वस्त्र एवं आभूषण अनेक प्रकार की सुन्दर बनावट (रचना) से युक्त हैं। उनकी इस सुन्दर शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

कई विध प्याले सीसे सीकियां, कई डब्बे तबके दीवार।

सोभित सुन्दर मंदिरन में, कई लटकत रंग रसाल॥६३॥

मन्दिरों की छतों से अनेक प्रकार के सुन्दर रंगों से युक्त सीके (छीके) लटक रहे हैं, जिनमें प्यालों और शीशे के बर्तनों को रखा गया है। मन्दिरों की दीवारों में सुन्दर आले (आलमारी की तरह) बने हुए हैं, जिनमें बहुत से

डिब्बों तथा तशतरियों को सजावट के साथ रखा गया है।

कई जुगतें हिंडोलें मंदिरों, कई जंजीरां झलकत।

माहें डब्बे पुतलियां झनझनें, कई विध झूलत बाजत॥६४॥

मन्दिरों में अनेक प्रकार की शोभा वाले हिण्डोले लगे हुए हैं, जिनकी जंजीरें झलकार कर रही हैं। सामान रखने के लिये तरह-तरह के सुन्दर डिब्बे हैं। जब हिण्डोलों पर झूलते हैं, तो मन्दिरों में जड़ी हुई सुन्दर पुतलियाँ गाने लगती हैं और झुनझुने अनेक प्रकार से बजने लगते हैं।

कई मिलावे साथ के, सुन्दर झरोखे झांकत।

सोभा देखत बन की, मोहोल इन समें सोभित॥६५॥

बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवारों में दो-दो दरवाजे

और एक-एक झरोखा है। सखियों के कई समूह इन सुन्दर झरोखों से झाँकते हुए सामने (चारों ओर के) वनों की शोभा को देखते हैं। इस समय रंगमहल की शोभा अद्वितीय होती है।

**दौड़त खेलत सखियां, एक साम सामी आवत।**

**हांसी रमूज एक दूजी सों, अरस परस ल्यावत॥६६॥**

जब रंगमहल के मन्दिरों तथा गलियों आदि में दौड़कर क्रीड़ा करते हुए सखियों का समूह एक-दूसरे के आमने-सामने आता है, तो सखियाँ एक-दूसरे के साथ हँसी-मजाक करती हैं और एक-दूसरे के प्रेम में ओत-प्रोत हो जाती हैं।

नवों भोम के मन्दिरों, माहें सखियां खेल करत।

चारों जाम हांस विलास में, रंग रस दिन भरत॥६७॥

प्रातः ६ बजे से दोपहर ३ बजे तक और रात्रि ६ से ९ बजे तक (कृष्ण पक्ष में), सखियाँ रंगमहल की नवों भूमिकाओं के मन्दिरों में तरह-तरह की लीलायें करती हैं। इस प्रकार चारों प्रहर का समय प्रेम और आनन्द के साथ हँसीपूर्वक बीत जाता है।

**भावार्थ—** ३ प्रहर (प्रातः ६ बजे से ३ बजे तक) दिन और रात्रि ६-९ का समय रंगमहल की लीला में बीतता है। इस चौपाई के चौथे चरण में चार प्रहर (दिन) रंगमहल में बीतने का यही अभिप्राय है। यद्यपि रात्रि ९ से प्रातः ६ बजे तक का समय भी रंगमहल में ही बीतता है।

झरोखे नवों भोम के, मिल मिल बैठत जाए।

निस दिन हेत प्रीत चित्त सों, मन वांछित सुख पाए॥६८॥

सखियाँ पहली भूमिका से लेकर नवीं भूमिका तक के झरोखों में जाकर हिल-मिलकर बैठती हैं। वे दिन-रात प्रेम-भरे वातावरण में रहती हैं और धनी से इच्छानुसार सुख लेती हैं।

विध विध के सुख बन में, सैयां खेलें झरोखों माहें।

वाउ ठंढा प्रेमल गरमीय में, सुख लेवें सीतल छाहें॥६९॥

सखियाँ ३ बजे से ६ बजे तक कृष्ण पक्ष में और अपराह्न ३ बजे से रात्रि ९ बजे तक शुक्ल पक्ष में, वनों में अनेक प्रकार की लीलाओं का सुख लेती हैं। वे प्रातः से लेकर रात्रि तक रंगमहल के झरोखों में खेला करती हैं। वे गर्मी की ऋतु में इन झरोखों की शीतल छाया में शीतल,

मन्द, एवं सुगन्धित वायु का सुख लेती हैं।

**भावार्थ-** स्वलीला अद्वैत परमधाम में सर्दी-गर्मी का कष्ट नहीं है। यह सम्पूर्ण अभिव्यक्ति लौकिक भावों के अनुसार मात्र लीला रूप में दर्शाने के लिये ही की गयी है।

**सुख बरसाती और बिध, बीज चमके घटा चौफेर।**

**सेहेरां गरजत बूंदे बरसत, घटा टोप लिया बन घेर॥७०॥**

वर्षा ऋतु का सुख कुछ और ही तरह का है। इस ऋतु में चारों ओर छाये हुए बादलों के बीच बिजली चमकने लगती है। जब वनों को घनघोर घटायें (बादल) चारों ओर से घेर लेती हैं, तो उस समय विद्युत (बिजली) गरजने लगती है तथा जल की बूँदों के रूप में वर्षा होने लगती है।

ज्यों ज्यों अम्बर गाजत, मोर कोयल करें टहुंकार।

भमरा तिमरा गान गूँजत, स्वर मीठे पंखी मलार॥७१॥

जैसे-जैसे आकाश में बादल गर्जते हैं, वैसे-वैसे मोर एवं कोयल भी अति मीठे स्वरों में बोलने लगती हैं। वर्षा ऋतु में चारों ओर जहां भौरों एवं झींगुरों का गायन गूँजता रहता है, वहीं पक्षियों की भी मीठी स्वर-लहरी कानों में अमृत घोलती रहती है।

शीत कालें सुख धूप को, पहले पोहोंचत झरोखों आए।

इत आराम घड़ी दोए तीन का, प्रभात समें सुख दाए॥७२॥

शीत ऋतु में धूप सबसे पहले झरोखों में आती है। उस समय प्रातःकाल दो-तीन घड़ी तक झरोखों में आकर नूरमयी धूप में आराम करना बहुत आनन्ददायी होता है।

**भावार्थ-** परमधाम में सम्पूर्ण प्रकृति श्री राजश्यामा जी

एवं सखियों की इच्छा के अनुकूल है। प्रातःकाल की धूप सेंकना यहाँ के भावों के अनुसार है। निजधाम में ऋतुओं का न तो कोई समय-क्रम निश्चित है और न कोई बन्धन है।

**दौड़े कूदें सखियां ठेकत, कई अंग अटपटी चाल।**

**मटके चटके पांउं लटके, अंग मरोस्त मुख मछराल॥७३॥**

परमधाम में सखियाँ अति प्रसन्नता में अपने शरीर के कई अंगों को विचित्र तरीके से हिलाते हुए दौड़ती हैं, कूदती हैं, और पैरों से ठेक (ठोकर) देती हैं। वे अपने पैरों को तिरछा करके शीघ्रतापूर्वक मटकाती हुई चलती हैं। मुस्कराती हुई सखियाँ अपने अंगों को विचित्र प्रकार की प्रेममयी मुद्राओं में मोड़ती हैं।



जुदे जुदे जुत्थों प्रेम रस, अलबेलियां अति अंग।

हंसत आवत धनी के चरणों, रस भरियां अंग उमंग॥७४॥

अपने हृदय में अत्यन्त प्रेम भरकर परमधाम की सखियाँ अलग-अलग समूहों में हँसते हुए अपने धाम धनी के चरणों में आती हैं। उनके अंग-अंग में आनन्द और उत्साह भरा होता है।

कई हाथों फिरावत छड़ियां, कई हाथों फिरावत फूल।

कई आवत गेंद उछालती, कई आवत हैं इन सूल॥७५॥

कुछ सखियाँ अपने हाथों में छड़ी घुमाती हुई आती हैं, तो कुछ अपने हाथों से फूल घुमाती आती हैं। कुछ अपने हाथों से गेंद उछालती हुई आती हैं। इस प्रकार, धनी के पास सखियों का आना भी इस प्रकार प्रेम-भरा होता है।

सब आए आए चरणों लगे, एक एक आगू दूजी के।

ए बड़ा सुखकारी समया, सोभा लेत इत ए॥७६॥

इस प्रकार सभी सखियाँ धनी के सम्मुख एक-एक कर आगे आती हैं और प्रेमपूर्वक उनके चरणों में प्रणाम करती हैं। यह बहुत ही आनन्द देने वाला समय होता है। इस समय की शोभा बहुत न्यारी होती है।

**भावार्थ-** चरणों में झुककर प्रणाम करना लौकिक रीति है। उसी भाव से यहाँ वर्णित किया गया है। स्वलीला अद्वैत में भला कौन बड़ा एवं कौन छोटा है, जो चरणों में झुककर प्रणाम किया जायेगा।

बात बड़ी देख देखिए, प्रेम प्रघल भर पूर।

प्रेम अंग कह्यो न जावहीं, सूरों में सूर सूर॥७७॥

हे साथ जी! प्रेम के सम्बन्ध में यह बहुत बड़ी बात है,

आप इस प्रेममयी लीला का विचार कीजिये। इन सखियों के अन्दर प्रेम का अथाह प्रवाह बह रहा है। इनके हृदय में प्रेम इतना अधिक है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रेम के क्षेत्र में ये एक से बढ़कर एक वीरांगनायें हैं।

रंग नंग नकस न जाए कहे, तो क्यों कहे जाएं थंभ दिवालें द्वार।  
तो समूह की जुबां क्या कहे, जाको वार न पार सुमार॥७८॥

जब रंगमहल में किसी एक चित्र में जड़े हुए किसी नग के रंग की शोभा का वर्णन नहीं होता, तो थम्भों, दीवारों, और दरवाजों की शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है। ऐसी अवस्था में सम्पूर्ण रंगमहल की उस अनन्त शोभा के विषय में यह जिह्वा भला क्या कह सकती है, जिसका कोई ओर-छोर ही नहीं है।

रंग नंग नकस अन-गिनती, कह्यो न जाए सुमार।

ज्यों बट बीज माहें खड़ा, कर देखो आतम विचार॥७९॥

परमधाम में नूरमयी चित्रों में जड़े हुए नगों तथा उनके रंगों की संख्या अनन्त है। उसे शब्दों की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। जिस प्रकार वट के बीज में विशाल वट का वृक्ष निहित होता है, उसी प्रकार मैंने रंगमहल की अनन्त शोभा को बहुत ही सीमित रूप में व्यक्त किया है। हे साथ जी! आप अपनी आत्मदृष्टि से इस सम्बन्ध में विचार करके देखिये।

कई दिवालें कई चौक थम्भ, कई मन्दिर कमाड़ी द्वार।

एक भोम को बरनन ना केहे सकों, एतो नवों भोम विस्तार॥८०॥

रंगमहल में दीवारों, चौकों, थम्भों, मन्दिरों, दरवाजों, तथा उसके पल्लों की संख्या अपार है। इसकी एक

भूमिका की शोभा का वर्णन भी मैं नहीं कर सकती ,  
जबकि नौ भूमिकाओं में इस शोभा का विस्तार है।

दसमी भोमें चांदनी, ऊपर कांगरी जोत।

तेज पुन्ज इन नूर को, जानों आकास सब उद्धोत॥८१॥

दसवीं (भूमिका) आकाशी में चाँदनी (छत) की शोभा आयी है, जिसमें बनी हुई काँगरी की ज्योति जगमगा रही है। यह नूरी भूमिका तेज के पुञ्ज के रूप में दृष्टिगोचर हो रही है। ऐसा लगता है, जैसे इसके प्रकाश ने सारे आकाश में फैलकर उजाला कर दिया है।

हेम जवेर रंग रेसम, केहे केहे कहूं मुख जेता।

नूर तेज जोत झलकत, अकल आवे जुबां में एता॥८२॥

रंगमहल की शोभा का वर्णन करने में मैंने अपने मुख से

सोना, जवाहरात, मनोहर रंगों, रेशम आदि जिन शब्दों का बार-बार प्रयोग किया है, उनके विषय में मेरी बुद्धि और जिह्वा से इतना ही कहा जा सकता है कि उनके रूप में धनी के नूरी स्वरूप के तेज और ज्योति की ही झलकार हो रही है।

**महामत कहे सुनो साथजी, बुध जुबां करे बरनन।**

**ले सको सो लीजियो, ए नेक कह्या तुम कारन॥८३॥**

श्री महामति जी कहती हैं कि हे साथ जी ! मेरी बात सुनिये, धनी के आदेश से ही मेरी बुद्धि और जिह्वा परमधाम का वर्णन कर रही है। ये थोड़ा सा वर्णन मैंने आपकी आत्म-जाग्रति के लिये किया है। यदि आप इसे आत्मसात् कर सकते हैं, तो अवश्य कीजिए।

**प्रकरण ॥३८॥ चौपाई ॥२२६२॥**

## प्रेम को अंग बरनन

इस प्रकरण में प्रेम के वास्तविक स्वरूप के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

प्रेम देखाऊं तुमको साथजी, जित अपना मूल वतन।

प्रेम धनी को अंग है, कहूं पाइए ना या बिन॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! अब मैं आपको प्रेम के यथार्थ स्वरूप की पहचान कराती हूँ। वस्तुतः प्रेम अपने मूल घर परमधाम में ही है। यह धनी का अंग है, अर्थात् श्री राज जी के हृदय में प्रेम का निवास है। धाम धनी के अतिरिक्त प्रेम अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है।

**भावार्थ-** भ्रमवश प्रेम और इश्क में भेद करने की परम्परा चल पड़ी है। यदि प्रेम मात्र योगमाया की वस्तु है

और परमधाम में प्रेम नहीं है, तो इस चौपाई में तो प्रेम को धनी का अंग माना गया है, वैसे ही जैसे सखियाँ हैं। इस सम्पूर्ण प्रकरण में भी यही बात दर्शायी गयी है।

"इश्क प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक" (किरंतन) के इस कथन में इश्क फारसी का शब्द है तथा प्रेम हिन्दी का शब्द है। श्रीमुखवाणी में इस तरह के कई प्रसंग हैं, जिसमें अलग-अलग भाषाओं- हिन्दी, अरबी, तथा फारसी- के शब्द एकसाथ रखे गये हैं। इसी परिक्रमा ग्रन्थ में भी इस प्रकार के कई उदाहरण हैं, जैसे- पशु-जानवर (परिकरमा २९/९, १६) तथा वन-जंगल (परिकरमा २९/२४)।

प्रेम नाम दुनियां मिने, ब्रह्मसृष्टि ल्याई इत।

ए प्रेम इनों जाहिर किया, ना तो प्रेम दुनी में कित॥२॥



प्रेम की पहचान ब्रह्मसृष्टियाँ इस संसार में लेकर आयी हैं। इन्होंने ही प्रेम की लीला को संसार में प्रकट किया है, अन्यथा संसार के लोग प्रेम के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे।

**भावार्थ-** सर्वप्रथम ब्रह्मसृष्टियों ने व्रज लीला में प्रेम को प्रकट किया। जागनी लीला में तारतम वाणी के माध्यम से प्रेम के वास्तविक स्वरूप की पहचान हो सकी है। इसके पहले संसार के मनीषी और भक्तजन प्रेम के बारे में बहुत कुछ कहते थे, किन्तु प्रेम के वास्तविक स्वरूप के विषय में वे कुछ भी नहीं जानते थे।

**ए दुनियां पूजे त्रिगुन को, करके प्रेमेस्वर।**

**सास्त्र अर्थ ऐसा लेत है, कहे कोई नहीं इन ऊपर॥३॥**

संसार के जीव त्रिगुणात्मक स्वरूप वाले देवों को ही

परब्रह्म मानकर पूजते हैं। वे धर्मग्रन्थों का भी ऐसा ही अर्थ करते हैं कि इन देवों से परे और कोई है ही नहीं , अर्थात् ये ही परब्रह्म हैं।

**भावार्थ-** ऋग्वेद के कथन "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" से स्पष्ट है कि परब्रह्म मात्र एक ही है। उसके अनन्त गुणों के आधार पर अनन्त नामों की मान्यता है। जैसे- सबका कर्ता होने से ब्रह्मा , सत्ता रूप सर्वत्र व्यापक होने से विष्णु, कल्याणकारी होने से शिव, सबसे अधिक शक्तिशाली होने से वायु, ज्ञान प्रकाशक होने से अग्नि, अखण्ड स्वरूप वाला होने से आदित्य आदि नामों से जाना जाता है। भ्रान्तिवश लोगों ने इन शब्दों के आधार पर अलग-अलग देवों की कल्पना कर ली है।

सुक व्यास कहें भागवत में, प्रेम ना त्रिगुन पास।

प्रेम बसत ब्रह्मसृष्ट में, जो खेले सरूप बृज रास॥४॥

भागवत में शुकदेव तथा व्यास जी का कथन है कि तीनों गुणों के बन्धन में रहने वाले ब्रह्मा , विष्णु, शिव आदि देवों तथा प्राणियों के पास प्रेम नहीं है। प्रेम तो एकमात्र उन ब्रह्मसृष्टियों में ही वास करता है , जिन्होंने ब्रज-रास की लीला की है।

**भावार्थ-** यह लोक मान्यता है कि वर्तमान भागवत पुराण शुकदेव, व्यास द्वारा कथित है। यदि ऐसा है, तो सूत उवाच और शुकदेव उवाच का कथन किसके द्वारा किया गया है? वस्तुतः लोक मान्यता के कारण ही इस चौपाई में शुकदेव तथा व्यास जी को भागवत के कर्ता के रूप में स्वीकार किया गया है।

प्रेम त्रिगुणातीत है और त्रिगुणातीत अवस्था में ही

इसका अनुभव होता है। त्रिगुण के बन्धन में रहने वाले जीवों को इसका अनुभव नहीं होता है।

तो नवधा से न्यारा कहा, चौदे भवन में नाहें।

सो प्रेम कहां से पाइए, जो रहेत गोपिका माहें॥५॥

इसलिये प्रेम को नवधा भक्ति से प्राप्त नहीं किया जा सकता। चौदह (१४) लोक के ब्रह्माण्ड में भी प्रेम नहीं है। व्रज-रास में लीला करने वाली ब्रह्मसृष्टियों में जो प्रेम था, वह संसार के जीवों को भला कैसे प्राप्त हो सकता है।

नाम खुदाए का कुरान में, लिख्या है आसिक।

पढ़ें इस्क औरों में तो कहें, जो हुए नहीं बेसक॥६॥

कुरआन में खुदा (परब्रह्म) की पहचान आशिक (प्रेमी)

के रूप में दी गयी है। इस संसार के लोग कुरआन को पढ़ते तो हैं, किन्तु उसका वास्तविक आशय न समझने के कारण वे इश्क (प्रेम) को परब्रह्म के अतिरिक्त अन्य प्राणियों में ढूँढा करते हैं। इनसे इस प्रकार की भूल इसलिये होती है, क्योंकि इल्म-ए-लदुन्नी (तारतम ज्ञान) से रहित होने के कारण इनके संशय नहीं मिटे होते।

**भावार्थ-** कुरआन के सूरे यासीन में अल्लाहतआला को आशिक के रूप में वर्णित किया गया है। सांसारिक प्राणियों में इश्क (प्रेम) होने का प्रश्न ही नहीं है।

आसिक नाम अल्लाह का, तो लिख्या इसदाए।

इस्क न पाइए और कहूं, बिना एक खुदाए॥७॥

कुरआन में पहले से ही यह लिखा हुआ है कि परब्रह्म

(अल्लाहतआला) को आशिक कहते हैं। इनके अतिरिक्त और किसी के भी पास इश्क (प्रेम) नहीं है।

**भावार्थ-** यहाँ जिस प्रेम (इश्क) की बात की जा रही है, वह न तो योगमाया में है और न कालमाया के बड़े-बड़े योगियों, तपस्वियों, भक्तों, सतियों, या सूफी फकीरों के पास है।

**पढ़े तब पावें इस्क को, जब खुलें माएने मगज।**

**इस्क बिना करें बंदगी, कहें हम टालत हैं करज॥८॥**

कुरआन के आलिमों (ज्ञानियों) को जब इल्म-ए-लदुन्नी (तारतम ज्ञान) से कुरआन के गुह्य भेदों (हकीकत-मारिफत) का बोध हो जायेगा, तभी वे इश्क की वास्तविक पहचान कर पायेंगे। श्री राज जी (परब्रह्म) के इश्क की पहचान न होने के कारण ही प्रेम से रहित वे

लोग मात्र शरियत की बन्दगी करते हैं और कहते हैं कि हम तो मात्र अपना ऋण उतार रहे हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण का आशय यह है कि अल्लाहतआला ने हमें इस संसार में भेजा है और हमारे ऊपर उसके असंख्य एहसान हैं। उसका बोझ कम करने के लिये हम कलमा, रोजा, नमाज, हज, जकात आदि द्वारा उसकी बन्दगी करते हैं और उसे धन्यवाद देते हैं। परमधाम के प्रेम से रहित होने के कारण इनकी बन्दगी अल्लाह तक नहीं पहुँच पाती।

**मगज न पाया माएना, दुनी पढ़े कतेब वेद।**

**प्रेम दुनी में तो कहें, जो पावत नहीं भेद॥९॥**

यद्यपि इस संसार के लोग वेद और कतेब (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, तथा तौरैत, इंजील,

जम्बूर, कुरआन) को पढ़ते तो अवश्य हैं, किन्तु उसके गुह्य रहस्यों को नहीं जानते। वास्तविक सत्य का बोध न होने के कारण ही वे प्रेम (इश्क) को इसी संसार में बताते हैं।

**प्रेम ब्रह्म दोऊ एक हैं, सो दोऊ दुनी में नाहें।**

**पढ़े दोऊ बतावें दुनी में, जो समझत ना सास्त्रों माहें॥१०॥**

प्रेम और अक्षरातीत परब्रह्म का एक ही स्वरूप है। ये दोनों ही इस मायावी संसार में नहीं हैं, बल्कि सबसे परे उस अनादि परमधाम में हैं। ज्ञानीजन शास्त्रों (धर्मग्रन्थों) के रहस्यों को नहीं समझ पाते, इसलिये प्रेम और परब्रह्म को इस नश्वर जगत में मानते हैं।

**भावार्थ—** "त्रिपादूध्रव उदैत्पुरुषः" (यजुर्वेद ३१/४),  
 "आदित्य वर्णं तमसस्परस्तात" (यजुर्वेद पुरुष म. १८)



सूक्त), "अक्षरात् परतः परः" (मुण्डक उपनिषद), "दिव्ये ब्रह्मपुरे हि एष व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठितम् " (मुण्डक उपनिषद) आदि कथनों से सिद्ध होता है कि परब्रह्म इस मायावी जगत से सर्वथा परे है, किन्तु ज्ञानीजन इस रहस्य को समझ नहीं पाते और इस सृष्टि के कण-कण में परब्रह्म का स्वरूप मानते हैं।

यही स्थिति कतेब पक्ष वालों की भी है। सम्पूर्ण इस्लामिक जगत रसूल मुहम्मद साहिब (सल्ल.) के मेयराज (कुरआन पारा १५ सिपारा १७ बनी ईसराईल) को स्वीकार करता है। वह नासूत, मलकूत (वैकुण्ठ), और जबरूत (अक्षरधाम) को पार करके लाहूत (परमधाम) में जाने की बात करता है, फिर भी इस नश्वर जगत के कण-कण में अल्लाहतआला का स्वरूप मानता है।

तो न्यारा कहा सब्द थें, प्रेम ना मिनें त्रिगुन।

कई कोट ब्रह्माडों न पाइए, प्रेम धाम धनी बिन॥११॥

इसलिये प्रेम को शब्दातीत कहा गया है। त्रिगुणात्मक देवों या अन्य प्राणियों में प्रेम का वास नहीं है। धाम धनी के अतिरिक्त करोड़ों ब्रह्माण्डों में भी प्रेम का अस्तित्व नहीं है।

प्रेम सब्दातीत तो कहा, जो हुआ ब्रह्म के घर।

सो तो निराकार के पार के पार, सो इत दुनी पावे क्यों कर॥१२॥

एकमात्र परमधाम में ही प्रेम का निवास है, इसलिये प्रेम को शब्दातीत कहा गया है। निराकार के परे बेहद मण्डल (योगमाया का ब्रह्माण्ड) है और उसके भी परे स्वलीला अद्वैत परमधाम में प्रेम की लीला है। इस स्थिति में भला संसारी जीव प्रेम का रसपान कैसे कर सकते हैं।

प्रेम बताऊं ब्रह्मसृष्ट का, पेहेले देखों धाम बरनन।

पीछे प्रेम बताऊं ब्रह्मसृष्ट का, जो धाम धनी के तन॥१३॥

हे साथ जी! ब्रह्मसृष्टियों के प्रेम का वर्णन करने से पहले मैं निजधाम का वर्णन करती हूँ। इसके पश्चात् मैं उन ब्रह्मात्माओं की प्रेममयी लीला का वर्णन करूँगी, जो साक्षात् धनी के तन हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जिन सिर नूरजमाल।

कई कोट ब्रह्मांडों न पाइए, इनका औरै हाल॥१४॥

जिन ब्रह्मांगनाओं के सिर पर अक्षरातीत पल-पल विराजमान रहते हैं, अर्थात् जो धाम धनी की मेहर की छत्रछाया में पल-पल रहती हैं, उनमें प्रेम क्यों नहीं होगा। करोड़ों ब्रह्माण्डों में भी प्रेम की लीला नहीं होती, जबकि इन ब्रह्मसृष्टियों की संसार से पूर्णतया अलग

स्थिति होती है। ये दिन-रात श्री राज जी के प्रेम में ही डूबी रहती हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, धनी अछरातीत जिन सिर।  
ब्रह्मसृष्ट बिना न पाइए, देखो कोट ब्रह्मांडों फेर फेर॥१५॥  
जिनके सिर पर अक्षरातीत का वरद हस्त है, भला उन  
ब्रह्मात्माओं के दिल में प्रेम क्यों नहीं होगा। आप करोड़ों  
ब्रह्माण्डों में बारम्बार खोज लीजिए, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों के  
अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी प्रेम नहीं मिलेगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको धनी राखत रूख।  
धाम मंदिर मोहोलन में, धनी देत सेज्या पर सुख॥१६॥  
जिन ब्रह्मसृष्टियों के ऊपर श्री राज जी की पल-पल  
मेहर भरी दृष्टि बनी रहती है, उनमें प्रेम क्यों नहीं होगा।

परमधाम के मन्दिरों एवं महलों में धाम धनी इन्हें शय्या पर अलौकिक प्रेम का सुख देते हैं।

**भावार्थ-** परमधाम का कण-कण ही अक्षरातीत की हकीकत का स्वरूप है और प्रेम से परिपूर्ण है। आशिक के रूप में श्री राज जी माशूक स्वरूप परमधाम के लीला रूप सभी पदार्थों को रिझाते हैं। इसके प्रत्युत्तर में माशूक भी स्वयं को आशिक मानकर रिझाने लगते हैं। यहीं से प्रेममयी लीला का प्रकटन होता है।

किन्तु परमधाम की इस प्रेममयी लीला को सांसारिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिए, क्योंकि स्वलीला अद्वैत परमधाम में श्री राज जी ही स्वयं सभी रूपों में लीला कर रहे हैं और जिनके साथ श्यामा जी, सखियाँ, खूब खुशालियाँ, पशु-पक्षी, तथा समस्त २५ पक्ष लीला करते हैं, वे सभी उनके हृदय के ही स्वरूप हैं। इस

प्रकार, मारिफत का इश्क ही हकीकत के रूप में लीला रूप में दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार शय्या सुख को लौकिक (वैकारिक) दृष्टि से कदापि नहीं मानना चाहिए। इसमें सागर (श्री राज जी) अपनी लहरों (आत्माओं) को देखता है और लहरें सागर को। दीदार की यह लीला अभेदता के साथ पूर्ण होती है, अर्थात् एक ऐसी स्थिति आती है जिसमें लहरें अपने अस्तित्व को पूर्ण रूप से भुला चुकी होती हैं। जिस प्रकार परमधाम के एक ही फल में सभी फलों का स्वाद (रस) समाया होता है, उसी प्रकार परमधाम की किसी भी लीला में सभी लीलाओं का रस विद्यमान होता है और यह इच्छा मात्र से अनुभूत होता है, लीला की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि लीला करने वाले श्री राज जी स्वयं आत्माओं के धाम-हृदय में विराजमान

होते हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, सोहागनियां बड़ भाग।

क्यों कहूं इन रूहन की, जाए देत धनी सोहाग॥१७॥

ये सोहागनियाँ बड़ी भाग्यशालिनी हैं। इनके अन्दर धनी के प्रति प्रेम क्यों नहीं होगा। इन ब्रह्मसृष्टियों के सौभाग्य का मैं क्या वर्णन करूँ, जब स्वयं श्री राज जी ही इनके सुहाग (प्रियतम) हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाके घर एह धाम।

स्याम स्यामाजी साथ में, जाको इत विश्राम॥१८॥

जिन ब्रह्मसृष्टियों का घर ही परमधाम है और जो सर्वदा श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के साथ आनन्दमयी लीलाओं में डूबी रहती हैं, उनके अन्दर धनी का प्रेम

क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो इनहीं में रहे हिल मिल।

सकल अंग सुख देत हैं, धाम धनी के दिल॥१९॥

सखियाँ अपने प्राणेश्वर से हिल-मिलकर (एकरूप होकर) रहती हैं। ये अपने प्रियतम की हृदय-स्वरूपा हैं। धनी का आनन्द इनके अंग-अंग में विद्यमान रहता है। ऐसी अवस्था में धनी के प्रति इनके हृदय में प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो रहे इन मोहोल मंदिर।

दिल दे विहार करत हैं, ले दिल धनी अंदर॥२०॥

रंगमहल के मन्दिरों में रहने वाली ये सखियाँ अपना हृदय धनी को सौंप देती हैं तथा धनी को अपने हृदय-



मन्दिर में बसा लेती हैं। इस अवस्था में जब वे सम्पूर्ण परमधाम में विहार (विचरण) करती हैं, तो उनके अन्दर धनी के लिये प्रेम क्यों नहीं होगा।

**क्यों न होए प्रेम इनको, जाके ए वस्तर भूखन।**

**साजत हैं सबों अंगों, धाम धनी कारन॥२१॥**

धाम धनी को रिझाने के लिये सखियाँ अपने सभी अंगों में तरह-तरह के नूरमयी वस्त्रों तथा आभूषणों का श्रृंगार करती हैं। ऐसी अँगनाओं के अन्दर भला अपने प्रियतम के लिये प्रेम क्यों नहीं होगा।

**क्यों न होए प्रेम इनको, जाके ए सोभा सिनगार।**

**सबों अंगों सुख धनी को, निस दिन लेत समार॥२२॥**

जिन ब्रह्मसृष्टियों के लिये प्रेम ही शोभा है और प्रेम ही

श्रृंगार है, उनमें धनी के प्रति प्रेम क्यों नहीं होगा। ये अपने सभी अंगों से दिन-रात धनी के सुखों का रसपान करती हैं।

**भावार्थ-** परमधाम में एक-एक इन्द्रिय में शेष सभी इन्द्रियों के गुण विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार एक इन्द्रिय को प्राप्त होने वाला सुख सभी इन्द्रियों, अन्तःकरण, तथा रोम-रोम को भी अनुभव में आ जाता है। इसे ही सभी अंगों से सुख लेना कहते हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको इन धनी सों विहार।

निस दिन केलि करत हैं, सब अंगों सुखकार॥२३॥

जो ब्रह्मात्मायें अपने प्राणप्रियतम के साथ पल-पल विहार करती (साथ रहती) हैं तथा दिन-रात अपने अंग-अंग में सुख प्रकटाने वाली प्रेममयी क्रीड़ायें करती

हैं, उनके अन्दर प्रेम क्यों नहीं प्रकट होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो निरखत धाम धनी।

रात दिन सुख लेत हैं, सब अंगों आप अपनी॥२४॥

जो अँगनायें सर्वस्व समर्पण की भावना से अपने प्रियतम की ओर निहारा (देखा) करती हैं, उनके अन्दर श्री राज जी के प्रति प्रेम क्यों नहीं होगा (अवश्य होगा)। ये अपने अंग-अंग में दिन-रात धनी के प्रेम के अनन्त सुखों का अनुभव करती हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो धनी की सेंना लेत।

नैनों नैन मिलाए के, सामी इसारत देत॥२५॥

जो सखियाँ धनी के नेत्रों से अपने नेत्र मिलाकर प्रेम के संकेत करती हैं तथा धाम धनी के प्रेम-भरे संकेतों को

ग्रहण करती हैं, उनके अन्दर धनी के प्रति अथाह प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो धाम धनी अरधंग।

अह निस अनुभव होत है, इन पिउ की सेज सुरंग॥२६॥

जो धाम धनी की अर्धांगिनी हैं और अपने प्राणेश्वर की मनोहर सेज्या (शय्या) के सुख का दिन-रात अनुभव करती हैं, उनमें प्रेम क्यों नहीं होगा।

**भावार्थ-** सेज्या-सुख का तात्पर्य केवल पाँचवी भूमिका से ही नहीं, बल्कि उनका दिल ही धनी की सेज्या है, जिस पर प्रियतम विराजमान रहते हैं और दिन-रात प्रेम के आनन्द की वर्षा करते हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो इन मेले में बैठत।

अरस-परस रंग अहनिस, नए नए खेल करत॥२७॥

मूल मिलावा में बैठी हुई इन सखियों के अन्दर भला प्रेम क्यों नहीं होगा, जो दिन-रात धनी के प्रेम-रस में परस्पर डूबी रहती हैं और उन्हें रिझाने के लिये नयी-नयी क्रीड़ायेँ करती हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको ए धनी सरूप।

रात दिन सुख लेत हैं, जाके सब अंग अनूप॥२८॥

जिनके प्रियतम अनन्त प्रेम के स्वरूप वे श्री राज जी हैं, जिनके अंग-अंग की सुन्दरता अनुपम है। उनसे दिन-रात आनन्द रस का पान करने वाली सखियों को भला प्रेम क्यों नहीं होगा।

**भावार्थ-** सौन्दर्य और आनन्द प्रेम के मूल हैं, इसलिये

श्री राज जी से सखियों का प्रेम होना स्वाभाविक है।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको निस दिन एही रमन।

सब अंगों आनंद होत है, मिलावे धनी इन॥२९॥

धनी से मिलन में सखियों के अंग-अंग में आनन्द प्रकट होता है। यह लीला दिन-रात निरन्तर चलती रहती है। ऐसी स्थिति में सखियों के अन्दर भला प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो इन धनी की गलतान।

निस दिन धनी खेलावत, विध विध की देत मान॥३०॥

अपनी अँगनाओं को धाम धनी तरह-तरह से लाड-प्यार करते हैं, और दिन-रात लीला में डुबोये रखते हैं। सखियाँ भी धनी के स्वरूप में जब गलितगात (तल्लीन)

रहती हैं, तो उनमें अखण्ड प्रेम का होना स्वाभाविक है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में "मान" शब्द का तात्पर्य लौकिक सम्मान या प्रतिष्ठा से नहीं है, बल्कि एक प्रेमी (आशिक) का अपने प्रेमास्पद के प्रति अति मधुर और प्यार भरा व्यवहार करना ही "मान" है।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो लेत धनी को सुख।

आठों जाम सेवा मिने, सदा खड़े सनमुख॥३१॥

जो सखियाँ आठों प्रहर सदा अपने प्रियतम की सेवा में उपस्थित रहती हैं और अपने धनी को रिझाने का सुख लेती हैं, उनमें भला प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको इन साथ में रस रंग।

निस दिन विहार करत हैं, धाम धनी के संग॥३२॥

जो ब्रह्मांगनार्यें आपस में तरह-तरह की आनन्दमयी क्रीड़ायेँ करती हैं, अपने प्राणप्रियतम के साथ दिन-रात लीला विहार करती हैं और आनन्द का रसपान करती हैं, उनके अन्दर धनी का अखण्ड प्रेम क्यों नहीं होगा।

**क्यों न होए प्रेम इनको, जो रहें इन साथ के माहें।**

**निस दिन आराम पिउ का, न्यारे निमख न होवें क्याहें॥३३॥**

अक्षरातीत ब्रह्मांगनाओं के साथ पल-पल रहते हैं और किसी भी प्रकार से पल-भर के लिये भी अलग नहीं होते। सखियाँ दिन-रात अपने प्रियतम के आनन्द में डूबी रहती हैं। ऐसी स्थिति में उनमें धनी के प्रति प्रेम क्यों नहीं होगा।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "इन साथ के माहें" का तात्पर्य श्री राज जी का ब्रह्मसृष्टियों के



मध्य रहने से है।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो धनी को लेवें माहें नैन।

न्यारे निमख न करें, निस-दिन एही सुख चैन॥३४॥

जो ब्रह्मसृष्टियाँ अपने नेत्रों में प्रियतम को पल-पल बसाये रखती हैं और एक क्षण के लिये भी अलग नहीं करती, उनमें प्रेम का रस क्यों नहीं होगा। इन्हें धनी को अपने नेत्रों (हृदय) में बसाये रखने में ही आनन्द मिलता है।

**भावार्थ-** नेत्रों में बसाने का तात्पर्य है - हृदय में बसाना। जो स्वरूप हृदय के सिंहासन पर बैठ जाता है, एकमात्र वही नजरों में बना रहता है, अर्थात् केवल उसी को निरन्तर देखने की इच्छा होती है। इसे ही अपने नेत्रों में बसाना कहते हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो निरखें धनी के अंग।

पलक ना पीछी फेरत, आठों-जाम उछरंग॥३५॥

जो अँगनायें श्री राज जी के अंग-अंग की शोभा को निहारती रहती हैं, एक पल के लिये भी उससे दृष्टि नहीं हटातीं, और आठों प्रहर उमंग में भरी रहती हैं, उनके हृदय में धनी के लिये अथाह प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको याही साथ में खेल।

मन्दिर या मोहोलन में, पिउ सो रमन रंग रेल॥३६॥

जो सखियाँ आपस में तरह-तरह के प्रेममयी खेल किया करती हैं तथा प्रियतम के साथ मन्दिरों एवं महलों में आनन्दमयी लीला-विहार (विचरण) करती हैं, भला उनमें प्रेम का सागर क्यों नहीं लहरायेगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको मिलाप इन घर।

विहार करत अंग उछरंग, धनी सों बिध बिध कर॥३७॥

जो ब्रह्मात्मायें स्वलीला अद्वैत परमधाम में अपने प्रियतम के साथ अंग-अंग में उमंग भरकर तरह-तरह से लीला-विहार करती हैं, उनमें अखण्ड प्रेम (इश्क) क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो बैठत पिउ के पास।

निस-दिन रामत रमूज में, होत न वृथा एक स्वांस॥३८॥

जो सखियाँ अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के पास बैठकर दिन-रात प्रेम-भरी बातें करती हैं, अनेक प्रकार की प्रेममयी लीलाएँ करती हैं, और एक श्वास (क्षण) भी अन्य किसी कार्य में व्यर्थ नहीं करतीं, उनमें प्रेम क्यों नहीं होगा।

**भावार्थ-** परमधाम में नूरमयी तन होने के कारण श्वास लेने या छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती, मात्र लीलारूप में ही ऐसा कहा गया है। इस चौपाई में एक श्वास का तात्पर्य एक क्षण से है।

क्यों न होए प्रेम इनको, हाँस विनोद में दिन जाए।

सेज्या संग इन धनी के, रस रंग रैन विहाए॥३९॥

इन ब्रह्मात्माओं का दिन तो अपने प्रियतम के साथ तरह-तरह के हास्य-विनोद में बीत जाता है और रात्रि सेज्या पर होने वाली अलौकिक एवं त्रिगुणातीत आनन्दमयी क्रीड़ाओं में बीत जाती है। ऐसी स्थिति में उनमें भला धनी के प्रति असीम प्रेम क्यों नहीं होगा।

**भावार्थ-** सेज्या (शय्या) सुख का तात्पर्य हकीकत के इश्क (सत्य प्रेम) का मारिफत के इश्क (परमसत्यमयी

प्रेम) में विलीन हो जाना है। इसमें सांसारिक शरीरजन्य विकारों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वस्तुतः यह ब्रह्मलीला है, जिसके आनन्द-सागर की एक बूँद को भी समझने में संसार की बुद्धि असमर्थ है।

**क्यों न होए प्रेम इनको, जो धाम धनी के तन।**

**इन मोहोलों में इन पिउ संग, हींचत हिंडोलन॥४०॥**

ब्रह्मसृष्टियाँ धाम धनी के साक्षात् तन हैं। रंगमहल की सातवीं-आठवीं भूमिका में अपने प्रियतम के साथ झूला झूलने वाली इन सखियों में अखण्ड प्रेम क्यों नहीं होगा।

**क्यों न होए प्रेम इनको, जो झांकत झरोखे इन।**

**झूलत हैं इन पिउ संग, बीच इन हिंडोलन॥४१॥**

जो सखियाँ रंगमहल के झरोखों से वनों की शोभा को

देखा करती हैं तथा प्रियतम के साथ हिण्डोलों में झूला करती हैं, स्वाभाविक रूप से उनमें अपने प्राणप्रियतम के प्रति अनन्त प्रेम भरा रहेगा।

**क्यों न होए प्रेम इनको, जो करें इन हिंडोलों विहार।**

**झूलत बोलें झनझनें, यों मन्दिर होत झनकार॥४२॥**

जब ब्रह्मात्मायें हिण्डोलों पर झूलने की लीला का आनन्द लेती हैं, तो उस समय हिण्डोलों में जड़े हुए झुनझुने बहुत ही मधुर ध्वनि करते हैं, जिनकी झनकार रंगमहल के सभी मन्दिरों में सुनायी पड़ती है। ऐसी लीला में तल्लीन ब्रह्मसृष्टियों में प्रेम क्यों नहीं होगा।

**क्यों न होए प्रेम इनको, ऊपर झूलत हैं यों कर।**

**अरस-परस इन धनी सों, दोऊ बैठत बांध नजर॥४३॥**

सखियाँ परमधाम के हिण्डोलों में धनी से एकरस होकर झूला झूलती हैं। वे अपने प्रियतम के सम्मुख (आमने-सामने) बैठकर दृष्टि से दृष्टि मिलाकर झूले झूलती हैं। ऐसी मधुर लीला का रसपान करने वाली सखियों में प्रेम क्यों नहीं होगा।

**क्यों न होए प्रेम इनको, जो लें इन हिंडोलों सुख।**

**झलकत भूखन झूलते, बैठत हैं सनमुख॥४४॥**

जब सखियाँ हिण्डोलों में श्री राज जी के सम्मुख बैठकर झूलने का सुख लेती हैं, तो उस समय उनके नूरी आभूषण झलकार करते हैं। इन सखियों में अगाध प्रेम (इश्क) क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो लें झूलतें रंग रस।

उछरंग अंग न मावहीं, अंक भर अरस-परस॥४५॥

ब्रह्मात्मायें धनी से लिपटकर एकरस अवस्था में बहुत प्रेम-भरे भावों में झूले झूलती हैं। उस समय उनके हृदय में इतना आनन्द होता है कि उसकी कोई सीमा ही नहीं होती। इन सौभाग्यशालिनी सखियों में भला प्रेम क्यों नहीं होगा।

**भावार्थ-** इस संसार की गणना के अनुसार सातवीं भूमिका में १२००० तथा आठवीं भूमिका में १८००० हिण्डोले आये हैं। प्रत्येक हिण्डोले पर श्री राज जी सखियों के साथ विराजमान होते हैं। प्रेम का अनन्त सागर जिनके साथ झूला झूलता है, उनमें भी प्रेम क्यों नहीं लहरायेगा।



क्यों न होए प्रेम इनको, जो झूलते होए मगन।

फेर फेर प्रेम पूरन, उमंग अंग सबन॥४६॥

भला परमधाम की इन सखियों में प्रेम क्यों नहीं होगा , जो झूला झूलते समय धनी की शोभा में मग्न हो जाती हैं। इस लीला में सबके हृदय में पूर्ण प्रेम का प्रवाह बहता है और अंग-अंग में उमंग भरी होती है।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो इन हिंडोलों झूलत।

इन समें सोभा मन्दिरों, कड़े हिंडोले खटकत॥४७॥

जब सखियाँ हिण्डोलों में झूलती हैं , तो उस समय हिण्डोलों में लगे हुए कड़ों के खटखटाने से बहुत मधुर ध्वनि निकलती है। इस ध्वनि के मन्दिरों में फैल जाने से उनकी शोभा विलक्षण होती है। माधुर्यता की पराकाष्ठा (सर्वोच्च स्तर) वाली ऐसी लीला में डूबी सखियों में भला

प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो पौढ़त इन पिउ संग।

अरस-परस दोऊ हींचत, अंग लगाए के अंग॥४८॥

उन ब्रह्मात्माओं में भला प्रेम क्यों नहीं होगा , जो हिण्डोलों पर प्रियतम के साथ लेटे-लेटे झूला झूलती हैं। दोनों (श्री राज जी एवं एक सखी) माधुर्य प्रेम में आकण्ठ डूबकर परस्पर आलिंगनबद्ध अवस्था में झूला झूलते हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो लेत इतकी खुसबोए।

सिनगार कर सेज्या पर, केलि करें संग दोए॥४९॥

उन अँगनाओं में प्रेम क्यों नहीं होगा , जो अपना सम्पूर्ण श्रृंगार करके सेज्या पर प्रियतम के साथ प्रेममयी क्रीड़ा करती हैं और एकत्व (वहदत) की सुगन्धि में स्वयं को

डुबो देती हैं।

**भावार्थ-** प्रेम के मधुर मिलन का परिणाम एकत्व की अनुभूति है, जो परमधाम के कण-कण में क्रीड़ा कर रहा है। इस स्थिति में एक (आशिक) का दिल दूसरे (माशूक) में डूबा होता है। आत्मा को स्वयं के अस्तित्व का जरा भी बोध नहीं होता। इस लीला को लौकिक वैकारिक दृष्टि से कभी भी नहीं देखना चाहिए।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो इन मोहोलों में नेहेचल।

दोऊ हिंडोलों हींचत, करें दिल चाह्या मिल॥५०॥

परमधाम के महलों में रहने वाली इन सखियों में प्रेम क्यों नहीं होगा, जो अपने प्राणवल्लभ के साथ हिण्डोलों पर झूला झूलती हैं और अपने हृदय की इच्छानुसार पवित्र प्रेम में आलिंगनबद्ध होकर मिला करती हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो लेवें इन हिंडोलों सुख।

अखंड इन मोहोलन में, लेवें सदा सनमुख॥५१॥

जो ब्रह्मांगनायें परमधाम के इन महलों में धनी के सम्मुख हिण्डोलों में बैठकर अखण्ड सुख का रसपान करती हैं, उनमें अपने प्रियतम के प्रति अगाध प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो इन हिंडोलों पौढ़त।

मन चाहे इन मन्दिरों, अखण्ड केलि करत॥५२॥

जो सखियाँ हिण्डोलों में धाम धनी के साथ लेटे-लेटे झूला करती हैं और मन्दिरों में अपनी इच्छानुसार अखण्ड प्रेममयी क्रीड़ायेँ करती हैं, उनमें प्रेम का सागर क्यों नहीं उमड़ेगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो खेलत इन मोहोलन।

हिंडोलों या पलंगे, सुख लेवें चाहे मन॥५३॥

जो ब्रह्मात्मायें इन महलों में तरह – तरह की प्रेममयी क्रीड़ायें करती हैं और हिण्डोलों अथवा पलंगों पर इच्छानुसार सुख लेती हैं, भला उनके अन्दर प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो इन मोहोलों या पलंग।

चित्त चाहे सुख अनुभवी, इन धनी के संग॥५४॥

जो सखियाँ महलों में या पलंगों पर अपने प्राणेश्वर के साथ चित्त की इच्छानुसार सुख लेती हैं, उनमें धनी के लिये अनन्त प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको देखें धनी नजर।

प्रेम प्याले पीवत, धनी देत भर भर॥५५॥

जिन सखियों को स्वयं अक्षरातीत प्रेम-भरी दृष्टि से देखते हैं और अपने हृदय में उमड़ने वाले प्रेम के सागर से प्रेम के प्याले भर-भरकर अपनी अँगनाओं को पिलाते हैं, उनमें यदि प्रेम नहीं होगा तो और किसमें होगा अर्थात् मात्र ब्रह्मसृष्टियों में ही प्रेम का रस क्रीड़ा करता है।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो सेज समारें हेत कर।

चारों जाम इन धनी को, राखत हैं उर पर॥५६॥

जो सखियाँ बहुत प्यार से सेज्या को सजाती हैं (सुसज्जित करती हैं) और सम्पूर्ण रात्रि धनी को अपने हृदय के सिंहासन पर विराजमान किये रहती हैं, उनमें धनी का अखण्ड प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो फूलन सेज बिछाए।

चारों पोहोर रंग रहेस में, केलै करते जाए॥५७॥

जो अँगनायें अपने प्रियतम के लिये फूलों की अति कोमल सेज्या (शय्या) तैयार करती हैं और सम्पूर्ण रात्रि प्रेममयी लीला के आनन्द में बिताती हैं, उनके हृदय में धनी के प्रति अथाह प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको धनी निरखत नैन भर।

आठों जाम अंग उनके, उलसत उमंग कर॥५८॥

जिन ब्रह्मसृष्टियों को धाम धनी अति प्रेम-भरी दृष्टि से नेत्र (दिल) भरकर देखते हैं और जिनके अंग धनी से प्रेम करने के लिये आठों प्रहर उमंग से आनन्दित रहते हैं, भला उनके अन्दर प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, रंग रची सेज समार।

चारों जाम पिउ सब अंगों, देत सुख अपार॥५९॥

परमधाम की उन ब्रह्मात्माओं में भला प्रेम क्यों नहीं होगा, जिनके लिये अति प्रेम-भरी सेज्या तैयार की गयी होती है और जिस पर श्री राज जी सम्पूर्ण रात्रि सभी अंगों का अनन्त प्रेममयी सुख देते हैं।

**भावार्थ-** सभी अंगों के सुख का तात्पर्य है - नेत्रों से अति प्रेम-भरी दृष्टि से देखना, मुख से अमृत से भी अधिक मीठा बोलना, त्वचा से मधुर एवं कोमल स्पर्श, तथा कानों से प्रेमास्पद की बातों को अति प्रेम -भरी सावधानी से सुनना। यह सारी लीला त्रिगुणातीत, निर्विकार, और सांसारिक भावनाओं से परे है।

परमधाम की इस दिव्य ब्रह्मलीला को स्वप्न में भी काम विकार की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए, क्योंकि



काम क्रीड़ा केवल मायावी जगत में ही होती है, योगमाया या परमधाम में नहीं। "कामः एषः क्रोधः एष रजोगुण समुद्भवः" (गीता) के इस कथन के अनुसार काम और क्रोध की उत्पत्ति रजोगुण से होती है। इस प्रकार, त्रिगुणातीत परमधाम में काम-क्रोध का अस्तित्व ही नहीं है। वहाँ का स्पर्श, आलिंगन आदि क्रियायें दिव्य हैं और प्रेम पवित्र है। संसार में माँ-बेटे का पवित्र स्पर्श परमधाम के पवित्र प्रेम रूपी सागर की एक बूँद भी नहीं है।

**क्यों न होए प्रेम इनको, जो पिउसों पीवें प्रेम रस।**

**कर कर साज सबों अंगों, पिउसों अरस-परस॥६०॥**

जो सखियाँ अपने अंग-अंग का श्रृंगार सजकर प्रियतम से एकरस (पवित्र भावों में आलिंगनबद्ध) हो जाती हैं और दिव्य प्रेम-रस का पान करती हैं, उनमें अखण्ड

प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो पिउ के सुने बंके बैन।

याके आठों जाम हिरदे मिने, चुभ रहेत पिउ के चैन॥६१॥

जो सखियाँ श्री राज जी के अति प्रेम-भरे तिरछे वचनों को सुनती हैं और जिनके हृदय में धनी के ये आनन्ददायी मधुर वचन आठों प्रहर बसे रहते हैं, उनके हृदय में दिव्य प्रेम की धारा क्यों नहीं प्रवाहित होगी।

**भावार्थ-** तिरछे वचनों का तात्पर्य उन अति माधुर्यता-भरे वचनों से है, जिन्हें कभी भी भूला न जा सके।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाके निरखें धनी भूखन।

याही नजर अँगना अंग में, चुभ रहेत निस-दिन॥६२॥

उन ब्रह्मसृष्टियों में भला धनी के लिये अगाध प्रेम क्यों नहीं होगा , जिनके आभूषणों को स्वयं धाम धनी ही निहारा (देखा) करते हैं और धनी की यह प्रेम-भरी मनोहर दृष्टि सखियों के हृदय को दिन-रात उल्लासित (आनन्दित) करती रहती है।

**क्यों न होए प्रेम इनको, जाको पिउ एती दिलासा देत।  
सामियों तो अंग इस्क के, कोट गुना कर लेत॥६३॥**

परमधाम की उन अँगनाओं में प्रेम क्यों नहीं होगा , जिनकी प्रेम-सागर में गोता लगाने की इच्छा को धनी संकेत से आश्वासन देकर सन्तुष्ट करते हैं और उनके ऐसा करते ही सखियों के प्रेममयी अंगों में करोड़ों (अनन्त) गुना इश्क (प्रेम) का प्रवाह होने लगता है।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाके निरखें धनी वस्तर।

सो रूहें अपना अंग हैं, लेत खैच नजर॥६४॥

जिन सखियों के नूरी वस्त्रों की शोभा को स्वयं श्री राज जी देखा करते हैं और सखियाँ धनी की अँगरूपा होने के कारण प्रियतम की प्रेम-भरी दृष्टि को हमेशा के लिये अपने हृदय में बसा लेती हैं, उन ब्रह्मात्माओं के दिल में प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, धनी बरसत निज नजर।

ताके अंग रोम रोम में, प्रेम आवत भर भर॥६५॥

उन ब्रह्मांगनाओं के अन्दर भला प्रेम क्यों नहीं होगा, जिनके ऊपर धनी अपनी नूरी नजर से प्रेम की वर्षा करते हैं और सखियों के अंग-अंग के रोम-रोम में प्रेम ही प्रेम भर जाता है।

क्यों न होए प्रेम इनको, धनीसों नैनों नैन मिलाए।

ताको इन सरूप बिना, पल पट दई न जाए॥६६॥

धाम धनी के प्रेम-भरे नेत्रों से नेत्र मिलाने वाली सखियाँ, उनके बिना एक पल भी अलग नहीं रह सकतीं। ऐसी उन सखियों के अन्दर भला धनी के प्रेम का सागर क्यों नहीं लहरायेगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाके धनी निरखें नैन।

आठों-जाम याके अंग में, चुभ रहेत बंके बैन॥६७॥

जिन सखियों के मनोहर नेत्रों को स्वयं श्री राज जी अति प्रेम-भरी दृष्टि से देखा करते हैं और जिनके हृदय में धनी के अति प्यार-भरे मीठे वचन आठों प्रहर बसे (चुभे) रहते हैं, उन ब्रह्मात्माओं के अन्दर भला धनी का प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो पिउ की निरखें बंकी पाग।  
निस-दिन नजर न छूटहीं, पिउसों करें रंग राग॥६८॥  
जो अँगनायें धनी की तिरछी पाग को अति प्यार से  
निहारा करती हैं और दिन-रात अपनी दृष्टि (दिल) में  
बसाये रखकर प्रियतम से आनन्दमयी क्रीड़ायेँ करती हैं,  
उनके हृदय में भला असीम प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो लेत पिया को दिल।  
ए निस-दिन पिएं सुधा रस, पिउसों प्याले मिल॥६९॥  
जो ब्रह्मात्मायें अपने प्रियतम का हृदय जीत लेती हैं  
और धनी से प्रेम के प्याले लेकर दिन-रात उसके  
अमृत-रस का पान करती हैं, उनके अन्दर अखण्ड प्रेम  
क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाके ए मोहोल ए सेज।

लें सोहाग सबों अंगों, जिन पर धनी को हेज॥७०॥

जिन ब्रह्मांगनाओं के लिये रंगमहल के मन्दिरों में नूरी सेज्या सजी होती है, जिन पर धनी का अखण्ड प्रेम बरसता है और जो अपने अंग-अंग से प्रियतम का सुख लेती हैं, उनमें धनी का प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो धनी को रिझावत।

आठों पोहोर सबों अंगों, अरस-परस रंग रमत॥७१॥

अपने प्राणवल्लभ को रिझाने वाली इन सखियों में भला प्रेम क्यों नहीं होगा, जो आठों प्रहर धाम धनी से एकरूप होकर अंग-अंग से तरह-तरह की आनन्दमयी क्रीड़ाये करती हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको धनी सों अन्तर नाहें।

अरस-परस एक भए, झीलें प्रेम रस माहें॥७२॥

जिन सखियों का धनी से जरा भी भेद नहीं है, और जो प्रियतम के प्रेम-रस में डूबकर एक स्वरूप हो गयी हैं, उनमें अखण्ड प्रेम भला क्यों नहीं होगा।

**भावार्थ-** सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द, एकत्व आदि की दृष्टि से सखियों में और श्री राज जी में कोई भी भेद नहीं है, किन्तु वे श्री राज जी की तरह अक्षर ब्रह्म को निर्देश नहीं दे सकतीं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो पिउ सों करें एकांत।

आठों-जाम इन सरूप सों, सुख लेत भांत भांत॥७३॥

जो सखियाँ पाँचवीं भूमिका के एकान्त में प्रेम का अखण्ड सुख लेती हैं तथा आठों प्रहर अपने प्रियतम के



साथ तरह-तरह की लीलाओं द्वारा अनेक प्रकार के आनन्द लेती हैं, उनके अन्दर धनी का प्रेम क्यों नहीं होगा।

**भावार्थ-** परमधाम में अकेलापन जैसा कोई एकान्त नहीं है, किन्तु बाह्य रूप से लीला रूप में पाँचवीं भूमिका को एकान्त कहा जा सकता है। परमधाम पूर्णतया जाग्रत है और वहाँ किसी भी एक के साथ होने वाली लीला का सुख सबको प्राप्त होता है तथा सबको उसकी जानकारी भी रहती है। भला, वहदत (एकत्व) के धाम में कोई भी बात किसी से कैसे छिपायी जा सकती है।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो पिउ को निरखें नीके कर।

आठों-पोहोर इनों पर, धनी की अमी नजर॥७४॥

जिन सखियों पर आठों प्रहर धनी की प्रेम -भरी

अमृतमयी नजर (दृष्टि) बनी रहती है तथा जो स्वयं बहुत अच्छी तरह (सर्वस्व समर्पण की भावना से) अपने धनी को निहारा करती हैं, उनके हृदय में धनी का अखण्ड प्रेम क्यों नहीं प्रवाहित होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जिनका एह चलन।

आठों पोहोर इन धनी सों, रस भर रंग रमन॥७५॥

जिन सखियों का धाम धनी के साथ आठों प्रहर प्रेम – भरी आनन्दमयी क्रीड़ा करने का व्यवहार रहता है, भला उनके हृदय में प्रेम का सागर अठखेलियाँ क्यों नहीं करेगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, प्रेम वासा इन ठौर।

एही कहे प्रेम के पात्र, प्रेम नहीं कहूं और॥७६॥

भला इन ब्रह्मसृष्टियों में प्रेम क्यों नहीं होगा। धनी की अर्धांगिनी स्वरूपा इन ब्रह्मात्माओं के ही हृदय में प्रेम का निवास माना गया है। इन्हें ही प्रेम का वास्तविक पात्र भी कहा गया है। इनके अतिरिक्त अन्य कहीं पर भी, किसी के पास प्रेम नहीं है।

**क्यों न होए प्रेम इनको, जो इन बन में करें बिलास।**

**निस-दिन इन धनीय सों, करत विनोद कई हांस॥७७॥**

जो सखियाँ वनों में तरह-तरह की आनन्दमयी क्रीड़ायेँ करती हैं तथा दिन-रात श्री राज जी के साथ हास्य-विनोद (हँसी-मजाक) की लीलायेँ करती हैं, उनके हृदय में प्रेम की रसधारा क्यों नहीं प्रवाहित होगी।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो बसत धाम बन माहें।

जो बन हमेसा कायम, एक पात गिरे कबूं नाहें॥७८॥

परमधाम के नूरमयी वन सर्वदा अखण्ड रहने वाले हैं। इनका एक भी पत्ता कभी गिरता नहीं है। ऐसे वनों एवं रंगमहल में आनन्दमयी लीलाओं के गहन रस में स्वयं को डुबोये रखने वाली ब्रह्मांगनाओं में प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो सदा खेलत इन बन।

एक पात की जोत देखिए, करें जिमी अम्बर रोसन॥७९॥

निजधाम के वनों के एक पत्ते में भी इतनी ज्योति है कि उससे सम्पूर्ण धरती और आकाश प्रकाशमान हो जाते हैं। ऐसे नूरी वनों में धनी के साथ क्रीड़ा करने वाली आत्माओं के हृदय में प्रेम क्यों नहीं होगा।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो इन बन में करें विलास।

सोहागिन अंग धनी धाम की, प्रेम पुंज नूर प्रकास॥८०॥

इन वनों में तरह-तरह की आनन्दमयी लीला करने वाली इन सखियों के अन्दर भला प्रेम की सरिता क्यों नहीं प्रवाहित होगी। ये सखियाँ धाम धनी की सुहागिन अँगनायें हैं, प्रेम के भण्डार हैं, और नूरी आभा से शोभायमान हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, करें धाम धनी सो केलि।

इन बन इन धनीय सों, रमन अह निस खेलि॥८१॥

प्रेम के अनन्त सागर धाम धनी के साथ क्रीड़ा करने वाली इन सखियों में प्रेम क्यों नहीं होगा। इन वनों में ये ब्रह्मात्मायें अपने प्राणप्रियतम के साथ दिन-रात तरह-तरह के आनन्दमयी खेल किया करती हैं।

क्यों न होए प्रेम इनको, जाको इन बन में है हांस।

कमी कबू न होवहीं, सदा फल फूल बास॥८२॥

परमधाम के वनों में कभी भी फल, फूल, तथा सुगन्धि की कमी नहीं होती, बल्कि ये सर्वदा ही फल, फूल, तथा सुगन्धि से भरे रहते हैं। ऐसे मनोरम वनों में धनी से हास्य-विनोद की लीला करने वाली इन अँगनाओं में प्रेम की रसधारा क्यों नहीं प्रवाहित होगी।

क्यों न होए प्रेम इनको, जो इन बन को रस लेत।

फल फूल सुगंध बेलियां, वाउ सीतल सुख देत॥८३॥

निजधाम के ये वन फलों, फूलों, दिव्य सुगन्धि, तथा मनोहर लताओं से भरे हुए हैं। इनमें बहने वाली शीतल हवा बहुत सुख देती है। इन वनों में धनी के साथ आनन्दमयी लीला करने वाली सखियों में अखण्ड प्रेम

क्यों नहीं विद्यमान होगा।

महामत कहे मेहेबूब जी, अब दीजे पट उड़ाए।

नैना खोल के अंक भर, लीजे कंठ लगाए॥८४॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे प्रियतम !  
अब आप माया के इस परदे को हटा दीजिए तथा हमारे  
आत्म-चक्षुओं को खोलकर हमें अपने दोनों हाथों से  
पकड़कर गले से लगा लीजिए।

**भावार्थ-** अपने हृदय में उमड़ने वाले प्रेम की  
अभिव्यक्ति गले लगाकर (आलिंगनबद्ध होकर) की जाती  
है। लीला रूप में ब्रह्मात्माओं को धनी से गले मिलने का  
सौभाग्य तो परात्म में जाग्रति के पश्चात् ही सम्भव हो  
सकेगा। इस जागनी लीला में धनी द्वारा गले लगाने  
(कण्ठ लगाने) का अभिप्राय यह है कि हमारी आत्मा

माया के इस पिण्ड-ब्रह्माण्ड से परे होकर युगल स्वरूप, अपने मूल तन, २५ पक्षों की शोभा, एवं अष्ट प्रहर की लीला में डूब जाये। इस चौपाई में सब सुन्दरसाथ की ओर से श्री महामति जी की आत्मा द्वारा धाम धनी से यह प्रेम-भरा आग्रह किया गया है।

**प्रकरण ॥३९॥ चौपाई ॥२३४६॥**



## धाम की रामतें – चरचरी

"रामत" शब्द का तात्पर्य खेल या क्रीड़ा से है। चरचरी छन्द में वर्णित इस प्रकरण में परमधाम की अति मनोहर लीलाओं की छोटी सी झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

एक चित्रामन दिवालें बन, चढ़िए तिन पर धाए॥

एक चुटकी लेके भागी ताली देके, कहे दौड़ मिलियो आए॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि परमधाम में एक सखी दीवारों पर बने हुए वृक्ष के चित्र पर दौड़ती हुई चढ़ जाती है। एक सखी दूसरी सखी के सामने चुटकी बजाकर ताली देती हुई भागती है और दूसरी से कहती है कि तुम दौड़कर मुझे छू लो।

**भावार्थ—** परमधाम में सखियों की इच्छानुसार ही सम्पूर्ण प्रकृति है। इच्छामात्र से किसी भी सखी का तन

पल-भर में कहीं से कहीं पहुँच सकता है , आकाश में उड़ सकता है, या बिना किसी बाधा के जल में आ-जा सकता है।

**एक गली घर में दे परिकरमें, उमंग अंग न माए।**

**एक का कपड़ा धाए के पकड़या, खँच चली चित्त चाहे॥२॥**

एक सखी रंगमहल की गलियों में चारों ओर घूमती है (परिक्रमा लगाती है)। उसके मन में अथाह उमंग भरी है। वह दौड़कर एक सखी के वस्त्रों को पकड़ लेती है और उसे मनचाही दिशा में खींचने लगती है।

**भावार्थ-** इन लीलाओं के रूप में विशुद्ध प्रेम के सागर की लहरें अठखेलियाँ कर रही हैं। इनमें प्रतिष्ठा , ज्ञान, परायेपन आदि की कोई गन्ध नहीं है , बल्कि ब्राह्मी प्रेम की उन्मुक्त क्रीड़ा है। इन्हें आत्मासात् कर लेने पर अहम्

की ग्रन्थि से अनायास ही छुटकारा मिल सकता है।

छज्जे चढ़ एक दूजी देवें ठेक, यों कई ठेकतियां जाए।

एक दोऊ पांऊं ठेकें खेल वैसेकें, जानों लगत न छज्जे पाए॥३॥

सखियाँ छज्जे पर चढ़कर एक-दूसरे के सामने उछलती हैं। इस प्रकार कई सखियाँ उछलती हैं। एक सखी तो दोनों पैरों को हवा में इस प्रकार उछालती है कि ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उसके पैर छज्जे की सतह पर हैं ही नहीं और एक-दूसरे के सामने धरती (सतह) पर ठेक (पैरों को तिरछा करके ठोकर) देती है। सखी अपने दोनों पैरों को ठेक देकर एक विशेष प्रकार का खेल खेलती है, जिससे ऐसा लगता है जैसे उसके पैर छज्जे की सतह से लगते ही नहीं हैं।

सखियां चढ़ धाए छज्जे न माए, खेल रच्यो इन दाए।

एक दिवालों घोड़े तित चढ़ दौड़े, नए नए खेल उपाए॥४॥

सखियाँ इस प्रकार का खेल करती हैं कि वे छज्जों पर चढ़कर दौड़ती हैं। वहाँ वे इतनी संख्या में खेलने लग जाती हैं कि ऐसा लगने लगता है, जैसे छज्जे में सबके लिये जगह ही नहीं है। एक सखी दीवारों पर बने हुए (चित्रों के) घोड़े पर चढ़कर उसे दौड़ाती है। इस प्रकार सखियाँ नित्य ही नये-नये प्रकार के खेल खेलती हैं।

एक दूजी को ठेलें तीसरी हड़सेले, यों पड़ियां तीनों गिर।

कई और आए गिरें उपरा ऊपरें, उठ न सकें क्यों ए कर॥५॥

एक सखी दूसरी को धकेलती है। दूसरी तीसरी को धकेलती है। इस प्रकार तीनों ही गिर पड़ती हैं। कई और सखियाँ आकर उनके ऊपर इस प्रकार गिर जाती हैं कि

नीचे वाली सखियाँ किसी भी प्रकार से जल्दी से उठ नहीं पातीं।

**भावार्थ-** एक-दूसरे को प्रेम-भरा धक्का देने में प्रेम की जो मिठास छिपी है, उसे शुष्क हृदय वाला वाचक ज्ञानी नहीं समझ सकता।

एक दौड़ियां जाए दई हांसिए गिराए, हुओ ढेर उपरा ऊपर।  
 एक खेलते हारी जाए पड़ी न्यारी, खेल होत इन पर॥६॥  
 एक सखी दौड़ती हुई जाती है और दूसरे को गिरा देती है। उसके ऊपर अन्य बहुत सी सखियाँ आकर गिर जाती हैं। इस प्रकार एक-दूसरे के ऊपर सखियों का बहुत बड़ा ढेर बन जाता है। एक सखी खेलते-खेलते जब थककर हार जाती है, तो वह अलग होकर बैठ जाती है। इस प्रकार यह मनमोहक खेल चलता रहता है।

होवे इन बिध हाँसी अंग उलासी, सूल आवत पेट भर।

एक सूल भर पेटे इन विध लेटें, ए देखो खेल खबर॥७॥

अंग-अंग में उमंग भरकर सखियाँ इस प्रकार हँसती हैं कि उनके पेट में दर्द होने लगता है। एक सखी पेट में दर्द होने के कारण जमीन पर लेट जाती है। हे साथ जी! इस प्रकार की आनन्दमयी क्रीड़ायें परमधाम में हुआ करती हैं। आप अपनी आत्मिक दृष्टि से इन्हें देखिए।

**भावार्थ-** परमधाम में थककर हार जाना या पेट में दर्द होने के कारण लेट जाना मात्र लीला है और इसे लौकिक भावों के अनुसार दर्शाया गया है।

एक लेटतियां जाए सूल उभराए, उठावें कर पकर।

आई तिन हाँसी मावें न स्वांसी, गिरी पकरे कर॥८॥

अत्यधिक हँसी से उत्पन्न होने वाले पेट दर्द के कारण

एक लेट जाती है। दूसरी सखी उसका हाथ पकड़कर उठाने जाती है, किन्तु उसे भी इतनी हँसी आती है कि उसकी साँस रुकने जैसी हो जाती है और वह उसका हाथ पकड़े-पकड़े ही गिर जाती है।

**देखो इनको सूल मुख सनकूल, दरद न माए अन्दर।**

**सखियां बेसुमार हुआ अंबार, ए देखो नीके नजर॥९॥**

हे साथ जी! आप इन सखियों के हँसते हुए मुखों की शोभा को देखिए। अत्यधिक हँसी के कारण इनके पेट में जो बहुत दर्द हो रहा होता है, उससे सखियों की भाव-भंगिमा और अधिक मनमोहक हो जाती है। इस लीला का आनन्द लेने के लिये सखियों की अपार समूह वहाँ एकत्रित हो जाता है। आप भी इस मनोहर लीला को अपनी आत्मिक दृष्टि से अच्छी तरह से देखिए।

स्याम स्यामाजी आए देख्यो खेल बनाए, सब उठियां हँसकर।  
खेलें महामति देखलावें इन्द्रावती, खोले पट अन्तर॥१०॥

इसी बीच श्री राजश्यामा जी भी आ जाते हैं और इस लीला को देखने लगते हैं। सब सखियाँ हँसते हुए उठकर खड़ी हो जाती हैं। श्री इन्द्रावती जी के धाम-हृदय में विराजमान होकर श्री राज जी ने माया का परदा हटा दिया है और उनकी आत्मा को इस रामत का मनोहर दृश्य दिखला रहे हैं। उनकी परात्म परमधाम में स्वयं इस लीला में संलग्न है, जबकि उनकी आत्मा इस जागनी लीला में महामति के रूप में जागनी रास खेल रही है।

प्रकरण ॥४०॥ चौपाई ॥२३५६॥



## रामत दूसरी

इस प्रकरण में भी परमधाम की प्रेममयी मनोहर क्रीड़ा का वर्णन किया गया है।

एक अंग अभिलाखी देवें साखी, कहे वचन विसाल।

एक कर कंठ बाहें मिल लपटाए, खेलतियां करें ख्याल॥१॥

एक सखी खेलने की तीव्र उत्कण्ठा के साथ आती है और शेष सखियों को अच्छे खेल की साक्षी देते हुए विस्तारपूर्वक समझाती है कि हमें किस प्रकार से खेलना है। एक सखी दूसरी सखी के गले में बाँहे डालकर लिपट जाती है। इस प्रकार अलग-अलग तरीकों से सखियाँ खेला करती हैं।

एक आवें लटकतियां बोलें मीठी बतियां, चलें चमकती चाल।

एक आवें मलपतियां रंग रस रतियां, रहें आठों जाम खुसाल॥२॥

एक सखी प्रेम की मुद्रा में लटकती हुई चाल से आती है और अन्य सखियों से बहुत ही मीठी-मीठी बातें करती है। उसकी चाल में आनन्द का जोश भरा होता है। प्रेम और आनन्द के रस में डूबी हुई एक सखी मुस्कराती हुई आती है। वह आठों प्रहर प्रसन्न रहा करती है।

एक आवें नाचतियां भमरी फिरतियां, दे भूखन पांउ पड़ताल।

एक गावती आवें तान मिलावें, कोई स्वर पूरें तिन नाल॥३॥

एक ब्रह्मांगना गोलाई में चक्कर देकर नाचती हुई आती है। धरती पर उसके पैरों की पड़ताल से उसके आभूषण अति सुमधुर स्वरों में बजने लगते हैं। एक सखी गाती हुई आती है, तो कोई उसके साथ अलाप लेने लगती है,

और कोई स्वर पूरने लगती है (गाने लगती है)।

एक माहें धाम निरखें चित्राम, देखतियां थंभ दीवार।

एक निरखें नंग नूर भूखन जहूर, माहें देखें अपने मिसाल॥४॥

एक सखी रंगमहल के थम्भों और दीवारों पर बने हुए रमणीय चित्रों को देखती है, तो एक ब्रह्मसृष्टि अपने आभूषणों में जड़े हुए नगों की नूरी आभा को देखती है। वह नूरमयी नगों में अपना अति सुन्दर प्रतिबिम्ब भी देखती है।

एक मिल कर दौड़े बांध के होड़ें, लंबी जहां पड़साल।

एक पिउ को देखें सुख विसेखे, कहें आनन्द कमाल॥५॥

एक सखी कई सखियों के साथ मिलकर होड़ बाँधकर लम्बी पड़साल में दौड़ लगाती है। कोई सखी तो धाम

धनी का दर्शन (दीदार) पाकर ही प्रसन्नता के सागर में डूब जाती है। वह कहती है कि यह तो आश्चर्य में डालने वाला अनुपम आनन्द है।

एक बैन रसालें गावें गुन लालें, सोभित मद मछराल।

एक बाजे बजावें मिलकर गावें, सुन्दर कंठ रसाल॥६॥

प्रेम के रस (मस्ती) में ओत-प्रोत एक सखी अपने मुस्कराते हुए मुख से अति मीठे शब्दों द्वारा प्रियतम की महिमा का गायन करती है। अति सुन्दर गले वाली एक सखी बाजे बजाती है तथा अन्य सखियों के साथ मिलकर बहुत ही मधुर स्वरों में गाती है।

एक पूरे स्वर सारे हुंनर, छेक बालें तिन ताल।

एक पिउसों हँस हँस बातें करे रंग रस, करें होए निहाल॥७॥

एक ब्रह्मात्मा संगीत की सम्पूर्ण कलाओं के साथ गायन करती है (स्वर भरती है), तो अन्य सखियाँ उसके साथ मिलकर तान देने लगती हैं (गाने लगती हैं)। एक सखी श्री राज जी से खूब हँस-हँसकर बातें करती है और स्वयं को प्रेम तथा आनन्द में मग्न करके परितृप्त हो जाती है।

**एक देखें धनी रूप अद्भुत सरूप, कहा कहूं नूर जमाल।**

**एक पिउ सो बातें करें अख्यातें, रंग रस भरियां रसाल॥८॥**

एक सखी धाम धनी के अद्भुत सौन्दर्य को देखते-देखते खो जाती है। अक्षरातीत की इस अनुपम शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। एक सखी प्रियतम के प्रेम और आनन्द से भरी हुई अति मीठी लीलाओं के विषय में चर्चा करती है।

एक रस रीत उपजावें प्रीत, देखावें अपनों हाल।

एक अंग अलबेली आवे अकेली, हाथ में फूल गुलाल॥९॥

एक सखी अपनी भाव भंगिमाओं से अपना प्रेम प्रदर्शित करके दूसरी सखियों के हृदय में भी प्रेम का रस प्रकट करती है। अति मनोहर अंगों वाली एक सखी अपने हाथों में लाल फूल लिये अकेले ही धनी के पास आती है।

**भावार्थ—** यद्यपि परमधाम में सभी सखियों के अन्दर समान प्रेम है, किन्तु इस चौपाई में दूसरी सखियों के हृदय में प्रेम प्रकट करने का तात्पर्य उसे जाग्रत या क्रियाशील करने से है। लाल फूल लेकर धनी के पास आना अपने प्रेम की मौन अभिव्यक्ति है।

एक अटपटी हालें तिरछी चालें, हाथ में छड़ियां लाल।

एक नेत्र अनियाले प्रेम रसालें, रंग लिए नूरजमाल॥१०॥

एक सखी प्रेम की अटपटी (विचित्र) अवस्था में अपने हाथों से छड़ी घुमाती हुई सम्मोहित करने वाली तिरछी चाल से चलकर धाम धनी के पास आती है। अपने तिरछे नेत्रों से अति मधुर प्रेम उड़ेलती हुई एक सखी श्री राज जी के पास आती है और उनसे अखण्ड आनन्द का रसपान करती है।

**कहे महामति इन रंग रती, उठी सो हँस दे ताल॥११॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि प्रेम और आनन्द की इन मनोहर लीलाओं में संलग्न सखियाँ हँसने की मुद्रा में ताली बजाते हुए उठती हैं।

**प्रकरण ॥४१॥ चौपाई ॥२३६७॥**

## बड़ी रामत

इस प्रकरण में सम्पूर्ण परमधाम के पच्चीस पक्षों में सखियों द्वारा होने वाली मनोहारिणी लीलाओं की झाँकी दी गयी है। इसलिये इसे बड़ी रामत कहकर वर्णित किया गया है।

**कहियत नेहेचल नाम, सदा सुखदाई धाम।**

**साथजी स्यामाजी स्याम, विलसत आठों जाम री॥१॥**

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि ब्रह्मसृष्टियों का निजधाम सदा ही अति आनन्दमयी है और इसे अनादि एवं अखण्ड कहा जाता है। यहाँ पर युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी एवं सखियों की आठों प्रहर आनन्दमयी लीलायें होती रहती हैं।

**भावार्थ—** इस चौपाई के प्रथम चरण में "नाम" शब्द का



तात्पर्य "पहचान" से है। "तप्त कांचनाभा सा श्यामा उच्यते" के अनुसार लालिमा से भरपूर षोडश वर्षीया किशोरी "श्यामा" कहलाती है। इसी रंग का (लालिमा से भरपूर) किशोर युवक "श्याम" कहलाता है। इस प्रकार "स्यामाजी स्याम" का तात्पर्य राजश्यामा जी से है।

**नित इत विश्राम, पूरन हैं प्रेम काम।**

**हिरदे न रहे हाम, इस्क आराम री॥२॥**

इस स्वलीला अद्वैत परमधाम में नित्य (शाश्वत) आनन्द है, परिपूर्ण (अनन्त) प्रेम है। प्रेम के आनन्द का ऐसा साम्राज्य है, जिसमें किसी भी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रह पाती।

**भावार्थ-** जिसमें मात्र प्रेम की ही इच्छा हो, उसे प्रेम "प्रेम काम" कहते हैं। इस चौपाई के दूसरे चरण में

कथित "प्रेम काम" को मायावी जगत के काम विकार से जोड़कर नहीं देखना चाहिए।

आराम तो इन विध लेवें, सबे भरी अहंकार।

पूरन हित पिउसों चित्त, जिनको नहीं सुमार॥३॥

परमधाम की सभी ब्रह्मांगनाओं में अपने हृदय-धाम में हिलोरे लेने वाले प्रेम की पूर्ण पहचान है। इसी प्रेम द्वारा वे धाम धनी से आनन्द लेती हैं। इनका चित्त (हृदय) पूर्ण रूप से प्रियतम के ऐसे प्रेम में तल्लीन (डूबा) रहता है, जिसकी कोई सीमा नहीं है।

**भावार्थ-** सखियों को इस बात का पूर्णतया बोध है कि वे अपने अखण्ड प्रेम द्वारा धाम धनी को रिझाती हैं। इसी बोध को यहाँ "अहंकार" शब्द से व्यक्त किया गया है। इसे मायावी अहंकार समझने की भूल नहीं करनी

चाहिए।

एक जुत्थ सहेली, मिल बैठी भेली, सुख केहेत न आवे पार।  
 कोई छजे ऊपर, सखियां मिलकर, कहें पिउ को विहार॥४॥  
 सखियों का एक पूरा यूथ (समूह) छजे के ऊपर  
 मिलकर एकसाथ बैठा हुआ है। इनका सुख इतना  
 अधिक है कि वह कथन में नहीं आ सकता। इनमें से  
 कुछ सखियाँ आपस में प्रियतम के साथ होने वाली  
 आनन्दमयी लीलाओं की चर्चा कर रही हैं।

एक लम्बे हिंडोलें, मिल बैठी झूलें, लेवें सीतल सुगंध बयार।  
 एक झरोखे माहें, मिल बैठत जाहें, करें रती रेहेस विचार॥५॥  
 सखियों का एक समूह लम्बे हिण्डोलों में बैठकर झूला  
 झूल रहा है। साथ ही साथ वह परमधाम की शीतल,

मन्द, और सुगन्धित नूरी हवा का भी आनन्द ले रहा है। सखियों का एक अन्य समूह झरोखों में एकसाथ बैठा हुआ है। उनमें प्रेम के गहन रहस्यों पर विचार चल रहा है, अर्थात् ये सखियाँ इस बात पर चिन्तन कर रही हैं कि धनी को रिझाने के लिये अब क्या करना है।

**एक पिउ मद मतियां, आवें ठेकतियां, कंठ खलकते हार।**

**एक जुदी जुदी आवें, स्वांत देखलावें, करें नूर रोसन झलकार॥६॥**

प्रियतम के प्रेम में आकण्ठ डूबी हुई (मदमस्त) सखियों का एक समूह उछलते हुए आ रहा है, जिससे उनके गले में झलझलाते हुए हार भी हिल रहे हैं। एक अन्य समूह की सखियाँ अलग-अलग शान्तिपूर्वक आ रही हैं। उनके स्वरूप की नूरी आभा मनोहर झलकार कर रही है।

एक बाँहें सों बाँहें, संग मिलाए, आवें लिए अहंकार।

एक दूजी के साथें, लिए कण्ठ बाथें, भूखन उद्धोतकार॥७॥

सखियों का एक समूह एक-दूसरे की बाँहों में बाँहें डाले हुए अपने प्रेम के स्वाभिमान (स्वत्व-बोध) के साथ धाम धनी के पास आ रहा है। वहीं पर सखियों का एक अन्य समूह भी है, जो एक-दूसरे के गले में प्रेमपूर्वक बाँहें डाले हुए आ रहा है। इन सभी सखियों के आभूषण जगमगा रहे हैं।

**भावार्थ-** अभिमान और स्वाभिमान में बहुत बड़ा भेद है। अभिमान (अहंकार) मायाजन्य होता है, जबकि स्वाभिमान में अपनी आत्मिक स्थिति का बोध मात्र होता है। इस अवस्था में परब्रह्म के प्रति समर्पण की भावना अपने शिखर पर होती है और कर्तृत्व में भी स्वयं का अस्तित्व नहीं दिखायी पड़ता।

एक कण्ठ हाथ छोड़ें, आगूं दौड़ें, कहे आइयो मुझ लार।

एक चढ़ें गोखें, झांकत झरोखें, देखत बन विस्तार॥८॥

सखियों के एक वर्ग में कुछ सखियाँ अपने गले से दूसरी सखियों का हाथ छुड़ाकर आगे यह कहकर दौड़ती हैं कि अब मेरे साथ आओ! सखियों का एक समूह खिड़कियों के छज्जों पर चढ़ जाता है और झरोखों से वनों की रमणीय शोभा को देखता है।

**भावार्थ—** प्रथम भूमिका से २२ सीढ़ियाँ चढ़कर खिड़कियों के छज्जों पर जाना पड़ता है, जबकि दूसरी भूमिका से आठवीं भूमिका तक जाने में तीन-तीन सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। ऊपर चढ़ने पर छज्जे वाला भाग "गोख" (खिड़की) कहलाता है और छज्जे की किनार पर कठेड़े वाला भाग "झरोखा" कहलाता है।

एक बैठत पलंगें, पिउजीके संगें, खेलत प्रेम खुमार।

आप अपने अंगें, करत हैं जंगें, कोई न देवे हार॥९॥

एक सखी नूरी पलंग पर श्री राज जी के साथ बैठती है और प्रेम के आगोश में तरह-तरह की क्रीड़ा करती है। इस प्रेममयी खेल में दोनों (श्री राज जी और वह सखी) ही अपने-अपने अंगों से प्रेम रूपी लड़ाई लड़ते हैं, किन्तु कोई भी हार मानने के लिये तैयार नहीं होता।

**भावार्थ-** सखियों और श्री राज जी के मध्य होने वाले प्रेम युद्ध में इस प्रकार की बाजी लगी होती है-

१. कौन कितना मधुर बोल सकता है?
२. कौन दूसरे को कितनी प्रेम-भरी दृष्टि से देख सकता है?
३. कौन कितनी तन्मयता (सावधानी) से दूसरे की बात सुन सकता है?

४. कौन अपने रोम-रोम में अपने प्रेमास्पद (माशूक) को देख (बसा) सकता है?

५. अपना दिल देकर कौन अपने अस्तित्व को कितना मिटा सकता है?

किन्तु परमधाम में एकत्व (वहदत) होने के कारण, कभी भी किसी की हार-जीत नहीं होती।

**एक अंग अनंगे, भांत पतंगे, क्यों कहूं ए मनुहार।**

**अति उछरंगें, होत न भंगें, सत सुख संग भरतार॥१०॥**

एक सखी अपने हृदय में दिव्य प्रेम लेकर पतंगे की तरह अपने प्राणेश्वर को रिझाती है। उसके हृदय में कभी भी कम न होने वाली अत्यधिक उमंग है। इस प्रकार अपने प्रियतम के साथ वह अखण्ड रस का पान करती है।

**भावार्थ—** यद्यपि अनंग और मकरन्द (चौपाई ११)



शब्दों का बाह्य अर्थ "काम" होता है, किन्तु इन चौपाइयों में इनका तात्पर्य विकारजन्य शारीरिक वासना से नहीं है। शारीरिक काम तो एक मनोविकृति है, जो रज और तम से प्रकट होती है। परमधाम त्रिगुणातीत, शब्दातीत, और स्वलीला अद्वैत है। वहाँ पर तो काम विकार की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती। मात्र त्रिगुणात्मक जगत् में रहने वाले प्राणी ही काम के अधीन होते हैं, बेहद या परमधामवासी नहीं। यदि पूर्णतया निर्विकार रहने वाला सच्चिदानन्द परब्रह्म ही काम-क्रीड़ा करें, तो वह कैसा परब्रह्म है? पुनः यही कार्य करने वालों को नरक का दण्ड क्यों दिया जाता है? गीता १६/२ का भी कथन है- "नरकस्य त्रिविधं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधः तथा लोभः तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥" अर्थात् काम, क्रोध, और लोभ नरक के

तीन द्वार हैं।

परमधाम की दिव्य, प्रेममयी लीलाओं में पूर्णतया निर्विकारिता है, ब्रह्मरूपता है। उसमें मनोविकारों की गन्ध स्वप्न में भी नहीं है। जिस प्रकार एक स्नेहमयी माँ अपने शिशु को निर्विकार भाव से अपने स्तनों का दूध पिलाती है, उसके अंग-अंग को स्वच्छ करती है, प्रेमपूर्वक चूमती है और अपने गले से लगाती है, किन्तु इन सारी क्रियाओं में कोई भी काम विकार की कल्पना भी नहीं कर सकता, उसी प्रकार परमधाम की लीला में ऐसे माँ-पुत्र के पवित्र सम्बन्ध से भी करोड़ों-अरबों गुना अधिक पवित्रता है। यह अवश्य है कि वहाँ प्रिया - प्रियतम (माशूक-आशिक) के रूप में ही सखियों तथा श्री राज जी की लीला होती है, किन्तु वह पूर्णतया निर्विकार और त्रिगुणातीत है। वहाँ का काम (चाहना)

दिव्य काम है। वहाँ दिव्य (अलौकिक) स्पर्श है, दिव्य आलिंगन है, और दिव्य चुम्बन है। सागर अपनी ही अँगरूपा लहरों के साथ क्रीड़ा कर रहा होता है, तो उसमें कैसा पाप? काम विकार तो पराये तन से होता है। स्वलीला अद्वैत में विकार का स्वप्न में भी अस्तित्व नहीं है।

**एक प्रेम तरंगें, मद मछरंगें, बांहोंड़ी कण्ठ आधार।**

**एक अंग मकरदें, काढ़त निकदें, आवत नहीं पार॥११॥**

एक सखी प्रेम की तरंगों में बेसुध होकर अपनी मनोहर बाँहों को धनी के गले में डाल देती है, तो कोई सखी अपने हृदय में उमड़ने वाले प्रेम की प्यास (इच्छा) को धनी के साथ होने वाली प्रेममयी लीला में पूर्ण कर लेती है। इस लीला के आनन्द की कोई सीमा ही नहीं होती।

बादलियां आवें, रंग देखलावें, करें मोर कोयल टहुंकार।

अति घन गाजें, अम्बर बिराजे, सोभित रूत मलार॥१२॥

उमड़ते-घुमड़ते बादलों का समूह आ पहुँचा है। मोर तथा कोयल की मधुर ध्वनि चारों ओर गूँजने लगी है। आकाश में छाये हुए बादल गम्भीर स्वरों में गर्जना कर रहे हैं। इस प्रकार की दिव्य शोभा वर्षा ऋतु में दिखायी देती है।

**भावार्थ-** वर्षा ऋतु का मोहक दृश्य प्रेम की अभिवृद्धि करता है। इन्हीं भावों को लेकर परमधाम की लीला में भी इस प्रकार की अवस्था का चित्रण किया गया है।

रूचिया मेह, बढ़त सनेह, ए समया अति सार।

एक केहे सखी सीढ़ियां, दौड़ के चढ़ियां, होत सकल भोम झनकार॥१३॥

नूरी वर्षा बहुत प्यारी लग रही है। इस वातावरण में

सखियों का प्रेम अत्यधिक बढ़ गया है। "प्रेममयी लीला के लिये यह समय बहुत ही महत्वपूर्ण है" कहकर एक सखी दौड़कर सीढ़ियों पर चढ़ने लगती है, जिसकी झनकार उस सम्पूर्ण भूमिका (मन्जिल) में फैल जाती है।

एक साम सामी आवें, अंग न मिलावें, कहा कहूं चंचल आकार।  
 एक दौड़ के धसियां, बन में निकसियां, मस्त हुइयां देख मलार॥१४॥

कुछ सखियों का समूह आमने-सामने टकराता है (मिलता है), किन्तु प्रेम की बेसुधि में इनके शरीर में इतनी चञ्चलता है कि ये आपस में गले भी नहीं मिल पातीं। इनकी प्रेम भरी प्यास का मैं कैसे वर्णन करूँ। बरसात की सुन्दर फुहारों को देखकर सखियाँ प्रेम में इतनी मस्त हो (डूब) जाती हैं कि वे दौड़ती हुई वनों में

अन्दर प्रवेश कर जाती हैं।

एक आइयां सघन में, धाए चढ़ी बन में, खेल करें अपार।  
 एक झूलें डारी चढ़ के, और पकड़ के, क्यों कहूं खेल सुमार॥१५॥  
 कुछ सखियाँ (सखियों का एक समूह) घने वनों में  
 आकर वृक्षों पर चढ़ जाती हैं तथा अनन्त आनन्द को  
 प्रकट करने वाले तरह-तरह के खेल करती हैं। कुछ  
 सखियाँ पेड़ों की डालियों पर चढ़ जाती हैं और उन्हें  
 पकड़कर झूला झूलती हैं। इस खेल के आनन्द का मैं  
 कैसे वर्णन करूँ।

एक भांत बांदर की, ठेक दे चढ़ती, करती रंग रसाल।  
 एक दौड़ें पातों पर, करें चढ़ उतर, खेलत माहें खुसाल॥१६॥  
 कुछ सखियाँ बन्दरों की तरह छलाँग लगाती हुई वृक्षों

पर चढ़ जाती हैं और मधुर आनन्दमयी क्रीड़ायेँ करती हैं। सखियों का एक समूह पत्तियों से भरी डालियों पर दौड़ता है तथा बारम्बार उन पर चढ़ता-उतरता है। ये सखियों बहुत प्रसन्नता से खेलती हैं।

एक ठेक देती, बनसें रेती, कहा कहूं इनको हाल।

एक आइयां दौड़ रेती, इतथें जेती, खेलें एक दूजीके नाल॥१७॥

कुछ सखियाँ वनों की रेती में प्रेमपूर्वक उछलती हैं। इनकी इस आनन्दमयी स्थिति का मैं कितना वर्णन करूँ। दौड़ती हुई कुछ सखियाँ रेती में आती हैं, और वहाँ उपस्थित अन्य सखियों के साथ मिलकर एक-दूसरे के साथ तरह-तरह की क्रीड़ायेँ करती हैं।

एक जाए गड़ें रेती, निकस न सकती, देवें एक दूजी को ताल।

एक काढ़ें घसीटें, और ऊपर लेटें, कहा कहूं इनकी चाल॥१८॥

कोई सखी कोमल रेती में इस प्रकार धँस जाती है कि वह किसी भी प्रकार से निकल नहीं पाती। सखियाँ एक-दूसरी को ताली देकर बुलाती हैं तथा उसे खींचकर रेती से निकालती हैं। उसे हँसीपूर्वक घसीटती हैं और पुनः उसके ऊपर लेट भी जाती हैं। इनकी इन प्रेममयी लीलाओं का मैं कितना वर्णन करूँ।

**भावार्थ-** यद्यपि इन लीलाओं का विश्लेषण करने पर ऐसा लगता है कि जैसे ये बाह्य रूप से अबोध बालक-बालिकाओं की लीलाओं जैसी हैं, किन्तु यदि हम आत्मिक दृष्टि से देखें तो ये लीलायें उन्मुक्त और निर्द्वन्द्व प्रेम का प्रत्यक्ष स्वरूप उपस्थित करती हैं। अल्पवय वाले बालक एवं बालिकायें काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या,



द्वेष आदि विकारों से रहित होते हैं। इसलिये इनकी क्रीड़ाओं में जो उन्मुक्तता (खुलापन) एवं स्वाभाविकता नजर आती है, वह बड़ी उम्र वालों के खेल में कहीं भी नजर नहीं आती।

उम्र बढ़ने पर मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या-द्वेष आदि विकारों से ग्रसित (भर) हो जाता है। इस उम्र में यदि वह किसी प्रकार का खेल भी खेलता है, तो अपने प्रतिद्वन्दी के प्रति क्रोध एवं द्वेष की गाँठ बाँधे रखता है। परब्रह्म एवं उनकी अँगनायें पूर्णतया निर्विकार हैं। अतः परमधाम की रामतों में बालक-बालिकाओं की क्रीड़ाओं की झलक आना प्रेम की उन्मुक्तता (बन्धन रहितता) तथा निर्विकारिता का एक लघु दिग्दर्शन है।

खेलते दिन जाए, हांसी न समाए, प्रेम पिएं संग लाल।

एक ठेक देतियां, रेती में गड़तियां, खेल होत कमाल॥१९॥

इस प्रकार खेलते-खेलते सारा दिन बीत जाता है। सभी सखियाँ अपार हँसी के साथ मग्न रहती हैं और अपने प्रियतम के साथ प्रेम का रसपान करती हैं। छलाँग लगाती हुई कुछ सखियाँ रेती में धँस जाती हैं। इस प्रकार की आश्चर्यमयी लीलायें परमधाम में नित्य ही चलती रहती हैं।

केटलीक सखी संग, निकसी रमती रंग, रूप देखावें झुन्झार।

एक दौड़ के जावें, हौज में झंपावें, एक ले दूजी लार॥२०॥

तरह-तरह की आनन्दमयी क्रीड़ा करने वाली कुछ सखियाँ एकसाथ रेती से बाहर निकलती हैं और आनन्द की बेसुधी (मस्ती) में अपने अनुपम सौन्दर्य को दर्शाती

हैं। कुछ सखियाँ दौड़ती हुई जाती हैं और एक-दूसरे के साथ हौज़ कौसर ताल में कूद जाती हैं।

एक आवें दौड़ कर, गिरें उपरा ऊपर, किन विध कहूं ए रंग।  
 एक लरें पानी सें, जुत्थ जुत्थ सें, देखो इनको जंग॥२१॥

सखियों का एक समूह दौड़ते हुए आता है और हौज़ कौसर ताल में एक-दूसरे के ऊपर गिर पड़ता है। इस आनन्दमयी लीला का वर्णन मैं किस प्रकार से करूँ। सखियों का एक वर्ग दूसरे वर्ग (समूह) के ऊपर पानी उछाल-उछालकर लड़ने जैसा आनन्दमयी खेल खेलता है। हे साथ जी! इस मनोहर लीला को देखिए।

पानी ऐसा उड़ावें, जानो अम्बर बरसावें, खेल करें न बीच में भंग।  
 क्योंए न थकें, ऐसे अंग अर्स के, आगूं सोहें पुतलियां नंग॥२२॥

सखियाँ एक-दूसरे के ऊपर इतनी तेजी से पानी उछालती हैं कि ऐसा लगता है जैसे आकाश से ही पानी बरस रहा है। इस आनन्दमयी क्रीड़ा के पूर्ण होने (जी भरकर खेलने) से पहले, वे कभी भी इसे बीच में बन्द नहीं करती हैं। परमधाम के इनके नूरी अंग इस प्रकार के हैं कि ये कभी भी थकते नहीं हैं। इनके तन नगों की पुतलियों के समान सुशोभित होते हैं।

**एक खेल छोड़ें, दूजे पर दौड़ें, अंग न माए उछरंग।**

**एक खिन में अर्स परे, खेल जाए करें, इन विध अंग उमंग॥२३॥**

कुछ सखियाँ पानी उछालने का खेल छोड़कर दूसरे खेल में लग जाती हैं। उनके हृदय के अन्दर अपार आनन्द छाया हुआ है। उनके अंग-अंग में इतनी उमंग है कि वे एक क्षण में ही रंगमहल से बाहर (हौज़ कौसर, वन

आदि में) जाकर तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करने लगती हैं।

परिकरमा कर आवें, पल में फिर आवें, आए कदमों लगे सब संग।

कहे महामती, सब रंग रती, क्यों कहूं प्रेम तरंग॥२४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि ये सभी सखियाँ एक पल में ही सम्पूर्ण परमधाम में घूमकर धनी के पास (चरणों में) आ जाती हैं। ये सभी प्रेम के अद्वितीय आनन्द में डूबी हुई हैं। इनके हृदय में उमड़ने वाले प्रेम के सागर की तरंगों का वर्णन मैं कैसे करूँ।

**भावार्थ—** इस चौपाई के द्वितीय चरण में कदमों (चरणों) में प्रणाम करने का कथन लौकिक भावों के अनुसार शिष्टाचार रूप में है। स्वलीला अद्वैत में बार-बार चरणों में झुक-झुककर प्रणाम करने की आवश्यकता नहीं होती।

**प्रकरण ॥४२॥ चौपाई ॥२३९१॥**

## सागरों रांग मोहोलात मानिक पहाड़

इस प्रकरण में आठों सागरों तथा उनके चारों तरफ आयी हुई बड़ी रांग की हवेलियों का मनोरम चित्रण किया गया है।

नूर कुन्जी अगिन मुसाफ की, कले कुलफ खोलत हकीकत।  
 सुध पाइए सागर नूर पार की, हक मारफत रूहों खिलवत॥१॥

परमधाम की आग्नेय दिशा में नूर सागर लहरा रहा है। यह नूर सागर कुरआन, वेद आदि धर्मग्रन्थों के ताले रूपी छिपे हुए गुह्य एवं अज्ञात रहस्यों को स्पष्ट करने की कुञ्जी है। इस नूर सागर से ही निराकार-बेहद से परे परमधाम, ब्रह्मात्माओं की खिल्वत, तथा श्री राज जी के पूर्ण स्वरूप (मारिफत) की यथार्थ पहचान होती है।

**भावार्थ—** "कले" का भाव है, अभेद्य या अविज्ञेय।

"कुफ़" का अर्थ ताला है, जबकि "कल्फ" का तात्पर्य आत्म-मुग्धता या अज्ञान के आवरण के कारण स्वयं को भूल जाने से है। "कुलफ" शब्द अश्लीलता का द्योतक है, जो लिखने की त्रुटि के कारण चौपाई में दिखायी देता है, शुद्ध शब्द कुफ़ या कल्फ है।

पूर्व एवं दक्षिण के मध्य की दिशा आग्नेय कहलाती है। नूर सागर अक्षरातीत श्री राज जी की शोभा का सागर है। अक्षरातीत की नूरी शोभा के धाम-हृदय में बस जाने पर ही सभी धर्मग्रन्थों के वास्तविक गुह्य रहस्यों का बोध होता है तथा श्री राज जी के स्वरूप की पूर्ण पहचान होती है।

श्रीमुखवाणी में नूर नाम तारतम को भी कहा गया है। कलस हि. २३/५६ में स्पष्ट कहा गया है कि "साख्यात सरूप इन्द्रावती, तारतम को अवतार।" "नूर

सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी दिन" (मारफत सागर ४/७१) में भी तारतम वाणी को नूर सागर कहकर सम्बोधित किया गया है। इसका निष्कर्ष यही है कि परमधाम की आग्नेय दिशा में श्री राज जी की शोभा का जो नूर सागर लहरा रहा है, वही इस जागनी लीला में शब्द रूप में तारतम वाणी (नूर सागर) है।

**नूर दखिन सुख सागर, नूर वाहेदत मुख नीर।**

**पाइए मारफत मुसाफ की, अर्स अंग असल सरीर॥२॥**

श्री राज जी की वहदत (श्री राजश्यामा जी एवं सखियों) के मुखारविन्द में जो नूर का पानी (कान्ति) है, वह दक्षिण दिशा में अति आनन्दमयी नीर सागर के रूप में प्रकट हुआ है। तारतम वाणी के प्रकाश में ही धर्मग्रन्थों के इस परमसत्य (ऋत्, मारिफत) की



वास्तविक पहचान होती है कि रंगमहल के मूल मिलावा में विराजमान परात्म के नूरी तन ही ब्रह्मसृष्टियों के वास्तविक तन हैं।

**भावार्थ-** जिस प्रकार आतशी शीशे में सूर्य की उपस्थिति एवं दाहकता का बोध होता है, उसी प्रकार श्री राज जी के परमसत्य (मारिफत, चिदानन्द) स्वरूप में जो अनन्त सागर भरे हैं, वे ही आठों दिशाओं में आठ सागरों के रूप में व्यक्त हैं। श्री राज जी के नूरी स्वरूप में जो अनन्त सुगन्धि, ज्योति, और सौन्दर्य का सागर क्रीड़ा कर रहा है, वही आग्नेय दिशा में नूर का सागर है। इसी प्रकार श्री राज जी के (वहदत के) नूरी स्वरूप में अनन्त नूर की जो जल रूपी कान्ति, शोभा, आभा झिलमिला रही है, वही दक्षिण दिशा में प्रकट होकर नीर सागर के रूप में शोभायमान है।

नूर नैरित अंग उजले, सोभा सुन्दर सागर खीर।

हक इलम देखावे उरफान, पिएं इस्क प्याले सूरधीर॥३॥

श्री राज जी के एकत्व (वहदत) स्वरूपों में अंगों की उज्ज्वलता की जो अपार नूरमयी सुन्दर शोभा आयी है, वह दूध के सागरों के समान दृष्टिगोचर हो रही है। इस शोभा की लहरें नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम के मध्य) दिशा में प्रकट होकर क्षीर सागर के रूप में शोभायमान हैं। धनी की तारतम वाणी ही इस सागर के गहन रहस्यों की पहचान कराती है। परमधाम की आत्मायें इस सागर (वहदत) में प्रवाहित होने वाले प्रेम (इश्क) रस का (प्यालों को) पान करती हैं।

**भावार्थ-** प्रेम-युद्ध में मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही विजय प्राप्त कर पाती हैं, इसलिये इस चौपाई में उन्हें "सूरधीर" कहा गया है। यह विशेषण इस जागनी ब्रह्माण्ड में आयी हुई

आत्माओं के लिये है। जिस प्रकार दूध में जल ओत-प्रोत (हिला-मिला) होता है, उसी प्रकार एकदिली (वहदत) के सागर में सभी स्वरूप निमग्न हैं, इसलिये इसे क्षीर (दूध) सागर कहा गया है।

**नूर दधि सागर सीतल, नूर पछिम अंग पूरन।**

**ए सुख अतंत हमेसा, नूर वाहेदत पूर रोसन॥४॥**

श्री राज जी के अंग-अंग में प्रेम की शीतल दृष्टि का जो अनन्त (पूर्ण) सागर लहरा रहा है, वह पश्चिम दिशा में प्रकट होकर दधि सागर कहलाता है। इसमें सर्वदा ही अनन्त आनन्द क्रीड़ा करता है। वहदत के सभी नूरी स्वरूपों में इसका रस भरा होता है।

**भावार्थ-** प्रेम की शीतल दृष्टि को दर्शाने के लिये इस सागर को दधि सागर के नाम से सम्बोधित किया गया

है। यह युगल स्वरूप की शोभा और श्रृंगार का सागर है, जिसमें वहदत के सभी स्वरूप (सखियाँ) समाहित हो जाते हैं।

**नूर वाइब-बल पूरन, नूर जहूर समन सागर।**

**परख पूरन सुख सुन्दर, सब बिध नूर नजर॥५॥**

श्री राज जी के वहदत (एकत्व) स्वरूप में अनन्त प्रेम के सागर का जो प्रकटन (जहूर) है, उसकी लहरें वायव्य दिशा में घृत सागर के रूप में दृष्टिगोचर हो रही हैं। इस सागर से धनी के अति सुन्दर एवं सुखदायी स्वरूप की पूर्ण पहचान होती है और परमधाम की नूरमयी शोभा भी हर प्रकार से दिखायी देने लगती है।

**भावार्थ-** पश्चिम तथा उत्तर के मध्य की दिशा वायव्य कहलाती है। घृत स्निग्ध (चिकना) होने के कारण प्रेम

का प्रतीक है, इसलिये प्रेम (इश्क) के सागर को घृत सागर कहा गया है।

**नूर मीठा मधु उत्तर, सुख अतंत अंगों अंग।**

**ए विध जाने रस रसना, उपजत इनके संग॥६॥**

श्री राज जी के अंग-अंग में माधुर्यता (मिठास) के जो अनन्त सागर लहरा रहे हैं, उनकी लहरें उत्तर दिशा में अत्यन्त आनन्दमयी मधु (शहद) सागर के रूप में शोभायमान हो रही हैं। धाम धनी के अंग-अंग में निहित माधुर्यता के रस का स्वाद लेने वाली रसना (आत्मा) ही इस सागर के आनन्द को यथार्थ रूप में जानती है।

**भावार्थ-** श्री राज जी के अंग-अंग में माधुर्यता के जो अनन्त सागर दिखायी पड़ते हैं, वे उनके दिल से प्रकट होते हैं। इसी प्रकार, आठों दिशाओं में जो सागरों का

स्वरूप प्रकट होता है, वह भी श्री राज जी के सम्पूर्ण स्वरूप में दृष्टिगोचर होने वाले सागरों का ही व्यक्त (प्रकट) रूप है। इस प्रकार परमधाम की सम्पूर्ण हकीकत (व्यक्त स्वरूप) का मूल श्री राज जी का नख से शिख का सम्पूर्ण स्वरूप (मारिफत) है, जिसके मूल में श्री राज जी का दिल है—

जो गुन हिरदे अंदर, सो मुख देखे जाने जाए।

ऊपर सागरता पूरन, तार्थें दिल की सब देखाए॥

श्रृंगार २०/३६

एक बूंद आया हक दिल से, तिन कायम किए थिर चर।

इन बूंद की सिफत देखियो, ऐसे हक दिल में कई सागर॥

श्रृंगार ११/४५

प्रतिबिम्ब का स्वरूप बिम्ब (मूल रूप) जैसा ही प्रतीत होता है, इसलिये प्रायः मनीषियों ने आठों

दिशाओं में दृश्यमान आठों सागरों को श्री राज जी के स्वरूप में निहित आठ सागरों का प्रतिबिम्ब माना है। किन्तु यह भी ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि स्वलीला अद्वैत में प्रतिबिम्बवाद का सिद्धान्त पूर्णतया उचित नहीं होता, क्योंकि उसमें सब कुछ ब्रह्मरूप होता है। वस्तुतः मारिफत का हकीकत में प्रकटीकरण ही इसका समाधान कहा जा सकता है।

लीला की अनुभूति हकीकत में ही सम्भव है , मारिफत में नहीं, क्योंकि वह अनन्त है और उसमें डुबकी लगाने के पश्चात् जब ब्रह्मांगनायें स्वयं के अस्तित्व का आभास ही नहीं कर पायेंगी तो लीला की अनुभूति कैसे करेंगी। इसलिये जिस प्रकार मारिफत "सागर" की हकीकत का स्वरूप "लहरें" होती हैं, उसी प्रकार आठों दिशाओं में लीला के लिए हकीकत रूप आठों सागर हैं

और मारिफत में श्री राज जी का सम्पूर्ण स्वरूप, किन्तु उसका भी मूल श्री राज जी का दिल है, जो परम सत्य है, ऋत् है।

**नूर अमृत सागर ईसान, सुख सीतल सुन्दर।**

**नूर नजर भर देखिए, सुख सब बाहेर अन्दर॥७॥**

श्री राज जी के हृदय में अपनी अँगरूपा अँगनाओं को आनन्द देने के लिये शीतलता एवं सुन्दरता के जो अनन्त सागर भरे हैं, उनकी लहरें ईशान दिशा में अमृत (रस) सागर के रूप में सुशोभित हो रही हैं। हे साथ जी! आप इसे अपनी आत्मिक दृष्टि से जी भरकर देखिये। इसमें अन्दर-बाहर आनन्द ही आनन्द है।

**भावार्थ-** प्रेम दस रसों में प्रवाहित होता है, इसलिये इस सागर में प्रेम के दसों रस समाहित हैं।



पूर्व एवं उत्तर के मध्य की दिशा ईशान कहलाती है।

**नूर पूर सुख सागर, अतंत पूरव सुखदाए।**

**ए सबरस सब विध सब सुख, नूर सब अंगों उपजाए॥८॥**

श्री राज जी के नख से शिख तक के सम्पूर्ण स्वरूप (हृदय) में अनन्त प्रेम और आनन्द देने के लिये जो अनन्तानन्त सागर विद्यमान हैं, उनका व्यक्त स्वरूप पूर्व दिशा में नूरमयी सर्वरस सागर है। यह सागर अँगनाओं के अंग-अंग में हर प्रकार का सम्पूर्ण सुख देने वाला है।

**भावार्थ-** इस सर्वरस सागर में अन्य सभी सागर विद्यमान हैं। आत्मिक दृष्टि की गहराइयों में देखने पर यह आभास होता है कि परमधाम के प्रत्येक सागर में अन्य सभी सागर बातिनी (गुह्य) रूप से विद्यमान हैं।

ए तरफ आठों नूर सागर, अंग आवत नूर मुतलक।

ए देखतहीं सुख सागर, ए सहूर इलम नूर हक॥९॥

रंगमहल की आठों दिशाओं में विद्यमान ये आठों सागर निश्चित रूप से मूल मिलावा में विराजमान श्री राज जी के अंग-अंग के नूर (प्रेम, माधुर्य, एकत्व, ज्ञान, आनन्द आदि) से प्रकट हुए हैं। धाम धनी की तारतम वाणी के चिन्तन से यह विदित होता है कि इनका साक्षात्कार करने (इनको देखने) पर आत्मा के धाम-हृदय में सागर के समान अनन्त सुख की अनुभूति होती है।

आठ तरफ जुदी जुदी जिमी, नूर एक से दूजी सरस।

नूर बीच जिमी बीच सागर, जिमी सिफत न पार अरस॥१०॥

आठों दिशाओं में स्थित आठों सागरों के बीच-बीच में आठ अलग-अलग जमीनें हैं, जिनमें प्रत्येक की शोभा

दूसरे से अधिक अच्छी लगती है। दो जमीनों के बीच सागर और दो सागरों के बीच जमीन की शोभा आयी है। परमधाम की इन आठों जमीनों की रमणीयता की कोई सीमा नहीं है।

**पार जिमी ना पार सागर, नूर पाइए न काहू इंतहाए।**

**नूर जिमी देखो नूर सागर, नूर अपार अर्स गिरदवाए॥११॥**

न तो आठों सागरों की सीमा है और न उनके बीच में आयी हुई आठों जमीनों की सीमा है। यहाँ का सौन्दर्य अनन्त है। हे साथ जी! आप आठों नूरमयी जमीनों तथा आठों नूरी सागरों की अलौकिक शोभा को देखिए। रंगमहल के चारों ओर आठों दिशाओं में आये हुए इन सागरों तथा जमीनों की अनन्त सुषमा है।

**भावार्थ—** आठ सागरों के बीच में आयी हुई जमीन को

मात्र जमीन नहीं समझना चाहिए। इन जमीनों में बड़ी – बड़ी हवेलियाँ हैं, जो बड़ी रांग की हवेलियों के समान ही लम्बी-चौड़ी-ऊँची हैं। इन आठों जमीनों में अलग – अलग रंगों की शोभा वाली अनन्त नूरमयी हवेलियाँ, महल, मन्दिर, बगीचें, नहरें, चहबच्चे, टापू महल, ताल, दहलान, गुम्मत आदि शोभायमान हैं।

**नूर पसु पंखी नूर में, जिमी जुदी जुदी नई सिफत।**

**नई कहूं हिसाब इतके, ए नूर खूबी हमेसा अतंत॥१२॥**

यहाँ के पशु-पक्षी तथा धरती सभी नूरी हैं। इनकी शोभा हमेशा ही अलग-अलग, नये-नये रूपों में दिखती है। नयी शोभा तो मैं यहाँ के भावों से कह रही हूँ, अन्यथा परमधाम में कोई नया-पुराना होता ही नहीं। नित्य नवीनता में एकरसता के साथ केवल

परिवर्तनशीलता है। यह नूरी शोभा हमेशा अनन्त दिखायी देती है।

पार न जिमी अर्स को, पार ना पसु जानवर।

पार नहीं बिरिख बाग को, पार ना पहाड़ सागर॥१३॥

परमधाम की जमीन का विस्तार अनन्त है। पशु-पक्षियों की संख्या भी असीम है। इसी प्रकार, नूरमयी वृक्षों एवं बागों की शोभा भी शब्दातीत है। पर्वतों एवं सागरों की रमणीयता (सुन्दरता) को भी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

सब सुख एक एक चीज में, सबकी सिफत नहीं पार।

अर्स पहाड़ या तिनका, सब देखेही पाइए बेसुमार॥१४॥

परमधाम की प्रत्येक वस्तु में परमधाम के सभी सुख

विद्यमान हैं। इस प्रकार सभी पदार्थों की महिमा का वर्णन हो पाना असम्भव है। चाहे रंगमहल या पहाड़ (माणिक या पुखराज) अथवा एक छोटा सा तिनका ही क्यों न हो, सभी की सुन्दरता इतनी अधिक है कि इनमें से किसी को भी देखने पर अत्यधिक आनन्द मिलता है।

**ए पाल आड़े जिमी सागर, नूर लगी रांग आसमान।**

**इंतहाए नहीं गिरद फिरवली, नूर सिफत कहा कहे जुबान॥१५॥**

प्रत्येक सागर और जमीन के बीच में पाल (एक भूमिका ऊँचे चबूतरे) की शोभा है, जिसमें रांग की एक महाहवेली १४ करोड़ ४० लाख भूमिका की ऊँची है। यह आकाश को छूती हुई प्रतीत होती है। इस प्रकार की कुल ८० महाहवेलियाँ ३२ हाँस में सम्पूर्ण परमधाम को घेरकर आयी हैं। इन हवेलियों की शोभा की कोई सीमा

नहीं है। यह जिह्वा भला इनकी अनन्त सुन्दरता का क्या वर्णन करेगी।

**भावार्थ-** बड़ी रांग के अन्तर्गत कुल ८० महाहवेलियाँ (दीवार), आठ सागर, तथा आठ जिमी विद्यमान हैं। चौड़ाई में इसके तीन भाग करने पर छोटी रांग की तरफ प्रथम भाग में ३२ हाँस में ३२ महाहवेलियाँ हैं। बाहरी तरफ के तीसरे भाग में भी इसी प्रकार (३२ हाँस में) ३२ महाहवेलियाँ हैं, मध्य के द्वितीय भाग में चारों दिशाओं तथा चारों कोनों में आठ सागर हैं।

प्रत्येक दो सागरों के मध्य एक जिमी है, इस प्रकार आठ सागरों के मध्य आठ जिमी हैं, तथा इन सागरों व जिमी की सन्धियों में १६ महाहवेलियाँ हैं। इस प्रकार प्रत्येक सागर एवं जमीन की चारों दिशाओं एवं चारों कोनों में भोम – भर ऊँचे चबूतरे पर कुल आठ

महाहवेलियाँ शोभायमान हैं।

नूर रांग तरफ जो देखिए, इंतहाए न कहूं आवत।

पार आवे जिन चीज को, तिनकी होए सिफत॥१६॥

हे साथ जी! यदि आप बड़ी रांग की इन हवेलियों की ओर देखें, तो आपको इनका कहीं भी अन्त दिखायी नहीं देगा। किसी की शोभा का वर्णन तो तभी हो सकता है, जब उसकी कोई सीमा हो।

इंतहाए नहीं जिन चीज को, ताकी सिफत न होए जुबांए।

सहूर इत सो क्या करे, जो सिफत न सब्द माहें॥१७॥

जिस वस्तु के विस्तार की कोई सीमा ही न हो, उसकी शोभा का वर्णन भी इस जिह्वा से नहीं हो सकता। जब शब्दों में उसकी शोभा का वर्णन ही नहीं हो सकता, तो



उसके विषय में चिन्तन कैसे किया जा सकता है?

हक ल्याए हिसाब में, जो कहावे अर्स अपार।

सो अर्स दिल मोमिन का, ए किन बिध कहूं सुमार॥१८॥

अनन्त कहे जाने वाले परमधाम को भी धाम धनी ने गणना की दृष्टि से सीमाबद्ध कर दिया है। जिस आत्मा का दिल ही धाम बन जाता है, उसकी शोभा को भी सीमित कैसे कहा जा सकता है।

**भावार्थ-** जिस आत्मा के धाम-हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हो जाते हैं, उसकी महिमा भी असीम हो जाती है। उसे सांसारिक दृष्टि से कभी भी नहीं देखना चाहिए।

ऐसे ही सागरों रांग के, बारे हजार द्वार।

और खूबी खुसाली ज्यों खिड़कियां, कहूं गिनती न आवे पार॥१९॥

प्रत्येक सागर की चारों दिशाओं में ४ महाहवेलियाँ (रांग) हैं। सागरों की प्रत्येक दिशा में इन हवेलियों के १२-१२ हजार मुख्य द्वार दृष्टिगोचर हो रहे हैं। खिड़कियों (छोटे दरवाजों) की कोई सीमा नहीं है। इनमें रहने वाली खूब खुशालियाँ भी अनन्त हैं।

**भावार्थ-** प्रत्येक महाहवेली में १२ हजार हवेलियों की १२ हजार हारें हैं। प्रत्येक हवेली की चारों दिशाओं में मुख्य दरवाजे हैं। प्रत्येक सागर की चारों दिशाओं में किनारे की १२ हजार हवेलियों के १२ हजार मुख्य द्वार (एक दिशा के) दिखायी दे रहे हैं।

यों अर्स जिमी अपार के, सोभित गिरदवाए द्वार।

रूह के दिल से देख फेर, ज्यों तूं सुख पावे बेसुमार॥२०॥

इस प्रकार, अनन्त परमधाम के सागरों के बीच में जो आठ जमीन हैं, उनकी भी प्रत्येक दिशा में १२००० – १२००० मुख्य द्वार शोभायमान हैं। हे मेरी आत्मा! अब तू अपने धाम-हृदय में इनकी शोभा को बारम्बार देख, जिससे तुझे अगाध सुख का अनुभव हो।

आठ तरफ नूर जिमी के, तरफ आठ नूर सागर।

ए गिन देख द्वार दिल अर्स में, पार न आवे क्यों ए कर॥२१॥

परमधाम की चारों दिशाओं और चारों कोनों में आठ सागर हैं। इनके बीच-बीच में (एक के बाद एक) आठ जमीनें हैं। हे मेरी आत्मा! अब तू अपने धाम-हृदय में इन महाहवेलियों के दरवाजों को गिनकर देख, तो तुम्हें

पता चलेगा कि इनकी कोई सीमा ही नहीं है।

नूर पार जिमी और रांग की, जो फेर देख रूह दिल।

कई पहाड़ मोहोल बाग नेहरें, जिमी बराबर टेढ़ी न तिल॥२२॥

हे मेरी आत्मा! यदि तुम अपने दिल में किसी भी जिमी की बड़ी रांग की ३२ महाहवेलियों के बाहर (रंगमहल की दिशा में) की ओर देखो, तो तुम्हें बहुत से पहाड़ों, महलों, बागों, और नहरों का मनोरम दृश्य दिखायी देगा। सम्पूर्ण धरती भी समतल मिलेगी, तिल मात्र भी कहीं उबड़-खाबड़ (ऊँची-नीची) नहीं दिखायी देगी।

ज्यों फिरती थाल अर्स उज्जल, यों ही साफ सिफत बराबर।

अर्स जिमी कही नूर की, कहूं गढ़ा न ऊंची टेकर॥२३॥

जिस प्रकार किसी गोलाकार थाल की आकृति होती है,

उसी प्रकार परमधाम की धरती अति उज्ज्वल, गोलाकार, स्वच्छ, और समतल आयी है। इसमें न तो कोई गड्ढा है और न ही कोई टीला है, बल्कि सम्पूर्ण धरती नूरमयी है।

**भावार्थ—** सभी प्रकाशमान नक्षत्र गोलाकार ही दर्शाये जाते हैं, इसलिये परमधाम की धरती को भी गोलाकार कहा गया है। किन्तु ऐसा बोधगम्य बनाने के लिये कहा गया है, अन्यथा अनन्त को तो किसी भी आकृति में व्यक्त नहीं किया जा सकता। प्रश्न यह है कि गोलाकृति वाले परमधाम के बाहर क्या है? यदि सत्स्वरूप को पार करने पर सर्वरस सागर आता है, तो दधि सागर के परे क्या होगा?

इसके समाधान में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार इस मायावी जगत के अनन्त आकाश में

असंख्य सूर्य, चन्द्रमा आदि नक्षत्र दृष्टिगोचर होते हैं , उसी प्रकार अनन्त नूरमयी आकाश में २५ पक्षों की शोभा वाला यह परमधाम स्थूल रूप में शोभायमान हो रहा है। नूरी आकाश को भी परमधाम से बाहर नहीं मान सकते। अन्तर केवल इतना ही है कि कालमाया के आकाश में असंख्य नक्षत्र हैं , जबकि परमधाम के नूरी आकाश में मात्र परमधाम ही है , जो अनन्त है। इसलिये श्रीमुखवाणी में स्पष्ट शब्दों में कहा गया – "इन्तहाए नहीं अर्स भोम का, सब चीजों नहीं सुमार।"

पार नहीं बीच थाल के, गिरदवाए ना चौड़ी तूल।

मोहोल पहाड़ नेहेरें सरभर, मुख सिफत कहा कहे बोल॥२४॥

इस थाल जैसी जमीन के बीच की शोभा अनन्त है। यह जमीन चारों ओर से गोल है, कहीं भी लम्बी या चौड़ी

नहीं है। इसके अन्दर महलों, पहाड़ों, और नहरों की शोभा एक समान सुन्दर आयी है। इस मुख से इनकी अनुपम शोभा का वर्णन नहीं हो सकता।

तो नूर रांग पार की क्यों कहूं, जाको सुमार नहीं वार पार।  
वह मोमिन देखें दिल अर्स में, जो दिल अर्स परवरदिगार॥२५॥

तो किसी भी जमीन की (८ जमीनों में से) नूरमयी रांग की ३२ महाहवेलियों के पार (अन्दर सागरों की दिशा में) की शोभा का वर्णन मैं किस प्रकार करूँ। इस शोभा का तो कोई अन्त ही नहीं है। इस शब्दातीत शोभा को ब्रह्मांगनायें अपने धाम-हृदय में देखती हैं, जिसको श्री राज जी अपना बनाकर विराजमान हो गये होते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई का यही निष्कर्ष है कि अनन्त परमधाम को मात्र अपने धाम-हृदय में ही देखा जा

सकता है। इसलिये चितवनि करते समय परमधाम को अपने हृदय में देखना चाहिए, अन्यत्र त्रिकुटी, दसवें द्वार, या बाहर की ओर नहीं।

एक जमीन के अन्दर बड़ी रंग की हवेलियों के तीन भाग हैं। प्रथम भाग में ३२ महाहवेलियाँ आयी हैं। द्वितीय भाग में १६ महाहवेलियाँ तथा तृतीय भाग में ३२ महाहवेलियाँ आयी हैं। इस प्रकार कुल ८० महाहवेलियों की शोभा है।

**कई जातें नूर पंखियन की, कई जातें नूर जानवर।**

**जैसा रंग नूर जिमी का, पसु पंखी रंग सरभर॥२६॥**

यहाँ अनेक जातियों के असंख्य नूरमयी पशु-पक्षी विचरण करते हैं। यहाँ की नूरमयी जमीन का जैसा रंग होता है, उसी रंग के पशु-पक्षी भी होते हैं।



**भावार्थ-** दो सागरों के मध्य जो जिमी है, उसमें दोनों तरफ के सागरों के रंगों की आधी-आधी शोभा है।

नए नए रंगों नूर बाग बन, इंतहाए नहीं बिरिख नूर।  
 ना इंतहाए नूर पसु पंखी, क्यों कहूं इन अंग जहूर॥२७॥  
 यहाँ नये-नये रंगों के नूरमयी बाग तथा वन दिखायी पड़ते हैं, जिनमें अनन्त नूरी वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। इन वनों में क्रीड़ा करने वाले पशु-पक्षियों की संख्या भी असीम है। इन नूरी पशु-पक्षियों की अलौकिक शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

नूर जिमी या तूल चौड़ी, इंतहाए न तरफ आवत।  
 कहूं जुबां अर्स गिनती, अंग अर्स के जानें सिफत॥२८॥  
 यह नूरमयी जमीन इतनी लम्बी-चौड़ी है कि इसका

अन्त ही नहीं है। यदि मैं परमधाम की जिह्वा (रसना) और परमधाम की ही गणना से यहाँ की शोभा को बताऊँ, तो इसका ज्ञान केवल ब्रह्मसृष्टियों को ही हो सकता है।

एक जिमी सिफत जो देखिए, तो जाए निकस नूर उमर।

अपार जिमी इंतहाए सिफत, ए आवत नहीं क्योंकर॥२९॥

यदि केवल एक जमीन की शोभा को देखने लग जायें, तो सारी प्यारी (नूरी) उम्र बीत जायेगी। यहाँ की जमीन का विस्तार भी अनन्त है तथा शोभा भी अनन्त है। ऐसी स्थिति में भला इसका वर्णन कैसे हो सकता है।

**भावार्थ—** जिस प्रकार पूर्व के प्रकरण में आत्मा एवं जीव को भी नूरी कहा गया है, उसी प्रकार आत्मा जीव के जिस शरीर में विराजमान रहती है, उसकी उम्र को भी

नूरी उम्र कहा जायेगा। यह केवल इस जागनी ब्रह्माण्ड के लिये ही है। परमधाम में परात्म की उम्र तो अनादि और अनन्त है।

**नूर जिमी बराबर अर्स की, कहूं चढ़ती नहीं उतार।**

**दूजी सोभा नूर रोसन, जिमी भरी अम्बर झलकार॥३०॥**

परमधाम की यह नूरमयी जमीन पूर्णतया समतल है, कहीं भी ऊँची-नीची नहीं है। इसकी दूसरी शोभा यह है कि यह नूरी प्रकाश से परिपूर्ण है और इसकी झलझलाहट आकाश तक में दृष्टिगोचर होती है।

**कई रंग जिमी केती कहूं, और कई रंग नूर दरखत।**

**सोई जिमी रंग पसु पंखियों, कर तुहीं तुहीं जिकर करत॥३१॥**

यहाँ अनेक रंगों की जमीन है, जिसका मैं कितना वर्णन

करूँ। इसी प्रकार यहाँ कई रंगों के नूरी वृक्ष भी हैं। उस जमीन की शोभा जिस रंग की है, वहाँ के पशु-पक्षी और वृक्ष आदि भी उसी रंग के हैं। ये पशु-पक्षी हमेशा धनी के प्रेम में "तू ही-तू ही" की रट लगाये रहते हैं।

**भावार्थ-** प्रत्येक जमीन सागरों के अनुसार रंग (आधी-आधी दोनों सागरों के रंग) की है। उसी रंग के अनुसार ही वृक्ष, पक्षी, हवेलियाँ आदि हैं।

**ना गिनती नाम जो हक के, सो हर नामें करें जिकर।**

**मुख चोंच सुन्दर सोहनें, बोलें बानी मीठी सकर॥३२॥**

अक्षरातीत श्री राज जी के नामों की गिनती ही नहीं है, अर्थात् अनन्त हैं। ये पशु-पक्षी धनी के प्रत्येक नाम से उन्हें पुकारते हैं। इन पशु-पक्षियों के मुख तथा चोंच बहुत सुन्दर एवं मनमोहक हैं। ये मिश्री से भी अधिक

मीठी वाणी बोलते हैं।

**भावार्थ-** आवाज में मिश्री (मिसरी) घोलना एक मुहावरा है जिसका तात्पर्य होता है, बहुत अधिक मीठा बोलना। परमधाम के पशु-पक्षियों की आवाज हमारी कल्पना से भी अधिक मीठी है।

इस चौपाई में अक्षरातीत के अनन्त नाम कहे गये हैं। पुनः इस चौपाई के निर्देश का उल्लंघन करके केवल एक ही नाम (श्री कृष्ण) को परमधाम में मानना हमारी किस मानसिकता का द्योतक है, इसका उत्तर हमारा हृदय अच्छी तरह से जानता है।

**नूर वाउ चलत बहु विध की, सुगंध सोहत सीतल।**

**सब चीजें खुसबोए नूर पूर, जिमी मोहोल बन जल॥३३॥**

यहाँ अनेक प्रकार की शीतल, मन्द, एवं सुगन्धित नूरी

हवा बहती रहती है। यहाँ की धरती, महल, वन, जल  
आदि सभी वस्तुएँ अनन्त नूर एवं सुगन्धि से भरपूर हैं।

फल फूल बन पसु पंखी बेहेकत, कोई चीज न बिना खुसबोए।  
सदा सुगन्ध सबे सुख दायक, याकी सिफत किन विध होए॥३४॥  
यहाँ के फल, फूल, वन, तथा उनमें रहने वाले सभी  
पशु-पक्षी दिव्य सुगन्धि से भरपूर (ओत-प्रोत) हैं।  
अलौकिक सुगन्धि से रहित कोई भी वस्तु नहीं है। यहाँ  
की सुगन्धि अखण्ड है और सुख देने वाली है। किसी भी  
प्रकार से इस सुगन्धि की प्रशंसा (प्रशस्ति, महिमा) नहीं  
कही जा सकती।

नूर चीज सब चेतन आसिक, बाए बादल बीज अम्बर।  
सब बिध स्वाद पूर पूरन, सुख जाए ना कह्यो क्योंकर॥३५॥

यहाँ की हवा, बादल, इसमें चमकने वाली विद्युत, आकाश आदि प्रत्येक वस्तु नूरमयी और चेतन है, तथा धनी से प्रेम करने वाली है। इनमें प्रत्येक रस (प्रेम, माधुर्य, कोमलता, आनन्द आदि) का भरपूर प्रवाह विद्यमान है। किसी भी प्रकार से इनके अनन्त सुखों का वर्णन नहीं हो सकता।

**पार सोभा ना पार सागर, ना पार टापू ना इमारत।**

**पार टापू ना मोहोल किनारें मोहोल, सोभा आसमान नूर झलकत॥३६॥**

न तो सागरों की मनोहारिता की कोई सीमा है और न उसमें आये हुए टापू महलों की रमणीयता की। टापू महलों के किनारे आयी हुई महाहवेलियों की सुन्दरता की भी कोई सीमा नहीं है। इनकी नूरी शोभा आकाश में झलकार कर रही है।

अर्स सूर कई एक मोहोल में, तैसे मोहोल टापू अपार किनार।

एक मोहोल अम्बर कई बीच में, जुबां क्यों कहे गिनती सुमार॥३७॥

जिस प्रकार परमधाम के एक ही महल में अनेक सूर्य जगमगा रहे होते हैं, उसी प्रकार सागर के अन्दर आये हुए टापू महलों की किनार पर अनन्त महल आये हैं। एक ही महल के बीच में अनेक आकाश शोभायमान हो रहे हैं। इस जिह्वा से इनकी (महलों, सूर्यों, तथा आकाशों की) सीमाबद्ध गिनती कैसे की जा सकती है।

**भावार्थ—** यद्यपि एक ब्रह्माण्ड में एक ही आकाश होता है, किन्तु जैसे मठाकाश एवं घटाकाश का प्रसंग आता है, वैसे ही एक महल में अनेक आकाशों की उपस्थिति का होना असम्भव नहीं है। इस मायावी जगत में जिस प्रकार आकाश अन्य तत्वों का कारण होता है , वैसा परमधाम में नहीं है, बल्कि श्री राज जी का नूर ही



आकाश, महल, सूर्य आदि के रूप में सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि अति विस्तृत महलों में नूरी आकाशों की शोभा अवश्यम्भावी है।

जो कोई होसी अंग अर्स की, और जागी होए हक इलम।  
तो कछू बोए आवे इन सहूर की, जो करे मदत हक हुकम॥३८॥

सुन्दरसाथ के समूह में जो कोई परमधाम की आत्मा हो, तारतम वाणी के ज्ञान से जाग्रत हो गयी हो, तथा धनी का हुक्म (आदेश) भी उसकी सहायता कर रहा हो, तो उसे यहाँ की शोभा को आत्म-दृष्टि से देखने की कुछ सुगन्धि मिल सकती है अर्थात् कुछ अनुभव हो सकता है।

**भावार्थ-** मानसिक एवं बौद्धिक दृष्टि से सहूर का तात्पर्य चिन्तन, मनन, एवं विवेचन से है, जबकि

आत्मिक दृष्टि से सहूर का भाव आत्मिक दृष्टि से देखने से है।

पर जो स्वाद हक उरफान में, सो केहे ना सके जुबां इन अंग।  
जो हक मेहेर कर देवहीं, तो प्याले पीजे हक हादी संग॥३९॥  
किन्तु धनी की पहचान में जो आनन्द होता है, उसे इस शरीर की जिह्वा व्यक्त नहीं कर सकती। हे साथ जी! यदि धाम धनी आप पर मेहर करके प्रेम का प्याला देते हैं, तो आप युगल स्वरूप के साथ उसका अवश्य रसपान कीजिए।

**भावार्थ—** मूल सम्बन्ध, तारतम वाणी के गहन ज्ञान, तथा धनी के आदेश (हुक्म) की छत्रछाया में सागरों आदि की शोभा का अनुभव कर लेना बहुत बड़ी उपलब्धि है, किन्तु धनी के प्रेम में डूबकर उन्हें अपने

हृदय-मन्दिर में बसा लेने की उपलब्धि की प्रशस्ति में कोई भी शब्द नहीं है।

हक मेहेर बड़ी न्यामत, रूह जिन छोड़े एह उमेद।

ए फल सब बंदगीय का, जो कहे मुतलक अर्स भेद॥४०॥

धाम धनी की मेहर सबसे बड़ी निधि है। परमधाम की आत्माओं को धनी से मेहर पाने की आशा कभी भी नहीं छोड़नी चाहिये, क्योंकि वह पल-पल बरसती ही रहती है। परमधाम के परमसत्य (मारिफत) के गुह्य रहस्यों को प्रकट करना तो धनी की इश्क बन्दगी (प्रेम लक्षण भक्ति) का परिणाम है।

जिन दिल हुआ अर्स हक का, सोई लीजो इन अर्स सहूर।

कहे हक हुकम ए मोमिनो, नूर पर नूर सिर नूर॥४१॥

श्री राज जी का हुक्म (आदेश) कह रहा है कि हे साथ जी! जिसका हृदय धनी का धाम बन चुका है अर्थात् जिनके धाम-हृदय में युगल स्वरूप की छवि बस चुकी है, वे अपनी आत्मिक दृष्टि से परमधाम का चिन्तन करें (देखें), क्योंकि उनके लिये ही बेहद और अक्षर से परे परमधाम की शोभा का वर्णन किया गया है।

**इन नूर रांग की रोसनी, क्यों कहूं जुबां इन मुख।**

**द्वार द्वारी कलस कंगूरे, ए लें हक हुकमें मोमिन सुख॥४२॥**

रांग की इन नूरमयी हवेलियों में इतनी ज्योति है कि इस मुख और जिह्वा से उसका वर्णन करना असम्भव है। इन हवेलियों के बड़े-बड़े दरवाजों, छोटे दरवाजों (खिड़कियों), कलशों, तथा कँगूरों के अनुभव का सुख श्री राज जी के आदेश से ब्रह्मात्माओं को प्राप्त होता है।

दोए दोए गुरज बीच द्वार के, दो दो छोटी द्वारी के।

ए छोटे बड़े मेहेराब जो, सोभा क्यों कहूं सिफत ए॥४३॥

प्रत्येक महाहवेली की चारों दिशाओं के मध्य में त्रिपोलिया (दो थम्भों की हार, तीन गलियाँ) मुख्य द्वार के रूप में हैं, जिनके दायें-बायें दो-दो चौरस गुर्ज (चबूतरे) हैं। इनके दायें-बायें ६-६ हजार हवेलियों के मुख्य दरवाजे (छोटे) एवं दायें-बायें २-२ चबूतरे (गुर्ज) हैं। इन छोटे तथा बड़े महाराबों (दरवाजों) की अद्वितीय शोभा का वर्णन किस प्रकार करूँ।

सोभा देत देखाई आसमान में, ऊंची सीढ़ियों नहीं सुमार।

चार चार आगूं द्वार चबूतरे, दो दो बन के रंग नहीं पार॥४४॥

इन गुर्जों (चबूतरों) की अति सुन्दर शोभा आकाश में (ऊपर की ओर जाती) दिखायी दे रही है। इन दरवाजों

के सामने आयी हुई उँची सीढ़ियों की शोभा की कोई सीमा ही नहीं है। प्रत्येक दरवाजे के आगे चार-चार चबूतरे हैं। दो चबूतरे ऊपर तथा दो चबूतरे सामने चाँदनी चौक में आये हैं, जिनके ऊपर लाल तथा हरे रंग के वृक्षों की अपार छटा दिखायी दे रही है।

**दोए मुनारों लगते, कई छतें चबूतरों पर।**

**दोए बीच सीढ़ियां आगूं द्वारके, जुबां सिफत पोहोंचे क्यों कर॥४५॥**

मुख्य द्वार के दायें-बायें जो दो चबूतरे आये हैं, उन पर बहुत सी छतें शोभायमान हो रही हैं, जो मीनारों के समान सुशोभित हो रही हैं। दोनों चबूतरों के बीच में दरवाजे के आगे अति सुन्दर सीढ़ियाँ आयी हैं, जिनकी मनोहारिता का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

बिरिख बाग आगूं सब चबूतरों, कई जुदे जुदे बागों रंग बन।

आगूं देत खूबी इन द्वारने, बन आसमान कियो रोसन॥४६॥

सभी चबूतरों के आगे वृक्षों के बाग आये हैं। यहाँ के वनों में अलग-अलग रंगों वाले बहुत से बाग दृष्टिगोचर हो रहे हैं। दरवाजों के आगे इन वनों की अति रमणीय शोभा दिखायी देती है। वनों की नूरी ज्योति से सम्पूर्ण आकाश जगमगाता रहता है।

**विशेष-** हवेलियों के सामने बगीचे शोभायमान हो रहे हैं। इन बगीचों में ही चाँदनी चौक है।

सब बागों सोभित रस्ते, कहूं घट बढ़ नहीं हार।

कई चौक मोहोल मन्दिरन के, कई गली चली बांध किनार॥४७॥

सभी बागों में सुन्दर-सुन्दर मार्ग शोभायमान हैं। मार्गों या वृक्षों की पंक्तियों में कहीं कमी या अधिकता नहीं है।

महलों तथा मन्दिरों की शोभा से युक्त बहुत से चौक आये हैं। बहुत सी गलियाँ हैं, जो पंक्तिबद्ध रूप से पूर्णतया सीधी गयी हैं।

लाल जिमी नूर लाल बन, सोभित पसु नूर लाल।

लाल जानवर लाल पर, रंग फल फूल सब गुलाल॥४८॥

परमधाम की दक्षिण दिशा में नीर सागर आया है, जिसका रंग लाल है। यहाँ की सम्पूर्ण नूरमयी जमीन, वन, पशु-पक्षी, फल-फूल आदि सभी लाल रंग की शोभा से युक्त हैं।

नूर जरद जिमी जानवर, नूर पीले पसु जरद जोत।

फल फूल पीले बिरिख बेलियां, नूर पीला आकास उद्योत॥४९॥

नैऋत्य दिशा में क्षीर सागर है, जिसका रंग पीला है।



यहाँ की सारी जमीन, पशु-पक्षी आदि सभी पीले रंग की नूरी ज्योति से युक्त हैं। फल-फूल, वृक्ष, लतायें, तथा आकाश भी पीले रंग की आभा से शोभायमान है।

नीली जिमी नूर पाच की, नूर नीले पसु जानवर।

नूर नीला आसमान जिमी, ए नूर खूबी कहूं क्यों कर॥५०॥

पश्चिम दिशा में हरे रंग का दधि सागर है। यहाँ की नूरी जमीन पाच के समान हरे रंग की है। पशु-पक्षी तथा आकाश भी हरे रंग की छवि धारण किये हुए हैं। इस अद्भुत नूरी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

सेत जिमी सेत पसु पंखी, नूर आकास उज्जल।

उज्जल नंग नूर सबे, बिरिख बेल सेत फूल फल॥५१॥

आग्नेय दिशा में नूर सागर आया है, जिसका रंग श्वेत है।

यहाँ की जमीन, पशु-पक्षी, तथा नूरी आकाश सभी श्वेत (उज्ज्वल) रंग के हैं। सभी नूरमयी नग, वृक्ष, लतायें, फल-फूल आदि श्वेत रंग में जगमगा रहे हैं।

नूर स्याम जिमी आसमान लग, नूर स्याम पसु पंखी नूर।

फल फूल स्याम नूर बिरिख बेली, नूर पसु पंखी सब जहूर॥५२॥

उत्तर दिशा में श्याम रंग का मधु सागर आया है। यहाँ की जमीन और आकाश श्याम रंग के ही हैं। नूरी पशु-पक्षी, फल, फूल, वृक्ष, तथा लतायें सभी श्याम रंग की आभा में ओत-प्रोत हैं।

**द्रष्टव्य-** शहद (मधु) का रंग पूर्णतया काला नहीं होता, बल्कि उसमें लालिमा का मिश्रण होता है। इसलिये श्याम रंग को काले रंग के भाव में नहीं ग्रहण करना चाहिए।

नूर जिमी आसमानी आसमान नूर, रंग पसु पंखी नूर आसमान।

फल फूल बेली सोई रंग, नूर सोभा जंग सके न भान॥५३॥

वायव्य दिशा में घृत सागर है, जिसका रंग आसमानी है। यहाँ की नूरी जमीन तथा आकाश का रंग आसमानी है। सभी नूरी पशु-पक्षी आसमानी रंग के हैं। यहाँ तक कि फल, फूल, वृक्ष, और लतायें भी आसमानी रंग की शोभा में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस सागर से उठने वाली आसमानी रंग की आभामयी किरणें आपस में टकराकर युद्ध का मनोहर दृश्य उपस्थित कर रही हैं, किन्तु टकराने के पश्चात् भी कोई किसी को नष्ट नहीं कर पाती क्योंकि सभी अखण्ड हैं।

दस दस रंग बिरिख बेल में, फल फूल रंग दस दस।

रंग दस दस जिमी आकासें, नूर पसु पंखी याही रंग रस॥५४॥

ईशान दिशा में दस रंगों वाला रस सागर शोभायमान हो रहा है। यहाँ के वृक्षों, लताओं, फलों, तथा फूलों में दस-दस रंग सुशोभित हो रहे हैं। सम्पूर्ण जमीन, आकाश, तथा पशु-पक्षी भी अति मधुर दस-दस रंग की शोभा से युक्त हैं।

कई रंगों जिमी कई आकासैं, पसु पंखी बन कई रंग।  
सब चीजों सोभा सब आसमान, सोभा नूर सबों में जंग॥५५॥

पूर्व दिशा में सर्वरस सागर आया है। यहाँ की जमीन, आकाश, पशु-पक्षी, वन आदि सभी अनन्त रंगों की अति मनोहर शोभा को धारण किये हुए हैं। यहाँ की प्रत्येक वस्तु अनन्त रंगों वाली है। इनसे उठने वाली नूरी किरणें आपस में टकराकर युद्ध का मनोरम दृश्य उपस्थित कर रही हैं।

अग्नि ईसान लाल नूर, पीत नीर रंग दखिन।

नैरित खीर नीला रंग, दधि सेत पछिम रोसन॥५६॥

आग्नेय दिशा के नूर सागर और ईशान दिशा के रस सागर में दक्षिण दिशा के नीर सागर का लाल रंग आया है। दक्षिण के नीर सागर में नैऋत्य दिशा के क्षीर सागर का पीला रंग आया है। इसी प्रकार, नैऋत्य दिशा के क्षीर सागर में पश्चिम दिशा के दधि सागर का हरा रंग आया है, और दधि सागर में आग्नेय दिशा के नूर सागर का श्वेत रंग आया है।

**भावार्थ**— दक्षिण दिशा में सखियों की शोभा का जो नीर सागर है, उसके लाल रंग की आभा नूर सागर और नीर सागर में कही गयी है। इसका कारण इस प्रकार है—

अक्षरातीत श्री राज जी अष्ट प्रहर चौंसठ घड़ी, बिना कारण सखियों के, अति अल्प मात्र भी कार्य

(लीला) नहीं करते हैं। उन्होंने नूर का स्वरूप सखियों के लिये (कारण) ही धारण किया है। सखियों के स्वरूप से ही मूल निस्बत (सम्बन्ध) है। इसलिये, दोनों सागरों नूर एवं रस का कारण नीर है और कार्य के रूप में नूर तथा रस सागर है। कार्य के रोम-रोम में कारण का रंग होता है। यही कारण है कि नूर सागर तथा रस सागर में नीर सागर (सखियों की शोभा) का लाल रंग आया है।

दक्षिण दिशा के नीर सागर में नैऋत्य दिशा के क्षीर सागर के पीले रंग की आभा पड़ने का अभिप्राय यह है कि मात्र ब्रह्मसृष्टियों में ही एकदिली (एकत्व) है। इसलिये क्षीर सागर जो वहदत का सागर है, उसका पीला रंग नीर सागर में आता है।

पश्चिम दिशा में स्थित दधि (वहदत के श्रृंगार) सागर के हरे रंग की आभा के क्षीर सागर में पड़ने का

आशय यह है कि श्रृंगार के रस का आनन्द एकत्व (वहदत) में ही परिपूर्ण होता है और एकदिली का लक्ष्य श्रृंगार होता है। यही कारण है कि दधि सागर का हरा रंग क्षीर सागर के पीले रंग में आता है।

इसी प्रकार, पश्चिम की दिशा में विद्यमान दधि (वहदत के श्रृंगार के) सागर में नूर सागर के श्वेत रंग की छटा पड़ने का भाव यह है कि नूर का रंग वस्त्रों एवं आभूषणों में परिपूर्ण होता है अर्थात् वस्त्रों और आभूषणों का मूल कारण नूर ही है। नूर का स्वरूप शब्दातीत सौन्दर्य की माधुर्यता है, जो किसी भी प्रमाण से व्यक्त नहीं की जा सकती। इसलिये नूर सागर का श्वेत रंग दधि सागर में माना गया है।

इस सम्पूर्ण प्रसंग को उपरोक्त रेखाचित्र द्वारा अति सरलता से समझा जा सकता है।

घृत वाइवबल स्याम रंग, रंग आसमानी मधु उत्तर।

दस रंग अमृत ईसान, रस पूरव रंग सरभर॥५७॥

वायव्य दिशा में घृत (इश्क) सागर आया है, जिसका रंग आसमानी कहा जाता है। उत्तर दिशा में मधु (इल्म) सागर है, जिसका रंग श्याम है। इश्क (प्रेम) और इल्म (ज्ञान) एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं। इश्क का प्राण इल्म है और इल्म का प्राण इश्क है। इसलिये इश्क (घृत) सागर के आसमानी रंग में इल्म के सागर की श्याम रंग की आभा पड़ती है और उसका रंग श्याम हो जाता है।

इसी प्रकार इल्म के सागर के श्याम रंग में इश्क के सागर की आसमानी रंग की आभा पड़ती है, जिससे उसका रंग आसमानी हो जाता है। ईशान दिशा में रस (अमृत) सागर है, जिसमें दस रंग आये हैं। ये दस रंग पूर्व दिशा में आये सर्वरस सागर के रंग के समान हैं। पूर्व



दिशा में सर्वरस सागर है, जिसमें सभी (अनन्त) रंगों का समावेश है।

ए-साफ अग्नि नूर उज्जल, दखिन नीर रंग लाल।

नैरित खीर पीत रंग, दधि पछिम नीला कमाल॥५८॥

आग्नेय दिशा में अति उज्ज्वल श्वेत रंग का नूर सागर है। दक्षिण दिशा में लाल रंग का नीर (सखियों की शोभा का) सागर है। नैऋत्य दिशा में पीले रंग का क्षीर (वहदत का) सागर है, और पश्चिम दिशा में अति सुन्दर हरे रंग का दधि (वहदत के श्रृंगार का) सागर आया है।

रंग जिमी दिस सागर, एक एक दोए बीच जान।

ले इस्क गिन अग्नि से, ज्यों सब होए अर्स पेहेचान॥५९॥

जमीन का रंग उसके दायें-बायें के सागरों के अनुसार

होता है, अर्थात् आधी जमीन एक ओर के सागर के रंग के अनुसार होती है और शेष आधी जमीन दूसरी ओर के सागर के रंग के अनुसार होती है। हे मेरी आत्मा! तू अपने हृदय में धनी का प्रेम लेकर आग्नेय दिशा में स्थित नूर सागर से लेकर पूर्व दिशा में स्थित सर्वरस सागर तक को देख, जिससे तुझे परमधाम की सम्पूर्ण पहचान हो जाये।

**नूर नीर खीर दधि सागर, घृत मधु एक ठौर।**

**रस सब रस सागर, बिना मोमिन न पावे कोई और॥६०॥**

नूर, नीर, क्षीर, दधि, घृत, मधु, रस, और सर्वरस सागर मूलतः श्री राज जी के हृदय में निवास करते हैं। ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी इनका रस नहीं ले पाता।

दो दरिया बीच एक जिमी, दो जिमी बीच दरिया एक।

यों आठ दरिया बीच आठ जिमी, गिन तरफ से इन विवेक॥६१॥

दो सागरों के बीच में एक जमीन है तथा दो जमीन के बीच में एक सागर है। इस प्रकार आठ सागरों के बीच में आठ जमीन है। हे मेरी आत्मा! इस प्रकार, तू विवेकपूर्वक इन सागरों को गिन।

दरियाव जिमी परे रांग के, फिरते न आवे पार।

देख जिमी या सागर, कहूं गिनती न पाइए सुमार॥६२॥

रांग की हवेलियों के पीछे (बीच में) सागर और जमीन चारों ओर घेरकर आये हैं। उनकी शोभा अपरम्पार है। हे मेरी आत्मा! तू अपनी इच्छानुसार जमीन की शोभा को देख या सागरों की शोभा को देख। इनमें लीला रूप सभी सामग्रियों (वृक्ष, पशु-पक्षी, महल, मन्दिर आदि) की

कोई भी गिनती नहीं कर सकता।

और कही जो बिध रांग की, कलस कंगूरे बीच आसमान।

द्वार द्वारी कही गिनती, ए क्यों होए सिफत बयान॥६३॥

यद्यपि मैंने रांग की गगनचुम्बी हवेलियों तथा उनकी छत पर आये हुए कलशों और कँगूरों की शोभा का यथासम्भव वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त बड़े एवं छोटे दरवाजों की गिनती भी यहाँ के माप के अनुसार बतायी है, फिर भी वास्तविकता यह है कि इनकी शोभा तथा माप का वर्णन किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता।

प्रकरण ॥४३॥ चौपाई ॥२४५४॥

## मोहोल मानिक पहाड़

इस प्रकरण में माणिक पहाड़ का विवरण दिया गया है। नूरमयी माणिक के लाल नग में पहाड़ के समान ऊँचे अति विस्तृत हवेलियों का समूह होने के कारण ही इसे महल की संज्ञा दी गयी है।

**साथजी देखो मोहोल मानिक, जो कहे द्वार बारे हजार।**

**सोभा सुन्दरता इनकी, ए न आवे बीच सुमार॥१॥**

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! आप माणिक पहाड़ रूपी महल की शोभा को देखिए, जिसके १२००० हाँसों में १२००० दरवाजे शोभायमान हो रहे हैं। इनकी शोभा-सुन्दरता की कोई भी सीमा नहीं है।

**विशेष-** माणिक पहाड़ के अन्दर जो माणिक के महल

आये हैं, उनमें १२००० बड़े द्वार नहीं, बल्कि छोटे द्वार ही आये हैं।

एक देख्या मोहोल मानिक का, ताए बड़े द्वार बारे हजार।  
 हिसाब न छोटे द्वारों का, सोभा सिफत न आवे पार॥२॥  
 माणिक पहाड़ रूपी जो महल मैंने देखा है, उसमें  
 १२००० बड़े दरवाजे आये हैं। इसके अन्दर आये हुए  
 छोटे दरवाजों की तो कोई सीमा ही नहीं है। इनकी शोभा  
 और महिमा (प्रशस्ति) अनन्त है।

ले जिमी से ऊपर मोहोल मानिक, कम ज्यादा कहूं नाहें।  
 सरभर सोभा सब इमारतें, जल बन हिंडोले मोहोलों माहें॥३॥  
 माणिक पहाड़ में नीचे के चबूतरे (प्रथम भूमिका) से  
 ऊपर १२०००वीं भूमिका तक पुखराज की भांति ही

एक समान शोभा (लम्बाई, चौड़ाई, एवं बनावट) आयी है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई कहीं पर कम या अधिक नहीं है। सभी भवनों की शोभा एक समान है। इन महलों में जल, वृक्षों, तथा हिण्डोलों की मनोहर शोभा दिखायी देती है।

**कई नेहरें कई चादरें, कई फल फूल बन सोभित।**

**ऊपर झरोखे सब बिध तालों, कहूं गिनती न सोभा सिफत॥४॥**

माणिक पहाड़ में कई स्थानों पर बहुत सी नहरें और जल की मोटी धारायें सुशोभित हो रही हैं। बहुत से स्थानों पर फल, फूल, तथा वन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। माणिक पहाड़ की चाँदनी के मध्य में ताल और टापू महल की शोभा है। टापू महल की बाहरी हार मन्दिरों की बाहरी दीवार में २-२ दरवाजे और १-१ झरोखे आये

हैं, जिनसे ताल की अति सुन्दर छवि दिखायी देती है।  
इस अनुपम सुषमा को किसी भी प्रकार से शब्दों में व्यक्त  
नहीं किया जा सकता।

मानिक मोहोल रतन मय, झलकत जोत आकास।

नूर पूरन पूर भरया, रूह खोल देख नैन प्रकास॥५॥

माणिक पहाड़ रूपी यह महल नूरमयी रत्नों से जड़ा  
हुआ है। इसकी विलक्षण ज्योति आकाश में झलकार कर  
रही है। यह महल अनन्त नूर के प्रवाह से भरपूर है। हे  
मेरी आत्मा! तू अपने नेत्रों को खोलकर इसकी अद्भुत  
प्रकाशमयी शोभा को देख।

मोहोल मध्य मानिक का, नूर पहाड़ मोहोल गिरदवाए।

बड़े बड़े जोड़े छोटे छोटे, बराबर जुगत सोभाए॥६॥



माणिक पहाड़ का मुख्य भवन (महल) १२००० हाँस का १२००० भूमिका ऊँचा है। यह माणिक पहाड़ के मध्य में एक भूमिका ऊँचे चबूतरे के ऊपर आया है। इसके चारों ओर (बगीचों के चारों कोनों में ) ताल के महल घेरकर आये हैं। इन महलों की १२००० की १२००० हारें घेरकर शोभायमान हो रही हैं। प्रत्येक अगली (बाहरी) हार की ऊँचाई १-१ भूमिका कम होती जाती है। इस प्रकार बड़े-बड़े और छोटे-छोटे महल युक्तिपूर्वक शोभा दे रहे हैं (यह अगली सातवीं चौपाई में भी स्पष्ट हो जाता है)।

**चारों तरफों मोहोल बीच ताल, चारों तरफों हिंडोले।**

**एक हिंडोले माहें झूलें, हक हादी रूहें भेले॥७॥**

ताल के चारों ओर पाल पर महल आये हैं, जिनकी

छठीं भूमिका से चारों कोनों के महल १२००० भूमिका तक ऊपर जाते हैं। वहाँ पर इन महलों के बीच चारों दिशाओं में चार हिण्डोले शोभायमान हो रहे हैं। ये ताल के महलों की छठी चाँदनी के ऊपर लटक रहे हैं। ये महाबिलन्द हिण्डोले हैं, जिनमें मात्र किसी एक ही हिण्डोले में श्री राजश्यामा जी और सखियाँ विराजमान हो जाते हैं और झूलते हैं।

**चारों तरफों ऐसे ही झूलें, हक हादी रूहें खेलत।**

**अर्स अजीम के बीच में, मोहोल अम्बर जोत धरत॥८॥**

चारों दिशाओं के इन चार हिण्डोलों में श्री राजश्यामा जी और सखियाँ झूला करते हैं। अर्श-ए-अजीम (परमधाम) के बीच में इस महल की नूरी ज्योति आकाश में छायी रहती है।

बड़े बड़े पहाड़ मोहोल फिरते, बड़े बड़े के संग।

छोटे छोटा जोत सों, करे नूर जोत सों जंग॥९॥

ताल के महल के रूप में चारों ओर बड़े-बड़े महल घेरकर आये हैं। इन बड़े-बड़े महलों के साथ लगकर १-१ भूमिका छोटे महल घेरकर आते गये हैं। इन सभी (छोटे और बड़े) महलों से निकलने वाली नूरी ज्योति आपस में टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत हो रही है।

कई हजारों लाखों दिवालें, जंग करत आसमान।

कई सागर मोहोलों माहें, गिनती नहीं मान॥१०॥

इन महलों की हजारों-लाखों दीवारें आयी हैं, जिनका तेज आकाश में टकराकर युद्ध का मनोरम दृश्य उपस्थित कर रहा है। इन महलों में सागर की तरह जल के बड़े-बड़े कुण्ड हैं, जिनकी कोई गिनती ही नहीं है।

ऊपर मोहोल तले मोहोल, बीच बीच मोहोल गिरदवाए।

इन विध मोहोल भरयो अम्बर, फेर बिध कही न जाए॥११॥

ऊपर, नीचे, मध्य में, तथा चारों ओर घेरकर महल ही महल आये हैं। ऐसा लगता है कि जैसे ऊँचे-ऊँचे महलों से आकाश भर गया है। इनकी अलौकिक शोभा को बार-बार कहना कठिन है।

पहाड़ थंभ जो पहाड़ थुनी, पहाड़ै मोहोल मंडान।

कई मोहोल मोहोलों मिले, कहूं जिमी न देखिए आसमान॥१२॥

इन महलों में आये हुए बड़े-बड़े थम्भे तथा छोटे-छोटे थम्भे (थुनियाँ) पहाड़ के समान ऊँचे आये हैं। महलों के मण्डप भी पहाड़ों की तरह ऊँचे हैं। बहुत से महल तो आपस में इस प्रकार मिले हुए हैं कि उनमें न तो निजधाम की धरती दिखायी देती है और न आकाश

दिखाई देता है।

चौड़े देखे चारों तरफों, ऊंचे लग आसमान।

ऐसे और मोहोल तो कहूं, जो कोई होवे इन समान॥१३॥

चारों ओर चौड़े-चौड़े महल आये हैं, जो आकाश में बहुत ऊँचाई तक गये हैं। इनकी शोभा का वास्तविक वर्णन तो तब होता, जब इनके जैसे और भी महल कहीं पर होते।

अन्दर बाहेर किनार सब, देख सब ठौरों खूबी देत।

ए सोभा सांच सोई देखेगा, जाको हक नजर में लेत॥१४॥

यह मानिक पहाड़ अन्दर-बाहर तथा किनार पर हर जगह अतिशय सुन्दर दिखायी देता है। जिसे धाम धनी अपनी मेहर की छाँव तले लेते हैं, एकमात्र वह ही इस

अखण्ड शोभा का दर्शन कर सकता है।

पहेली फिरती दीवार फेर देखिए, तिन बीच मोहोल अनेक।

जो जो खूबी देखिए, जानों एही नेक सों नेक॥१५॥

माणिक पहाड़ के चबूतरे के किनार पर सर्वप्रथम चारों ओर से घेरकर १२००० हाँस वाली १ मन्दिर की मोटी दीवार आयी है। पहले इसकी शोभा देखिए, पुनः इसके अन्दर जो बहुत से महल आये हैं, उनकी भी शोभा को अवश्य देखिए। आप जिस-जिस की सुन्दरता को देखेंगे, तो ऐसा लगेगा कि मात्र यही सबसे अधिक सुन्दर है।

**भावार्थ-** वहदत में सबकी सुन्दरता समान होती है, इसलिये जिसे भी देखा जाता है, वही अधिक सुन्दर दिखता है, क्योंकि अखण्ड सौन्दर्य कभी कम या पुराना

नहीं होता। नित्य नवीनता ही वहाँ की प्रत्येक वस्तु को एक-दूसरे से अधिक सुन्दर रूप में प्रस्तुत करती है।

एक हवेली चौरस, दूजा मोहोल गिरदवाए।

ए खूबी मोमिन देखसी, नजरोँ आवसी ताए॥१६॥

माणिक पहाड़ में एक हवेली चौरस आयी है तथा एक हवेली गोल आयी है (इस प्रकार क्रमशः चौरस एवं गोल हवेलियाँ आती गयी हैं, जिनकी १२००० की १२००० हारें आयी हैं)। इस प्रकार की शोभा चारों ओर आयी है। यह अद्वितीय शोभा मात्र ब्रह्मसृष्टियों को ही दिखायी देती है।

अर्स हौज दोऊ बीच में, मोहोल मानिक पुखराज।

जेता नजीक हौज के, तासों मोहोल मानिक रहे बिराज॥१७॥

माणिक पहाड़ तथा पुखराज के बीच में रंगमहल तथा हौज़ कौसर ताल की शोभा है। पुखराज से जितना हौज़ कौसर (९ लाख कोस) दूर है, उतना ही हौज़ कौसर से माणिक पहाड़ दूर है।

ए चारों हुए दोरी बन्ध, सामी अछर नूर सोभित।

ए हक हुकम बोलावत, इत और न पोहोंचे सिफत॥१८॥

पुखराज पहाड़, रंगमहल, हौज़ कौसर ताल, तथा माणिक पहाड़ सभी एक सीध में हैं। रंगमहल के सामने पूर्व दिशा में अक्षरधाम सुशोभित होता है। धाम धनी का आदेश (हुकम) ही मुझसे ऐसा कहलवा रहा है, तो मैं कह रही हूँ। यहाँ अक्षरातीत के अतिरिक्त और किसी की महिमा नहीं है।



ए कह्या कौल थोड़े मिने, रूहें समझेंगी बोहोतात।

दिल मोमिन से ना निकसे, चुभ रहेसी दिन रात॥१९॥

यद्यपि माणिक पहाड़ की शोभा का यह वर्णन मैंने बहुत थोड़े से शब्दों में किया है, किन्तु परमधाम की आत्मायें इसे विस्तारपूर्वक समझ जायेंगी। ब्रह्मसृष्टियों के धाम – हृदय से माणिक पहाड़ की यह शोभा निकल नहीं पायेगी, बल्कि दिन – रात अखण्ड बनी रहेगी (बसी रहेगी)।

कहे बारे हजार मोहोल फिरते, कही हुकमें तिनकी बात।

तिन हर मोहोलों बीच बीच में, बारे बारे हजार मोहोलात॥२०॥

माणिक पहाड़ में १२००० हवेलियों की १२००० हारें घेरकर आयी हैं। धाम धनी के आदेश से मैंने उनकी अद्वितीय शोभा का वर्णन कर दिया है। इन प्रत्येक

हवेलियों के बीच में १२०००-१२००० महल आये हैं।

अटक रहे थे इतहीं, बीच आवने मोमिनों दिल।

इन अर्स रूहों वास्ते एता कहा, विचार करें सब मिल॥२१॥

मैं इन महलों की शोभा को देखकर खो (अटक सी) गयी थी। यह सारा वर्णन तो मैंने इसलिये किया है, ताकि ब्रह्मसृष्टियों के धाम-हृदय में यह छवि बस जाये और सभी मिलकर इसका चिन्तन करें।

जो मोमिन किए हकें बेसक, सो लेंगे दिल विचार।

अर्स दिल एही मोमिनों, तो ल्याए बीच सुमार॥२२॥

जिन ब्रह्ममुनियों को धाम धनी ने पूर्णतया संशयरहित कर दिया है, एकमात्र वे ही अपने दिल में इस शोभा का विचार करेंगे। इनका ही हृदय श्री राज जी का धाम है

और इनके लिये ही अनन्त शोभा को सीमाबद्ध करके वर्णित किया गया है।

आगे आए मिली इत नदियां, चक्राव ज्यों पानी चलत।

तिन पीछे नदियां मोहोल बन की, जाए सागरों बीच मिलत॥२३॥

माणिक पहाड़ के चारों ओर आयी सभी नहरों का पानी महानद में समाता है, जो गोलाई में है। सारा जल घूमकर वन के महलों के महानद में जाता है। आगे जाकर सारा जल सागरों में पहुँच जाता है।

क्यों कर कहूं मैं पौरियां, और क्यों कर कहूं झरोखे।

देख देख मैं देखिया, न आवे गिनती में ए॥२४॥

माणिक पहाड़ में आयी हुई महाराबों तथा झरोखों की रमणीयता का मैं कैसे वर्णन करूँ। मैंने बार-बार इन्हें

देखा, किन्तु किसी भी प्रकार से इनकी गणना नहीं हो सकती।

मैं गिरद कही चौरस कही, पर कई हर भांत हवेली।  
जाके आवें ना मोहोल सुमार में, तो क्यों जाए गिनी पौरी॥२५॥

यद्यपि मैंने गोल और चौरस हवेलियों की ही शोभा का वर्णन किया है, किन्तु और भी कई आकृति की हवेलियाँ हैं। जब माणिक पहाड़ के महलों की ही संख्या नहीं गिनी जाती, तो भला महाराबों को कैसे गिन सकते हैं।

जब हक याद जो आवहीं, तब रूह देख्या चाहे नजर।  
दिल अर्स मारया इन घाव से, सो ए मुरदा सहे क्यों कर॥२६॥

जब प्रियतम की प्रेम-भरी याद आती है, तभी आत्मा उनका और निजधाम का दीदार करना चाहती है। विरह

की यही चोट उसके धाम-हृदय में प्रियतम को बसा देती है, जबकि संसार के जीव विरह को सहन नहीं कर पाते अर्थात् धनी का विरह नहीं लेते।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण का भाव यह है कि विरह की चोट से ब्रह्ममुनियों के हृदय में जो पहले संसार बसा होता है, वह समाप्त हो जाता है (मार दिया जाता है) और एकमात्र धाम धनी ही उसमें विराजमान रहने लगते हैं, जबकि सांसारिक जीव धनी के विरह से कोसों दूर रहते हैं। वे विरहाग्नि की ज्वाला का जरा सा भी तेज सहन नहीं कर पाते।

देखो महामत मोमिनों जागते, जो हक इलमें दिए जगाए।

करे सो बातें हक अर्स की, तूं पी इस्क तिनों पिलाए॥२७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! यदि आप

धाम धनी की तारतम वाणी से जाग्रत हो गये हैं, तो अपने हृदय में प्रेम भरकर अपने प्रियतम को और अपने परमधाम को अवश्य देखिए। अब आप केवल धाम धनी और परमधाम की ही बातें करें, संसार की नहीं। हे मेरी आत्मा! तू अपने प्राणवल्लभ की प्रेममयी अमृतधारा का पान कर और ज्ञान-दृष्टि से जाग्रत हुए सुन्दरसाथ को भी प्रेम का रसास्वादन करा।

प्रकरण ॥४४॥ चौपाई ॥२४८१॥

॥ परिकरमा सम्पूर्ण ॥